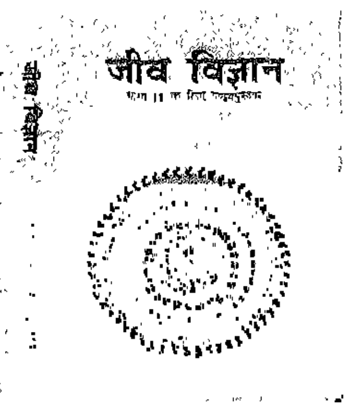
जीव विज्ञान

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक



पश्च आवरण

मानव जीनोम



मुख आवरण

जीवन की विविधता

जीव विज्ञान

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

लेखक

डी.पी. चक्रवर्ती   कृष्ण भगवान गुप्त
जे.एस. गिल   एस.ए. शफी
सुरेश चंद्र जैन   एस. श्रीवास्तव
विष्णु कुमार गेरा   जितेंद्र सिंह

संपादक

डी.पी. चक्रवर्ती   जे.एस. सिंह
राजेश कुमार सक्सेना   गणेश शंकर पालीवाल
जे.एस. गिल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण ISBN : 81-7450-223-8

जुलाई 2003

श्रावण 1925

PD 5T SC

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : शशि चड्डा

उत्पादन : राजेश पिप्पल

सज्जा : विजय व्यास

आवरण : जितेंद्र सिंह

के.के. चड्डा

रु. 140.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा जे.जे. ऑफसेट प्रिंटर्स, 522, पटपड़ गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली 110 092 द्वारा मुद्रित

प्राक्कथन

विद्यालयी पाठ्यचर्या के प्रथम दस वर्षों में विज्ञान के एक अवयव के रूप में जीव विज्ञान एक अनिवार्य घटक है। शैक्षिक प्रवाह के क्रम में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर इसका एक अलग विषय के रूप में अध्ययन किया जाता है।

पिछली शताब्दी के दौरान विशेष रूप से जीवधारियों से संबंधित ज्ञान के व्यापक विस्फोट के कारण जीव विज्ञान के क्षेत्र में विस्मयकारी परिवर्तन आए हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षण का दृष्टिकोण भी बहुत बदला है। केवल तीन दशक पूर्व तक विद्यालयों में इसका वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान एवं मानव कार्यिकी के रूप में अलग-अलग अध्ययन किया जाता रहा था। अब जीव विज्ञान एक एकीकृत विषय के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है जिसका केंद्र बिंदु मनुष्य एवं उससे जुड़े मुद्दे; जैसे– पर्यावरण, खाद्य, स्वास्थ्य, ऊर्जा एवं प्राकृतिक संसाधन हैं।

जीव विज्ञान के अध्ययन की प्रासंगिकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है क्योंकि जीवों के रूपांतरण, रोगों के निदान एवं उपचार, पर्यावरण की सुरक्षा तथा स्वास्थ्य संबंधी अन्य मुद्दों से जुड़ी जानकारी में बढ़ोतरी हो रही है। खाद्य उत्पादन, पर्यावरण सुरक्षा एवं जीवन क गुणवत्ता में इसकी भूमिका को देखते हुए, वर्तमान शताब्दी को *जीव विज्ञान की शताब्दी* के रूप में देखा ा रहा है।

पाठ्यचर्या नवीनीकरण एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। प्रत्येक नवीनीकरण में विषय एवं इससे संबंधित क्षेत्रों में हुए ज्ञान के विस्फोट के अतिरिक्त सामाजिक एवं राष्ट्रीय मुद्दों तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए विकास का ध्यान रखा जाता है। पाठ्यक्रम को शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीतियों (*राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986*) एवं *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000* में दिए गए विस्तृत निर्देशों से बल मिलता है। इसी आलोक में पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक के विकास की शुरुआत की गई जिससे नीतिगत दिशानिर्देशों एवं मार्गदर्शन का समावेश इसमें किया जा सके। जीनोमिकी, जैव प्रौद्योगिकी एवं संपोषित विकास जैसे उभरते मुद्दों को महत्व दिए जाने के कारण इस मार्गदर्शन ने मूलभूत सिद्धांतों के अतिरिक्त पर्यावरण, जैव प्रौद्योगिकी एवं प्राकृतिक संसाधन एवं उसकी संरक्षा पर बल देते हुए जीव विज्ञान के पाठ्यक्रम को संशोधित करने का मार्ग सुगम बनाया है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर जीव विज्ञान पाठ्यपुस्तक के विकास हेतु पांडुलिपि के प्रारूप की समीक्षा विश्वविद्यालय एवं शोध संस्थानों के विषय विशेषज्ञों द्वारा की गई। इस पांडुलिपि की समीक्षा में कार्यरत विद्यालयी शिक्षकों एवं अन्य विशेषज्ञों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है। लेखन मंडल के सभी सदस्यों एवं समीक्षा कार्यशाला के सभी प्रतिभागियों का प्रयास सराहनीय रहा है।

पाठ्यपुस्तक में सुधार हेतु सुझावों का सदैव स्वागत है।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
जून 2002

आमुख

जीव विज्ञान का शाब्दिक अर्थ है "जीवन का अध्ययन"। प्रथम दृष्टि में पृथ्वी पर पाई जाने वाली विशाल विविधताओं से कोई भी प्रभावित हो सकता है। प्रत्येक जीवधारी अपने आप में विशिष्ट है एवं जीवधारियों के समूह महत्वपूर्ण एवं एकीकृत जीव वैज्ञानिक सिद्धांतों की व्याख्या करते हैं। यह जीव विज्ञान को एक चुनौतीपूर्ण एवं अत्यन्त विस्तृत विधा बनाता है जिसके अंतर्गत एक कोशिका की संरचना एवं कार्य से लेकर वृहत पारिस्थितिक तंत्र तक अनेक प्रकार के विषयों का समावेश है। इसी के फलस्वरूप विगत दो-तीन दशकों में जीव विज्ञान के क्षेत्र में जानकारी का विस्फोट हुआ है। उदाहरणार्थ, जीव वैज्ञानिकों ने अभी हाल ही में मानव जीनोम की गूढ़लिपि, डिऑक्सीराइबो न्यूक्लीक अम्ल (डीएनए) के क्रम को समझने का कार्य संपन्न किया है। इसकी सहायता से हम अपनी सहज क्षमताओं का आकलन तथा व्यवहार एवं बीमारियों के बारे में पहले से तैयारी कर सकने में सक्षम हो सकेंगे। सूचनाओं के इसी विस्फोट के कारण शिक्षक, सभी स्तरों पर प्रोत्साहित होकर समस्त विषय की कीमत पर इस विषय के विशेष भाग पर ही अपना ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि विद्यार्थियों की एक ऐसी पीढ़ी तैयार हो गई है जिनकी जैविक प्रक्रियाओं के प्रति समझ उनके ढांचे के अपर्याप्त मूल्यांकन के कारण बाधित हुई है। इस पुस्तक में जीव विज्ञान के सभी क्षेत्रों को संज्ञान में लिया गया है तथा आधुनिक जीव विज्ञान के आधार में स्थित एकीकृत विषय-वस्तु पर बल दिया गया है। इस पुस्तक की संरचना इस प्रकार की गई है कि विद्यार्थियों के मन में अन्वेषण एवं सृजन की भावना तथा जैव संसार एवं विज्ञान की विधियों के प्रति सम्मान जागृत हो सके।

इस पुस्तक की प्रथम इकाई में जीव विज्ञान का महत्त्व एवं इस क्षेत्र में उपलब्ध अवसर, जीवधारियों के लक्षण एवं संघटन तथा जैव विकास की चर्चा की गई है। नामकरण एवं वर्गीकरण के सिद्धांतों की चर्चा इकाई दो में है जिसके बाद इकाई तीन के अध्यायों में जीवन की इकाई के रूप में कोशिका, इसकी संरचना एवं इसके घटक अणुओं तथा इसके विभाजन की व्याख्या है। इकाई चार के चारों अध्याय आनुवंशिकी से संबंधित हैं जिसमें वंशागति के आधार से लेकर जीन एवं आनुवंशिक इंजीनियरी को समझाया गया है। इकाई पांच के अध्यायों में पुष्पधारी पादपों एवं कुछ चुने हुए प्राणियों की आकारिकी, आंतरिक संरचना तथा पादप एवं प्राणी ऊतकों का विवरण दिया गया है।

मैं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक प्रोफेसर जगमोहन सिंह राजपूत का आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने हमें इस राष्ट्रीय प्रयास में अपना योगदान देने का अवसर प्रदान किया।

मैं विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. के विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष प्रो. आर.डी. शुक्ल की पुस्तक की तैयारी में रुचि एवं सतत् सहयोग के लिए भी आभार व्यक्त करता हूं।

मैं प्रोफेसर के.के. शर्मा, एम.डी.एस. विश्वविद्यालय, अजमेर के उदार सहयोग का भी आभारी हूं जिनकी सहायता से कुछ अध्यायों को तैयार किया जा सका।

मैं लेखन मंडल के सभी सदस्यों का इस प्रयास में उनकी लगन के प्रति आभार व्यक्त करता हूं। प्रो. जे.एस. गिल का समन्वयक के रूप में विशेष योगदान रहा, जिनके प्रयास से ही पुस्तक का लेखन एवं प्रकाशन विघ्नरहित हो सका। डा. जितेंद्र सिंह का सतत् प्रयास चित्रों को अंतिम रूप देने एवं उसकी सज्जा में काफी सराहनीय है।

मैं बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के अपने सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहूंगा जिन्होंने पांडुलेखों की आलोचनात्मक समीक्षा की। इनमें प्रो. बी.डी. सिंह, प्रो. बी.एन.सिंह, प्रो. एस. राठौर, प्रो. बी.आर. चौधरी, प्रो. के.पी. जोए, प्रो. जे.पी. गौड़ तथा डा. राजीव रमन, डा. एन.के. दूबे तथा डा. एस. प्रसाद

एवं सेंट पॉल विद्यालय, नई दिल्ली की श्रीमती सरिता जैन सम्मिलित हैं। प्रो. गणेश शंकर पालीवाल, डा. डी.पी. चक्रवर्ती, डा. राजेश कुमार सक्सेना एवं प्रो. जे.एस. गिल का संपादकीय सहयोग भी सराहनीय है।

पांडुलिपि की तैयारी में मेरे छात्रों ई. खुराना, सी. अन्नपूर्णा, एस.के. दूबे एवं आर. सागर का अथक सहयोग रहा है।

हम इस पाठ्यपुस्तक में आगे के सुधार हेतु विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के आलोचना तथा सुझावों का सदैव स्वागत करेंगे।

जे.एस. सिंह
अध्यक्ष
वनस्पति विज्ञान विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी

लेखन मंडल के सदस्य

जे.एस. सिंह **(अध्यक्ष)**
प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी, उत्तर प्रदेश

डी.पी. चक्रवर्ती
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
प्राणि विज्ञान विभाग
प्रेसीडेंसी कॉलेज, कॉलेज स्ट्रीट, कोलकाता

एस.ए. शफी
प्राचार्य, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
श्यामला हिल्स, भोपाल, मध्य प्रदेश

एस. श्रीवास्तव
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
आनुवंशिकी विभाग, दक्षिणी परिसर
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विष्णु कुमार गेरा
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
वनस्पति विज्ञान विभाग
सी.सी.एस. विश्वविद्यालय
मेरठ, उत्तर प्रदेश

एन.सी.ई.आर.टी संकाय
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग

कृष्ण भगवान गुप्त, *प्रोफेसर*
सुरेश चंद्र जैन, *प्रोफेसर*
जितेंद्र सिंह, *लेक्चरार*
जे.एस.गिल, *प्रोफेसर* **(समन्वयक)**

हिंदी रूपांतर

गणेश शंकर पालीवाल
प्रोफेसर (अवकाश प्राप्त)
216, वैशाली पीतमपुरा
दिल्ली

कृष्ण कुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
एम.डी.एस विश्वविद्यालय
अजमेर, राजस्थान

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आतमा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

पाठ्यपुस्तक समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

गणेश शंकर पालीवाल
प्रोफेसर, एमिरेटस, यूजीसी
वनस्पति विज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रवीण कुलश्रेष्ठ
प्रवक्ता, वनस्पति विज्ञान
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
भोपाल, मध्य प्रदेश

मधु गुप्ता
प्रवक्ता
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

कृष्ण कुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष, प्राणि विज्ञान विभाग
एम.डी.एस. विश्वविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

यशोधरा शर्मा
प्रवक्ता
प्राणि विज्ञान विभाग
अग्रवाल कॉलेज, जयपुर, राजस्थान

के.एन. परगई
पी.जी.टी (जीव विज्ञान)
सर्वोदय बाल विद्यालय नं. 1
सरोजिनी नगर, नई दिल्ली

सत्येंद्र प्रकाश सक्सेना
क्षेत्रीय सलाहकार, विज्ञान शाखा
शिक्षा निदेशालय, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र
दिल्ली

ए.एस. रावत
वरिष्ठ विज्ञान सलाहकार
विज्ञान केंद्र नं. 2, वसंत विहार
नई दिल्ली

प्रोमिला वर्मा
प्रवक्ता (जीव विज्ञान)
एम.बी.पी.बी.एम.एस. केंद्रीय विद्यालय
शाहदरा, दिल्ली

ललिता यादव
पी.जी.टी. (जीव विज्ञान)
सर्वोदय कन्या विद्यालय, मालवीय नगर
नई दिल्ली

सरिता राय
प्रधानाचार्य
सहशिक्षा वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय
चिल्ला, मयूर विहार, दिल्ली

हरिचंद
पी.जी.टी (अवकाश प्राप्त)
413, ए/5, गोविंद पुरी, नई दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी संकाय
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
कृष्ण भगवान गुप्त, *प्रोफेसर*
सुरेश चंद्र जैन, *प्रोफेसर*
दिनेश कुमार, *रीडर*
जितेंद्र सिंह, *लेक्चरार*
जे.एस.गिल, *प्रोफेसर* (**समन्वयक**)

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

विषयसूची



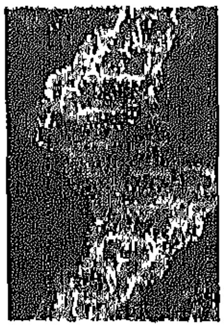
इकाई एक
जीव जगत



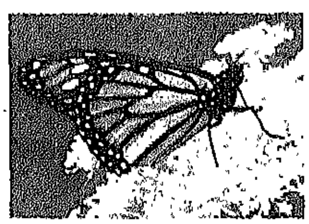
इकाई दो
जीवन की विविधता



इकाई तीन
कोशिका तथा कोशिका विभाजन



इकाई चार
आनुवंशिकी



इकाई पांच
पादप एवं जंतुओं की आकारिकी

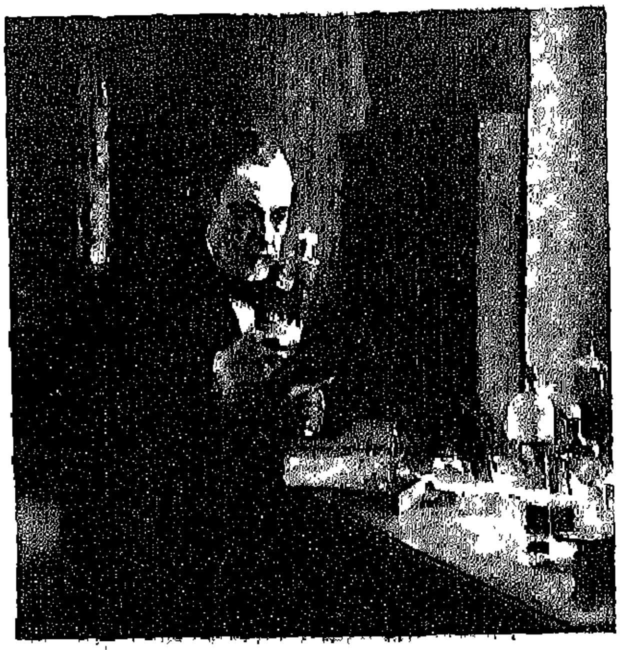
इकाई

एक



जीव जगत

यदि आप अपने चारों ओर वन, खेत या सड़क के किनारे रास्ते पर देखें, तो आप पाएंगे कि संसार विभिन्न प्रकार की जैव विविधताओं से भरा हुआ है। जीव जगत में तरह-तरह की विविधता से परिपूर्ण जीव, अनेकानेक प्रकार के रंग, आकार, प्रकार और रूप लिए अपनी उपस्थिति दर्शाते हैं। आप जीवन के विविध रूपों को देखकर अपना ज्ञान बढ़ा सकते हैं। सामान्यतः पृथ्वी पर जीवन सभी जगहों में पाया जाता है, सबसे सूखे रेगिस्तान से लेकर बर्फीले ध्रुवीय पानी तक तथा सबसे ऊंची पर्वतीय चोटी से लेकर सबसे गहरे समुद्र तक। कुछ जीव सूक्ष्मदर्शी और एककोशिक होते हैं, जबकि दूसरे बहुकोशिक। जीवविज्ञानी बहुत-सी जातियों की पहचान कर उन्हें नामांकित कर चुके हैं। हम यह सोच सकते है कि वस्तुतः जीवित जगत कितना विशाल है ? जीवविज्ञानी बताते हैं कि जीवन किस प्रकार कार्य करता है। यों तो जीवों में अपने विशेष लक्षण होते हैं, परंतु वे संगठनात्मक और कार्यात्मक एकता दर्शाते हैं और उत्पत्ति की प्रक्रिया, विविधता का विकास तथा प्रकृति के साथ साम्य बनाए रखने का प्रदर्शन करते हैं। जीवन के ये सभी दृष्टिकोण जीव विज्ञान के क्षेत्र में आते हैं। ज्यां बैप्टिस्ट लेमार्क ने सर्वप्रथम इस 'नए विज्ञान' के लिए ***बायोलोजी*** *नाम सुझाया था जो जंतुविज्ञान और वनस्पतिविज्ञान के जुड़ने से बना है। इस इकाई में आप विज्ञान के रूप में जीव विज्ञान की प्रकृति, समय के साथ-साथ जीव विज्ञान का विकास, इसकी विभिन्न शाखाएं और संभावनाएं, अनभिज्ञता एवं दुरुपयोग को रोकने में इसकी भूमिका तथा जीव विज्ञान के क्षेत्र में भविष्य निर्माण हेतु प्रमुख विकल्पों का अध्ययन करेंगे। जीव जगत के मुख्य गुण और संगठन के साथ आणविक संगठन का अध्ययन करेंगे। यह इकाई आपको जीवन की उत्पत्ति और उसकी विविधताओं के साथ-साथ जैव विकास को भी समझाएगी।*



लुई पाश्चर

(1822-1895)

लुई पाश्चर, फ्रांस के एक महान सूक्ष्मजीव-विज्ञानी एवं रसायनवेत्ता थे, जिन्होंने पेरिस में अध्ययन किया था। 1867 में जनता द्वारा एकत्र धन से उनके लिए एक प्रयोगशाला की स्थापना की गई थी और 1888 से आजीवन वे इस पाश्चर संस्थान के प्रमुख के रूप में कार्य करते रहे। पाश्चर ने दर्शाया कि यीस्ट, जो अंगूर की शर्कराओं को सुरा में परिवर्तित कर देते हैं, सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देने वाले अत्यंत सूक्ष्म जीव हैं तथा किण्वन (fermentaion) के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती। इस खोज से यह प्रदर्शित किया जा सका कि जीवन की सभी मूलभूत प्रक्रियाएं वस्तुत: रासायनिक प्रतिक्रियाएं ही होती हैं। पाश्चरीकरण, जिसके उपयोग द्वारा हम दुग्धशाला (डेरी) उत्पादों को सूक्ष्मजीवों-रहित प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं, उन्हीं की खोजों पर आधारित है। पाश्चर ने इस लोकप्रिय विचार को नकार दिया कि सूक्ष्मजीव एवं जीवन के अन्य विविध प्रकार के रूप, स्वत: धूल, सड़ते हुए मांस अथवा गोबर से उत्पन्न होते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक सूक्ष्मजीव पूर्व में विद्यमान जीव से ही उत्पन्न होता है। पाश्चर प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने जीवन के इस आधारभूत चक्र की स्थापना की कि सभी जीवंत जीव अंतत: सूक्ष्मजीवियों के लिए भोजन बन जाते हैं और यह नए जीवन के लिए चारा प्रदान करते हैं। पाश्चर ने यह भी निर्णय दिया कि सूक्ष्मजीव अथवा रोगाणु रोग फैलाते हैं (इस प्रकार रोगों के सूक्ष्मजीव सिद्धांत की स्थापना हुई)। पाश्चर ने फ्रांस के रेशम कीट उद्योग को यह खोज कर बचाया कि रेशम के कीटों को समाप्त करने वाले दो सूक्ष्मजीवी रोग ही हैं। उन्होंने अपने विद्यार्थी जोसेफ लिस्टर को कीटाणुरहित शल्य-चिकित्सा करने के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही कुत्ते के काटने से फैलने वाले रोग, रैबीज और भेड़ों में व्याप्त रोग, एन्थ्रेक्स (anthrax) की रोकथाम के लिए टीकों का भी आविष्कार किया।



इकाई पांच
पादप एवं जंतुओं की आकारिकी

इकाई
एक



जीव जगत

यदि आप अपने चारों ओर वन, खेत या सड़क के किनारे रास्ते पर देखें, तो आप पाएंगे कि संसार विभिन्न प्रकार की जैव विविधताओं से भरा हुआ है। जीव जगत में तरह-तरह की विविधता से परिपूर्ण जीव, अनेकानेक प्रकार के रंग, आकार, प्रकार और रूप लिए अपनी उपस्थिति दर्शाते हैं। आप जीवन के विविध रूपों को देखकर अपना ज्ञान बढ़ा सकते हैं। सामान्यतः पृथ्वी पर जीवन सभी जगहों में पाया जाता है, सबसे सूखे रेगिस्तान से लेकर बर्फीले ध्रुवीय पानी तक तथा सबसे ऊंची पर्वतीय चोटी से लेकर सबसे गहरे समुद्र तक । कुछ जीव सूक्ष्मदर्शी और एककोशिक होते हैं, जबकि दूसरे बहुकोशिक । जीवविज्ञानी बहुत-सी जातियों की पहचान कर उन्हें नामांकित कर चुके हैं । हम यह सोच सकते है कि वस्तुतः जीवित जगत कितना विशाल है ? जीवविज्ञानी बताते हैं कि जीवन किस प्रकार कार्य करता है। यों तो जीवों में अपने विशेष लक्षण होते हैं, परंतु वे संगठनात्मक और कार्यात्मक एकता दर्शाते हैं और उत्पत्ति की प्रक्रिया, विविधता का विकास तथा प्रकृति के साथ साम्य बनाए रखने का प्रदर्शन करते हैं। जीवन के ये सभी दृष्टिकोण जीव विज्ञान के क्षेत्र में आते हैं । ज्यां बैप्टिस्ट लेमार्क ने सर्वप्रथम इस 'नए विज्ञान' के लिए ***बायोलोजी*** *नाम सुझाया था जो जंतुविज्ञान और वनस्पतिविज्ञान के जुड़ने से बना है । इस इकाई में आप विज्ञान के रूप में जीव विज्ञान की प्रकृति, समय के साथ-साथ जीव विज्ञान का विकास, इसकी विभिन्न शाखाएं और संभावनाएं, अनभिज्ञता एवं दुरुपयोग को रोकने में इसकी भूमिका तथा जीव विज्ञान के क्षेत्र में भविष्य निर्माण हेतु प्रमुख विकल्पों का अध्ययन करेंगे। जीव जगत के मुख्य गुण और संगठन के साथ आणविक संगठन का अध्ययन करेंगे । यह इकाई आपको जीवन की उत्पत्ति और उसकी विविधताओं के साथ-साथ जैव विकास को भी समझाएगी ।*



लुई पाश्चर

(1822-1895)

लुई पाश्चर, फ्रांस के एक महान सूक्ष्मजीव-विज्ञानी एवं रसायनवेत्ता थे, जिन्होंने पेरिस में अध्ययन किया था। 1867 में जनता द्वारा एकत्र धन से उनके लिए एक प्रयोगशाला की स्थापना की गई थी और 1888 से आजीवन वे इस पाश्चर संस्थान के प्रमुख के रूप में कार्य करते रहे। पाश्चर ने दर्शाया कि यीस्ट, जो अंगूर की शर्कराओं को सुरा में परिवर्तित कर देते हैं, सूक्ष्मदर्शी से दिखाई देने वाले अत्यंत सूक्ष्म जीव हैं तथा किण्वन (fermentaion) के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती। इस खोज से यह प्रदर्शित किया जा सका कि जीवन की सभी मूलभूत प्रक्रियाएं वस्तुत: रासायनिक प्रतिक्रियाएं ही होती हैं। पाश्चरीकरण, जिसके उपयोग द्वारा हम दुग्धशाला (डेरी) उत्पादों को सूक्ष्मजीवों-रहित प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं, उन्हीं की खोजों पर आधारित है। पाश्चर ने इस लोकप्रिय विचार को नकार दिया कि सूक्ष्मजीव एवं जीवन के अन्य विविध प्रकार के रूप, स्वत: धूल, सड़ते हुए मांस अथवा गोबर से उत्पन्न होते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक सूक्ष्मजीव पूर्व में विद्यमान जीव से ही उत्पन्न होता है। पाश्चर प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने जीवन के इस आधारभूत चक्र की स्थापना की कि सभी जीवंत जीव अंतत: सूक्ष्मजीवियों के लिए भोजन बन जाते हैं और यह नए जीवन के लिए चारा प्रदान करते हैं। पाश्चर ने यह भी निर्णय दिया कि सूक्ष्मजीव अथवा रोगाणु रोग फैलाते हैं (इस प्रकार रोगों के सूक्ष्मजीव सिद्धांत की स्थापना हुई)। पाश्चर ने फ्रांस के रेशम कीट उद्योग को यह खोज कर बचाया कि रेशम के कीटों को समाप्त करने वाले दो सूक्ष्मजीवी रोग ही हैं। उन्होंने अपने विद्यार्थी जोसेफ लिस्टर को कीटाणुरहित शल्य-चिकित्सा करने के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही कुत्ते के काटने से फैलने वाले रोग, रैबीज और भेड़ों में व्याप्त रोग, एन्थ्रेक्स (anthrax) की रोकथाम के लिए टीकों का भी आविष्कार किया।

अध्याय 1

जीव विज्ञान की प्रकृति और क्षेत्र

जीव जगत का अध्ययन मनुष्य का एक विशेष प्रयत्न है। मनुष्य भी एक जीव है परंतु अन्य जीवित जंतुओं से कुछ भिन्न है। यद्यपि कई जंतुओं में उत्सुकता होती है। इसी गुण की वजह से अकेला मनुष्य अन्य जीव-जंतुओं से भिन्न होता है। हम पालतू जानवर, प्राकृतिक पौधे रखते हैं, जंतु-शालाओं और उद्यानों में जाते हैं। पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ते हैं, गहरे समुद्र में गोता लगाते हैं, और वनों में ट्रैकिंग करते हैं, यह सब हम जीवित और निर्जीव संसाधनों के प्राकृतिक दृश्यों का आनंद उठाने के लिए करते हैं। यह सब क्रियाएं मनुष्य को प्राकृतिक संसार के प्रति आकर्षण और जीवित पदार्थों के प्रति उसका संयोग दर्शाती हैं। वास्तव में मनुष्य की विज्ञान के प्रति उत्सुकता ने ही जीव जगत के ज्ञान या जीव विज्ञान को जन्म दिया है।

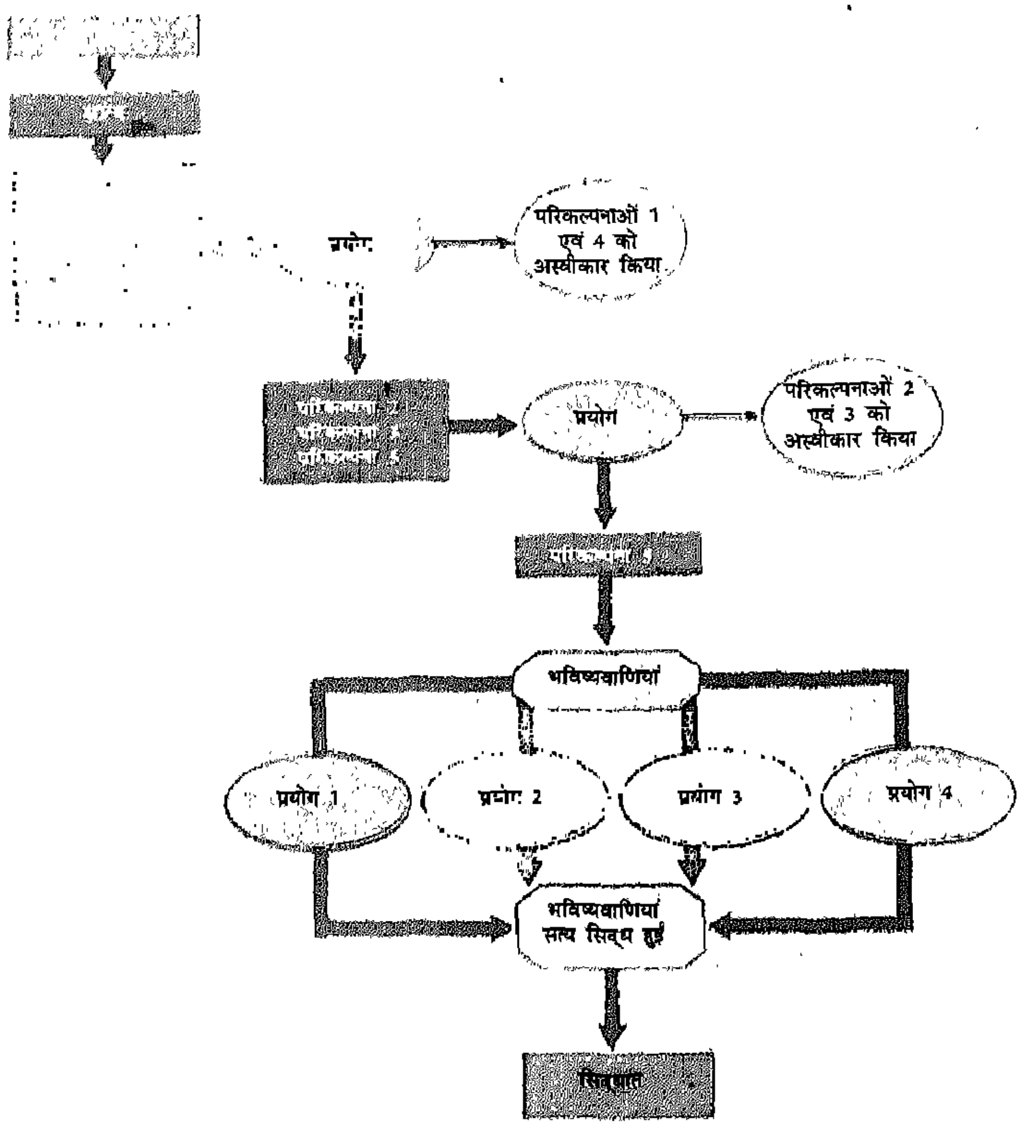
1.1 जीव विज्ञान–जीवन का विज्ञान

जीवित जंतु या जीव एक दूसरे से और उसके साथ-साथ अपने चारों तरफ के भौतिक और रासायनिक वातावरण से तालमेल स्थापित करते रहते हैं। **बायोलोजी** (बायोस : जीवन; लोगोस : अध्ययन) वह विज्ञान है जिसमें जीवितों का अध्ययन किया जाता है। जीव-जंतु क्या हैं ? वे कैसे कार्य करते हैं, उसमें किस प्रकार संबंध करते हैं और उनका विकास किस प्रकार होता है ? हालांकि जीव तंत्र प्रकृति के प्रभाव के आधार के फलस्वरूप कई अपवाद दर्शाते हैं। वैज्ञानिकों को इन अपवादों को खुले मस्तिष्क से स्वीकार करना चाहिए क्योंकि आने वाले समय के सूचना और ज्ञान के आलोक में आज के अपवाद समान रूप में नहीं रहेंगे। जीव विज्ञान के रूप में तथ्यों के विश्लेषण के लिए वैज्ञानिक पहुंच होनी चाहिए। अतः यह आवश्यक है कि जीव विज्ञान के विषय के विद्यार्थी को विज्ञान की प्रकृति का मूलभूत ज्ञान होना चाहिए।

1.2 विज्ञान की प्रकृति और विधियां

'साइंस' शब्द एक लेटिन शब्द 'साइंसशिया' जिसका अर्थ 'जानना' है, से लिया गया है। विज्ञान एक क्रिया है जो प्रकृति के प्रश्नों का जवाब देने के काम आती है। एक वैज्ञानिक बहुत-से विभिन्न तथ्यों को आपस में जोड़ता है या उनमें संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है। कुछ विशेष निरीक्षणों के आधार पर सिद्धांत प्रतिपादित करता है और अंत में सामान्य नियमों की खोज करता है। उदाहरणार्थ, चार्ल्स राबर्ट डारविन (1809-1882) ने पहले पौधों और जंतुओं पर होने वाली विभिन्नताओं का निरीक्षण किया, तत्पश्चात अपने निरीक्षणों को स्वयं के पालतू जंतुओं पर किए गए प्रयोग के निरीक्षणों को जोड़कर तथ्य प्रतिपादित किए और अंत में ***प्रकृतिकरण का सिद्धांत*** (Theory of Natural Selection) प्रतिपादित किया। यह सिद्धांत उद्विकास की प्रक्रिया के बारे में कहता है कि पौधे और जंतु और उनके प्रकार समय के साथ बदलते रहते हैं जो कि पीछे छोड़े गए प्रमाणों के आधार पर दर्शित होते हैं। प्राकृतिक चयन द्वारा उद्विकास एक मुख्य सिद्धांत है क्योंकि यह एक अवधारणा के ढांचे की रूपरेखा बनाता है जो जीव विज्ञान को विज्ञान के रूप में प्रदर्शित करता है।

एक वैज्ञानिक मस्तिष्क, विज्ञान की मूलभूत प्रकृति को समझने के लिए जिज्ञासु रहता है और निष्कर्ष निकालने की विधियों को अपनाता है। जैसे आपकी फ्लैश लाइट काम नही कर रही है। तो यह विचार आता है क्या गलत हो गया है ? संभवत: बैटरी समाप्त हो गयी है या फ्लैश लाइट का बल्ब जल गया है या स्विच (बटन) काम नहीं कर रहा है। सबसे खराब स्थिति वह हो सकती है जब तीनों संभावनाएं एक साथ सच हो सकती हैं। आप क्या करेंगे ? आप समस्या के निराकरण के लिए कैसे आगे बढ़ेंगे ? आप पुरानी बैटरी के स्थान पर नई बैटरी लगाएंगे, या पुराने बल्ब की जगह नया बल्ब या बटन को सुधारेंगे। इसका यह अर्थ हुआ कि आपके द्वारा वरीयता के आधार पर क्रमबद्ध चरणों में काम प्रारंभ होगा। प्रथम, आप एक समीकरण या **अवधारणा** बनाएंगे जो कुछ तथ्यों पर आधारित होगी, उदाहरणार्थ समस्या या तो बैटरी से या बल्ब के साथ या बटन से संबंधित है। दूसरे, असली समस्या पहचानने के लिए हम आपके द्वारा प्रतिपादित अवधारणा का परीक्षण करेंगे। कार्यहीनता के कारणों को समझेंगे। अंत में हम फ्लैशलाईट के बारे में असली समस्यां का **निष्कर्ष** निकालेंगे और गड़बड़ी को सुधार लेंगे। यह एक निश्चित क्रमबद्ध कार्य ही वैज्ञानिक पहुंच का मूलमंत्र है।



चित्र 1.1 विज्ञान में सामान्यीकृत कार्यविधि

साधारणतया वैज्ञानिक विधि द्वारा सूचनाएं एकत्रित करने में कुछ चरण होते हैं। इनमें निरीक्षण, परिकल्पना सूत्रबद्ध करना, परिकल्पना और परिवर्धनीय सिद्धांत की जांच करना सम्मिलित हैं (चित्र 1.1)। इन सबको समझने के लिए हम जीव विज्ञान से कुछ उदाहरण लेते हैं।

निरीक्षण

यह साधारणतया किसी वस्तु की ओर ध्यान आकर्षित करना, विवरण रखना और निरीक्षक द्वारा किए गए प्रश्नों का उत्तर ढूंढने की क्षमता है। हम अपनी सामान्य संवेदनाओं द्वारा बिना किसी यंत्र की सहायता के निरीक्षण कर सकते हैं, उदाहरणस्वरूप हम वस्तुओं को देख सकते हैं, महसूस करते हैं, सूंघते हैं, स्वाद लेते हैं, छूते हैं, और जीवित जगत को पहचानते हैं। प्रायः हमें सूक्ष्मदर्शी, रासायनिक विश्लेषक या विकिरणखोजी यंत्र की अपनी पहचानने की क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यकता पड़ती है। सूक्ष्मदर्शी काम में लेने में समुचित दक्षता की आवश्यकता होती है। कुछ दूर स्थित पौधे, जंतु, चिड़ियों आदि का निरीक्षण करने के लिए फील्ड बाइनोक्यूलर और टेली-लेंसेस जैसे कुछ दूसरे उपकरणों की आवश्कता पड़ती है। इस प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रचुर सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं। किसी तालाब के पानी की बूंद में कोई जीवित वस्तु है, इसे जानने के लिए केवल एक आवर्धित लैंस की सहायता से यह जाना जा सकता है।

एक वैज्ञानिक अन्वेषक को साफ-साफ पता होता है कि उसे किस चीज का निरीक्षण करना है और क्या छोड़ना है। एक वैज्ञानिक को उन निरीक्षणों को देखने की आवश्यकता पड़ती है जिनमें 'क्या', 'क्यों', 'कैसे' जैसे प्रश्न उभरते हैं। प्रत्येक वस्तु की माप करना बुद्धिमानी नहीं है और ऐसा संभव भी नही है।

मापने की सही विधि का पता लगाना और आंकड़ों को व्यवस्थित रखना अति आवश्यक कार्य है। सभी गणनाओं या आंकड़ों को व्यवस्थित रूप में संरक्षित रखना चाहिए क्योंकि इनमें से कोई एक भी वर्तमान या भविष्य में किसी प्रश्न का उत्तर देने में आवश्यक हो सकता है।

परिकल्पना प्रतिपादित करना

अगली आवश्यकता निरीक्षणों के आधार पर कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण करना हैं। यदि आप मान लें कि अचानक हम एक कमरे में अंधेरा महसूस करते हैं। इस स्थिति के लिए व्याख्या या स्पष्टीकरण का निर्माण करेंगे, कई परिकल्पनाएं देंगे, जैसे कि स्विच बंद किए हुए थे, या बल्ब जल गए थे, या शायद हम अंधे हो गए थे। वास्तव में एक परिकल्पना जहां तक हो सके निरीक्षणों का तर्कसंगत स्पष्टीकरण है। इस चरण में किसी प्रश्न के संभावित उत्तरों को सोचकर अंदाजा लगाया जाता है । एक अच्छी परिकल्पना जहां तक हो सके बहुत सरल होती है। एक परिकल्पनीय प्रतिपालन सच या झूठ कुछ भी हो सकता है । अतः किसी के निरीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों का गहन विश्लेषण करना चाहिए, जोकि किसी प्रकार के मंतव्य के सामान्यीकरण को प्राप्त करने में कुछ सहायता कर सकता है।

परिकल्पना का परीक्षण

आपकी परिकल्पना को परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए आपको परीक्षण के लिए कई विधियां अपनानी होंगी। साधारणतया, वैज्ञानिक एक या अधिक परिकल्पना की जांच के लिए एक प्रयोग करते हैं। प्रयोग के निष्कर्षों के आधार पर वह एक या अधिक परिकल्पनाओं को हटाते हैं या निश्चित करते हैं। प्रयोग के निष्कर्षों के अनुमान को जांचने के लिए आवश्यकता पड़ने पर अन्य व अधिक प्रयोग करने पड़ते हैं। इस क्रिया से परिकल्पनाओं के विलोपन और अच्छी या सही परिकल्पनाओं को चुनने में सहायता मिलती है। कमरे में अंधेरे का कारण ढूंढने के लिए पिछली परिकल्पना को यदि माना जाए तो पहले प्रायोगिक तौर पर, हम बत्ती जलाएंगे, यदि अभी भी कमरे में अंधेरा है तो पहली परिकल्पना असत्य है। अतः अस्वीकार कर दी जाएगी । इस प्रयोग में यह कमी हैं कि यह दूसरी दो परिकल्पनाओं को सत्य और असत्य सिद्ध नहीं कर पाता है।

दूसरे उदाहरण में माना कि एक वैज्ञानिक निरीक्षण करता है और अपने निरीक्षण में देखता है कि *जिंगो* नामक पेड़ नवंबर के महीने के आसपास एक ही साथ अपनी सारी पत्तियां गिरा देता है और वह इस क्रिया के पीछे वैज्ञानिक कारण या व्याख्या तलाशने की कोशिश करता है। निरीक्षक के मस्तिष्क में यह प्रश्न आता है कि सारी की सारी पत्तियां एक ही साथ क्यों गिरीं। इसका क्या कारण हो सकता है। निम्नलिखित में से एक या अधिक अनुमान सही व्याख्या दे सकता है :

(i) पौधों में पत्तियों के गिरने के समय को लेकर कोई आंतरिक ताल या घड़ी (समय) हो सकती है।

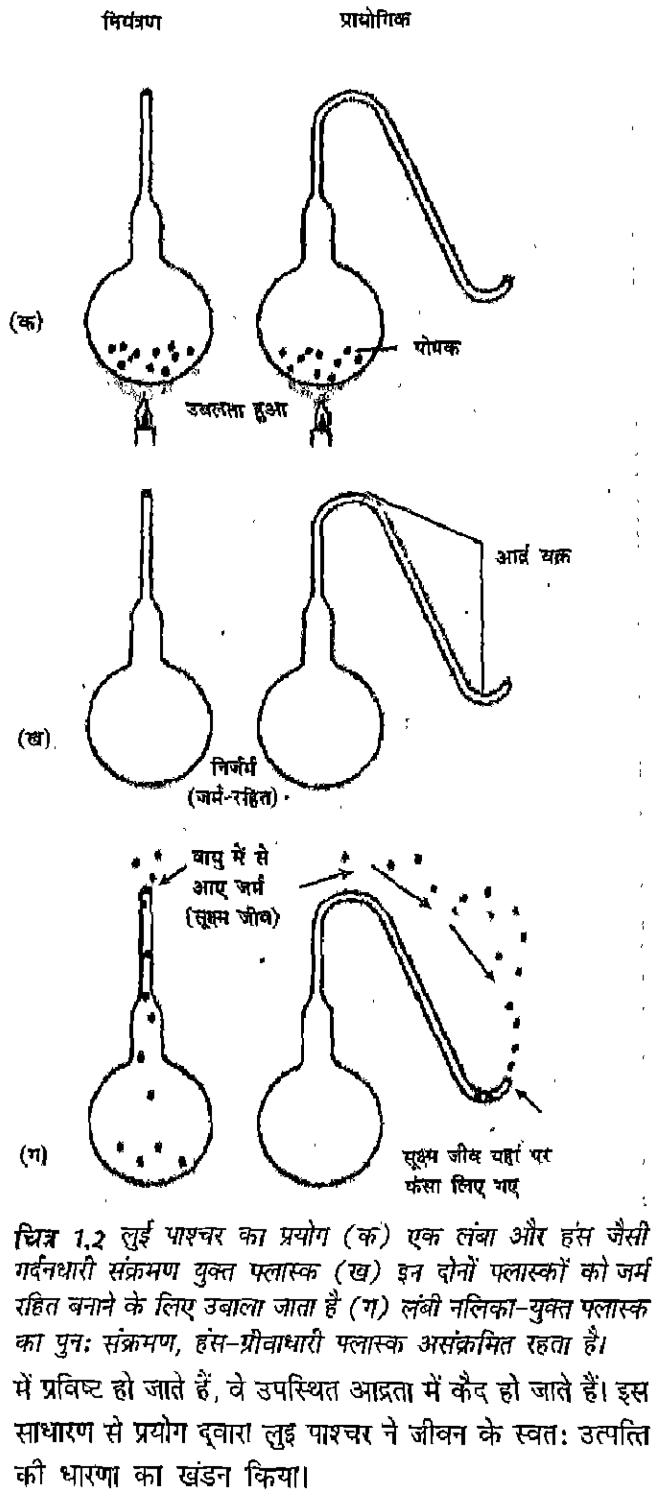
(ii) प्रत्येक पत्ती अलग से दिन की लंबाई मापने की क्षमता रखती है और स्वतंत्र रूप से उसके प्रति संवेदनशील होती है और सर्दी में जब दिन छोटे होते हैं तब वे गिर जाती हैं।

(iii) पत्तियां अधिक तेज हवा के कारण भी गिर सकती हैं।

एक या इससे अधिक परिकल्पनाओं को विलोपित करने के लिए वैज्ञानिक पत्तियों की प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता को देखने के लिए कुछ पत्तियों को ढक सकता है। जिससे पत्तियां प्रकाश के संपर्क में न आ सकें। यदि ढकी हुई पत्तियां नहीं गिरती हैं तथा बिना ढकी पत्तियां गिर जाती हैं, तो दूसरी परिकल्पना सच हो जाती है। ढकी पत्तियां अभी भी गिरती हैं तो दूसरी परिकल्पना गलत हो जाती है अतः हटा दी जाती है। यदि पत्तियों का गिरना आंधी तूफान के साथ नहीं लिपिबद्ध (लेखा) किया जाता है तो तीसरी परिकल्पना भी हटा दी जाएगी। अंततः पहली परिकल्पना ही संभावित कारण हो सकता है जो पेड़ की पत्तियों के साथ-साथ गिरने का कारण भी बताता है। यह उदाहरण वैज्ञानिक को अधिकांश परिकल्पनाओं को अमान्य करने में सहायता करता है। यह एक सफल परीक्षण होता है।

एक मानक प्रकार का प्रयोग एक **नियंत्रित प्रयोग** कहलाता है। साधारणतया एक वैज्ञानिक दो प्रयोगों को दो समानांतर समूहों में करता है। लुइ पाश्चर के (1862) किए गए जीवन की स्वतः उत्पाद के प्रयोग पर दृष्टि डालें तो उसने कुछ सीधे और लंबी गर्दन वाले एक जैसे फ्लास्क लेकर और उनके समान पोषक विलयन रखे (चित्र 1.2) । इसके पश्चात् उसने एक समूह के फ्लास्कों की गर्दनों को हंस की गर्दन की तरह मोड़ दिया। इन फ्लास्कों में स्थित पोषक को उबाला जिससे कि उसमें उपस्थित, सभी सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाएं। तत्पश्चात कई सप्ताह तक जीवाणु रहित पोषक विलयन को स्थिर होने दिया। इस प्रयोग में सीधे और लंबी गर्दन के समूह वाले फ्लास्क नियंत्रित प्रयोग की तरह काम आए।

कुछ काल पश्चात लुइ पाश्चर ने पाया कि सीधी गर्दन वाले फ्लास्क में जीवाणु और कवक पाए गए जबकि हंस जैसी गर्दन वाले फ्लास्क में वह अनुपस्थित थे । सीधी गर्दन वाले फ्लास्क में घुसने वाले सूक्ष्म जीवों ने पोषक विलयन को प्रदूषित कर दिया। हंसनुमा गर्दन वाले फ्लास्क की गर्दन ने फ़िल्टर की तरह काम किया। सूक्ष्मजीव युक्त धूलकण जो फ्लास्क की गर्दन की गोलाई



चित्र 1.2 *लुई पाश्चर का प्रयोग (क) एक लंबा और हंस जैसी गर्दनधारी संक्रमण युक्त फ्लास्क (ख) इन दोनों फ्लास्कों को जर्म रहित बनाने के लिए उबाला जाता है (ग) लंबी नलिका-युक्त फ्लास्क का पुनः संक्रमण, हंस-ग्रीवाधारी फ्लास्क असंक्रमित रहता है।*

में प्रविष्ट हो जाते हैं, वे उपस्थित आद्रता में कैद हो जाते हैं। इस साधारण से प्रयोग द्वारा लुइ पाश्चर ने जीवन के स्वतः उत्पत्ति की धारणा का खंडन किया।

इस प्रयोग के आधार पर आप कई अन्य प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ किसी विशिष्ट पोषक के पादप वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन के लिए आप पांच बर्तन लेंगे जिसमें समान प्रकार के पौधे हों। चार बर्तनों में अलग-अलग पौष्टिक भोजन डालें और पांचवें में कोई भी पोषक पदार्थ न डालें। यह पांचवां बर्तन इस प्रयोग के लिए नियंत्रित प्रयोग का कार्य करेगा। सभी पांचों पौधों को सूर्य के प्रकाश में रखें और समान मात्रा में पानी दें। अब इन सभी गमलों का अध्ययन करें तथा आंकड़ों को सूचीबद्ध करें एवं समुचित परिकल्पना का गठन करें।

इस प्रकार विज्ञान, प्रयोगों और निरीक्षणों द्वारा उपार्जित ज्ञान का भंडार है जिसमें अध्ययन किए जा रहे विषयों से संबंधित सिद्धांतों की दिशा निर्धारित की जाती है। जिससे जो पढ़ा गया है उससे सिद्धांत बनाए जाते हैं। यह प्राकृतिक जगत के अध्ययन के बारे में एक क्रमबद्ध और छोटा उद्देश्य है। यह भी सृजनशील, कल्पनाशील और सामाजिक मस्तिष्क की क्रिया है। इसे सही प्रकार से अपनाने के लिए विज्ञान को तटस्थ एवं दुरावरहित होना चाहिए।

परिवर्धित सिद्धांत

यदि किसी परिकल्पना या अनुमान के परीक्षण के लिए किए गए प्रयोग बार-बार करने पर भी समान परिणाम देते हैं तो वह परिकल्पना वैध हो जाती है अथवा मान्यता प्राप्त कर लेती है। एक परिकल्पना को यदि लंबे समय तक बार-बार परीक्षण करके जांचा जाए और वह विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में मुख्य भूमिका रखती है तो वह एक सिद्धांत का रूप ले लेती है। सिद्धांत बड़े-बड़े लिखे गए वक्तव्यों का बना होता है जो वैज्ञानिक ज्ञान के बड़े क्षेत्र से संबंध रखता है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक प्रयोग से एक सिद्धांत बन सके।

एक सिद्धांत बनने में बड़ा लंबा समय लगता है। राबर्ट हुक ने **कोशिका** की उपस्थिति 1665 में ही बता दी थी। जबकि वास्तव में जीवित कोशिका कुछ सालों बाद (1670) एन्टोनी वान ल्यूवेनहॉक ने खोजी थी। वास्तव में हुक की कोशिका अवधारणा या संकल्पना को 1838 में मान्यता मिली थी। जब एक वनस्पतिविज्ञानी मैथ्यूज श्लाइडेन ने पौधों के ऊतकों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया और **कोशिका सिद्धांत** (Cell Theory) के बारे में प्रथम वक्तव्य जारी किया। इसके एक वर्ष पश्चात सन् 1839 में थियोडर श्वान ने जंतु ऊतकों का वर्णन किया। कोशिका सिद्धांत का एक मुख्य विस्तार-सभी जीवित कोशिकाएं पहले से उपस्थित कोशिकाओं से बनती है, यह बीस साल बाद 1862 में अस्तित्व में आया जब लुई पाश्चर ने सफलतापूर्वक स्वतः उत्पत्ति की अवधारणा का खंडन किया। आज कोशिका सिद्धांत इतना सुदृढ़ है कि इसे निरस्त करने की संभावना लगभग शून्य है। उपरोक्त परिचर्चा से यह स्पष्ट है कि वह खोजों के लिए आधार या नींव का कार्य करता है। इससे अभिप्राय है कि प्रत्येक वैज्ञानिक निष्कर्ष या खोज को प्रकाशित करना चाहिए। प्रकाशन पूरे ज्ञान को पूरे संसार में फैलने में सहायता करता है साथ ही और आगे की खोजों में इसकी सहायता मिलती है जिससे ज्ञान के कोष में वृद्धि होती है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

साधारणतया वैज्ञानिक खोजें मूलभूत अथवा अनुप्रयुक्त होती हैं। विज्ञान की मुख्य सोच पहले से उपलब्ध ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करना है। अतः कुछ वैज्ञानिक नए पौधों और जीव-जंतुओं को खोजने में व उनकी तुलनात्मक अकारिकी या शारीरिकी के अध्ययन में लगे होते हैं। अनुप्रयुक्त शोध में वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग मानव कल्याण के लिए होता है। इसमें नई दवाओं की खोज, आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उन्नत पादप एवं जंतुओं की प्रजातियों का उत्पादन प्रमुख है। जैव प्रौद्योगिकी की मनुष्य के विभिन्न रोगों के निदान तथा गरीबी एवं खाद्य समस्या के निराकरण में इसकी उपयोगिता होती है।

नई तकनीकी के अन्वेषण से हमारी निरीक्षण करने और मापने की क्षमता बढ़ गई है। तकनीकी, वैज्ञानिकों को उन प्रश्नों, के हल ढूंढने में मदद करती है जो पूर्व में समझ से परे थे। उदाहरण के लिए भौतिकी का विद्युत चुम्बकीय सिद्धांत का ज्ञान, इलेक्ट्रॉन, सूक्ष्मदर्शी निर्माण में उपयोगी हुआ। इस खोज ने कोशिका की रचना (रूप) के बारे में वर्तमान ज्ञान के लिए नए रास्ते एवं उससे संबंधित भविष्य के ज्ञान की संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। इसी प्रकार 1953 में वाटसन और क्रिक द्वारा खोजे गए डी.एन.ए. की आणविक संरचना की खोज से ही जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बाह्य जीव का सूक्ष्म जीवियों में प्रवेश कराना संभव हो सका।

इस प्रकार विज्ञान की वर्तमान खोज का उपयोग नई प्रौद्योगिकियों के आविष्कार में किया जा सकता है। जिससे वैज्ञानिक जानकारी में विकास एवं विस्तार होता है। दूसरे शब्दों में मूलभूत शोध द्वारा इकट्ठी की गई सूचनाएं वैज्ञानिक जानकारी के कोष को और अधिक सम्पन्न करती हैं और अनुप्रयुक्त शोध के क्षेत्र को विस्तृत करती हैं। अनुप्रयुक्त शोध के द्वारा भी मूलभूत शोध के क्षेत्र को विस्तृत करने में मदद करते हैं।

1.3 प्राचीन भारत में जीव विज्ञान

भारतीय उपमहाद्वीप में मानवीय गतिविधियों का इतिहास पूर्व मध्य और अंतिम प्रमुख परिवर्तन आज से पाषाण युग (400,000. 200,000 बी.सी.) तक प्राप्त हैं। वास्तव में मनुष्य जैव विकास में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन 12,000 से 10,000 वर्ष पूर्व हुआ जब मनुष्य ने कृषि करना सीखा और जंगली पादपों व जंतुओं को पालतू बनाया, जिससे कृषि एवं पशु पालन का विकास हुआ। पादपों में गेहूं, जौ, दालें और मटर प्रमुख थे। भारत में धान की खेती मेहरगढ़ एवं मेहागढ़ में लगभग 6,000 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई। जंगली धान की उत्पत्ति बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती स्थान (आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और बंगाल) के आसपास हुई। प्राचीन भारतीयों ने कम से कम 100,000 चावल की किस्में विकसित कीं। इनमें से कई किस्में पौष्टिक, सुगंधित, नमक प्रतिरोधी और बाढ़ प्रतिरोधी थीं। इन्होंने कई जंतुओं जैसे बकरी, भेड़, सुअर, दुधारू पशुओं एवं कुत्तों इत्यादि को पाला एवं उनकी कई नस्लें विकसित कीं। प्राचीन काल के व्यक्तियों की इन गतिविधियों से उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

वैदिक काल के लोगों (2500 बी.सी. से 650 बी.सी.) की पादपों और जंतुओं पर निरीक्षण करने और उन्हें लिपिबद्ध करने की एक उत्कृष्ट परंपरा थी। हमारे वैदिक साहित्य में लगभग 740 पौधे और 250 जंतु लिपिबद्ध हैं। वर्गीकरण का सर्वप्रथम प्रयास *चंदयोग्या उपनिषद्* में किया गया है, जिसमें जंतुओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। *जीवज* (स्तनधारी), *अण्डज* (पक्षी, सरीसृप, कीट और कृमि) एवं *उद्भिज* (सूक्ष्म जीव)। उत्तर वैदिक भारतीय साहित्य जैसे *सुश्रुत संहिता* (600 बी.सी.) में सभी पदार्थों को *स्थावर* (गतिहीन जैसे पादप), *जंगम* (गतिशील जैसे जंतु) में विभाजित किया। *पौधों* का भी वर्गीकरण वनस्पति (*फल देने वाले पुष्प रहित पादप*) *वृक्ष* (फल देने वाले पुष्पी पादप) *विरूधा* (बेलें और झाड़ियां) एवं *औषधि* (वे पौधे जो फलों के पकने पर मृत हो जाते हैं) के रूप में किया गया। सुश्रुत ने पौधों के भागों का विस्तृत विवरण दिया था, जैसे अंकुर, मूल (जड़), कंद (बल्ब या तना), पत्र (पत्ती), पुष्प, फल आदि। *सुश्रुत संहिता* जंतुओं का वर्गीकरण भी बताती है – जैसे *कुलकारा* (वो शाकाहारी जीव जो नदी किनारे नियमित रूप से विचरण करते हैं, जैसे हाथी, भैंस आदि), *मत्स्य* (मछली), *जंघला* (जंगली शाकाहारी चौपाए जैसे हरिण), *गुहासया* (मांसभक्षी चौपाए जैसे बाघ, शेर आदि)। *सुश्रुत संहिता* में सांपों (विषैला एवं विषहीन दोनों) और जोंकों पर भी खोजें (निरीक्षण) लिपिबद्ध हैं।

प्राचीन भारत में **चिकित्सा विज्ञान** में आश्चर्यजनक प्रगति हुई थी। भारतीय चिकित्सीय परंपरा वैदिक काल में भी प्रचलित थी जब दो अश्विनी कुमार औषधि विज्ञान को प्रयोग में लेते थे। उस काल में धन्वन्तरी को औषधि विज्ञान के भगवान का स्थान प्राप्त था। वस्तुतः सुश्रुत सर्वप्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने मानव की शारीरिक संरचना का अध्ययन किया था। उन्होंने शारीरिक सरंचना का विस्तृत वर्णन शवों पर किए गए अध्ययन के आधार पर किया है। *सुश्रुत संहिता* शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्राचीन शोध ग्रंथ माना जाता है। स्वयं सुश्रुत ने नासा शल्य चिकित्सा द्वारा मनुष्य पर प्लास्टिक सर्जरी का प्रयोग किया था। उन्होंने शल्य चिकित्सा के उपरांत के मामलों में रक्त का थक्का जमने से रोकने के लिए विषहीन जोंकों का इस्तेमाल किया था। अब हम जानते हैं कि जोंकें खून चूसते समय अपनी लार के साथ खून में **हिपेरिन** स्रावित करती हैं। सुश्रुत **आंखों की शल्य चिकित्सा** (मोतियाबिंद) में भी दक्ष थे। इसी वजह से उन्हें

'शल्य चिकित्सा का जनक' कहा जाता है। अन्य प्राचीन चिकित्सकों में अत्रेय (600 बी.सी.) तथा चरक (100 बी.सी.) का नाम प्रमुख हैं। *चरक संहिता* (100 बी.सी.) तथा वास्तव में प्राचीन शोध प्रबंध का एक संशोधित विश्वकोशीय संकलन है जो पूर्वकाल में एक चिकित्सक अग्निवेश द्वारा अत्रेय के मार्गदर्शन में लिखा गया था। चरक, पाचन, उपापचय और प्रतिरक्षा के विषय में बताने वाले सर्वप्रथम चिकित्सक थे। उनके अनुसार शरीर के तीन अवयव (दोष) पित्त, वात और कफ होती हैं, जब इन तीनों अवयवों में आपसी तालमेल बिगड़ जाता है तो रोग या विकार हो जाता है। चरक ने इस तालमेल को बनाए रखने के लिए विभिन्न चिकित्सकीय औषधियां बताईं। चरक को आनुवंशिकी का भी आधारभूत ज्ञान था। उन्हें बच्चे के लिंग निर्धारण के घटक का भी ज्ञान था। भारत में चिकित्सा की देशज विधि को **आयुर्वेद** कहते हैं (*आयु* अर्थात जीवन, *वेद* अर्थात ज्ञान), जो कि जीवन अथवा आयु का विज्ञान है। इसका विकास मुख्य रूपों से *चरक संहिता* के सिद्धांत पर आधारित विचार से हुआ है। प्राचीन भारतीयों ने मोटे तौर पर जीवन की उत्पत्ति और उसके विकास को समझने में भी सफलता पाई। चरक का विचार था कि व्यक्ति सार्वभौमिक आत्मा का ही एक प्रतिरूप है। मानव एवं दृष्टिगोचर संसार दोनों छः तत्त्वों के बने हुए हैं–पृथ्वी, अग्नि, तेज, वायु और आकाश तथा छठा तत्त्व आत्मा या स्वयं व्यक्ति में ही होता है, यह ब्रह्मांड में ब्रह्म के समकक्ष है। आयुर्वेद में जीवन की उत्पत्ति के विषय में भी उल्लेख है। तैत्रिया उपनिषद (7–8 बी.सी.) में जीवन के विकास से संबंधित महत्त्वपूर्ण निरीक्षणों का विवरण दिया गया है। इसमें जीवन का विकास अंतरिक्ष से जोड़ा गया है। संस्कृत में मनु के साहित्य *मनुसंहिता* या *मनु स्मृति* (200 ए.डी.) में विकास को प्रस्तावित किया गया।

1.4 अरस्तू : एक बहुत विद्वान व्यक्ति

यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू (384–322 बी.सी.), उस प्राचीन काल में हुए जब विज्ञान का विकास बहुत ही सीमित था। वे बहुत ही सावधान और सतर्क वैज्ञानिक थे। उन्होंने कई वर्षों तक प्राकृतिक विज्ञान पढ़ा एवं जीव-जंतु इकट्ठे किए। अरस्तू का निरीक्षण पर विश्वास था और उन्होंने जीव विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके लगभग 90 प्रतिशत लेख विज्ञान विषयों पर आधारित है जिसमें मुख्यतः जीव विज्ञान ही है। अरस्तू के मुख्य योगदान नीचे दिए गए हैं :

(i) जंतु जातियों को वर्गीकृत और क्रमबद्ध किया। वर्गीकरण करने की उनकी विधि तर्क-संगत थी और कुछ मामलों में आधुनिक भी।

(ii) **सजीवों की महान शृंखला** (Great Chain of Being) अथवा ***स्केला नेचुरी*** की धारणा को भी प्रतिपादित किया जो प्रकृति में होने वाले प्रगतिशील परिवर्तन की शृंखला है। यह एक प्रकार से विकास के समकक्ष है।

(iii) पांच सौ से अधिक प्रकार के जंतुओं पर विचार किया और उनमें से लगभग पचास के आसपास का विच्छेदन भी किया।

(iv) चूजों के परिवर्धित होते हुए (परिवर्धनशील) भ्रूण का अध्ययन किया और यह भी बताया कि शार्क जीवित बच्चे को जन्म देती है। लेकिन स्तनधारियों की तरह जरायु नहीं बनाती है।

(v) डाल्फिनों में जरायु का निरीक्षण किया जो कि विकासशील भ्रूण को पोषित करती है। इस समानता के आधार पर ही डाल्फिनों को स्तनधारियों के साथ वर्गीकृत किया।

1.5 समकालीन जीव विज्ञान का आविर्भाव

अरस्तू असाधारण प्रतिभा के धनी थे और सोच में अपने काल से बहुत आगे थे। अरस्तू के इतने बड़े योगदान के बावजूद जीव विज्ञान में सोलहवीं सदी से पूर्व तक जीव विज्ञान एक वैज्ञानिक विधा के रूप में विकसित नहीं हुआ था। फिर भी कई वैज्ञानिकों के योगदान ने समकालीन जीव विज्ञान के आविर्भाव के लिए मजबूत नींव का कार्य प्रस्तुत किया है।

जीव विज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम लिपिबद्ध वैज्ञानिक प्रस्ताव एक बेल्जियन वैज्ञानिक आन्द्र वैसेलियस (1540–1564) का है। उसके आलेख *मानव शरीर के आकार* (De Humani Corporis Fabrica) में यह दर्शाया गया है कि मानव शरीर कई जटिल उपनिकायों का बना हुआ है। जिसमें प्रत्येक का अपना विशेष कार्य होता है। आन्द्र वैसेलियस को 'शारीरिकी के जनक' के रूप में सम्मिलित किया गया है। विलियम हार्वे (1578–1657), जो एक अंग्रेज वैज्ञानिक थे, ने सर्वप्रथम दर्शाया कि हृदय रक्त को पंप करता है जो शरीर में सब जगह संवाहित होता है। उनके प्रबंध का नाम *हृदय एवं रक्त के गति का शारीरिकीय अभ्यास* (Anatomical Exercise on the Motion of the Heart and Blood) रखा गया। उन्होंने चूजों के जनन, भ्रूणीय परिवर्धन पर भी अपना योगदान दिया था।

एक अन्य पुरोगामी के रूप में एक अंग्रेज वैज्ञानिक राबर्ट हुक (1635–1703) ने जिन्होंने सर्वप्रथम 1665 ई. में सेलुली अर्थात छोटे कक्ष शब्द का प्रयोग किया था जो कोशिका के समानार्थी हैं। उनकी पुस्तक का नाम *माइक्रोग्राफिया* था। वस्तुतः हुक ने स्वनिर्मित साधारण सूक्ष्मदर्शी में कार्क की एक पतली पर्त देखी थी। जिसमें उन्होंने कुछ मधुमक्खी के छत्ते के समान खाली छोटे कोष्टक पहचाने। कुछ ही वर्ष पश्चात 1670 के मध्य में वास्तविक जीवित कोशिका का अध्ययन स्वनिर्मित साधारण सूक्ष्मदर्शी की मदद से एन्टोन वान ल्यूवेनहॉक (1632–1723) ने किया जो

कि डच कपड़ा व्यवसायी से वैज्ञानिक बने थे। उन्हें साधारण सूक्ष्मदर्शी का आविष्कारक माना गया है। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 1683 में जीवाणु को चित्रित किया । इसके अलावा उन्होंने विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं जैसे यूग्लीना, सीलियाधारी, स्पर्म, अंडे और अकशेरूकियों की रक्त कोशिकाओं के बारे में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने कीटों के संयुक्त नेत्रों एवं जंतुओं की अन्य संरचनाओं के बारे में भी जानकारी दी।

अरस्तू के द्वारा वर्गीकरण पर किया गया कार्य 1753 ई. तक निर्विरोध रहा जब कैरोलस लिनियस (1707-1778) ने, जो कि स्वीडन के एक प्राकृतिक वैज्ञानिक थे, अपनी पुस्तक *स्पीशीज प्लांटेरम* प्रकाशित की। इस पुस्तक में पौधों की 6, 000 जातियों का वर्णन है। उन्होंने 1758 में एक और पुस्तक *सिस्टैमा नैचुरी* प्रकाशित की। इस पुस्तक में 4, 000 से अधिक जंतुओं की जातियों का वर्णन है। लिनियस ने पौधों और जंतुओं के नामकरण हेतु **द्विपद नाम पद्धति** (Binomial Nomenclature) को प्रस्तावित किया। इस विधि के अनुसार किसी भी जीव का नाम दो भागों का बना होता है। पहला भाग जाति के वंश का नाम है और दूसरा भाग उस जाति की पहचान बताता है जिसके अंतर्गत वह जीव आता है। उदाहरणस्वरूप मनुष्य का नाम *होमो सेपियन्स* और मटर के पौधे का नाम *पाइसम सेटाइवम* है।

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक जीव वैज्ञानिकों को जातियों की परिवर्तनशील प्रकृति की जानकारी नहीं थी। अरस्तू के 'सजीवों की महान शृंखला' अथवा *स्कैला नैचुरी* में जीवों की विविधता के कारणों की विस्तृत व्याख्या है। अपने रूप में एक चूहा, चूहे की तरह और मेंढक, मेंढक की तरह होते हैं और सभी जीव अपरिवर्तनशील होते हैं क्योंकि वे सभी ईश्वरीय विवेक से उत्पन्न हुए हैं। एक फ्रांसिसी जीवाश्म विज्ञानी जार्ज लोपाल्ड क्यूवियर (1769-1832) ने सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण प्राचीन जैव विकास की एकमात्र धारणा, सजीवों की महान शृंखला अथवा स्केला नेचुरी को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने ही सर्वप्रथम चिड़िया जैसे सरीसृप के जीवाश्म की खोज की और **जीवाश्म विज्ञान** (Palaeontology) को जीव विज्ञान की एक शाखा के रूप में स्थापना की नींव रखी। क्यूवियर ने **तुलनात्मक शारीरिकी** (Comparative anatomy) में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

एक फ्रांसिसी प्राकृतिक विज्ञानी ज्यां बैप्टिस्ट लेमार्क (1744-1829) ने सर्वप्रथम जातियों की स्थिरता के सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया। उनकी पुस्तक *फिलॉसॉफी जूलोजीक* 1809 में प्रकाशित हुई तब तक वे जैव विकास के समर्थन में कोई युक्तियुक्त व्याख्या नहीं दे पाए थे । यद्यपि ल्यूवेन हॉक ने 1670 के मध्य में जीवित कोशिका का निरीक्षण किया था । लेकिन कोशिका सिद्धांत नामक प्रथम वक्तव्य बहुत बाद में 1838 में मैथ्यूज श्लाइडेन (1804-1881), जो एक जर्मन वनस्पति शास्त्री थे, ने दिया था। उन्होंने यह सिद्धांत पादप ऊतकों पर आधारित अपने अध्ययनों के आधार पर दिया था। थियोडोर श्वान (1810-1882), जो एक जर्मन प्राणीविज्ञानी थे, ने 1839 में जंतु ऊतकों पर आधारित अपने अध्ययन के अनुसार इस मत को सशक्त किया था। जीव विज्ञान के क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी में चार्ल्स राबर्ट डारविन (1809-1882), जो एक अंग्रेज प्राकृतिक विज्ञानी थे, को पुरोगामी वैज्ञानिक का स्थान प्राप्त है। उनका चिरस्थाई आलेख *ऑन द ऑरिजन ऑफ स्पीशीज बाई मीन्स ऑफ नेचुरल सलेक्शन* : द *प्रिजर्वेशन ऑफ फेवर्ड रेसेज इन द स्ट्रगल फॉर लाइफ*, 1859 में प्रकाशित हुआ। डारविन के निष्कर्ष रूढ़िवादी सिद्धांतों से सर्वथा भिन्न थे। उन्होंने उद्विकासीय परिवर्तनों का सिद्धांत दिया और प्राकृतिक चयन को उद्विकास के रूप में स्थापित किया जिसके फलस्वरूप उद्विकास द्वारा जातियों की उत्पत्ति होती है।

1862 ई. में लुई पाश्चर (1822-1895), जो एक फ्रांसिसी वैज्ञानिक थे, उन्होंने जीवन की स्वत: उत्पत्ति की प्रचलित धारणा का विरोध किया । उन्होंने यह सिद्ध किया कि किण्वण, यीस्ट और जीवाणुओं द्वारा होता है एवं बीमारियों के **रोगाणु सिद्धांत** (Germ Theory) को स्थापित किया। उन्होंने चौपायों में पाए जानेवाले जीवाणु *बेसीलस एन्थ्रेकिस* जनित रोग *ऐन्थ्रेक्स* के लिए टीके की खोज की। उनकी रोगाणुओं को मारने की विधि जीवाणुनाशन पाश्चरीकरण कहलाती है। जिससे बोतलबंद और थैलीबंद दूध को रोगाणुरहित किया जाता है।

सन् 1862 में ग्रेगर जोहन मेंडल (1822-1884), जो एक आस्ट्रियन साधु थे, ने मटर के पौधे पर सावधानीपूर्वक आठ वर्षों तक प्रयोग करने के बाद 1865 में वंशानुगति के सिद्धांत की खोज की, जो 1866 में एक अप्रसिद्ध पत्रिका में प्रकाशित हुआ। यद्यपि मेंडल को 'आनुवंशिकी का जनक' कहा जाता है । तथापि उनके द्वारा प्रतिपादित इस अति महत्त्वपूर्ण सिद्धांत से वैज्ञानिक जगत 1900 तक अज्ञात रह गया था। चूंकि डारविन भी मेंडल के आनुवांशिकी सिद्धांतों से अनभिज्ञ थे इसलिए वे विविधतासंबंधी अपने प्राकृतिक अवलोकनों की संतोषजनक व्याख्या नहीं दे पाए। अपनी पुस्तक *ऑन द वेरियेशन ऑफ प्लान्टस एन्ड एनीमल्स अन्डर डोमेस्टिकेशन* में आनुवंशिकी की व्याख्या के लिए **पेंजीनवाद** (Theory of Pangensis) प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत के अनुसार शरीर का प्रत्येक अंग अति सूक्ष्म आनुवंशिक कण उत्पन्न करते हैं जिसे **पेंजीन** या **जेम्यूल** कहते हैं। डारविन ने सुझाव दिया कि जेम्यूल रक्त के द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग में एकत्रित किए जाकर युग्मकों में जमा हो जाते हैं। यद्यपि लेमार्क के उपार्जित लक्षणों के वंशागति का सिद्धांत

और डारविन के पेंजीनवाद को आगस्ट वाइजमान (1834-1914), जो एक जर्मन जीव वैज्ञानिक थे, के **जर्मप्लास्म सिद्धांत** (Theory of Germplasm) की खोज के उपरान्त अस्वीकार कर दिया गया। वाइजमान के चूहों पर किए गए प्रयोगों ने यह स्थापित किया कि जनन कोशिका जो कायिक कोशिका से प्रारंभिक भ्रूणीय विकास के समय ही अलग हो जाती है एवं जनन द्रव में होने वाले परिवर्तन ही आने वाली पीढ़ियों के लक्षणों को प्रभावित कर सकते हैं।

डारविन, पाश्चर, मेंडल व अन्य वैज्ञानिकों के अलावा बीसवीं शताब्दी में बहुत-सी क्रांतिकारी खोजों से समकालीन जीव विज्ञान का उदय हुआ। इसके उत्तरोत्तर विकास के साथ जीव विज्ञान एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में उभर कर सामने आया। जीव विज्ञान की सभी विज्ञानों में सबसे अधिक मांग है। क्योंकि जीवन जटिल और कांतिमय हैं ऐसा इसलिए भी संभव हुआ क्योंकि यह अपने अंदर यांत्रिकी, स्थलीय भौतिकी, रासायनिकी व अभियांत्रिकी के विभिन्न सिद्धांतों को समाहित किए हुए है।

बीसवीं सदी में वैज्ञानिकों के प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण विचार नीचे सारणी 1.1 में दिए गए हैं :

1.6 जीव विज्ञानी क्या अध्ययन करते हैं ?

एक जीव विज्ञानी की विषय-वस्तु बहुआयामी होती है। मूलरूप से जीव विज्ञानी सजीवों के समन्वित क्रियाओं के इर्द-गिर्द अपनी

सारणी 1.1 जीव विज्ञान की कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां

वैज्ञानिक का नाम	खोज का वर्ष	मुख्य खोज
ह्यूगो डी व्रीज (1848-1935), एक डच आनुवंशिकी विज्ञानी, एरिक वान सेरेमेक सेसनेत्र (1871-1962), तक आस्ट्रियन आनुवंशिकी विज्ञानी एवं कार्लकॉरेन्स (1864-1933), एक जर्मन आनुवंशिकी विज्ञानी	1900	मेंडल के योगदान की खोज और पुनः खोज, जिससे आनुवंशिकी विज्ञान की शुरूआत हुई।
विलियम बेटसन (1861-1926), एक अंग्रेज जीव विज्ञानी	1909	ऐसे प्रयोग किए जिससे इस विचार को बल मिला कि प्रत्येक गुण एक अलग जीन द्वारा संचालित होता है। सहलंग्नता की खोज की और जेनेटिक्स शब्द को प्रस्तावित किया।
वाल्टर सूटन (1877-1916), एक अमेरिकन आनुवंशिक वैज्ञानिक	1904	गुणसूत्र एवं वंशागति के गुणसूत्रीय आधार की खोज की।
थॉमस हंट मॉर्गन (1866-1945), एक अमेरिकन आनुवंशिक वैज्ञानिक	1910-1930	मॉर्गन और उनके साथियों ने सहलग्नता और जीन विनिमय की क्रिया को वर्णित किया और पहला जीन मानचित्र बनाकर गुण सूत्र पर जीनों की रैखिक व्यवस्था का विवरण दिया।
अलेक्जेंडर फ्लेमिंग (1881-1955), एक स्काटिश जीवाणुशास्त्री	1928	पेनिसीलियम की खोज जो कि एक नीले मोल्ड पेनिसीलियम नोटेटम का विषैला उत्पाद है जिसने जीवाणु स्टेफायलोकोकस का सवर्धन संदूषित कर दिया था। पेनिसिलीन एक प्रथम दवा है जिसका प्रथम प्रयोग द्वितीय विश्व युद्ध में सैनिकों के उपचार में किया गया।
ऑसवाल्ड थियोडोर एवेरी (1877-1955), अमेरिकी जीवाणुशास्त्री	1944	जीन डिऑक्सीरिबोन्यूक्लीक अम्ल (डीएनए) के बने होते हैं, की खोज की इसके पश्चात डीएनए आनुवंशिकी विज्ञानियों का केन्द्र बिंदु बना।
जेम्स डी वाटसन (1928-), एक अमेरीकी जैव भौतिकशास्त्री और फ्रांसिस एच.सी. क्रिक (1916-), एक ब्रिटिश भौतिकशास्त्री	1953	डीएनए के द्विकुण्डलीय संरचना की खोज। इस खोज ने आणविक जीव विज्ञान के एक नए युग की शुरुआत की।

हरगोविन्द खुराना (1922-), रायपुर (पश्चिम पंजाब) में जन्मे, जो अब पाकिस्तान में हैं, रॉबर्ट डब्ल्यू हॉले, (1922-1993) और मार्शल डब्ल्यू नीरेनबर्ग (1927-) दोनों अमेरिकी	1968	कार्यिकी और औषधि में नोबेल पुरस्कार प्राप्त जेनेटिक कोड के बारे में बताने और प्रोटीन बनने की क्रिया में इसका योगदान होने की क्रिया में महत्वपूर्ण योगदान। प्रयोगशाला में न्यूक्लियोटाइड की डोरी बनाने वाले भी खुराना प्रथम व्यक्ति थे जो ऑलिगोन्यूक्लियोटाइड खण्ड कहलाती है। सत्तर के दशक के शुरुआत में अपनी प्रयोगशाला में उन्होंने मनुष्य निर्मित जीन का निर्माण किया। वे कृत्रिम रूप से बनाए गए जीनों के टुकड़े जीव विज्ञान की प्रयोगशालाओं और नए पौधे और जंतुओं के क्लोन बनाने की अभियांत्रिकी में काम आती है। आनुवांशिक कूट के ज्ञान के उपयोग से जीव विज्ञान के कई पक्षों को आणविक स्तर पर गहराई से समझने में मदद मिली।
नारमन अरनेस्ट बोरलॉग (1914-) अमेरिकी कृषिशास्त्री	1970	अपने 'हरित योजना' के लिए नोबेल पुरस्कार जीता जिसमें गेंहू के उन्नत बीजों को काम में लिया गया, नए तरह के अधिक पैदावार के चावल व खाद और पानी का अधिक इस्तेमाल होता है। आधुनिक पौधे और जंतुओं में संकरण कराने वाले अब जीवन की नई प्रकार की मिले जुले गुणों के आधार पर नई प्रजातियों को जीनों में फेरबदल करके उत्पन्न कर सकते हैं।
स्टेनली कोहेन (1922-) और हर्बट बोयर (1936-) दोनों अमेरिकी जैव रासायनिक शास्त्री	1973	पुनसंयोजन डीएनए की तकनीकी खोज और आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के जन्मदाता। इसमें विधि में शोधों में आनुवंशिकी यांत्रिकी रूप से बैक्टीरिया बनाकर इन्सुलिन उत्पादन करना जो डायबिटीज ठीक करने वाला हारमोन है। खराब जीनों को सुधार कर या सही काम करने वाले जीन सेल में डालकर अब आनुवंशिक बीमारियों का भी इलाज किया जा सकता हैं। वैज्ञानिक अब आनुवंशिक रूप से परिवर्तित फसल उत्पादन में सक्षम हैं।
इयान विलमट (1944-) स्काटलैंड का भ्रूण वैज्ञानिक	1996	जमे हुए भ्रूण से सर्वप्रथम बछड़े का क्लोन बनाया जिसका नाम फ्रोस्टी दिया। 1996 में विल्मुट और कीप केम्पबेल ने प्रथम जीवित हृष्ट-पुष्ट भेड़ का क्लोन डॉली पूरी तरह से वयस्क स्तनग्रन्थियों की कोशिकाओं से बनाया।
यू. एस. डिपार्टमेंट ऑफ एनर्जी और नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ हेल्थ	2001	इस संस्था ने 1990 में यू.एस. मानव जीनोम प्रोजेक्ट प्रारम्भ किया। यह प्रोजेक्ट 2003 तक पूरा होगा। इसका लक्ष्य मनुष्य के डीएनए में पाई जाने वाली सभी लगभग 30, 000 जीवों को पहचानना और तीन बिलियम रसायनिक बेस के क्रम को जानना जो मनुष्य का डीएनए बनाते हैं। ये सभी सूचनाएं विश्लेषण के लिए एक डाटाबेस के रूप में संकलित की जाएंगी। मानव जीनोम का प्रारुप फरवरी 2001 में प्रकाशित हो चुका है।

रुचि दर्शाते हैं। जीव विज्ञान के अंतर्गत सजीवों के बारे में अध्ययन किया जाता हैं। परंपरागत रूप से जीव विज्ञानी या तो प्राणियों या पादपों के जीवन से संबंधित विषयों का अध्ययन किया करते थे। तदुपरांत, जीव विज्ञान को दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित कर दिया गया - प्राणि विज्ञान के अंतर्गत जंतुओं के जीवन का तथा वनस्पति विज्ञान के अंतर्गत पादपों के जीवन का अध्ययन किया जाता है। सोलहवीं सदी में **सूक्ष्मदर्शी** की खोज के बाद जीव विज्ञान के क्षेत्र में गतिशीलता आई एवं इस विषय की संभावनाएं वृहत् हुई। इससे विज्ञान की शाखा **सूक्ष्म विज्ञान** (Microbiology) का जन्म हुआ।

जीवों के वैज्ञानिक वर्गीकरण में उनके नामकरण व पहचान आते हैं जिन्हें वर्गिकी के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। वर्गीकरण में जीवों को क्रमबद्ध रूप से श्रेणियों में विभाजित कर उन्हें सुसंगत योजना के अनुसार रखा जाता है। सन् 1753 में लीनियस ने जीवों

को उनके आकारीय समानता के अनुसार वर्गीकृत किया व आधुनिक वैज्ञानिक वर्गीकरण की नींव रखी। जैविक वर्गीकरण अथवा **वर्गीकरण** विज्ञान का मूल उद्देश्य पादपों व प्राणियों की विशाल संख्या को व्यवस्थित कर उनका नामकरण किया जाए जिससे कि उन्हें याद रखा जा सके व चर्चा में प्रयुक्त कर सकें। आधुनिक वर्गीकरण में जीवों के बीच विकासीय संबंध के अध्ययन का भी प्रयास किया जाता है जिसमें जीवों के नमूनों का परिरक्षण व जैविक अनुसंधानों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण किया जाता हैं। वर्गीकरण के एक अंतर्राष्ट्रीय कोड व नामकरण की एक प्रक्रिया को स्थापित किया गया है जिसका अनुपालन सभी वर्गीकरण विज्ञानियों के लिए अनिवार्य है व उनके विभिन्न श्रेणियों को नाम देने के विज्ञान के इस भाग को **नामकरण** कहते हैं।

आकारिकी (Morphology) जीव विज्ञान का वह पहलू है जिसमें मनुष्य सहित विभिन्न जंतुओं के शरीर की संरचना का अध्ययन किया जाता है। शरीर शास्त्र में पौधों और जंतुओं की शारीरिक रचना में भिन्नता का अध्ययन किया जाता है। शारीरिक संरचना में समानता और असमानता का अध्ययन ही दोनों पौधों और जंतुओं में वर्गीकरण का आधार है। आंतरिक तंत्रों या अंगों की आकारिकी का अध्ययन ही **आंतरिक शरीर शास्त्र** कहलाता है। एक कार्यिकी विज्ञानी पाता है कि आंतरिक संरचना जीव की आदतों और आवास से संबंधित होती हैं। उदाहरणत: जैसे मनुष्य और चौपाया दोनों में आमाशय होता है। लेकिन चौपाया, शाकाहारी जंतु है, उसमें विशेष आमाशय जो रयूमिनेन्ट अमाशय कहलाता है, पाया जाता है, जो उसके खाने के तरीके और पाचनविधि के अनुसार होता है।

संतान हमेशा अपने माता-पिता से समानता रखती है। आप अपने माता-पिता के समान या कुछ-कुछ दोनों के समान क्यों दिखाई देते हैं ? परिवार के सदस्यों में समान बीमारी क्यों पाई जाती है ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर आनुवंशिकी विज्ञान की मदद के बिना नहीं दिए जा सकते ? वेब्सटर के अंग्रेजी के शब्दकोष में आनुवंशिकी को वंशानुगति का विज्ञान परिभाषित किया गया। इस परिभाषा से यह स्पष्ट नहीं होता है कि आनुवंशिकी वास्तव में किससे संबंधित है और इसने हमारी जीन, डीएनए और वंशानुगति के ज्ञान में कितना योगदान किया है। क्रोमोसोम में उपस्थित डीएनए आनुवंशिकता के निर्धारक हैं। यह माता-पिता से संतान में जाते हैं। जीव विज्ञान की वह शाखा जो आनुवंशिकता की क्रियाविधि और जीवों के आनुवंशिकता के गुणों को बनाए रखने से संबद्ध है **आनुवंशिकी** (Genetics) कहलाती है। आनुवंशिकी का ज्ञान हमें जीवों में बदलाव की उत्पत्ति के बारे में बताता है। यह वास्तव में आनुवंशिकी संबंधित है।

जीव समय के साथ-साथ रंग, आकार और गुणों को बदलते रहते हैं। जीवन विकसित होता है। इसके पृथ्वी पर उदय के बाद जैव विकास द्वारा जीवन बदलता रहा है। जीव विज्ञान एक ऐतिहासिक विज्ञान है जिसमें जीवित तंत्रों का अध्ययन होता है। जो समय के साथ बदलते रहते है। जीव विज्ञान की यह थीम सभी जीवित जंतुओं को एक साथ रखती हैं और **विकास जीव विज्ञान** को आगे लाता है। जीवन का इतिहास पृथ्वी की एक कहानी हैं जिस पर विभिन्न जातियों के जीवित प्राणी निवास करते हैं। जीवों का बीता इतिहास पृथ्वी की परतों में जीवाश्म के रूप में दबा हुआ हैं। दूसरे शब्दों में जीवाश्म, बीते समय में पाए जाने वाले जंतुओं के दबे हुए अवशेष हैं। जीवाश्म चट्टानों की परतों में पाए जाते हैं। ये पृथ्वी पर जीवन के इतिहास को दर्शाते हैं और जैवविकास के लिए अच्छा आधार प्रदर्शित करते हैं। जीवाश्मों का अध्ययन **जीवाश्म विज्ञान** कहलाता हैं।

जीव विज्ञान में दूसरा जंतुओं का आपस में संबंध और उनका अपने चारों ओर के वातावरण से जिसमें वे रह रहे हैं, के संबंध का अध्ययन है। यह शाखा **पारिस्थितिकी** (Ecology) कहलाती है। किसी एक जीव या एक जाति का अध्ययन **स्वपारिस्थितिकी** कहलाता है जबकि जंतुओं के समूह का अध्ययन **संयुक्त पारिस्थितिकी** कहलाता है। समुद्री पौधों और जंतुओं का उनके पारिस्थितिकी संबंधी आधार पर अध्ययन **समुद्री जीव विज्ञान** कहलाता है।

जीव विज्ञानी, जीवित वस्तुओं के आकार का ऊतक स्तर पर अध्ययन करते हैं। जीव विज्ञान की यह शाखा **ऊतिकी** (Histology) कहलाती है। जीव विज्ञानी रोजमर्रा के शारीरिक अध्ययनों के लिए सूक्ष्मविधियां काम में लेते हैं जिनका पहला पद ऊतकों को स्थिर करना हैं। जीवित ऊतकों को उनका मुख्य आकार विशेषकर प्रोटीन बनाए रखने के लिए स्थिर किया जाता है। स्थिरीकरण को प्रोटीन स्थायीकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें ऊतकों के कुछ रसायनों, जो स्थिरकारी कहलाते हैं, से उपयोग करते हैं। स्थिरीकरण के बाद निर्जलीकरण, पेराफिन में डुबोना, ऊतकों को महीन टुकड़ों में काटना और फिर कोशिकीय भागों का रंगना हैं। अंत में ऊतक के महीन भाग माउन्ट करके सूक्ष्मदर्शी में देखे जाते हैं।

जीव विज्ञान की वह शाखा जो जीव विज्ञानियों को जंतुओं और पौधों के जीवन में उनके सामान्य कार्यों को समझने में मदद करती हैं और उनकी क्रियाएं जिनसे जीवन चलायमान रहता है और अगली पीढ़ी में भेजा जाता है। यह **कार्यिकी** कहलाता है। सामान्य क्रियाविधि जीवद्रव्य की क्रियाओं पर आधारित होती है। कार्य का अध्ययन संरचना के अध्ययन के साथ-साथ किया जाता

है। दोनों आपस में जुड़े हुए हैं। कोशिका संरचना की खोज से कार्यिकी विज्ञान में तेजी से सुधार हुए हैं। इनमें कोशिका ऊतकों और अंगों का अध्ययन, उनकी क्रियाविधियां जैसे मांसपेशियों की संकुचनशीलता, तंत्रिका तंत्र का समन्वयन, भोजन, पाचन, उत्सर्जन, श्वसन परिसंचरण, जनन और स्रावण का अध्ययन किया जाता है। जीव विज्ञान के अध्ययन में प्रत्येक विषय का कार्यिकी आधार काम में लिया जाता है। पौधों की कार्यिकी में प्रकाश संशलेषण और वाष्पीकरण की क्रिया का अध्ययन किया जाता है। एक अलग और विशेष शाखा पादप कार्यिकी, जंतु कार्यिकी की खोजों को पौधों पर प्रारंभ करने के तरीके से उत्पन्न हुई हैं। इससे कोशिकाओं की सामान्य कार्यिकी के अध्ययन का उद्भव संभव हुआ है। कोशिका की संरचना और उसकी बनावट का अध्ययन उसकी जीवन क्रियाओं के साथ यह जीव विज्ञान की शाखा **कोशिका विज्ञान** कहलाता है। यह एक कोशिका की संगठन और कार्य से जुड़ा हुआ है और बहुत अधिक जैव रासायनिक तकनीकों पर निर्भर करता है।

भौतिकी का ज्ञान के उपयोगों और विभेदनता और आवर्धता के नियमों के उपयोग से संयुक्त प्रकाश सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार संभव हुआ। यहां प्रकाश परावर्तित हो नेत्रलेन्स को सीधे जाता है जहां यह आंख या कैमरा पर केंद्रित हो जाता है। यह सब जीव विज्ञानियों को कोशिकाओं और ऊतकों के बारे में कुछ सूचनाएं एकत्रित करने में मदद करता है। लेकिन कोशिका के संगठन के बारे में और भी विस्तृत विवरण में महीन संरचना इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी से ज्ञात की जा सकती है। इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी का आधार भौतिकी की इलेक्ट्रोमेग्नेटिक सिद्धांत पर आधारित है। इसकी उच्च विभेदन क्षमता होती है। यह एक कोशिका को 100,000 गुना बड़ा करके दिखा सकता है। भौतिकी के इस ज्ञान की सहायता से जीव विज्ञान के क्षेत्र में जीव क्रियाओं की भौतिकी की खोज के विज्ञान की शाखा **जैव भौतिकी** कहलाती है। भौतिक विज्ञान के विभिन्न औजारों, विधियों, तरीकों और सिद्धांतों के द्वारा जैविक समस्याओं के अध्ययन को **जैव भौतिकी** कहते हैं। जीव विज्ञानी इन विधियों के द्वारा पौधों और जंतुओं में अणु की संरचना का कुछ हद तक पता लगा सकते हैं जो कि सामान्य रासायनिक क्रियाओं द्वारा संभव नहीं हैं।

कोशिका के कार्बनिक और अकार्बनिक अणुओं के भौतिक रासायनिक संगठन और उनकी क्रियाएं कोशिकाओं की प्रकृति को नियंत्रित करती हैं। जंतुओं के आणविक संगठन से संबंधित अध्ययन को **आणविक जीव विज्ञान** (Molecular Biology) कहते हैं। डब्ल्यू.टी. आस्टबरी (1898-1961), जो एक अंग्रेज वैज्ञानिक थे, ने 1950 में सर्वप्रथम शब्द **आणविक जीव विज्ञान** इस्तेमाल किया और परिभाषित किया। दूसरी विज्ञान की शाखा **जैव रसायन** कार्बनिक रसायन और जीव विज्ञान के ज्ञान को एक साथ इकट्ठा करके अध्ययन के लिए बनी। जैव रसायन मुख्यतः जीव तंत्र की जैविक क्रियाओं के रासायनिक पक्ष से संबंधित है। विज्ञान की यह शाखा **कार्यिकी रसायन** और **जैविकी रसायन** कहलाती है।

पुराने समय के चीनी और यूनानी विचारकों ने अपने समय में इन सभी से संबंधित दूसरे शब्दों का इस्तेमाल किया होगा। अंतरिक्ष तकनीकी उपलब्धियों और भौतिक रासायनिक सिद्धांतों के उपयोग, जीव धारियों के आणविक संगठन पर इन सबने मनुष्य को प्रयोग द्वारा अंदाज लगाने की प्रेरणा दी है। कई जीव विज्ञानी पृथ्वी के बाहर सौर तंत्र के अंदर और ब्रह्मांड में सब तरफ जीवन की खोज के लिए ब्रह्मांड विज्ञानी ज्योतिषियों के साथ काम कर रहें हैं। जीव विज्ञान का यह क्षेत्र **एक्सोबॉयोलोजी** कहलाता है।

जंतुओं के व्यवहार का अध्ययन, उनके क्रमबद्ध निरीक्षण, लेखा एकत्रित रखना और जंतु किस तरह कार्य करता है इन निष्कर्षों पर आधारित ज्ञान, कार्यिकी, पारस्थितिकी और जैवविकास संबंधित विशेष ज्ञान या **व्यवहारिकी** (Ethology) कहलाता है।

1.7 जीव विज्ञान के अवसर

इस सदी में जीव विज्ञान के क्षेत्र में बहुत-सी सूचनाएं पता लगाने की हैं। लोग आधुनिक जीव विज्ञान के बारे में जानने के लिए बहुत आतुर हैं। और उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। जीव विज्ञान हमारे रोजाना के जीवन और भविष्य पर अपना असर डालता है। कई वैज्ञानिक जैविक समस्यों पर काम कर रहे हैं जो हमारे जीवन और स्वास्थ्य पर असर डालती हैं। कैंसर, भोज्य उत्पादन, गरीबी, जनसंख्या विस्फोट, एड्स, पृथ्वी का गर्म होना, ये सभी मनुष्य ज़ाति के कल्याण से संबंधित ज्वलंत समस्याएं हैं। जीव विज्ञान का समग्र अध्ययन कुछ मुख्य मुद्दों को उठाता है जो पृथ्वी और अंतरिक्ष दोनों में मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालता हैं। आधुनिक दवा का उत्थान और काम में लेना कोशिका संवर्धन और सूक्ष्मजीव विज्ञान की समझ पर आधारित है।

जीव-विज्ञानी जीवों के वर्गीकरण का अध्ययन करते हैं जो आधुनिक चिकित्सा के लिए उपयोगी है। यह जानना जरूरी है कि कौन-सा जीव क्या बीमारी फैला रहा है। इस तरह का सामान्य ज्ञान काफी नहीं है। जब तक कि कोई बीमारी के वाहक की प्रकृति, जीवन चक्र कारक का नाम जो बीमारी फैलाता है, नहीं जानता है तब तक बीमारी का उपचार और उससे बचाव संभव नहीं है। उदाहरणतः मादा एनोफिलिज मच्छर प्लास्मोडियम का वाहक है। यह प्रोटोजोआ परजीवी मनुष्य में मलेरिया नामक बीमारी फैलाता है। कीटों का वर्गीकरण जान कर मादा एनोफिलिज मच्छर को पहचाना जा सकता है, इसके जीवन चक्र का ज्ञान, इससे बचाव और बीमारी से मुक्त होने में संभवतया मदद कर सकता

है। इसी तरह विभिन्न परजीवी जंतुओं जैसे प्लासमोडियम, एन्टअमीबा, जियार्डिया, एस्केरिस आदि जातियों के वर्गीकरण और जीवन चक्र का ज्ञान मनुष्य में होने वाली बीमारियों के उपचार में सहयोग दे सकता है।

पौधों का औषधीय महत्त्व होता है। दवाएं जैसे पेनिसिलिन, क्विनाइन, कालमेघ, *नक्स वोमिका* औषधि पौधों के प्राकृतिक उत्पादन हैं। वनस्पति शास्त्र का क्रमबद्ध ज्ञान कई नए औषधि पौधों को खोजने में मदद कर सकता है। विभिन्न प्रकार के पौधों के बारे में एकत्रित ज्ञान, मुख्यत: उनका औषिधीय महत्त्व, जीव विज्ञानी द्वारा मनुष्य जाति की सेवा के लिए लाभदायक हो सकता है। एक जीव विज्ञान का छात्र आनुवंशिक बीमारियों और आनुवंशिक विकारों के कारणों को जानने के लिए आवश्यक समझ प्रदान कर सकता है। यह सब मूलभूत ज्ञान लेकर वह आनुवंशिकी परामर्श द्वारा मानव को अपनी सेवाएं दे सकता है। आनुवंशिकी के ज्ञान द्वारा मनुष्यों का प्रजननात्मक स्वास्थ्य सुधारा जा सकता है और जनसंख्या वृद्धि पर काबू पाया जा सकता है।

जीव विज्ञान के पाठ्यक्रम छात्रों को स्वास्थ्य के अतिरिक्त कई नई जानकारियां प्रदान करते हैं। जीव विविधताएं लिए हुए होते हैं, साथ ही जीवन की एकता प्रदर्शित करते हैं। जीवन क्या हैं वे क्या चीजें हैं जो कि जीवों में विविधताएं पैदा करते हैं ? वे किस प्रकार एकताएं प्रदर्शित करते हैं। वे जीवन की प्रक्रियाएं किस प्रकार पूरी करते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर जीव विज्ञान की जानकारी के पश्चात दिया जा सकता है। शारीरकी एवं कार्यिकी लोगों को मानव शरीर की संरचना व कार्यों को समझने में मदद करती हैं। एक जीव-विज्ञानी पौधें व प्राणियों के आर्थिक उपयोग के बारे में सीख सकता है। बहुत-से पौधे व प्राणी आर्थिक महत्त्व के होते हैं। एक जीव विज्ञान विषय का छात्र कृषि विज्ञान व बागवानी विज्ञान, जूट तकनीकी, रेशम, कीट पालन, मुर्गी पालन आदि में विशेषज्ञता का चयन कर सकता हैं। ये विशेषताएं राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के विकास में काफी उपयोगी होती हैं।

नई जैवतकनीकी द्वारा वैज्ञानिक **आनुवंशिकीय परिवर्तित** फसलें पैदा कर सकते हैं। ऐसा सोचा जाता है कि इन फसलों के द्वारा खाद्य समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकेगा। आनुवंशिक विज्ञानी, उद्विकास विज्ञानी तथा पर्यावरण विज्ञानी स्वतंत्र रूप से एवं मिल कर जैव तकनीकी की दक्षता के मूल्यांकन के लिए काम कर सकते हैं तथा आधुनिक समाज में उन्नति ला सकते हैं। जैव-तकनीकी, जैव-विविधता का संरक्षण, पर्यावरण को बनाए रखना तथा मानव कल्याण जीव-वैज्ञानिकों के हाथ में है।

जीव विज्ञान विद्यार्थियों को यह समझने में सहायता करता है कि मनुष्य जीव जगत में पृथ्वी पर विद्यमान पारिस्थितिक तंत्रों के भाग के रूप में कैसे उपयुक्त है। वस्तुत: जीव विज्ञान का एक विद्यार्थी जीव जगत को समझने के लिए सबसे अधिक तैयार होता है।

यह आधुनिक संसार की त्रासदी है कि अधिकांश लोग सामान्यतया जीवन के दूसरे रूपों के महत्त्व के बारे में तथा आपसी अंत:क्रिया के बारे में अनजान हैं। एक जीव वैज्ञानिक पारिस्थितिक तंत्रों तथा प्रकृति संतुलन को अच्छी तरह समझ सकता है। मानव जाति का अस्तित्व पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्रों को पूर्णरूप से समझने की हमारी क्षमता पर निर्भर करता है। पुनर्नवीकरण योग्य स्रोतों के मूल्यांकन जैसे कि जैव-विविधता मानव-अस्तित्व के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जीव विज्ञान का एक विद्यार्थी वन्य जीवन और प्रकृति के अध्ययन के साथ बड़ी आसानी से तालमेल बिठा सकता है। पारिस्थितिकी समुद्र विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान तथा वन्य जीव इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

1.8 अंधविश्वासों, किंवदंतियों एवं गलतधारणाओं को दूर करने में जीव विज्ञान

जीव जगत के बारे में अनेक किंवदंतिया, अंधविश्वास और गलत धारणाएं विद्यमान हैं। जीव विज्ञान के विद्यार्थी के रूप में एक व्यक्ति सामान्य जन और समाज से इन कुरीतियों को दूर करने में मदद कर सकता है। कुछ उदाहरणों की नीचे विवेचना की गई है:

(i) एक सामान्य विश्वास है कि सांप अपने शिकार को सम्मोहित कर सकते हैं। संभवत: इसका आधार इसमें निहित है कि चूहे, पक्षी और अन्य शिकार सांप के सामने आते ही डर के मारे जड़ या गतिहीन हो जाते हैं। शायद सांपों में पलकों को न झपका पाना इस अंधविश्वास की उत्पति का कारण रहा हो।

(ii) यह भी विश्वास किया जाता है कि सपेरे, सांपों को उनकी बीन (बांसुरी) की धुन पर नचा सकते हैं। यह भी सपेरे की शक्ति और सांप के श्रवण उपकरण के बारे में पूर्णत: भ्रामक है। जीव विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि ध्वनि ग्रहण हेतु सांपों में बाह्य कान नहीं होते हैं।

(iii) एक सामान्य अंधविश्वास जो खासकर किसानों में है, यह है कि सांप जानवरों के थनों से दूध पीता है। जीव विज्ञान यह तथ्य प्रकाश में लाया है कि सांप अपना सिर अथवा मुंह पानी में डुबा कर ही पी सकता है। यह पानी अपनी देह भित्ति को फैलाकर लेता है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि सांपों में चूसने के लिए कोई क्रियाविधि नहीं पाई जाती। मांसाहारी होने के कारण वे दूध नहीं पीते। क्यों सांप पशु रखने की जगहों एवं खलिहानों में घूमते हैं ?

जीव वैज्ञानिकों को इसका उत्तर पता है। रोडेन्ट (चूहे आदि) प्राय: इन स्थानों पर चावल या अन्य दाने खाने के लिए आते हैं और सांप अक्सर वहां उनके शिकार जैसे कि बिलवासी जीवों की तलाश में आते हैं।

(iv) यह एक सामान्य दंतकथा (किवदंती) है कि मांसाहारी पौधे "नरभक्षी" होते हैं। यह दंतकथा इस जीव वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है कि मांसाहारी पौधे जैसे कि डायोनेसिया (वीनसफ्लाईट्रेपे), नेपेन्थीज (घट पादप), *ड्रोसेरा* (सनड्यू), *यूट्रिकुलेरिया* (ब्लैडरवर्ट्स) आदि जीवित शिकारों को अपनी गंध से आकर्षित करते हैं। तथा उन्हें पुष्प के चक्र के भीतर पकड़ने के लिए निर्देशित करते हैं। स्पष्टत: कुछ पौधे मांसाहारी तो होते हैं किन्तु "नरभक्षी" नहीं।

(v) मानव की बीमारियों के बारे में कई अंधविश्वास एवं गलत धारणाएं हैं। मलेरिया के नाम, अर्थात बुरी वायु, की उत्पत्ति इस गलत धारणा से हुई कि अगर हवा "बुरी" है तो कोई बीमारी "पकड़" सकता है। इस अंधविश्वास पर रोक लगाई सर रोनाल्ड रॉस ने, जिन्होंने कलकत्ता में शोध कार्य किया और 1897 में एनोफिलीज मच्छर, की मलेरिया में परजीवी के संक्रमण में भूमिका पहली बार खोजी। जीव विज्ञान हमें बताता है कि मलेरिया एक आदिजीवी के परजीवी प्लाज्मोडियम द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जीवन चक्र पूरा करने के लिए दो परपोषियों की जरूरत होती है। मादा एनोफिलीज मच्छर, परजीवी वाहक की तरह काम करती है और कशेरुकियों और मनुष्य को कीटाणुओं से संक्रमित करते हैं। क्या आम लोग मलेरिया के इस जैविक आधार को मानते हैं? स्वास्थ्य संगठनों की मलेरिया के नियंत्रण और रोकथाम की सलाह को हम में से अधिकतर क्यों नहीं मानते हैं।

(vi) सबसे अधिक गलत धारणा और अंधविश्वास है एड्स जिसने समाज को हिला रखा है जो कि मानव इम्यूनोडेफीसिएन्सी विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है। इम्मयून डेफीसिएन्सी सुरक्षा तंत्र की कमजोरी है जो सामान्यतया बीमारी के विरुद्ध लड़ता है। सिन्ड्रोम का अर्थ है – स्वास्थ्य समस्याओं का समूह। एक व्यक्ति जो एड्स से पीड़ित है वह न केवल सामाजिक बहिष्कार का सामना करता है अपितु लोकनिन्दा का भी पात्र बनता है। कुछ सामान्य दंतकथाएं एचआईवी के बारे में यह है कि यह एड्स पीड़ित व्यक्ति के साथ भोजन करने से फैलता है। सामान्य जन और चिकित्सा व्यवसाय से जुड़े लोग भी एचआईवी के संक्रमण होने से क्यों भयभीत हैं। उत्तर बहुत सरल है। सामान्य जन एड्स के कारणों के बारे में अनभिज्ञ हैं। एचआईवी के बारे में तो क्या कहें? चिकित्सा व्यवसायी और नर्सें जो कि एड्स के पीड़ितों का इलाज और देखभाल से इंकार करते हैं वे विज्ञान में अविश्वास से पीड़ित हैं। जीव विज्ञान हमें सिखाता है कि एचआईवी केवल शरीर द्वारा द्रवों के साथ सीधे संपर्क से फैलता है। इस प्रकार का संपर्क सामान्य व्यक्ति को रक्त चढ़ाने या एक ही सुई से रक्त निकालने या नशे की दवा लेने के लिए काम में लेने से होता है। लैंगिक संपर्क से भी देह द्रवों का संपर्क होता है। एक संक्रमित माता भी, कीटाणु अपने बच्चे तक जरायु के द्वारा जन्मपूर्व अवस्था में और जन्म पश्चात मां के दूध से प्रदान करती है।

1.9 जीव विज्ञान का दुरुपयोग

जीव विज्ञान ने मानव समृद्धि के हित में कई तकनीकें विकसित की हैं। लेकिन यह अक्सर देखा गया है कि कई संगठनों द्वारा इन तकनीकों का गलत ढंग से मनुष्य जाति के विरुद्ध इस्तेमाल किया जाता है। जीव वैज्ञानिक, जीव विज्ञान के दुरुपयोग के बारे में जागृति उत्पन्न कर सकते हैं। कुछ उदाहरणों की चर्चा नीचे की गई है।

(i) **एम्नियोसिन्टेसिस** में एक सुई द्वारा मातृ उदर से होते हुए गर्भाशय व एम्निओटिक कक्ष में प्रवेश कराके एम्निओटिक द्रव निकाला जाता है जिसके द्वारा गर्भ के बारे में सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। एम्निओटिक द्रव में कोशिकाएं पाई जाती हैं जो कि एम्नियोटिक झिल्ली और कुछ गर्भ की त्वचा की होती हैं।

इन कोशिकाओं को संवर्धित किया जाता है और वृद्धि के लिए प्रेरित किया जाता है। कुछ दिनों के बाद कोशिकाओं को गुणसूत्र प्राप्ति हेतु तोड़ा जाता है जो अभिरंजित कर गिने जाते हैं और उनकी तुलना सामान्य 23 जोड़े मानव गुणसूत्रों से गुम अथवा अतिरिक्त टुकड़ों के लिए की जाती है। आनुवंशिक सलाह केंद्रों द्वारा स्त्रियों की इच्छा पर ऐम्नियोसिन्टेसिस और गुणसूत्र विश्लेषण की सेवाएं दी जाती हैं। एम्नियोसिन्टेसिस तकनीक गर्भ की असामान्यता, **गुणसूत्रों की कमियां** अथवा गर्भ के **विपथन** का पता लगाने के लिए विकसित की गई थी। इनका अहसास होते ही कि ये परीक्षण गर्भ का लिंग बता सकते हैं। लोग इस परीक्षण को आनुवंशिक असामान्यता का पता लगाने के स्थान पर गर्भ के लिंग की जानकारी के लिए कराने लगे। कई स्थितियों में मरीज को गर्भपात के लिए मजबूर किया जाता है अथवा वह स्वयं कराती है यदि भ्रूण लड़की हो। यह जैविक तकनीक के दुरुपयोग का स्पष्ट उदाहरण है।

(ii) जैविक तकनीकों का बढ़ता दुरुपयोग नए संक्रामक माध्यमों की विविधता उन्हें **जैविक अस्त्रों** के रूप में उपयोग करने की चेतावनी है। इस प्रकार के दुरुपयोग में प्रतिजैविक प्रतिरोधी सूक्ष्मजीवों का विकास जो कि बढ़ी हुई *संक्रामकता* के साथ है, सम्मिलित है। उदाहरण के लिए एन्थ्रेक्स एक तीव्र संक्रामक बीमारी है जो कि बीजाणु बनाने वाले बेक्टीरियम *बैसिलस एन्थ्रेसिस* द्वारा उत्पन्न की जाती है। बै. एन्थ्रेसिस के बीजाणुओं को शुष्क रूप में उत्पादित एवं भंडारित किया जा सकता है तथा उन्हें दशकों तक जीवित रखा जा सकता है। ऐन्थ्रेक्स बीजाणुओं का एक बादल अगर सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान पर छोड़ दिया जाए और व्यक्तियों द्वारा सांस के साथ अंदर ले लिया जाए तो यह जैव आतंकवाद के प्रभावी हथियार की भांति कार्य कर सकता है। एक जैव हथियारों का आक्रमण जो प्रतिजैविक प्रतिरोधी विभेदों का उदाहरण है, इस तरह, संक्रमण बीमारी जैसे कि एन्थ्रेक्स और प्लेग की शुरुआत और फैलाव कर सकता है जो स्थानिक या बड़े स्तर पर हो सकती है। जीव विज्ञानियों को मानव समाज तथा जैव जगत में जीव विज्ञान के दुरुपयोग के प्रभावों के बारे में जागृति पैंदा करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

1.10 जीव विज्ञान में भविष्य

जीव विज्ञान के क्षेत्र में अच्छा भविष्य बनाने के लिए किसी विद्यार्थी को जीव विज्ञान का अध्ययन, भौतिकी, रसायन विज्ञान और गणित के साथ करना चाहिए। यह एक न्यूनतम आवश्यकता है जिसके बाद कि विज्ञान के सामान्य प्रवाह में उच्च शिक्षा प्राप्त करे यथा प्राणि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कार्यिकी, सूक्ष्म जीव विज्ञान, मत्स्य विज्ञान या मानव विज्ञान। 10+2 पास करने के बाद विद्यार्थी कोई व्यवसायिक शिक्षा चुन सकते हैं तथा चिकित्सा विज्ञान, इंजीनियरी या तकनीकी का अध्ययन कर सकते हैं।

सामान्य प्रवाह के अधिक उन्नत कोर्स लेने के स्थान पर एक विद्यार्थी अपनी रुचि का केंद्र जीव विज्ञान की किसी भी अन्य शाखाओं को बना सकता है। जैसे, मानव विज्ञान, जैव सूचना विज्ञान, जैव चिकित्सा इंजीनियरी, जैव तकनीकी, कम्प्यूकेशनल जीव विज्ञान, संगणक अनुसरण, डेरी विज्ञान, पर्यावरण प्रबंधक, आनुवंशिक इंजीनियरी, चिकित्सा विज्ञान, चिकित्सा प्रतिलिप्याकरण रोगविज्ञान, सर्जरी (शल्यचिकित्सा) आदि । जो सामान्य एवं व्यवसायिक प्रवाहों में जारी नहीं रखना चाहते वे व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे कि कृषि विज्ञान, मधु-मक्खी पालन, संकरण जीवविज्ञान, अपराध विज्ञान, फार्मेसी, फार्मेकोलॉजी, फिजिओथेरेपी मुर्गीपालन, झींगा पालन, सेरीकल्चर तथा कई अन्य को अपना सकते हैं नीचे दी गई सारणी (सारणी 1.2) जीव विज्ञान में भविष्य विकल्प को रेखांकित करती है।

सारणी 1.2 जीव विज्ञान में भविष्य का चयन

विषय का नाम	संबंधित क्षेत्र
सस्य विज्ञान	फसलों का उगाना और खेतों का प्रबंधन।
मानव-विज्ञान	मानव और मानवजाति से संबंधित मानव की शारीरिक और मानसिक बनावट, पूर्व काल से मानव समाज का सांस्कृतिक विकास और सामाजिक उद्विकास।
मधुमक्खी-पालन	मधुमक्खियों का पालन और उनका रखरखाव, शहद निकालना और उसको बेचना।
जैव सूचना विज्ञान	कंप्यूटर तंत्रों का व्यवस्थित विकास व अनुप्रयोग तथा तकनीकों का कंप्यूट्रीकृत हल, प्रयोगों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण, मॉडलिग, डाटाबेस खोजना और जैविक प्रक्रियाओं के नए प्रेक्षणों के लिए इन्स्ट्रूमेंशन।
जैव चिकित्सा इन्जीनियरी	मानव के लिए अतिरिक्त अंगों का उत्पादन, कृत्रिम हाथ-पैर, कृत्रिम श्वसन के लिए फेफड़ों, परिसंचरण यंत्रों हृदय) आदि का निमार्ण।
जैव तकनीकी	जैव आणविक स्तर पर जीवित रूपों में जानबूझ कर किया गया सुधार अथवा जीवित तंत्रों से संबंधित जानकारी का उपयोग।
संकरण जीव विज्ञान	पौधों व जंतुओं की उन्नत किस्मों का उत्पादन चयनित माता-पिता के बीच संकर जो उसी या संबंधित जाति के हैं। इसमें जीन का हेर-फेर नहीं किया जाता है।
कंप्यूटेशनल जीव विज्ञान	संगणक हार्ड वेयर का विकास अनुप्रयोग, प्रभावीकरण तथा सॉफ्टवेयर हल जैविक तंत्रों के आभासी मॉडल बनाकर निकालना।

संगणक अनुसरण	कार्यिकी घटना को चित्रीय रूप देना एवं बहुमाध्यमी प्रस्तुतिकरण जंतुओं, पौधों को वास्तविक रूप में बिना सम्मिलित किए हुए करना।
डेरी तकनीकी	पशुओं की उन्नत किस्मों को पालना जैसे गाय, भैंस आदि दूध एवं दूध उत्पादों का निष्कासन परिरक्षण तथा बिक्री।
पर्यावरण प्रबंधन	पर्यावरण का आकलन, पर्यावरण समस्याओं के उपचार के लिए और जैवविविधता के संरक्षण के लिए विधियां खोजना।
मत्स्य विज्ञान	मछलियों को अलवण एवं इस्चुरी जल में पालना, अलवणीय बहते जल, झील, नदी तथा समुद्री पानी से मछलियों के परिरक्षण, परिवहन तथा बिक्री करना।
अपराध विज्ञान	अपराधिक गतिविधियों से निपटने तथा कानून की सहायता के लिए अंगुलियो के निशान, रुधिर के प्रकार आदि सहित विज्ञान के ज्ञान का अनुप्रयोग करना।
आनुवंशिक अभियांत्रिकी	चयनित जीवों को एक सजीव से प्राप्त करना अथवा जीव की प्रतिलिपि बनाना और उन्हें पूर्ण रूप से भिन्न सजीव में डालना।
चिकित्सा प्रतिलिपिकरण	रोगी के आकलन तथा शल्यचिकित्सा, रेडियोलोजी एवं दवा प्रक्रिया, क्लिनिकल कोर्स, निदान व प्रोगनोसिस आदि के बारे में चिकित्सकों व स्वास्थ्य देखभाल करने वालों से प्राप्त डिक्टेशन का प्रतिलिपिकरण और व्याख्या (अभिव्यक्तिकरण) करना।
चिकित्सा	रोगों का दवाओं अथवा चिकित्साप्रद पदार्थों से उपचार करने का विज्ञान।
सूक्ष्म जीव विज्ञान	सूक्ष्मदर्शीय सजीवों जिनमें आदिजीव, शैवाल कवक, जीवाणु आदि सम्मिलित हैं, के संरचना, कार्य, उपयोग प्रभाव एवं जैविक महत्त्व का अध्ययन।
रोग विज्ञान	बीमारियों की प्रकृति, उनके कारण लक्षण व प्रभावों से व्यवहार करना।
चिकित्सा-विज्ञान	दवाओं के यौगिकीकरण, परिरक्षण तथा पहचान करने की कला या व्यवसाय।
औषधि-विज्ञान	दवाओं के कार्य के बारे में जानकारी, उनकी प्रकृति, बनावट, उपयोगाविधि तथा प्रभाव-मैटेरिया मेडिका और थेरेप्यूटिक्स से संबंधित।
फिजियोथेरेपी	अपंगता, चोट व बीमारियों को बाह्य तरीकों से उपचारित करना जैसे कि विद्युत ताप, प्रकाश, मालिश, व्यायाम आदि।
मुर्गीपालन	पक्षियों जैसे घरेलू मुर्गी, चिकन, बतख की किस्मों का पालन तथा व्यापारियों तक इनका परिवहन और बिक्री।
झींगा पालन	झींगे का पालन, परिवहन और बिक्री।
रेशम-विज्ञान	विभिन्न किस्मों के रेशम के कीड़ों को पालना, उनमें रेशम का निष्कासन तथा रील्ड या स्पन रेशम का वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए परिवहन।
शल्य (सर्जरी)चिकित्सा	आंतरिक रचना तथा शारीरिक आपरेशन करने से संबंधित उन बीमारों को ठीक करना जो कि दैनिक दवाओं से ठीक न हो सकने वाले रोगों से पीड़ित हैं।

सारांश

जीव विज्ञान जीवित प्राणियों के विज्ञान की व्याख्या करता हैं- वे क्या हैं, वे कैसे कार्य करते हैं, परस्पर क्रिया करते, परिवर्तित होते अथवा विकास करते हैं। जीव विज्ञान का अध्ययन करने के लिए मस्तिष्क में वैज्ञानिक रुचि आवश्यक है। सामान्यतः वैज्ञानिक विधि से सूचना एकत्र करने में कुछ पद सम्मिलित किए जाते हैं। ये हैं- निरीक्षण, परिकल्पना निर्माण, परिकल्पना की जांच और सिद्धांत विकसित करना। प्राचीन भारतीयों को जीव विज्ञान की जानकारी थी जो *सुश्रुत संहिता* एवं *चरक संहिता* जैसे बड़ी पुस्तकों से प्रमाणित है। यद्यपि अरस्तु ने जंतु-जातियों को वर्गीकृत किया और उन्हें श्रेणीबद्ध क्रम से व्यवस्थित किया। जीव विज्ञान एक वैज्ञानिक शाखा के रूप में 16वीं शताब्दी के आरंभ तक विकसित नहीं हुई। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आरंभिक जीवविज्ञानी वैसेलियस और हार्वे थे जिन्होंने क्रियात्मक शरीर का अध्ययन किया और राबर्ट हुक, जिन्होंने कार्क की पतली परत में मधुमक्खी के छत्ते-सी छोटे रक्त सूक्ष्मदर्शी छिद्रों या कोठरियों को देखा। वास्तविक जीवित कोशिकाएं कुछ सालों बाद ल्यूवेन हॉक ने देखी। लिनियस ने वर्गीकरण-तंत्र तथा पौधों एवं जंतुओं के नामकरण से परिचित कराया। फ्लेमिंग ने पेनिसिलीन की खोज अपने *स्टेफाइलोकोकस* जीवाणु के संवर्ध में की। फ्लेमिंग द्वारा खोजा गया पेनिसिलीन नीले कवक *पेनिसीलियम नॉटेटम* का विष उत्पाद था जिससे दूषित होकर उसके जीवाणु संवर्ध नष्ट हो रहे थे।

कूवियर ने पक्षी समान जीवाश्मों को सर्वप्रथम पहचाना और जीवाश्म विज्ञान की आधारशिला रखी। लेमार्क ने सर्वप्रथम स्थायित्व के विचार को नकार दिया। श्लाइडेन ने कोशिका सिद्धांत का पहला कथन दिया। उसके निरीक्षणों को श्वान द्वारा सहारा मिला। डार्विन ने प्राकृतिक चयन को जातियों के विकास की क्रियाविधि के रूप में सुझाया। पाश्चर ने जीवन के स्वतः उद्भव के विचार का विरोध किया और अपना रोगाणु सिद्धांत सम्मुख रखा। डार्विन, पाश्चर, मेंडल और कई अन्यों के कार्यों ने दृढ़तापूर्वक समकालीन जीव विज्ञान के लिए रंगमंच तैयार किया। इस विकास के साथ आज सभी विज्ञानों में सर्वाधिक मांग, जीव विज्ञान की है। जेम्स डी. वाटसन और फ्रान्सिस एच.सी.क्रिक ने 1953 में डीआक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल (डीएनए) की संरचना प्रस्तुत की जिसमें आणविक जीव विज्ञान के नए युग का प्रारंभ हुआ। डब्ल्यू.टी. ऑस्टबरी नामक एक ब्रिटिश विज्ञानी ने सर्वप्रथम आणविक जीव विज्ञान शब्द का प्रयोग 1950 में किया। हरगोविन्द खुराना को 1968 में राबर्ट डब्ल्यू. हॉले और मार्शल डब्ल्यू. नीरेनबर्ग के साथ नोबल पुरस्कार उनके आनुवंशिक कूट की व्याख्या करने और उनके प्रोटीन संश्लेषण के कार्यों के लिए प्रदान किया गया। आधुनिक पादप एवं जंतु संकरण कर्त्ता अब जीवन के नए रूपों का उत्पादन करते हैं जिसमें डीएनए में जीन के परिवर्तन से लक्षणों का मिश्रण संभव होता है। नारमन आरनेस्ट बोरलॉग ने 1970 में 'हरित क्रांति' के लिए नोबल पुरस्कार जीता। जिसमें गेहूं की उन्नत बीजों का उपयोग, नई उच्च उत्पाद धान तथा उर्वरक एवं पानी के अधिक दक्ष उपयोग सम्मिलित थे। इऑन विलमट और कैम्पबेल ने प्रथम जीवित, स्वस्थ भेड़ क्लोन डॉली को पूर्णतः विभेदित वयस्क स्तन कोशिकाओं से सन् 1996 में पैदा किया। यू.एस.डिपार्टमेंट ऑफ एनर्जी और नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ हेल्थ ने आनुवंशिक अभियांत्रिकी की युक्तियों का लाभ उठाने के लिए संयुक्त राज्य अमेरीका की मानव जीनोम परियोजना 1990 में शुरु की। यह परियोजना मानव डीएनए में लगभग 30,000 जीनों की पहचान करने के उद्देश्य से तथा 3 करोड़ रासायनिक कारक जोड़ों के क्रम जो मानव डीएनए का निर्माण करते हैं, का निर्धारण करने के उद्देश्य से की गयी है।

जीव विज्ञान में शाखाएं काफी विस्तृत हैं, जैसे कि प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान तथा सूक्ष्मविज्ञान। सजीवों के वैज्ञानिक नाम देना एवं वर्गीकरण करना व पहचान करने को वर्गिकी अथवा सिस्टेमेटिक्स कहते हैं। आकारिकी जीवविज्ञान की वह शाखा है जिससे पौधों व जंतुओं के स्वरूप, आकृति, आकार और संरचना का अध्ययन आता है। आंतरिक अंग तंत्रों की आकारिकी को शारीरिकी कहते हैं। आनुवंशिकी वंशागति की क्रियाविधि, वंशानुगतता को बनाए रखने और सजीवों में विभिन्नता के कारण को उद्घाटित करती है। सजीवों की संतति के पीढ़ियों के दौरान लक्षणों में ऐतिहासिक परिवर्तन विकास कहलाते हैं और जीव विज्ञान की इस शाखा को विकासीय जीवविज्ञान कहते हैं। पृथ्वी की परत में विद्यमान जीवाश्म जीवित वस्तुओं के पूर्व इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं और जीवाश्मों के अध्ययन को जीवाश्मविज्ञान कहते हैं। जीव विज्ञान में अध्ययन के लिए एक अन्य दृष्टिकोण है—सजीवों और उनके वातावरण के बीच पारस्परिक संबंध, जिसे पारिस्थितिकी के नाम से जाना जाता है। सूक्ष्मदर्शी के माध्यम से कोशिकाओं एवं उतकों की संरचना और संगठन पारस्परिक क्रमानुसार कोशिकी और औतिकी कहलाता है। जीव विज्ञान की वह शाखा जो कि जीवन प्रक्रियाओं की क्रियाविधि और कार्य करने का अध्ययन करती है, शरीर क्रियाविज्ञान कहलाती है।

जीव विज्ञान मानव उपलब्धियों के अग्रिम मोर्चे पर है। यह सभी विज्ञानों में से सबसे ज्यादा मांग में है क्योंकि इसका क्षेत्र व्यापक है। जीव विज्ञान हमारे दैनिक जीवन और भविष्य को प्रभावित करता हैं। आधुनिक दवाओं का विकास एवं उपयोग मानव की कोशिकाओं, उसके अंगों एवं अंगतंत्रों की संरचना और कार्य की समझ पर निर्भर है। बीमारियों के कारकों के जीवन चक्र की सूचना और उनके मानव से संबद्ध कई रोगों की रोकथाम और देखभाल के लिए अधिक मूल्यवान है। जीव विज्ञान औषधीय पौधों के शरीर को बढ़ाने एवं बनाए रखने के लिए सहायक हो सकती है। आनुवंशिकी के ज्ञान से हम कई वंशानुगत बीमारियों एवं विकारों से बच सकते हैं।

आधुनिक जैवतकनीकी द्वारा वैज्ञानिक आनुवंशिकत: रूपांतरित फसलों और कृंतकीकृत प्राणियों एवं पौधों को सफलता पूर्वक उत्पन्न कर सके हैं। आनुवंशिकी विज्ञानी उद्विकास विज्ञानी व परिस्थिति विज्ञानी इस तरह की नयी खोजों की वैज्ञानिक व्याख्या नैतिक जीव वैज्ञानिक पहलुओं के आधार पर कर सकते है। जीव विज्ञान यह समझने में मदद कर सकता है कि कैसे सजीव प्रकृति से अन्योन्य-क्रिया करते हैं और जीवविविधता को बनाए रखने का क्या महत्त्व है ? यह मनुष्यों के इस आकलन में सहायक है कि जीव जगत में पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र के एक भाग के रूप में उनकी स्थिति क्या है। जीव विज्ञान में अच्छी जीवन-वृत्ति (भविष्य) बनाने के लिए विद्यार्थी को 10+2 पाठ्यक्रम जीव विज्ञान, भौतिकी, रसायनविज्ञान, और गणित के साथ उत्तीर्ण करना चाहिए। जीव विज्ञान का विद्यार्थी संबद्ध विषयों में से किसी को भी चुन सकता है।

अभ्यास

1. 'जीव विज्ञान' को परिभाषित कीजिए। इस शब्द को किसने और किस परिप्रेक्ष्य में दिया ?
2. जैविक और भौतिक विज्ञानों में अंतर कीजिए।
3. विज्ञान की विभिन्न खोजों में सम्मिलित सामान्य चरणों का क्रमिक वर्णन दीजिए। किसी वैज्ञानिक के निष्कर्ष निकालने में निरीक्षण की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
4. परिकल्पना क्या है? निरीक्षण एवं परिकल्पना के बीच संबंधों की व्याख्या कीजिए।
5. प्रयोग क्या है ? वैज्ञानिक उपलब्धि में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
6. नियंत्रित प्रयोगों से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए कि नियंत्रित प्रयोगों द्वारा लुई पाश्चर स्वत: जननवाद के सिद्धांत को विराम लगाने में किस प्रकार सफल हुए।
7. वे परिस्थितियां बताइए जो परिकल्पना को सिद्धांत में परिवर्तित करती हैं। क्या प्रत्येक प्रयोग से एक सिद्धांत का निमार्ण हो सकता है ? अपने विचारों को सत्यापित करने के समुचित कारण बताइए।
8. मूलभूत एवं अनुप्रयोगी शोध की विशेषताएं क्या हैं ? तथा उनमें क्या अंतर-संबंध हैं ? वैज्ञानिक खोजों को प्रकाशित करने की आवश्यकता क्यों है ?
9. विज्ञान व प्रौद्योगिकी के बीच संबंध की व्याख्या कीजिए।
10. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।
    (क) चन्दोग्य उपनिषद में जंतुओं को वर्गीकृत किया है ____________, अण्डज एवं ____________।
    (ख) सुश्रुत संहिता में सभी पदार्थों को ____________ एवं ____________ में वर्गीकृत किया है।
    (ग) सुश्रुत संहिता में पादपों का वनस्पति, ____________ एवं ____________ में उपविभाजित किया है।
    (घ) सुश्रुत संहिता ________ और ________ संहिता के अनुसार प्राणियों की दो मुख्य श्रेणियां हैं : ________ एवं ________ ।
    (ङ) भारतीय चिकित्सा परंपरा वैदिक काल की है। जब मनुष्य पर ________ औषधि प्रयोग ________ एवं शल्य चिकित्सा प्रयोग हुआ।
    (च) सुश्रुत को ________ का जनक माना जाता है।
    (छ) शब्द ________ से अर्थ है जीन एवं दीर्घायु का विज्ञान।
    (ज) आयुर्वेद औषधियों के प्रमुख घटक ________ पदार्थ हैं।

11. अरस्तू के ऐसे योगदान बताइए जो उसकी विलक्षण बुद्धि दर्शाती है।

12. स्तंभ एक के नामों का सुमेल स्तंभ दो के नामों से कीजिए।

कालम I		कालम II	
(क)	आन्द्र वैसेलियस	1.	माइक्रोग्राफिया
(ख)	एन्टोनी वान ल्यूवेनहाक	2.	डी ह्यूमैनी कॉरपोरि फैब्रिका
(ग)	विलियम हार्वे	3.	स्पीशीज प्लेन्टेरम
(घ)	कैरोलस लिनियस	4.	फिलॉसॉफी जूलोजिक
(ङ)	राबर्ट हुक	5.	हृदय और रक्त की गति की शारीरिकीय अभ्यास
(च)	ज्यां बेप्टिस्ट लेमार्क		

13. विज्ञान का 1953 के पश्चात् के समसामायिक विकास की रूपरेखा दीजिए।

14. जीव विज्ञान में अंतर्विषयी अध्ययन के बारे में क्या सामान्य सोच है। संक्षेप में बताइए।

15. विभेदन कीजिए :
    (i) जैविक विज्ञान और आणविक विज्ञान
    (ii) प्रकाश सूक्ष्मदर्शी और इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी
    (iii) कार्यिकी और जीव रासायनिकी
    (iv) जैव तकनीकी और सूचना प्रौद्योगिकी

16. संगणक अनुसरण एवं इसके महत्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

17. जीव विज्ञानियों की निम्न के सापेक्ष भूमिका बताइए।
    (i) पादप और जंतुओं का आर्थिक उपयोग
    (ii) आनुवंशिक खाद्य पदार्थों का उपयोग
    (iii) पर्यावरण-तंत्र को समझाना
    (iv) मनुष्य का स्वास्थ्य और जीवन

18. मलेरिया और एड्स जैसे रोगों के बारे में मिथ्या विचार, गलत धारणाएं, अंधविश्वास आदि को दूर करने में जीव विज्ञान की क्या भूमिका है।

19. एम्नियोसिन्टेसिस क्या है ? इस तकनीक के दुरुपयोग समझाइए।

20. अपनी अभिरुचि के क्रम में जीव विज्ञान के किन्हीं तीन जीवन-वृत्तियां विकल्पों को लिखिए।

अध्याय 2

जीवन को समझना

हम जानते हैं कि पौधे, जंतु, जीवाणु, कवक आदि जीवित हैं, जबकि ईंट, पत्थर और चट्टानें निर्जीव वस्तुएं हैं, विषाणु न तो सजीव हैं और न ही निर्जीव। आप तुरंत सजीव को निर्जीव से अलग रूप में पहचान सकते हैं। कोई वस्तु सजीव कैसे बनती है?

जीवन का शाब्दिक अर्थ वह लक्षण है जो सजीवों को निर्जीव पदार्थों से अलग करता है। जीव-विज्ञानी जीवन को परिभाषित करने में कठिनाई महसूस करते हैं हालांकि उनके पास सजीवों के बारे में बृहत् ज्ञान होता है। इसकी वजह यह है कि सजीवों और निर्जीवों के मध्य एक रेखा खींचना कठिन है। हम विषाणु का एक उदाहरण लेकर उपरोक्त कथन को सत्यापित कर सकते हैं। विषाणु स्वयं में निर्जीव कण है, लेकिन जब यह किसी जीवित कोशिका में होता है तब सक्रिय होकर तेजी से बहुगुणित होता है। वास्तव में जीवन को परिभाषित करना कठिन है। जीवन को संक्षेप में परिभाषित करने के स्थान पर जीव-विज्ञानी, जीवन कैसे कार्य करता है, इस पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

2.1 जीव कुछ मौलिक व आधारभूत विशिष्टताएं धारण करते हैं

अतिशय भिन्नता होते हुए भी जीवों में बहुत-सी बातें समान होती हैं। यहां तक कि सबसे अधिक विविध जीव जैसे–कवक, पौधे, कीटों और कशेरुकी, कोशिकाओं के बने होते हैं जो अपनी आंतरिक संरचना और कार्यों में समान होते हैं। एक कोशिक सूक्ष्मदर्शी अमीबा या जीवाणु से लेकर अद्‌वितीय मनुष्यों तक सभी जीव कुछ मौलिक और आधारीय गुण दर्शाते हैं। इनमें कुछ हैं : ऊर्जा उपभोग, नियमन, वृद्‌धि, परिवर्धन, जनन और अनुकूलन। जीव-जंतुओं के मुख्य आधारभूत लक्षण निम्न हैं:

(i) अधिक व्यवस्थित और जटिल जीव एक या अधिक कोशिका के बने होते हैं।

(ii) यह कई रासायनिक क्रियाएं करते हैं और उनका नियंत्रण करते हैं।

(iii) उपापचयी क्रियाओं के लिए ऊर्जा का उत्पादन और प्रयोग करते हैं।

(iv) वातावरणीय बदलावों के प्रति संवेदनशील होते हैं और एक स्थायी आंतरिक वातावरण बनाए रखते हैं।

(v) आकार में वृद्‌धि और परिवर्धन करते हैं और अपनी जैसी संतति उत्पन्न करते हैं।

(vi) वातावरणीय बदलाव के प्रति अनुकूलन करते हैं और धीरे-धीरे नए तरह के जीवों में विकसित हो जाते हैं।

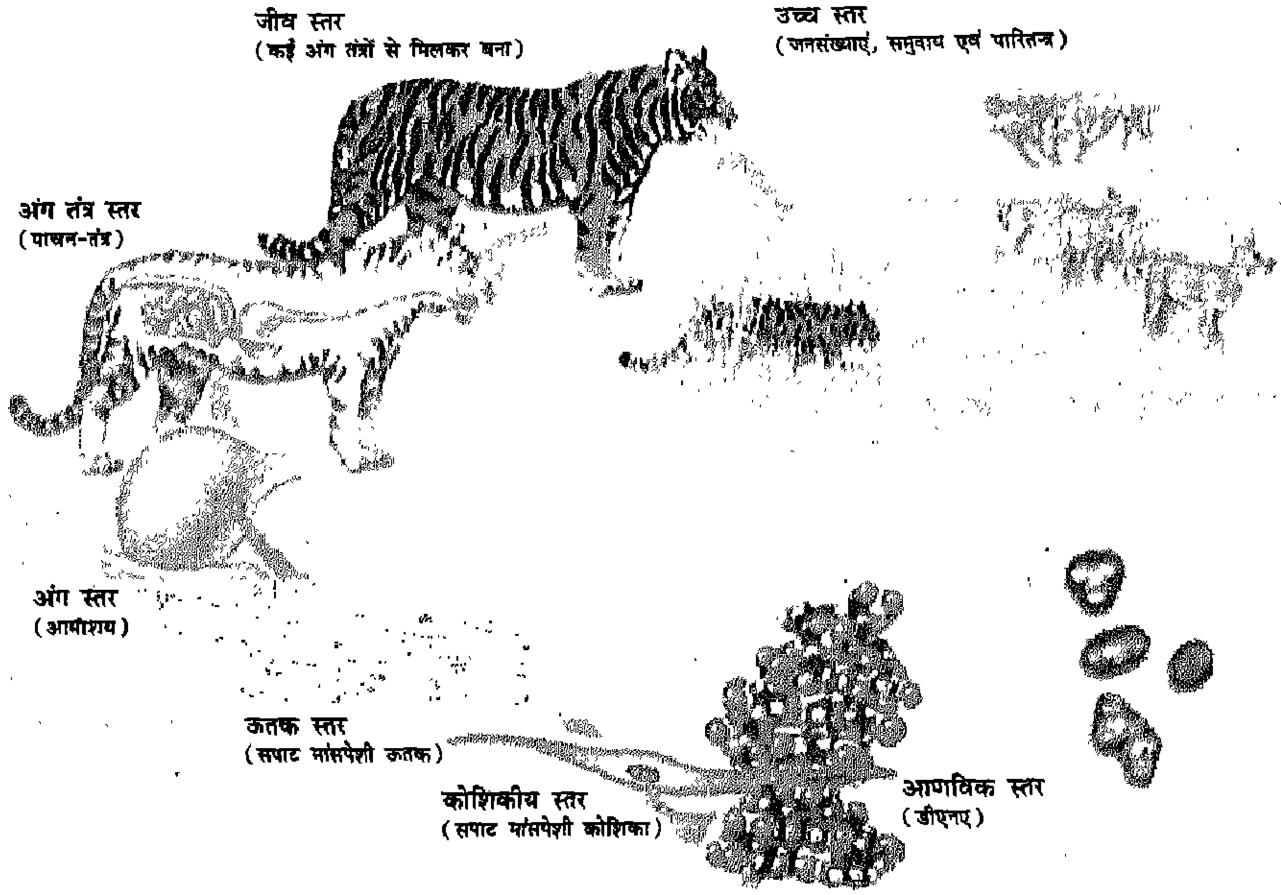
2.2 सजीवों का विश्लेषण

निम्न जंतुओं से उच्चतम जंतुओं तक सभी जीवधारियों के अध्ययन में जीवन सरल से जटिल आकार क्रमबद्‌ध स्तर में प्रकट होता है तथा प्रत्येक निचला स्तर ऊपरी जटिल स्तर में प्रकट होता है। अब हम जानते हैं कि सभी जंतु एक या अधिक कोशिकाओं के बने होते हैं। जब कोशिकाओं का समूह कोई निश्चित कार्य करता है तो वह ऊतक कहलाता है। ऊतक संगठित होकर अंग और कई अंग मिलकर तंत्र का निर्माण करते हैं। एक बहुकोशिक प्राणी में कई तंत्र पाए जाते हैं जो जीवन की विविध क्रियाएं करते हैं। पौधों में जंतुओं जैसा संगठन नहीं पाया जाता।

जैविक संगठन के स्तर

जैविक संगठन अतिसूक्ष्म **आणविक संगठन** (Molecular Level) से आरंभ होता है एवं सूक्ष्मदर्शी कोशिकीय स्तर से गुजरता हुआ सूक्ष्म या वृहत् जीव स्तर तक होता हुआ **पारिस्थितिकी तंत्र** और **जैविकी** तंत्र में समाप्त होता है।

जैविक संगठन का पदानुक्रम बताता है (चित्र 2.1) कि परमाणु तो आणविक स्तर पर सबसे छोटी इकाई है जबकि कोशिका सूक्ष्मदर्शी स्तर पर। परमाणु जुड़कर अणु का निर्माण करते हैं जो रासायनिक क्रिया करके अंगकों का निर्माण करते हैं। कोशिका में कई अंगक पाए जाते हैं। कुछ कोशिकाओं का समूह जो एक निश्चित कार्य करता है। ऊतकों का निर्माण करता है। जीवों के ऊतक संगठनात्मक ऊतक स्तर से ऊपर कई



चित्र 2.1 जीव विज्ञान का सामान्य सीढ़ी सोपान संगठन

ऊतक मिलकर एक विशेष कार्य के लिए एक विशेष अंग बनाते हैं, जैसे–यकृत, आमाशय, फेफड़ा, वृक्क, अण्डाशय आदि। जब कई अंग मिलकर एक विशेष कार्य करते हैं तो तंत्र बनता है जैसे पाचन, प्रकाश-संश्लेषण, श्वसन, जनन और कई अन्य।

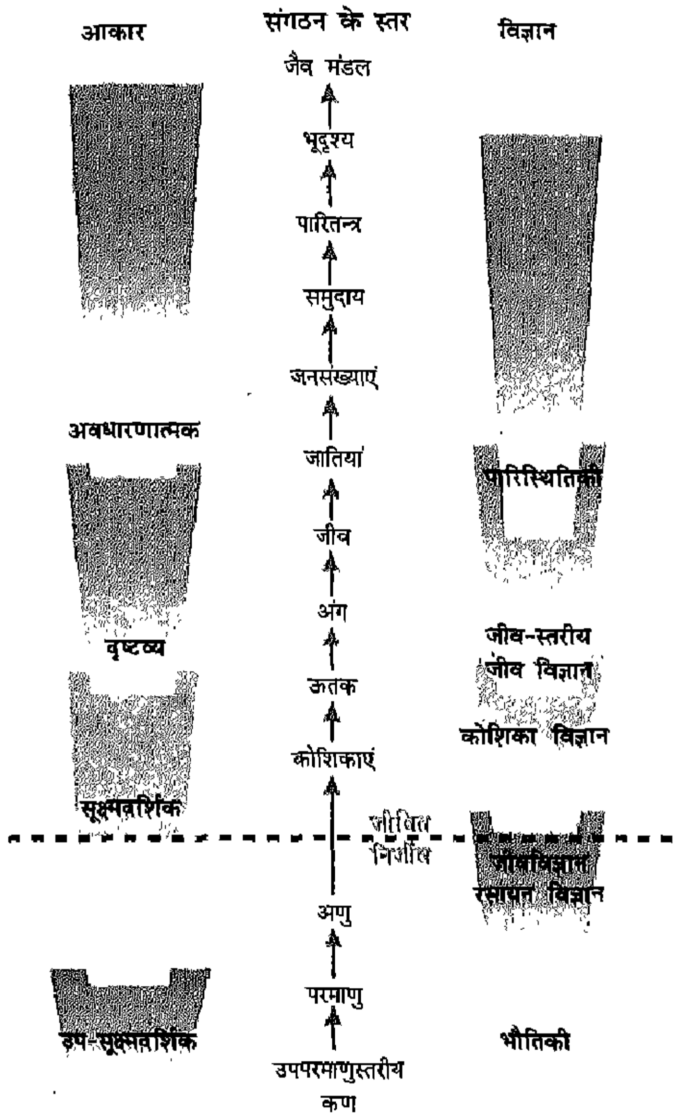
जीवित वस्तुएं सजीव कहलाती हैं। कभी-कभी एक प्रकार के जीव बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। जीवों के इस समूह में वे जीव जो आपस में प्रजनन कर सकते हैं या प्रभावी जनन करते हैं, एक जाति का निर्माण करते हैं। एक निश्चित स्थान पर पाए जाने वाले एक ही जाति के जीव जनसंख्या या समष्टि का निर्माण करते हैं। विभिन्न जातियों की एक ही स्थान पर रहने वाली जनसंख्याएं एक जैविक समुदाय कहलाती हैं। समष्टियां वातावरण के निर्जीव कारकों के साथ प्रतिक्रिया करती हैं और पारिस्थितिकी-तंत्र का निर्माण करती हैं।

पारिस्थितिकी-तंत्र में एक जीव सबसे छोटी इकाई होता है। पारिस्थितिकी-तंत्र से बड़ी इकाई भूदृश्य होती है, जो अपने इतिहास के साथ भौगोलिक इकाई होती है। यह जमीन और जीव जो इस पर रहते हैं, उनको आकार प्रदान करती है। पृथ्वी की सतह पर हवा, जमीन और पानी में रहने वाले जीव, जैवमंडल का निर्माण करते हैं।

आप ऊपर के विवरण से यह समझ चुके हैं कि हम विभिन्न संगठनात्मक स्तरों से जुड़ी हुई विज्ञान की शाखाओं को पहचान सकते हैं (चित्र 2.2)। इसलिए हमें वातावरण के जैविक और अजैविक घटकों के आपसी संबंधों को प्राकृतिक-तंत्र में समग्र रूप में देखना चाहिए।

आणविक संगठन : विचारों में बदलाव

जीवों पर हमारा परंपरागत ज्ञान आकारिकी, शरीर और औतिकी (histological) स्तरों पर हुए निरीक्षणों पर आधारित है। अब एक जीव-विज्ञानी सामान्यतः आकारिकी जैसे कोशिकीय संरचना, ऊतक, अंग, तंत्र से ही नहीं जुड़ा रहता। वरन् जीव-विज्ञानियों का ध्यान जीव स्तर पर कि सजीव किस प्रकार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, से आणविक स्तर की ओर परिवर्तित हो गया है कि वे किस प्रकार समान होते हैं। वास्तव में भौतिक वैज्ञानिकों और रसायनवेत्ताओं ने सजीवों का सूक्ष्मदर्शी से भी निम्न स्तर तक विश्लेषण करना संभव



चित्र 2.2 संगठन के विविध स्तर और विज्ञान की संबंधित शाखाएं

कर दिया है। उपसूक्ष्मदर्शीय स्तर पर किए गए अध्ययनों से कुछ मुख्य निष्कर्ष निम्नवत हैं :

(i) सजीवों का मूलभूत रासायनिक संगठन जटिल लेकिन बड़ी सीमा तक समान होता है।

(ii) सजीवों और निर्जीव वस्तुओं के निर्माण का आधार समान पदार्थ और नियम हैं जैसे कि जीवन रासायनिक रूप में सार्वभौमिक भौतिक रासायनिक नियमों पर आधारित है और उनका अनुपालन करता है।

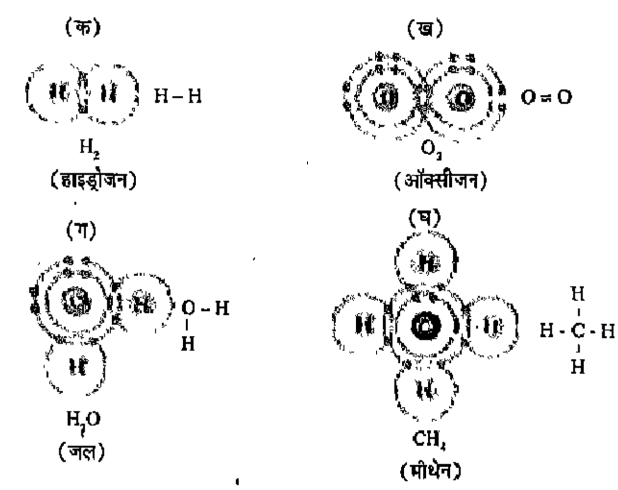
(iii) सजीव/जीवित पदार्थ जीव-मंडल में निवास करते हैं और अपने चारों ओर विद्यमान निर्जीव स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल से अन्योन्य क्रिया करते हैं।

परमाणु प्रकृति के निर्माणकर्ता पदार्थ हैं

सभी जीवित पौधे, जंतु और निर्जीव वस्तुएं जैसे पत्थर और चट्टानें, पदार्थ की बनी होती हैं। ब्रह्मांड में उपस्थित कोई भी वस्तु जिसमें भार होता है, और वह स्थान घेरती है, पदार्थ कहलाती हैं, पदार्थ के निर्माण खंड **परमाणु** होते हैं, परमाणु इकट्ठे होकर **तत्वों** का निर्माण करते हैं। तत्व वह द्रव्य है जिसमें मात्र एक प्रकार के परमाणु होते हैं। प्रकृति में 100 से अधिक प्रकार के तत्त्व पाए जाते हैं इनमें से केवल 25 जीवन के लिए अनिवार्य हैं। प्रत्येक जीवधारी के भार का 98 प्रतिशत भाग, जीवाणु हो अथवा मनुष्य, केवल छह तत्वों का बना होता है जैसे : कार्बन (C), हाइड्रोजन (H), नाइट्रोजन (N), ऑक्सीजन (O), फास्फोरस (P), और सल्फर (S)। जीवधारियों में सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित पदार्थ कैल्शियम, पोटेशियम, सोडियम, मैग्नेशियम, आयोडीन आदि हैं। ऐसे पदार्थ जो किसी जीवधारी के लिए बहुत कम मात्रा में आवश्यक होते हैं, सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व (trace elements) कहलाते हैं। यह पदार्थ जीव के पोषण में अति उपयोगी होते हैं, उदाहरणतः आयोडीन कशेरुकिओं में थायराइड ग्रंथि द्वारा उत्पन्न हारमोन का अंश है। जैविक रूप से उपयोगी पदार्थों में नाइट्रोजन के संयोजन में पौधों को मोलिब्डेनियम की आवश्यकता होती है।

रासायनिक बंध जीवन के संयोजी हैं

परमाणु जुड़कर **अणुओं** (Molecules) का निर्माण करते हैं। दो या अधिक परमाणु जो रासायनिक बंधों से आपस में बंधे रहते हैं, अणु का निर्माण करते हैं। रासायनिक बंध ऐसा आकर्षण बल है जो दो परमाणुओं को जोड़कर एक अणु बनाता है। जब दो परमाणु एक युग्म संयोजी इलेक्ट्रॉन में साझेदारी करते हैं तो ऐसे बंध को **सहसंयोजी बंध** (Covalent Bond) (चित्र 2.3) कहते हैं। वह बंध जिसमें एक जोड़ा इलेक्ट्रॉन



चित्र 2.3 सहसंयोजी आबंध (क) सरल बंध (ख) एवं (ग) दुहरा बंध (ग) बहुगुणित बंध

साझेदारी करते हैं वह **एकलबंध** कहलाता है उदाहरणत: (H-H)। संधि जब चार इलेक्ट्रॉनों की साझेदारी होती है (O=O) तो उस संधि को **दोहरा बंध** कहते हैं।

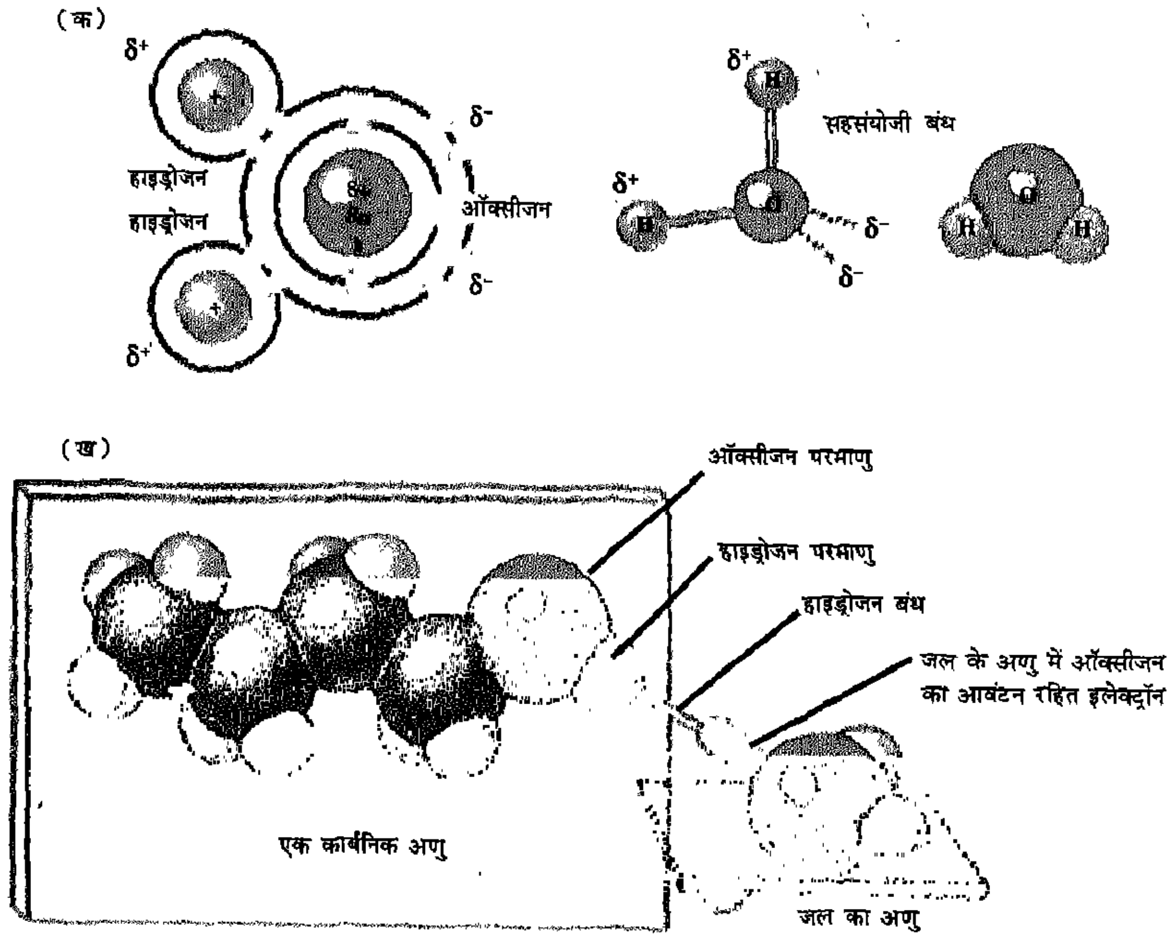
जल एक ध्रुवीय अणु है

जिन अणुओं में आवेश अलगाव होता है उन्हें **ध्रुवीय अणु** (polar molecule) कहते हैं क्योंकि उनमें चुम्बकीय ध्रुव होता है। अतः जल एक ध्रुवीय अणु है। जल के अणु में ऑक्सीजन के परमाणु पर आंशिक ऋणात्मक आवेश (δ^-) होता है और प्रत्येक हाइड्रोजन अणु पर आंशिक धनात्मक आवेश ($\delta+$) होता है (चित्र 2.4 क)। तरल पानी में, एक अणु पानी का ऋण आवेशित ऑक्सीजन परमाणु पानी के दूसरे अणु के धनावेशित हाइड्रोजन परमाणु की तरफ आकर्षित होता है। इनसे निर्मित बंध **हाइड्रोजन बंध** कहलाता है (चित्र 2.4ख)। जब एक धनावेषित हाइड्रोजन परमाणु ($\delta+$) एक ऋण विद्युती आवेशित ऑक्सीजन परमाणु (δ^-) से जुड़ता है तो भी हाइड्रोजन बंध का निर्माण होता है और उसी समय दूसरे ऋणावेशित (δ^-) सोडियम परमाणु की ओर भी आकर्षित होता है।

जैविक तंत्र में हाइड्रोजन बंध अत्यधिक उपयोगी होते हैं

एक हाइड्रोजन बंध क्षीण बंध होता है और एक हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन परमाणु के बीच बने सहसंयोजी बंध की तुलना में इसकी मजबूती लगभग 10 प्रतिशत ही होती है। जैविक तंत्रों में कमजोर हाइड्रोजन बंधों की काफी उपयोगिता होती है क्योंकि अणुओं के बीच संपर्क काफी अल्पकालिक होता है। और आपस में क्रिया करने के बाद तुरंत अलग हो जाते हैं।

जब रासायनिक संकेत मस्तिष्क के ग्राही अणुओं को भेजे जाते हैं उस समय यह उपयोग देखा जा सकता है। संकेत अणु, क्षीण बंधों का उपयोग करते हुए संकेत संचारित करते हैं, परिणामस्वरुप ग्राही कोशिका में प्रतिक्रिया प्रारंभ होने से काफी पहले ही वे अलग हो जाते हैं। यदि एक अणु और ग्राही अणु के बीच सहसंयोजी बंध होता है तो ग्रहण करने वाली कोशिका लगातार प्रत्युत्तर प्रदान करती रहती है चाहे संचारित कोशिका काफी पहले ही संदेश भेजना बंद कर चुकी हो। ऐसी स्थिति ध्यान में लाइए जब बोलने वाले के बोलना बंद

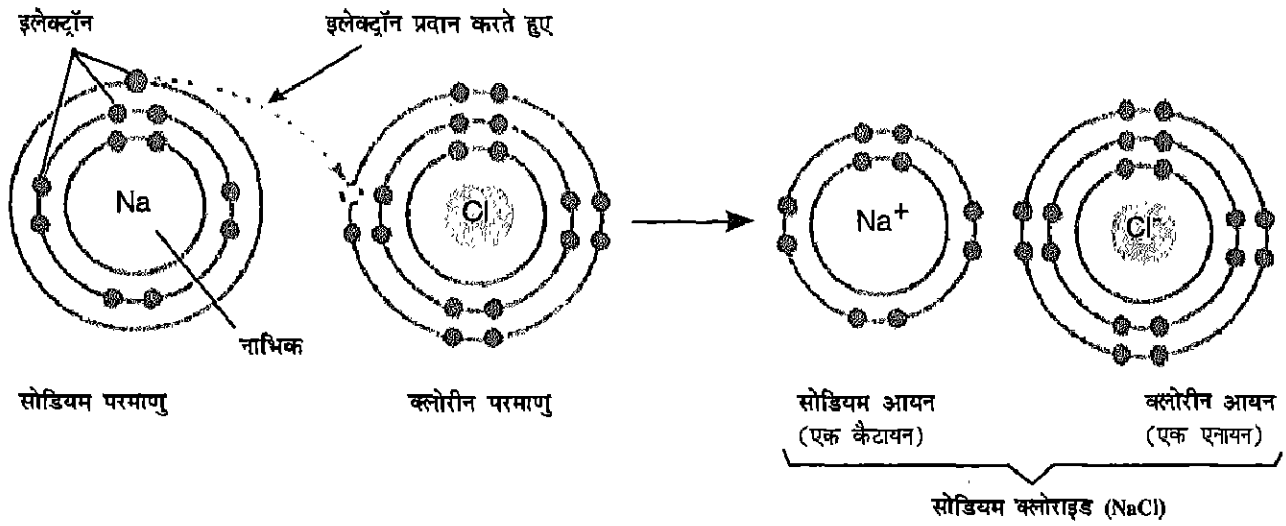


चित्र 2.4 (क) जल की आणविक संरचना (ख) जल के अणु में हाइड्रोजन बंध

करने के बाद भी आप लगातार आवाज सुनते रहें। तथापि जब बहुत-से हाइड्रोजन बंधं बन जाते हैं इनमें बहुत-सा बल विद्यमान होता है और यह पदार्थों के आकार और गुणों पर बड़ी सीमा तक प्रभाव डालते हैं। वस्तुतः पानी में हाइड्रोजन बंध कई ऐसे गुणों को जन्म देते हैं जो जैविक तंत्रों के लिए इसे आवश्यक बना देते हैं। ये अणु प्रोटीन और डीएनए जैसे बड़े अणु को त्रिआयामी आकार प्रदान करने और व्यवस्थित करने में मुख्य भूमिका अदा करते हैं।

आयन विद्युत आकर्षण द्वारा बंध बनाते हैं

जब क्रिया करने वाले परमाणुओं में से एक परमाणु दूसरे परमाणु से अधिक ऋणात्मक हो तो वे अपने संयोजी इलेक्ट्रॉनों को आपस में नहीं बांट सकते। इन संदर्भों में एक या अधिक संयोजी इलेक्ट्रॉन अधिक वैद्युतऋणी परमाणु से अधिक वैद्युतधनी परमाणु की ओर पूरे स्थानांतरित हो जाते हैं जिससे दो परमाणु साथ-साथ रहते हैं। परमाणु आवेशित हो जाते हैं और **आयनों** में परिवर्तित हो जाते हैं। आयन विद्युत आवेशित कण या परमाणु होते हैं और उस समय निर्मित होते हैं जब कोई परमाणु एक या अधिक इलेक्ट्रॉन छोड़ते हैं या ग्रहण करते हैं। अकेला इलेक्ट्रॉन स्वतंत्र और अस्थिर होता है अतः दूसरे इलेक्ट्रॉन से मजबूती से जुड़ सकता है। सोडियम परमाणु ऐसी स्थिति में स्थिर अवस्था प्राप्त कर सकता है जब एकाकी इलेक्ट्रॉन दूसरे परमाणु जिसके संयोजी कक्ष में इलेक्ट्रॉन की कमी हो, द्वारा ग्रहण कर लिया जाए। इस इलेक्ट्रॉन की कमी के संदर्भ में सोडियम परमाणु धनात्मक आवेशित हो जाता है (Na^+)। क्लोरीन के परमाणु में 17 इलेक्ट्रॉन होते हैं-2 अंदर के ऊर्जा स्तर में, 8 अगले स्तर में और 7 संयोजी स्तर में होते हैं। यह एक अस्थिर अवस्था होती है, इसके संयोजी स्तर में एक अतिरिक्त इलेक्ट्रॉन के जुड़ने से क्लोरीन परमाणु स्थिर अवस्था में आ जाएगा क्योंकि यह ऋणात्मक आवेश के क्लोराइड आयन (Cl^-) में परिवर्तित हो जाएगा। चूंकि क्लोरीन परमाणु का विद्युत ऋणावेश, सोडियम परमाणु के आवेश से बहुत अधिक होता है, कोई भी बंध बनाने में प्रयुक्त होने वाला इलेक्ट्रॉन क्लोरीन न्युक्लियस के बहुत पास रहने की कोशिश करता है। इसके फलस्वरूप धात्विक सोडियम और गैसीय क्लोरीन यदि साथ रखे जाए तो तेज और विस्फोटक अवस्था में क्रिया करते हैं। सोडियम परमाणु क्लोरीन परमाणु को स्वतंत्र



***चित्र 2.5** सोडियम क्लोराइड में इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण एवं आयनी बंधन*

धनावेशित परमाणु **केटायन** (cation) और ऋणावेशित **एनायन** (anion) कहलाते हैं। विपरीत आवेशों में आवेशित आयनों/ केटायन और ऐनायन के मध्य विद्युत आकर्षण से बंध का निर्माण होता है उसे **आयनिक बंध** कहते हैं।

सामान्य खाद्य नमक, सोडियम क्लोराइड आयनों की एक महत्त्वपूर्ण जालिका है जिसमें आयन विद्युत आकर्षण 'आयनिक बंधों' द्वारा बंधे हुए होते हैं। सोडियम के परमाणु में 11 इलेक्ट्रॉन होते हैं। 2 इलेक्ट्रॉन अंदर के ऊर्जा स्तर में, 8 अगले स्तर में और एक संयोजी स्तर में होता है। बाद का इलेक्ट्रॉन दे देते हैं जो सोडियम और क्लोराइड आयन बनाते हैं। ये विपरीत आवेशित आयन, एक आयनिक पदार्थ सोडियम क्लोराइड (NaCl) जो वैद्युतीय उदासीन है और फैली हुई जालिका में बदल जाता है अतः कोई प्रत्यक्ष नमक का अणु नहीं बनता (चित्र 2.5)। आयन, रवे के रुप में मैट्रिक्स में एकत्रित हो जाते हैं। इस तरह का समूहन, नमक के रवे (क्रिस्टल) कहलाते हैं।

नमक हमारे रक्त का मुख्य भाग है। यह रक्त में लाल रक्त कणिकाओं को व्यवस्थित करने में मुख्य भूमिका निभाता

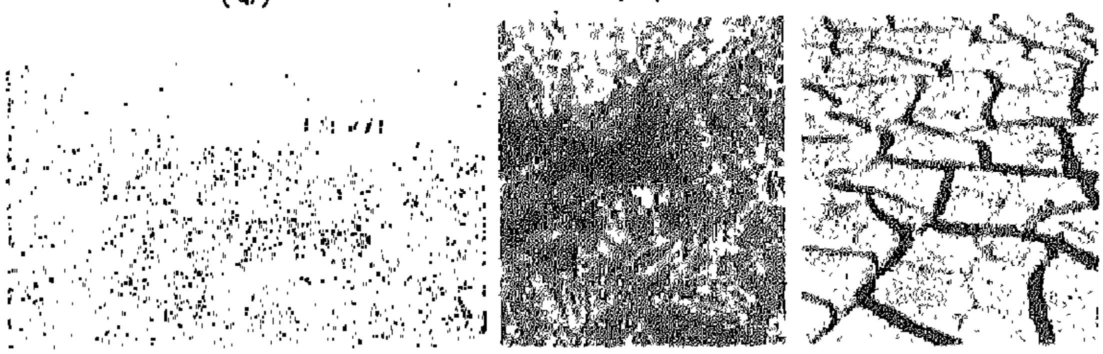
है। सोडियम और क्लोराइड आयन कोशिका झिल्ली के आर-पार पदार्थों के परिवहन में सहायता करते हैं।

जल जीवन का आवलंब है

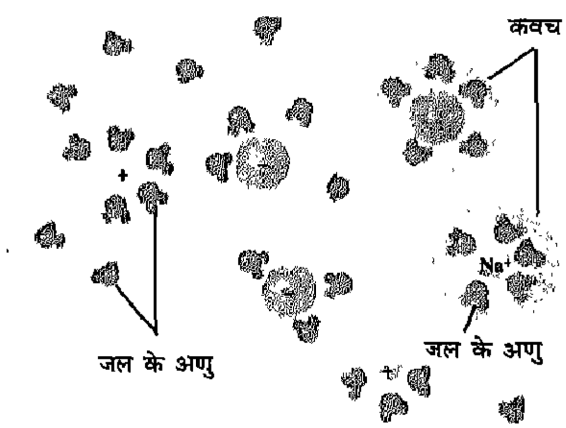
जल कई रूप ग्रहण करता है (चित्र 2.6)। केवल यह ही ऐसा अणु है जो औरों से कम ताप पर एक द्रव रूप में रहता है। पृथ्वी पर जीवन पूर्ण रूप से जल पर आधारित है। जीवन की उत्पत्ति जल में हुई है और यह उसी में 30 लाख वर्षों तक विकसित होता रहा है। जीवों को अपनी वृद्धि और जनन के लिए अधिक जल के वातावरण की आवश्यकता होती है। हमारे शरीर का लगभग दो-तिहाई भाग जल का बना है। जीवित कोशिका का 70 प्रतिशत से 90 प्रतिशत भाग जल है। पृथ्वी की आदिम युगीन स्थिति में जीवन के सभी रचनात्मक खंड-कार्बनिक अणु जिसमें मोनोमर (अमीनो अम्ल, एक-शर्कराइड) और बहुलकों (बहुन्यूक्लियोटाइड, बहुशर्कराइड सम्मिलित है), जल में इकट्ठे होकर आपस में क्रियाएं करते हैं।

नमक और चीनी जल में क्यों घुल जाते हैं ? जल की ध्रुवता जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, में इसकी रासायनिकता व जीवन की रासायनिकता अन्तर्निहित होती है। ध्रुवीय अणु होने के कारण जल एक दूसरे से क्रिया करता है। जल एक प्रभावी विलायक है क्योंकि यह हाइड्रोजन बंध बनाता है। जल के अणु किसी पदार्थ, जो विद्युत आवेशित होता है, के चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। जब यह पदार्थ, जल में रखा जाता है तब सोडियम क्लोराइड के रवे अधामी में पानी के अणुओं का विद्युत आकर्षण और आयनों के बीच के बल को तोड़ देता है। इससे सोडियम क्लोराइड के रवे Na^+ व Cl^- आयनों में विभक्त हो जाते हैं। तब जल के अणु अलग-अलग और आयनों के चारों ओर हाइड्रोजन बंध बनाते हैं और प्रत्येक आयन के चारों तरफ एक जलयोजन कवच बनाते हैं (चित्र 2.7)। अंततः आयन आयनिक बंध बनाते हुए वापस नहीं जुड़ सकते हैं।

जल में चीनी क्यों घुलती है ? इसकी भी व्याख्या की जा सकती है। सूक्रोस ऐसे अणुओं का बना है जिनमें कुछ ध्रुवीय हाइड्रोक्सिल (OH) समूह होते हैं। जल के अणु चीनी के अणुओं के अकेले समूहों के साथ हाइड्रोजन बंध बनाते हैं। वास्तव में ऐसे बने हुए अधिसंख्यक हाइड्रोजन बंध इसके कई गुणों के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसकी संबद्धता, तीव्र विशिष्ट उष्मा, वाष्पीकरण की तीव्र दर, स्थिर pH, दूसरे ध्रुवीय अणुओं का अच्छा विलायक होना एवं उष्मा संचयन, जैविक तंत्र में उपयोगी होते हैं।



चित्र 2.6 (क) एवं (ख) हिम एवं बर्फ के जलीय रवे (ग) जल की कमी



चित्र 2.7 जल के अणुओं द्वारा जलयोजन कवचों का निर्माण

कार्बन का मुख्य अकार्बनिक स्रोत

कार्बन जीवित कोशिका का मुख्य संरचनात्मक तत्त्व है। कार्बनडाईऑक्साइड (CO_2) में कार्बन होता है, यह दूसरे कार्बनिक पदार्थों से सरल होता है। यह अकार्बनिक माना जाता है और कार्बन का मुख्य अकार्बनिक स्रोत होता है। हमारे वातावरण में केवल लगभग 0.33 प्रतिशत कार्बनडाईऑक्साइड (CO_2) विद्यमान है। रासायनिक क्रिया में भाग लेने से पहले कार्बनडाईऑक्साइड को पानी में घुलने की आवश्यकता होती है। प्रत्येक कोशिका को ढकने वाली पानी की पतली परत कार्बनडाईऑक्साइड को घोलने के लिए काफी होती है। घुली हुई कार्बनडाईऑक्साइड फिर पानी में क्रिया करती है और कार्बनिक अम्ल बनाती है CO_2 और H_2O ऐसे कच्चे पदार्थ होते हैं जिनसे पौधे कई आवश्यक जटिल कार्बनिक पदार्थ बना सकते हैं।

आणविक ऑक्सीजन जीवन के लिए आवश्यक है

आणविक ऑक्सीजन (O_2) वातावरण का लगभग 21 प्रतिशत भाग निर्मित करती है। यह जीवन के लिए आवश्यक है और अधिकतर पौधों और जंतुओं द्वारा पोषक पदार्थों से ऊर्जा लेने में काम आती है। ऑक्सीजन, इलेक्ट्रॉनों की अंतिमग्राही की तरह कार्य करती है, इसकी अनुपस्थिति में कोशिका में उसकी केवल 5 प्रतिशत कार्यक्षमता रह जाती है। ऑक्सीजन जल में कम घुलनशील होती है, लेकिन घुलनशील ऑक्सीजन की कम मात्रा जलीय जीवों की आवश्यकताओं को पूरा करती है यदि जल की सतह हवा के संपर्क में हो। इसके साथ-साथ जल में जलीय पौधे भी होने चाहिए। हरे पौधे प्रकाश-संश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन मुक्त करते हैं। यह ऑक्सीजन संपूर्ण वातावरणीय आणविक ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत है।

जीवन के आधारीय खंड

ऑक्सीजन, कार्बनडाईऑक्साइड और जल, वास्तव में जीवन के आधार हैं, लेकिन जीवों को जीवन को नियंत्रित करने और ऊर्जा के अभिग्रहण, भेजने और काम में लेने के लिए कई दूसरे पदार्थों की भी आवश्यकता होती है। कार्बनिक रसायन में जीवन की मुख्य क्रियाएं सम्मिलित हैं।

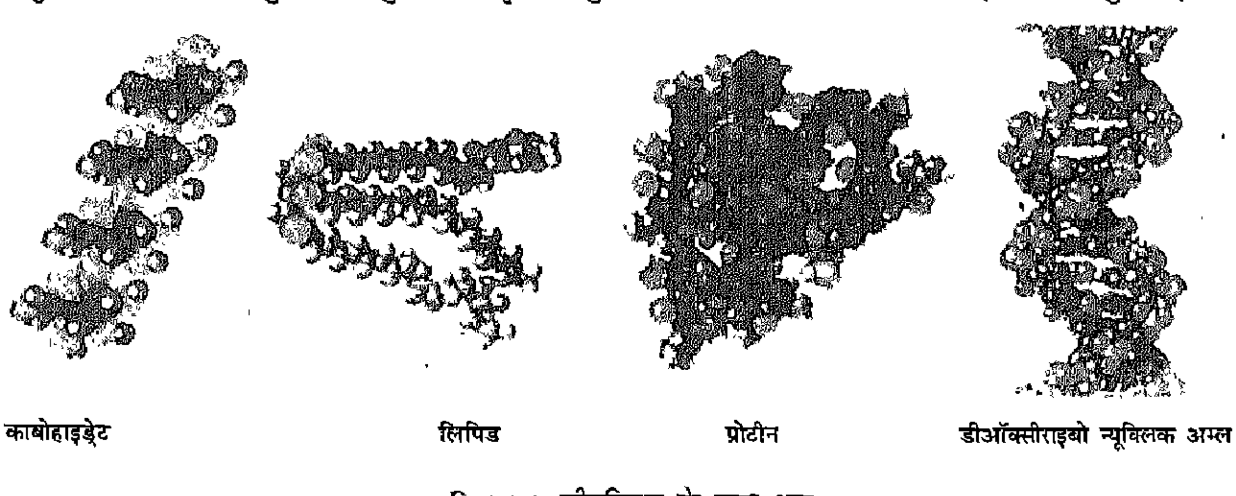
कार्बनिक अणु छोटे और सरल हो सकते है फलत: उनमें एक या अधिक कार्यात्मक समूह हो सकते हैं। उदाहरणार्थ सामान्य शर्करा या एकल शर्कराइड, जिसमें हाइड्रोक्सिल समूह (-OH) एवं CHO अथवा C = O समूह हो सकता है। सरल जैविक अणुओं के बड़े और जटिल समुच्चय को बृहद अणु (Macromolecule) कहते हैं। उदाहरणत: कई सरल अंगूठी जैसी शर्कराएं या एकल शर्कराइडों के जुड़ने से बहुशर्कराइड बनते हैं। इसी तरह कई सरल अमीनो अम्ल प्रोटीन का निर्माण करते हैं, कई न्यूक्लियोटाइड बहुन्यूक्लियोटाइड डीएनए और आरएनए का निर्माण करते हैं। इससे हम मान सकते हैं कि बृहत् अणु छोटे और सरल अणुओं के बहुलक हैं। बृहद अणु चार मुख्य समूहों में विभक्त होते हैं–कार्बोहाइड्रेट, लिपिड या वसा, प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल (चित्र 2.8)।

कार्बोहाइड्रेट–मुख्य ऊर्जा संचायक अणु

कार्बोहाइड्रेट की सबसे सरल इकाई सामान्य शर्करा या एकल शर्कराइड है, दो उदाहरणत: ग्लूकोज $(CH_2O)_6$ अथवा $(C_6H_{12}O_6)$। ऐसे एकल शर्कराइड संयोजी बंध से जुड़कर द्विशर्करा या डाईसेकेराइड बनाते हैं जैसे कि ग्लूकोस, चीनी, लेक्टोस, (दुग्ध शर्करा)। सरल शर्करा या एकल शर्कराइड उप-इकाइयां आपस में जुड़कर बहुशर्कराइड बनाती हैं, जैसे मंड (उच्चतर पौधों का मुख्य कार्बोहाइड्रेट संचयित पदार्थ), सेल्यूलोस (पौधों का प्रमुख अवलंबी पदार्थ), काईटीन (कीटों के बाह्य कंकाल और कवक कोशिका-भित्ति का मुख्य संरचनात्मक घटक) और ग्लाइकोजन (जंतुओं का मुख्य कार्बोहाइड्रेट संचित उत्पाद)। कार्बोहाइड्रेट में कई C–H और C=O बंध होते हैं जिनमें वे ऊर्जा संचित करते हैं और संचित ऊर्जा अणुओं की भांति कार्य करते हैं। जब बंध टूटते हैं तो ऊर्जा मुक्त होती है, इसके साथ कार्बोहाइड्रेट जंतुओं का शरीर बनाने में, कार्बन कंकाल की तरह कार्य करते हैं जो मुख्य जैविक संरचनाओं और कार्यों के लिए दूसरे अणु बनाने के लिए पुन: समायोजित किए जा सकते हैं।

वसा–बहु क्रियाशील अघुलनशील हाइड्रोकार्बन का एक प्रमुख समूह

सरल प्रकार के लिपिड में ऐसे हाइड्रोकार्बन होते हैं, जिसके एक सिरे पर कार्बोक्सिल समूह (-COOH) विद्यमान होता है। अध्रुवीय होने के कारण, ये जलभीरु और पानी में अघुलनशील या आंशिक घुलनशील होते हैं। लिपिड, कार्बनिक विलयनों जैसे ईथर में घुल जाते हैं। अधिकतर लिपिडों में कार्बोक्सिल सिरे पर एक आयनिक समूह जुड़ा रहता है। लिपिड का सबसे अच्छा उदाहरण उदासीन वसा है जो द्रव अवस्था में तेल कहलाता हैं। एक वसा अणु वसीय अम्लों जो



कार्बोहाइड्रेट | लिपिड | प्रोटीन | डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल

चित्र 2.8 जीवविज्ञान के बृहत् अणु

तीन कार्बन परमाणुओं की रीढ़ से जुड़े रहते हैं, का बना होता है, प्रत्येक में एक हाइड्रोक्सिल समूह (–OH) होता है। वसा ऊर्जा संचय करते हैं, शरीर को स्नेहन, गद्दे जैसा लचीलापन और रक्षा प्रदान करते हैं। लिपिडों में फास्फोरस और नाइट्रोजन तत्त्व भी पाया जा सकता है। कोशिका की झिल्ली, रूपांतरित वसा, जो फास्फोलिपिड कहलाती है, की बनी होती है। इस अणु में ग्लिसरोल की एक इकाई, वसीय अम्लों की दो इकाइयां और एक सिरे पर फास्फेट समूह (PO_4) होता है जो प्रायः नाइट्रोजन वाले समूह से जुड़े रहते हैं। फास्फेट समूह ध्रुवीय और जलरागी होता है जबकि दूसरे सिरे पर वसीय अम्लों की दो लंबी शृंखलाएं (हाइड्रोकार्बन पूंछें) अध्रुवीय और जलभीत होती है। जल में फास्फोलिपिड की अध्रुवीय पूंछें इस से दूर समूहन करती हैं और लिपिड की द्विस्तर बनाती है। यह द्विस्तर जैविक झिल्लियों का आधारभूत ढांचा है।

झिल्लियों में **स्टीराइड** भी होते हैं जो एक प्रकार का लिपिड है जिसमें कार्बन के चार वलय होते हैं। कोलेस्टिरॉल स्टीराइड अधिकतर सभी जंतु कोशिकाओं की झिल्लियों में पाया जाता है। दूसरे प्रकार के स्टीराइड टेस्टोस्टीरॉन और एस्ट्रोजन जैसे हार्मोन हैं। टरपीनस, जो कई जैविक रंजकों के घटक होते हैं (उदाहरणतः पौधों में हरित लवक जंतुओं में दृश्य दृष्टिपटलवर्णक) लंबी शृंखला के लिपिड होते हैं। रबर भी एक टर्पीन ही होता है। प्रोस्टेग्लेंडिन्स 20 कार्बनों के बने होते हैं जो रूपान्तरित वसीय अम्ल हैं। प्रोस्टेग्लेंडिन कई कशेरुकी ऊतकों में स्थानीय रासायनिक संदेशवाहक का कार्य करते हैं।

प्रोटीन-कोशिका की संरचनात्मक और कार्यात्मक बनावट

सभी प्रो॰ . अमीनो अम्ल उपइकाइयों के बने होते हैं। केवल 20 अलग अमीनो अम्ल, जो प्राथमिक रूप से कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के बने होते हैं, इसकी प्रोटीनों के लिए आवश्यकता होती है। एक अमीनो अम्ल वह अणु है जिसमें अमीनो समूह ($-NH_2$), कार्बोक्सिल समूह ($-COOH$) और हाइड्रोजन परमाणु (H), सभी एक साथ एक केंद्रीय कार्बन (C) से जुड़े रहते हैं। प्रत्येक अमीनो अम्ल में एक पार्श्व शृंखला या समूह होता है। पार्श्व शृंखला सरल (जैसे ग्लाईसीन) या जटिल (जैसे ट्रिप्टोफेन) अमीनों अम्ल की बनी हो सकती है। अमीनो अम्लों के पार्श्व समूहों के रासायनिक गुण प्रोटीनों के प्रकार और उनके गुणों के बारे में निर्धारित करते हैं। यदि पार्श्व समूह ध्रुवीय या आयनिक है तो अमीनो अम्ल पानी में घुलनशील होता है और यदि वह pH 6.5 व 7 पर अध्रुवीय है, तो अमीनो अम्ल पानी में अघुलनशील होता है।

अमीनो अम्ल के आधारीय खंड आपस में सहसंयोजी बंधों, जो पेप्टाइड बंध कहलाते हैं, से जुड़े रहते हैं। ये बंध एमीनो अम्ल इकाइयों की शृंखला बनाते हैं जिसे बहुपेप्टाइड शृंखला कहते हैं। प्रोटीन अणु अक्सर एक से अधिक बहुपेप्टाइड शृंखला के बने होते हैं। शृंखलाएं, क्षीण हाइड्रोजन बंधों (जैसे प्रोटीन, हीमोग्लोबिन), दोनों हाइड्रोजन और सहसंयोजी बंधों (प्रोटीन हारमोन इन्सुलिन), से आपस में जुड़े रहते हैं।

प्रोटीन कई प्रकार के कार्य करते हैं। ये कोशिकाओं के मुख्य आकारिक और क्रियात्मक अंग हैं। जैविक पदार्थ का लगभग 50 प्रतिशत शुष्क भाग प्रोटीन होता है। अधिकांश जीवों में 1,000 से 50,000 के बीच के प्रोटीन पाए जाते हैं। ये कई आकारिकी तत्त्व जैसे कोलेजन (जो अस्थि और कोशिका त्वचा का आधात्री बनाते हैं) और मांसपेशियों के प्रोटीन जैसे एक्टिन और मायोसिन (जो संकुचन की क्रियाशीलता में मुख्य भूमिका निभाते हैं), का निर्माण करते हैं। जैविक उत्प्रेरक अथवा एन्जाइम (जैसे जल अपघटनीय एन्जाइम जो बहुशर्करा को तोड़ते हैं), हार्मोन (जैसे इन्सुलिन, जो रक्त शर्करा को सीमित रखते हैं), इम्यूनोग्लोब्यूलिन्न (जैसे प्रतिपिंड, जो बाहरी प्रोटीन के निष्कासन के लिए चिह्नित हैं), व संवाहक (जैसे हीमोग्लोबिन जो रक्त में ऑक्सीजन और कार्बन-डाईआक्साइड का परिवहन करते हैं), सभी प्रोटीन हैं।

न्यूक्लिक अम्ल-कोशिकाओं का सूचना भंडार

न्यूक्लिक अम्ल लगातार पुनरावृत्ति करने वाली एकल उपइकाईयों, जिन्हें **न्यूक्लियोटाइड** कहते हैं, के रेखीय बहुलक है। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड एक पेन्टोस शर्करा, एक फास्फेट समूह और एक अकार्बनिक नाइट्रोजन-युक्त क्षार-प्यूरीन या पाइरीमिडीन का बना होता है। आरएनए राइबोस न्यूक्लिक अम्ल में राइबोस शर्करा और डीऑक्सीराइबोस अम्ल (डीएनए) में डीऑक्सीराइबोस शर्करा (ऑक्सीजन के एक परमाणु की कमी) होती है। नाइट्रोजन युक्त क्षार चार प्रकार के होते हैं - दो प्यूरीन-एडिनिन (A) और गुआनिन (G) और दो पाइरीमिडीन-साइटोसिन (C) और थाईमीन (T)। आरएनए में थाईमीन के स्थान पर यूरेसिल (U) पाया जाता है।

एक जाति विशेष के लिए एक डीएनए अणु में न्यूक्लियोटाइड अणुक्रम निश्चित होता है, लेकिन यह जातियों में भिन्न होता है। प्रायः डीएनए अणु दो बहुन्यूक्लियोटाइड शृंखलाओं (द्विरज्जू) का बना होता है जो आसपास के क्षीण हाइड्रोजन बंधों से जुड़े रहते हैं। दोनों शृंखलाएं विपरीत दिशाओं में सीढ़ी के समान पार्श्व से पार्श्व में विन्यासित होती है। नाइट्रोजन युक्त क्षार सीढ़ी के चरण बनाते हैं। अंततः पूरी द्विरज्जुकी संरचना गोलाकार या सर्पिलाकार हो जाती है और द्विरज्जुकी से द्विसर्पिलाकार में रूपांतरित हो जाती है। अधिकांश आरएनए अणु एक बहुन्यूक्लियोटाइड शृंखला के बने होते हैं।

2.3 जीवों की ऊर्जा स्थानांतरण युक्तियां

कोशिकीय क्रियाएं जैसे वृद्धि, गति और कोशिका कला के आर-पार सक्रिय आयनिक स्थानांतरण के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कोई भी कोशिका ऊर्जा नहीं बनाती है लेकिन सभी जीव ऊर्जा लेते हैं और उसे कई प्रकार के कार्य करने के लिए दूसरे रूप में बदल देते हैं। हरे पौधे और जीवाणु अपनी रासायनिक ऊर्जा (भोजन) बनाने के लिए सूर्य की ऊर्जा ग्रहण करते हैं। जंतु बाहर से भोजन ग्रहण करते हैं और विभिन्न क्रियात्मक कार्यों को करने के लिए प्राप्त ऊर्जा को तोड़ देते हैं। जहां ऊर्जा को रोका जाता है वहां कार्य करने की क्षमता उपस्थित होती है, चाहे वह बांध के पीछे एकत्रित पानी, ग्लूकोज के सहसंयोजी बंध या सूर्य के प्रकाश द्वारा उच्च कक्षा में उत्तेजित इलेक्ट्रॉन या नाभिकीय संयत्रों में दृढ़ता माध्यम से बंधे नाभिक हों।

इलेक्ट्रॉन-ऊर्जा स्थानांतरण का माध्यम

सभी परमाणुओं में ऊर्जा होती है। यह इलेक्ट्रॉनों को परमाणु की परिधि में रखती है। वास्तव में जीवित जंतुओं में ऊर्जा कणों में फोटोनों के रूप में सूर्य से आती है और इलेक्ट्रॉनों द्वारा पकड़ ली जाती है। जीव इसका लाभ उठाते हैं और जीव के सभी क्रियाकलापों में इस ऊर्जा का उपयोग ईंधन की तरह करते हैं। हम पढ़ चुके हैं कि रासायनिक क्रियाओं के दौरान इलेक्ट्रॉन एक परमाणु से दूसरे को स्थानान्तरित होते रहते हैं। एक इलेक्ट्रॉन की कमी ऑक्सीकरण कहलाती है, जबकि एक इलेक्ट्रॉन का प्राप्त होना अवकरण या उपचयन कहलाता है। ऑक्सीकरण-अवकरण (रेडोक्स क्रियाएं) जैविक तंत्रों में ऊर्जा बहाव में मुख्य भूमिका निभाता है।

पूर्ण उष्मा और मुक्त ऊर्जा क्या है ?

जैविक तंत्र में संपूर्ण ऊर्जा, जो कार्य सम्पन्न कर सकती है और काम में न आने वाली ऊर्जा, जो अव्यवस्था में खो जाती है, **ऐन्थेल्पी** (enthalpy) कहलाती है। प्रयोग में आने वाली ऊर्जा की मात्रा जो कार्य करने के लिए उपलब्ध होती है तथा जब पूरे तंत्र में ताप और दाब समान होते हैं, **मुक्त ऊर्जा** कहलाती है। यह मुक्त है क्योंकि यह विशिष्ट परिस्थितियों में ही कार्य करने योग्य होती है।

किसी रासायनिक क्रिया को प्रारंभ करने और रासायनिक बंधों को अस्थिर करने के लिए जो ऊर्जा काम में आती है उसे **क्रियात्मक ऊर्जा** कहते हैं। वो क्रियाएं जो बिना बाहरी हस्तक्षेप के होती है, उनमें मुक्त ऊर्जा निकलती है और कार्य कर सकती है, यह **स्वतः क्रियाएं** कहलाती हैं। ऊर्जा द्वारा प्रारंभ किए जाने पर ऐसी क्रियाएं स्वेच्छा से होती हैं। वह क्रियाएं जिनमें ऊर्जा निकलती है ऊर्जा जनिक क्रियाएं कहलाती हैं। एक रासायनिक क्रिया जिसको प्रारंभ करने के लिए बाहर के स्रोत से मुक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है उसे ऊर्जा शोषण क्रिया कहते हैं। एक ऊर्जा जनिक क्रिया में प्रथम पद ऊर्जा शोषी होता है क्योंकि दो अणुओं के जुड़ने के लिए ये पास-पास आ जाते हैं और एक या अधिक पहले से उपस्थित बंध टूट जाते हैं।

ऊर्जा का बहाव कैसे होता है ?

जैविक संगठन के क्रम के प्रथम पद में ऊर्जा के लगातार बहाव के लिए रासायनिक क्रियाएं जटिल और मुख्य भूमिका निभाती हैं। दैनिक क्रियाएं जैसे दौड़ना, चलना, हिलना आदि में ऊर्जा के रूप में परिवर्तन की आवश्यकता होती है। **ऊष्मा गतिकी के नियमों** (Laws of Thermodynamics) में ऊर्जा परिवर्तन वर्णित किया गया है। ऊष्मागतिकी ऊर्जा रूपांतरण का अध्ययन है जो पदार्थ के समूह में मिलता है। **उष्मागतिकी के प्रथम नियम** (First Law of Thermodynamics) के अनुसार अंतरिक्ष में ऊर्जा की संपूर्ण मात्रा स्थिर है। ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो सकती है लेकिन यह कभी बनाई भी नहीं जा सकती और कभी नष्ट भी नहीं होती है।

यदि कोशिका में किसी कार्य को करने के लिए आवश्यक ऊर्जा या किसी तंत्र में आंतरिक रूप से ऊर्जा उपलब्ध नहीं हो तो वह बाहरी स्रोत से प्राप्त की जा सकती है, जिसमें ऊर्जा की समान मात्रा में कमी हो जाती है। जब कोई जीव भोजन ग्रहण करता है तो इस भोजन में संचित स्थितिज ऊर्जा के रूप को बदलकर अपने शरीर के लिए ले लेता है। एक हरा पौधा सूर्य की ऊर्जा को लेकर उच्च ऊर्जा एडीनोसीन ट्राइफास्फेट अणु (ATP) में बांध देता है और फिर इसकी स्थितिज रासायनिक ऊर्जा का रूप कार्बोहाइड्रेट (भोज्य अणु के रूप में) उत्पन्न करने के काम में लेता है।

$$12\,H_2O + 6CO_2 \xrightarrow{\text{सूर्य की ऊर्जा}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6\,H_2O$$

(शर्करा-एक ऊर्जा युक्त यौगिक)

चूंकि, एक जैविक तंत्र में स्थितिज रासायनिक ऊर्जा दूसरे रूप में बदल सकती है, जैसे कि गतिज ऊर्जा (अणुओं के बेतरतीब गति का माप) प्रकाश या विद्युत के रूप में इस तरह के संरक्षण के दौरान कुछ ऊर्जा ताप के रूप में वातावरण में विसरित हो जाती है। **ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम** (Second Law of Thermodynamics) बताता है कि मुक्त ऊर्जा की कुलमात्रा पूरे ब्रह्मांड में कम हो रही है।

इसके अनुसार ऊर्जा का प्रत्येक स्थानांतरण या रूपांतरण ब्रह्मांड को बेतरतीब कर देता है। दूसरे शब्दों में कोई भी भौतिक विधि या रासायनिक क्रिया शतप्रतिशत सक्षम नहीं होती है। कुछ ऊर्जा अव्यवस्था को संयोजित करने में निकल जाती है। वैज्ञानिकों ने इस निरूद्देश्यता या अव्यवस्था की माप को **एन्ट्रोपी** (Entropy) कहा है। अंतरिक्ष की एन्ट्रोपी ऊर्जा प्रत्येक स्थानांतरण या रूप परिवर्तन के साथ बढ़ती है। 10 से 20 अरब वर्ष पूर्व जो स्थितिज ऊर्जा अंतरिक्ष के पास थी वो अब कभी भी उपलब्ध नहीं होगी। अंतरिक्ष की यह बढ़ती हुई एन्ट्रोपी क्यों कम दिखाई देती है। यह स्थिति इसलिए है क्योंकि एन्ट्रोपी बढ़ते हुए ताप का स्थान ले रही है, जो अव्यवस्थित आणविक गति की ऊर्जा है।

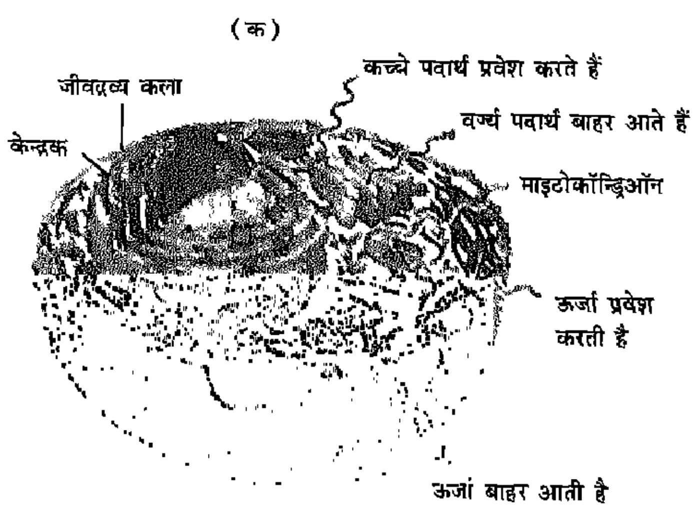
जीव खुले तंत्र होते हैं

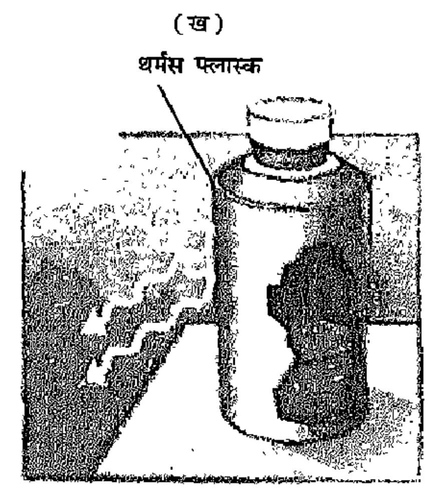
यदि ऊर्जा का कभी भी क्षय नहीं होता है (थर्मोडायनेमिक्स का प्रथम नियम), तो ऊर्जा के पुन: चक्रण को कौन रोकता है? इसका उत्तर थर्मोडायनामिक्स के द्वितीय नियम में ढूंढा जा सकता है। 'तंत्र' शब्द यहां पर अंतरिक्ष के किसी भाग को दर्शाता है जो विशिष्ट पदार्थ और ऊर्जा लिए हुए हैं और जिसका ऊर्जा रूपांतरण थर्मोडायनेमिक्स में अध्ययन किया जाता है। बचा हुआ अंतरिक्ष तंत्र के बाहर रहता है और आस-पास का वातावरण माना जाता है। एक खुले तंत्र में जैसे कि जीवित कोशिका, ऊर्जा और पदार्थ तंत्र और चारों ओर के वातावरण के बीच स्थानांतरित हो सकता है। खुला शब्द यह तथ्य बताता है कि जीवों और उनके वातावरण के मध्य पदार्थों और ऊर्जा का आदान-प्रदान होता है। जीव **खुला तंत्र** होते हैं क्योंकि वे अपने वातावरण से लगातार प्रतिक्रिया करते रहते हैं (चित्र 2.9 क)।

एक बंद तंत्र वह है जिसमें अपने बाह्य वातावरण से पदार्थ व ऊर्जा का विनिमय नहीं होता है। आप कल्पना कीजिए एक निश्चित मात्रा का गर्म द्रव एक थर्मस फ्लास्क या बोतल में रखा जाता है तथा उसका ढक्कन बंद कर दिया जाता है। क्या यह तथ्य सत्य नहीं है कि द्रव को इसके बाह्य वातावरण से पृथक कर लिया गया है। थर्मस फ्लास्क एक बंद तंत्र प्रदर्शित करता है (चित्र 2.9 ख)। थर्मस फ्लास्क के आंतरिक वातावरण और बाह्य वातावरण के बीच विनिमय का प्रश्न ही नहीं उठता। जहां तक ऊर्जा से संबंध है, द्रव थर्मस फ्लास्क में उसकी क्षमता के अनुसार काफी समय तक गर्म रहता है। इस समय द्रव की उष्मा ऊर्जा न तो बाहर विसर्जित होती है न ही बाहर से अंदर आती है। इससे द्रव गर्म रहता है। इस प्रकार थर्मस फ्लास्क बंद तंत्र का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। ऐसा विश्वास करने का कोई कारण नहीं हैं कि उष्मा गति का प्रथम नियम सजीवों पर लागू नहीं होता। वास्तव में यह संपूर्ण ब्रह्मांड या ब्रह्मांड के किसी भी बंद तंत्र पर लागू होता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि खुला तंत्र एक बड़े बंद तंत्र का एक अंश मात्र ही तो है।

2.4 उपापचय सभी रासायनिक क्रियाओं का समुच्चय है

पृथ्वी पर जीवन एक बिना रुके ऊर्जा प्रवाह को कोशिका के रूप में प्रदर्शित करता है, यह प्रवाह एक कोशिका से दूसरी कोशिका व एक जंतु से दूसरे जंतु में चलता रहता है। सभी जीवों में ऊर्जा व पदार्थों के निरंतर वितरण की आवश्यकता होती है। जीवों व वातावरण के बीच पदार्थ व ऊर्जा का विनिमय तथा पदार्थों का व ऊर्जा का स्वयं जीव में रूपांतरण को ही **उपापचय** कहते हैं दूसरे शब्दों में उपापचय वे समुच्य रासायनिक क्रियाएं हैं जो एक जीव दर्शाता है तथा कोशिका के





चित्र 2.9 (क) खुला तंत्र (ख) बंद तंत्र

अंदर अणुओं के अंतर क्रियाओं के द्वारा होती है। विभिन्न जीवों में तथा उनकी कोशिकाओं में भिन्नता के पश्चात् भी उपापचयी क्रियाएं समान प्रकार की होती हैं।

एन्जाइम निर्देशित उपापचयी प्रक्रियाएं

एक पदार्थ जो क्रिया की गति बढ़ाता है, लेकिन क्रिया के अंत में अपरिवर्तित रहता है उसे उत्प्रेरक कहते हैं। एक अकार्बनिक उत्प्रेरक प्लेटिनम जिस क्रिया को मदद करता है, उसके प्रति उदासीन बना रहता है । लेकिन कोशिकाओं को विशिष्ट क्रियाओं के लिए विशिष्ट उत्प्रेरकों की आवश्यकता होती है। इसी कारण कोशिकाओं में बहुत से प्रकार के अत्यधिक विशिष्ट कार्बनिक उत्प्रेरक विकसित कर लिए हैं जिन्हें **एन्जाइम** कहते हैं।

जंतु हजारों विभिन्न प्रकार के एन्जाइम धारण करते हैं जिनसे कई प्रकार की क्रियाएं होती हैं। इनमें से कई क्रियाएं कोशिकाओं में क्रमानुसार होती हैं जिन्हें जैव रासायनिक प्रक्रियाएं कहते हैं। एन्जाइम जैव रासायनिक प्रक्रियाओं को इच्छित दिशाओं में निर्देशित करते हैं। अधिकतर एन्जाइम गोलाकार प्रोटीन अणु होते हैं जिनकी सतह पर एक या अधिक स्थल (Clefts) होते हैं जिन्हें क्रियाशील सतह कहते हैं। एक निश्चित एन्जाइम साधारणतया केवल एक प्रकार के अभिकारक या एक जोड़ा अभिकारक से क्रिया कर सकता है जिसे क्रियाधार कहते हैं। क्रियाधार एन्जाइम की क्रियाशील सतह पर बंधकर एन्जाइम-क्रियाधार समूह बनाता है। उदाहरणार्थ, एन्जाइम सूक्रेस केवल सूक्रोस पर क्रिया करके ग्लूकोज और फ्रक्टोज बनाता है। यह दूसरे डाइसेकेराइड जैसे माल्टोस पर क्रिया नहीं करेगा।

$$\text{क्रियाधार} \xrightarrow{\text{एन्जाइम}} \text{उत्पाद}$$

$$\text{सूक्रोस + जल} \xrightarrow{\text{सूक्रेज}} \text{ग्लूकोस + फ्रक्टोस}$$

पूरी तरह से उपापचयी क्रियाएं कोशिका के पदार्थों और ऊर्जा संसाधनों को व्यवस्थित रखने से संबंधित हैं। कुछ उपापचयी प्रक्रियाएं जटिल अणुओं को सरल अणुओं में तोड़कर ऊर्जा छोड़ते हैं। ये क्रियाएं रासायनिक बंध तोड़कर ऊर्जा एकत्रित करते हैं और अपचय प्रक्रिया या अपचय (Catabolism) कहलाते हैं। कोशिकीय श्वसन में ग्लूकोज ($C_6H_{12}O_6$) और दूसरे कार्बनिक पदार्थ ऊर्जा उत्पादन के लिए टूट कर CO_2 और H_2O उत्पन्न करते हैं।

$$\underset{\text{ग्लूकोज}}{C_6H_{12}O_6} + 6O_2 \xrightarrow{\text{एन्जाइम}} 6H_2O + 6\,CO_2 + \text{ऊर्जा}$$

अपचय प्रक्रिया
(कोशिकीय श्वसन)

$$12H_2O + 6CO_2 + \text{प्रकाश ऊर्जा} \longrightarrow C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$

ग्लूकोज + रासायनिक ऊर्जा

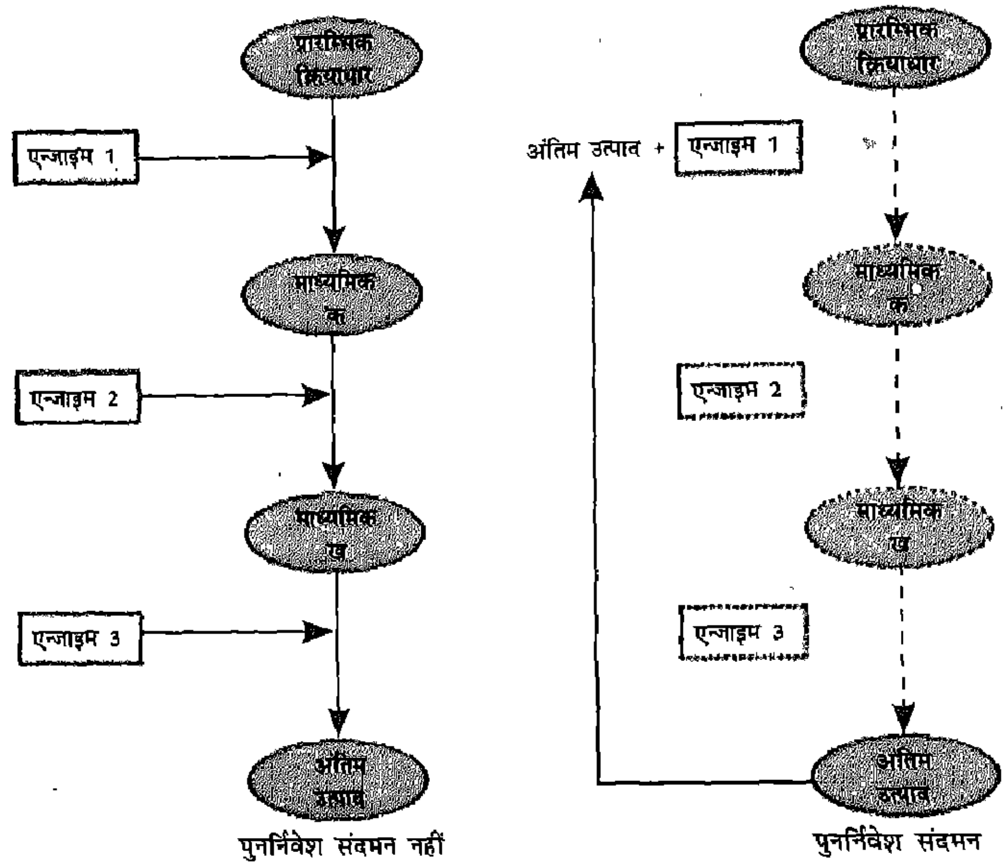
उपचय प्रक्रिया
(प्रकाश संश्लेषण)

इसकी विपरीत दिशा में क्रियाओं (प्रकाश संश्लेषण) में जटिल अणु के निर्माण में ऊर्जा प्रयुक्त होती है। जैसे ग्लूकोज सरल पदार्थों जैसे CO_2 और H_2O से उत्पन्न होता है। यह उपचय प्रक्रिया या उपचय कहलाता है।

जैव रासायनिक प्रक्रियाओं का नियमन दृढ़तापूर्वक होता है

यदि उपचय और अपचय साथ-साथ हों तो क्या होगा ? अंतिम परिणाम का अंदाजा लगाया जाए तो यह एक रासायनिक दुर्व्यवस्था दिखाई देती है। इसका कारण बहुत सरल है। एक पदार्थ उपचय द्वारा उत्पन्न होता है और तुरंत बाद अपचय से तोड़ दिया जाता है। दूसरी तरफ एक जैव रासायनिक प्रक्रिया में एक पदार्थ के अत्यधिक उत्पादन से ऊर्जा का अनावश्यक व्यय और कच्चे पदार्थ का दुरुपयोग होता है। असल में रासायनिक दुर्व्यवस्था या ऊर्जा और कच्चे पदार्थ के दुरुपयोग के लिए कोई जगह नहीं है। वास्तव में, प्रत्येक उपापचयी प्रक्रिया का संचालन कोशिका के नियंत्रण तंत्र के अंतर्गत होता है। एन्जाइम क्रिया विशिष्ट पदार्थों की उपस्थिति के प्रति संवेदनशील होती है जो एन्जाइम से जुड़ता है। एक पदार्थ जो एन्जाइम से जुड़ता है और उसकी क्रिया को कम या धीमा करता है उसे निरोधी कहते हैं। यदि यह एन्जाइम की क्रिया बढ़ाता है तो उसे सक्रियक कहते हैं।

सरल जैव रासायनिक प्रक्रियाओं का नियमन प्रायः एन्जाइम पर एलोस्टेरिक सतह पर निर्भर करता है जो प्रक्रिया में प्रथम क्रिया पद में उत्प्रेरक का कार्य करता है। एक एलोस्टेरिक सतह एन्जाइम का वह भाग है जिसकी क्रियाशील सतह से दूर जो एन्जाइम के कार्य को प्रारंभ अथवा रोक सकती है। उपापचयी प्रक्रियाओं में एक क्रिया का उत्पाद अगली क्रिया के लिए क्रियाधार का कार्य कर सकता है। अतः साधारणतया एन्जाइम निश्चित मार्ग के द्वारा जैव रासायनिक प्रक्रिया में प्रत्येक पद को छांट करके गति देते हैं या उसकी क्रियाशीलता बढ़ाते हैं।



चित्र 2.10 जैव-रासायनिक मार्ग

जब आवश्यकता होती है तब एक प्रक्रिया चक्र का अंतिम उत्पाद उस प्रक्रिया के प्रथम एन्जाइम की क्रिया के लिए **ऐलोस्टेरिक रोधी** बन जाता है। नियंत्रण प्रक्रिया की यह विधि **पुनर्निवेशन प्रक्रिया** कहलाती है (चित्र 2.10)। अतः सरल जैव रासायनिक प्रक्रियाएं प्रायः पुनर्निवेशन क्रियाविधि पर निर्भर करती हैं।

2.5 समस्थितिकी - नियमन तंत्र का एक कार्य

सभी जीव अपनी आंतरिक दशाओं को बाहरी वातावरण की तुलना में स्थिर रखते हैं। इस हेतु कई जीवों में नियंत्रण विधि होती है जो उनके आंतरिक कार्यों में तालमेल रखती है, जैसे कि कोशिकाओं को पोषण प्रदान करवाना, शरीर में पदार्थों का परिवहन। जबकि दूसरे अपने चारों ओर के वातावरण के साथ ताप, लवणता और दूसरे भौतिक पक्षों में अनुकूलन करके तालमेल स्थापित करते हैं। किसी भी रूप में आंतरिक वातावरण में गतिक स्थिरता या स्थाई अवस्था स्थापित करना ही **समस्थापना** कहलाती है।

साथ ही जीव अपने बाहरी वातावरण में उतार-चढ़ाव के प्रति भी समायोजित होने की क्षमता रखते हैं। इसी प्रकार बहुकोशिक जीवों की कोशिकाओं के बाहर विद्यमान अपने बाह्य कोशिकीय द्रव, जिसमें वह उपस्थित रहती है, को नियमन करने की क्षमता रखती है। ये अन्तःकोशिकी आधात्री ग्लूकोज, ऑक्सीजन, कार्बनडाईऑक्साइड और पानी और सोडियम, कैल्शियम, हाइड्रोजन आदि के आयनों की सांद्रता बहुत सीमित सीमा में भी नियमित करते हैं। कोशिकाएं अपने आसपास के वातावरण में संदेशों जैसे वृद्धि कारकों, हारमोनों आदि के प्रति भी संवेदनशील होती है। ऐसा करते हुए वे पूरे शरीर की क्रियाविधि को नियमित करने में भाग लेती है। समस्थापना जीवन की मूलभूत आवश्यकता है और अच्छे स्वास्थ्य की एक निशानी है। इसी कारण जब हम बीमार पड़ जाते हैं तो चिकित्सक हमें शरीर के ताप, रक्त के अवयवों का परीक्षण दाब और आंतरिक वातावरण के दूसरे मापों का लेखा-जोखा रखने के लिए कहते हैं।

उष्मा नियमन

जैविक कोशिका में उपापचय की क्रियाओं के दौरान उष्मा ऊर्जा (ताप) उत्पन्न होती है। बहुत बड़ी संख्या में पृष्ठवंशी या कशेरूकी (मछलियां, उभयचारी, सरीसृप) और पौधे अपनी अधिकांश उष्मा ऊर्जा को अपने वातावरण में छोड़ देते हैं। इस तरह के जीव **उष्माक्षेपी** (ectothermic) कहलाते हैं। ये जंतु ताप नियंत्रण के लिए अपने वातावरण पर निर्भर करते हैं।

उनकी त्वचा वातावरण के अनुसार जहां से उनको प्रयोग के लिए लाया गया है, के अनुरूप ठण्डी या गर्म प्रतीत होती है। यदि इनमें से कोई भी शीतावास से उठाया जाए या ठंडे पानी की जगह से पकड़ा जाए तो उनकी त्वचा भी ठंडी होगी। इसी वजह से इन्हें **असमतापी** कहते हैं। यदि किसी जंतु का निरीक्षण गर्म दोपहर में जब वह धूप में नहाया होता है तब किया जाए तो उसकी त्वचा गर्म प्रतीत होगी। वास्तव में, ये जंतु अपनी ऊर्जा दूसरे कार्यों जैसे जनन के लिए बचाकर रखते हैं।

स्तनधारी, पक्षी और कुछ मछलियां जैसे टूना मछली और स्वोर्ड मछली, उष्मा ऊर्जा को छोड़ने की बजाय वास्तव में इसे उपयोग के लिए संचित करके अपने पास सुरक्षित रखती हैं। ताप का नुकसान बचाने के लिए इन्होंने ताप अवरोधी युक्तियां जैसे वसा, बाल, पंख आदि उत्पन्न कर लिए हैं। ये **उष्माशोषी** (endothermic) कहलाते हैं। इनके शरीर का ताप तुलनात्मक रूप से निश्चित रहता है, जो साधारणतया वातावरण से अधिक होता है, इसी वजह से ऐसे **जंतु समतापी** कहलाते हैं। बाहरी ताप में कोई भी परिवर्तन इनके शरीर के ताप पर असर नहीं डाल सकता। जब बाहरी तापमान ठंडा होता है सतही रक्त वाहिकाएं सिकुड़ जाती हैं। जिससे गर्म रक्त गहरी वाहिकाओं में चला जाता है। जब बाहरी तापक्रम गर्म होता है तो सतही रक्त वाहिकाएं फैल जाती हैं जिसमें रक्त की गर्मी विकिरण द्वारा कम हो सके।

मानव में समतापता

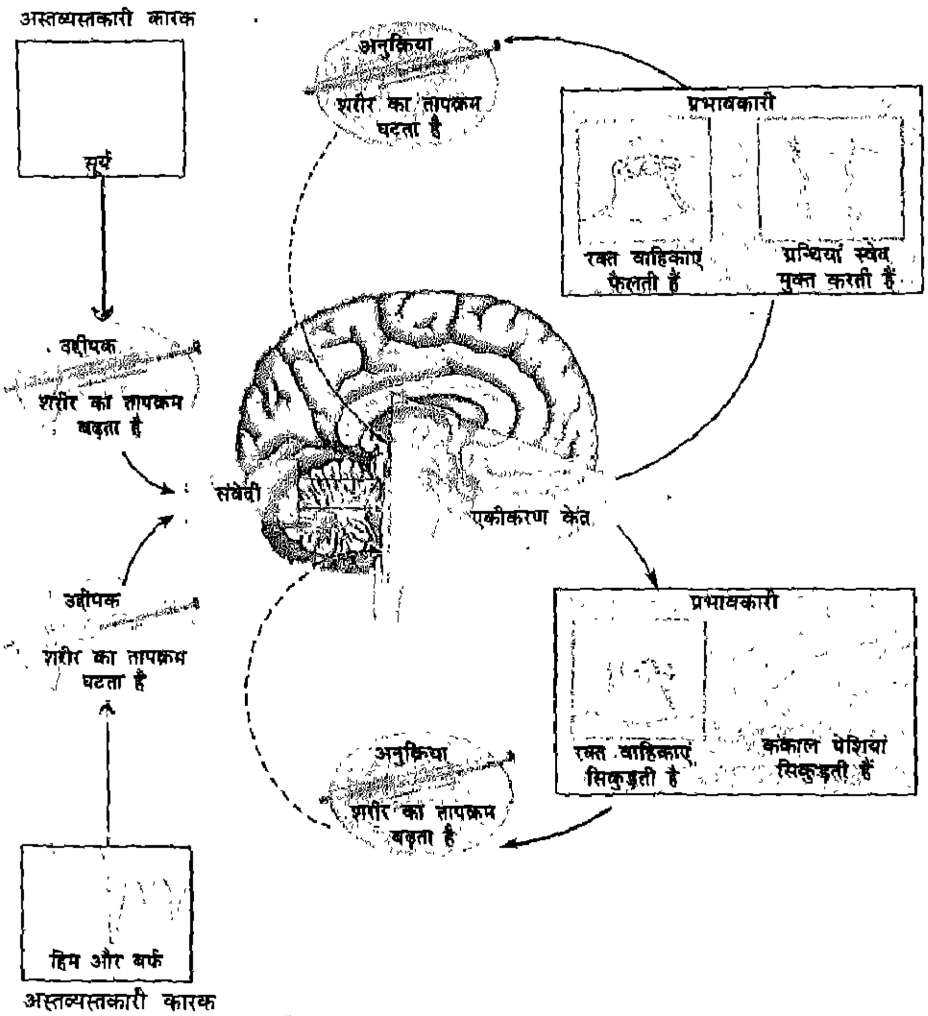
स्तनधारी होने के कारण हम उष्माशोषी और साथ-साथ समतापी हैं। शारीरिक ताप, जो 37°C (अर्थात् 98.6°F) होता है, को बनाए रखने के लिए हमारे शरीर में संवेदी बिंदु होते हैं जो निश्चित चिह्नों का पता लगाते हैं। इसकी तुलना कमरे के वायु अनुकूलन मशीन के ताप स्थापक के कार्य से की जा सकती है। सामान्यत: इसका ताप पर नियंत्रण रहता है। यदि कमरे का ताप नियंत्रित बिंदु से अधिक बढ़ जाता है तो तापस्थापक के अंदर उपस्थित संवेदी बिंदु बदलाव का पता लगा लेता है और मशीन के प्रभावों की क्रियाशीलता को सक्रिय कर देता है।

हमारी त्वचा में दो तरह के संवेदी न्यूरोन पाए जाते हैं। ये हमारे शरीर के बाहर के तापमान में बदलाव के प्रति संवेदनशील होते हैं और **उष्माग्राही** (thermoreceptors) कहलाते हैं। इनमें से कुछ निम्न (ठंडे) ताप के प्रति संवेदनशील होते हैं और ***शीतग्राही*** (cool receptors) कहलाते हैं। जबकि दूसरे गर्म ताप के प्रति संवेदी होते हैं और **गर्मग्राही** कहलाते हैं। इनमें से पहली प्रकार के तो ताप कम होने पर उद्दीपन करते हैं जबकि दूसरा ताप बढ़ने पर होता है। इसके विपरीत गर्मी शीत ग्राही को रोकती है और ठंडक गर्मग्राही को बंद करती है। गर्मग्राही अधिचर्म के तुरंत नीचे पाए जाते हैं, जबकि शीतग्राही अधरत्वचा में थोड़ा नीचे गहराई में उपस्थित होते हैं। हमारे मस्तिष्क में हाइपोथेलेमस के अंदर भी उष्माग्राही होता है। ये ग्राही घूमते हुए रक्त का ताप नियंत्रित रखते हैं और शरीर के आंतरिक ताप की सूचना मस्तिष्क को देते हैं। त्वचा के उष्माग्राही बाहरी ताप में कोई भी बढ़त महसूस करते हैं जो कि अव्यवस्था करने वाले कारक जैसे सूर्य के द्वारा होता है और यह संदेश हाइपोथैलेमस के उष्माग्राही को देते हैं। हाइपोथैलेमस कार्य को सक्रिय करके अपनी प्रतिक्रिया करता है जैसे कि स्वेद ग्रन्थियां और त्वचा की रक्त वाहिकाएं। परिणामस्वरूप पसीना निकलना और रक्त वाहिकाओं का चौड़ा होना प्रारंभ हो जाता है जिससे शारीरिक ताप के विकिरण होने पर ताप घट जाता है। दूसरे शब्दों में निश्चित बिंदु हाइपोथैलेमस द्वारा बचाया जाता है या निश्चित बिंदु का हाइपोथैलेमस द्वारा रक्षा या बचाव किया जाता है। चूंकि शारीरिक ताप का नियंत्रण शरीर को ठंडा करके किया जाता है, इस स्थिति में यह ऋणात्मक दिशा में या विपरीत दिशा में होता है इस प्रकार का नियंत्रण तंत्र **ऋणात्मक पुनर्निवेश** कहलाता है (चित्र 2.11)।

जब ताप के अव्यवस्था करने वाले कारक हिम या बर्फ होती है तब हाइपोथैलेमस त्वचा की रक्त वाहिकाओं को सिकुड़ने का और मांस पेशियों को संकुचन का आदेश देती है जिससे कंपकंपी होती है। इसमें ताप किरणों की वजह से कम नहीं होता है लेकिन रक्त में गहराई में जाने पर बढ़ जाता है। अत: ऋणात्मक पुनर्निवेश लूप शारीरिक ताप को एक सामान्य श्रेणी में नियंत्रित रखते हैं।

2.6 वृद्धि, विकास और प्रजनन

सभी जीव वृद्धि, विकास और प्रजनन करते हैं। जंतु के भार या ऊतक के पूर्व आकार या इसके अंगों का बढ़ना वृद्धि कहलाता है। वृद्धि दो विभिन्न प्रकार के पदार्थों के बनने से होती है। ये जीवद्रव्यी पदार्थ हैं जैसे कोशिका-द्रव्य और केंद्रक और **ऐपोप्लास्मिक पदार्थ** जैसे कि संयोजी ऊतक के तंतु, मेरूरज्जू की आधायी और उपास्थि। ऐपोप्लास्मिक पदार्थ वे है जो कोशिका द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं और ऊतक का संघटक भाग बनाते हैं। कोशिकाओं और जंतुओं में से कोशिकाओं के लवण जैसे पाचक रस, पसीना आदि हटा दिया जाता है। इस रूप में यह ऐपोप्लास्मिक पदार्थों की श्रेणी में नहीं आते हैं। इसी प्रकार हम पानी पीते हैं, भोजन करते हैं और हमारा वजन बढ़ जाता है। इस तरह के शरीर के भार का बढ़ना वृद्धि कहलाती है।



चित्र 2.11 ऋणात्मक पुनर्निवेशन वलय

वृद्धि उपापचय के फलस्वरूप होती है जिसमें ऊर्जा का स्थानांतरण होता है। जब उपचय की दर अपचय के बराबर होती है, कोशिकाओं या जीवों के शरीर में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती है यदि उत्पादन की दर या उपचय विघटनकारी प्रक्रिया या अपचय दर से बढ़ जाती है, तो वृद्धि होती है। विपरीत दिशा में अपवृद्धि होगी।

सामान्यत: वृद्धि तीन प्रक्रियाओं अथवा विधाओं द्वारा होती है। ये हैं–कोशिका का संख्या में वृद्धि, कोशिका का आकार में बढ़ना और प्रचुर मात्रा में बाह्य-कोशिक आधात्री का स्रवण। वृद्धि, परिवर्धन के तीन मुख्य लक्षणों में से एक है। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि युग्मनज के भ्रूण में परिवर्धन के समय कोशिका का प्रचुरोद्भवन, आकार में बढ़ना और बाह्य-कोशिकीय पदार्थों का स्रवण होता है।

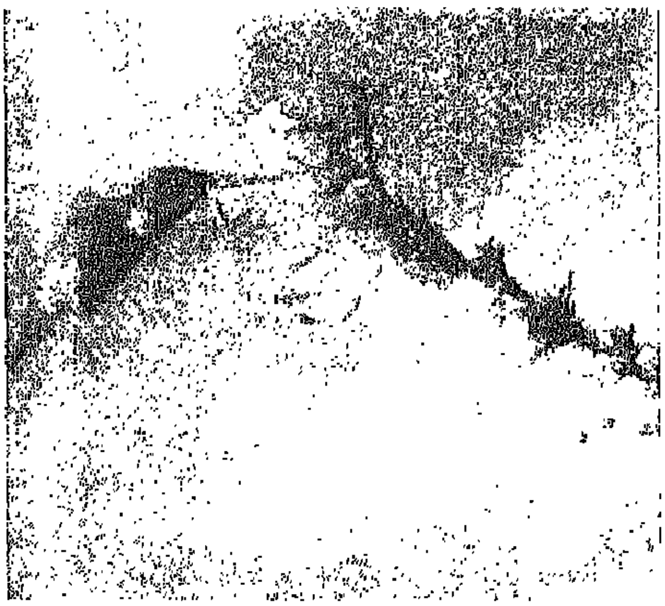
दूसरे दो गुण जिनके द्वारा परिवर्धन होता है वे हैं; **आकारिकी जनन** (Morphogenesis) और **विभेदन** (differentiation) है। आकारिकी जनन कोशिकीय गतिकों के द्वारा नए रूप उत्पन्न करती है। उदाहरणार्थ – युग्मनज, ब्लास्टुला में परिवर्तित होता है, ब्लास्टुला गैस्ट्रुला में और एक गैस्ट्रुला एक छोटे वयस्क जीव में है। विभेदन के परिणामस्वरूप कई प्रकार की विविधता-धारी कोशिकाएं उत्पन्न होती है। कुछ कोशिकाएं तंत्रिका-तंत्र, कुछ दूसरी हृदय और परिसंचरणी-तंत्र बनाती हैं और शनै:-शनै: इसी तरह दूसरे तंत्र बनते रहते हैं। तंत्रिका-तंत्र बनाने वाली कोशिकाएं संरचना और कार्य में परिसंचरण तंत्र बनाने वाली कोशिकाओं से भिन्न होती हैं। इस प्रकार की संरचनात्मक और क्रियात्मक विविधता की उपलब्धि ही विभेदन का मुख्य गुण है।

प्रजनन में जीव अपने जैसे जीव उत्पन्न करता है। जनन सतत जीवन के लिए और मृत्यु से जो जीवन का ह्रास होता है पूरा करने के लिए आवश्यक है। जीव दोनों ही अलिंगी और लैंगिक प्रकार से जनन करते हैं। अलैंगिक प्रकार में जंतु द्विविभाजन और बहुविभाजन द्वारा दो या अधिक संतति जंतुओं को जन्म देते हैं। कभी-कभी कायिक जनन अथवा खंडन के द्वारा शरीर का एक भाग पूरे वयस्क जीव में परिवर्धित हो सकता है। लैंगिक जनन में विशिष्ट जनन कोशिकाएं बनती हैं जो नर में शुक्राणु और मादा में अंडाणु होते हैं। सभी जीव अपनी संततिओं

में जनन-क्रिया के समय अपना आनुवंशिक पदार्थ पहुंचा देते है।

2.7 अनूकूलन

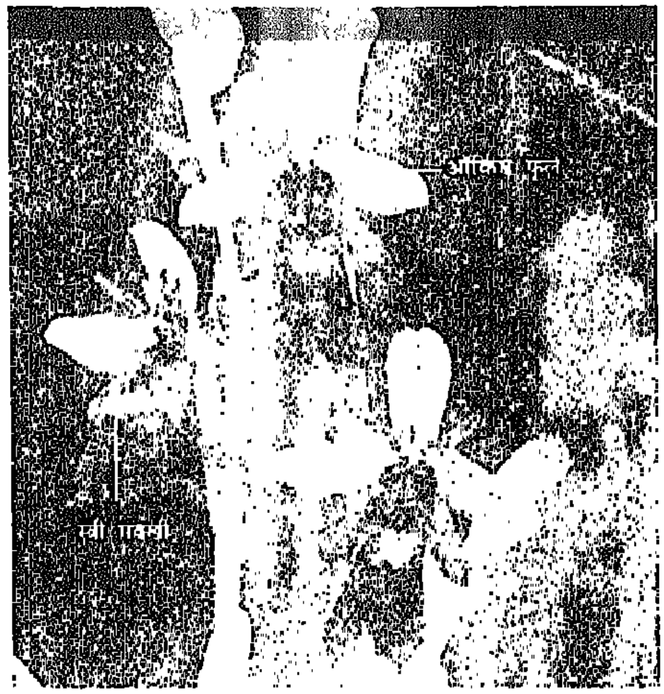
हम जानते हैं कि पक्षियों में पंख होते हैं। मकड़ियां जाल बुनती हैं, रात्रिपुष्प अक्सर सफेद होते हैं और खुशबू छोड़ते हैं। रेगिस्तानी पौधे या तो पत्ती-विहीन होते हैं या इनमें मोटी, गद्देदार पत्तियों सहित रसमय तने-युक्त होते हैं। प्रायः गुंजन पक्षी की चोंच बहुत पतली और लंबी होती है जिससे यह फूलों का रस चूसती है। ये फूल अक्सर लाल या पीले, गंधहीन और बिना अवतरण मंच के होते हैं (चित्र 2.12)।



चित्र 2.12 सिन्दुरी गिल्ला के चारों ओर चक्कर काटती एक चिड़िया

यह भी देखा गया है कि आर्किडों की कुछ जातियों में आकार, गंध और रंग में मादा मधुमक्खियां, मक्खियों की कुछ जातियों की तरह समानता लिए होती हैं (चित्र 2.13)।

क्या जंतुओं और पौधों के इन लक्षणों का कोई महत्त्व नहीं है ? कौन-सा समान बिंदु इन सब भिन्न-भिन्न लक्षणों को साथ बांध सकता है ? क्या इनका कोई जैविक महत्त्व है ? लक्षणों के गहन निरीक्षण और विश्लेषण द्वारा कोई सार्थक सुझाव के लिए इन विशेषताओं को साथ जोड़ा जाता है। इन सभी सुझावों को जोड़कर एक स्पष्टीकरण तैयार किया गया है। पक्षी उड़ने के लिए पंख काम में लेते हैं, मकड़ियां अपने शिकार जैसे उड़न-कीटों को पकड़ने के लिए जाल बुनती हैं, रात्रिपुष्प श्वेत रंग और गंध, कीटों को आकर्षित करने के लिए करते हैं और रेगिस्तानी पौधे नमी को रोके रखने के लिए यह सब करते हैं। पक्षी का उदाहरण देते हुए हम समझा सकते हैं कि ये पक्षी बिना पुष्प पर बैठे हुए कुछ



चित्र 2.13 स्त्री मक्खी की आकृति धारण करता हुआ एक ऑर्किड

पुष्पों से फूलों का रस चूसता रहता है क्योंकि उन पुष्पों पर पक्षी के बैठने के लिए कोई व्यवस्था या स्थान नहीं होता है। पक्षी अपनी अधिक लंबी और संकरी चोंच की वजह से ऐसे पुष्पों के सामने लगातार उड़कर पंख फडफडाते हुए भी फूलों का रस चूस सकते हैं। इसी तरह आर्किड मादा मधुमक्खियों या मक्खियों की तरह दिखाई देता है और नर मक्खियां गलती से आर्किड पुष्प से मैथुन करना चाहती है और ऐसा करते हुए ये अपने परागकण एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर स्थानांतरित कर देती हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जंतुओं या जीवित जीवों में वातावरण के प्रति अनूकूलन एक बहुत ही मुख्य गुण है। किसी जंतु का कोई भी ऐसा गुण जिसके धारण करने के परिणाम स्वरूप वह अपने वातावरण में, सुखपूर्वक रह सकता है **अनुकूलन** कहलाता है। किसी जंतु में जब इस तरह के आनुवांशिक गुण जो उसको उस वातावरण में रहने और जनन में सहायक होते हैं, मिलते हैं तो वह जंतु उस वातावरण में आसानी से अनूकूलित होकर रह सकता है। अनुकूलन वातावरण के प्रति संरचनात्मक, क्रियात्मक, व्यवहारात्मक हो सकता है। जीवन की क्रियाविधियां जैसे श्वसन, उत्सर्जन आदि एक वातावरण से दूसरे में भिन्न होती है। ये क्रियाएं प्राकृतिक वातावरण के ढांचे में विकास के समय पाई जाती हैं।

2.8 मृत्यु

अच्छी तरह फली-फूली सामान्य कोशिका की विभाजित होते रहने की क्षमता समेत किसी भी जीव का अस्तित्व हमेशा नहीं रह सकता। जब एक कोशिका जीर्ण हो जाती है तो विभाजित होना बंद कर देती है लेकिन कुछ समय तक उपापचय के लिए सक्रिय रहती है। और फिर धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है। हम जानते हैं कि जीवन मृत्यु की वजह से समाप्त होता है और जीव जीवन की इस क्षतिपूर्ति को पूरा करने के लिए जनन करते हैं। जीव-विज्ञान में मृत्यु का बहुत अधिक महत्त्व है। सभी जीवित पौधें और जंतु, निर्जीव पत्थर, चट्टानें आदि पदार्थ की बनी हुई हैं। ये जीव-वैज्ञानिक रूप में चक्रित होती हैं। जब जीवों की मृत्यु होती है, सूक्ष्मजीव मृत जीवों को अपघटित कर देते हैं परिणामस्वरूप जीवित शरीर के संघटक तत्त्व जैसे C, H, N, O, Ca, K, P और S अपने सहसंयोजी बंधों से मुक्त होकर पारिस्थितिकी-तंत्र में वापस चले जाते हैं। यह सजीव और निर्जीव पदार्थों के बीच में तत्त्वों के पुन: चक्रण का एक उदाहरण है। वास्तव में पुन: चक्रण प्रकृति में पदार्थों के बीच संतुलन बनाए रखता है।

सारांश

जीवन एक ऐसा लक्षण है जिससे हम सजीव और निर्जीव में भेद कर सकते हैं। सजीव जंतु कहीं अधिक व्यवस्थित और जटिल हस्तियां होती हैं जो एक या अधिक कोशिकाओं के बने होते हैं, कई रासायनिक क्रियाएं करते और उनका नियंत्रण करते हैं। जैविक संगठन, जीवन के रासायनिक संगठन के साथ आरंभ होता है और जंतु स्तर से गुजरता हुआ जैव-मंडल और पारिस्थितिकी-तंत्र में विलीन हो जाता है। आणविक स्तर पर परमाणु सबसे छोटी इकाई है जबकि जीव स्तर पर कोशिका सबसे छोटी इकाई है। परमाणु जुड़कर अणु बनाते हैं जो रासायनिक क्रिया द्वारा अंगक बनाते हैं। कोशिका में बहुत-से कोशिकीय अंगक होते हैं, ऐसा कोशिकाओं का एक समूह जो विशिष्ट कार्य कर सकता है, ऊतक बनाता है। जंतुओं में ऊतक स्तर से ऊपर के संगठन में कई ऊतक मिलकर अंग, कई अंग मिलकर एक तंत्र और कई तंत्र मिलकर जीवन की क्रियाएं करते हैं। पारिस्थितिकी-तंत्र में एक जीव सबसे छोटी इकाई है। कई जीव मिलकर जनसंख्या बनाते हैं। विभिन्न जातियों की जनसंख्याएं जो समान जगह रह रही हैं जैविक-समुदाय (biological community) का निर्माण करती है। समुदाय वातावरण के अजैविक कारकों से क्रिया करके पारिस्थितिकी-तंत्र का निर्माण करते हैं।

रासायनिक क्रियाएं पदार्थों के परमाणुओं की संरचना या संरचनात्मक संगठन में बदलाव लाती है। सभी रासायनिक क्रियाओं में इलेक्ट्रॉनों के आपसी संबंधों में बदलाव होता है, इसमें परमाणु एक अणु या आयनिक यौगिक से दूसरे में चले जाते हैं। इस तरह के स्थानांतरण से रासायनिक बंध टूटते हैं या पुन: बनते हैं लेकिन परमाणुओं की संख्या या व्यक्तित्व में कोई बदलाव नहीं आता है। कार्बन, जीवित कोशिका का एक मुख्य संरचनात्मक तत्त्व है। यद्यपि कार्बनडाईऑक्साइड में कार्बन होता है, यह साधारणता अकार्बनिक कहलाती है और कार्बन की मुख्य अकार्बनिक स्रोत है। कार्बनडाईऑक्साइड को रासायनिक क्रिया में भाग लेने से पहले पानी में घुलने की आवश्यकता होती है। आणविक ऑक्सीजन वातावरण का लगभग 21 प्रतिशत भाग बनाती है। यह जीवन के लिए अत्यावश्यक है और अधिकांश पौधों और जंतुओं द्वारा भोज्य पदार्थों से ऊर्जा प्राप्त करने की क्रिया में उपयोग में लाई जाती है। हरे पौधे प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में ऑक्सीजन छोड़ते हैं जो संपूर्ण वातावरण की आणविक ऑक्सीजन का मुख्य स्रोत है। कार्बन और हाइड्रोजन से बने कार्बनिक अणु हाइड्रोकार्बन कहलाते हैं। जैविक अणु छोटे और सरल हो सकते हैं। जैविक अणुओं के बड़े और जटिल समूहों को वृहत् अणु कहते हैं। चार मुख्य वृहत् अणु कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल हैं।

सभी प्रोटीन उप-इकाइयों, जो अमीनो अम्ल कहलाते हैं, के बने होते हैं। मात्र 20 विभिन्न अमीनो अम्ल ही प्रोटीन बनाने के लिए आवश्यक होते हैं जो प्राथमिक रूप से कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के बने होते हैं। प्रोटीन कोशिका का मुख्य संरचनात्मक और क्रियात्मक भाग बनाते हैं। ये जैविक उत्प्रेरक या एन्जाइम की तरह भी कार्य कर सकते हैं। न्यूक्लिक अम्ल बारंबार उपस्थित न्यूक्लियोटाइड उपइकाइयों की शृंखला के लंबे बहुलक हैं। न्यूक्लियोटाइड एक पेन्टोस शर्करा, एक फास्फेट समूह और अकार्बनिक नाइट्रोजन क्षार, प्यूरीन अथवा पाइरीमिडीन के बने होते हैं। आरएनए अणु में राइबोस शर्करा उपस्थित होती है। नाइट्रोजन क्षार चार प्रकार के होते हैं : दो प्यूरीन एडीनाइन तथा ग्वानाइन और दो पाइरीमिडीन साइटोसीन और थाईमीन।

जीवंत तंत्रों में बाहरी वातावरण में उतार-चढ़ाव के प्रति अनुकूलित होने के लिए नियंत्रित करने की क्षमता होती है। कई जीवों में संतुलित स्थायी अवस्था आंतरिक वातावरण, क्रियात्मक आकारिकी अथवा व्यवहारात्मक क्रियाकलापों द्वारा स्थापित की जाती है। अधिकांश कशेरुकी और पौधे अपनी अधिकांश ऊष्मा ऊर्जा अपने वातावरण में छोड़ देते हैं और ऊष्मा-रोधी कहलाते हैं और असमतापी होते हैं। स्तनधारी. पक्षी और कुछ मछलियां ऊष्मारोधी और समतापी होते हैं क्योंकि यह ऊष्मा ग्राही की मदद से ऊर्जा बचा लेते हैं।

जीवद्रव्यी और एपोप्लास्मिक पदार्थों के संश्लेषण से वृद्धि संभव होती है। जीव कोशिकाओं के प्रचुरोद्भवन, कोशिका के बढ़ने और स्रावण से वृद्धि करते हैं। परिवर्धन में वृद्धि, संरचना विकास और विभेदन पाया जाता है। जनन में जीव बिल्कुल अपने जैसे जीव उत्पन्न करते हैं। यह जीवन चलाने और जीवन की क्षतिपूर्ति के लिए आवश्यक है। जीव अलैंगिक या लैंगिक प्रकार से जनन करते हैं और अपना आनुवंशिक पदार्थ, डीऑक्सीराइबोस न्यूक्लिक अम्ल, अपनी संतति को दे देते हैं। अनुकूलन जंतुओं का एक गुण है जिससे जंतु अपने वातावरण में आराम से रहता है। यह संरचनात्मक, क्रियात्मक या व्यवहारात्मक कैसा भी हो सकता है। जीव-विज्ञान में मृत्यु का बहुत महत्त्व है। सभी जीवित जंतु और निर्जीव पदार्थ के बने होते हैं। पर्यावरण में जीवित जंतु, जैविक और निर्जीव अजैविक घटक हैं। जब जंतु मर जाते हैं तो सूक्ष्मजीव मृत पदार्थ को अपघटित करके छोटे तत्वों में तोड़ देते हैं और वह तब स्वतंत्र होकर पारिस्थितिकी-तंत्र में चले जाते हैं तथा पुनः चक्र में सम्मिलित हो जाते हैं। वास्तव में ऐसा पुनः चक्रण प्रकृति में पदार्थों का संतुलन बनाए रखता है।

अभ्यास

1. वे कौन-सी मूलभूत विशेषताएं हैं जो सभी सजीवों को एकीकृत करती हैं।
2. जैविक संगठन के विभिन्न स्तर और संबंधित विज्ञान की शाखाओं के अध्ययन हेतु आधुनिक विचारधारा को एक रेखांकित चित्र द्वारा समझाइए।
3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :
   (i) ________ पदार्थ के आधारभूत घटक हैं तथा जीवन की निम्नतर इकाई का निर्माण करते हैं।
   (ii) तीन उपपरमाणु कण जो जीवन से जुड़े हुए हैं ________, ________ एवं ________ हैं।
   (iii) प्रत्येक प्रोटोन पर ________ इकाई धन आवेश ; ________ इलेक्ट्रॉन पर ________ ऋण आवेश होता है जबकि न्यूट्रॉन पर ________ आवेश होता है।
   (iv) ________ किसी तत्त्व का सबसे छोटा भाग होता है।
   (v) सूक्ष्म-मात्रिक श्रेणी के आवश्यक तत्त्व शरीर के भार का ________% होते हैं तथा ये ________ हेतु जंतुओं के पोषण में अति आवश्यक होते हैं।
   (vi) कशेरुकियों की ________ ग्रंथि द्वारा स्रावित हार्मोन में आयोडीन तत्त्व आवश्यक होता है।
   (vii) मनुष्य को प्रतिदिन ________ मि.ग्रा. आयोडीन की मात्रा की आवश्यकता होती है जिससे कि वह ________ रोग से बचा रहे।
   (viii) परमाणु रासायनिक बंधन द्वारा जुड़कर ________ का निर्माण करते हैं।
   (ix) सोडियम क्लोराइड एक ________ महत्वपूर्ण अणु है जिसमें परमाणु ________ बंध द्वारा जुड़े होते हैं।
   (x) सोडियम एवं क्लोराइड आयन पदार्थों की कोशिका झिल्ली के आर-पार ________ करने में सहायक होते हैं।
   (xi) ऐसी रासायनिक क्रियाविधि जिसमें रासायनिक गति को प्रारंभ करने में बाह्य स्रोत से ऊर्जा प्राप्त की जाती है ________ कहलाती है।
   (xii) ऐसी रासायनिक क्रियाविधि जिसमें ऊर्जा का उत्पादन होता है तथा ऊर्जा बाह्य स्रोत से प्राप्त नहीं की जाती, ________ कहलाती है।
   (xiii) क्रियाशील ऊर्जा वह ऊर्जा है जो ________ रासायनिक बंध बनाने में काम आती है।

4. जीवन की रासायनिक क्रियाओं के लिए क्षीण बंध क्यों लाभकारी होते हैं ? अपने उत्तर को सामान्य नमक के उदाहरण द्वारा समझाइए।
5. जब ध्वनि का उद्गम रुक गया हो तब हम उस ध्वनि को क्यों नहीं सुन पाते ?
6. उन बृहद् अणुओं का वर्णन कीजिए जो कोशिका के मुख्य ऊर्जा स्रोत के रूप में कार्य करते हैं।
7. निम्न सारणी को पूरा कीजिए :

बृहद अणुओं के मुख्य वर्गों का सारांश

श्रेणी	रासायनिक तत्व	एकक उपइकाई	प्रमुख कार्य
1. ______	C, H, O, N, P,	2. ______	3. (क) ______ (ख) ______
4. ______	5. ______	6. ______	(क) ऊर्जा संचित करते हैं। (ख) जैव-कलाओं का निर्माण करते हैं। (ग) हार्मोन
प्रोटीन	7. ______	8. ______	9. (क) ______ (ख) ______
10. ______	11. ______	12. ______	13. ______

8. जीव-तंत्रों में ऊर्जा प्रवाह किस प्रकार होता है ?
9. 'मुक्त ऊर्जा' से आप क्या समझते हैं ?
10. 'खुला तंत्र' क्या है ? यह बंद तंत्र से कैसे भिन्न है?
11. उपापचय क्या है ? उपापचय में एन्जाइमों की भूमिका का वर्णन कीजिए।
12. अपचय एवं उपचय क्रियाविधियों को विभेदित कीजिए। इन दोनों क्रियाविधियों का नियमन कैसे होता है ?
13. समस्थितिकी क्या है ? विभिन्न कशेरुकी समूहों में तापमान नियमन की दो क्रियाविधियों को संक्षेप में बताइए।
14. पुनर्निवेशन क्रियाओं के वलय को मनुष्य में समतापता का उदाहरण देकर समझाइए।
15. वृद्धि क्या है ? वृद्धि का उपापचय से क्या संबंध है ?
16. परिवर्धन की तीन प्रमुख विशिषताएं क्या हैं ? जीवन की सततता बनाए रखने में वृद्धि, परिवर्धन एवं जनन के मध्य क्या पारस्परिक संबंध है ?
17. अनुकूलन क्या है ? उपयुक्त उदाहरणों सहित समझाइए।
18. मृत्यु क्या है ? मृत्यु का जैविक महत्व क्या है ?

अध्याय 3

जीवन की उत्पत्ति एवं जैव विकास

जीवन की उत्पत्ति कब तथा किस प्रक्रिया द्वारा हुई इस प्रकार के बहुत-से प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना कठिन है क्योंकि जीवन की उत्पत्ति का अवलोकन करने के लिए हम अतीत में नहीं जा सकते । जब से पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई इसमें अत्यधिक परिवर्तन आते गए । अत: जीवन का इतिहास वास्तविक रूप में दो प्रमुख घटनाओं से युक्त है– पहला जीवन की उत्पत्ति तथा दूसरा वे क्रियाविधियां जो जीवों में समय के अनुसार होने वाले परिवर्तन या जैव विकास का कारण बनीं ।

3.1 जीवन की उत्पत्ति

सबसे पुरानी लगभग 43 करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों पर जीवन का कोई चिह्न नहीं पाया जाता है । कम से कम आज तक इन पर जीवन का कोई चिह्न नहीं देखा गया है । लगभग 39 करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में कार्बोनेट पाया गया । भूगर्भ वैज्ञानिकों का मानना है कि इन कार्बोनेटों की उत्पत्ति जीवन की क्रियाओं द्वारा हुई । इसलिए यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर जीवन लगभग 39 करोड़ वर्ष पूर्व उपस्थित था हालांकि सबसे पुराने सूक्ष्म जीवाश्मों जो लगभग 33 से 35 करोड़ वर्ष पुराने हैं उनमें प्रकाश संश्लेषी सायनोंजीवाणुओं की उपस्थिति अंकित की गयी है। इसके आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि जीवन का प्रारंभ कब तथा कैसे हुआ ।

जीवन की उत्पत्ति का सिद्धांत

जीवन की उत्पत्ति को समझने के लिए बहुत से सिद्धांत सामने आए हैं। जीवन की उत्पत्ति से संबंधित अधिकांश विचारों को निम्न चार में से भी एक वर्ग में रखा जा सकता है:

(i) ***विशिष्ट सृष्टिवाद :*** यह धार्मिक विचारों से संबंधित मत है । इस मत के अनुसार जीव की उत्पत्ति अलौकिक, बुद्धिमान तथा दैवी शक्ति द्वारा हुई। धर्म के अनुसार जीवन की उत्पत्ति एक अलौकिक या जैवशक्ति घटना है जो भूतकाल के किसी निश्चित समय पर घटित हुई। इसके अनुसार जीवन अपरिवर्तनशील है तथा उत्पत्ति के बाद उसमें परिवर्तन नहीं आए हैं।

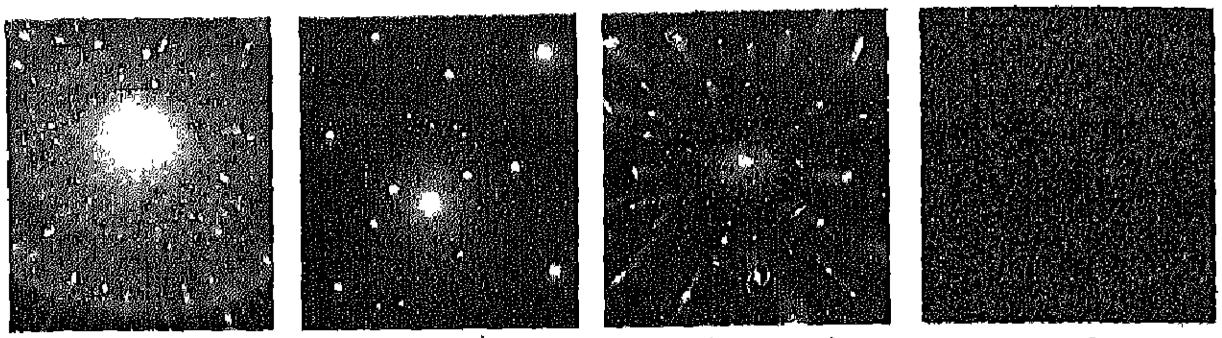
(ii) ***स्वत: जननवाद या अजीवात् जनन :*** इस सिद्धांत के अनुसार जीवों की उत्पत्ति निर्जीव पदार्थों द्वारा स्वत: ही होती है–**अजीवात् जनन** । उदाहरणत: मेंढक नम मिट्टी से आया है । यह परिकल्पना उस समय निराधार हो गई जब लुई पाश्चर (1862) ने प्रमाणित किया कि सूक्ष्मजीवों की उत्पत्ति दूसरे सूक्ष्मजीवों से हुई (चित्र 1.2 देखिए) । तब से सर्वत्र इस तथ्य को माना जाता रहा है कि जीवन की उत्पत्ति पहले से उपस्थित जीवों से ही हुई है–**जीवात् जनन** ।

(iii) ***पार्थिवेतर अथवा अंतरिक्ष उद्‌भव :*** इस मत के अनुसार जीवन की उत्पत्ति बिना किसी पूर्व उपस्थित जीवित पदार्थ के द्वारा हुई । इसके अनुसार जीवन की उत्पत्ति ब्रह्मांड की विभिन्न आकाश गंगाओं में एक या एक से अधिक बार हुई होगी । इस अंतरिक्ष उद्‌भव को पैन्स्पर्मिया (Panspermia) भी कहा जाता है । इसके अनुसार किसी श्रेणी के जीवन का एक बीजाणु अथवा एक बीज (शुक्राणु) जिसका उद्‌भव भौमेतर था, बंजर पृथ्वी पर आए और उसी से पृथ्वी पर जीवन का उद्‌भव हुआ । इस मत की काफी कम संभावना व्यक्त की गई हैं क्योंकि अंतर ग्रहों पर परिस्थितियां जीवन के अनुकूल नहीं हैं । कम तापमान, वायुमंडल का अभाव, अधिक सूखा, किरणों का अधिक प्रभाव तथा सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों के कारण जीवन संभव ही नहीं हो सकता ।

(iv) ***भौम या अजीवात जनन :*** इस सिद्धांत के अनुसार जीवों की उत्पत्ति क्रमबद्ध रासायनिक क्रियाओं के द्वारा हुई। वैज्ञानिक विचारों के अनुसार पृथ्वी पर जीवन का उद्‌भव कुछ कार्बनिक अणुओं के मिलने से हुआ जो पृथ्वी के उद्‌भव की कहानी बताती है ।

पृथ्वी की उत्पत्ति (उद्‌भव)

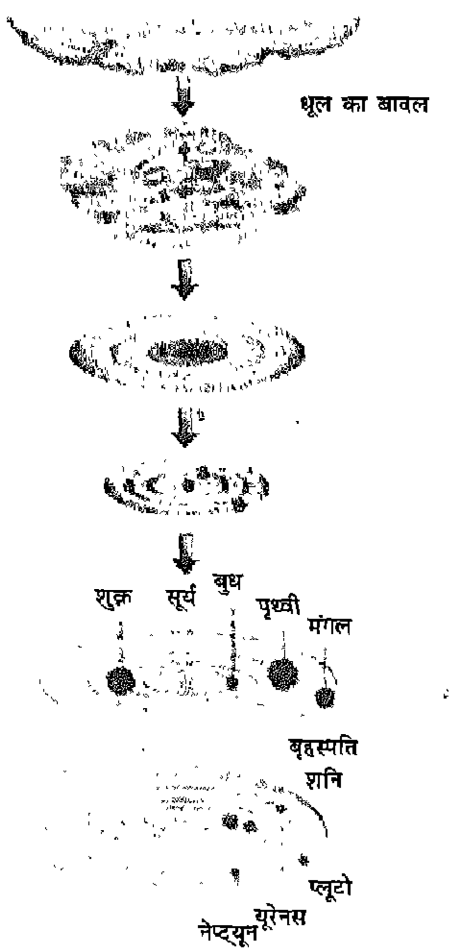
जीवन का उद्‌भव पृथ्वी के उद्‌भव से जुड़ा हुआ है । वास्तव में जीवन का इतिहास एक अशांत पृथ्वी के चरणबद्ध विकास का वर्णन है । **बिग बैंग सिद्धांत** के अनुसार ब्रह्मांड का प्रारंभ अचानक लगभग 15 करोड़ वर्ष पूर्व बिग बैंग के अत्यधिक सघन वस्तु के ताप नाभिकीय विस्फोट से हुआ (चित्र 3.1) । लगभग 4.5 करोड़ वर्ष पूर्व गैसीय बादल के सघनीकरण के कारण सौरमंडल का उद्‌भव हुआ । गैस के ये सघनित बादल अपने गुरूत्वाकर्षण बल के कारण ही सिकुड़ गए और अंत में परमाणुओं



बृहत धमाका | गैलेक्सियों का निर्माण | वर्तमान में विकिरित होती हुई गैलेक्सियां | शून्य भविष्य

चित्र 3.1 बिग बैंग सिद्धांत का व्यवस्था चित्र

और कणों की एक चपटी घूर्णत चक्री बन गए जिन्हें सौर निहारिका (solar nebula) कहा गया (चित्र 3.2) । इसका मध्य भाग गर्म होकर एक तारा बन गया जिसे सूर्य कहा गया। परमाणु तथा धूल के कण जो सौर नीहारिका के मध्य के चारों ओर घूम रहे थे तब संपुजित हो गए। ये संपुजन अंत में सब कणों को बहा ले गए और ग्रहों के आकार जैसे बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नैप्टयून व प्लूटो बने। ये नौ ग्रह तथा मंगल व बृहस्पति के मध्य व सौरमंडल के मध्य की क्षुद्रग्रह पट्टी लगभग 46 करोड़ वर्ष पूर्व बनी । पृथ्वी का एक ठोस भाग स्थलमंडल व इनके चारों ओर गैसों का आवरण वायुमंडल कहलाया। तत्पश्चात पृथ्वी का जलीय भाग–जलमंडल उस समय बना जब पृथ्वी लगभग 100° सेल्सियस तापमान से नीचे ठंडी हुई।



चित्र 3.2 सूर्य की नीहारिका के संघनन का व्यवस्थात्मक निरूपण

अजीवात् जनन या रासायनिक जीवोत्पादन

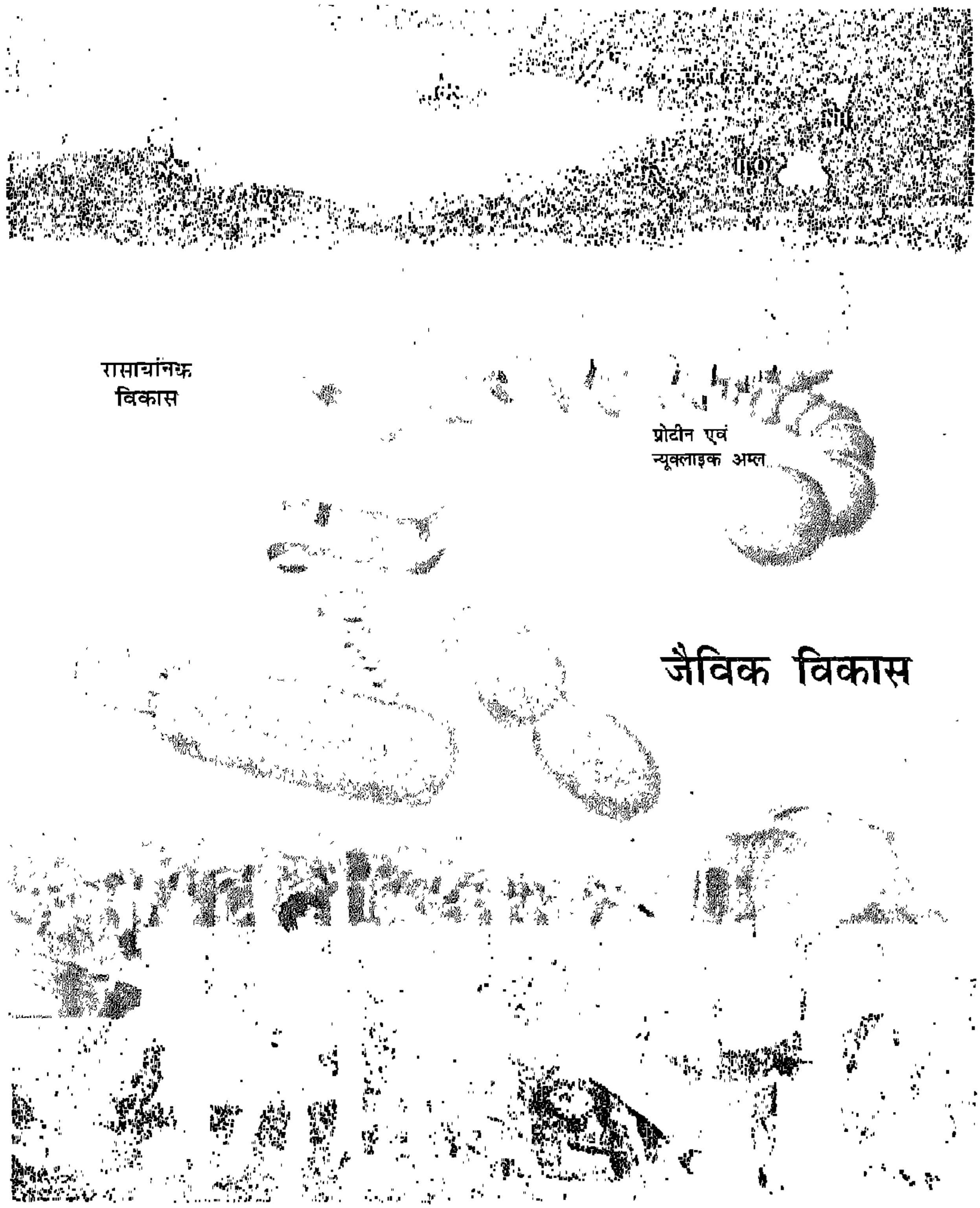
अधिकांश वैज्ञानिकों का मत है कि जीवन का उद्भव निर्जीव पदार्थों से हुआ। क्योंकि अजीवात् जनन अथवा रासायनिक उद्भव सिद्धांत एकमात्र सिद्धांत है जो जीवन के उद्भव का स्पष्ट वर्णन करती है जिसका परीक्षण भी किया जा सकता है। इसे अधिकांश वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है । परिणामस्वरूप हमारी जागरूकता एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर रुक जाती है ।

ऑपरिन-हाल्डेन सिद्धांत

एलैक्जैंडर आई. ऑपरिन (1894-1980), एक रूसी जैव रासायनज्ञ तथा जे.बी.एस. हाल्डेन (1892-1964), एक ब्रिटिश वैज्ञानिक ने एक सिद्धांत दिया जिसके अनुसार सजीव वस्तुएं निर्जीवों से उत्पन्न हुई । उन्होंने यह भी सुझाया कि घटनाओं का क्रम क्या रहा होगा । 1923 में ऑपरिन ने सिद्ध किया कि पृथ्वी पर जीवन का उद्भव सुदूर अतीत में हुआ है और वैसी परिस्थितियां आज नहीं दिखाई पड़ती । अपनी पुस्तक *जीवन की उत्पत्ति* (The Origin of Life, 1938) में ऑपरिन ने प्रस्तावित किया "प्रथमत: अजीवात् जनन तत्पश्चात जीवात् जनन" । ऑपरिन के इस सिद्धांत को **आदि अजीवात जनन** कहा जाता है।

ऑपरिन तथा हाल्डेन (1929) के अनुसार उस समय पृथ्वी का वायुमंडल अपचायक था ना कि ऑक्सीकारक, जैसा कि

वर्तमान काल में है। फलस्वरूप आदि अणुओं का स्वतः जनन हुआ होगा। इन अजैव रसायनों से जैव पदार्थ के परिवर्तन में लगभग एक करोड़ वर्ष लगे। ऑपरिन तथा हाल्डेन के अनुसार प्रारंभिक काल में पृथ्वी पर ऑक्सीजन कम थी। सम्भवतः पूर्वकालिक वातावरण में ऑक्सीजन मुक्त गैस अवस्था में अनुपस्थित थी। फिर भी यह गैस पानी तथा धातु आक्साइड के रूप में चट्टानों की परतों पर तथा उनके कणों के रूप में विद्यमान थी। भूगर्भ विज्ञान के आंकड़ों के अनुसार कुछ



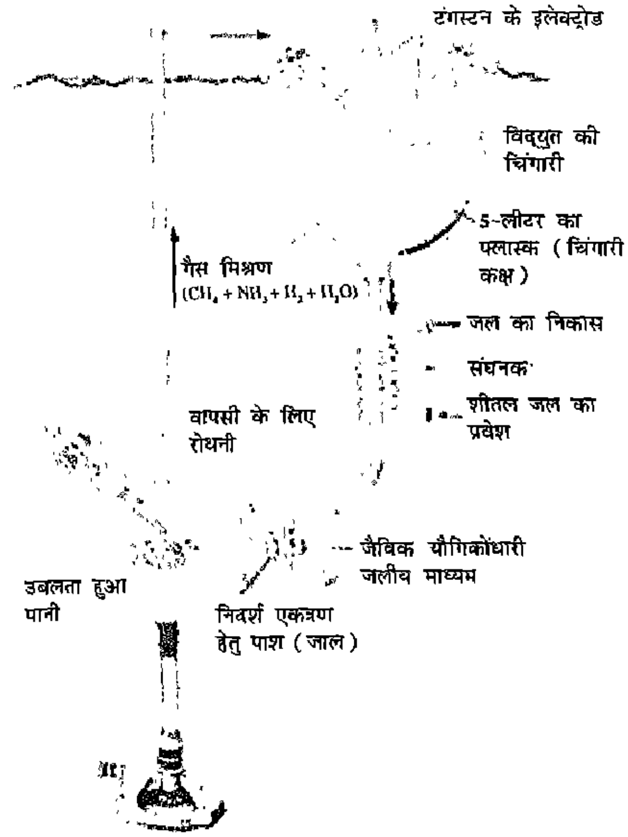
चित्र 3.3 जीवन का अजैव अथवा रासायनिक एवं जैविक विकास

पदार्थ काफी मात्रा में अपचयित होकर अवसाद के रूप में पाए जाते हैं जैसे यूरेनाइट, पायराइट आदि । इस प्रकार की परिस्थिति का अर्थ है पूर्व काल में मजबूत अपचयित वातावरण का पाया जाना। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी कार्बनिक यौगिक का विखंडन द्वारा ह्रास पृथ्वी के पूर्ववर्ती काल में नहीं हुआ। उस समय वायुमंडल में ओजोन की परत नहीं थी, जोकि जीवन के लिए हानिकारक पराबैंगनी किरणों को अवरुद्ध कर सके । पूर्वकालिक वायुमंडल में गैसों में हाइड्रोजन अधिक मात्रा में उपस्थित थी । जो मीथेन (CH_4), अमोनिया (NH_3) तथा पानी (H_2O) के रूप में विद्यमान थी। इस प्रकार कार्बन, नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन संतृप्तयौगिक अवस्था में उपस्थित हुआ । वातावरणीय जल वाष्प में प्रारंभिक अवस्था में बूंदों के रूप में संघनित हुई तथा चट्टानों की सतह पर गिरी तथा इकट्ठी होकर जलीय गड्ढे तथा समुद्र का निर्माण हुआ। इस क्रियाविधि में चट्टानों का क्षरण होना तथा लवणों का घुलकर (उदाहरणार्थ क्लोराइड्स व फासफेट्स) समुद्रों में जाना निश्चित था। इस तरह हाल्डेन के **गर्म व तनु सूप** का निर्माण हुआ तथा विभिन्न रासायनिक तत्त्वों के संयोजन का मार्ग प्रशस्त हुआ ।

वातावरण में उपस्थित रसायनों द्वारा पानी में अनेक छोटे प्रारंभिक अणुओं का निर्माण हुआ जैसे अमीनो अम्ल, शर्करा, नाइट्रोजनी बेस अणु आदि । इन प्रारंभिक अणुओं के संयोजन से प्रोटीन, बहु-शर्कराएं, न्यूक्लियक अम्लों का निर्माण हुआ । इन कार्बनिक पदार्थों के पृथ्वी पर संश्लेषण हेतु ऊर्जा संगत के रूप में पराबैंगनी किरणों (सौर विकिरण), विद्युत विसर्जन (आकाशीय विद्युत), भीषण ताप (ज्वालामुखी फटना) तथा कई रेडियोधर्मी पदार्थों आदि का उपयोग हुआ । एक बार बनने के पश्चात् एक कार्बनिक अणु जल में इकट्ठा हो जाता है क्योंकि किसी अपघटनकारी जीव या उत्प्रेरक एन्जाइम की अनुपस्थिति में इसका अपघटन बहुत धीमा होता है (चित्र 3.3) । इस प्रकार के परिवर्तन आक्सीकृत वातावरण में संभव नहीं है क्योंकि आक्सीजन व सूक्ष्मजीवी, जीवित पदार्थ का अपघटन कर देते हैं ।

जीवन के अजीवीय उद्गम के प्रयोगात्मक प्रमाण

हेरोल्ड सी. यूरे (1893-1981), एक खगोलशास्त्री ने सर्वप्रथम 1952 में ऑपरिन-हाल्डेन के जीवन के उद्भव संबंधी प्रायोगिक कार्यों की पुष्टि की । यूरे ने अपने शोधार्थी स्टेनले एल.मिलर जो एक जैव-रसायनज्ञ था, को ऑपरिन-हाल्डेन द्वारा प्रारंभिक वातावरण के संबंध में दिए गए सिद्धांत से संबंधित प्रयोग को दुहराने हेतु कहा । मिलर ने (1953) सबसे पहले कार्बनिक



चित्र 3.4 आभासी आदि वातावरण में जीवन की उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए मिलर द्वारा किया गया प्रयोग

अणुओं के द्वारा पृथ्वी की प्रारंभिक स्थिति को प्रयोगों के द्वारा सफलतापूर्वक दर्शाने का प्रयास किया (चित्र 3.4) । मिलर ने अपने प्रयोगों में मीथेन, अमोनिया, पानी व हाइड्रोजन गैस की एक सीलयुक्त कक्ष में चिंगारी पैदा करके किया । उपरोक्त गैसीय मिश्रण की वाष्प को सीलयुक्त कक्ष से प्रवाहित किया जिसमें दो उच्च शक्ति के इलेक्ट्रोड चिंगारी उत्पन्न करने हेतु लगे हुए थे । चिंगारी उत्पन्न करने वाले कक्ष को एक संघनित नली की सहायता से एक दूसरे फ्लास्क से जोड़ा गया । तथा प्रथम फ्लास्क में गैसीय मिश्रण में चिंगारी उत्पन्न कर संघनित नलिका द्वारा मिश्रण का संघनन कर द्वितीय फ्लास्क में विलयन इकट्ठा किया गया । नियंत्रण परीक्षण में सिना ऊर्जा स्रोत के ये सभी वस्तुएं विद्यमान थीं।

अठारह दिन बाद, द्वितीय फ्लास्क में संघनन के पश्चात् इकट्ठे हुए घोल में कार्बनिक पदार्थ जैसे अमीनो अम्ल, पेप्टाइड शृंखला, आदि का बनना प्रारंभ हुआ जिसे विभिन्न रासायनिक परीक्षणों द्वारा पहचाना गया । नियंत्रित परीक्षण की स्थिति में इन कार्बनिक पदार्थों की नगण्य मात्रा का निर्माण हुआ । इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि कार्बनिक पदार्थों के बिना

किसी जैविक स्रोत के निर्माण संभव हैं । इसके अनुसार पृथ्वी पर आदिकाल में वातावरण में ऐसी रासायनिक क्रियाएं घटी होंगी जिससे विभिन्न कार्बनिक पदार्थ बने । बाद में कई अन्य वैज्ञानिकों ने कुछ परिवर्तन कर मिलर के प्रयोगों को कई प्रकार से दुहराया । पराबैंगनी किरणों व अन्य ऊर्जा स्रोतों का उपयोग किया तथा सफलतापूर्वक अमीनों अम्ल व अन्य कार्बनिक पदार्थों का निर्माण किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने हाइड्रोजन साइनाइड, यहां तक कि एडनीन तथा कुछ अन्य नाइट्रोजन बेसों आदि का भी निर्माण किया ।

बहुलक तथा संघनन की समस्याएं

जीवन की रचनात्मक इकाइयां जैसे अमीनो अम्ल, नाइट्रोजन क्षार, तांबे व लोहे के ऑक्साइड और संतृप्त हाइड्राइड्स आदि कम सांद्रता पर पैदा होते हैं क्योंकि ये सब स्थायित्व अवस्था में पहुंच चुके थे । इन परिस्थितियों में गर्म सूप तनु अवस्था में रहे जिससे रासायनिक जटिलता की एक सीमा रही । वृहद शर्कराएं (कार्बोहाइड्रेट) वृहद पेप्टाइड (प्रोटीन) वृहद न्यूक्लियोटाइड (न्यूक्लियक अम्ल) आदि महत्त्वपूर्ण अणु इकाई जैव अणुओं के जटिल बहुलक हैं । पृथ्वी की प्रारंभिक अवस्था में इन बहुलक अणुओं का निर्माण साधारण अवस्थाओं में इन एकल कार्बनिक इकाइयों द्वारा हुआ होगा । इस सभी आणविक जीवन की क्रियाविधि को समझने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चरण हैं एकल कार्बनिक अणु इकाइयों का बहुलकीकरण ।

बहुलकीकरण की मुख्य आवश्यकता है ऊर्जा स्रोत तथा सतही पानी के वाष्पन को रोकने की जिससे की सांद्रण व बहुलकीकरण की प्रक्रिया को विपरीत दिशा में जाने अर्थात्—एकल इकाई में परिवर्तन होने को रोका जा सके । ऐसा माना जाता है कि प्रारंभिक वातावरण में विद्युत चिंगारी या विद्युत प्रकाशीय चमक, सौर ऊर्जा, एटीपी तथा फॉस्फेट्स के बहुलक ऊर्जा के प्रमुख स्रोत के रूप में कार्य किया । सौर ताप जिसने पानी को वाष्पित किया, ने भी बहुलकीकरण की गति को बढ़ावा दिया क्योंकि उच्च सांद्रता के फलस्वरूप उत्पन्न रासायनिक संतुलन ने भी अस्थिर एकल इकाइयों को स्थिर बहुलक इकाइयों में परिवर्तन करने में योगदान दिया ।

पूर्व जैविक तंत्र का संलग्नन

मिलर तथा समकालीन वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा यह दर्शाया कि पृथ्वी पर उपस्थित प्रारंभिक अवस्थाओं में पूर्व जैविक अणुओं का निर्माण होता है परंतु यह आवश्यक नहीं कि जीवन के उद्‌भव के लिए मात्र पूर्व जैविक अणु ही आवश्यक हों । जीवन के उद्‌भव के लिए निम्न तीन स्थितियां आवश्यक हैं :

(i) आवश्यक रूप से प्रतिकृतिकारकों—स्वतः जननकर्ता अणुओं की आपूर्ति ।

(ii) निर्माण में उत्परिवर्तन द्वारा इन प्रतिकृतिकारकों की दोषपूर्ण प्रतिकृति अवस्था का आगमन ।

(iii) प्रतिकृतितंत्र के लिए मुक्त ऊर्जा की उपलब्धता तथा इसकी सामान्य वातावरण से पृथक्करण की आवश्यकता ।

पृथ्वी के उद्‌भव के समय का उच्च तापमान इस में इंगित द्वितीय शर्त को पूर्ण करता है जो कि उत्परिवर्तन हेतु आवश्यक है । उच्च तापक्रम के गतित्व ने पूर्व जैविक अणुओं में सतत बदलाव पैदा किए ।

तीसरी परिस्थिति आंशिक पृथक्करण है जो कृत्रिम रूप से निर्मित पूर्व जैविक अणुओं के समूहों में हुई । अणुओं के वे समूह जिन्हें प्रोटोबायोन्ट या **प्रारंभिक जीव** भी कहते हैं अपने आप को आसपास उपस्थित अणुओं से पृथक किए रहते हैं तथा एक आंतरिक वातावरण का निर्माण करते हैं, परंतु ये जनन में अक्षम होते है । दो महत्त्वपूर्ण प्रोटोबायोन्ट हैं **कोएसरवेट** (Coacervates) तथा **सूक्ष्म-निचय** (Microsphere)। ऑपेरिन (1924) ने देखा कि यदि प्रोटीन व वृहद् शर्करा के मिश्रण को हिलाया जाए तो कोएसरवेट का निर्माण होता है । इसमें मूलतः शर्करा व प्रोटीन पाई जाती है तथा अंदर कुछ मात्रा में पानी होता है तथा ये अपने आपको बाह्य वातावरण से अलग रखते हैं । ऑपरीन के कोएसरवेट उपापचय की सामान्य स्थितियां भी प्रकट करते हैं । चूंकि इन में बाह्य वसा परत का अभाव होता है अतः ये प्रजनन करने में अक्षम होते हैं और जीवन के संभावित पुरोगामी नहीं हो सकते ।

सूक्ष्म-निचय तब बनते हैं जब कृत्रिम रूप से पैदा किए कार्बनिक पदार्थों के मिश्रण को शीतल पानी में मिलाया जाता है। यदि मिश्रण में वसा होती है तो सूक्ष्म-निचय की सतह द्विस्तरीय हो जाती है जो कि कोशिका झिल्ली के द्विस्तर के समान होती है । सिडनी फॉक्स ने 1950 में शुष्क अमीनो अम्ल के मिश्रण को 130°-180°C तापक्रम पर गर्म करने के पश्चात् ठंडा करने पर प्रोटीनोइड माइक्रोस्फीयर प्राप्त किए (चित्र 3.5)। इन सभी का व्यास 1 से 2 माइक्रोमीटर था तथा आकृति कोकॉइड जीवाणु के समान थी । इसके अतिरिक्त ये संकुचित भी किए जा सकते हैं जिसकी तुलना जीवाणुओं एवं कवकों के मुकुलन से की जा सकती है । इसकी एक कमी यह है कि इनकी विविधता सीमित है । अतः इनके आंशिक पृथक्करण की क्रिया एवं पुनर्जीवों के उद्‌भव का अनुमान ही लगाया जा सकता है ।

जब प्रारंभिक जीवों पर प्रकाश डाला गया, जिनकी झिल्ली में वर्णकी लवक (Chromophores) (वे अणु जो प्रकाश को

अवशोषित करते हैं) उपस्थित पाए गए ऐसी स्थिति में झिल्ली में वैद्युत विभव भी उत्पन्न हुआ । इस प्रकार के प्रारंभिक जीव वैद्युत स्थानांतरण करने वाले बने । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जैविक ऊर्जा प्रवाह का मार्ग सौर विकिरणों से एक ऑक्सीकृत एवं अपचयित यौगिक तक है, यह अनुमान किया जा सकता है कि क्रोमेटोफोर कुछ आदि जीवों की लिपिडी झिल्ली में उपस्थित थे । इस प्रकार, प्रारंभिक जीवन (प्रोटोलाइफ) प्राथमिक रूप से सौर ऊर्जा से संचालित रही होगी । न्यूक्लिबक अम्ल वे पहले उपयुक्त पदार्थ थे जो प्रथम शर्त पूरी करते थे, अर्थात् पूर्वजैविक जीवन में प्रतिकृतिकारक (रेप्लीकेटर) की भूमिका कर सकें । मिलर के प्रयोगों से प्यूरीन और पिरीमिडीन प्राप्त हुए जो न्यूक्लिइक अम्लों के अवयव हैं । हम जानते हैं कि एन्जाइम जो किसी सजीव में होने वाली अभिक्रियाओं के प्रकार और उनकी गति को नियंत्रित करते हैं, प्रोटीन ही तो हैं । प्रोटीन उस प्रक्रिया द्वारा संश्लेषित होते हैं जो डीएनए से संदेशवाहक आरएनए तक सूचना के अनुलेखन से आरंभ होती है । प्रोटीन संश्लेषण की यह प्रक्रिया **डीएनए→आरएनए→प्रोटीन** संभवत: अधिक सरल प्रक्रियाओं से शनै: शनै: विकसित हुई है ।

अगर प्रोटीन की आवश्यता न्यूक्लिक अम्ल निर्माण के लिए होती है, और न्यूक्लिक अम्लों की प्रतिकृति को उत्प्रेरित करने हेतु प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है, तो इस प्रकार यह तंत्र कैसे विकसित हुआ होगा ? क्या प्रोटीन न्यूक्लिक अम्लों से पहले विकसित हो सकते हैं ? आधुनिक आंकड़े प्रदर्शित करते हैं कि कुछ राइबोसोमी आरएनए (Ribosomal RNA) जो उत्प्रेरक एवं सूचनात्मक दोनों प्रकार के गुण रखते हैं, प्रसिद्ध कहावत ''मुर्गी पहले आयी या अण्डा'' जैसी इस पहेली को हल करने में सहायक हो सकते हैं अर्थात् ''उपापचय पहले हुआ अथवा जीन पहले आयी''। प्रथम आनुवंशिक कूट आरएनए पर आधारित था जो कि स्वयं के प्रतिकृति को उत्प्रेरित करने के साथ-साथ दूसरी रासायनिक अभिक्रियाओं को भी उत्प्रेरित करता था । आरएनए उत्प्रेरित अभिक्रियाओं के एकत्रित उत्पाद बाद में अन्य अभिक्रियाओं में भाग ले सकते थे एवं संरचनाएं बना सकते थे । उदाहरण के लिए आरएनए लिपिडसम अणुओं के निर्माण को उत्प्रेरित कर सकते थे जो कि प्लाज्मा झिल्ली एवं प्रोटीन को बनाते थे। आगे यह प्रोटीन अन्य प्रोटीनों के संश्लेषण को सफलतापूर्वक उत्प्रेरित कर सकती थी । इस तरह प्रोटीन अधिक एंजाइमी कार्यों को संपन्न कर सकते थे क्योंकि वे आरएनए की तुलना में अच्छे उत्प्रेरक थे एवं अधिक विविध विशिष्ट गतिविधियां करने में सक्षम थे । अगर प्रथम कोशिकाएं आरएनए

(क)
(ख)
(ग)
(घ)
(ङ)
(च)



चित्र 3.5 प्रोटीनी सूक्ष्म गोलों के विविध रूप (क-च)

को उनके आनुवंशिक अणु के रूप में उपयोग में लेती थी तब डीएनए एक आरएनए सांचे से विकसित हुआ। डीएनए संभवतया एक आनुवंशिक अणु के रूप में विकसित नहीं हुआ था, जब तक कि आरएनए आधारित जीवन झिल्लियों में बंद नहीं हुआ था। जब एक बार कोशिकाएं विकसित हो गई, डीएनए संभवतया आरएनए के स्थान पर अधिकतर सजीवों में आनुवंशिक कूट के रूप में प्रतिस्थापित हो गए।

प्रारंभिक कोशिकाएं

प्रथम सजीव जो कार्बनिक अणुओं के सागर और ऑक्सीजन रहित वातावरण में उत्पन्न हुए और संभवतया कुछ कार्बनिक अणुओं के किण्वन से ऊर्जा प्राप्त करते थे। प्रारंभिक सजीव संभवत: ऑनाक्सी कारक प्राणी थे, जो कि ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में श्वसन कर सकने में सक्षम थे। वे पोषण के लिए उस समय विद्यमान कार्बनिक अणुओं पर निर्भर थे, अत: विषमपोषी थे। हालांकि उपस्थित कार्बनिक अणुओं की आपूर्ति समाप्त हो जाने से बहुत पहले कुछ विषमपोषी जीव स्वयंपोषी जीवों में विकसित हो गए। ये सजीव अपने स्वयं के कार्बनिक अणुओं को रसायन संश्लेषण अथवा प्रकाश संश्लेषण द्वारा उत्पन्न करने में सक्षम थे। प्रकाश संश्लेषण के उत्पादों में से एक गैस–ऑक्सीजन है। प्रकाश संश्लेषण का उदय एक परिवर्तन बिंदु (टर्निंग पॉइन्ट) था क्योंकि इस प्रक्रिया ने पृथ्वी का वातावरण परिवर्तित कर दिया और इस प्रकार जीवन का विकास इसके विविध रूपों में आरंभ हुआ।

3.2 विकास से अभिप्राय

प्रेक्षण से यह पता चलता है कि विविध प्रकार के प्राणियों में कुछ सामान्य लक्षण होते हैं। उदाहरणार्थ उभयचरी, सरीसृप और स्तनधारियों में भूमि पर चलन हेतु पाद होते हैं, मछलियों में पानी में तैरने हेतु पख तथा पक्षियों में उड़ने हेतु पंख होते हैं। विस्तृत अध्ययन से यह पता चलता है कि पाद, पख तथा पंख एक ही आधारभूत संरचनात्मक योजना पर बने होते हैं। ऐसे सभी उदाहरणों की व्याख्या की जा सकती है अगर हम विचार करें कि ये विभिन्न सजीवों के समूह एकसमान पूर्वजता के हैं, जिससे कि ये विभेदित (भिन्न) हुए एवं दो विभिन्न स्पीशीज (जातियां) बनी। समय व्यतीत होने के साथ एक अकेली पूर्वज रेखा (एक विकासीय क्रम जो एक पूर्वज समूह से संतति समूह तक रेखीय क्रम में व्यवस्थित हो) ने दो या अधिक पूर्वज रेखाओं को उत्पन्न किया जो समय के साथ अलग होती गई। जैविक तंत्र में इस प्रकार के परिवर्तनों की प्रक्रिया को विकास कहते हैं।

विकास (Evolution) शब्द का अर्थ है 'खुलना' या छुपी हुई संभावनाओं को उद्घाटित करना। विस्तृततम अर्थ में विकास का सामान्य अर्थ है एक स्थिति से दूसरी तक एक क्रमिक 'परिवर्तन'। उदाहरण के लिए ग्रह और सितारे उनके जन्म और मृत्यु के बीच बदलते हैं। यह आकाशीय विकास है। पदार्थ तत्त्व समय के अनुसार बदलते हैं। यह अकार्बनिक विकास है।

सजीवों की समष्टि अथवा उनके समूहों के गुणों में परिवर्तनों को जैविक विकास कहा जाता है। यह एक समष्टि में प्राय: आगामी जीवों की समष्टियों में संचयी परिवर्तनों की प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, यह रूपांतरणों के साथ अवतरण है। सामान्यत: जीवन की विविधताएं समानताओं व भिन्नताओं को समाहित करते हुए और जीवों के अनुकूली एवं अननुकूली लाक्षणिकताएं ही विकासीय जैविकी के मूल विषय है। थियोडोसियस डोब्न्हॉन्स्की (1973) के अनुसार *जैविकी में कुछ भी सार्थक नहीं है अगर वह विकास की रोशनी में नहीं हैं।*

3.3 डार्विन के पूर्व विकास के विचार

विकासीय जैविकी का हममें से अधिकांश की अनुभूति से अधिक लंबा एवं समृद्ध इतिहास है। प्राचीन व्यक्तियों के योगदान को प्राय: नगण्य माना जाता है। डार्विन से लेकर आज तक के विकास के सिद्धांत, पूर्व की कई अवधारणाओं और सिद्धांतों पर आधारित हैं।

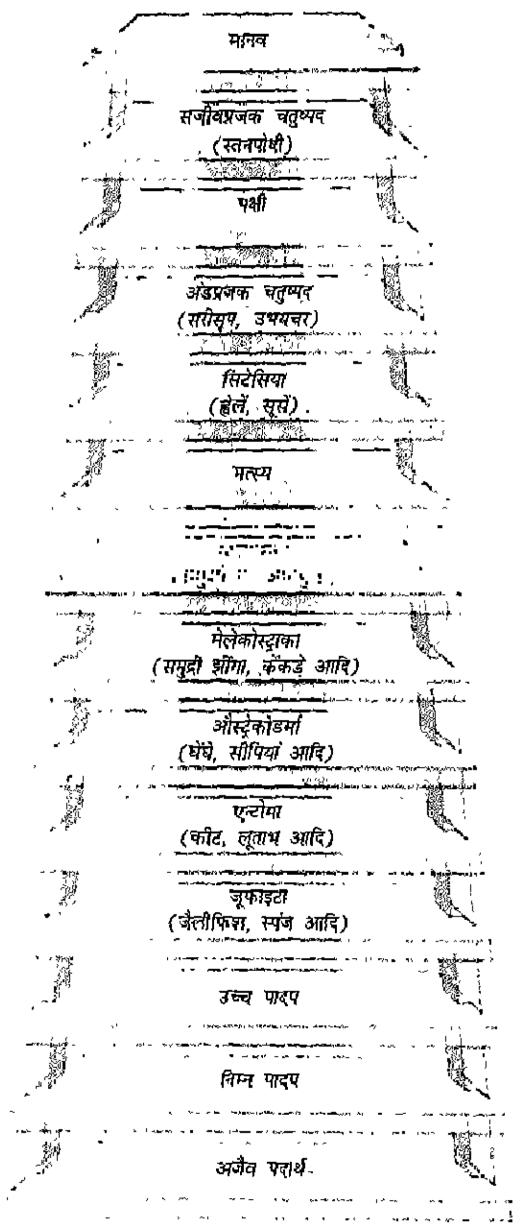
विकास के संबंध में प्राचीन भारतीय विचार

प्राचीन भारतीयों ने जीवन की उत्पत्ति और विकास की विस्तृतम रूपरेखा को समझने में सफलता पाई थी। प्राचीन भारतीय जीवन दर्शन और आयुर्वेद, जीवन की उत्पत्ति से संबंधित है। संस्कृत में लिखे मनु के लेख, *मनुसंहिता* अथवा *मनुस्मृति* (200 ई.) में विकास के विषय में उल्लेख है।

विकास के संबंध में प्राचीन यूनानी विचार

विकास के प्रथम सिद्धांत डार्विन से लगभग 2000 वर्ष पूर्व सामने आए थे। प्लेटो (428–348 बी. सी.) के अनुसार प्रत्येक जाति एक अपरिवर्तित आदर्शरूप (eidos) में थी। सभी यौगिक जीव इस प्रकार एक आदर्श अदृश्य संसार के भाव की अपूर्ण अनुकृतियां हैं। क्योंकि ईश्वर पूर्ण है पृथ्वी पर जो भी विद्यमान थे उनके विचार थे। अरस्तू (384–322 बी. सी.) ने प्लेटो की आदर्शवादी अवधारणाओं को शृंखलाबद्ध रूपों की श्रेणी के रूप में विस्तारित किया। प्रत्येक रूप अपूर्ण से पूर्ण की ओर प्रगति में एक कड़ी है। उसने इसे ***स्केला नेचुरी*** अथवा ***प्रकृति की***

पूर्णतया की ओर



चित्र 3.6 ऐरिस्टोटल द्वारा प्रतिपादित प्रकृति का सोपान

सीढ़ी कहा (चित्र 3.6) । यह ***होने की महान शृंखला*** रूप में भी जानी जाती है ।

3.4 विकास के प्रमाण

चार्ल्स राबर्ट डार्विन (1809-1882) प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने पूर्व की विकास संबंधी जटिलताओं को दूर किया । कई विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रमाणों से डार्विन और उसके समकालीनों की यह धारणा बनी कि आधुनिक सजीव अधिक प्राचीन रूपों से विकास द्वारा उत्पन्न हुए हैं । डार्विन ने विकास के प्रमाणों को लिपिबद्ध किया जिसका मुख्य आधार प्रजातियों का भौगोलिक वितरण और जीवाश्मों का लेखा था । जैविक विकास ने जीवाश्म लेखन तथा ऐतिहासिक अवशेषों के रूप में चिह्न छोड़े हैं जो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं । हालांकि, जैविकी की प्रगति के साथ नई खोजें, जिनमें आणविक जीवविज्ञान के तथ्योद्घाटन सम्मिलित हैं, लगातार जीवन के विकासीय दृष्टिकोण को पुष्ट करती जा रही है ।

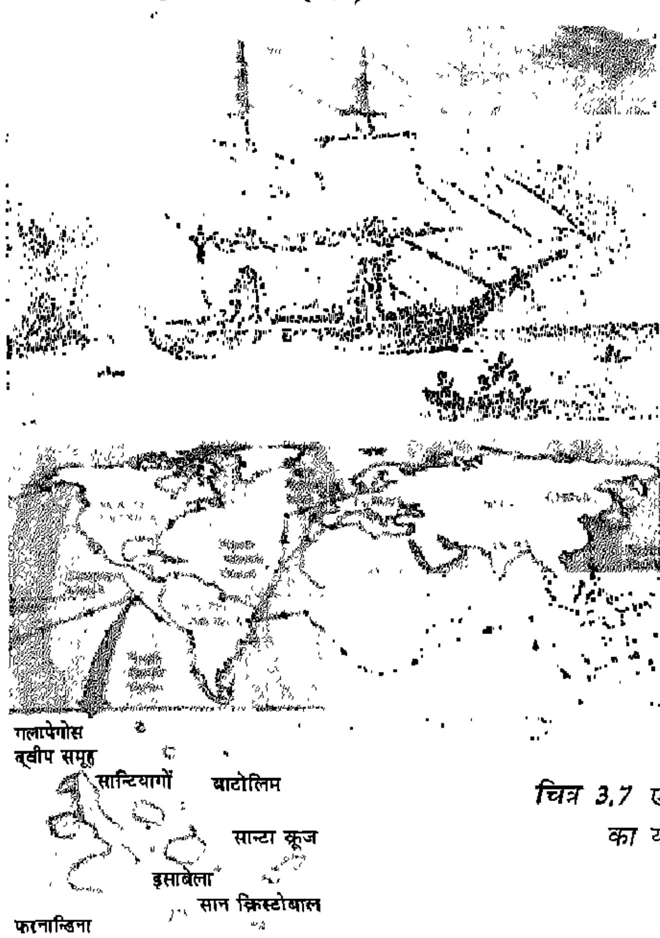
जीव भौगोलिक प्रमाण

जैव भूगोल का अर्थ है प्रजातियों के भौगोलिक वितरण का अध्ययन । डार्विन के **प्राकृतिक चरण के सिद्धांत** की खोज की कहानी 1831 में आरंभ होती है । उस समय वह एक अवैतनिक प्रकृतिविद के रूप में एक ब्रिटिश जहाज एच.एम.एस. बीगल पर पांच वर्षों के लिए संचालनीय मापन अभियान में सम्मिलित हुए । अपनी यात्रा के मध्य (चित्र 3.7) डार्विन ने दूरस्थ सागरों में स्थित द्वीपों एवं महाद्वीपों पर पौधों और जंतुओं की विशाल विविधता का प्रेक्षण और अध्ययन किया । डार्विन ने काले एवं लावा पूरित ज्वालामुखी उद्भव के द्वीपों (गेलापागोस द्वीप) में एक मास व्यतीत किया । ये द्वीप भूमध्य रेखा पर दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट से 900 कि.मी. दूर स्थित हैं । वहां उसने विशाल कछुए, एक मीटर लंबे समुद्री और स्थलीय इगुआनाओं, कई असामान्य पौधों, कीट, छिपकलियां और समुद्री शंख खोल देखे ।

गेलापागोस द्वीपों में 22 विभिन्न द्वीप सम्मिलित हैं जो कि कुछ मीलों की दूरियों पर स्थित हैं । डार्विन ने गेलापागोस द्वीपों पर कई स्थानीय विशेषक्षेत्री (Endemic) (जो अन्य किसी जगह नहीं पाई जाती) पौधों व जंतुओं की जातियां देखीं । यह देखकर वह स्तंभित रह गया कि इन द्वीपों में कीटाहारी फुदकी तथा कठफोड़वे विद्यमान नहीं थे । उनके स्थान पर विभिन्न प्रकारों की तूतियों (एक प्रकार की छोटी काली चिड़ियाएं) जो मूलरूप से बीजाहारी थी किंतु जिन्होंने कीटाहारी पोषण पद्धति अपना ली थी, उन द्वीपों पर मौजूद थी । ये तूतियां अब प्रायः **डार्विन की तूतियों** के रूप में जानी जाती हैं (चित्र 3.8) । उसने यह भी देखा कि विभिन्न भौगोलिक स्थलों पर समान आवास थे किंतु उन पर विभिन्न जातियां निवास करती थीं । विभिन्न द्वीपों की तूतियां भिन्नताएं मिलने पर भी परस्पर संबंधित थीं।

द्वीपों की पौधों और प्राणियों की जातियां समीपस्थ मुख्यभूमि अथवा पड़ोसी द्वीपों की जातियों से क्यों परस्पर संबंधित थीं? क्यों इन द्वीपों में संपूर्ण दक्षिणी अमेरिकी महाद्वीपों

(क)



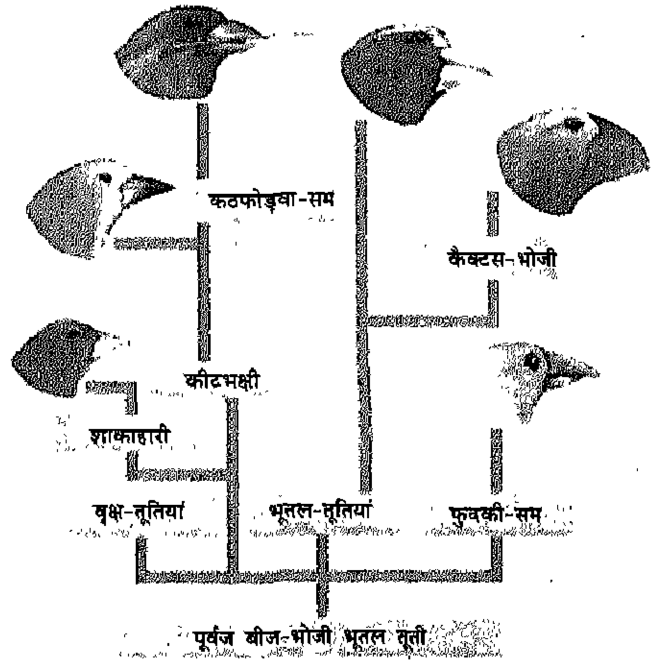
(ख)



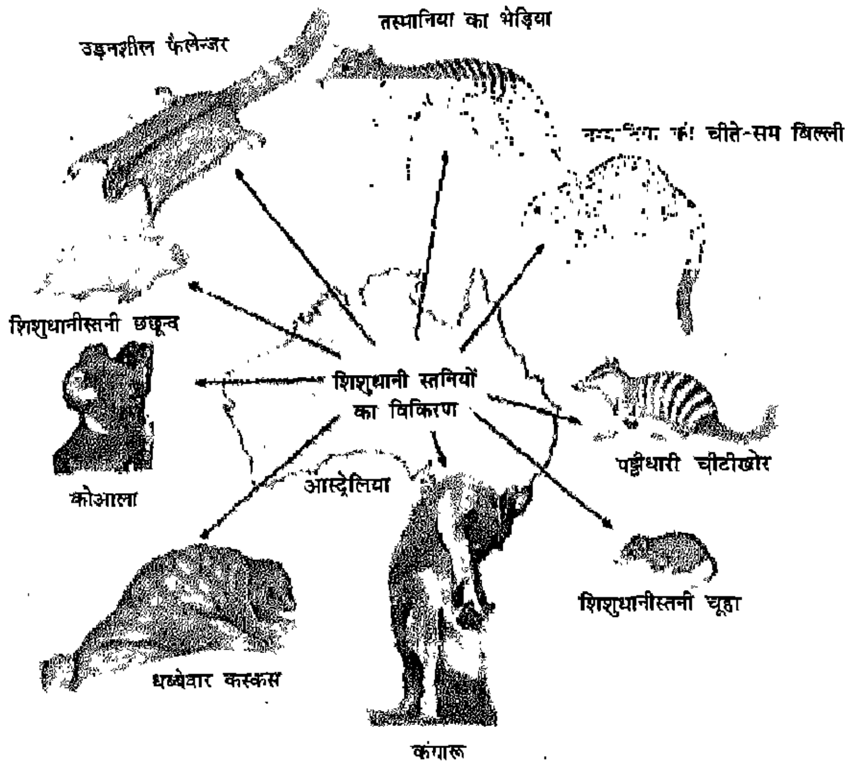
चित्र 3.7 एच.एम.एस. बीगल की यात्रा (क) बीगल एवं अभियान का यात्रा मार्ग; (ख) इंग्लैंड लौटने के कुछ दिन बाद चार्ल्स डार्विन का चित्र

से अधिक विभिन्न तूतियों की जातियां पाई गईं? डार्विन ने अनुभव किया कि इस तरह के प्रश्नों की व्याख्या इसी आधार पर की जा सकती है कि एक पूर्वज समूह से, जो कि एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रह रहा था, उत्तरजीवी समष्टियां अन्य क्षेत्रों में वितरित हो सकती थीं जहां कि नई पर्यावरणीय परिस्थितियां विकास के द्वारा समुचित अनुकूलन को उत्पन्न कर सकती थीं। उसने तर्क दिया कि एक बीजाहारी सांझा समूह/कोष से उत्पन्न होने के बाद ये तूतियां विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विकिरित हुई तथा कई तरह के अनुकूली परिवर्तनों से गुजरीं, विशेषकर उनकी चोंचों की बनावट लंबे समय तक अलग-अलग रहने के कारण तूतियों के ऐसे प्रकार प्रकट हुए जो नए आवासों में जीवित और कार्यशील रह सकते थे। इस तरह की एक विकासीय प्रक्रिया जो नई जीवनशैली एवं नए आवासों के प्रति नई जातियों को जन्म देती है, **अनुकूली विकिरण** (Adaptive radiation) कहलाती है।

आस्ट्रेलिया, शिशुधानी स्तनियों (Marsupials) की विशाल विविधता का घर है किंतु अपेक्षाकृत कुछ कम



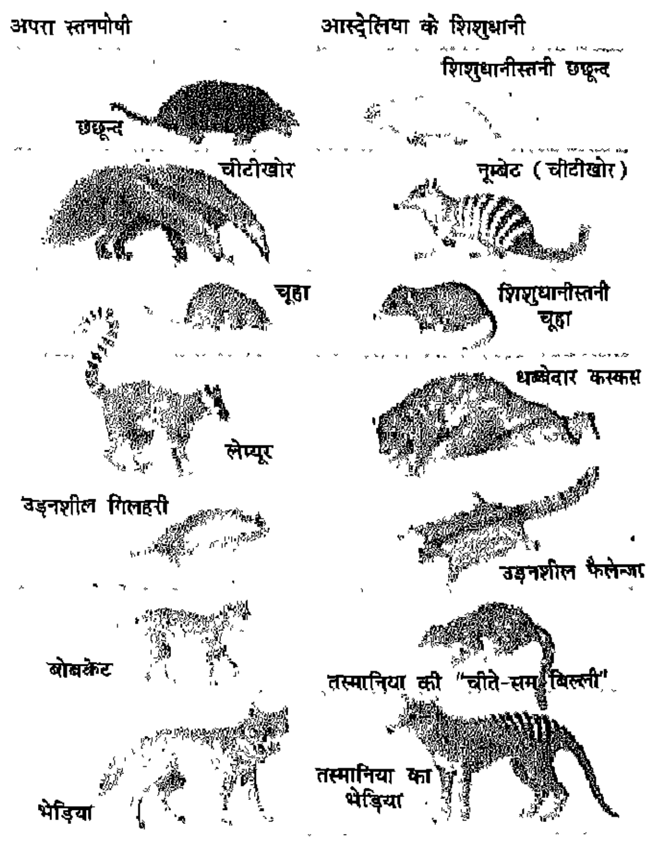
चित्र 3.8 डार्विन द्वारा विकास के क्रम में वर्णित तूतियां



चित्र 3.9 आस्ट्रेलियाई शिशुधानीस्तनियों का अनुकूलन विकिरण

अपरा स्तनी (Placental mammals) वहां रहते हैं । डार्विन ने व्याख्या की कि अनुकूली विकिरणों ने आस्ट्रेलिया में शिशुधानी स्तनियों की विविधता (चित्र 3.9)को ठीक उसी प्रकार की अनुकूली विकिरणों की प्रक्रिया द्वारा जन्म दिया जैसी कि गेलापागोस द्वीपों की तूतियों में पायी जाती है।

समान आवासों में जीवित रहने के लिए विकास समान अनुकूलन उत्पन्न कर सकता है । इस प्रकार के विकासीय परिवर्तन **अभिसारी** (convergent) या **समानांतर विकास** (parallel evolution) कहलाते हैं (चित्र 3.10) । उदाहरणार्थ आस्ट्रेलियाई शिशुधानी स्तनियों में से कुछ अन्य महाद्वीपों में समान आवासों में रहने वाले समतुल्य अपरा स्तनियों से समानता रखते हैं । आस्ट्रेलिया अन्य महाद्वीपों से 500 लाख वर्षों पूर्व पृथक हुआ था । अधिक संभावना यह है कि शिशुधानी स्तनी आस्ट्रेलिया में इससे अंटार्कटिका से पृथक होने से पूर्व आए और इसी पृथक्करण में अपरा स्तनियों से पहले विकसित हुए । प्राकृतिक वरण इन परिवर्तनों के पक्ष में रहा जिसने दो समूहों को अधिक समान बनाया । दूसरे शब्दों में, उनके लक्षण प्ररूप अभिसारी हो गए ।

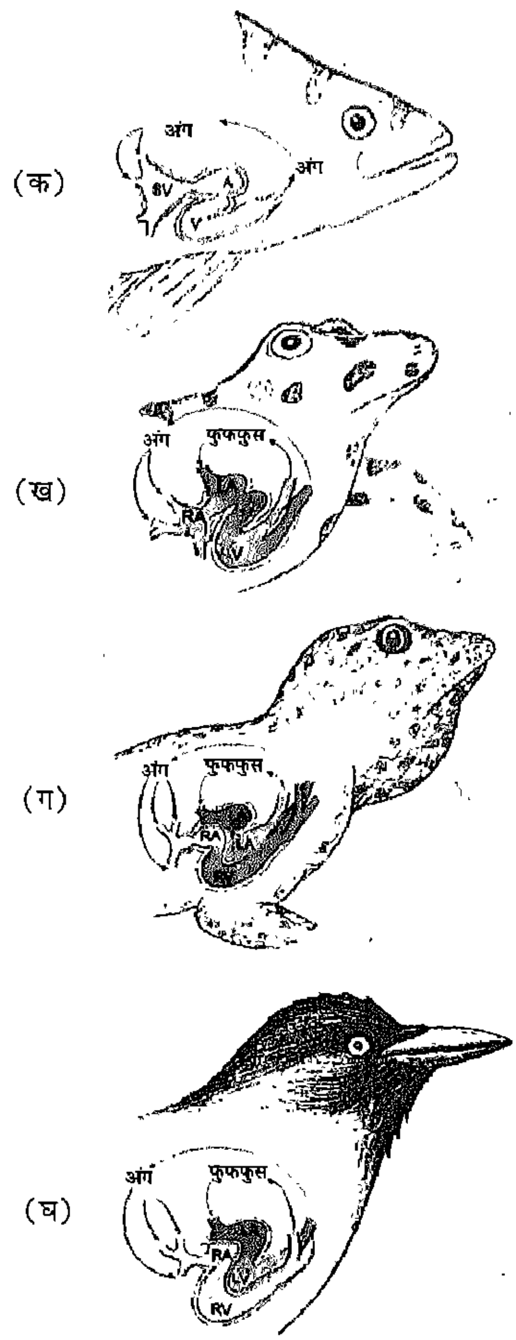


चित्र 3.10 आस्ट्रेलियाई शिशुधानीस्तनियों एवं अपरा स्तनियों के बीच अभिसारी विकास

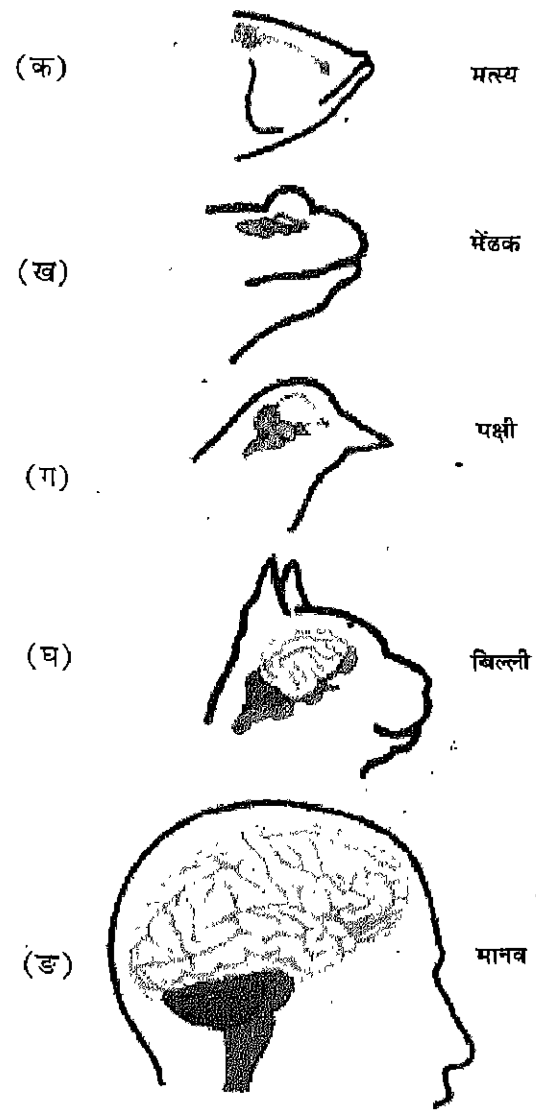
शारीरिकी से प्रमाण

एक ही वर्गिकी संवर्ग से संबंधित जातियों से शरीर-संबंधी समानताएं रूपांतरण के साथ अवतरण के लिए प्रमाण उपलब्ध कराती हैं। कशेरुकियों के हृदय की तुलनात्मक शारीरिकी के अध्ययन संकेत करते हैं कि हृदय सभी समूहों में एक आधारभूत संरचनात्मक योजना दर्शाता है । इस तरह की आधारभूत समानताओं पर प्रेक्षण यह दर्शाता है कि समस्त स्तनी एक जैसे साझे पूर्वज से अवतरित हुए हैं। रिचर्ड ऑवेन (1804–1892) ने समजात (होमोलोगस) शब्द को परिचित कराया जिसका अर्थ था विभिन्न प्रजातियों के वे अंग जो एक दूसरे से समान अवतरण द्वारा संबंधित हैं, यद्यपि वे अब कार्यात्मक रूप में भिन्न हैं।

शारीरिकीय सूचनाओं के तर्क पूर्ण विश्लेषण से पता चलता है कि कशेरुकियों के हृदय मछलियों से विकास के क्रम में परिवर्तित हुए हैं (चित्र 3.11) ।



चित्र 3.11 कशेरुकियों के हृदय की समजातता एवं विकास (क) मछली, (ख) मेंढक, (ग) छिपकली, (घ) पक्षी LV = बायां निलय; RV = दायां निलय; V = निलय; SV = शिरा कोटर



चित्र 3.12 कशेरुकियों के मस्तिष्क की समजात संरचनाएं

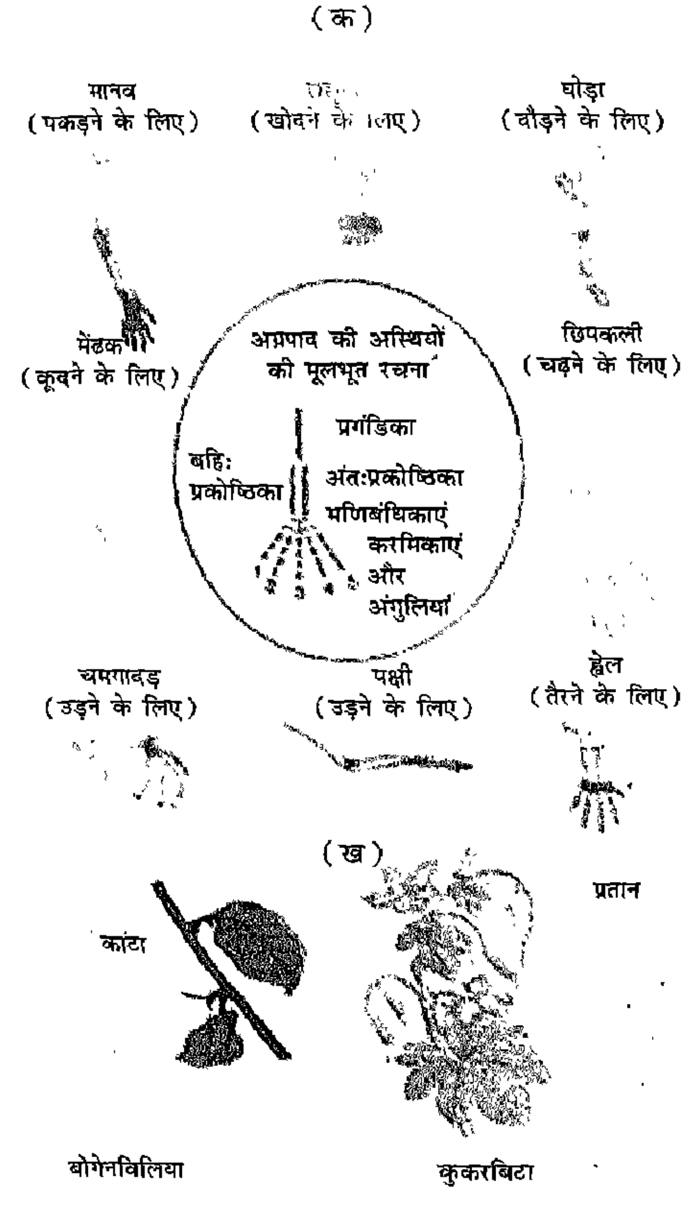
मछलियों में हृदय दो-कक्षीय, एक आलिंद और एक निलय, होता है। मछलियों से स्थलीय कशेरुकियों के संक्रमण और श्वसन की विधि में परिवर्तन के साथ ऑक्सीकृत और अनाक्सीकृत रुधिर का स्थलीय प्राणियों में पृथक्करण आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप आलिंद दो-कक्षों में बंट गया। सभी स्थलीय प्राणियों में यह दो-कक्षीय होता है। अधिक पूर्णता की प्राप्ति हेतु निलय में भी विभाजन की प्रवृत्ति प्रदर्शित होती है। मगरमच्छ के सिवाय यह अन्य सरीसृपों में अपूर्ण रूप से विभाजित रहता है। दोनों प्रकारों के रुधिरों में पृथक्करण में अधिक दक्षता मगरमच्छ, पक्षियों व स्तनियों में प्राप्त कर ली गई जहां निलय पूर्णत: विभाजित है और हृदय चार-कक्षीय है। इसी प्रकार विभिन्न कशेरुकियों के मस्तिष्क में प्रमस्तिष्क, अनुमस्तिष्क, मध्यांश, घ्राण पिण्ड और द्रक पिण्ड समजात अंग हैं (चित्र 3.12)।

अत: कंकाल को लेकर यह देखा जा सकता है कि मनुष्य की भुजा, चमगादड़ का पंख, व्हेल का चप्पू (फ्लिप्पर) और अन्य कशेरुकियों के अग्रपाद सभी एक ही आधारभूत कंकालीय तत्त्वों से बने हैं। इनमें भी एक सांझी संरचनात्मक योजना पाई जाती है। सभी में प्रगंडिका (Humerous), बहि:प्रकोष्ठिका (Radius), अंत:प्रकोष्ठिका (Ulna), मणि बंधिकाएं (Carpels), करभिकाएं (Metacarpels) एवं अंगुलास्थियां (Phalanges) होती हैं (चित्र 3.13a)। साथ ही हड्डियां शरीर के एक ही भाग से व्युत्पन्न होती हैं।

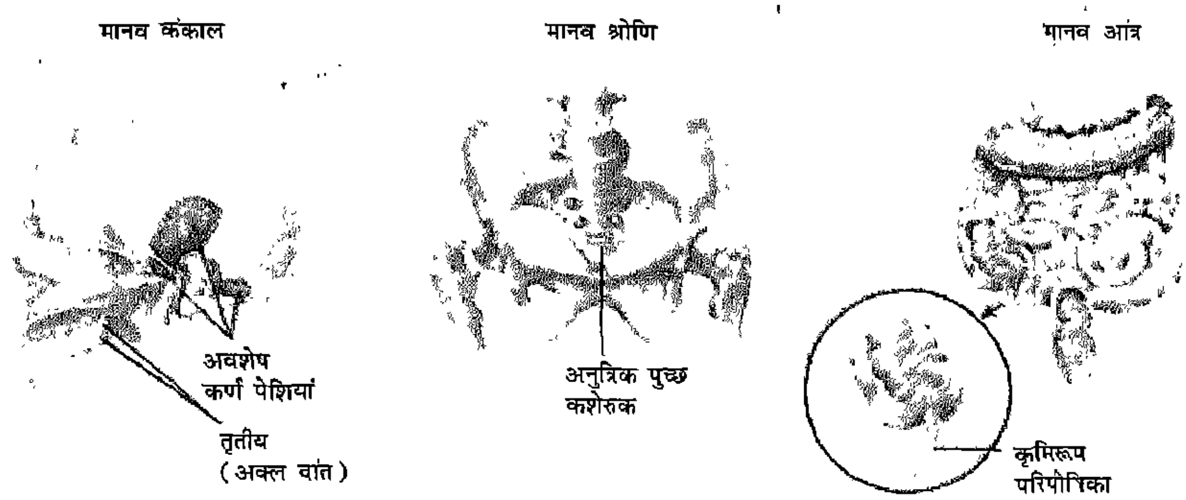
पौधों में बोगेनविलिया का एक कांटा कुकरबिटा के प्रतान से कार्य में भिन्न होता है किन्तु दोनों की स्थिति एक समान (कक्षीय) होती हैं अत: कांटों एवं प्रतान को समजात समझा जाता है। (चित्र 3.13b)

समजात (homologous) अंगों के विपरीत समवृत्ति (analogous) अंग है। वे कार्य में समान लेकिन शारीरिकी दृष्टि से भिन्न एवं असंबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए पक्षियों के पंख और तितली के पंख दोनों उड़ने के लिए काम में आते हैं लेकिन वे शारीरिकी ढांचों में पूर्णत: भिन्न हैं। न तो उनकी उत्पत्ति समान है और न ही वे संयुक्त पूर्वज के एक ही अंग से विकसित हैं। यहां तक कि स्पष्ट समवृत्ति अंग जैसे आक्टोपस की आंख और स्तनी की आंख उनके रेटिना की स्थिति में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। उसी तरह पेंग्विनों (पक्षी) तथा डोल्फिनों (स्तनी) के चप्पू जो इन जलीय प्राणियों में समान कार्य करते हैं दो विभिन्न शाखाओं से उत्पन्न हुई संरचनाएं हैं। वास्तव में पृथक शाखा में समवृत्ति अंग समसारी अथवा समानांतर विकास के परिणाम हैं। आप विभिन्न रूपांतरित जड़ों, तने व पत्तियों के विषय में जानते होंगे। शकरकंद एक अंत:भौमिक कंदाकार जड़ है और आलू एक अंत:भौमिक तना परंतु दोनों का रूपांतरण भोजन के संग्रह के लिए हुआ है। अतएव यह समवृत अंगों के उदाहरण हैं।

शारीरिकी का अध्ययन हमें उन संरचनाओं के विषय में पहचानने में भी सहायता करता है जो कुछ अथवा उन समस्त कार्यों को खो चुके हैं जो वे उनके पूर्वजों में संपन्न करते थे। इसके अतिरिक्त ये (अवशेषी अंगों) उन रूढ़ अवशेषों की



चित्र 3.13 समजात संरचनाएं : (क) कशेरुकियों के अग्रपाद (ख) पादपों में कंटक एवं प्रतान



चित्र 3.14 कुछ अवशेषांग

विकासीय व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने नए वातावरण के प्रति अनुकूलित होते हुए इन संरचनाओं को अवशेषी बनाया । ऐसी संरचनाएं **अवशेषी अंग** (vestigial organs) कहलाती हैं (चित्र 3.14) । अवशेषी सरीसृपीय जबड़ा- उपकरण, अजगर तथा ग्रीनलैंड ह्वेल पश्च पादों के अवशेष, अवशेषी अंगों के कुछ उदाहरण हैं । मनुष्यों में कई अवशेषी संरचनाएं–नर–वानरों सहित अन्य स्तनियों से संबंधों का संकेत देती हैं । उदाहरण के लिए बाह्य कर्ण और खोपड़ी की पेशियां मनुष्य में अवशेषी और प्राय: निष्क्रिय होती हैं । लेकिन ये कई अन्य स्तनियों में सामान्यता क्रियाशील होती हैं। ह्रासित पुच्छ अस्थियां और आंखों की निमेषक झिल्ली, सीकम की उपांग (appendix) देह पर स्थित अवशेषी रोम (बाल) तथा अक्ल दाढ़ आदि अवशेषी अंगों के अच्छे उदाहरण हैं ।

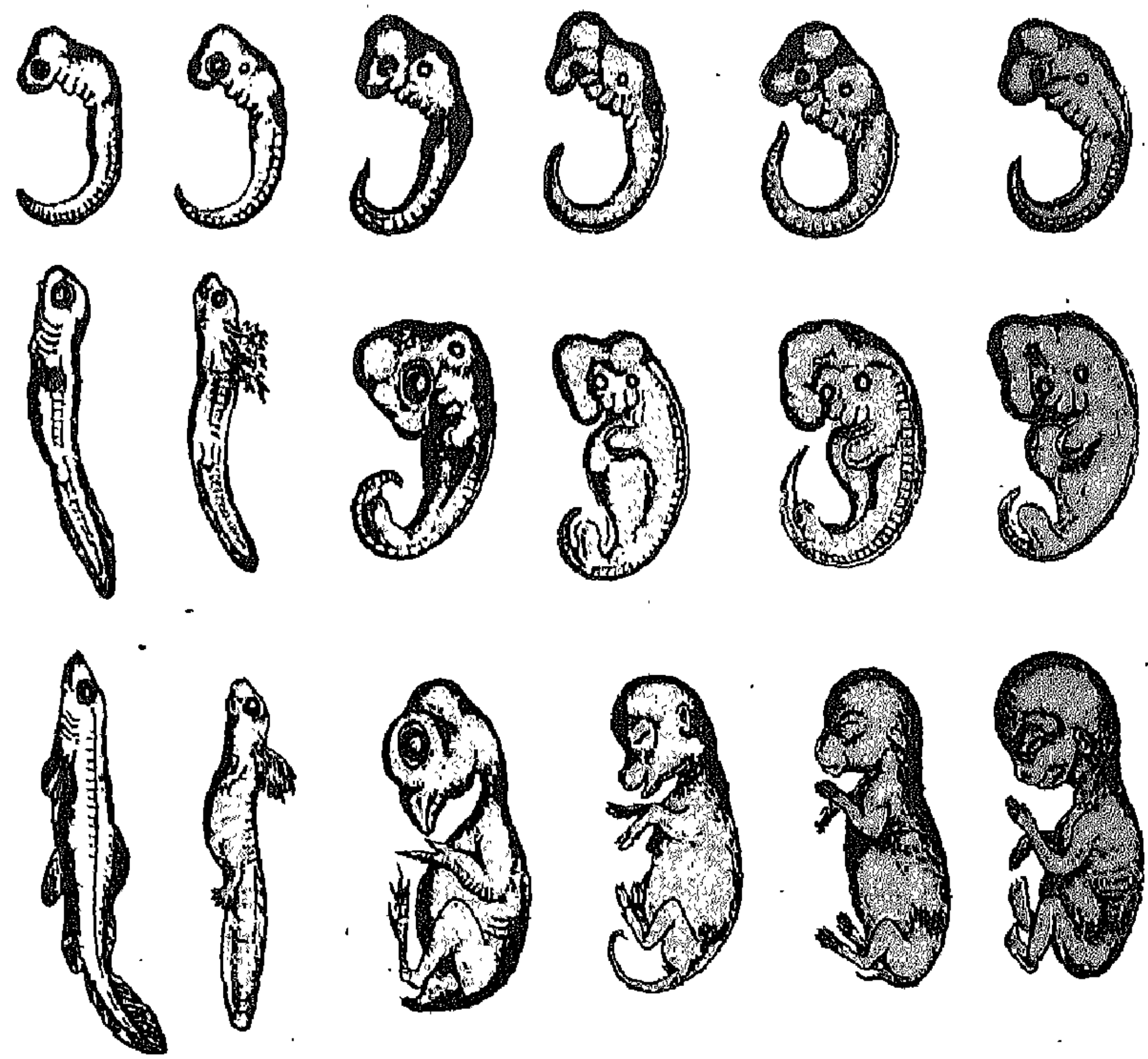
भ्रूण-विज्ञान द्वारा प्रदत्त प्रमाण

कशेरुक श्रेणी के भ्रूण कई ऐसे लक्षण प्रदर्शित करते हैं जो वयस्कों में अनुपस्थित होते हैं । एक उदाहरण में मनुष्य सहित सभी कशेरुकियों के भ्रूणों में सिर के पीछे अवशेषी क्लोमछिद्र की एक पंक्ति विकसित होती है जबकि क्लोमछिद्र केवल मछलियों में ही क्रियाशील होती है । जमीन पर रहने वाले कशेरुकी समूहों में नहीं । तब जमीन पर रहने वाले कशेरुकियों की आरंभिक भ्रूणीय अवस्थाओं में ये संरचनाएं क्यों प्रकट होती हैं ? इसका उत्तर इसी परिसीमा में मिल सकता है कि स्थलीय कशेरुकी उन मछलियों से अवतरित हुए हैं जिनमें जलीय श्वसन के अनुकूलन के रूप में क्लोमछिद्र होते थे । हालांकि, जलीय स्तनी (उदाहरण डोल्फिन, व्हेल, सील, पोरपोइज आदि) में क्लोमछिद्र नहीं होते क्योंकि उनके जलीय अनुकूलन द्वितीयक हैं।

वॉन बेयर (1792–1867) ने यह पाया कि कुछ सामान्यीकृत लक्षण, जैसे कि मस्तिष्क, मेरुरज्जु, अस्थीय कंकाल, धमनी चापें आदि, एक प्राणी समूह कशेरुकियों में समान रूप से स्थित हैं। संबंधित भ्रूणों में कुछ अवस्थाएं सामान्य होती हैं (चित्र 3.15) । ऐसे जीव जिनकी पूर्वजता समान होती है आंतरिक भ्रूणीय पद्धति जिन पर प्रणाली में उनके वयस्क बनते हैं, प्रदर्शित करते हैं । बाल (केवल स्तनियों में), पर (केवल पक्षियों में), पाद (केवल चतुष्पदों में) जैसे विशिष्ट लक्षण समूह के विभिन्न सदस्यों को विभेदित करते हैं ।

अर्नस्ट हीकल (1834–1919) ने विकास के संदर्भ में बेयर के नियम की पुनर्व्याख्या सन् 1868 में दी । यह नियम बताता है कि व्यक्तिवृत्त (भ्रूणीय विकास) जातिवृत्त (पूर्वजता क्रम) को दोहराता है । उसने वयस्क जीवों को अधिक विकसित जीवों की भ्रूणीय अवस्थाओं के रूप में देखा। उनके इस दृष्टिकोण को **जैव-आनुवंशिक नियम** (Biogenetic Law), अर्थात् व्यक्तिवृत्त जातिवृत्त को दोहराता है, द्वारा संक्षेपित किया गया है। वॉन बेयर ने हीकल के अपना कथन करने से पूर्व ही जैव-आनुवंशिक नियम को अस्वीकृत कर दिया था । उसने भ्रूण के विकास को देखकर यह बताया कि भ्रूण कभी भी अन्य प्राणियों की वयस्क अवस्थाओं से नहीं गुजरते ।

हालांकि पुनरावृत्ति (Recapitulation) कुछ महत्त्व का है फिर भी यह एक सामान्य घटना नहीं है । उदाहरण के लिए कीकर (Acacia) के नवोद्भिद् (Seedlings) प्रारंभ में तो सरल पत्तियों का विकास करते हैं जो बाद में संयुक्त प्रकार की पत्तियों में रूपांतरित हो जाते हैं । एक और उदाहरण दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्तमान ओक में मिलता है । यह पौधा इसके पत्तों



चित्र 3.15 विकास के भ्रूण-वैज्ञानिक साक्ष्य

को वर्षभर धारण करता है। उत्तरी संयुक्त राज्य अमेरिका के ओक पर्णपाती हैं तथा अपने पत्ते सर्दियों में गिरा देते हैं। पत्तियों के इस लक्षण के आधार पर दक्षिणी जातियां, उत्तरी जातियों की तुलना में अधिक आदिम मानी जाती हैं। हालांकि उत्तरी जातियों के नवोद्भिद् सामान्यत: शीत ऋतु में अपनी पत्तियों को बनाए रखते हैं।

जीवाश्म लेखों से प्रमाण

जीवाश्म सुदूर भूतकाल में पाए जाने वाले जीवों के परिरक्षित चिह्न, संकेत अथवा अवशेष होते हैं। जब जीव एक अम्लीय गड्ढे में या कीचड़ की परत के नीचे दब जाता है और उसे ऑक्सीजन नहीं मिल पाती तब सड़ने की प्रक्रिया बाधित होने की स्थितियों में शरीर या उसके भाग का परिरक्षण हो जाता है। कभी-कभी शरीर की सतह का दबाव (जैसे कि पांव की छाप) कार्बन अणु (जैसे तेल) या कोप्रोलाइट (परिरक्षित उत्सर्जी पदार्थ) भी जीवाश्म के रूप में परिरक्षित हो जाते हैं। जीवाश्म अवसादों में भी बनते हैं। अस्थि में कैल्शियम अथवा अन्य कठोर ऊतक खनिजी हो जाता है और आस-पास का अवसाद चट्टान बना लेता है। अवसादी चट्टानों की परतों में पाए जाने वाले जीवाश्म पृथ्वी पर जीवन के इतिहास को उद्घाटित करते हैं।

ऐसे चट्टानों की आयु-निर्धारण से, जिसमें जीवाश्म पाए जाते हैं, जीवाश्म की आयु के बारे में ठीक-ठीक अनुमान प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यत: गहरी परतों में पाई जाने वाली चट्टानें ऊपरी परतों में पाई जाने वाली चट्टानों की अपेक्षा पुरानी होती हैं। चट्टानों की तुलनात्मक स्थितियों और विभिन्न वातावरणों में अपरदन की दरों को जानकर, 19वीं सदी के भूवैज्ञानिक

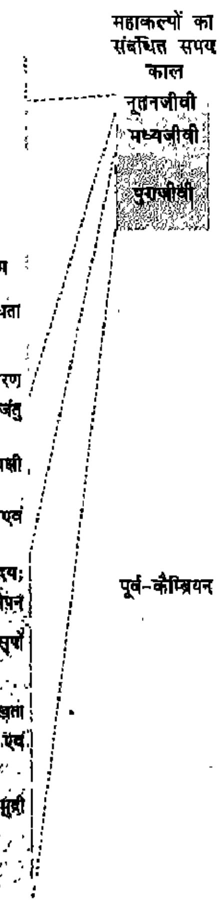
अवसादी चट्टानों एवं जीवाश्मों की तुलनात्मक आयु का निर्धारण करते थे। जीवाश्मों की तुलनात्मक आयु निर्धारण से यह स्पष्ट हुआ है कि जातियों के कुछ समूह दूसरों की तुलना में अधिक पुराने हैं। आज चट्टानों की आयु का निर्धारण रेडियों सक्रिय समस्थानिक पदार्थों के स्वत:क्षरण की कोटि के मापन से किया जाता है, जो चट्टानों के निर्माण के समय उनमें आबद्ध हो गए थे। यह विधि निरपेक्ष आयु निर्धारण कहलाती है। रेडियो सक्रिय समस्थानिक लाक्षणिक अर्ध आयु (रेडियो समस्थानिक की आधी मात्रा के क्षय होने में वांछित समय) में क्षय होता है। चट्टानों और उनके जीवाश्मों की वास्तविक आयु का पता करना अब संभव है। इस तरह बनाया गया **भू-वैज्ञानिक समय मापक** (सारणी 3.1) चार मुख्य महाकल्पों (एरा) से बनी है; प्रत्येक महाकल्प कुछ **'काल'** (Period) में उपविभाजित है जो कि पृथ्वी पर जीवन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को बताता है।

जब जीवाश्म प्राचीनतम से नवीनतम तक उनकी आयुक्रम के अनुसार व्यवस्थित हैं तो प्राय: कालावधि में सजीवों में क्रमानुसार परिवर्तन के प्रमाण पाते हैं। आज डार्विन के समय की तुलना में जीवाश्म लेखा अधिक संपूर्ण है विशेषकर कशेरुकियों में। कशेरुकियों के विभिन्न वर्ग जीवाश्म लेखा में कालक्रमानुसार प्रकट होते हैं। जीवाश्म मछलियां अन्य सभी कशेरुकियों से पूर्वकालिक हैं, उभयचरी अगले तथा सरीसृप

सारणी 3.1 कशेरुकियों का विकास (परिकल्पनात्मक)

भूवैज्ञानिक समय-सारिणी

महाकल्प	काल	कल्प	आयु (मिलियन वर्षों में)	जीवन के इतिहास की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं
	चतुर्थयुगीन	नूतन	0.01	ऐतिहासिक काल
		प्लाइस्टोसीन	1.8	हिम काल, मानव का अवतरण
		प्लायोसीन	5	मानव के वानर-सम पूर्वजों का अवतरण
नूतनजीवी	तृतीययुगीन	मायोसीन	23	स्तनपोषियों और आवृत्तबीजियों का सतत विकिरण
		ओलिगोसीन	34	वानरों सहित अधिकांश आधुनिक स्तनपोषी गणों का उद्गम
		ईओसीन	57	आवृत्त बीजियों की प्रमुखता में वृद्धि; स्तनपोषियों की विविधता में अग्रहर वृद्धि
		पोलिओसीन	65	स्तनपोषियों, पक्षियों एवं परागण-कारी कीटों का प्रमुख विकिरण
	क्रिटेशिअस		144	पुष्पी पादपों (आवृत्तबीजियों) का उदय; डाइनोसोर एवं कई जंतु समूहों का विलोपन
मध्यजीवी	जुरैसिक		208	नग्नबीजी पादपों की प्रभाविता जारी; डाइनोसोर प्रभारी; प्रथम पक्षी का उदय
	ट्राएसिक		245	भूपटल पत्र नग्नबीजियों की प्रभाविता; प्रथम डाइनोसोर एवं स्तनपोषी
	पर्मियन		285	सरीसृपों का विकिरण; स्तनपोषी-सम सरीसृपों का उदय; आधुनिकतम कीटों का आगमन; कई अकशेरुकी का विलोपन
	कार्बोनीफेरस		360	संवहनी पादपों के विशाल वन; प्रथम बीजधारी पादप; सरीसृपों का उदय; उभयचर प्रभावी
पुराजीवी	डिवोनियन		408	अस्थिमय मछलियों की विविधता; प्रथम उभयचरों की प्रमुखता
	सिल्यूरियन		438	जबड़ा-विहीन कशेरुकियों की विविधता; भूमि पर पादपों एवं संधिपादों का निवह निर्माण; संवहनी पादपों का उदय
	आर्डोविसियन		505	प्रथम कशेरुकी (जबड़ा-विहीन) मछलियों का उदय; समुद्री शैवालों की बहुलता
	कैम्ब्रियन		544	अधिकांश अकशेरुकी संघों और शैवालों का उदय
			700	प्रथम जंतुओं का उदय
			1500	प्राचीनतम ससीमकेंद्रकी जीवाश्म
पूर्व-कैम्ब्रियन			2500	वातावरण में ऑक्सीजन का जमाव
			3500	सबसे प्राचीन जीवाश्मों की पहचान (असीमकेंद्रकी)
			4600	पृथ्वी के उदय का लगभग काल

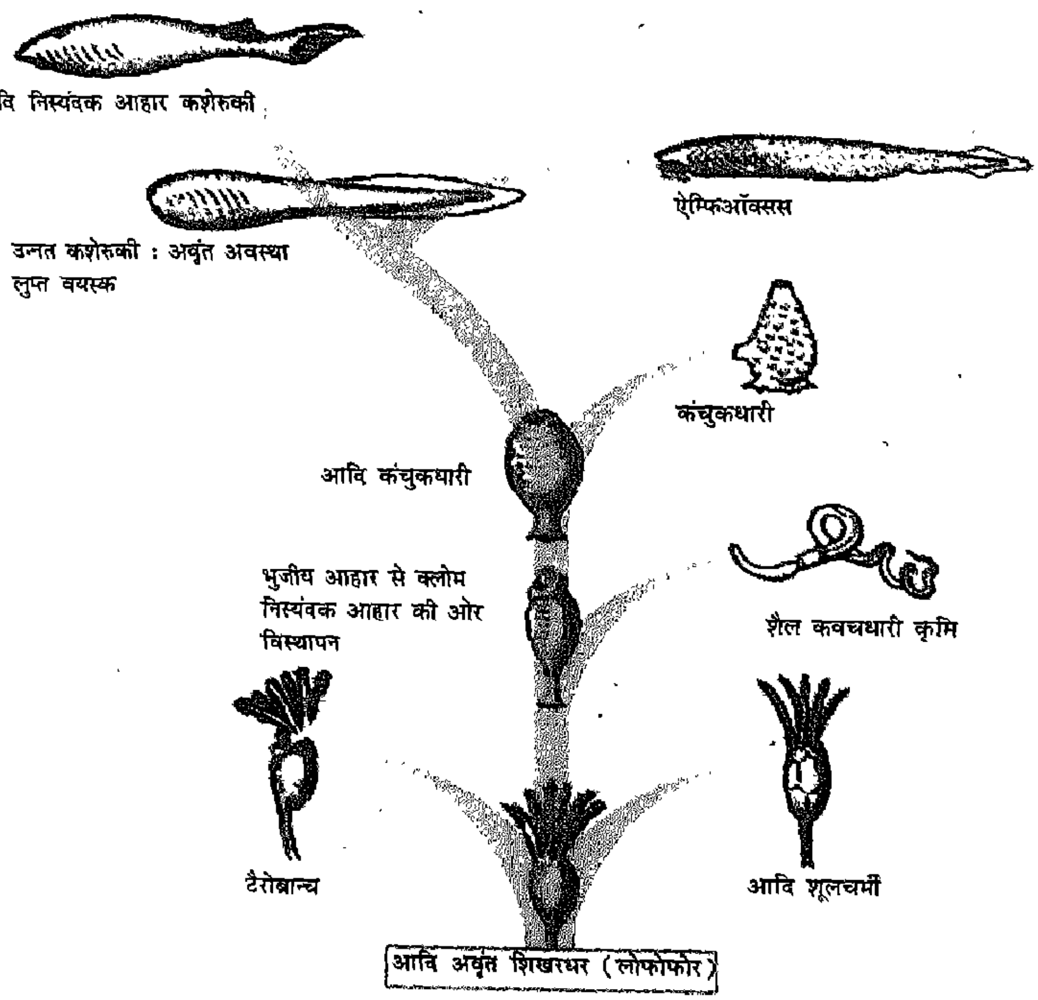


उसके बाद, फिर स्तनी और पक्षी आते हैं। सभी प्रमुख कशेरुकी समूहों को जोड़ते हुए जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। जीवाश्म विज्ञानियों ने कई ऐसे संक्रमण रूप खोजे हैं जो पुराने जीवाश्मों को आधुनिक प्रजातियों से जोड़ते हैं। उदाहरणार्थ, अनेकों जीवाश्मों द्वारा उन परिवर्तनों को प्रमाणित किया गया है जो सरीसृपों से स्तनधारियों के विकास के मध्य उनकी कपाल की बनावट एवं आकार में आए।

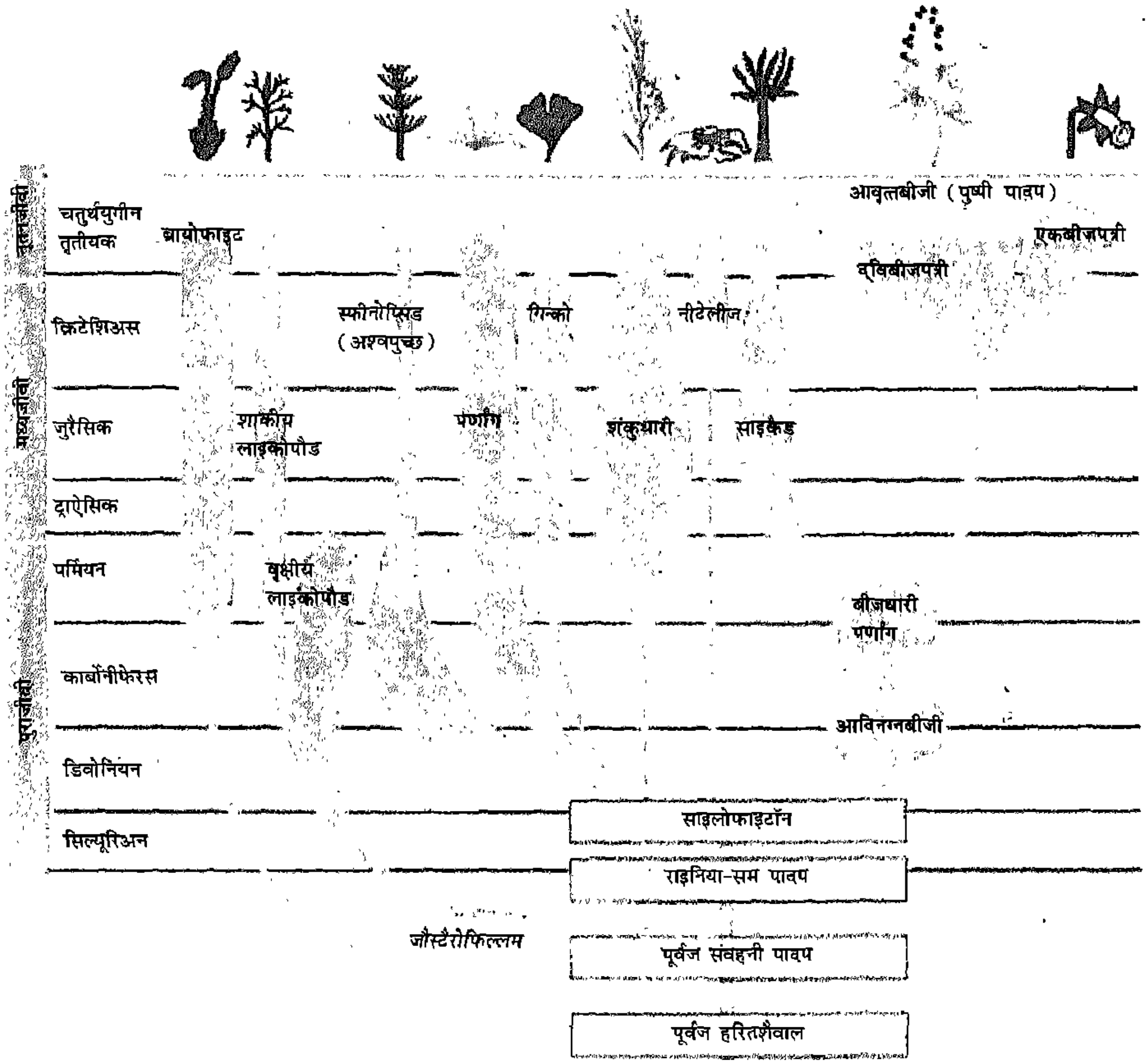
कशेरुकियों के विकास की पद्धति (चित्र 3.16) तथा पौधों के प्रमुख समूहों (चित्र 3.17) के विकास की प्रणाली स्पष्टतः भिन्न है।

संवहनी पौधों के प्रमुख समूहों ने तुलनात्मक रूप से कम संख्या में जीवाश्म छोड़े हैं जो कि बीच-बीच में अवकाश भी दर्शाते हैं। इनकी अपेक्षाकृत थोड़ी-सी मुख्य शाखाएं हैं और वे सभी एक-दूसरे से बहुत अलग हैं। समयानुसार धीमा एवं सतत परिवर्तन दर्शाने के स्थान पर ये मुख्य शाखाएं जीवाश्म अभिलेखों में अचानक प्रकट होती हैं। उसके बाद ये सैंकड़ों लाख वर्षों तक अल्प आधारभूत परिवर्तनों के साथ विद्यमान रहे। आज जीवित संवहनी पौधों के कई प्रमुख उपविभागों का अस्तित्व कोई 345 मिलियन वर्ष पूर्व भी पहचाना जा सकता है, जिसका आधार उनकी विशिष्ट जनन संरचनाएं हैं। सभी आदिम स्थलीय पौधे छोटे बीजाणुधानी में निहित बीजाणुओं के माध्यम से जनन करते हैं। मुख्य वर्गीकृत समूह पौधों पर बीजाणुधानी की स्थिति के द्वारा पहचाने जाते हैं।

अत्यधिक आदिम साइलोस्पिडा में बीजाणुधानियां पौधे के शीर्ष पर स्थित होती हैं। लाइकोप्सिडा में ये पत्तियों के आधार पर होती हैं (आधुनिक पादपजात में *लाइकोपोडियम* और *सिलैजिनेला*)। स्फीनोप्सिडा (Horsetails) में बीजाणुधानिया पौधे के शीर्ष पर चक्रों में व्यवस्थित होती हैं। जीवाश्म प्रमाण लेखबद्ध करते हैं कि ये मूलभूत पद्धतियां 350 मिलियन वर्षों से भी अधिक समय से बनी हुई हैं। कुछ और इनके बीच मात्र मध्यवर्ती



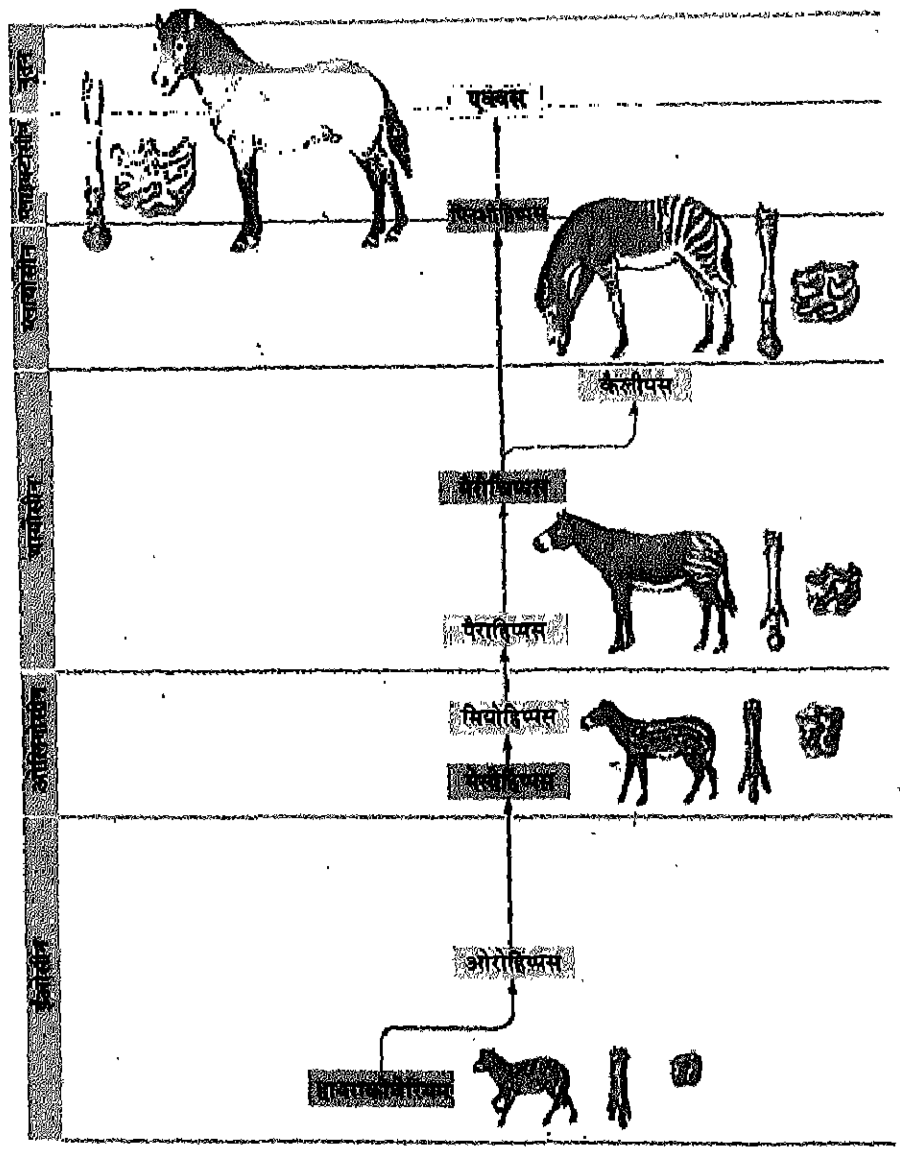
चित्र 3.16 कशेरुकियों का विकास (परिकल्पनात्मक)



चित्र 3.17 पादपों का विकास (परिकल्पनात्मक)

पद्धतियां भी ज्ञात हैं। स्थलीय पौधों में बीजों की उत्पत्ति करीब 345 मिलियन वर्ष पूर्व उन वंश परंपराओं में हुई जो सभी उन्नत संवहनी पौधों के पूर्वज के रूप में पहचाने गए। संवहनी पौधों में अंतिम बड़ी विकासीय प्रगति करीब 140 मिलियन वर्ष पूर्व पुष्पी पादपों के उद्‌भव के रूप में हुई थी। लेकिन जीवाश्मों ने उनके पूर्वजों के विषय में कोई सुराग नहीं छोड़ा। जीवाश्म लेख यह भी संकेत करते हैं कि लगभग सभी जीवित आवृत्तबीजी गण और उनसे विकसित वर्तमान प्रतिनिधियों के अधिकांश लक्षण तब तक विकसित हो चुके थे।

किसी विकास करती हुई शृंखला में एक लक्षण में आए सतत परिवर्तन **विकासीय प्रवृत्ति** (evolutionary trend) कहलाते हैं। एक वंश परंपरा एक ऐसा विकासीय क्रम है जो पूर्वज समूह से उत्तरजीवी समूह तक एक रेखिक क्रम में व्यवस्थित है। इसलिए किसी वंश परंपरा में प्रवृत्ति की संख्या विकसित हो रहे लक्षणों की संख्या के बराबर होती है। एक प्रवृत्ति प्रगामी (अंगों के आकार में सामान्य वृद्धि) हो सकती है या प्रतिगामी (अंगों का अपह्रासित एवं लोप होना)। जीवाश्मों द्वारा प्रमाणित घोड़े का विकास कई महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों को उद्‌घाटित करता



चित्र 3.18 घोड़े का विकास

है (चित्र 3.18)। घोड़े के जीवाश्मों का सावधानीपूर्वक अध्ययन प्रदर्शित करते हैं कि घोड़ों के पूरे कुल में विकासीय प्रवृत्ति सदैव एक-सी नहीं रही वरन् उनकी दिशा और गति भिन्न-भिन्न रही। निम्नांकित सूची में घोड़ों की मुख्य विकासीय प्रवृत्ति अंकित है :

1. आकार में सामान्य वृद्धि (कभी-कभी)।
2. पादांगुलियों की संख्या में कमी।
3. बची हुई पादांगुलियों का लंबा होना।
4. सामान्यत: पादों का लंबा होना।
5. मस्तिष्क (विशेषकर प्रमस्तिष्क गोलार्ध) का बढ़ना।
6. ऊंचाई में वृद्धि।
7. वर्णक दांतों की जटिलता में वृद्धि तथा अंतिम दो चवर्णकों का बढ़ना और अंतिम तीन अग्रचवर्णकों का बढ़ना जब तक कि वे चवर्णकों से समानता न दर्शाए।

3.5 विकास के सिद्धांत

अठारहवी शताब्दी के अंत तक यह विचार कि जीवन पृथ्वी के विकास के साथ विकसित हुआ, जोर पकड़ने लगा था, किंतु केवल वास्तविक रूप से फ्रांसीसी जीव वैज्ञानिक ज्यां बेप्टिस्ट लेमार्क (1744-1829), डार्विन पूर्व काल के एक मात्र विकास समर्थक थे।

लेमार्क का विकास का सिद्धांत या लेमार्कवाद

लेमार्क ने अपना विकास का सिद्धांत 1809 में प्रकाशित किया जिस वर्ष चार्ल्स डार्विन पैदा हुए थे। उसके समय की प्रजातियों को जीवाश्म लेखा से तुलना करके लेमार्क ने जीवाश्मों को कालक्रमानुसार श्रेणी में पुराने से नवीन रूपों तक के क्रम में व्यवस्थित किया। उसने कई उत्तरजीविता की रेखाओं तथा आधुनिक प्रजातियों की वंशावलियों को पहचाना। अपने निरीक्षणों के आधार पर लेमार्क ने प्रस्तावित किया कि सजीवों में विभिन्नताएं वातावरण की आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न होती हैं और एक निश्चित दिशा में एक गुण के अनुकूलन को यह अनुक्रिया करने की क्षमता निर्देशित करती हैं। इस तरह लेमार्क ने जीवाश्मों को विकासीय संदर्भ में रखा और अनुकूलनों को एक विकासीय रूपांतरण के तरीके के रूप में रखा। उसका सिद्धांत प्रायः **उपार्जित लक्षणों की वंशागति अथवा अंगों के उपयोग** और **अनुपयोग के सिद्धांत** (Theory of Inheritance of Acquired characters, Theory of Use and Disuse of Organ) के रूप में जाना जाता है।

लेमार्क की अवधारणाएं

उसने निम्नांकित चार साध्य प्रस्तुत किए :

(i) जीवित सजीव या उनके संघटक भाग आकार में लगातार बढ़ने की प्रवृत्ति रखते हैं।

(ii) नए अंगों का उत्पादन नई आवश्यकताओं और नई गतियों का परिणाम होता है जिसे यह आवश्यकता आरंभ करती और बनाए रखती है।

(iii) यदि एक अंग लगातार उपयोग में लाया जाता है तो वह अत्यधिक विकसित होता है जबकि अनुपयोग का परिणाम ह्रास होता है।

(iv) किसी जीव के जीवन काल में उपर्युक्त सिद्धांतों के अंतर्गत उत्पादित रूपांतरण उनकी संतानों में वंशागत होते हैं परिणामतः ये परिवर्तन एक विशेष कालखंड में संचयी होते हैं।

लेमार्क की समालोचना

यद्यपि अवरोहण की कई वंश रेखाएं उदाहरण के लिए घोड़े, हाथी एवं अन्य प्राणियों का विकास लेमार्क के प्रथम प्रस्ताव को चित्रित करती हैं किंतु यह सर्वकालिक सत्य नहीं है। क्योंकि कई समूहों में आकार विकास के कालक्रम में छोटा होता गया। उदाहरण के लिए, आवृत्तबीजियों में वृक्ष आदिम प्रतीत होते हैं और झाड़ियां तथा घासों सहित शाक, इन वृक्षों से विकसित हुए हैं।

दूसरी अवधारणा गलत है। क्या हम पंख उगाकर पक्षियों की तरह उड़ने की सोच सकते हैं? वास्तव में जीवों में आंतरिक महत्वाकांक्षा का महत्त्व वैज्ञानिकों व तरीकों से परखा नहीं जा सकता।

तीसरी अवधारणा में कुछ सच्चाई है। इस सिद्धांत से लेमार्क ने जिराफ की लंबी गर्दन और ऊंचे कंधों के उद्भव को बताने का प्रयत्न किया है। लेमार्क के अनुसार जिराफ को खाने के लिए ऊंचे पौधों पर निर्भर रहना पड़ता है। जिसके कारण उसकी गर्दन लंबी एवं कंधे आवश्यकतानुसार ऊंचे होते गए। इस तर्क के पक्ष में कुछ उदाहरण इस प्रकार से ही ब्लैकस्मिथ के बाईसेप्स पेशियों का अत्यधिक विकास, खरगोश के कर्ण पल्लवों का विभिन्न दिशाओं से आने वाली ध्वनि तरंगों को ग्रहण करने के लिए उनकी पेशियां अधिक विकसित होती हैं आदि। सांप में पांव का अभाव, गुफा में रहने वाले प्राणियों में आंखों का नहीं होना, किसी पक्षी में उड़ने की क्षमता का न होना, ये कुछ उपयोगी विकासीय के संबंध में अनुपयोगी अंगों को लुप्त होना बताते हैं। फिर भी इस अवधारणा को लागू करने में बहुत-सी रुकावटें आयीं। हमेशा पढ़ने वाले की उम्र के साथ आंखों की ना तो आकार और ना ही क्षमता की वृद्धि हुई। लगातार धड़कने वाले हृदय पीढ़ियों से एक ही स्थिर आकार बनाए हुए हैं।

चौथी अवधारणा तब आवश्यक भाग प्रतीत होती है। जब वातावरण द्वारा उत्पन्न रूपांतरण का कोई विकासीय महत्त्व दर्शाया जा सके।

बहुत पहले वाइजमान (1904) ने देखा कि चूहों की 22 पीढ़ियों तक पूंछें काट कर छोटी करने पर भी पूंछ-रहित चूहा पैदा नहीं हुआ। मेंडल के **आनुवंशिकता के नियमे** (Laws of Inheritance) तथा वाइजमान का **जनन जीव द्रव्य पदार्थ के सिद्धांत** (Theory of Germplasm) (1892) ने लेमार्क के उपार्जित लक्षणों की वंशागति के सिद्धांत को नकार दिया। लेकिन लेमार्क के समय में आनुवंशिकता की अवधारणा सर्वस्वीकृत थी, और वास्तव में डार्विन कोई स्वीकार्य विकल्प नहीं दे सका। विकास के संबंध में लेमार्क का सिद्धांत अब एक गलत अवधारणा मानी जाती है क्योंकि उपार्जित लक्षण वंशानुगत नहीं होते।

पूर्वावलोकन में हमें लेमार्क को विकासीय दृष्टिकोण के संदर्भ में जीवाश्म के लेखों और तत्कालीन जीवन की विविधता की व्याख्या प्रस्तुत करने तथा पृथ्वी की लंबी आयु और वातावरण के प्रति अनुकूलन को विकास के प्राथमिक उत्पाद के रूप में उपयुक्त महत्त्व देने के कारण पर्याप्त श्रेय देना चाहिए।

डार्विन का विकास का सिद्धांत

चार्ल्स राबर्ट डार्विन ने स्पष्ट और समझने योग्य तरीके से प्राकृतिक वरण की अवधारणा द्वारा विकास की क्रियाविधि को रखा। डार्विन ने जैविक जगत को एक 'मास्टर की' (रामबाण दवा) प्रदान की जो विकास संबंधी पूर्ववर्ती की जटिलताओं को सुलझा सके।

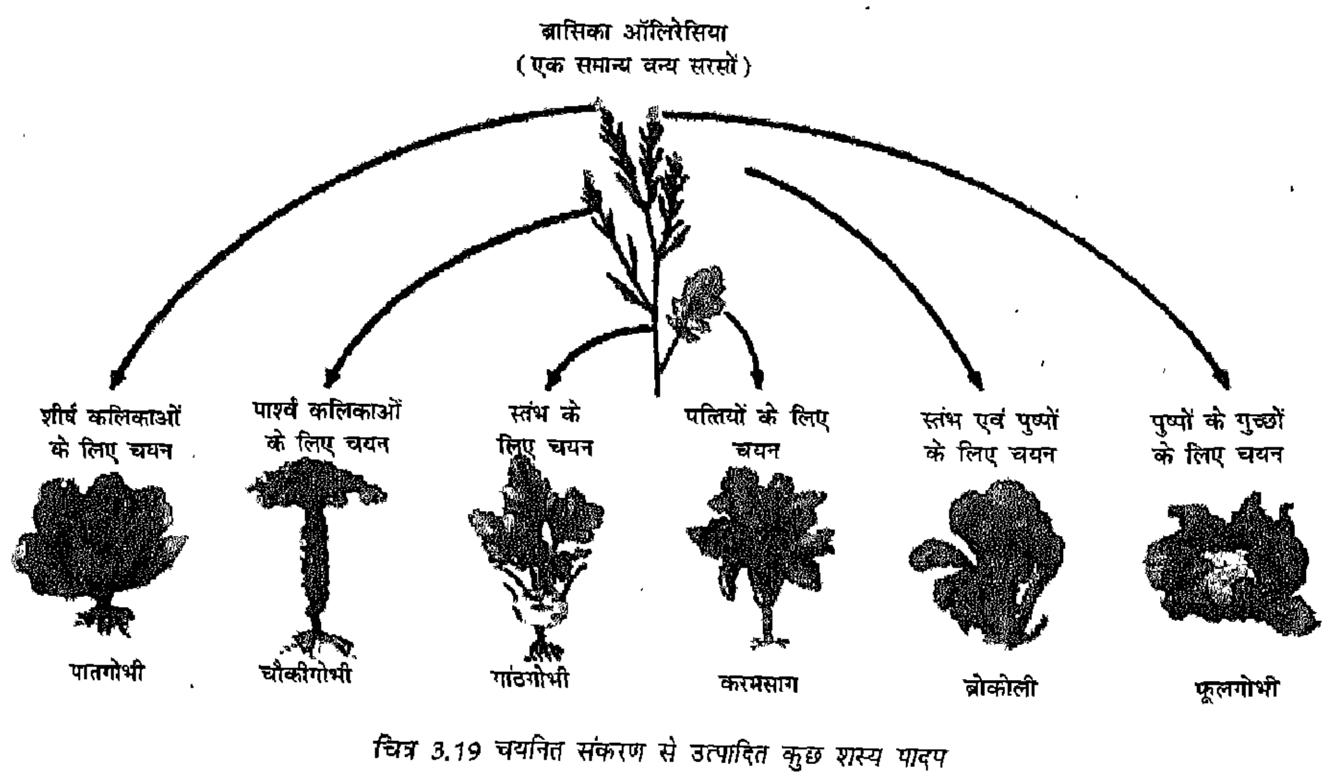
डार्विन 1836 के अक्टूबर में इंग्लैंड में अपने अभियान से यह विवेचन (उत्तजीविता का विचार) लेकर लौटा कि मनुष्य समेत सभी सजीव पूर्व स्थित जीवन के रूपों के रूपांतरित अवरोही हैं। सन् 1838 में वह थामस रेव माल्थस (1766–1834) के लेख *जनसंख्या पर एक विवेचन* के संपर्क में आया जो कि 1799 में प्रकाशित हुआ। माल्थस ने यह अभिव्यक्त किया था कि अकाल, युद्ध और बीमारियां निर्विवाद रूप से जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करते हैं। डार्विन ने पाया कि जनसंख्या के सीमित स्रोतों और लगातार प्रजनन दबावों के मध्य सतत् संघर्ष होता रहता है। इस तरह डार्विन ने यह अनुभव किया कि मनुष्यों की तरह समस्त जीवों में प्रतियोगिता विद्यमान रहती है।

डार्विन ने विकास की क्रियाविधि से संबंधित आंकड़ों को एकत्र किया। अति प्राचीन काल से मनुष्य द्वारा जंगली पौधों एवं जंतुओं को पालतू बनाने के मानव के जागरूक प्रयासों से वह बहुत प्रभावित हुआ। युगों से मनुष्य अपनी आवश्यकता की अनुकूलता हेतु वन्य प्रजातियों को रूपांतरित करने में एक सशक्त माध्यम रहा है। चयन से जीवविज्ञानियों ने सफलतापूर्वक गायें उत्पन्न कीं जो अधिक दूध देती हैं। हमने खिलौने जैसे शेटलेण्ड घोड़े, ग्रेट डेन कुत्ते, पतले अरेबियन घुड़दौड़ के घोड़े और बड़ी संख्या में उपजाई जाने वाली फसलों और सजावटी पौधों को पूर्णता प्रदान की है। साथ ही कई शस्य पादपों जैसे ब्रोकोली, पत्तागोभी, फूलगोभी आदि को चयनात्मक जनन द्वारा उत्पन्न किया गया है (चित्र 3.19)।

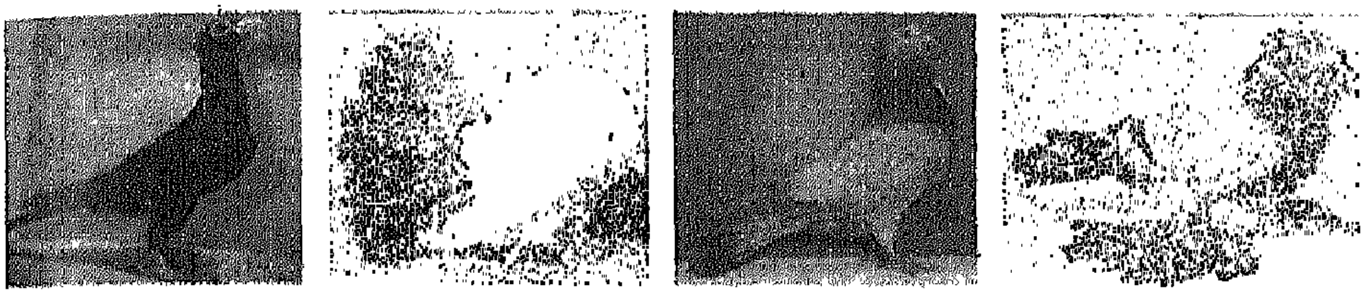
मुर्गे की विभिन्न संकर किस्मों जैसे उत्सवी मुर्गों (जापानी ऑनागा–डोरी) से लेकर ब्रॉयलर, लेगहार्न्स तक सभी एक अकेली वन्य जाति *गैलस गैलस* से उत्पन्न की गई है। डार्विन ने पालतू पौधों एवं जंतुओं की संकरण संबंधी पूछताछ से चयन के लिए स्पष्ट प्रमाण पाए। जो कृत्रिम चयन था। संकरण कर्त्ताओं ने चयन की प्रक्रिया में ऐसे विभेदों को जारी रखा जिनमें उसकी रुचि थी अथवा वे उसके लिए उपयोगी थे। डार्विन ने स्वयं ही कई प्रकार के कबूतरों को कृत्रिम चयन से विकसित किया (चित्र 3.20)।

डार्विन ने प्रकृति में होने वाली ऐसी समान प्रक्रिया को प्राकृतिक चयन कहा जिसे उसके विचार के अनुसार अतिधीमी होने के कारण देखा नहीं जा सकता। उसने तर्क दिया कि यदि कृत्रिम चयन द्वारा अल्प समय में इतने अधिक परिवर्तन प्राप्त किए जा सकते हैं तो प्राकृतिक चयन द्वारा सैकड़ों–हजारों पीढ़ियों में स्पष्ट रूपांतरण आए होंगे। उसने विचार रखा कि स्थितियों में होने वाला प्राकृतिक चयन एक लंबे समयांतराल पर जीवन की संपूर्ण विविधता में परिवर्तन हेतु उत्तरदायी है।

यद्यपि डार्विन ने अपने प्राकृतिक चयन के विचारों को सूचीबद्ध कर लिया था तो भी वह अपने लेख प्रकाशित करने के लिए वांछित साहस एकत्रित करने में असफल रहा। जून 1858 में एक रोचक घटनाक्रम में डार्विन को डच ईस्ट इंडीज के प्रकृति विज्ञानी अल्फ्रेड वैलेस (1823–1913) का एक छोटा



चित्र 3.19 चयनित संकरण से उत्पादित कुछ शस्य पादप



चित्र 3.20 डार्विन द्वारा वर्णित कुछ ऐसे कबूतर जिनका अब कृत्रिम चयन द्वारा उत्पादन कर लिया गया है

लेख मिला जो कि मलय आर्किपेलेगो (आधुनिक इंडोनेशिया) में कार्यरत थे। इस लेख का शीर्षक था "ऑन द टेन्डेसीज ऑफ वेराइटीज टू डिपार्ट इन्डेफिनिटली फ्राम दी ऑरिजनल टाइप"। आश्चर्यजनक रूप से वैलेस ने भी, जिसने प्राकृतिक वरण के सिद्धांत की स्वतंत्र रूप से मलेरिया ज्वर से पीड़ित होने पर अंतःप्रेरणा की चमक से कल्पना की थी, जनसंख्या पर माल्थस के लेख से प्रेरित हुआ था। डार्विन को उसकी विकास में प्राकृतिक चयन क्रियाविधि की वरीयता से वंचित होने से रोकने के लिए उसके मित्रों, चार्ल्स लायेल (1797- 1875) और जोसेफ हुकर (1817-1911) ने इस विषय पर दो छोटे शोधपत्र दोनों ही लेखकों के नाम से व्यवस्थित किए। 1 जुलाई 1858 को वैलेस के लेख एवं डार्विन की पांडुलिपि का एक भाग साथ-साथ लंदन की लिनियन सोसाइटी के सामने पढ़े गए।

डार्विन ने आठ वर्षों तक अपने विस्तृत आलेखों को एक पुस्तक के रूप में संयोजित करने हेतु काफी मेहनत की जो कि नवम्बर 1859 में प्रकाशित हुई। उसके ऐतिहासिक विवेचन का पूर्ण शीर्षक था *ऑन द आरिजिन ऑफ स्पीशीज बॉय मीन्स ऑफ नेचुरल सलेक्शन : द प्रिजरवेशन ऑफ रेसेज इन द स्ट्रगल फॉर लाइफ*। डार्विन ने जातियों की उत्पत्ति को कम स्थान प्रदान किया। उसने अपना ध्यान इस बिंदु पर केंद्रित रखा कि कैसे समष्टियां उनके स्थानिक वातावरण के प्रति प्राकृतिक चयन से भली-भांति अच्छी तरह अनुकूलित होती हैं।

प्राकृतिक चयन का सिद्धांत

प्राकृतिक चयन का सिद्धांत ऐसे पांच महत्त्वपूर्ण प्रेक्षणों और तीन निष्कर्षों (अर्नस्ट मेयर, 1982) पर आधारित है जो कि तर्क से प्राप्त हुए (सारणी 3.2)। इस प्रकार प्राकृतिक चयन जीवों में प्रजनन की अंतरीय सफलता को कह सकते हैं तथा इसके उत्पाद हैं जीवों का उनके वातावरण के प्रति अनुकूलन।

अगर कुछ भिन्नताओं के लाभ दूसरे की तुलना में थोड़े भी हैं तो भी अनुकूल भिन्नताएं समष्टियों में कई पीढ़ियों के बाद एकत्र होती और प्राकृतिक चयन द्वारा आनुपातिक रूप से सतत बनी रहती हैं। इस तरह प्राकृतिक चयन वातावरण और समष्टि में निहित भिन्नता के बीच अन्योन्य क्रिया द्वारा होता है।

डार्विनवाद की कमजोरियां

यद्यपि डार्विन ने माना कि विकास की प्रक्रिया आनुवंशिकता की क्रियाविधि से संबद्ध है, वह भिन्नताओं का आधार और भिन्न रूपों के अगली पीढ़ी में संचरण के तरीके को समझाने में असफल रहा। सन् 1868 में, डार्विन ने आनुवंशिकता का अपना सिद्धांत **थ्योरी आफ पेनजेनेसिस** (Theory of Pangenesis) के रूप में रखा था। इस सिद्धांत के अनुसार शरीर का प्रत्येक अंग एक छोटा आनुवंशिक कण उत्पन्न करता है। जिसे उसने पेनजीन (Pangene) या जेम्यूल, (Gemmule) कहा है जैसे यकृत से प्राप्त यकृत-जेम्यूल, पैर से प्राप्त पैर-जेम्युल, रक्त द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग से ले जाए जाते हैं और युग्मकों में एकत्र हो जाते हैं। हालांकि अगस्त वाइजमान के जनन जीवद्रव्य सिद्धांत ने स्थापित किया था कि जनन लैंगिक कोशिकाएं अन्य प्रकार की कोशिकाओं से भ्रूणीय विकास के आरंभिक काल में ही पृथक हो जाती हैं। अतएव केवल ऐसे परिवर्तन जो कि जनन-द्रव्य में होते हैं और वयस्क शरीर को प्रभावित नहीं करते, आगामी पीढ़ियों के लक्षणों को प्रभावित करते हैं। वास्तव में इस जीवद्रव्य सिद्धांत ने डार्विन के पेनजेनेसिस के सिद्धांत को उखाड़ फेंका।

डी व्रीज का सिद्धांत

मेंडल के आनुवंशिकता के नियमों ने डार्विनवाद को अंशकालिक ग्रहण लगा दिया। उसने आनुवंशिकता की पहचान कणमय की थी। लेकिन भिन्नताओं के उद्भव के स्रोत के प्रश्न को अनुत्तरित छोड़ दिया। ह्यूगो डी व्रीज (1848-1935) वह पहला व्यक्ति था जिसने इस प्रश्न का सफल उत्तर दिया जिसे मेंडल स्पष्ट नहीं कर सका था। सन् 1901 में उसने **उत्परिवर्तन का सिद्धांत** (Mutation Theory) प्रस्तुत किया जिसका आधार उसके इवनिंग प्रिमरोज (Oenothera lamarckiana) के वन्य प्रकार पर किए गए प्रेक्षण थे।

उसने असतत भिन्नताएं जो कि अचानक प्रकट होती हैं के लिए स्वतः उत्परिवर्तन का नाम दिया। प्राणियों के ब्रीडर्स

सारणी 3.2 प्राकृतिक वरण पांच प्रमुख प्रेक्षणों तथा तीन निष्कर्षों से प्रतिपादित हुआ है

प्रेक्षण	निष्कर्ष
1. सभी जातियां प्रजनन की इतनी अधिक क्षमता रखती हैं कि उनकी जनसंख्या घातांकीय रूप में बढ़ती रह सकती है यदि सभी सजीव जो पैदा हो रहे हैं, सफलतापूर्वक जनन करें ।	
2. अधिकतर जनसंख्याएं सामान्यतः केवल मौसमी उतार-चढ़ाव को छोड़ कर आकार में स्थिर होती हैं ।	
3. प्राकृतिक स्रोत सीमित हैं ।	क. वातावरण की धारण क्षमता से अधिक व्यष्टियों का उत्पन्न होना उनमें अस्तित्व के लिए संघर्ष को जन्म देता है और प्रत्येक पीढ़ी की संतानों का मात्र कुछ अंश ही जीवित रह पाता है ।
4. किसी एक जनसंख्या के सदस्य अपने लक्षणों में पर्याप्त विविधता दर्शाते हैं; कोई भी दो जीव बिल्कुल एक जैसे नहीं होते ।	
5. विविधता का अधिकांश भाग आनुवंशिक होता है ।	ख. अस्तित्व के लिए संघर्ष में जीवित बचना अनियमित नहीं होता अपितु आंशिक रूप से जीवित रहने वालों के आनुवंशिक संगठन पर निर्भर करता है । ऐसे जीव जिन्होने वातावरण के लिए सर्वाधिक अनुकूल लक्षणों को वंशानुगत रूप से प्राप्त किया है, उनकी तुलना में अधिक संतानें छोड़ते हैं जो कम अनुकूलित है ।
	ग. जीवों की जीवित रहने एवं जनन करने की असमान क्षमता जनसंख्या में एक क्रमिक परिवर्तन लाती है जिससे अनुकूल लक्षणों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी एकत्रीकरण होता रहता है ।

तथा डार्विन ने भी असतत उत्परिवर्तनों को देखा किंतु उन्होंने इन प्रेक्षणों को स्पोर्ट्स (Sports) कहा और उन्हें अधिक महत्त्व का नहीं माना । डी व्रीज ने इन्हें उत्परिवर्तन से विकास के पूर्ण सिद्धांत के रूप में विस्तारित किया । डी व्रीज के लिए ये उत्परिवर्तन वे हैं जो विकासीय परिवर्तन को नियंत्रित करते हैं तथा प्राकृतिक चयन से अधिक महत्त्व के हैं । उसने जीवों में सतत भिन्नताओं के विचार जो कि डार्विन द्वारा रखा गया था, को छोड़ दिया क्योंकि वह परिणामविहीन तथा अधिकांशतः आनुवंशिक नहीं है।

डी व्रीज सिद्धांत के मुख्य बिंदु

डी व्रीज सिद्धांत के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं :

(i) नई प्रारंभिक जातियों की उत्पत्ति ऐसी वृहत असतत विविधताओं के परिणामस्वरूप होती है जो अचानक उत्पन्न होते और तत्काल पूर्ण स्थिरता प्राप्त कर लेते हैं ।

(ii) वही नई जातियां पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न होती हैं ।

(iii) उत्परिवर्तन बार-बार होने वाली प्रक्रिया है जिससे कि वही उत्परिवर्तित बार-बार प्रकट होते हैं, इसलिए प्रकृति द्वारा चयन के अवसर बढ़ते हैं ।

(iv) उत्परिवर्तन सभी दिशाओं में होते हैं क्योंकि इसका अर्थ है किसी लक्षण का विलोप होना या ग्रहण करना ।

(v) उत्परिवर्तनीयता आधारभूत रूप से डार्विन द्वारा सुझाई गई बदलती विविधता से अलग है जो लघु और विशिष्ट दिशा में अग्रसर होती है ।

डी व्रीज के सिद्धांत की समालोचना

डी व्रीज ने एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत निर्मित किया जो आज भी सुस्थापित है । जबकि जिस सामग्री पर उसने काम किया और जिस पर उसका सिद्धांत आधारित है, असामान्य था । वास्तव में *ओइनोथीरा लेमार्किआना* (Oenothera lamarckiana) संकर प्रकृति का है और यह पौधा अपने आप में असामान्य गुणसूत्री व्यवहार रखता है । डी व्रीज द्वारा सुझाए गए उत्परिवर्तन मुख्यतः गुणसूत्री उत्परिवर्तन थे जो गुणसूत्रों की संख्या को प्रभावित करते हैं और अस्थिर होते हैं । डार्विनवाद का वर्तमान ज्ञान हमें बताता है कि उत्परिवर्तन के द्वारा नए जीन या ऐलील जीन समुच्चय में समाहित नहीं किए जा सकते हैं क्योंकि प्राकृतिक चयन तब तक अकार्यशील रहता है जब तक कि जीन समुच्चय में कोई परिवर्तन न हो ।

जहां लेमार्क, डार्विन और अन्यों ने विविधता की अनुकूली प्रकृति पर जोर दिया था, डी व्रीज ने इसकी बारंबारता पर जोर दिया। जबकि पूर्व वैज्ञानिकों ने विकास में छोटे और क्रमिक परिवर्तनों के महत्व को रेखांकित किया था, डी व्रीज ने अचानक और अक्सर प्रबल परिवर्तनों को समुच्चय की उत्पत्ति का कारण माना। डार्विनवादियों की मान्यता थी कि विकास शनैः शनैः क्रमिक होने वाली वंशानुगत विविधताओं के कई पीढ़ियों में शृंखलाबद्ध होने का परिणाम है। डी व्रीज ने कहा कि नई जातियां अचानक हुए परिवर्तन द्वारा जिसे साल्टेशन कहते हैं, एक ही चरण में बड़े उत्परिवर्तन (Macrogenesis) से उत्पन्न हो सकती हैं। हालांकि शनैः शनैः विकास और आकस्मिक कूद से विकास के बीच का वाद-विवाद अभी भी सुलझा नहीं है।

3.6 डार्विनवाद का आधुनिक दृष्टिकोण

यद्यपि डी व्रीज की अवधारणा ने आरंभ में प्राकृतिक चयन के बारे में समकालीन आनुवंशिकविदों की आशंका को पुष्ट किया अंततः इसने विकास के डार्विनवादी दृष्टिकोण को उचित रूप से समझने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। जीवों की भूवैज्ञानिक समयानुसार बड़े स्तर पर विविधता और परिवर्तन की प्रक्रिया के विकास (Macroevolution) में वंशागत पदार्थ में आनुवंशिक स्तर पर सूक्ष्म परिवर्तन विकास (*microevolution*) अंतर्निहित है। 20वीं शताब्दी के प्रथम भाग में विकास के आनुवंशिकी (population genetics) को विकासीय अध्ययन में समाहित करने से विकास के नए सिद्धांत का उदय हुआ जिसे आधुनिक संश्लेषण (modern synthesis) कहते हैं। यह विकास की इकाइयों के रूप में समष्टियों के महत्व पर जोर देता है तथा विकास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रियाविधि में प्राकृतिक चयन की केंद्रीय भूमिका पर जोर देता है।

समष्टि आनुवंशिकी और विकास

समष्टि आनुवंशिकी (population genetics) समष्टियों में वंशाणु की बारंबारता का अध्ययन है, यह मेंडेलीय आनुवंशिकता का डार्विनवादी प्राकृतिक चयन में अनुप्रयोग है। इस परिभाषा के अनुसार एक जाति के वे सदस्य जो एक ही क्षेत्र में एक निश्चित समय में पाए जाते हैं, समष्टि बनाते हैं। विकास समष्टियों के भीतर ही होता है क्योंकि विभिन्न डीएनए की विविध सापेक्ष बारंबारता समय-समय पर बदलती है। अगर एक विशेष एन्जाइम के दो रूप एक समष्टि में विद्यमान है और उनमें से प्रत्येक रूप को धारण करने वाले सदस्यों की बारंबारता बदलती है तो विकास निश्चित ही हो रहा है।

एक सुविख्यात **हार्डी वेनबर्ग संतुलन प्रमेय या सिद्धांत** (Hardy-Weinberg Equilibrium (theorem) or Principle) जो जी.एच. हार्डी तथा डब्ल्यू वेनबर्ग द्वारा 1908 में स्वतंत्र रूप से दिया गया था, एक विकास नहीं करने वाली समष्टि के जीनी संरचना को परिभाषित करता है। उन्होंने देखा कि जीन्स का आनुवंशिक संरक्षण एक समष्टि की लाक्षणिकता है। हार्डी वेनबर्ग नियम के अनुसार कुछ निश्चित स्थिर परिस्थितियों में बारंबारता पीढ़ी दर पीढ़ी स्थिर रहती है। इसका अर्थ है कि अगर शेष सभी कारक स्थिर रहते हैं तो निश्चित जीनों और इनके एलीलों की बारंबारता एक समष्टि में पीढ़ियों तक स्थिर रहेगी। आनुवंशिक स्तर पर इस प्रकार की स्थिरता आनुवंशिक संतुलन कहलाता है।

हार्डी वेनबर्ग सिद्धांत आनुवंशिकीविदों को एक ऐसा साधन देता है जो यह निश्चय करने में सहायक होता है कि विकास कब हो रहा है। समष्टि आनुवंशिकीविद् इस सिद्धांत का उपयोग एलेलिक बारंबारता की गणना के लिए करते हैं और तब इसकी बारंबारता को आगे भविष्य की बारंबारता मापन से तुलना करते हैं। प्रेक्षित बारंबारता और हार्डी वेनबर्ग सिद्धांत द्वारा अनुमानित से विचलन विकासीय परिवर्तन की कोटि की ओर संकेत करता है। इसलिए विकास तब होता है जब संतुलन बिगड़ता है दूसरे शब्दों में, विकास हार्डी-वेनबर्ग संतुलन से विपथन है।

विभिन्नताओं के स्रोत

समष्टि के सदस्य कुछ लक्षणों में तो समानता रखते हैं किंतु एक दूसरे से कई रूपों में भिन्न भी होते हैं। वास्तव में दुर्लभ अपवादों को छोड़कर किसी समष्टि के कोई दो सदस्य एक जैसे नहीं होते। समष्टि के विकास के लिए इसके सदस्यों में विविधता होनी चाहिए जो कि ऐसी कच्ची सामग्री है जिस पर कि विकास के कारक सक्रिय होते हैं। विविधताएं लक्षणप्ररूप और जीन रूप दोनों स्तरों पर देखी गई है। लक्षणप्ररूप जीव के गुण की भौतिक अभिव्यक्ति है। जबकि जीव के वंशानुगत लक्षणों (आनुवंशिक संगठन) को जीन प्ररूप नियंत्रित करता है। प्राकृतिक चयन आनुवंशिक विविधता पर तभी कार्य कर सकता है जबकि यह लक्षणप्ररूप में अभिव्यक्त है।

अतः विकास के लिए आनुवंशिक विविधता चाहिए। *बिस्टॅान बेटुलारिया* के उदाहरण में अगर कोई गहरे रंग का शलभ न हो तो शलभ की समष्टि अत्यधिक हल्के से अत्यधिक गहरे रूपों तक विकसित नहीं हो सकती। विकास जारी रखने के लिए आनुवंशिक विविधता में वृद्धि, कमी अथवा नया सृजन करने की कुछ क्रियाविधि चाहिए।

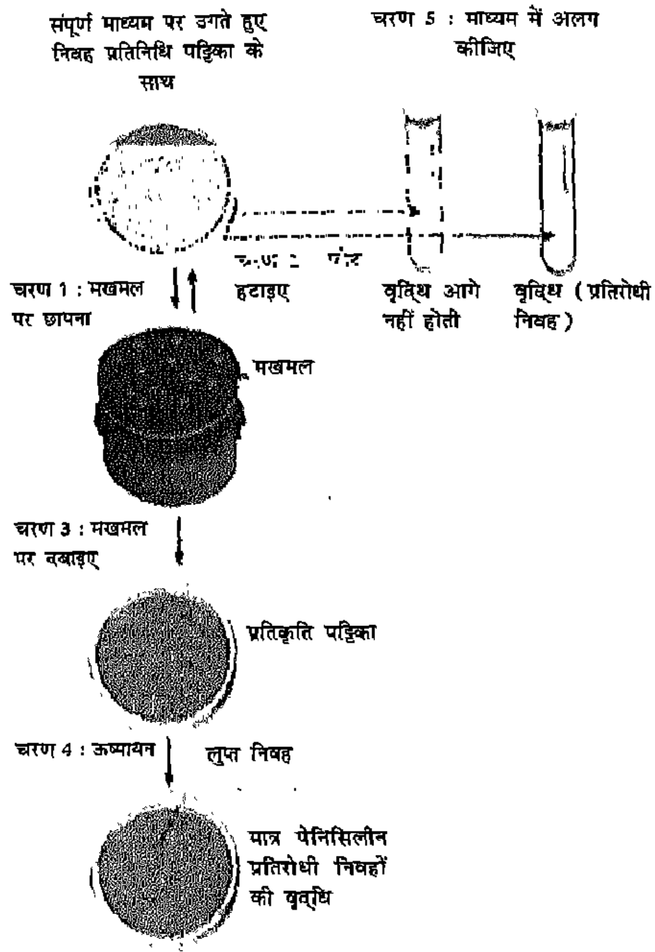
विकासीय कारक वे कारक हैं जो एलील और जीन प्ररूप बारंबारता को एक समष्टि में बदलती है। दूसरे शब्दों में वे हार्डी वेनबर्ग संतुलन से विचलन उत्पन्न करती है। पांच आधारभूत

प्रक्रियाएं हार्डी वेनबर्ग संतुलन को प्रभावित करती हैं और आनुवंशिक स्तर पर विविधताएं पैदा करती हैं। ये हैं–**उत्परिवर्तन** (mutation), **पुनर्योजन** (recombination) **जीन प्रवास** (gene migration), **आनुवंशिक विचलन** (genetic drift) और **प्राकृतिक चयन** (natural selection)।

उत्परिवर्तन

ह्यूगो डी व्रीज के लिए उत्परिवर्तन एक अचानक उत्पन्न वंशानुगत परिवर्तन है। ये उत्परिवर्तन जीवों की अनुकूली आवश्यकताओं के लिए अव्यवस्थित है। अधिकतर उत्परिवर्तन धारक के लिए हानिकारक है। अगर वातावरण बदलता है तो पूर्व के हानिकारक या उदासीन एलीलस लाभकारी बन सकते हैं। अधिकतर अध्ययन किए गए लोसाई के लिए परिवर्तन की दर बहुत धीमी होती है। सामान्यतया एक लाख में एक उत्परिवर्तन होता है। ये उत्परिवर्तन दरें समुचित आनुवंशिक विभिन्नताएं उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त हैं। जोशुआ लेडरबर्ग और ईस्थर लेडरबर्ग (1952) एक उत्कृष्ट प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित करने में सफल हुए कि ऐसे भी उत्परिवर्तन हैं, जो पूर्व अनुकूलित हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन लाभकारी उत्परिवर्तन के रूप से माने जाते हैं। ये वातावरण के संपर्क के बिना ही प्रकट होते हैं एवं जीव के लिए लाभकारी होते हैं। वास्तव में पूर्व अनुकूलित उत्परिवर्तन अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं। केवल नए वातावरण के संपर्क के बाद हमें जिसके सजीवों को अनुकूलित होना है, नया वातावरण उनके केवल पूर्व अनुकूलित उत्परिवर्तनों का चयन करता है।

लेडरबर्ग और लेडरबर्ग (1952) ने पुनराकृति पट्टीकरण प्लेटिंग (चित्र 3.21) की तकनीकों को प्रयोग किया। *ऐस्केरिशिया कोलाई* के एक संवर्धन घोल से जिसे एक अकेली कोशिका से व्युत्पन्न किया था, उन्होंने एक मुख्य अगार प्लेट पर कोशिकाओं को फैलाया। प्रत्येक कोशिका ने एक अलग कालोनी को जन्म दिया। उन्होंने तब एक मखमल का कपड़ा प्रतिकृति पट्टी पर रखा फिर उसे नई प्लेट से स्पर्श कराया जिसमें पेनीसिलीन एन्टीबायोटिक युक्त माध्यम था। इस विधि द्वारा उन्होंने प्रत्येक कालोनी से कुछ कोशिकाओं को रेप्लीका प्लेट तक स्थानांतरित किया। इस प्रक्रिया में पुनराकृति पट्टियों पर जीवाणु के कालोनियों की स्थानीय अवस्था मुख्य पट्टी के समान थी। कुछ कालोनियां पुनराकृति पट्टिका पर प्रकट हुईं जो कि पेनिसिलीन प्रतिरोधी उत्परिवर्तित कोशिकाओं से उगी थी। जब मुख्य पट्टी पर की सभी कालोनियों को पेनीसिलीन प्रतिरोधिता के लिए जांचा गया तो केवल वे ही कालोनियां जो पेनीसिलीन प्रतिरोधी कोशिकाओं की स्रोत पुनरावृत्ति पट्टिका पर थीं प्रतिरोध प्रदर्शित कर सकी। इसने प्रमाणित कर दिया कि जीवाणु के पेनीसिलीन के संपर्क के आने से पहले ही जीवाणु उत्परिवर्तन हो चुके थे।

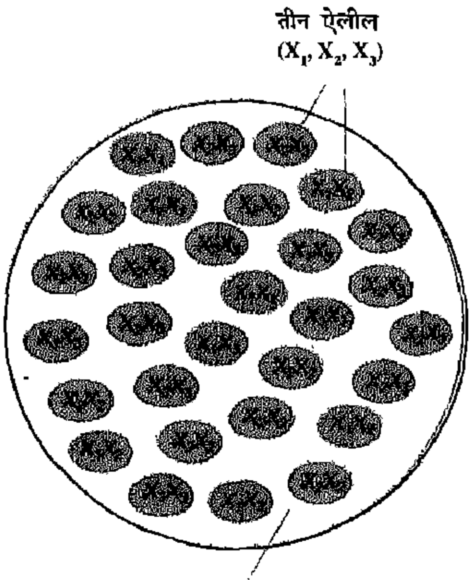


चित्र 3.21 लेडरबर्ग एवं लेडरबर्ग का पुनरावृत्ति पट्टिका प्रयोग

उत्परिवर्तन समष्टियों की गुणक की पुनर्प्राप्ति कर सकते हैं यदि अन्य विकासीय कारक हटा दिए जाएं। इस तरह उत्परिवर्तन समष्टि में विभिन्नताओं को उत्पन्न करने एवं बनाए रखने में मदद करते हैं। उत्परिवर्तन जीन समुच्चय में नई जीन और एलील भी प्रवेश कराते हैं (चित्र 3.22)। समष्टि में पाए जाने वाले एलीलो का कुल योग जीन समुच्चय है। यह जीनपूल ही है जो नई जीन या उनके विभिन्न रूपों के रूप में विकसित होता है जैसे कि एलील जोड़े या हटाए जाते हैं। यह जीन समुच्चय में जीनों या एलीलों की विभिन्नता ही विकासीय परिवर्तन के लिए कच्ची सामग्री होती है। सैकड़ों पीढ़ियों से कई उत्परिवर्तनों के एकत्रीकरण मिल कर बड़े पैमाने पर परिवर्तन बताते हैं।

पुनर्योजन

अर्धसूत्री विभाजन के समय जीन-विनिमय पुनर्स्थापना द्वारा विद्यमान जीनें एवं एलीलों के नए संयोजन प्रदान करते हैं। यह पुनर्योजन का सार है। जो अलग-अलग समय और स्थानों पर उत्पन्न एलीलों को पास ला सकता है। यह न केवल जीनों के बीच हो सकता है अपितु इन के अंदर भी हो सकता है जिसके



चित्र 3.22 जीन समुच्चय (Gene pool) में ऐलील

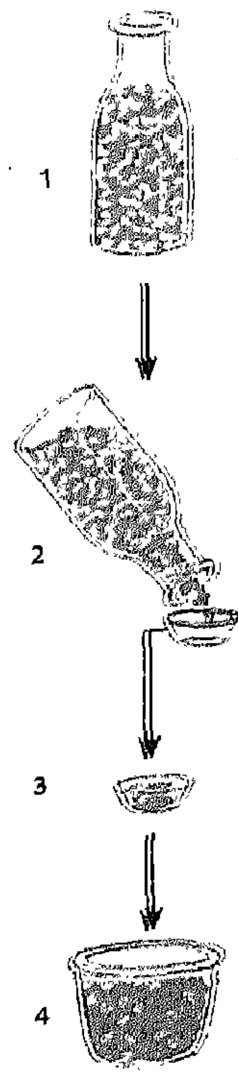
परिणाम से नए एलील बने हैं। यह जीन समुच्चय में नए एलीलों और उनके संयोजन को जोड़ता है। यह विकास का एक कारक है।

जीन प्रवास

क्योंकि एक ही प्रजाति की कुछ समष्टियां दूसरी से पूर्णतया पृथक्कृत होती हैं, सामान्यत समष्टियों में कुछ प्रवास होता है। इसलिए एक समष्टि के सदस्य प्रवास के दौरान नई समष्टि में प्रवेश कर सकते हैं। अगर प्रवासी सदस्य नई समष्टि में प्रजनन करते हैं तो वे स्थानीय समष्टि के जीन समुच्चयों में कुछ नए गुणांक जोड़ सकते हैं। इसे जीन विचलन कहते हैं। अगर प्रवासी जाति आतिथेय जाति से करीबी संबंधित है तो अंतर-प्रजाति समागम से जननक्षम संकर उत्पन्न हो सकते हैं। ये संकर तब एक जाति से दूसरी जाति तक जीन वाहक हो सकते हैं। जब अन्य जगह से समष्टि में प्राणी प्रवेश करता या बाहर जाता है तो वह एलीलों को जोड़ता या हटाता है और परिणामत: जीन वहन होता है। अतएव प्रवास (emigration या immigration) के परिणामस्वरूप समष्टियों में जीन का विसरण होता है। जीनी बहाव विभिन्न जीन समुच्चयों में दूरी कम करता है और परिणामस्वरूप अलग-अलग समष्टियों में विभेद कम करता है।

जेनेटिक ड्रिफ्ट

एलीलों की बारंबारता में परिवर्तन आनुवंशिक विचलन कहलाते हैं। यह जीन समुच्चय की द्विनामी नमूना एकमात्र त्रुटि है। इसका अर्थ है कि एलीलों जो कि अगली पीढ़ी के जीन समुच्चय से है, वे वर्तमान पीढ़ी के एलीलों के नमूने हैं। सेंपलिंग की



चित्र 3.23 अवरोध प्रभाव का स्पष्टीकरण–दो ऐलीलों की बारंबारताएं लाल एवं पीले रंगों द्वारा दर्शाई गई हैं।

त्रुटि अक्सर कुछ एलीलों को हटाने तथा अन्य को जमाने का काम करती है। इस तरह समष्टि की आनुवंशिका को कम करती है। एक छोटी समष्टि में एक संयोजी होने की शेष घटना जैसे कि बर्फ का तूफान उस लक्षण की बारंबारता को बढ़ा सकती है जो कि कम अनुकूलता महत्त्व का हो। आनुवंशिक विचलन उस समष्टि की ऐलीली बारंबारता में नाटकीय परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं जो कि नए आवास में आए छोटे समूहों से व्युत्पन्न हो। अक्सर इनके फीनोटाइप शीघ्रतापूर्वक पूर्वज समष्टि से भिन्न हो जाते हैं। कभी-कभी एक नई प्रजाति बना लेते हैं। ऐसे एक प्रभाव को **स्थापक प्रभाव** (फाउन्डर इफेक्ट) कहते हैं। समष्टि घटती भी है जिससे समष्टि आकार में तीव्र कमी उसकी एलील बारंबारता में परिवर्तन उत्पन्न कर सकती है। विद्यमान जीन समुच्चय सीमित है इस तथ्य की रोशनी में समष्टि में कमी उसको

पुरानी समृद्ध स्थिति में पुनः स्थापित करने की क्षमता को कम कर देती है । एलील बारंबारता में ऐसी कमी आनुवंशिक अवरोध कहलाती है जो अक्सर जाति की उसके विलुप्त होने के पथ से वापसी को रोकती है (चित्र 3.23) ।

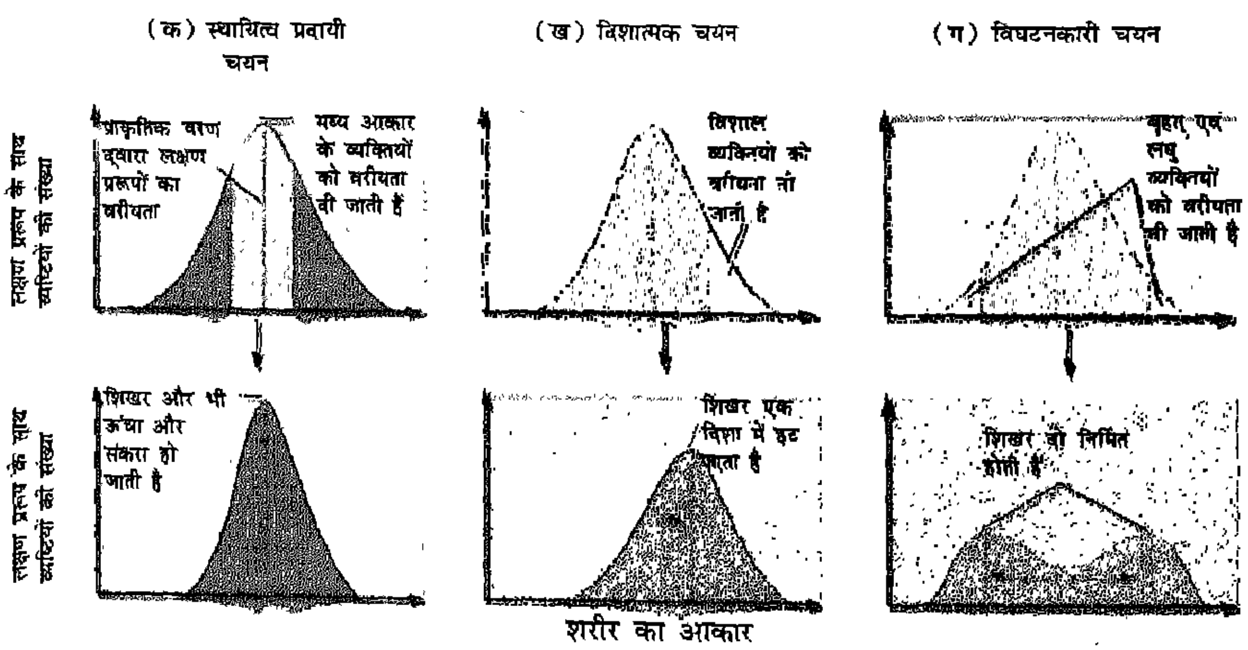
प्राकृतिक चयन

प्राकृतिक चयन सबसे क्रांतिक विकासीय प्रक्रिया है जो की एलील बारंबारताओं में परिवर्तन लाती है और विकास के उत्पाद के रूप में अनुकूलनों को प्रोत्साहित करती है । यह दूसरी अन्य प्रक्रियाओं के विघटनकारी प्रभावों को रोकता है जो कि अनुकूलन की ओर उन्मुख नहीं है। भलीभांति अनुकूलित जीव (जीन समुच्चय में आनुवंशिक विभेद के पूर्व-स्थित वर्ग) सामान्यतः अधिक लंबे समय तक जीवित रहते हैं और अधिक संतानों को जन्म देते हैं। इस तरह विभेदित प्रजनन द्वारा अनुकूलित ऐलील अगली पीढ़ियों में स्थानांतरित होने के लिए चयनित होते हैं तथा अगली पीढ़ियों में बारंबारता में बढ़ते हैं । कम अनुकूलित एलील जो जनन की दृष्टि से कम सफल जीवों में निहित होते हैं और वे बारंबारता में पीढ़ियों में कम संख्या में चयनित होते हैं । डार्विन के कथनानुसार ऐसी उत्तर जीविता और जननक्षमता की ऐसी क्रियाविधियां जो जनन सफलता को प्रभावित करें अथवा विभेदी जनन को प्रोन्नत करें चयन (selection) कहलाती हैं । आधुनिक कथनानुसार विभिन्न जीन प्ररूपियों में लगातार अंतर जो कि आगामी पीढ़ी को दिया जाता है, चयन है । इन दोनों विचारों को मिलाते हुए हम विचार कर सकते हैं कि प्राकृतिक चयन एक विभेदक जनन है जो अगली पीढ़ी के जीनपूल के जीनोटाइप को विभेदन रूप से दिया गया है ।

प्राकृतिक चयन समष्टि की एलील बारंबारता में परिवर्तन उत्पन्न करता है । प्राकृतिक चयन अलग-अलग परिणाम पैदा करता है जो इस पर निर्भर है कि समष्टि में किस लक्षण का पक्ष लिया गया है (चित्र 3.24) । अगर सबसे छोटे व सबसे बड़े दोनों जीव मध्य आकार के जीवों की तुलना में अपेक्षाकृत कम संतानें उत्पन्न करें तब स्थायीत्व चयन काम करता है । स्थायीत्व चयन विभिन्नताओं को कम करता है पर मध्यमान को नहीं बदलता । विकास की दर प्रारूपिक रूप से धीमी होती है क्योंकि प्राकृतिक चयन सामान्यतः स्थायित्व की ओर होता है ।

अगर सजीव आकार के वितरण के एक छोर पर (उदाहरण के लिए बड़े) अन्यों की तुलना में अगली पीढ़ी में अधिक संतानें उत्पन्न करेंगे तो समष्टि में मध्य आकार बनेगा । इस मामले में दिशिक चयन कार्य करता है । अगर दिशिक चयन कई पीढ़ियों तक काम करता है तो समष्टि में एक इवोल्यूशनरी ट्रेण्ड परिणत होती है ।

जब प्राकृतिक चयन वितरण के दोनों छोरों पर स्थित सजीवों के पास में होता है तो डिस्पर्सिव चयन काम करता है । इस प्रकार का चयन दुर्लभ है । जब यह काम करता है, दोनों छोरों पर स्थित सजीव केंद्र पर स्थित औरों की तुलना में अधिक संतानें



चित्र 3.24 विविधता दर्शाने वाले लक्षण (शरीर का आकार) पर प्राकृतिकवरण का प्रभाव (क)चयन का स्थायीकरण (बायां ऊपर वाला और नीचे वाला समुच्चय), (ख) दिशाबोधी चयन (मध्य में) एवं (ग) विच्छेदकारी चयन (सीधी ओर)

उत्पन्न करते हैं तथा लक्षण के वितरण में दो चोटियां उत्पन्न करते हैं।

3.7 *अनुकूलन का आनुवंशिक आधार*

डार्विन ने देखा कि विकास प्राकृतिक चयन द्वारा होता है। हमने यह भी सीखा है कि एक विकासीय परिवर्तन वंशागत परिवर्तन उत्पन्न करने हेतु आधार प्रदान करता है। अगर प्राकृतिक चयन द्वारा वरीयता दी जाए तो यह आनुवंशिक विविधता जीव को एक निश्चित वातावरण के प्रति अनुकूलित होने में सहायता करती है। इस तरह हर विकास का आधार होना चाहिए। क्योंकि बिना आनुवंशिक आधार के अनुकूलन का कोई विकासीय महत्त्व नहीं होता।

औद्योगिक अतिकृष्णता

प्राकृतिक चयन का उदाहरण जंगली स्थितियों में वन्य शलभ बिस्टन बेटूलेरिया का है जो इंग्लैंड के सभी भागों में पाया जाता है। यह शलभ दो रंग के लक्षण प्रारूप प्रदर्शित करता है (चित्र 3.25) जिसमें है हल्का (ग्रे) तथा गहरा (काला)। 1850 से 1950 के दौरान जीववैज्ञानिकों ने पाया कि विशेषकर काली किस्म अधिकाधिक होने लगी और हल्की किस्म कम से कम, खास कर औद्योगिक शहरों में उदाहरणार्थ बरमिंघम पेपर्ड मॉथ की जनसंख्या में यह परिवर्तन अपने आप में विकास है। जीववैज्ञानिकों ने प्रस्तावित किया कि औद्योगिक प्रदूषण से पहले प्रारूपिक हल्की धूसर प्रकार के पेपेर्ड मॉथ पेड़ों के पीले तने के विरुद्ध छदप्रकरण करने में सफल थे। जहां वे पूरे दिन के समय आराम करते थे। औद्योगिक धुएं के कारण पीले तने अधिकाधिक काले होते गए। इसके परिणामस्वरूप वे पृष्ठभूमि की तुलना में अधिक स्पष्ट हो गए और शिकारियों जैसे कि पक्षी द्वारा उसके देखे जाने एवं खाए जाने की संभावनाएं गहरा कर कम की अपेक्षा अधिक हो गई। हल्के धूसर शलभ की संख्या में कमी और गहरे काले रंग की शलभ की संख्या में बढ़ोतरी इसका अंतिम परिणाम था। इसलिए विकास मेलोनिक शलभ के जनन के पक्ष में था तथा इंग्लैंड के प्रदूषित क्षेत्रों के लिए वे सफलतापूर्वक अनुकूलित थे। औद्योगिक प्रदूषण की अनुक्रिया में गहरे रूपों के विकास को औद्योगिक अतिकृषणता के रूप में जाना जाता है।

एक ब्रितानी पारिस्थितिकीविद्, बर्नार्ड केटलेवेल ने 1950 में इस परिकल्पना का परीक्षण पेपेर्ड शलभों की ऐसी समष्टियों को जिनमें समान संख्या में गहरे एवं हल्के सदस्य थे, पाल कर

(क) (ख)



चित्र 3.25 बिस्टन बेटुलेरिया (Biston betularia) में गुप्त रंजन (क) किसी एक प्रदूषण-रहित क्षेत्र में वृक्ष के स्तंभ पर हल्के और गहरे रंग की शलम, (ख) प्रदूषित क्षेत्र में कालिख से आवरित वृक्ष का तना

किया । उसने इन शलभों को दो समुच्चयों में निर्मुक्त किया, एक को बरमिंघम (प्रदूषित क्षेत्र) के प्रतिशत जंगलों में तथा दूसरे को डोरसेट (अप्रदूषित क्षेत्र) में। प्रदूषित क्षेत्र में केंटलेवेल 19 प्रतिशत हल्के व 40 प्रतिशत गहरे शल्य पकड़ सका । प्रदूषण-रहित में वह केवल 12.5 प्रतिशत हल्के तथा 6 प्रतिशत गहरे मॉथ पकड़ सका । ये परिणाम *बिस्टन बेटुलेरिया* के प्रदूषित व अप्रदूषित क्षेत्र में विभेदक जीवों की पद्धति पर केंद्रित है। केंटलेवेल व अन्यों के आंकड़े यह सुझाते हैं कि औद्योगिक क्षेत्र मेलानिक रूपों को बड़ी सुरक्षा प्रदान करते हैं । अधिक प्रदूषित क्षेत्रों में गहरे पेपर्ड शलभ के बढ़े हुए अनुपात का आधार औद्योगिक क्षेत्र में प्रभावी जीन की बढ़ी हुई बारंबारता, अधिक चयनात्मक लाभ दर्शाती है। दिलचस्प बात यह है कि 1956 में ब्रिटेन में स्वच्छ वायु बनने से औद्योगिक धुआं तथा सल्फर डाइऑक्साइड, पूर्व के प्रदूषित क्षेत्रों में कम हुआ। परिणामस्वरूप पेपेर्ड शलभ व अन्य कीटों के मेलानिक रूपों की बारंबारता नाटकीय रूप से कम हुई । इस तरह प्रदूषण में कमी, विपरीत विकास से संबंधित है । और भी औद्योगिक प्रदूषण ने हल्के रंग के मॉथ के लिए जिम्मेदार जीन को पूरी तरह खत्म नहीं किया । शलभ की दर्जनों अन्य जातियां इसी तरीके से पूरे यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका में औद्योगीकृत इलाकों में बदली। औद्योगिकीकरण ने 19वीं सदी के मध्य से गहरे रंग-धारी शलभों के चयन एवं विकास को बढ़ाया।

प्राकृतिक चयन और बहुरूपता

एक समष्टि, जो बड़े क्षेत्र में फैली है, कई वातावरण में रहती है विभिन्न प्रकार की जीन प्रारूप को बनाए रख सकती है, उनमें से प्रत्येक विशेष आवास में श्रेष्ठ होती है । एक समष्टि एक लक्षण के लिए बहुरूपी कहलाती है अगर दो या अधिक विभेदक बाह्यरूप पर्याप्त उच्च बारंबारता में प्रतिनिधित्व करते हों । बहुरूपता मनुष्यों में अधिक पाई जाती है । इसका एक उदाहरण ए बी ओ रक्त समूह है। इसके चार रूप हैं प्रकार ए, प्रकार, बी, प्रकार ए बी तथा प्रकार ओ, जो विभिन्न जीन प्रारूप से निर्धारित होते हैं । विभिन्न जीन प्रारूपियों का विभिन्न विषमयुग्मजी श्रेष्ठता द्वार बना रहना बहुरूपता का एक और उदाहरण है । आनुवंशिक विभिन्नताओं के संरक्षण के लिए विषमयुग्मजी, चयन द्वारा होता है। यह संतुलित बहुरूपता कहलाती है। सामान्यत: एक जीन-स्थान बहुरूपी होता है । यदि कम से कम दो एलील उपस्थित हों जिसकी बारंबारता कम से कम एक प्रतिशत तथा दूसरा अधिक बारंबारता वाला एलील हो । बहुरूपता का एक प्रमुख उदाहरण मानव समष्टि में अति प्रभावन का एक उदाहरण सिकल सेल जीन है । एक अकेले स्थान पर विभिन्नता निर्धारित करती है कि लाल रक्त कोशिकाओं की आकृति सामान्य होगी या सिकल की तरह । दो सामान्य एलील (Hb^A/Hb^A) के समयुग्मजी या दो हंसिया के समयुग्मजी (Hb^S/Hb^S) की अपेक्षा मलेरिया के आक्रमण से अधिक आसानी से पीड़ित होते हैं । इसके अलावा विषमयुग्मजी रक्तल्पता से पीड़ित होते हैं, हंसिया कोशिका की आकृति सामान्य स्थिति की ऑक्सीजन वहन करने की क्षमता को रोकते हैं । लेकिन विषमयुग्मजी जोकि एक सिकल कोशिका एलील की एक प्रति के साथ में एक सामान्य एलील रखते हैं, मलेरिया के प्रति कुछ प्रतिरोधकता रखते हैं वे मलेरिया परजीवी से अधिक सफलता से जीवित रहते हैं उनकी तुलना में जो कि या तो सामान्य या सिकल से समयुग्मजी हैं । इस हानिकारक जीन की मानव समष्टि में अधिक प्राप्ति इसकी प्रकृति द्वारा इनके पक्ष में चयन के कारण है । इससे अधिक समयुग्मजी की मृत्यु के कारण अप्रभावी जीन की हानि विषमयुग्मजी के द्वारा सफलतापूर्वक जनन के कारण संतुलित हो जाती है । इस कारण ऐसे चयन संतुलनकारी चयन कहलाते हैं । यह संकेत करना चाहिये कि संतुलनकारी चयन दुर्लभ है । इस तरह इसे प्राकृतिक समष्टियों में आनुवांशिक विविधता के स्तरों की सामान्य व्याख्या की तरह नहीं समझना चाहिए ।

3.8 जाति-उद्भवन और पृथक्करण

जाति उद्भव पूर्व स्थित जाति से एक या अधिक नई जातियों के बनने को कहते हैं । जाति की उत्पत्ति में क्रांतिक घटना तब होती है जब कि समष्टि का जीन समुच्चय पितृ जाति से अलग हो जाता है और तत्पश्चात् जीन प्रवाह नहीं होता । जाति उद्भवन अपनी पूर्वज प्रजाति से नई प्रजाति के भौगोलिक संबंधों पर आधारित दो तरीकों से होता है । जब एक पूर्व समष्टि सतत श्रेणी से दो अथवा अधिक भौगोलिक रूप से पृथक्कृत समष्टियों में बंट जाती है तथा नई प्रजाति बनाती है । जाति उद्भवन के इस तरीके को **एलोपेट्रिक जाति उद्भवन** कहते हैं । यह मूल समष्टि के उपविभाजन से हो सकता है जब एक भौगोलिक अवरोध जैसे कि सरकता ग्लेसियर एक स्थलीय सेतु (उदाहरण के लिए पनामा का इस्थमस) या महासागर या पर्वत, प्रजाति की परास को काट देता है । (वैकल्पिक रूप से जब एक कम संख्या में सजीव एक नए आवास बसते हैं जो भौगोलिक रूप से इसकी मूल परास से पृथक हो) डार्विन की तूतियों का स्मरण करें कि गेलापेगोस द्वीपों पर अलग प्रजाति बनाई और आस्ट्रेलियाई शिशुधानी स्तनियों का भी जो कि नई जाति बनाने के लिए विकसित हुए । दूसरे जाति उद्भव के तरीके में एक उपसमष्टि जननिक रूप से अपनी पितृ समष्टि से पृथक्कृत हो जाती है । यह **सिमपेट्रिक जाति उद्भवन** है । इसलिए सिमपेट्रिक जाति उद्भवन एक प्रजाति के भीतर बिना भौगोलिक पृथक्करण की प्रजाति निर्माण है । सामान्यतया बताए जाने वाला इसका उदाहरण पॉलीप्लाइडी से है जो कि सामान्य गुणसूत्र संख्या का बहुगुणन है । जब गुणसूत्र

अधसूत्री विभाजन के समय विलग होने में असफल रहते हैं या बिना सूत्री विभाजन के प्रतिरूप बना लेते हैं तब यह होता है।

प्रजनन पृथक्कीकरण का अर्थ है प्राकृतिक समष्टियों के अंतरप्रजनन में आंतरिक अवरोध का पाया जाना। ऐसे प्रत्येक अंदरूनी अवरोध को प्रजनन पृथक्कीकरण क्रियाविधि कहते हैं। मायर (1942) के अनुसार *जननिक पृथक्करण क्रियाविधियां जीवों के जैविक गुण हैं जो कि प्राकृतिक सिमपेट्रिक समष्टियों के अंतरप्रजनन को रोकते हैं।*

जननिक पृथक्करण क्रियाविधियां प्रीमेटिंग अथवा पोस्टमेटिंग के रूप में वर्गीकृत की जा सकती हैं। प्रीमेटिंग पृथक्करण क्रियाविधियां मेटिंग के पूर्व क्रियाशील होता है। ये पारिस्थितिकी व्यवहारात्मक अथवा यांत्रिक होती हैं। समागम के उपरांत की पृथक्करण क्रियाविधियां समागम के पश्चात् क्रियाशील होती हैं जो समष्टियों के अंतरप्रजनन को जीन पूल से संकरों को हटा कर रोकती हैं। ये क्रियाविधियां युग्मक मरणशीलता, युग्मनज मरणशीलता, भ्रूणीय अथवा डिम्ब मरणशीलता, संकर इनवायेबिलिटी, संकर जनन अक्षमता एवं F_2 का टूटना है। प्राकृतिक चयन उन जीवों का पक्ष लेने की प्रवृति रखता है जो समागमपूर्व पृथक्करण प्रदर्शित करते हैं उनकी तुलना में जो कि केवल पश्चयुग्मनज पृथक्करण पर निर्भर है। जो कि समष्टियों को जीनों के आदान-प्रदान की अनुमति नहीं देता इसलिए विभिन्न प्रजातियों के जीन समुच्चय एक दूसरे से पृथक्कृत हैं। इसके विपरीत एक ही जाति के सदस्यों का जीन समुच्चय साझा होता है।

जननिक पृथक्करण संकर जनन अक्षमता सुदूर भूतकाल से ज्ञात है। प्रयोगशाला या चिड़ियाघर से विभिन्न प्रजातियों में संकर उत्पन्न किए जा सकते हैं जो प्रकृति में अंतरप्रजनन नहीं करते। घोड़ों और गधों की दो अलग जातियां हैं – एक संकर, खच्चर, एक गधे और घोड़ी के बीच समागम से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार घोड़े और गधी के बीच मेटिंग का परिणाम एक संकर होता है जिसे हिन्नी कहते हैं। खच्चर और हिन्नी दोनों जनन अक्षम होते हैं। उन प्रजातियों के उदाहरण भी हैं जो कि जनन क्षम संकर पैदा करते हैं। आपने प्रसिद्ध "टाइगॉन्स" के बारे में सुना होगा। ये अफ्रीका की शेरनी तथा एशियाई बाघ के जननक्षम संकर हैं। इन दोनों के लंबे पृथक्करण के दौरान संकरण का कोई अवरोध विकसित नहीं हुआ। प्राकृतिक चयन ने संकरण में कभी किसी को वरीयता नहीं दी इसका साधारण कारण है कि कोई संकरण संभव नहीं रहा। नियंत्रण में जनन करने वाली और जननक्षम संकर उत्पन्न करने वाली प्रजातियों का दूसरा उदाहरण मलार्ड तथा पिनटेल डक, ध्रुवीय भालू और अलास्का के भूरे भालू, और प्लेटी और स्वोर्डटेल मछली है। लेकिन ये जातियां समस्त प्राकृतिक स्थितियों में अंतरा-प्रजनन (interbreeding) नहीं करतीं।

3.9 जाति की अवधारणा

विकास वर्गीकीविदों का मुख्य लक्ष्य प्रजाति वर्गीकरण की आधार इकाई की पहचान करना है। वर्गीकीविद् प्रजातियों को वास्तविक जातिवृतीय योजना में जमाने की कोशिश भी करते हैं। उन्होंने 'जाति' को परिभाषित करने के लिए कई विधियां काम में लीं। डेविस और हेवुड ने 'जाति' की परिभाषा ऐसे जीवों का समूह जो कई आकारिकी लक्षणों में असतता से संबंधित होने पर भी कुछ लक्षणों में पृथक किए जा सकते हैं। **लम्पर्स** ने समूह को एक अकेली जाति या समूल से जोड़ने का प्रयास किया। **स्पिलटर्स** ने कुछ समष्टियों को विभिन्न जातियों अथवा समूहों में अलग करने का प्रयास किया। कई जीवविज्ञानी 'जाति' की परिभाषा प्राथमिक रूप से सब्जेक्टिव अथवा गुणात्मक आकारिकीय पर अवलंबित रहने से संतुष्ट नहीं है। वे जीव वैज्ञानिक जाति धारणा के पक्ष में हैं। परंपरागत रूप से जीव वैज्ञानिक जाति को एक लैंगिक एवं सक्षम अंतरजनन योग्य समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो दूसरी जातियों से आनुवंशिक विनिमय के आधार पर पृथक होते हैं। लैंगिक जनन क्षम जातियों के सभी सदस्य एक दूसरे से जनन करने में सक्षम होते हैं एवं जीवित तथा जननक्षम संतति उत्पन्न करते हैं। किंतु वे दूसरी जाति के साथ जनन नहीं कर सकते। जब दो जातियां आकारिकी में समान हों पर अंतरजनन (Interbreeding) नहीं कर सकें तो उन्हें (sibling) **सिबलिंग जाति** कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप फलमक्खी की दो जातियां *ड्रोसोफिला स्यूडोप्सक्योरा* एवं *ड्रा. परसिमिलिस* आपस में जनन नहीं कर सकती हैं। वैज्ञानिकों ने अंतरजनन के जैविक प्रयोग द्वारा आकार एवं भौगोलिक रूप से पृथक जातियों को एकीकृत कर एक जाति में सम्मिलित किया है जिसे **बहुप्रकारिक जाति** कहते हैं। उदाहरणस्वरूप उत्तरी अमेरिका में सांग गौरेया की कई उपजातियों को एकीकृत कर एक जाति *पासरेला मेलोडिया* नाम दिया गया। फिर भी इस धारणा में कई समस्याएं हैं। लगभग सभी जीव लैंगिक जनन करते हैं पर कुछ अलैंगिक जनन भी करते हैं, उदाहरणस्वरूप सभी असीमकेंद्रकी, कुछ प्रोटिस्ट, कवक एवं कई पादप। ये अलैंगिक जनन करने वाले जीव आकारिकी एवं जैव रासायनिकी रूप में समान होते हैं। प्रजातियों की विशाल संख्या उनका भिन्न भौगोलिक फैलाव, और क्योंकि कई जातियां विलुप्त हो चुकी हैं, कई जातियां इस जननिक पृथक्करण के आधार पर विभेदित नहीं की जा सकती।

कई लेखकों ने प्रस्तावित किया है कि एक विकासीय प्रजाति अवधारणा जैविक प्रजाति अवधारणा की कुछ समस्याओं

को समेटने का प्रयास है । इस अवधारणा में प्रजाति को उन संदर्भों में परिभाषित किया है जो लैंगिक पृथक्करण पर अवलंबित नहीं । इस अवधारणा के पक्षधर "विकासीय" पृथक्करण को अधिक मान देते है जिसका लैंगिक पृथक्करण केवल एक पहलू मात्र है । जार्ज गेरीलॉर्ड सिम्पसन के (1961) के अनुसार "एक विकासीय जाति एक वंशावली है एक पूर्वज अवरोही जो अन्यों से पृथकरूप से विकसित हुए तथा जिसकी स्वयं की अकेली विकासीय भूमिका और प्रवृत्तियां हैं ।" यह अवधारणा पहली बार परिवर्तन (विकास) को अंतर्निहित करती है । आदर्श रूप से यह रीति आकारिकीय, आनुवंशिकीय, व्यवहारात्मक तथा पारिस्थितिकीय परिवर्त्तकों का उपयोग करती है । यह सभी आंतरिक से जाति वर्गिकी की सारी समस्याओं को हल नहीं कर सकती । हम जानते हैं कि सभी लक्षण एक साथ एक दर से या एक क्रम से विकसित नहीं होते । सारांश में जाति वर्गिकी की कठिनाईयां जाति उद्भवन की प्रक्रिया में ही सन्निहित हैं ।

सारांश

जीवन का इतिहास दो घटनाओं से बना है उद्गम और विकास । इस पर सामान्य रूप से सहमति है कि जीवन कार्बनिक अणुओं की प्रगामी रासायनिक अभिक्रियाओं के एक क्रम में एकत्रीकरण से उत्पन्न हुआ । कॉस्मोलॉजी, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के तीन प्रमुख सिद्धांत सुझाती है । ओपरिन और हाल्डेन ने सुझाव दिया कि आरंभिक कार्बनिक अणुओं का स्वतः उत्पन्न होना संभव है अगर आदिम पृथ्वी पर एक समय में ऑक्सीजन मात्र थी, और वातावरण अपचयित था । भूवैज्ञानिक अभिलेख बताते हैं कि ऐसी अपचयित सामग्री जैसे कि यूरेनाइट, पाइराइट आदि अवसादों में उपस्थित थे, स्पष्टतः नव स्थितियां अधिक अपचायक थीं ।

मिलर ने पर्याप्त मात्रा में सरल प्रमुख कार्बनिक यौगिक जैसे कि अमीनो अम्ल तथा पेप्टाइड श्रृंखलाएं प्रायोगिक इकाई के जलीय नमूने में प्राप्त किए और इस प्रकार जीवन को निर्माण की इकाइयां अजैविक संश्लेषण द्वारा प्रकट हुईं । यह पृथ्वी पर पूर्व समय में रासायनिक विकास में एक ऐसा कदम था जिसकी अनदेखी नहीं हो सकती । कृत्रिम रूप से उत्पन्न पूर्वजैविक अणुओं के एकत्र अविजीव आंतरिक वातावरण को बनाए रखने हेतु आस-पास के अणुओं के युग्मन को विलगाते देखे गए । अधिक संभावना है कि प्रथम आनुवंशिक कूट आरएनए पर आधारित था जो स्वयं की प्रतिकृति उत्प्रेरित कर सकता था और अन्य अभिक्रियाओं में भाग लेकर संरचनाएं बनाता था । डीएनए आनुवंशिक पदार्थ के रूप में तब तक विकसित नहीं हुआ जब तक कि आरएनए आधारित जीवन झिल्लियों से बंद नहीं हो गया । पहला जीवित सजीव कार्बनिक अणुओं के समुद्र में उत्पन्न हुआ और संभवतः अनाक्सीश्वसनकारी और विषमपोषी था हालांकि विषमपोषियों में से कुछ स्वपोषियों में विकसित हो गए जो अपने स्वयं के कार्बनिक अणुओं को रसायन संश्लेषण या प्रकाश संश्लेषण द्वारा पैदा करते थे । प्रकाश- संश्लेषण का उदय एक महत्वपूर्ण मोड़ था क्योंकि इस प्रक्रिया ने पृथ्वी का वातावरण ही बदल दिया। अतः जीवन का विकास विविधताओं की ओर आरंभ हुआ ।

विकास शब्द का अर्थ है खोलना या छुपी हुई संभावनाओं को उद्घाटित करना । ग्रहों और तारों में उनके जन्म और मृत्यु के बीच परिवर्तन, तारों का कास्मिक विकास कहलाता है । पदार्थ - तत्त्व और उनके उप-पराण्विक कण समयानुसार बदलते हैं, यह अकार्बनिक विकास है । समष्टियां या इनके समूहों के गुणों में पीढ़ियों के दौरान परिवर्तनों को जीव-वैज्ञानिक अथवा जैविक विकास मानते हैं । यह रूपांतरण के साथ अवतरण है । जीव विज्ञान की वह शाखा जिसमें जीवित तंत्रों का अध्ययन समसामयिक परिवर्तन के क्रम में किया जाता है, विकासीय जीव विज्ञान कहलाती है। विकास के सभी प्रस्तुत सिद्धांत कई पूर्व अवधारणाओं एवं सिद्धांतों पर समाहित है प्राचीन भारतीय दर्शन और आयुर्वेद जीवन की उत्पत्ति से व्याख्या करते हैं। संस्कृत भाषा में मनु का वांङमय, मनुस्मृति अथवा मनुसंहिता (200 ई.) विकास के बारे में भी वर्णन प्रस्तुत करते हैं । कई विभिन्न प्रकार के प्रमाण, डार्विन और उनके समकालीनों को यह संतुष्ट करने में सफल हुए कि आधुनिक जीव प्राचीन रूपों से विकास के क्रम में उत्पन्न हुए है ।

जीवाश्म भूतकाल के जीवों के परिरक्षित अवशेष अथवा चिह्न हैं । अवसादी चट्टानों की परतों में पाये जाने वाले जीवाश्म पृथ्वी पर जीवन के इतिहास को उद्घाटित करते है । चट्टानों की आयु का निर्धारण रेडियो सक्रिय समस्थानिकों के स्वतः क्षय की श्रेणी के मापन से होता है । परिणामतः चट्टानों और उनके जीवाश्मों की वास्तविक आयु मालूम करना अब संभव है तथा

एक भूवैज्ञानिक समय तालिका भी तैयार की जा चुकी है। कशेरुकियों के सभी मुख्य समूहों के योजक जीवाश्मों को भी प्राप्त किया जा चुका है।

लेमार्क का लक्षणों की वंशागति या अंगों के उपयोग एवं अनुपयोग का सिद्धांत बताता है कि जीव लगातार आकार में वृद्धि करने की प्रकृति रखते हैं तथा नए अंग नए वातावरण और नई आवश्यकताओं के परिणाम हैं। सभी प्रयोगात्मक परिणाम विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा दोहराए जाने पर प्राप्त परिणामों के संगत नहीं थे। मेंडल के आनुवंशिकता के नियमों और वाइजमान के जनन जीव द्रव्य पदार्थ सिद्धांत ने लेमार्क के उपार्जित लक्षणों की वंशागति के सिद्धांत को नहीं माना। डी व्रीज द्वारा स्थापित उत्परिवर्तन मुख्यतः गुणसूत्री उत्परिवर्तन थे, जो गुणसूत्रों की संख्या को प्रभावित करते थे और अस्थिर थे। विकास के अध्ययन में समष्टि आनुवंशिकता के समावेश से आधुनिक संश्लेषण का उदय हुआ जो समष्टियों के विकास की इकाइयों के रूप में और प्राकृतिक चयन की केंद्रीय भूमिका को महत्वपूर्ण विकासीय क्रियाविधि के रूप में जोर देता था। जब डीएनए परिवर्तन की विभिन्न आपेक्षिक बारंबारता समय के दौरान एक समष्टि में हो तो विकास होता है। इसके विपरीत, हार्डी और वेनबर्ग ने डीएनए (जीन्स) का आनुवांशिक संरक्षण एक समष्टि लक्षण के रूप में दर्शाया। पुनर्संयोजन उन ऐलीलों को साथ-साथ लाता है जो विभिन्न समय और स्थानों पर उत्पन्न हुए। प्राकृतिक चयन एलील बारंबारता में परिवर्तन करता और विकास के उत्पाद के रूप में अनुकूलन को बढ़ावा देता है। साथ ही यह अन्य प्रक्रियाओं के डिसहारमोनाइजिंग प्रभावों को जो अनुकूलन की ओर अभिमुख नहीं होते, रोके रखता है। आधुनिक शब्दों में, प्राकृतिक चयन विभेदकारी प्रजनन है जो अगली पीढ़ी के जीन समुच्चय में विभेदनकारी जीनों को जोड़ता है।

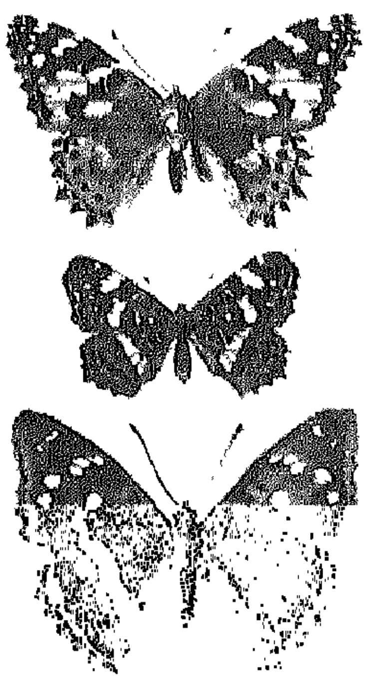
जाति उद्भवन का अभिप्राय विद्यमान जाति की एक या अधिक नई जातियों का निर्माण है। जब एक समष्टि का जीन समुच्चय अन्य समष्टियों के पितृ प्रजातियों द्वारा बाधित होता है तथा जीनों का बहाव नहीं होता तब जातियों का उदय होता है। वर्गीकीविद् जाति की परिभाषा आकारिकीय रूप से संपन्न सदस्यों के समूह को जो ऐसे ही समूह से आकारिकीय असंतता से बद्ध है अलग करता है, के रूप में देते हैं। जीव-वैज्ञानिक अवधारणा की परिभाषा के अनुसार जाति लैंगिक अंतर प्रजनन करने वाले अथवा अंतर प्रजनन करने में सक्षम सदस्यों का ऐसा समूह है जो अन्य जातियों से पृथक्करण द्वारा विभाजित होता है।

अभ्यास

1. जीवन के इतिहास की दो प्रमुख घटनाओं के नाम दीजिए। जीवन की उत्पत्ति के बारे में प्रमुख सिद्धांतों को संक्षेप में बताइए। इनमें से किसका आधार वैज्ञानिक है ?
2. कॉस्मोलॉजी क्या है ? ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धांतों के नाम बताइए। सर्वाधिक स्वीकृत सिद्धांत का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. आदिम पृथ्वी की स्थितियों के बारे में ऑपरिन और हाल्डेन की परिकल्पना का कथन कीजिए। हाल्डेन के तप्त, तनु सूप से आप क्या समझते है ? इसके महत्त्व को इंगित कीजिए।
4. मिलर के कार्बनिक संश्लेषण के आभासी प्रयोग को संक्षेप में बताइए। इसकी दक्षता के बारे में टिप्पणी कीजिए।
5. "आदिजीव" क्या है ? विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा स्थापित भिन्न-भिन्न प्रकार के आदिजीवियों के नाम दीजिए। उनके लक्षण एवं कमियों का भी उल्लेख कीजिए।
6. तकनीकी शब्द 'विकास' से आप क्या समझते हैं ? कॉस्मिक विकास और जैविक विकास के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। विकासीय जीव विज्ञान क्या है ?
7. जैवभूगोल क्या है ? डार्विन जैव भूगोल से प्राप्त प्रमाणों को विकास के पक्ष में उपयोग करने में कैसे सफल हुए ?
8. एक उपयुक्त उदाहरण सहित समसारी विकास की व्याख्या कीजिए।
9. समजात एवं समवृत्ति अंगों में भेद कीजिए। प्राणियों में मिलने वाले समजात अंगों एवं पौधों में मिलने वाले समवृत्ति अंगों के उदाहरण दीजिए। समवृत्ति अंगों के जैविक विकास की भूमिका स्थापित कीजिए।

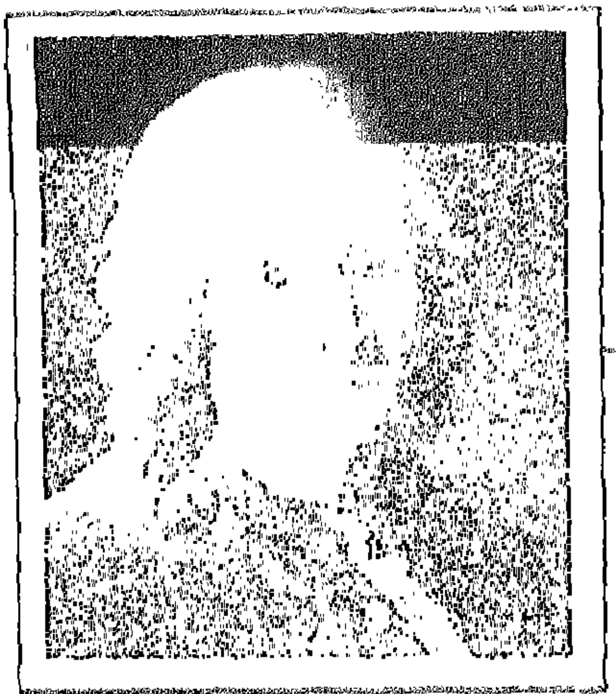
10. अवशेषी अंग क्या है ? अवशेषी अंगों के कुछ उदाहरण दीजिए। इनके महत्त्व को समझाइए ।
11. बेयर के नियम व इसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिए ।
12. जीवाश्म क्या है ? विकास में जीवाश्मों के महत्त्व की चर्चा कीजिए।
13. विकास के बारे में लेमार्क के सुझावों की संख्या बताइए । लेमार्क द्वारा उपयोग एवं अनुपयोग सिद्धांत के समर्थन में दिए गए उदाहरणों का वर्णन दीजिए ।
14. प्राकृतिक चयन की अवधारणा को व्युत्पन्न करने में कृत्रिम चयन के महत्व की चर्चा कीजिए ।
15. प्राकृतिक चयन के सिद्धांत का सारणी रूप दीजिए ।
16. डी व्रीज के उत्परिवर्तन सिद्धांत के मुख्य बिंदु दीजिए । उसके द्वारा विकास के सामान्यीकरण पर टिप्पणी कीजिए।
17. सूक्ष्म विकास और बृहत विकास में अंतर कीजिए । विकास में समष्टि आनुवंशिकी के महत्व का वर्णन कीजिए।
18. विविधता क्या है ? जीवों में विविधता उत्पन्न करने वाली आधारभूत प्रक्रियाओं के नाम दीजिए । विकास में प्रवास की भूमिका की चर्चा कीजिए ।
19. 'आनुवंशिक विचलन' की परिभाषा दीजिए । यह किस प्रकार स्थापक प्रभाव और आनुवंशिक अवरोध उत्पन्न करता है?
20. आधुनिक विचारों की दृष्टि से प्राकृतिक चयन क्या है ? विविधता पर प्राकृतिक चयन के तीन विभिन्न प्रभावों की व्याख्या कीजिए ।
21. निम्न पर टिप्पणी लिखिए :
    (i) प्रतिकृति पट्टीकरण
    (ii) जीन प्रवाह
    (iii) औद्योगिक अतिकृष्णता
    (iv) संतुलित चयन
    (v) संकर बंध्यता
    (vi) विस्थानिक (एलोपेट्रिक) व समस्थानिक (सिमपेट्रिक) जाति उद्भवन
    (vii) जाति की जैविक अवधारणा
    (viii) जाति की विकासीय अवधारणा
22. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
    (i) लगभग 46 करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी एक ठोस ———— और एक गैसीय ———— की बनी थी ।
    (ii) प्रारंभिक पृथ्वी पर सौर विकिरण, बिजली चमकना और ———— कार्बनिक संश्लेषण अभिक्रिया हेतु ऊर्जा स्रोत का काम करते थे ।
    (iii) प्रारंभिक पृथ्वी में कार्बनिक अणु ———— में एकत्र हुए क्योंकि जीवन अथवा एंजाइम उत्प्रेरक की अनुपस्थिति में उनका ———— बहुत धीमा था ।
    (iv) प्रथम जीवित जीव संभवत: ———— और विषमपोषी था, उनमें से कुछ ———— स्वयंपोषी के रूप में विकसित हो गए।
    (v) जीवन का पूर्वतम प्रमाण ———— के सूक्ष्मजीवाश्मों में प्रकट हुआ था जो 33 से 35 करोड़ वर्ष पूर्व प्रकट हुए थे।

इकाई



जीवन की विविधता

पिछली इकाई में आप यह जान चुके हैं कि सभी जीव कई आधारभूत एवं सामान्य लक्षणों में समानता दर्शाते हैं। साथ ही आपको विकास और जीवन की विविधता में इसकी भूमिका का भी आभास मिला। सजीव विश्व में लाखों भिन्न प्रकार के जीव विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त आप अपने चारों ओर विद्यमान विभिन्न प्रकार के पादपों और जंतुओं से भी परिचित होंगे। उनका अध्ययन करने का अभिप्राय, जीवन के रूपों की विविधता का ज्ञान प्राप्त करना है। जीवन की विविधता के अध्ययन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि जीवों को 'नाम' दिए जाएं। आप कुछ जीवों के आधारभूत एककों के समूह बना सकते हैं जैसे सागवान, बांज, कीट, पशु आदि। वास्तविकता यह है कि अधिकांश जीवों के सामान्य नाम नहीं हैं और अगर यह हैं भी तो प्राय: अविश्वसनीय और भ्रामक हैं। जीवों की समानताओं और भेदों की पहचान और व्याख्या, यदि इन्हें वर्गीकृत कर क्रम और पद के अनुसार, समूहों में रखकर की जाए तो सरल हो जाती है। लगभग 300 वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने प्रथमत: जीवों के लिए वर्गीकरण-तंत्र का विकास प्रारंभ किया और उनके संबंध में बृहत स्तर पर कार्य किया। प्रत्येक वर्ष, हजारों नई पहचानी जीवंत जीवों की जातियों को इस सूची में सम्मिलित किया जाता रहा है। ऐसा विश्वास है कि जीव जातियों की कुल संख्या लगभग 90 से 520 लाख के बीच तक होगी। यह इकाई आपको जैविक वर्गीकरण के विविध पक्षों को जानने में सहायक होगी।



कैरोलस लिनिअस

(1707-1778)

कार्ल वॉन लिने का जन्म स्वीडन में हुआ था। बालक के रूप में उनकी विशेष रुचि पादपों की ओर थी। यद्यपि अनुरोध किए जाने पर उन्होंने चिकित्सा विद्यालय में प्रवेश ले लिया, लेकिन उनके मां-बाप उन्हें चर्च का पादरी बनाना चाहते थे। चूंकि उस समय चिकित्सा विज्ञान का पाठ्यक्रम पादपों से निकटरूप से संबंद्ध था अतः लिने ने पादप संग्रह, अध्ययन और उनके वर्णन की लगन जारी रखी। वर्ष 1739 में चिकित्सा-विज्ञान की उपाधि का अध्ययन पूर्ण करने के उपरांत वह हालैंड चले गए और वहां एक धनी सरकारी अधिकारी के व्यक्तिगत चिकित्सक के रूप में कार्य करने लगे। साथ ही उन्होंने अपने स्वामी द्वारा स्थापित उद्यान के सभी पादपों का अध्ययन और वर्णन भी कर डाला। 22 वर्ष की उम्र में उन्होंने पादपों में लैंगिकता के विषय पर अपना प्रथम शोध-पत्र प्रकाशित किया। बाद में उन्होंने 14 शोधप्रबंधों के साथ-साथ सुप्रसिद्ध पुस्तक ***सिस्टेमा नेचुरी*** *(Systema Naturae) की भी रचना की जिससे सभी मूलभूत वर्गिकी-संबंधी खोजों का निर्गम हुआ। उनकी वर्गिकीकरण की पद्धति अत्यंत सरल थी जिसके अनुसार पादपों को पुनः पहचान कर व्यवस्थित करने की संभावना थी। लैटिन भाषा में भाषण देने और प्रकाशनों के कारण उनका नाम लिने से कैरोलस लिनिअस हो गया। उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें बिना दाढ़ी बनाए, निर्वस्त्र, मात्र एक चादर से आवरित कर दफना दिया गया।*

अध्याय 4

वर्गिकी

जीव जैसे पादप, जंतु, जीवाणु और विषाणु जैसे लाखों की संख्या में विद्यमान हैं और इनमें से प्रत्येक किसी न किसी रूप में एक-दूसरे से भिन्न है । अब तक जंतुओं की दस लाख से अधिक और पादपों की पांच लाख से अधिक जातियों के अध्ययन, व्याख्या और पहचान के लिए उन्हें वैज्ञानिक नाम दिया जा चुका है, लेकिन अब भी लाखों की संख्या में अज्ञात जीवों की पहचान कर उनका वर्णन किया जाना शेष है । प्रत्येक जीव का अध्ययन करना व्यावहारिक नहीं है । साथ ही सभी जीवों के नाम, उनके लक्षणों तथा उपयोगों को याद रखना कठिन है । फिर भी जीवविज्ञानियों ने उनकी पहचान, नामकरण और समूहों में रखने के लिए तकनीकें खोज निकाली हैं ।

4.1 वर्गिकी का अध्ययन क्यों आवश्यक है?

जीवों में भिन्नताएं पहचानने की कला और उन्हें ऐसे समूहों में रखना जो उनके सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण और संबंध दर्शाते हैं, **जैव वर्गीकरण** (biological clarification) कहलाती है । जैव वर्गीकरण का उद्देश्य बड़ी संख्या में ज्ञात पादपों और जंतुओं को ऐसे वर्गों में व्यवस्थित करना है कि उन्हें नाम प्रदान किया जा सके, स्मरण किया जा सके और साथ ही अध्ययन भी संभव हो सके । परिणामत: एक जीव का अध्ययन कर शेष जीवों के लक्षणों के बारे में अनुमान हो सके । वे वैज्ञानिक जो जीवों के अध्ययन और वर्गीकरण में अपना योगदान प्रदान करते हैं, वर्गीकरणविद् (systematists) कहलाते हैं तथा उनका विषय **वर्गिकी** (taxonomy) अथवा **वर्गीकरण-विज्ञान** (systematics) कहलाता है । सामान्यत: वर्गीकरण, वर्गिकी तथा वर्गीकरण-विज्ञान जैसे तकनीकी शब्द पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं, किंतु जी. सिम्पसन (1961) जैसे कुछ वर्गीकरणविदों की ऐसी मान्यता है कि वर्गिकी, जीवों की विविधता और उनके तुलनात्मक एवं विकासात्मक संबंधों को स्पष्ट करती है । इसके अंतर्गत तुलनात्मक शारीरिकी, तुलनात्मक पारिस्थितिकी, तुलनात्मक क्रिया-विज्ञान, और तुलनात्मक जैवरसायन का अध्ययन किया जाता है । उसके अनुसार वर्गीकरण, वर्गिकी का उपशीर्षक है जिसमें जीवों को समूहों के क्रम में रखा जाता है तथा वर्गीकरण-विज्ञान उन सिद्धांतों एवं विधियों का अध्ययन है जो वर्गीकरण में प्रयोग में लाए जाते हैं, जो भी हो यह तीनों पारस्परिक, निकट संबंधी क्षेत्र हैं और आगे के वर्णन में इन्हें आपस में अदल-बदल करते हुए प्रयोग किया जाएगा ।

वर्गीकरण-विज्ञान का ज्ञान जीवों की आकृति एवं संरचना (आकारिकी), कोशिकाओं के अध्ययन (कोशिकाविज्ञान), परिवर्धन प्रक्रम (भ्रूण-विज्ञान), प्राचीन काल के जीवों के अवशेष (जीवाश्म) एवं पारिस्थितिक संबंधों पर आधारित है । वर्गीकरण-विज्ञान द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान भविष्य में प्रयोग हेतु एकत्रित किया जाता है जिसे केवल जीव-विज्ञानी ही प्रयोग में नहीं लाते हैं वरन् अन्य विषयों जैसे आयुर्विज्ञान, कृषि, वानिकी एवं उद्योग आदि से संबद्ध व्यक्ति भी प्रयोग में ला सकें । जीवंत विश्व विशेषत: जैव-विविधता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम सजीवों की पहचान और नामों की एक तालिका बना लें । इससे वर्गीकरण में आगे और भी सहायता मिलती है तथा उनकी समानताओं और विकासात्मक संबंधों (जातिवृत्त) को और भी भली-भांति समझा जा सकता है । जीव-विज्ञानी, जीवों में विकासात्मक संबंधों की स्थापना के लिए मुख्यत: जीवाश्मों के वर्गीकरण पर ही निर्भर करते हैं । अब आप अध्याय 1 में वर्णित जीव-विज्ञान के विभिन्न पक्षों के अध्ययन में वर्गिकी के प्रभाव का आकलन कर सकते हैं ।

4.2 वर्गिकी का इतिहास

मानव के विकास से पूर्व ही पादप एवं जंतु इस ग्रह पर उपस्थित थे किंतु एक उन्नत जाति के रूप में मनुष्य ने भाषा के संवाद द्वारा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु पादपों और जंतुओं को उपयोग में लाना प्रारंभ कर दिया । उन्होंने पादपों और जंतुओं को नाम देना प्रारंभ कर उनके लक्षणों को अंकित किया और उन्हें अपनी भाषा में वर्गीकृत भी किया ।

हमारे वैदिक साहित्यों में (2500 बी.सी. से 650 बी.सी. तक) 740 पादपों और 250 जंतुओं का वर्णन किया गया था । *चंदयोग्य उपनिषद्* में जंतुओं का वर्गीकरण किया गया है । वैदिक काल के पश्चात् *सुश्रुत संहिता* (600 बी.सी.) सभी 'पदार्थों' को *स्थावर* (अचल) जैसे पादप एवं *जंगम* (सचल) जैसे जंतुओं में वर्गीकृत करती है । पाराशर ने पुष्पीपादपों को

द्विमात्रुक (द्विबीजपत्री) एवं *एकमात्रुक* (एकबीजपत्री) में बांटा था तथा इनमें से पूर्ववर्तियों को *जालिकापर्ण* (जालिकावत् शिराविन्यासधारी पत्तियां) और बाद वालों को *मोनलापर्ण* (समानान्तर-शिराविन्यासधारी पत्तियां) जैसे लक्षणों द्वारा भी संबोधित किया था ।

ग्रीक विद्वान हिप्पोक्रेटस (460-377 बी.सी.) एवं अरस्तू (384-322 बी.सी.) ने जंतुओं को चार प्रमुख समूहों – कीट, पक्षियों, मत्स्य एवं ह्वेल में व्यवस्थित किया था । थियोफ्रेस्टस (370-285 बी.सी.), जिन्हें प्रायः 'वनस्पति विज्ञान का जनक' कहा जाता है, ने पादपों को चार समूहों–वृक्ष, क्षुप, उपक्षुप एवं शाक में उनकी प्रकृति (आकार एवं गठन) के आधार पर वर्गीकृत किया था । उनकी पुस्तक *हिस्टोरिया प्लेन्टेरम* में 480 प्रकार के पादपों के नाम तथा वर्णन उपलब्ध हैं । सत्रहवीं शताब्दी के अंत में एक अन्य जीवविज्ञानी जोहन रे (1627–1705) ने अपनी सुदूरगामी यात्राओं के आधार पर अपनी पुस्तक *हिस्टोरिया जेनेरेलिस प्लेन्टेरम* में 18,000 से अधिक पादपों तथा जंतुओं का वर्णन प्रस्तुत किया। उन्होंने आकारिकी की दृष्टि से समान जीवों के लिए तकनीकी शब्द **जाति** (species) का प्रचलन किया और वंश तथा जाति में भेद करने का प्रयास किया ।

वर्गीकरण-विज्ञान की दृष्टि से अन्य महत्त्वपूर्ण युग स्वीडन के एक प्रकृतिविद् कैरोलस लिनिअस (1707–1778) की कालावधि हैं जिन्हे प्रायः 'वर्गीकरण-विज्ञान का जनक' कहा जाता है । उन्होंने अपने पादप संबंधी अध्ययनों को *सिस्टेमा नेचुरी* (1758) नामक पुस्तक में प्रकाशित किया था। उससे पूर्व प्रकाशित उनकी पुस्तक *स्पीसीज प्लान्टेरम* (1753) में 4,000 पादप जातियों का वर्णन, लैंगिक लक्षणों पर आधारित उनकी पद्धति के अनुसार दिया गया था । उनका अन्य महत्त्वपूर्ण योगदान पादपों और जंतुओं की ***द्विनाम पद्धति*** (Binomial Nomenclature) को प्रस्तावित करने का है। इस विधि के अनुसार, किसी जाति का नाम दो भागों का बना होता है, इनमें से पहला तो उस वंश (Genus) का नाम होता है जिससे जाति संबद्ध होती है जब कि दूसरा भाग उस जाति की पहचान इंगित करता है, जिससे वह व्यक्ति विशेष संबंध रखता है । उदाहरण के लिए मानवों को *होमो सेपिएन्स* और मटर के पादपों को *पाइसम सेटाइवम* कहा जाता है ।

वर्गीकरण की पूर्व पद्धतियों में केवल आंख से दृष्टव्य आकारिकी के लक्षण ही पादपों और जंतुओं के वर्गीकरण के एकमात्र लक्षण ठहराए गए । इनमें जड़ों के रूपांतरण, पत्तियों का शिराविन्यास और पुष्पी संरचनाएं तथा बीजपत्रों की संख्या को पुष्पी पादपों के वर्गीकरण में उपयोग किया गया । इस प्रकार अरस्तू से लेकर लिनिअस तक जीवों का वर्गीकरण मात्र उनके सीमित लक्षणों को ध्यान में रखकर ही किया गया था । जिससे प्रकृति में विद्यमान विविध जीवों को थोड़े से समूहों में ही रखा जा सका था । वर्गिकी के इस चरण ने वर्गीकरण की कृत्रिम पद्धतियों के विकास को अग्रसरित किया । तत्पश्चात्, जीवों को प्राकृतिक संबंधों के आधार पर वर्गीकृत किया गया । यह चरण पुरातन वर्गिकी का प्रतिनिधित्व करता है और इसमें वर्गीकरण की प्राकृतिक पद्धतियां सम्मिलित हैं ।

इसी क्रम में **संख्यात्मक वर्गीकरण** (Numerical taxonomy) अथवा **फेनेटिक्स** (phenetics) नाम की नई शाखा का 1950 में अभ्युदय हुआ । जैसा कि नाम से ही बोध होता है इसमें संख्या-संबंधी विधियों को प्रयोग में लाया जाता है जो विविध समूह के जीवों की समानताओं और भिन्नताओं के संख्यात्मक आकलन पर निर्भर हैं । इस विधि में जितना संभव हो उतने लक्षण बिना किसी एक को विशेष महत्त्व दिए, तुलनाओं के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं। ऐसी तुलना इसलिए संभव है, कि अब अत्यंत परिष्कृत परिकलन मशीनें और संगणक उपलब्ध हैं। आंकड़ों का संगठन और सर्वेक्षण इस शाखा की मूलभूत अवधारणा है तथा अधिक से अधिक आंकड़ों का प्रयोग कर विस्तृत विकल्पों को तैयार किया जाता है । सर्वेक्षण की दृष्टि से उपयोग में लाए जाने वाले सभी लक्षणों को समान महत्त्व और भारिता दी जाती है । वर्गीकरण की यह पद्धति अधिक उपयुक्त ठहराई जाती है क्योंकि इसमें बड़ी संख्या में तुलनात्मक लक्षणों के आकलन के उपरांत ही किसी जाति को उसकी सही स्थिति में स्थापित किया जाता है ।

वर्गिकी-विज्ञान के दूसरे छोर पर वे जीववैज्ञानिक हैं जो वर्गिकी के संबंधों को आकारिकी के साथ-साथ जीवों के विकासात्मक तथा आनुवंशिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं । वस्तुतः वे आकारिकी के लक्षणों की समानताओं और भिन्नताओं की ओर ध्यान नहीं देते । वर्गीकरण की यह पद्धति **जातिवृत्तीय वर्गीकरण** अथवा **शाखा विज्ञान** (Phylogenetic classification or cladistics) है। यह जीवों को उस ऐतिहासिक क्रम में वर्गीकृत करती है जिसमें विकासात्मक शाखाओं का विकास हुआ था । इसके फलस्वरूप **नववर्गिकी-विज्ञान** (New Systematics) (सर जुलियन हक्सले, 1940) अथवा **जैववर्गिकी विज्ञान** (Biosystematics) का विकास हुआ ।

वर्गीकरण के लिए प्रयोग में आने वाले उन्नत यंत्रों और तकनीकों के फलस्वरूप वर्गिकी-विज्ञान की नई शाखाओं का उदय हुआ, जैसे कि कोशिकावर्गिकी (Cytotaxonomy),

रसायनवर्गिकी (Chemotaxonomy) अथवा जैवरासायनिक वर्गिकी (Biochemical taxonomy) एवं जनसंख्यात्मक वर्गीकरण-विज्ञान (Population systematics) । यह पूर्ववर्ती सिद्धांतों के पुनरीक्षण पर आधारित है और कोशिकाविज्ञान (Cytology) एवं जैवरासायनिक तकनीकों, सीरम-विज्ञान (Serology), आणविक जैविकी (Molecular biology), व्यवहार के तुलनात्मक अध्ययन और अंततः जीवों में भेद तथा समानताओं के आकलन के लिए संगणकों के उपयोग पर आधारित है ।

कोशिकावर्गिकी के अंतर्गत वैज्ञानिक कोशिका संबंधी सूचना, गुणसूत्रों की संख्या, संरचना और अर्द्धसूत्री विभाजन के मध्य उनके व्यावहारिक ज्ञान का उपयोग करते हैं । ऐसा देखा गया है कि जाति विशेष में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है जैसे कि मनुष्य तथा आलू में गुणसूत्रों की संख्या क्रमशः 46 तथा 48 है । कभी-कभी गुणसूत्रों के आकार में भेद भी हो सकता है । उदाहरणार्थ, शाकीय पादपों में काष्ठिल पादपों की अपेक्षा बड़े गुणसूत्र होते हैं । अर्द्धसूत्री विभाजन के मध्य गुणसूत्रों के युग्मन संबंधी सूचना को भी वर्गिकीविद् जातियों में संबंध समझने के लिए प्रयोग करते हैं ।

रसायनवर्गिकी पादपों के रासायनिक संघटकों पर आधारित है। विभिन्न जातियों में अलग-अलग गंध और स्वाद पाए जाते हैं। प्राचीन वर्गीकरणों में औषधियों के लिए पादपों का वर्णन रासायनिक सूचनाओं के आधार पर किया जाता था । उदाहरणार्थ–मसालों में विद्यमान गंध। प्रायः यह पाया गया है कि पादपों में विद्यमान संघटक रसायन स्थिर होते हैं और सरलता से परिवर्तित नहीं होते । उदाहरण के लिए पादपों के 35 कुलों में कैल्शियम ऑक्जेलेट के रवे, रैफाइड पाए जाते हैं, इनके अध्ययन से विभिन्न वर्गकों में आपसी संबंध स्थापित करने और रासायनिक सूचना के सांख्यिक आकलन में भी सहायता मिलती है। डीएनए में क्रम निर्धारण तथा प्रोटीन अणुओं की रासायनिक प्रकृति को भी समानता एवं सामीप्य स्थापित करने में काम में लाया गया है।

4.3 वर्गीकरण के मूलभूत तत्त्व

वर्गीकरण जीवों को समूहों में क्रमबद्ध करने की विधि है । विज्ञान की वह शाखा जिसमें जैव-वर्गीकरण के सिद्धांतों और विधियों का अध्ययन किया जाता है, वर्गिकी अथवा वर्गिकी-विज्ञान (Taxonomy) कहलाती है इसके अंतर्गत निम्न मूलभूत तत्त्व समाहित हैं ।

नामकरण जीवों को नाम देने की प्रक्रिया है इसमें सर्वस्वीकृत नियमों एवं रीतियों के आधार पर सही नाम का निर्धारण किया जाता है । प्रत्येक वर्गीकरणविद् को इन नियमों का पालन करना होता है ।

वर्गीकरण जीवों अथवा उनके समूहों को किसी विशिष्ट वर्गिकी योजना अथवा क्रम के अनुसार व्यवस्थित करने की विधि है । जंतुओं और पादपों के वर्गीकरण में प्रयोग आने वाली श्रेणियां हैं; जगत (Kingdom), संघ (Phylum) (पादपों में प्रभाग), वर्ग (Class), गण (Order), कुल (Family), वंश (Genus) एवं जाति (Species) । प्रत्येक श्रेणी एक एकक है जो वर्गक भी कहलाती है ।

किसी जीव का वर्गीकरण हेतु **अभिनिर्धारण** (Identification) पूर्व में ज्ञात किसी अन्य जीव के साथ उसकी समानता स्थापित करने के लिए किया जाता है । जिसके फलस्वरूप इसे किसी विशेष वर्गिकी समूह में रखा जाता है, कल्पना कीजिए कि *क*, *ख* और *ग* तीन पादप हैं, जो तीन अलग-अलग जातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । एक अन्य पादप, *घ* पादप *ख* से सामीप्य दर्शाता है । ऐसी स्थिति में पादप *घ* का पूर्व में ज्ञात पादप *ख* से समानता स्थापित करना उसकी पहचान करना है ।

4.4 नामकरण

हम अपने चारों ओर की वस्तुओं को नाम देते हैं । आप पालतू और घरेलू पशुओं तक को दिए हुए नामों से भी परिचित हैं । वे प्रायः स्थानीय अथवा सामान्य भाषा में होते हैं । कभी-कभी जीवों की समानता के आधार पर सामूहिक नाम जैसे कुत्ता, पशु, वृक्ष अथवा क्षुप भी दिए जाते हैं ।

आइए हम देखें कि नाम भाषा के साथ किस प्रकार परिवर्तित हो जाते हैं । गुड़हल एक पौधे को हिंदी में दिया गया नाम है, तो चाइना रोज़ (अंग्रेजी), पद्मचारिणी (संस्कृत), जबा (बंगाली), मंदारा (उड़िया) एवं जसवन्द (मराठी) इस पौधे को दिए गए नाम हैं । हमारे देश की अन्य भाषाओं में इसके अन्य नाम भी हो सकते हैं । इसी प्रकार गौरेया नाम के भारतीय पक्षी को हाउस स्पेरो (अंग्रेजी), परदल (स्पेन) और सुजुन (जापान) कहा जाता हैं । सामान्य नाम में विविध प्रकार के जीव सम्मिलित हो सकते हैं जैसे 'तितली' से अभिप्राय तितली और शलभ दोनों ही से है । कभी-कभी सामान्य नाम भ्रामक होते हैं। जैसे जैलीमत्स्य (Jellyfish) और तारामत्स्य (Starfish) वास्तव में मछलियां हैं ही नहीं ।

वैज्ञानिक नाम

आप सहमत होंगे कि जीवों की उनके सामान्य नामों के आधार पर विश्वस्तर पर पहचान करना संभव नहीं है । ऐसा जीवविज्ञानियों के लिए भी कठिन है अतः उन्होंने, इन्हें ऐसा वैज्ञानिक नाम देना वांछनीय समझा जो समस्त विश्व में स्वीकृत हों । इस प्रकार का

नाम सर्वमान्य सिद्धांतों और मानदंडों के आधार पर होना चाहिए। वैज्ञानिक नाम यह सुनिश्चित करते हैं कि एक जीव को एक ही नाम दिया गया है और पूरे विश्व के किसी भी भाग में लोगों को उस नाम के द्वारा उस जीव का विवरण पाने में सहायता मिल सके और वे उसी नाम विशेष तक पहुंच सकें। प्रत्येक प्रकार के विशिष्ट जीवों, जो जाति का निर्माण करते हैं, को अन्य से विभेदित करने के लिए, पृथक नाम दिया जाता है। और यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि यह नाम पहले किसी भी जीव के लिए प्रयोग में तो नहीं लाया गया है।

बहुपद नामकरण

1750 से पूर्व, विद्वान किसी भी जाति विशेष को वर्णनात्मक शब्दों के रूप में इंगित करते थे। फलतः यह नाम लंबे और स्मरण की दृष्टि से दुरूह होते थे। हम यह *कैरियोफिल्लम* के उदाहरण से समझ सकते हैं जिसका नाम *केरियोफिल्लम सैक्साटिलिस फोलिस ग्रेमिनिअस अम्बलेटिस कोरिम्बिस* दिया गया था जिसका अर्थ है चट्टानों पर उगने वाला कैरियोफिल्लम जिसकी पत्तियां घास जैसी होती हैं और पुष्पों की व्यवस्था समशिख (corymb) होती हैं। इस प्रकार बनी लैटिन शब्दों की शृंखला को **बहुपद नामकरण पद्धति** (Polynominal system of nomenclature) की संज्ञा दी गई।

द्विपद नामकरण

बहुपद पद्धतियां अत्यधिक कठिन थी और एक विद्वान से दूसरे तक पहुंचने में इनमें परिवर्तन होता रहता था। अतः एक अच्छे विकल्प की खोज में, कैरोलस लिनिअस ने एक आशुलिपि संस्करण, द्विपद (binominal) द्वारा प्रत्येक जाति का नामकरण किया। अंततः द्विपद सर्वव्यापक एवं प्रचलित पद्धति हो गई। आइए, हम आम और मधुमक्खी के उदाहरणों की सहायता से द्विपद नामकरण पद्धति को समझें। आम का वैज्ञानिक नाम *मेंजीफेरा इंडिका* है जो लैटिन में दिया गया है। *मेंजीफेरा* तो वंश का नाम है तथा *इंडिका* जाति का। इसी प्रकार मधुमक्खी को *एपिस मेलीफेरा* कहते हैं। इस प्रकार अब आपको यह याद रखना चाहिए कि प्रत्येक वैज्ञानिक नाम का प्रथम अक्षर तो वंश के लिए है और दूसरा जाति बताता है। इस प्रकार द्विपद नाम पद्धति जीवों को नाम देने की वह विधि है जिसमें वंश (genus) तो पहला भाग होता है और जाति (species) दूसरा।

त्रिपद नामकरण

कभी-कभी जीवों के नामकरण हेतु तीन नामों का भी उपयोग किया जाता है जैसा कि जंतुओं में विशेषतः होता है। इनमें से एक वंश, दूसरा जाति और तीसरा उपजाति (sub-species) भागों को दर्शाता है। उदाहरणार्थ आधुनिक मानव का नाम *होमो सेपियेन्स सेपियेन्स* है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी भी जीव का अध्ययन, वर्णन, नामकरण और पहचान कर सकता है लेकिन इसके लिए उसे कुछ अंतर्राष्ट्रीय नियमों का पालन करना होगा। यह नाम "वनस्पतिविज्ञान नामकरण के अन्तर्राष्ट्रीय कूट" (International Code of Botanicolgical Nomenclature, ICBN) और "प्राणीविज्ञान नामकरण के अंतर्राष्ट्रीय कूट" (International Code of Zoological Nomenclature, ICZN) द्वारा संकलित और निर्धारित किए जाते हैं, जिससे वैज्ञानिक नामों में किसी प्रकार की त्रुटि, दोहरापन, अस्पष्टता और असमंजस न आने पाए। समय-समय पर होने वाली अंतर्राष्ट्रीय वनस्पति एवं जंतु-विज्ञान की सभाओं में इन नियमों की स्थापना और सुधार किया जाता है। सूक्ष्म जीव-विज्ञानियों ने जीवाणुओं एवं विषाणुओं का नामकरण करने के लिए "जीवाणु-विज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय नामकरण कूट" (International Code of Bacteriological Nomenclature, ICBN) एवं "विषाणु-विज्ञान नामकरण के अंतर्राष्ट्रीय कूट" (International Code of Virological Nomenclature ICVN) की स्थापना की है इसी प्रकार कृषित पादपों (Cultivated plants) के नामों के लिए भी कृषित पादपों के अंतर्राष्ट्रीय नामकरण कूट (International Code of Nomenclature for Cultivated Plants, ICNCP) बनाई गई है।

जीवों के नामकरण के लिए दिशा-निर्देश

आइए अब हम नामकरण हेतु कुछ सर्वस्वीकृत मान्यताओं का अध्ययन करें :

(i) कोई भी वैज्ञानिक नाम दो लैटिन अथवा लैटिन से निकले शब्दों का बना होता है चाहे उसका उद्गम विश्व के किसी भी भाग में क्यों न हुआ हो।

(ii) इनमें से प्रथम नाम तो वंश को इंगित करता है तथा दूसरा जाति को।

(iii) वैज्ञानिक नाम सदैव तिरछे अक्षरों में लिखे जाते हैं अथवा उनको अलग-अलग रेखांकित किया जाता है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि यह लैटिन से निकला है।

(iv) 'वंश' का नाम बड़े अक्षर से तथा 'जाति' का नाम छोटे अक्षर से प्रारंभ होता है, उदाहरण के लिए *मेंजीफेरा इंडिका* (*Mangifera indica*)।

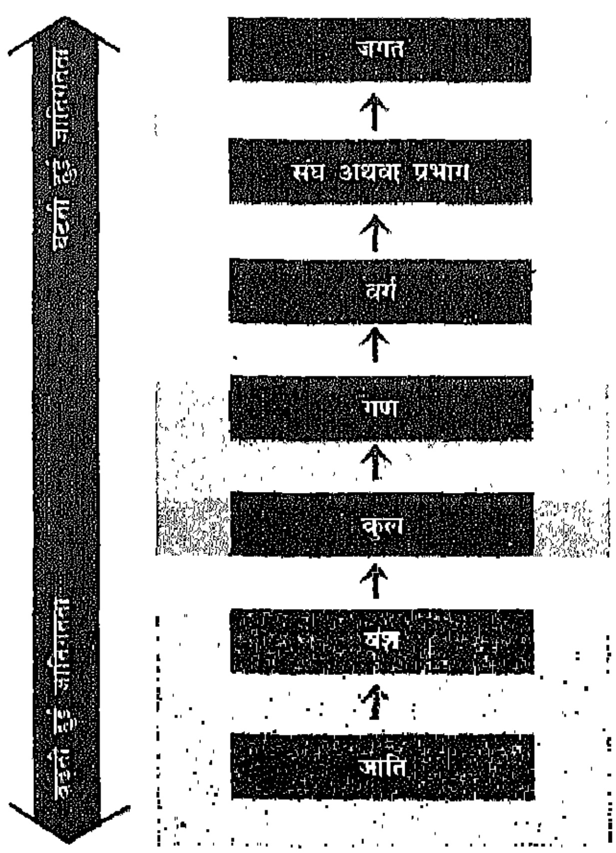
(v) लेखक का नाम बिना अर्ध-विराम के सूक्ष्म रूप में जाति के नाम के उपरांत रोमन में लिखा जाता है जैसे *मेंजीफेरा इन्डिका* लिन. (*Mangifera Indica* Linn.).

(vi) प्रत्येक वर्गिकी समूह का मात्र एक सही नाम हो सकता है।

(vii) वैज्ञानिक नाम सूक्ष्म, संक्षिप्त तथा उच्चारण में सरल होना चाहिए ।

4.5 वर्गीकरण श्रेणीबद्ध संगठन

वर्गीकरण–विज्ञान का मुख्य उद्देश्य किसी जीव विशेष को सभी जीवंत जीवों की व्यवस्था में एक उपयुक्त स्थान प्रदान करना है। इस व्यवस्था को हम **वर्गीकरण श्रेणीबद्ध संगठन** (taxonomic heirarchy) कहते हैं। जिसमें वर्गिकी समूह उच्च से निम्न श्रेणियों में सुनिश्चित क्रम में व्यवस्थित रहते हैं। जंतुओं के वर्गीकरण में प्रयोग की जाने वाली विविध श्रेणियां जगत (Kingdom), संघ (Phylum), वर्ग (Class), गण (Order), कुल (Family), वंश (Genus) तथा जाति (Species) हैं। इसके विपरीत पादपों में संघ के स्थान पर प्रभाग (Division) प्रयोग किया जाता है जबकि शेष श्रेणियों के लिए एक समान शब्दावली प्रयोग की जाती है। एक वर्गक के सभी सदस्यों के लक्षण समान होते हैं जो अन्य वर्गकों के लक्षणों से भिन्न होते हैं। आइए हम एक उदाहरण कीटों का लें। इस समूह में वे प्राणी आते हैं जिनमें सामान्य रूप से तीन जोड़ी संधि-युक्त पाद होते हैं और इसी के माध्यम से इनकी पहचान कर इन्हें एक वर्ग कीट का पद अथवा कोटि प्रदान की गई है।



चित्र 4.1 वर्गिकी की श्रेणियों के श्रेणीबद्ध संगठन

मछलियां, पक्षी, स्तनपोषी, शैवाल, पर्णांग एवं घासें वर्गीकरण जीवों के समूहों के ऐसे ही अन्य उदाहरण हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राणी एवं पादप दोनों ही जगतों में सबसे छोटा समूह अथवा 'श्रेणी' तो जाति है और सबसे बड़ी 'जगत'। जीवों को किसी जाति, वंश और संघ में रखा जाना, उनके लक्षणों की समानता तथा आपसी संबंधों द्वारा निर्धारित की जाती है। इस श्रेणीबद्ध क्रम में श्रेणियां आरोही क्रम में व्यवस्थित की जाती हैं (चित्र 4.1)। हम जैसे-जैसे ऊपर की ओर जाते हैं, समान लक्षणों की संख्या घटती जाती है, आइए, हम इन श्रेणियों को समझें और इनका अध्ययन करें।

जाति : वर्गिकी एवं विकास को समझने की दृष्टि से 'जाति' मूलभूत इकाई है। यह ऐसे जीवों का समूह है जो आकारिकी की दृष्टि से समान लक्षणधारी होते हैं और आपस में प्रजनन कर अपने जैसे अन्य जीवों को उत्पन्न कर सकते हैं। इस क्रम में आप आम (Mangifera indica), आलू (Solanum tuberosum) एवं तेंदुआ (Panthera Leo) के उदाहरण स्मरण कर सकते हैं। इन उदाहरणों में *इंडिका, ट्यूबरोसम* एवं *लिओ* क्रमश: *मेंजीफेरा, सोलेनम* एवं *पेंथेरा* वंशों की जातियां हैं। एक वंश में एक से अधिक जातियां हो सकती हैं जैसे कि *पेंथेरा टिगरिस* (Panthera tigris) अर्थात् इस वंश की दूसरी जाति *टिगरिस* है। किसी जाति की व्यष्टियां उसकी जनसंख्या का भी प्रतिनिधित्व करती हैं और अन्य जाति की व्यष्टियों के साथ प्रजनन नहीं करतीं।

वंश : यह ऐसी जातियों का समूह है जो आपस में संबद्ध होती हैं और जिनमें जातियों की तुलना में कम लक्षण समान होते हैं। उदाहरण के लिए आलू एवं बैंगन एक ही वंश *सोलेनम* में आते हैं। इसी प्रकार शेर, तेंदुआ और चीता भी कुछ समान लक्षण धारण करते हैं और वंश *पेंथेरा* में आते हैं। आप पाएंगे कि एक वंश की मात्र एक जाति जैसे *होमो* की *सेपियेन्स* अथवा अनेक जातियां हो सकती हैं।

कुल : यह ऐसे संबंध वंशों के समूह से बनता है जो आपस में एक-दूसरे से अन्य कुलों के वंशों की तुलना में कहीं अधिक समान लक्षण दर्शाते हैं। उदाहरणार्थ *सोलेनम, पिटूनियां, धतूरा* एवं *ऐट्रोपा* को समान लक्षणों के आधार पर एक ही कुल 'सोलेनेसी' में रखा जाता है। जंतुओं में शेर, तेंदुआ, चीता एवं बिल्ली जो दो वंशों *पेंथेरा* एवं *फेलिस* के अंतर्गत आते हैं, एक ही कुल 'फेलिडी' में रखे जाते हैं। यदि आप कुत्ते एवं बिल्ली के लक्षणों का अध्ययन करें तो पाएंगे कि उनमें अंतर है। फलत: उन्हें क्रमश: भिन्न-भिन्न कुलों, फेलिडी एवं केनिसडी में रखा जाता है।

गण : यह ऐसे कुलों का समूह है जो कुछ लक्षणों में एक-दूसरे से समानता दर्शातें हैं । यह लक्षण किसी कुल में सम्मिलित वंशों की तुलना में कहीं कम समान होते हैं । कुछ लक्षणों के आधार पर सोलेनेसी एवं कन्वोल्व्यूलेसी कुलों को गण पोलीमोनिएलीज (Polymonials) में रखा गया है जब कि फेलिडी एवं केन्सिडी कुल कार्निवोरा (Carnivora) गण में सम्मिलित किए गए हैं ।

वर्ग : इसके अंतर्गत आपस में संबद्ध ऐसे जीवों का प्रतिनिधित्व होता है जो कई प्रमुख लक्षणों में समानता दर्शाते हैं । उदाहरणार्थ गोरिल्ला एवं गिब्बन का गण प्राइमेटा (Primata) और चीता, बिल्ली एवं कुत्ते का गण कार्निवोरा, स्तनपोषी अथवा मैमेलिया वर्ग के अंतर्गत रखे जाते हैं । मैमेलिया वर्ग में इन दो गणों के अतिरिक्त अन्य गण भी आते हैं ।

संघ : कई वर्ग आपस में मिलकर संघ का निर्माण करते हैं उदाहरणार्थ जंतुओं में कोर्डेटा संघ में पिस्सेज, एम्फीबिया, रेप्टीलिया, एवीज एवं मैमेलिया नामक सभी वर्ग रखे जाते हैं क्योंकि इन सभी में जीवन की किसी न किसी अवस्था में मेरुदण्ड, पृष्ठीय, खोखला तंत्रिका-तंत्र एवं गिल विदर से छिद्रित ग्रसनी (pharynx) उपस्थित होते हैं ।

जगत : सामान्यतः, 'जगत' के अंतर्गत ऐसे सभी जीव आते हैं जो विशिष्ट समान लक्षणों का एक समुच्चय निर्माण करते हैं पादपों को पादप जगत और प्राणियों को जंतु जगत में सम्मिलित किया जाता है । यह वर्गीकरण की सर्वोच्च श्रेणी है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रेणी जितनी ही उच्च होगी, उस श्रेणी के जीवों के समान लक्षणों की संख्या उतनी ही कम होगी । उदाहरण के लिए 'पेंथेरा' वंश से संबद्ध शेर, चीता तथा तेंदुआ कई समान लक्षण दर्शाते हैं लेकिन यह चमगादड़, हाथी, गोरिल्ला तथा मानव से पर्याप्त भेद दर्शाते हैं, यद्यपि यह सभी एक ही वर्ग स्तनपोषी के अंतर्गत रखे जाते हैं । जाति के नीचे उपजाति, गण एवं वर्ग के बीच उप-वर्ग और संघ तथा जगत के बीच उप-जगत भी विद्यमान हो सकते हैं ।

सारणी 4.1 में मानव, कुत्ता, मक्खी, आम, गेहूं तथा तुलसी जिन संवर्गों से संबद्ध हैं, उनको दर्शाया गया है जिससे आपको वर्गिकी का श्रेणीबद्ध संगठन समझने में सहायता मिलेगी ।

4.6 जैव-वैज्ञानिक वर्गीकरण की पद्धतियां

जीवों के वर्गीकरण की प्रारंभिक पद्धतियां मात्र एक अथवा दो लक्षणों पर आधारित और सरल थीं इसके कारण इनसे समूह बनाते समय प्रयोग किए जाने वाले लक्षण भी अत्यंत सरल थे। उदाहरणार्थ अरस्तू एवं अन्य दार्शनिकों ने पादपों को उनकी प्रकृति के अनुसार वृक्षों, क्षुपों एवं शाकों में समूहित किया था। इसी प्रकार उन्होंने जंतुओं को भी दो श्रेणियों में विभाजित किया था । इनमें से एक जिसमें लाल रक्त विद्यमान था, ऐनाइमा (Enaima) कहलाया और दूसरा लाल रक्त-विहीन, अनाइमा (Anaima) । ग्रीकों से अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य तक के काल में वर्गीकरण की विधियां प्रकृति/आवास एवं कुछ संरचनात्मक लक्षणों पर आधारित होने के कारण अत्यंत अपरिष्कृत थीं । कभी-कभी तो जीवों की ऐसी सतही समानताओं को आधार बना लिया जाता था कि वे बाद में अविश्वसनीय पाई गईं । इसके फलस्वरूप वर्गीकरण की स्वेच्छाचारी और आस्थाविहीन पद्धतियां सामने आईं। आइए, हम समय-समय पर प्रस्तावित विविध वर्गिकी पद्धतियों का अवलोकन करें।

सारणी 4.1 सामान्य जीवों की वर्गीकरण श्रेणियां

सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	वंश	कुल	गण	वर्ग	संघ/प्रभाग
मनुष्य	*होमो सेपिएन्स सेपियेन्स*	*होमो*	होमिनिडी	प्राइमेटा	मैमेलिया	कॉर्डेटा
कुत्ता	*केनिस फेमिलिएरिस*	*केनिस*	केनिडी	कार्निवोरा	मैमेलिया	कॉर्डेटा
मक्खी	*मस्का डोमेस्टिका*	*मस्का*	मस्किडी	डिप्टेरा	इन्सेक्टा	आर्थ्रोपोडा
आम	*मेंजीफेरा इंडिका*	*मेंजीफेरा*	ऐनाकार्डिऐसी	सैपिन्डेलीज	डाईकोटीलीडन	एन्जियोस्पर्मी
गेहूं	*ट्रिटिकम ऐस्टाइवम*	*ट्रिटिकम*	पोएसी	पोएलीज़	डाईकोटीलीडन	एन्जियोस्पर्मी
तुलसी	*ओसिमम सैंक्टम*	*ओसिमम*	लेमिएसी	लेमिएलीज	मोनोकोटीलीडन	एन्जियोस्पर्मी

कृत्रिम पद्धति

वर्गीकरण की यह पद्धति एक अथवा कुछ सतही समानताओं पर आधारित थी। कभी-कभी यह सुविधा की दृष्टि से भी प्रस्तुत की जाती थी जिससे स्वेच्छाचारिता का आभास होता था क्योंकि ऐसा करते समय नैसर्गिक एवं जातिवृत्तीय संबंधों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता था। लिनिअस के काल तथा उससे पूर्व भी यही स्थिति प्रचलन में थी । इससे पहले अरस्तू ने जीवों को उनके आवास के अनुसार स्थलीय, वायवीय एवं जलीय समूहों में विभाजित किया था । इस पद्धति के अनुसार अत्यन्त विषम एवं विविधताधारी जंतु एक ही समूह में सम्मिलित किए गए थे । उदाहरण के लिए, ह्वेल तथा मछली जलीय होने के कारण एक समूह में जबकि वायु में विचरण करने के कारण चमगादड़ और पक्षियों को भी एक अन्य समूह में रखा गया था।

कृत्रिम पद्धति से वर्गीकरण के एक अन्य उदाहरण के अनुसार जंतुओं को (i) उड़ सकने वाले और (ii) न उड़ सकने वाले, दो समूहों में रखा गया था। ऐसी स्थिति में तो आप तितलियों को चमगादड़ों और पक्षियों के पास रख देंगे । आप पाएंगे कि कृत्रिम पद्धति में समूह निर्माण में उपयोग किए जाने वाले मानक सरल तथा समझने में तो आसान थे किंतु कभी-कभी इसके फलस्वरूप विषम तथा असंबद्ध जीव तो एक समूह में आ जाते हैं और निकट समानता दर्शाने वाले, अत्यन्त दूरस्थ समूहों में ।

लिनिअस ने पुंकेसरों की प्रकृति, संख्या, संयोजन, लंबाई एवं कुछ अन्य लक्षणों को आधार बनाकर पादपों का वर्गीकरण किया । उदाहरण के लिए उन्होंने एक पुंकेसरधारी (Monandrial), दो पुंकेसरधारी (Diandria), तीन अथवा अधिक पुंकेसरधारी (Tri-and-Polyandria) वर्ग प्रस्तावित किए । यह पद्धति भी कृत्रिम ठहराई गई है क्योंकि लिनिअस ने अपनी पद्धति को जातिवृत्तीय संबंधों को ध्यान में न रखकर कुछ आम लक्षणों पर आधारित किया था ।

प्राकृतिक पद्धति

प्राकृतिक पद्धति के अनुसार जीवों को नैसर्गिक घनिष्ट संबंधों का आधार मानकर वर्गीकृत किया जाता है। इसमें समानता स्थापित करने के लिए एक के स्थान पर कई लक्षणों का उपयोग किया जाता है । प्राकृतिक वर्गीकरण प्रमुखतः उन सभी सूचनाओं द्वारा स्थापित संबंधों पर आधारित होता है जो कि पादप के संग्रह के समय उपलब्ध होती हैं। प्राकृतिक वर्गीकरण विकास की अवधारणा स्वीकृत होने से पूर्व तक प्रमुखता से प्रचलित रहा। इस क्रम में वर्गीकरण की सबसे महत्त्वपूर्ण और अंतिम प्राकृतिक पद्धति जॉर्ज बैन्थम (1800-1884) एवं जॉसेफ डाल्टन हुकर (1817-1911) द्वारा सुझाई गई थी। इस पद्धति में समानताओं की पहचान के लिए प्रयोग किए गए लक्षण समजात थे अर्थात् विभिन्न जीवों की तुलनात्मक संरचनाओं के संबंध विषमजात (analogous) थे (अध्याय 3 भी देखें)।

जातिवृत्तीय पद्धति

यह पद्धति जीवों के विकासात्मक तथा आनुवंशिक संबंधों पर आधारित है । डार्विन की पुस्तक *ऑन दी ओरिजिन ऑफ स्पीसीज बाई मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन* अथवा *प्रिजर्वेशन ऑफ रेसेज इन दी स्ट्रगल फॉर लाइफ* ने वर्गिकी-विज्ञान को सहायता प्रदान की । इस क्रम में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन डार्विन से पूर्व प्रचलित जाति के स्थायित्व (fixity) की विचारधारा में आया जो इसके उपरांत गतिशील और सदैव परिवर्तनशील रूप में स्वीकार की गई। साथ ही जीवों के समूहों के अथवा मात्र एक जीव के भी उद्गम से लेकर वर्तमान समय तक हुए विकास के मध्य आए परिवर्तनों को भी आकारिकी के लक्षणों के साथ-साथ पादपों के वर्गीकरण के लिए आधार के रूप में प्रयोग किया गया। जातिवृत्तीय क्रम से प्रस्तावित सर्वाधिक प्रचलित वर्गीकरण पद्धति, एडोल्फ एंगलर (1844-1930) और उनके सहयोगी के. प्रेन्टल (1849-1893) ने अपने मोनोग्राफ *डी नातुरलिखेन फ्लान्जेनफामिलिएन* में प्रदान की थी । उन्होंने पुष्पी पादपों के कुलों और गणों को पुष्प आकारिकी की जटिलता के आधार पर आरोही क्रम में व्यवस्थित किया तथा एकचक्री परिदल पुंज अथवा परिदल पुंज-विहीन स्थिति, एक लिंगी पुष्पों और वायु-द्वारा परागण को तो आदिकालीन ठहराया तथा द्विचक्री परिदलपुंज-धारी, द्विलिंगी और कीट-परागित पुष्प उन्नत स्वीकार किए गए । उनके वर्गीकरण के अनुसार पादप-जगत में संघ, उपसंघ, वर्ग, गण एवं कुल समाहित हैं । उन्होंने यह भी सुझाया कि द्विबीजपत्रियों में एस्टरेसी (सूर्यमुखी कुल) और एकबीजपत्रियों में आर्किडेसी कुल अधिक विकसित हैं । उनके अनुसार एकबीजपत्री, द्विबीजपत्रियों की तुलना में कहीं अधिक आदिकालीन हैं । एकलिंगी पुष्पधारी पादप जिनमें पुलिंग एवं स्त्रीलिंग पुष्प अलग-अलग होते हैं, द्विलिंगी पुष्पधारी जिनमें पुलिंग एवं स्त्रीलिंग जननांग एक ही पुष्प में होते हैं, से कहीं अधिक आदिकालीन हैं । इस पद्धति ने पुष्पी पादपों का उद्गम एक ही स्रोत से होना स्वीकार किया और साथ ही यह भी इंगित किया कि गण एवं कुलों के क्रम समानांतर विकास दर्शाते हैं ।

4.7 जीवों का वर्गीकरण

द्विजगत वर्गीकरण

जीवित जीव प्रारंभ से ही दो समूहों - पादपों और जंतुओं में वर्गीकृत किए गए हैं । यह दो जगत वर्गीकरण (Two Kingdom Classification) भी कहलाता है । लिनिअस ने इन जगतों को प्लान्टी, जिसमें सभी प्रकार के पादप आते हैं एवं ऐनीमेलिया, जो विविध प्रकार के जीवों को समाहित करता है, का नाम दिया था । जैसा कि आप जानते हैं पादप अचल हैं, और स्वपोषी आहार विधि दर्शाते हैं, अर्थात् वे अपना भोजन स्वयं संश्लेषित करते हैं । यह अभिक्रिया उनमें हरे रंग के वर्णक की उपस्थिति के कारण संभव होती है । दूसरी ओर जंतु गतिशील होते हैं और उनमें अपना भोजन संश्लेषित करने की क्षमता नहीं होती । फलतः वे भोजन के लिए पादपों पर निर्भर होते हैं । इस वर्गीकरण के अनुसार वृक्ष, झाड़ियां, लताएं, चट्टान, दीवार अथवा वृक्ष पर उगने वाली मॉस, तालाब में तैरने वाले हरे शैवाल, पादप जगत में रखे जाते हैं । गति और पोषण की विधि को लेकर कुछ अपवाद भी हैं । उदाहरण के लिए यदि पादपों को सेलुलोस-धारी जीवों के अंतर्गत रखा जाता है तो कंचुकित समूह के जंतुओं की गणना भी पादपों में ही करनी होगी । इनमें सेलुलोस विद्यमान होता है, शाखन-पद्धति समान होती है और साथ ही वे समुद्र की तलहटी पर जमें रहते हैं । तालाब अथवा झील में मिलने वाले एककोशिक जीवों में भी पादपों अथवा जंतुओं में भेद करना कठिन है क्योंकि यह हरे, भूरे अथवा लाल रंग के होते हैं । द्विजगत पद्धति के अनुसार सभी सत्यकेंद्रकधारी जीव, ससीमकेंद्रकी (eukaryotes) और सभी सत्यकेंद्रकविहीन जीव, असीमकेंद्रकी (prokaryotes) श्रेणियों में रखे जाते हैं । साथ ही यह प्रकाशसंश्लेषी शैवालों और प्रकाशसंश्लेषण-विहीन कवकों को एक ही पादप समूह में धारण करता है तथा एककोशिक और बहुकोशिक जीवों को भी साथ-साथ रखता है । यहां तक कि एककोशिक जीवाणु भी पादपों के अंतर्गत रखे गए थे । यह इस पद्धति की कुछ कमियां हैं । साथ ही कुछ जीवों का दो जगतों में रखना कठिन हो गया । नीचे दिए गए उदाहरण द्विजगत पद्धति की कमियों के अन्य बिंदु दर्शाते हैं :

कुकुरमुत्ता, पावरोटी, फफूंदी और अन्य प्रकार के कवक पादपों में वर्गीकृत किए गए हैं जबकि वह हरे नहीं हैं और अपना भोजन स्वयं संश्लेषित नहीं करते । कवक समूहों की पादपों से भिन्नता उनके हरे न होने के साथ-साथ उनकी भोजन ग्रहण करने की विधि भी है । वे शैवालों की भांति तंतुसम संरचना तो दर्शाते हैं, परंतु पादपों से कोशिका-भित्ति के संघटन में भिन्न होते हैं । इसके फलस्वरूप कवकों का पादप जगत में समावेश विवादास्पद हो गया है ।

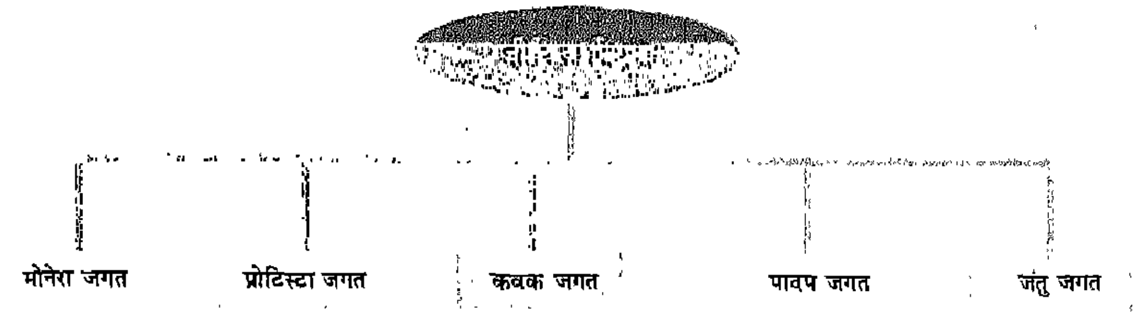
हम एक और उदाहरण यूग्लीना का लेते हैं । यह हरे रंग का एककोशिक और जंतुओं के समान गतिशील है । कुछ वर्गीकरणविद् पर्णहरित विद्यमान होने के कारण पादप जगत में स्थान देते हैं । जबकि अन्य इस जंतु जगत के अंतर्गत रखते हैं क्योंकि इसमें कशाभिकाओं द्वारा चलन होता है । यह भी वर्गीकरणविदों में विवाद का बिंदु बन गया है ।

आप जीवाणुओं से भी परिचित हैं जो एककोशिक जीव हैं । इनकी कोशिका के केंद्रकीय द्रव्य के चारों ओर सुस्पष्ट केंद्रकीय कला विद्यमान नहीं होती । यह एक असीमकेंद्रकी कोशिका है जो नील-हरित शैवालों से समानता दर्शाती है । अतः इन्हें पादप-जगत में रखा गया था । लेकिन वे अन्य पादपों और जंतुओं से पूर्णतः भिन्न होते हैं क्योंकि इनमें सुस्पष्ट केंद्रक कला और स्पष्ट केंद्रक, जो ससीमकेंद्रकी कोशिका के लक्षण हैं, विद्यमान नहीं होते ।

कवकों, जीवाणुओं एवं यूग्लीना-जैसे जीवों की विवादास्पद स्थिति के कारण, वर्गीकरण की द्विजगत पद्धति, जिसमें उन्हें पादपों अथवा जंतुओं में वर्गीकृत किया जाता है, अपर्याप्त ठहराई गई । विभाजन की इस रीति पर पुनर्विचार की आवश्यकता इसलिए भी हुई कि विषाणु एवं विषाणुओं जैसे अन्य जीवों की भी खोज हुई जिन्हें न तो असीमकेंद्रकी और न ही ससीमकेंद्रकी समूह में रखा जा सकता था । विषाणु, पादपों एवं जंतुओं, दोनों को ही संक्रमित कर उनमें रोग फैलाते हैं। वस्तुतः इनमें कोशिकी संरचना विद्यमान नहीं होती फलतः यह अपने आतिथेय की चयापचय क्रिया पर ही निर्भर करते हैं । साथ ही चूंकि इनमें आनुवंशिक पदार्थ के रूप में डीएनए अथवा आरएनए विद्यमान होता है अतः इन्हें जैव एवं अजैव वस्तुओं की सीमा पर रखा जाता है । इसके अतिरिक्त अन्य जीवों के विपरीत यह मात्र सजीव-तंत्र (living system) में ही जीवन का निर्वाह करते हैं और आतिथेय विशिष्टता भी दर्शाते हैं । ऊपर दिए गए सभी उदाहरणों ने जीवों की द्विजगत वर्गीकरण पद्धति पर पुनर्विचार की आवश्यकता को रेखांकित किया ।

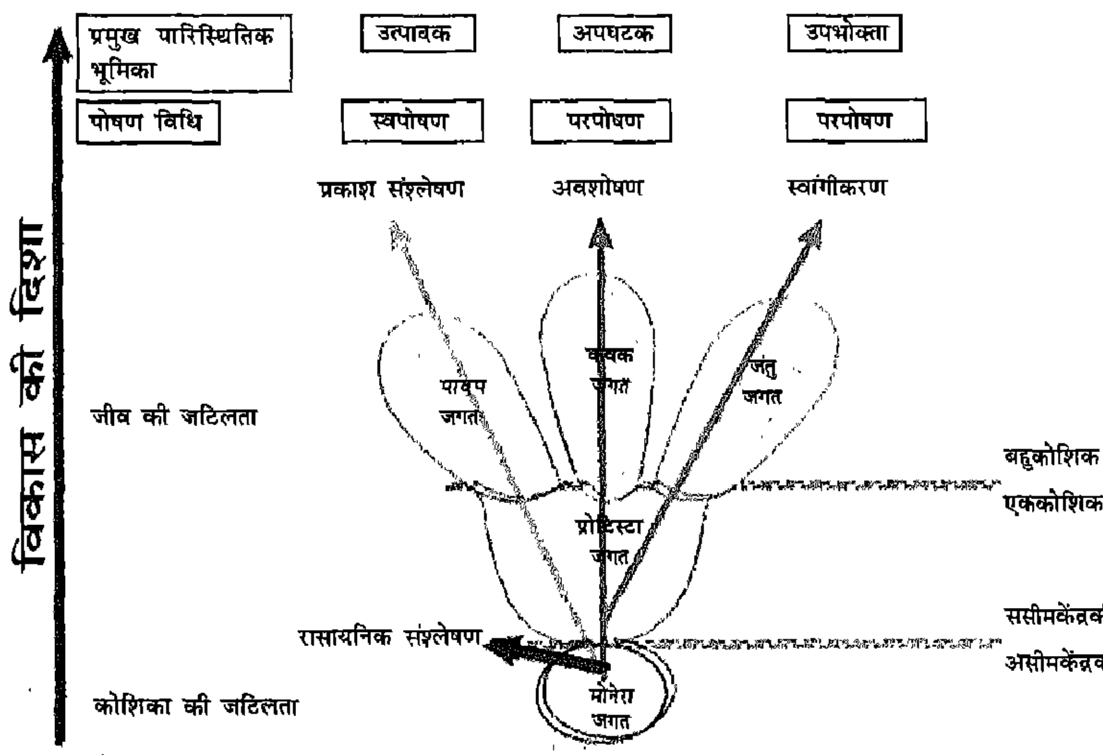
पांच जगतधारी वर्गीकरण

कवकों, जीवाणुओं और विषाणुओं की विवादास्पद स्थिति ने द्विजगत पद्धति के स्थान पर वर्गीकरण की पांच जगत पद्धति (Five Kingdom Classification) के सम्मुख आने का मार्ग प्रशस्त किया जिसे 1969 में आर.एच. व्हिटेकर ने प्रस्तुत किया था । पांच जगत हैं : मोनेरा (Monera), प्रोटिस्टा (Protista), कवक, पादप (Plantae) एवं जंतु (Animalia)



चित्र 4.2 जीवों के पांच जगत

(चित्र 4.2)। जीवों को पांच जगत में वर्गीकरण करने के मुख्य आधार हैं कोशिका संरचना की जटिलता, शारीरिक संगठन, पोषण विधि, जीवन-पद्धति और जातिवृतीय संबंध। चित्र 4.3 का निरीक्षण करने पर आपको पता चलेगा कि विकास कोशिका (असीम एवं ससीमकेंद्रकी) और जीव की बदली हुई जटिलता (एककोशिक से बहुकोशिक तक) के माध्यम से दर्शनीय है। साथ ही बहुकोशिक जगतों जैसे पादपों, कवकों और जंतुओं में पोषण विधि भी अलग-अलग होती गई। इसी प्रकार क्रमशः इन तीनों जगतों की पारिस्थितिक भूमिका क्रमशः उत्पादक, अपघटक एवं उपभोक्ता के रूप में भी स्थापित होती गई। पांच जगत पद्धति के अनुसार, जीव, पादप एवं जंतु जगतों को रखते हुए तीन अतिरिक्त जगतों में विभाजित कर दिए गए। सभी बहुकोशिक, गतिशील एवं परपोषी जीव जंतु जगत में समाहित किए गए। जबकि प्रकाशसंश्लेषी, बहुकोशिक जीवों को पादप जगत में सम्मिलित किया गया। कुछ एककोशिक जीवों जैसे शैवालों और आदिजीवों (protozoans) को पादप और जंतु जगत से निकालकर एक अलग जगत प्रोटिस्टा (Protista) में रखा गया। सभी जीवाणुओं और बहुकोशिक नीलहरित शैवालों की जो असीमकेंद्रकी कोशिकाएं धारण करते हैं, पादप जगत से एक नए जगत मोनेरा (Monera) में स्थानांतरित कर दिया गया। लेकिन अब भी बहुत-से जीवविज्ञानी एककोशिक शैवालों को बहुकोशिक शैवालों से अलग करना ठीक नहीं मानते और ऐसा संभव है कि जीवों के संबंध में हमारा बढ़ता हुआ ज्ञान एक नई वर्गीकरण पद्धति को जन्म दे।



चित्र 4.3 विकास के क्रम में बढ़ती हुई जटिलता दर्शाते हुए पांच जगत

पांचों जगतों के प्रमुख लक्षण नीचे दिए गए हैं :

मोनेरा जगत

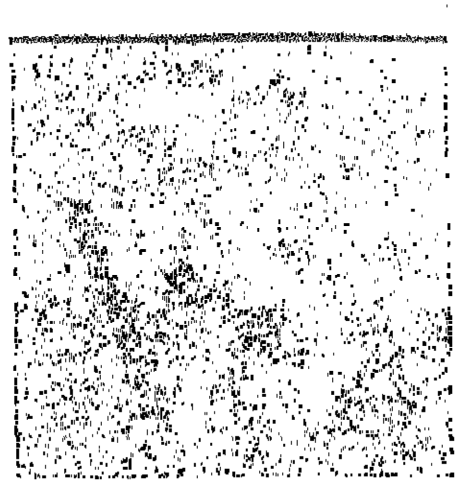
इस जगत के अंतर्गत एक कोशिक असीमकेंद्रकी जीव जैसे जीवाणु, तंतुधारी एक्टिनोमाइसीट और प्रकाशसंश्लेषी नील-हरित शैवाल अथवा सायनोजीवाणु (cyanobacteria) आते हैं। सायनोजीवाणु प्रकाशसंश्लेषी जीवाणु होते हैं लेकिन इन्हें पूर्व में नील-हरित शैवाल भी कहा जाता था। चूंकि इनमें प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता थी अतः इन्हें 'शैवाल' नामक तकनीकी शब्द से संबोधित किया जाने लगा। बाद में इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से इनकी जीवाणुओं से संरचनात्मक संबद्धता की खोज की गई। अतः अब यह उपयुक्त ही है कि इन्हें नील-हरित शैवाल अथवा सायनोजीवाणु कहा जाए। इस जगत के जीव सूक्ष्मजीवी आकृति के रूप में होते हैं। इनका केंद्रक एवं अन्य कोशिकांग आवरण कला-विहीन होते हैं। कोशिकाएं दृढ़ भित्ति-युक्त तथा असीमकेंद्रकी होती हैं। ऐसी सूक्ष्मदर्शी मोनेरियन प्रकार सबसे प्राचीन ठहराई जाती हैं और गहरे समुद्र तल तथा तप्त मरुस्थल, तप्त झरनों और अन्य सूक्ष्मजीवियों के अंदर भी पाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो अपना भोजन प्रकाश अथवा रासायनिक ऊर्जा की सहायता से निर्माण करते हैं जब कि अन्य परपोषी होते हैं और अपने आतिथेयों पर निर्भर करते हैं।

इनमें से कुछ चरम वातावरणों जैसे नमक की उच्च सांद्रता, उच्च तापक्रम, अम्लीय तथा क्षारीय माध्यम में भी उत्तरजीविता (survival) दर्शाते हैं। यह ऑक्सीजन-रहित परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं। इन आकृतियों को सत्य जीवाणुओं (Eubacteria) एवं प्राचीन जीवाणुओं (Archaebacteria) में भी विभाजित किया गया है। प्राचीन जीवाणु, अवायवी जीवन (ऑक्सीजन-रहित श्वसन) करते हैं और पशुओं के आमाशय (rumen) में निवास करते हैं तथा आहार नलिका में सेलुलोस का पाचन करते हैं। यह कार्बन डाईआक्साइड से मीथेन गैस का निर्माण करते हैं।

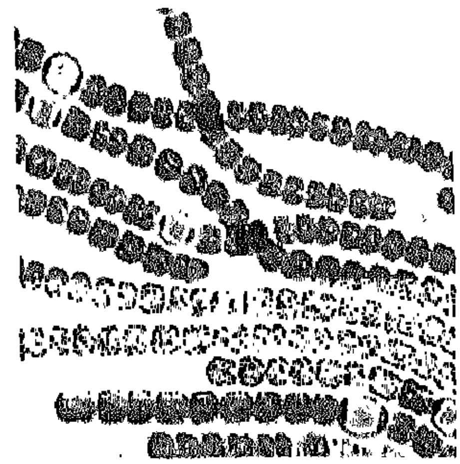
जीवाणु एककोशिक तथा बहुआकारिक होते हैं। यह दंडाकार, गोल अथवा सर्पिल होते हैं। यह द्विखंडन विधि (binary fission) से जनन करते हैं। आप जीवाणुओं के विषय में अधिक ज्ञान अध्याय 9 में प्राप्त कर सकते हैं।

जीवाणु बहुत अच्छे अपघटक भी हैं और पोषकों के पुनर्चक्रण में सहायता प्रदान करते हैं। साथ ही यह दही निर्माण और किण्वन में भी भरपूर योगदान करते हैं। ये डिप्थीरिया, न्यूमोनिया, तपेदिक और कोढ़ जैसे रोग फैलाते हैं। और बहुत-से रोगों के उपचार हेतु प्रतिजीविर्यों के निर्माण में भी प्रयोग किए जाते हैं।

(क)



(ख)

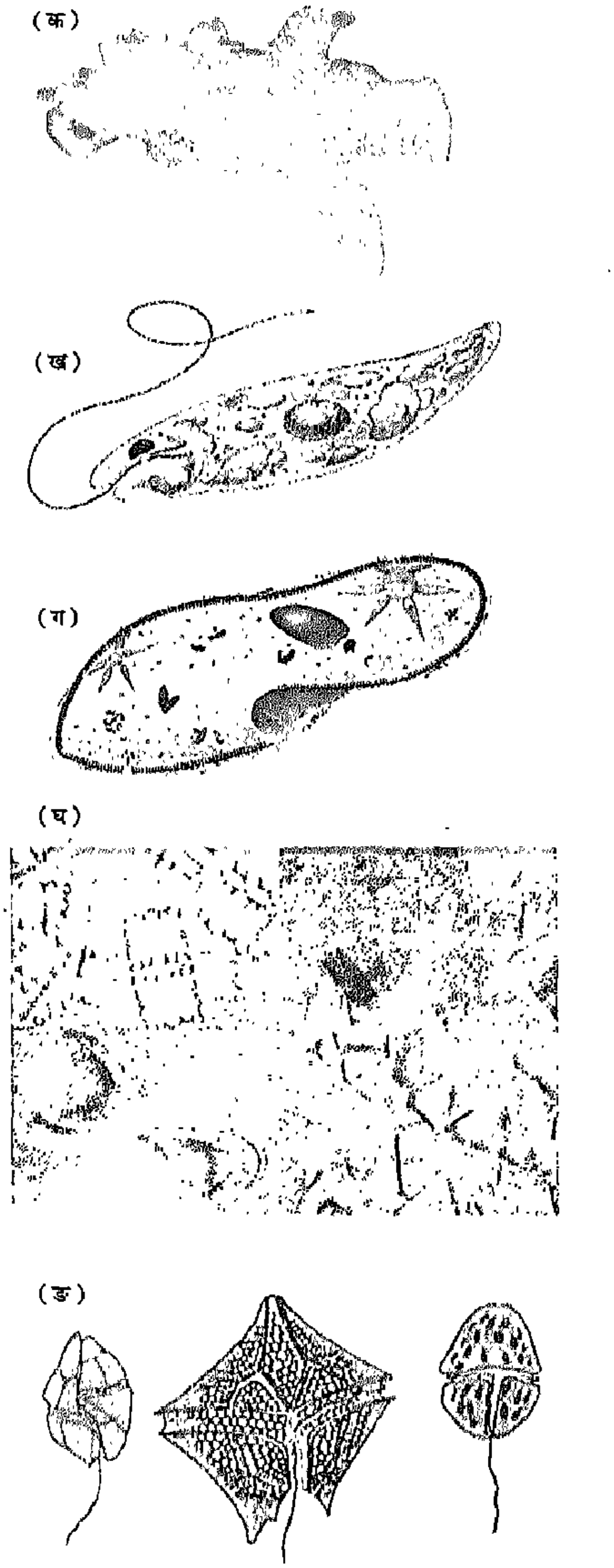


(ग)



चित्र 4.4 मोनेरा जगत के सदस्य *(क) स्पाइरुलिना (ख) नॉस्टोक (ग) आस्सिलेटिरिया*

सायनोजीवाणु कहलाए जाने वाले नील-हरित शैवाल भी मोनेरा के अंतर्गत आते हैं और इनमें एककोशिक स्पाइरुलिना (Spirulina), कालोनीधारी नास्टॉक (Nostoc), तथा तंतुमय ऑस्सिलेटोरिया (Oscillatoria) (चित्र 4.4) सम्मिलित हैं। यह असीमकेंद्रकी तथा प्रकाशसंश्लेषण स्वपोषी जीव हैं।



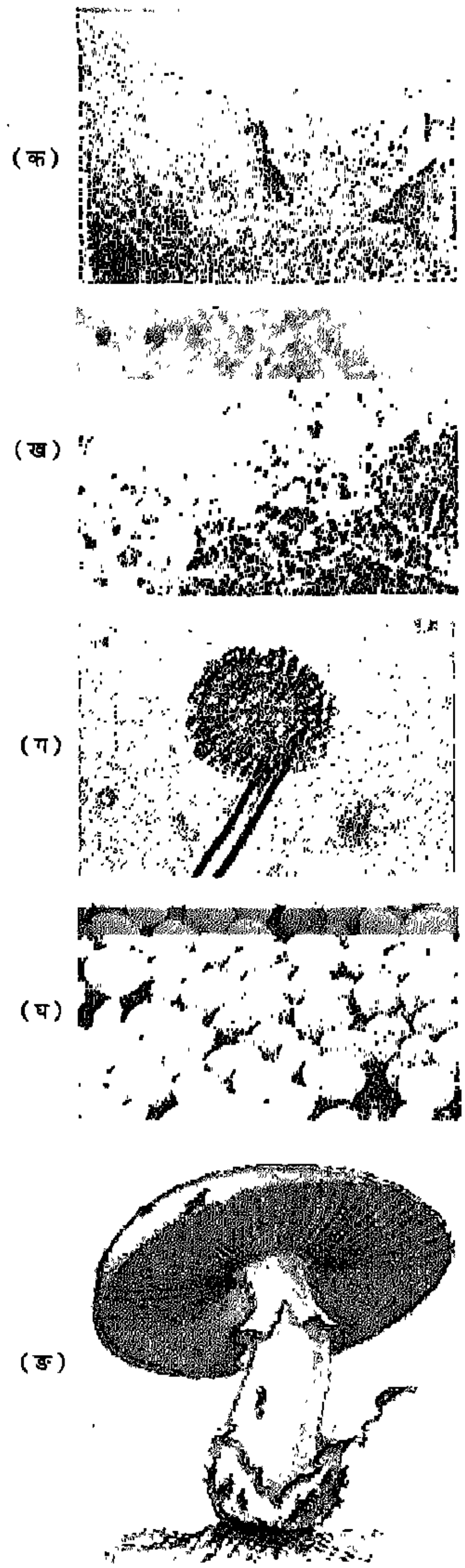
चित्र 4.5 प्रोटिस्टा जगत के सदस्य (क) अमीबा (ख) यूग्लेना (ग) पेरामीसियम (घ) डाएटम (ङ) डाइनाफ्लेगलैटस

प्रोटिस्टा जगत

इस जगत के सदस्य एककोशिक और बहुकोशिक आकृतियां हैं जो प्रायः जलीय आवासों में पाए जाते हैं । इनकी कोशिकाओं में कला-आवरित (membrane-bound) केंद्रक होता है जो ससीमकेंद्रकी स्थिति दर्शाता है, और अपनी गतियों के लिए कशाभिकाएं अथवा पक्ष्माभिकाएं धारण करते हैं (चित्र 4.5)। इनमें *कला-आवरित कोशिकांग जैसे केंद्रक, माइटोकॉन्ड्रिया, प्रद्रव्यीजालिका* और गॉल्जीकाय विद्यमान होते हैं । वे विभिन्न प्रकार के होते हैं जैसे स्वपोषी तथा मृतजीवी (saprobes) । कुछ सदस्य परजीवी जीवन पद्धति भी दर्शाते हैं । प्रकाशसंश्लेषण करने वाले सदस्य जैसे शैवाल एवं डाएटम वर्णक-युक्त होते हैं । यह सूक्ष्मदर्शी जीव पादपप्लवक (phytoplanktons) कहलाते हैं। इस जगत के सदस्यों में जनन अगुणित एककों के अलैंगिक विभाजन तथा ऐसी लैंगिक विधि द्वारा होता है जिसमें दो कोशिकाओं और उनके केंद्रकों का संलय होता हैं ।

पोषण-विधि के आधार पर यह जीव प्रकाशसंश्लेषी शैवाल, अपघटक (अवपंक कवक) एवं परभक्षी प्रोटिस्ट (आदि जीव) हो सकते हैं । ध्यातव्य है कि कुछ प्रोटिस्ट अपने ही जगत के अन्य सदस्यों का भक्षण करते हैं । इस जगत के शैवालों में डाएटम, डाइनोकशाभिकाधारी और यूग्लेना जैसी कई संरचनाएं आती हैं जो कई संघों में समूहित किए जाते हैं। यह स्वपोषी जीव प्रकाश का उपभोग कर प्रकाशसंश्लेषण संपन्न करते हैं । प्रकाश की अनुपस्थिति में यह आदिजीवियों की भांति परपोषियों-सम व्यवहार करते हुए अन्य प्रोटिस्टों को चट कर जाते हैं । इनकी दुहरी आहार-विधि के फलस्वरूप ही इन्हें पादप एवं जंतु दोनों ही जगतों में रखा गया है ।

इस जगत के मृतजीवी सदस्य (अवपंक कवक) कोशिक एवं अकोशिक दोनों ही रूपों में पाए जाते हैं । ये आर्द्र स्थलों में पाए जाते हैं इसके सदस्यों का शरीर कई केंद्रकों युक्त (बहुकेंद्रकी) जीव-द्रव्य के अवपंक पिंड के रूप में होता है। थैलाभ शरीर अमीबा जैसा होता है और प्लेज्मोडियम कहलाता है । इसमें कूटपाद जैसी संरचनाएं होती हैं जो संचलन में सहायता करती हैं साथ ही इनका उपयोग भोजन के कणों के अंतर्ग्रहण में भी किया जाता है । शुष्क परिस्थितियों में, विषम वातावरण से बचाव हेतु इनका शरीर फल-सदृश आकृति बना लेता है । विखंडन, गुणन में सहायता करता है । बीजाणुधानियों में बनने वाले अलैंगिक बीजाणु भी जनन के माध्यम हैं साथ ही यह बीजाणु संगत युग्मकों (compatible gametes) के रूप में भी कार्य करते हैं और संलयन कर युग्मनज का निर्माण करते हैं । प्लेज्मोडियम कही जाने वाली थैलाभ आकृति, द्विगुणित अवस्था का



चित्र 4.6 कवक (क) प्लेस्मोडियम (ख) म्यूकर (ग) ऐस्परजिलस (घ) यीस्ट (ङ) ऐगैरिकस

प्रतिनिधित्व करती है । चूंकि यह कवकों से समानता दर्शाते हैं अतः द्विजगत व्यवस्था में इन्हें पादप-जगत में रखा गया था । इसी प्रकार *अमीबा* एवं मलेरिया ज्वर के परजीवी जैसे आदिजीवियों को जंतु-जगत के प्रभाग आदिजीवी में *पैरामीसियम* के साथ रखा गया था । कोशिका-भित्ति न होने के कारण यह अपना भोजन सीधे ही निगल जाते हैं । जंतु पोषण की यह विधि प्राणि-सभोजी (holozoic) कहलाती है । मलेरिया ज्वर के परजीवी जैसी आकृतियां मानव समेत अन्य जंतुओं में परजीवी की भांति जीवन यापन करती हैं ।

कवक जगत

कवक गलनशील जैव पदार्थ पर आर्द्र एवं गर्म परिस्थितियों में उगते हैं । कवकीय आकृतियां एककोशिक (खमीर अथवा यीस्ट) और बहुकोशिक, जटिल, तंतुमय संरचनाएं कवकजाल (mycelia) है (चित्र 4.6)। कवकजाल आपस में गुंथे, तंतुओं (hyphae) से बनते हैं । इनकी कोशिकाएं सत्यकेंद्रकी होती हैं और इनमें लवकों के अतिरिक्त सभी सामान्य कोशिकांग विद्यमान होते हैं। इनकी कोशिका-भिति सामान्यतः काइटिन (chitin), एक नाइट्रोजन-धारी कार्बोहाइड्रेट की बनी होती है, यह स्थिति पादपों से पूर्णतः भिन्न है जिनमें कोशिका-भिति सेलुलोस की बनी होती है । कुछ कवकों में भी कोशिका-भिति में सेलुलोस विद्यमान होती हैं । यह अपघटित, घुलनशील जैविक पदार्थ का अवशोषण करते हैं । भोजन ग्रहण करने की यह विधि मृतजीवी पोषण और यह सदस्य मृतजीवी (saprobes) कहलाते हैं । कुछ सदस्य परजीवी भी होते हैं । यह पादपों और जंतुओं के मृत शरीरों के जैविक पदार्थ अपघटन द्वारा खनिजों के पुनर्चक्रण (recycling) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं ।

कवक-जाल के विखंडन द्वारा जिसमें प्रत्येक खंड एक नए कवक-जाल के रूप में वृद्धि करता है, ये जुस्पोरों (zoospores); गोनिडिया (gonidia), कोनिडिया (conidia), एस्कोबीजाणुओं (ascospores) तथा बेसिडियोबीजाणुओं (basidiospores) द्वारा अलैंगिक जनन करते हैं । लैंगिक जनन में समान, समयुग्मता (isogamy) अथवा युग्मकों का संलग्न विषमयुग्मता (oogamy) होता है । कवक तंतु के आकार, पोषण एवं जनन-विधियों के आधार पर कवकों को कई वर्गों में समूहित किया गया है ।

फाइकोमाइसिटीज (Phycomycetes) पानी में क्षय हुई पत्तियों और आर्द्र स्थलों पर तथा परजीवी के रूप में पाए जाते हैं । इनमें बहुकेंद्रकी (coenocytic) एवं पट्टिका-विहीन (aseptate) कवक जाल होता हैं। अलैंगिक जनन कशाभिकाधारी चलबीजाणुओं (zoospores) और कशाभिका-विहीन बीजाणुओं (aplanospores)

द्वारा होता है। दोनों ही प्रकार के जीवाणु, जीवाणुधानियों में उत्पन्न होते हैं। लैंगिक जनन समान अथवा असमान युग्मकों द्वारा होता है इसके सामान्य सदस्य सेप्रोलेग्निया (Saprolegnia), म्यूकर (Mucor) एवं एल्ब्यूगो (Albugo) (चित्र 4.6 ख) हैं।

एस्कोमाइसिटीज (Ascomycetes) एककोशिक तथा बहुकोशिक कवक होते हैं। बहुकोशिक सदस्यों में कवक-जाल पट्टिकामय होता है। शृंखलाओं में बनने वाले अलैंगिक बीजाणु कोनिडिया कहलाते हैं। इनका निर्माण बाह्यरूप में, बीजाणुओं के बाहर की ओर होता है। जनक से अलग होकर वे नए कवक-जाल का निर्माण करते हैं। लैंगिक जनन ऐस्कोबीजाणुओं के माध्यम से होता है जो आंतरिक रूप से कवक-जाल के अंदर की ओर एक थैला-सदृश संरचना एस्कस में बनते हैं। लैंगिक-जनन से संबद्ध युग्मक अचल और संगत होते हैं तथा + एवं - के रूप में इंगित किए जाते हैं। युग्मकों के संलयन के उपरांत अर्द्धसूत्री विभाजन होता हैं जिसके फलस्वरूप अगुणित ऐस्कोबीजाणु बनते हैं इनका जननांग (fruiting body), प्यालानुमा होता है जिसमें बीजाणुधारी संरचनाएं एस्काई (Asci) विद्यमान होते हैं। यीस्ट, पेनिसीलियम (Penicillium), ऐस्परजिलस (Aspergillus) एवं क्लेविसेप्स (Claviceps) इस समूह के सामान्य सदस्य हैं (चित्र 4.6 ग-घ)।

बेसिडियोमाइसिटीज (Basidiomycetes) को कवक-जाल के सिरे पर मुद्गराकार संरचना, **बेसिडियम** के विद्यमान होने के कारण यह नाम दिया गया है। इनमें पट्टिका-युक्त, बहुकेंद्रकी कवक-जाल होता है। इनके लैंगिक बीजाणु, बेसिडियोबीजाणु होते हैं और इनकी संख्या चार होती है। यह शरीर के बाहर की ओर (exogenous) निर्मित होता है। यह स्थिति एस्कोमाइसिटीज से भिन्न है जहां यह आंतरिक रूप से बनते हैं। दो संगत केंद्रक संलयित होकर युग्मज (Zygote) का निर्माण करते हैं। इसमें अर्द्धसूत्री विभाजन होता है और चार बेसिडियोबीजाणुओं (basidiospores) का निर्माण होता है। इनका बेसिडियाधारी अंग बहुकोशिक होता है, जिसे **बेसिडियोकार्प** (Basidiocarp) कहते हैं। खाद्य छत्रक (edible mushrooms) ऐगेरिकस (Agaricus) कंद (smut) एवं किट्ट (rust), इस समूह के सामान्य सदस्य हैं (चित्र 4.6 ङ)।

पादप जगत

इस जगत में उन शैवालों जैसे कि डाइएटमो; डाइनोकशाभिकाधारियों एवं कवकों को छोड़कर जो मोनेरा, प्रोटिस्टा एवं कवक जगतों में रखे गए हैं, वे सभी जीव आते हैं, जिन्हें हम पादप कहते हैं। यह प्रकाशसंश्लेषी, बहुकोशिक संरचनाएं हैं जो हरित पादप कहलाते हैं इनमें लाल, भूरे एवं हरे शैवाल, मॉस, पर्णांग, नग्नबीजी एवं पुष्पी पादप आते हैं। अन्य जगतों के सदस्यों से भिन्न इनकी कोशिकाओं की भित्तियां दृढ़, सेलुलोसधारी होती हैं, जिससे यह संकुचित नहीं हो सकती। साथ ही एककोशिक प्रोटिस्टों एवं जंतुओं की भांति इनमें संचलन नहीं पाया जाता।

सारिणी 4.2 पांच जगतों के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण

जगत	महत्त्वपूर्ण लक्षण	सदस्य
मोनेरा	एककोशिक, असीमकेंद्रकी, स्वपोषी पोषण विधि, अलैंगिक जनन, सूत्री विभाजन	आदिजीवाणु (प्राचीन जीवाणु), सत्यजीवाणु सायनो जीवाणु अथवा नील-हरित शैवाल.
प्रोटिस्टा	एककोशिक, ससीमकेंद्रकी, जलीय, स्व-एवं परपोषी पोषण फफूंदी विधि, अलैंगिक जनन, सूत्री विभाजन द्वारा, लैंगिक जनन कोशिकाओं के संलयन द्वारा	प्रोटोजोआ, अवपंक कवक (फफूंदी)
कवक	बहुकोशिक, सत्यकेंद्रकी, कूट ऊतक सत्यऊतक उपस्थित नहीं काइटिन-निर्मित कोशिका-भित्ति, परपोषी (परजीवी), अथवा मृतजीवी पोषण-विधि (अवशोषण द्वारा) अलैंगिक एवं लैंगिक जनन क्रमशः बीजाणुओं एवं युग्मकों द्वारा	(पाव) डबलरोटी की फफूंदी, यीस्ट (खमीर) छत्रक और जल कवक
पादप	बहुकोशिक, अचल संरचनाएं, ससीमकेंद्रकी, सेलुलोस निर्मित कोशिका-भित्ति, भली-भांति विकसित ऊतक, प्रकाशसंश्लेषी-स्वपोषी जीवन पद्धति गुणन द्वारा, अलैंगिक जनन, स्पष्ट लैंगिक अंग, जीवन-चक्र में पीढ़ी-एकांतरण पाया जाता है	ब्रायोफाइट (मॉस, लिवरवर्ट), टेरिडोफाइट (फर्न) नग्नबीजी (शंकुधारी), पुष्पी पादप
प्राणी	बहुकोशिक, सचल आकृतियां, ससीमकेंद्रकी भली-भांति विकसित सरीसृप, ऊतक, परपोषी पोषण-विधि, स्पष्ट लैंगिक अंगों द्वारा लैंगिक जनन नियंत्रण एवं समन्वय तंत्र विद्यमान, लाक्षणिक भ्रूण वृद्धि	स्पंज, कीड़े, कीट, मोलस्क, मत्स्य, उभयचर, पक्षी एवं स्तनपोषी

आप प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया से पूर्व में ही परिचित हैं जिसके द्वारा ही पादप जल, खनिजों और कार्बन डाईऑक्साइड का उपयोग कर पर्णहरित (chlorophyll) नामक हरे वर्णक और सौर ऊर्जा की सहायता से अपने भोजन का संश्लेषण स्वयं करते हैं। अतः उन्हें पारिस्थितिकी के संदर्भ में प्रकाशस्वपोषी (photoautotrophs) और उत्पादक कहा जाता है। वे उपभोक्ताओं, विशेषतः जंतुओं को भोजन प्रदान करते हैं। इस प्रकार समस्त जीवन, भोजन, ऑक्सीजन और ऊर्जा जैसे आवश्यक घटकों के लिए पादपों पर निर्भर हैं। लेकिन इस जगत में कुछ ऐसे सदस्य भी विद्यमान हैं जो परपोषी एवं परजीवी पोषण पद्धति दर्शाते हैं जबकि कीटभक्षी जैसे ब्लेडरवर्ट (bladderwort) एवं वीनस फ्लाई ट्रेप (Venus fly trap), कीटों का भक्षण करते हैं, सामान्यतः इस समूह के पादपों में जीवन-चक्र दो अवस्थाओं में पूरा होता है – युग्मकोद्भिद (gametophytic) एवं बीजाणोद्भिद् (sporophytic), जो एक दूसरे से एकांतर क्रम में आते हैं। यह परिघटना संततियों का एकांतरण (alternation of generations) कहलाती है। इस जगत को कई समूहों में विभाजित किया गया है जिनके बारे में आप विस्तार से अध्याय 5 में अध्ययन करेंगे।

जंतु जगत

इस जगत में प्रोटोजोआओं को छोड़कर (जिन्हें प्रोटिस्टा जगत में स्थानांतरित कर दिया गया है) शेष सभी जंतु आते हैं। इसके सदस्य बहुकोशिक ससीमकेंद्रकी हैं और कोशिकाएं भित्ति-विहीन होती हैं। वे परपोषी पोषण-विधि दर्शाते हैं जो प्राणी समभोजी (holozoic) भी कहलाती हैं। यह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन संबंधी के लिए परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से पादपों पर निर्भर करते हैं। इनमें भली-भांति विकसित नियंत्रण और समन्वयन प्रक्रिया विद्यमान होती हैं। यह अधिकांशतः स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं, कुछ परजीवी (दूसरों पर निर्भर) और अन्य जीवों के साथ निवास कर उभयलाभकारी विधि से भी जीवन-यापन करते हैं। इस जगत के सदस्य अन्य जगतों की तुलना में कहीं अधिक विविधता दर्शाते हैं। और आकारिकी, कार्यिकी एवं पारिस्थितिक बिंदुओं के आधार पर आगे इन्हें कई प्रभागों में बांटा गया है विभिन्न प्रभागों के महत्वपूर्ण लक्षणों का वर्णन अध्याय 6 में किया गया है।

4.8 वर्गीकरण विज्ञान में सहायक उपकरण

विभिन्न जातियों की पहचान के लिए प्रयोगशाला के अंदर एवं बाह्य, दोनों ही प्रकार के अध्ययन आवश्यक हैं। फलतः वास्तविक प्रदर्शों के एकत्र संरक्षित एवं भंडारण कर यदि आवश्यक हो तो बाद में सत्यापन किया जाता है इससे जातियों की पहचान और उनको वर्गीकरण के श्रेणीबद्ध संगठन में रखने में सहायता मिलती है। वर्गीकरण संबंधी अध्ययनों में सहायता हेतु हर्बेरिया (Herbaria) एवं संग्रहालय जैसे कई सहायक उपकरण हैं। आइए हम इनमें से कुछ का अध्ययन करें।

हर्बेरियम

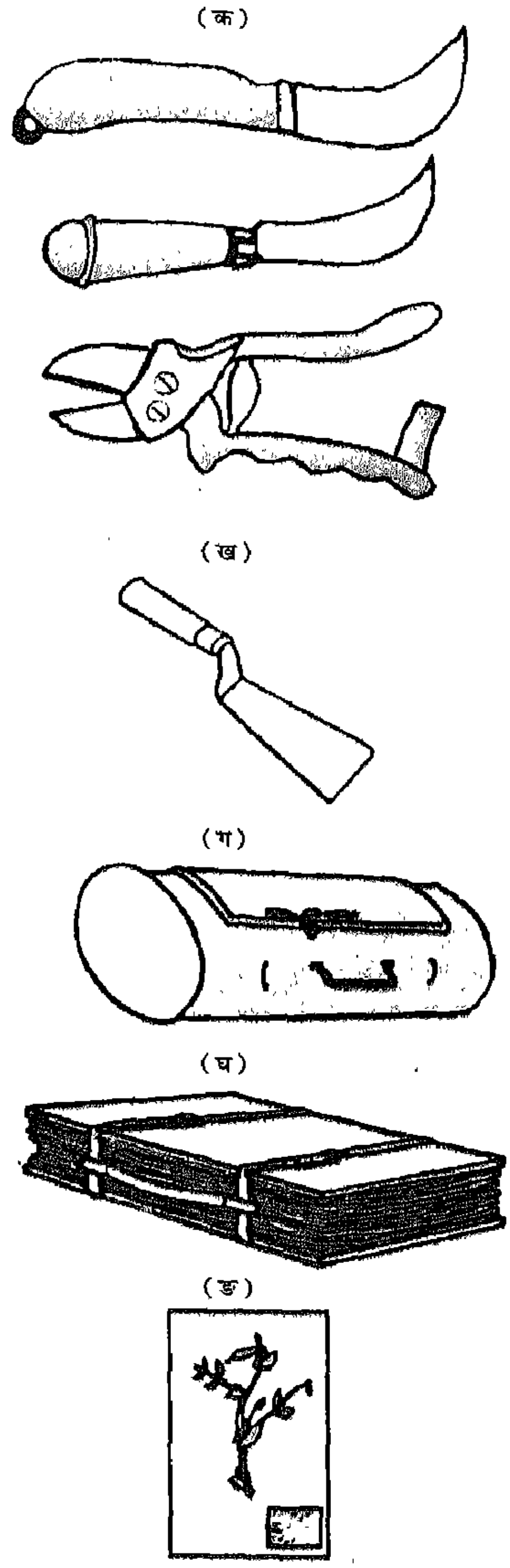
यह ऐसा स्थल जहां पादपों का कागज के चद्दर अथवा पत्तर (Sheet) पर सुखा, दबा और संरक्षित कर एकत्रण किया जाता है। इन चद्दरों को किसी मान्य वर्गीकरण पद्धति के अनुरूप व्यवस्थित किया जाता है। इस प्रकार का रखरखाव भविष्य के उपयोग के लिए एक भंडार का कार्य करता है। यह ऐसे लोगों के लिए जो वर्गिकी संबंधी अध्ययन में अभिरुचि रखते हैं, संदर्भ-तंत्र के रूप में अत्यंत उपयोगी है। हर्बेरियम के निर्माण में कई चरण सम्मिलित होते हैं जैसा कि नीचे वर्णन किया गया है।

प्रदर्शों को एकत्र करने के लिए नियमित क्षेत्रीय भ्रमण अत्यंत आवश्यक हैं जिससे कि हम क्षेत्र, आवास, ऋतु और संग्रह काल संबंधी सूचनाएं प्राप्त कर सकें। यह क्षेत्रीय भ्रमण हमें पर्यावरण की परिस्थितियों, क्षेत्र पर मानवीय प्रभाव और अन्य सामान्य सूचनाएं, पुराने अभिलेखों, मानचित्रों तथा अन्य स्रोतों द्वारा एकत्र करने में सहायक होता है। प्रदर्शों अथवा उनके भागों के संग्रह के लिए हमें कुछ सरल उपकरण ही ले जाने होते हैं (चित्र 4.7)। किसी पादप के विभिन्न अंग उसकी पहचान के लिए अत्यंत उपयोगी होते हैं। खेतों में जड़ें खोदने के लिए एक खुरपी की आवश्यकता होती है, कैंची और चाकू से हम शाखाएं एवं काष्ठिल उपशाखाएं काटते हैं और एक अंकुश लगे लग्गे से ऊंचे वृक्षों के भाग एकत्र किए जाते हैं। वास्कुलम (Vasculum) नामक एक छोटे लोहे के बक्से में इन प्रदर्शों को नमी के ह्रास से रोकने अथवा उनके सूखने और सिकुड़कर मुड़ने से बचाने के लिए रखा जाता है। इसके अतिरिक्त पॉलीथीन की थैलियों को भी प्रदर्शों को ले जाने के लिए प्रयोग किया जाता है। वर्गिकी के विद्यार्थी प्रत्येक प्रकार के लक्षणों एवं विविध संरचनाओं के अभिलेखन के लिए अपने साथ एक क्षेत्र पुस्तिका (Field notebook) भी रखते हैं जिससे कि मात्र स्मरण शक्ति पर निर्भरता न रहे। यह सुनिश्चित करने के लिए कि शाकों के पादप प्रदर्शों में कायिक एवं जनन दोनों ही भाग उपलब्ध और संरक्षित हो जाएं, उचित ध्यान रखना आवश्यक होता है। जबकि क्षुपों और वृक्षों से पत्तियां, पुष्पक्रम एवं पुष्पधारी शाखाएं एकत्र की जाती हैं। प्रायः अलग-अलग प्रदर्शों की पर्याप्त संख्या (5-6) एकत्र करनी वांछनीय होती है ताकि संवाहन और संरक्षण के मध्य होने वाली किसी भी प्रकार की क्षति से बचा जा सके। इन्हें प्रदर्शों को दी गई संग्रह संख्याओं, जिन्हें क्षेत्र संख्याएं (field numbers) कहते हैं, द्वारा संदर्भित किया जाता है।

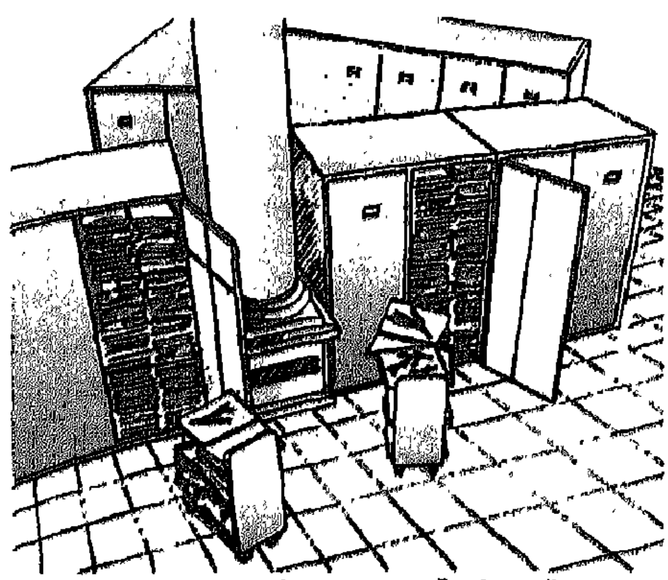
प्रदर्शों को शीघ्र से शीघ्र फैलाया जाता है और सूखने के लिए उन्हें पुराने अखबारों में रखा जाता है । समय-समय पर इन कागजों को बदलना आवश्यक है क्योंकि प्रदर्शों से सतत् नमी का ह्रास होता है और उसके फलस्वरूप बहुत-से कवक वृद्धि प्रारंभ कर देते हैं । पूरे प्रदर्शों को पादप दाब में दबाकर सुखाया जाता है । यह कार्डबोर्ड के दो तख्तों का बना होता है जिनके बीच एक फीता लगा रहता है। फीते का प्रयोग अखबार के पन्नों और प्रदर्शों को तख्तों के साथ भली-भांति बांधने के लिए किया जाता है । बड़े प्रदर्शों को छोटे-छोटे भागों में न काटकर इन्हें सामान्यतः अंग्रेजी के अक्षर n अथवा w की आकृति में मोड़कर रखा जाता है । कुछ पत्तियों को तो पृष्ठ सतह (dorsal surface) और अन्य को अभ्यक्ष सतह (Ventral surface) प्रदर्शित करने के लिए फैलाया जाता है।

सूखे हुए प्रदर्श मानक आकार की हर्बेरियम पत्तर में चिपकाए जाते हैं । इस पत्तर का आकार 29 × 41 से.मी. होता है । सभी चिपकाए प्रदर्शों को 0.1प्रतिशत मरक्यूरिक क्लोराइड के कवकनाशी घोल अथवा DDT जैसे कीटनाशकों तथा नेप्थेलीन एवं कार्बन डाइसल्फाइड द्वारा कवकों की वृद्धि रोकने के लिए छिड़का जाता है । पादपों के भारी भागों जैसे बीज, फल आदि को एक पैकिट में बंद कर इस पत्तर से चिपका दिया जाता है।

यह आवश्यक है कि प्रत्येक हर्बेरियम शीट को संकेतित किया जाए जिसमें उसके एकत्रण का स्थान/क्षेत्र, एकत्र करने वाले का नाम, तिथि एवं समय, सामान्य अंग्रेजी नाम, देशी भाषा का नाम और जाति का वानस्पतिक नाम तथा इसके लेखक का नाम अंकित होना चाहिए । पूर्व में पहचानी गयी जातियों के संदर्भ में कुल और वंश का नाम भी दिया जाता है ।



चित्र 4.7 पौधों को एकत्रण एवं सुरक्षित रखने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले यंत्र (क) कर्त्तक (ख) खुरपी (ग) वास्कुलम (घ) पादप प्रैस (ङ) हर्बेरियम की पत्तर



चित्र 4.8 भंडारण किए हुए प्रतिदर्शों सहित हर्बेरियम

इन चद्दरों को किसी विशिष्ट वर्गीकरण पद्धति के अनुसार जहां तक संभव हो धातु की अलमारी में भंडारित किया जाता है (चित्र 4.8) । पूरे के पूरे क्षेत्र को कीटों एवं अन्य पीड़कों के नियंत्रण हेतु विसंक्रमित किया जाता है और कवक वृद्धि रोकने के लिए आर्द्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है । विभिन्न प्रदर्शों के संबंध में सूचना को समायोजित कर एक पुस्तक, वनस्पति-समूह (flora) के रूप में प्रदर्शित किया जाता है, जो एक क्षेत्र-विशेष, देश अथवा महाद्वीप की संपूर्ण पादप जातियों और उनके संबंध में सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत करती है । इस क्रम में हमारे देश में फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया, फ्लोरा ऑफ देहली, फ्लोरा सिमलेंसिस आदि उपलब्ध हैं ।

वानस्पतिक उद्यान

यह जीवंत पादपों के ऐसे समूह हैं जो संदर्भ के लिए स्थापित किए जाते हैं । इनमें उगाई जाने वाली पादप जातियों को पहचान तथा वर्गीकरण के लिए प्रयोग किया जाता है। यह संदर्भ की दृष्टि से एक प्राकृतिक तथा मितव्ययी पद्धति मानी जाती है। यदि आप भारतीय वानस्पतिक उद्यान (Indian Botanical Garden), हावड़ा, राष्ट्रीय वानस्पतिक शोध संस्थान (National Botanical Research Institute, NBRI), लखनऊ तथा अन्य वानस्पतिक उद्यानों को देखने जाएं तो पाएंगे कि प्रत्येक पादप पर उसका वैज्ञानिक नाम तथा कुल दर्शाने वाला संकेतक लगा हुआ है।

संग्रहालय

यह पादप तथा जंतुओं के अध्ययन एवं संदर्भ हेतु संरक्षित संचय है । प्रदर्शों का संग्रह किसी क्षेत्र-विशेष के आवास, मृदा एवं जीवों के बारे में प्रत्यक्ष सूचना एकत्र करने में सहायक होता है और इन्हें शैवाल, कवक, मॉस, पर्णाभ, नग्नबीजियों के भाग संरक्षित रखने के लिए स्थापित किया जाता है क्योंकि इन्हें हर्बेरियम में रखना संभव नहीं होता। जंतुओं को भी संग्रहालय में संरक्षित रखा जाता है। प्रदर्शों को रसायनों में रखकर लंबी अवधि के लिए स्थायीकृत कर रखा जाता है। साथ ही इन्हें सही-सही पहचान और संकेतित कर भंडारण और सूचीबद्ध किया जाता है ताकि भविष्य में भी इनको संदर्भित किया जा सके। संग्रहालय निर्माण की समस्त प्रकिया का उद्देश्य सूचना अभिलेखन तथा वर्गीकरण के अध्ययन के लिए प्रदर्शों का संरक्षण है और इस हेतु जंतुओं को अनावश्यक रूप में मारा अथवा नष्ट नहीं किया जाता । आजकल स्कूल एवं पूर्वस्नातक कक्षाओं के विद्यार्थियों को जंतुओं के संग्रह के लिए उत्साहित नहीं किया जाता लेकिन जीवविज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण आप मरे हुए जंतुओं जैसे सांप, मछलियां, मौलस्क, कीट एवं अन्य को एकत्र और संरक्षित कर सकते हैं । साथ ही हमें जीवों को भली-भांति समझने हेतु उनके लक्षण, पहचान, नामकरण एवं वर्गीकरण संबंधी आंखों देखा ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता को भी पूरी तरह स्वीकार करना चाहिए।

जंतु उद्यान

यह वन्य पशुओं की भोजन संबंधी आदतें और व्यवहार आदि का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होते हैं। क्योंकि इनमें जंतुओं को प्राकृतिक आवास के अधिकाधिक समकक्ष परिस्थितियों में रखा जाता है, फलतः सभी लोग विशेषतः इनमें आने वाले बच्चे विविध प्रकार के जीवों को देखकर अत्यंत उत्साहित होते हैं । ऐसे उद्यान का वैज्ञानिक उद्देश्य उन जीवों का प्रजनन करना भी है जो अपने प्राकृतिक आवास के ह्रास के कारण संकटापन्न स्थिति में पहुंच रहे हैं । जैसा कि आप जानते हैं कि विविध जंतुओं का अनाधिकार शिकार और विकास संबंधी अभिक्रियाओं के फलस्वरूप आवासों को विनाश भी सहन करना पड़ रहा है। जंतु उद्यानों में सामान्य तथा वैज्ञानिक नाम संबंधी सूचना भी प्रदर्शित रहती है।

कुंजियां

पादपों एवं जंतुओं को पहचानने की रूपरेखा कुंजी (Key) है। वर्गिकी की कुंजियां विपरीत लक्षणों पर आधारित होती हैं। कुल, वंश और जाति जैसी वर्गिकी की प्रत्येक श्रेणी हेतु अलग-अलग वर्गिकी की कुंजियों की आवश्यकता होती है। यह अज्ञात जीवों की पहचान हेतु अधिक उपयोगी होती हैं। प्रकृति से विश्लेषणात्मक होने के कारण सामान्यतः यह दो प्रकार की होती हैं : (क) द्विशाखित (Yorked) अथवा दोहरे प्रलेखधारी (Indented), (ख) कोष्टकी (Bracketed)।

द्विशाखित कुंजी जातियों के अभिलक्षणों के दो अथवा अधिक कथनों के क्रम के बीच चयनों को प्रस्तुत करती है। यहां प्रयोगकर्ता को पहचानने के लिए सही लक्षण का चयन करना होता है । हम रेननकुलेसी (ranunculaceae) कुल के वंशों की पहचान निम्न द्विशाखित कुंजी का प्रयोग करते हुए कर सकते हैं । जिसमें जातियों के अंडप (carpel) और फलों के लक्षणों को संज्ञान में लिया गया है। इस क्रम में प्रथम चयन एक बीजांडधारी अंडप और ऐकीन प्रकार के फल से प्रारंभ होता है जिसके विपरीत बहुबीजांडधारी अंडप और फॉलिकिल फलों को रखा गया है।

द्विशाखित कुंजी

लक्षण	वंश
अंडप एक बीजांडधारी, फल ऐकीन	
पत्तियां सम्मुख, संयुक्त दल अनुपस्थित, पत्तियां प्रतान-विहीन	*क्लीमेटिस*
दल उपस्थित, तीसरा अथवा शीर्ष पर्णक प्रतान में रूपांतरित	*नारावेलिया*
पत्तियां एकांतर अथवा मूलज	*एनीमोन*
अंडप बहुबीजांडधारी; फल फालिकिल	
अंडप आधार पर संयोजित; पुष्प नियमित	*नाइजैला*
अंडप आधार पर अलग्न; पुष्प अनियमित	*ऐकोनिटम*

कोष्टकधारी कुंजी

लक्षण	वंश
(1) अंडप एक बीजांडयुक्त; फल ऐकीन ———	2
(1) अंडप कई बीजांडोंयुक्त; फल फॉलिकिल ———	4
(2) पत्तियां सम्मुख; संयुक्त ———	3
(2) पत्तियां एकांतर; मूलजाभासी ———	*एनीमोन*
(3) दल विद्यमान नहीं; पत्तियां प्रतानविहीन ———	*क्लीमेटिस*
(3) बाह्यदलों की संख्या दलों के समान; तृतीय अथवा शीर्ष पत्ती प्रतान में रूपांतरित	*नारावेलिया*
(4) अंडप आधार पर संयोजित; पुष्प नियमित ———	*नाइजैलला*
(4) अंडप मुक्त; पुष्प अनियमित ———	*ऐकोनिटम*

कोष्टकधारी कुंजी *में विपरीत कथनों के युग्मों का उपयोग पहचान के लिए किया जाता है सीधी ओर दी हुई संख्या विपरीत कथनों के युग्मों के अगले चयन को इंगित करती है ।*

जंतुओं की पहचान करने के लिए भी कुंजिया प्रयोग की जाती हैं । आइए हम मछली, मेंढक, सांप, पक्षी, चमगादड़ और बिल्ली की पहचान नीचे दी गई कुंजी का प्रयोग करते हुए करें । प्रत्येक समूह के लिए विभेद्य लक्षणों को अभिलेखित किया जाता है, तत्पश्चात मात्र एक उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न निर्मित किए जाते हैं जो 'हां' अथवा 'नहीं' में उत्तर प्रदान करते हैं ।

1.	क्या इसके बाह्य कान होते है ?	हां	तो संख्या दो पर बढ़िए
		नहीं	तो संख्या तीन पर बढ़िए
2.	क्या यह उड़ता/उड़ती है ?	हां	चमगादड़
		नहीं	बिल्ली
3.	क्या यह उड़ता/उड़ती है ?	हां	पक्षी
		नहीं	तो संख्या चार पर बढ़िए
4.	क्या इसमें पाद विद्यमान होते हैं ?	हां	मेंढक
		नहीं	तो संख्या पांच पर बढ़िए
5.	क्या इसमें गिल विद्यमान होते हैं ?	हां	मत्स्य (मछली)
		नहीं	सर्प

वर्गीकरण में अन्य उपयोगी आलेख प्रबंध अथवा मोनोग्राफ होते हैं । जिनमें किसी विशेष कुल अथवा वंश का उस समय उपलब्ध संपूर्ण विवरण एकत्रित रहता है । नियमावली (manuals) में किसी क्षेत्र के संबंध में सूचना, कुलों, वंशों एवं जातियों का वर्णन दिया जाता है । कोश एवं पत्रिकाएं जैसे प्रकाशन नई एवं अद्यतन सूचना प्रदान करने के माध्यम हैं ।

सारांश

आकार, रूपरेखा एवं संरचना की दृष्टि से असंख्य विविधता-धारी लाखों सजीव जीव इस पृथ्वी पर विद्यमान हैं । यह विविध आवासों में पाए जाते हैं । प्रत्येक जीव को स्मरण रखना और उसका वर्णन करना कठिन है । वर्गीकरण-विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जो जीवों की पहचान, नामकरण एवं वर्गीकरण से संबंध रखती है । यह लक्षणों के अध्ययन और विकास के संदर्भ में उनके संबंधों पर आधारित है । वर्गिकी में भी यही कार्य समाहित है । इस प्रकार दोनों पारिभाषिक शब्द पर्यायवाची हैं । वर्गिकी के अध्ययन में प्रयोग किए जाने वाले लक्षण, आकारिकी, कोशिका-विज्ञान, कार्यिकी तथा पारिस्थितिकी हैं । वर्गीकरण-विज्ञान, अपने व्यावहारिक पक्षों समेत, जीवविज्ञानियों के लिए ही नहीं वरन् आयुर्विज्ञान, कृषि, वानिकी एवं उद्योगों में भी उपयोगी है।

वर्गिकी की प्रारंभिक पद्धतियां एक अथवा कुछ लक्षणों पर आधारित थीं। शनैः शनैः वर्गीकरण के आधार पर प्राकृतिक संबंध बनते गए । डार्विन के विकास के सिद्धांत के प्रकाशन के उपरांत वर्गीकरण जातिवृत्तीय संबंधों पर निर्धारित होने लगा । अब कोशिका की संरचना, गुणसूत्र एवं रासायनिक संघटन पर आधारित सूचनाएं इस प्रकार के संबंधों को स्थापित करने में सहायता प्रदान कर रही हैं । साथ ही जीवों के लक्षणों को बड़ी संख्या पर आधारित सूचना का संगणकों की सहायता से सर्वेक्षण एवं आकलन, विकास के क्रम में संबंधों को स्थापित करने में सहायक सिद्ध होते हैं ।

पादपों एवं जंतुओं की पहचान के लिए नाम दिए जाते हैं । स्थानीय भाषाओं में सामान्य नाम देने की रीति भ्रम उत्पन्न करती है । अतः वर्गिकीविदों ने जीवों को विश्वस्तर पर स्वीकृत नाम देना प्रारंभ कर दिया । नामकरण की द्विनाम पद्धति के अनुसार किसी जीव का नाम दो शब्दों से मिलकर बनता है । इनमें से प्रथम तो वंश तथा द्वितीय जाति का बोधक है । द्विजगत वर्गीकरण पद्धति में जीव, पादप अथवा जंतु जगत में रखे जाते हैं जब कि पांच जगत वर्गीकरण पद्धति में मोनेरा जगत के अंतर्गत एककोशिक जीवाणु एवं सायनोजीवाणु और नील-हरित शैवाल आते हैं । इनमें से कुछ चरम वातावरणों में भी जीवित रह सकते हैं और कई अपघटकों की भूमिका निर्वहन कर पुनर्चक्रण में सहयोग करते हैं । प्रोटिस्टा जगत के सदस्य ऐसे जीव हैं जो जलीय आवासों में पाए जाते हैं । इनमें स्वजीवी, परजीवी एवं मृतजीवी सम्मिलित हैं । कवक जगत में हरीतिमा-विहीन, ससीमकेंद्रकी कोशिकाधारी एक एवं बहुकोशिक जीव आते हैं । यह तंतुमय जीव हैं जो मृतजीवी पोषण विधि दर्शाते हैं और अपघटकों के रूप में कार्य कर खनिजों के पुनर्चक्रण में सहायता करते हैं । पादप जगत में सभी बहुकोशिक, प्रकाशसंश्लेषी और ससीमकेंद्रकी संरचनाएं समाहित हैं जिनमें जल, खनिज एवं विलेयों के अवशोषण एवं संवहन हेतु भली-भांति स्थापित विधियां विद्यमान होती हैं ।

जंतु, पांचवा जगत निर्माण करते हैं जिसमें बहुकोशिक, ससीमकेंद्रकी तथा परपोषी पोषण विधि का प्रतिनिधित्व करने वाले जीव आते हैं । इनमें से कुछ तो परजीवी जीवन व्यतीत करने वाले हैं और कुछ आपसी सहयोग की जीवन पद्धति अपनाते हैं । यह सभी जटिल जीव हैं जिनमें भली-भांति संगठित अंग-तंत्र पाए जाते हैं ।

हर्बेरिया, वानस्पतिक उद्यान, संग्रहालय एवं प्राणी उद्यान, वर्गिकी के अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी सूचना के भंडार हैं । हर्बेरियम ऐसे पादप प्रदर्शों के स्थायी अभिलेख हैं जो एकत्रित, संरक्षित, अभिज्ञानित एवं वर्गीकृत किए जा चुके हैं । वानस्पतिक उद्यान, सजीव पादपों के ऐसे भंडार हैं जो वर्गीकरण-विज्ञान के अध्ययन में उपयोग किया जाता है । संग्रहालय तथा प्राणी उद्यान भी जंतुओं के अध्ययन में सहायता करते हैं । कुंजियां पहचान करने में प्रयोग की जाने वाली विधियां हैं । यह विपरीत लक्षणों के आधार पर निर्मित की जाती हैं ।

अभ्यास

1. वर्गीकरण विज्ञान, जीव विज्ञान की अन्य शाखाओं के लिए किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है ?
2. वर्गीकरण विज्ञान की उपयोगिता की व्याख्या कीजिए ।
3. कोशिकावर्गिकी एवं रसायनवर्गिकी में भेद दर्शाइए ।
4. संख्यात्मक वर्गिकी, वर्गिकी के परिप्रेक्ष में कहीं अधिक विश्वसनीय एवं स्थायी सूचना प्रदान कर सकती है, विवेचन कीजिए ।
5. पादपों के वर्गीकरण में रासायनिक सूचना के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए ।

6. कोशिकावर्गिकी के अध्ययनों में प्रयोग होने वाले लक्षणों को इंगित कीजिए ।
7. लिनिअस द्वारा रचित दो महत्वपूर्ण पुस्तकों के नाम बताइए ।
8. लिनिअस की वर्गीकरण पद्धति को कृत्रिम वर्गीकरण क्यों कहा गया था ?
9. प्राकृतिक एवं जातिवृत्तीय वर्गीकरण पद्धतियों के प्रमुख भेदों का वर्णन कीजिए ।
10. जीवों को वैज्ञानिक नाम देने के क्या लाभ हैं ?
11. जीवों के नामकरण की द्विनाम पद्धति सर्वाधिक स्वीकृत विधि क्यों है ?
12. जीव-वैज्ञानिक पादप एवं जंतुओं के विश्व स्वीकृत नाम किस प्रकार निर्धारित करते हैं ? वर्णन कीजिए ।
13. जातियों के स्थायित्व के विचार को त्यागने के कौन-से कारण थे ?
14. वैज्ञानिक नाम लिखने की सही विधि क्या है ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।
15. वैज्ञानिक नामों को तिरछे अक्षरों (italics) में क्यों लिखा जाता है ?
16. वर्गीकरण श्रेणीबद्धता को परिभाषित कीजिए । जीवों के वर्गीकरण में प्रयुक्त विभिन्न श्रेणियों की सूची बनाइए ।
17. 'जाति', 'वंश' एवं 'वर्गक' तकनीकी शब्दों को परिभाषित कीजिए।
18. वर्गीकरण की द्विजगत पद्धति की कमियां क्या हैं ?
19. मोनेरा एवं प्रोटिस्टा के प्रमुख लक्षणों की तुलना कीजिए ।
20. पादप जगत के महत्त्वपूर्ण लक्षणों का वर्णन कीजिए ।
21. जंतु जगत के विशिष्ट लक्षणों की व्याख्या कीजिए ।
22. हर्बेरियम से आप क्या समझते हैं ? कोई हर्बेरियम प्रदर्श बनाने हेतु विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए ।
23. वानस्पतिक उद्यान सजीव हर्बेरियम होते हैं । टिप्पणी कीजिए ।
24. वर्गीकरण में कुंजियों की क्या भूमिका होती है ? उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए ।

अध्याय 5

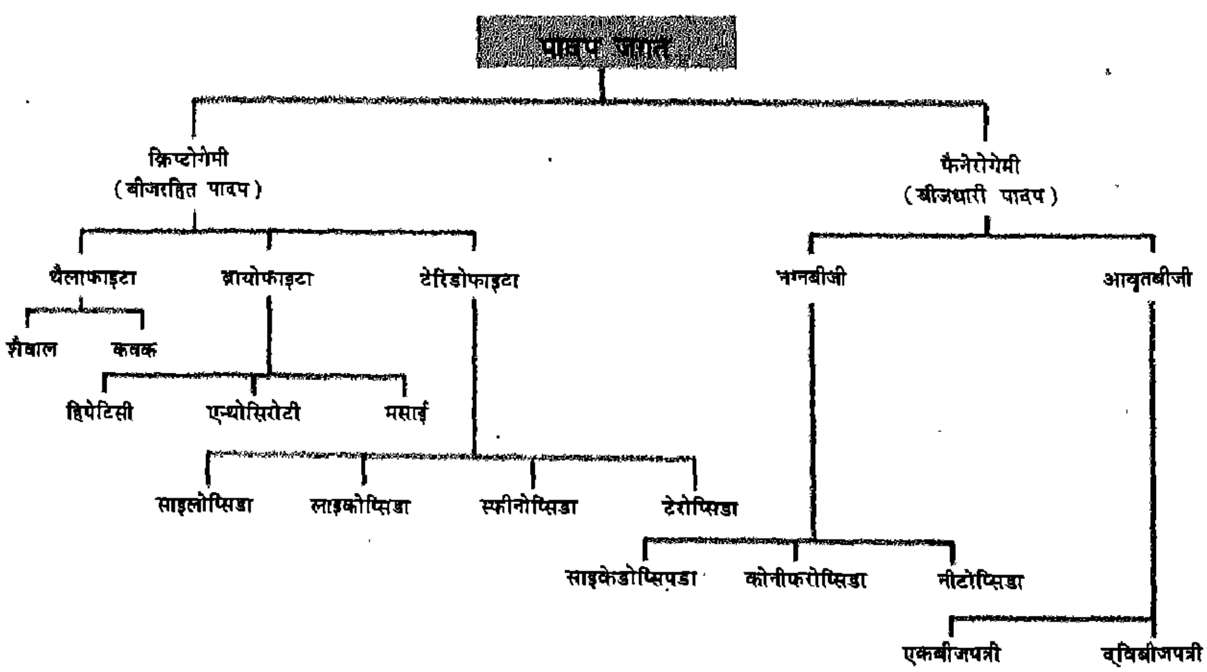
पादपों का वर्गीकरण

पादप, जैसा कि पूर्व अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, अपने उपयोग, आकार एवं रचना के आधार पर वर्गीकृत किए गए थे। पूर्ववर्ती पद्धतियों में उन्हें उनकी प्रवृत्ति के अनुसार वृक्षों, क्षुपों, अध:क्षुपों एवं शाकों में बांटा गया था। धीरे-धीरे आकारिकी के लक्षणों के साथ-साथ प्राकृतिक संबंध पादपों को समूहों में रखने के लिए प्रमुख बिंदु बनते गए। साथ ही विकास के अध्ययनों ने भी जीवों के जातिवृत्तीय इतिहास को समझने में सहायता की और वर्गिकीविद् जातिवृत्तीय संबंधों को वर्गीकरण हेतु प्रयोग में लाने लगे। इस अध्याय में पादपों का प्रमुख समूहों में वर्गीकरण और उनके महत्त्वपूर्ण लक्षण दिए गए हैं।

5.1 पादपों का वर्गीकरण

अधिकांश पद्धतियों में, जिनमें जीवों के दो जगत स्वीकृत किए गए थे, पादपों को पादप जगत और जंतुओं को जंतु जगत में रखा गया था। पुंकेसरों की संख्या और स्थिति का प्रयोग करते हुए, लिनिअस ने पुष्पी पादपों को 23 वर्गों में विभाजित किया था जिसमें सर्वप्रथम वर्ग मोनेन्ड्रिया (Monandria) रखा गया था जिसमें मात्र एक पुंकेसर था और बीस अथवा अधिक पुंकेसर-धारी पादपों को आइकोसेन्ड्रिया (Icosandria) वर्ग में रखा गया था। उन्होंने शैवाल, कवक, शैवाक, मॉस एवं पर्णांगों जैसे पुष्प-विहीन पादपों को एक अलग वर्ग, क्रिप्टोगेमिया (Cryptogamia) में रखा था, चूंकि उनकी पद्धति मात्र कुछ लक्षणों पर आधारित थी अत: इसे कृत्रिम पद्धति (artificial system) कहा गया। उन्होंने स्वयं भी कहा था कि उनकी पद्धति में आपसी संबंधों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा सका है। साथ ही उनकी पद्धति में एकबीजपत्रियों और द्विबीजपत्रियों जैसे दूरस्थ असंबद्ध कुलों को एक ही वर्ग में रखा गया था।

इसके उपरांत वर्गिकीविदों द्वारा पादप वर्गीकरण की कुछ पद्धतियां प्रस्तावित की गई थीं लेकिन इन सभी को



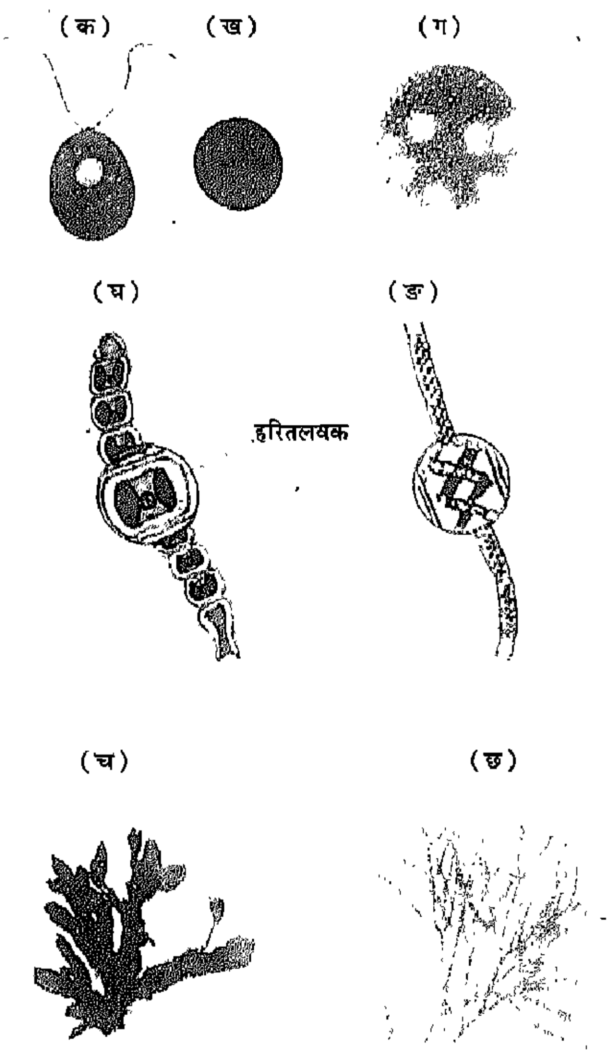
चित्र 5.1 पादपों का वर्गीकरण

वर्णित करना संभव नहीं है। अत: हम एक ऐसी सामान्य पद्धति का वर्णन करेंगे जिसमें पादप जगत को दो उपजगतों, पुष्पी एवं अपुष्पी में, पुष्पों और बीजों की विद्यमानता और अनुपस्थिति के आधार पर बांटा गया था (चित्र 5.1)। सभी पुष्पधारी पादपों जिनमें बीज होते है, को फैनेरोगेमी (Phanerogamae), जबकि क्रिप्टोगेमी (Cryptogamae) के अंतर्गत सभी अपुष्पी पादप जैसे शैवाल, कवक, शैवाक, मॉस एवं पर्णांग आते हैं। क्रिप्टोगेमों को आगे तीन संघों, थैलोफाइटा (Thallophyta), ब्रायोफाइटा (Bryophyta) एवं टेरिडोफाइटा (Pteridophyta) में बांटा गया था, जिसमें विद्यमान वर्गों को उनकी समानताओं और विषमताओं के आधार पर स्थापित किया गया था। फैनेरोगेमों को बीज उत्पादन के *कारण स्पर्मेटोफाइटा भी कहा गया* था। इन बीजधारी पादपों को आगे दो संघों, नग्नबीजियों (Gymnospermae) एवं आवृत्तबीजियों (Angiospermae) में समूहित *किया गया था। नग्नबीजियों का प्रतिनिधित्व* साइकेड, पाइन एवं सिडार द्वारा किया जाता है। इनके बीजांड अथवा बीज नग्न होते हैं जिन पर कोई आवरण नहीं होता। आवृत्तबीजियों में सभी पुष्पी पादप आते हैं जो बीज उत्पन्न करते हैं, और जिनमें बीजांड., अंडाशय अथवा फल द्वारा घिरे रहते हैं। फैनेरोगेमों को क्रिप्टोगेमों से अलग पहचानने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण लक्षण भली-भांति परिवर्धित संवहनी तंत्र है जो क्रमशः जल, खनिजों एवं हार्मोनों (दारु) एवं खाद्य पदार्थ (फ्लोएम) के संवहन हेतु उपयोग में आते हैं। ऐसे पादप जिनके सवंहनी ऊतक जंतुओं की श्वासनली से समानता दर्शाते हैं, ट्रेकियोफाइटा। कहलाते हैं।

पूर्ववर्ती अध्याय में आप पांचों जगतों के विभेदी लक्षणों के बारे में जान चुके हैं। यहां हम उन प्रमुख समूहों का अध्ययन करेंगे जिन्हें पादप जगत में सम्मिलित किया गया है और अंतत: पांच जगत पद्धति (Five Kingdom System) के पादप जगत (Kingdom Plantae) में रखा गया है। यहां वर्णित समूह हैं : शैवाल (Algae; नील-हरितों को छोड़कर), ब्रायोफाइट, टेरिडोफाइट, नग्नबीजी एवं आवृत्तबीजी। इसके साथ ही कवकों (fungi) को भी निकाल दिया गया है क्योंकि इनको एक अलग जगत का पद दिया जा चुका है। अत: यहां इन समूहों के मात्र सामान्य लक्षण और अग्रेतर वर्गीकरण के आधार ही दिए गए हैं। इसके उपरांत पुष्पी पादपों (आवृत्तबीजियों) की वर्गीकरण प्रणाली दी जाएगी।

5.2 थैलोफाइटा-शैवाल

पोषण विधि में मूलभूत अंतर रहते हुए भी शैवालों एवं कवकों को एक साथ थैलोफाइटा के अंतर्गत रखा जाता है। शैवाल स्वपोषी होते हैं जबकि कवक परपोषी। शैवाल अनेक प्रकार के आवासों जैसे जल, स्थल तथा अन्य पादपों एवं जंतुओं तक पर भी पाए जा सकते हैं। कुछ समुद्री जल में परिवर्धित होते है एवं समुद्री घास कहलाते हैं। इनके थैलस (चित्र 5.2) एककोशिक एवं कशाभिकीय (Chlamydomonas) अथवा अकशाभिक (Chlorella), संघजीवी (volvox) अथवा तंतुमय (*Ulothrixc* एवं *Spirogyra*)। कुछ रूपों में थैलस पत्तियों की तरह चपटा (Laminaria) होता है जो होल्ड-फास्ट (holdfast) की सहायता से चट्टानों पर चिपके रहते हैं।



चित्र 5.2 शैवाल (क) क्लैमिडोमोनास (ख) क्लोरेला (ग) वॉल्वाक्स (घ) यूलोथ्रिक्स (ङ) स्पाइरोगाइरा (च) लेमिनेरिया (छ) जेलिडियम

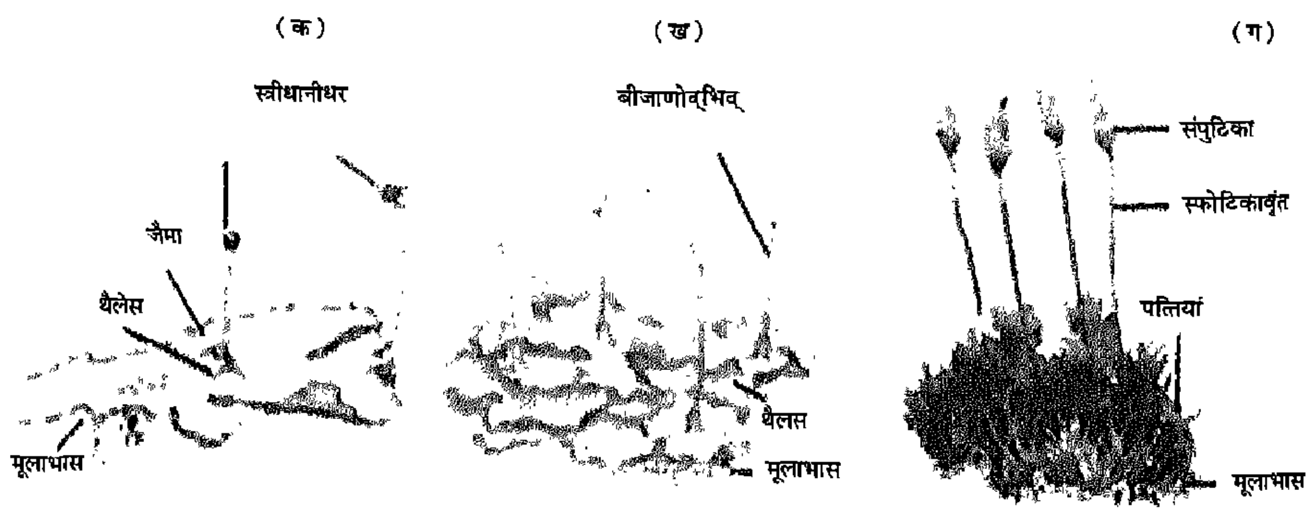
एककोशिक प्रोटिस्ट शैवाल इस चित्र में तुलना के लिए सम्मिलित किए गए हैं। कई प्रकार के रंजकों की उपस्थिति के कारण शैवाल अनेक रंगों के हो सकते हैं। हरे शैवालों में प्रकाशसंश्लेषण वर्णक के रूप में α तथा b पर्णहरित केरोटिनॉइड के साथ होते हैं। हरे रंजकों वाले हरितलवक मेखला या सर्पिल आकार के हो सकते हैं। अन्य रंजक जैसे कि फ्यूकोजैंथिन (भूरा), फाइकोएराइथ्रिन (लाल) तथा फाइकोसायेनिन (नीला), शैवालों को अलग-अलग रंग प्रदान करते हैं। लाल शैवाल, कैल्शियम कार्बोनेट स्रावित कर जमा कर सकते हैं जो प्रवाल (कोरल) जैसे दिखते हैं। लाल शैवालों में *पॉलीसाइफोनिया, बेट्राकोस्पर्मम* एवं *जेलिडियम* प्रमुख हैं।

शैवाल कायिक रूप से प्रजनन कर सकते हैं, जैसे सरगासम (Sargasam), जिसमें मुकुलन होता है अथवा गुलिका बनती है। अलैंगिक जनन के लिए अनेक प्रकार के चल अथवा अचल बीजाणु बनते हैं। इनके जीवन चक्र में स्पष्ट अगुणित तथा द्विगुणित अवस्थाएं आती हैं जिसे **पीढ़ी एकांतरण** कहते हैं। रंजकों के रंग, संग्रहीत भोजन पदार्थों के प्रकार एवं कोशिका संरचना के आधार पर इन्हें पुनः हरे (Chlorophyceae), भूरे (Phaeophyceae) तथा लाल (Rhodophyceae) शैवालों में वर्गीकृत किया गया है।

5.3 ब्रायोफाइटा

इस समूह ने यह नाम मॉसों से प्राप्त किया है जो चट्टानों, दीवारों, वृक्षों के स्तंभ तथा नम छायादार स्थानों में उगते हैं। आप मॉसों को नम दीवारों पर हरी चटाई के रूप में वर्षा ऋतु या वर्षा के बाद उगता देख सकते हैं।

इनकी थैलस-जैसी शरीर संरचना या तो चौरस (जैसे रिक्सिया) या यकृत सदृश्य (जैसे मारकेंशिया) होते हैं इसीलिए यह **लिवरवर्ट** के नाम से भी जाने जाते हैं (चित्र 5.3)। कुछ जातियों में (जैसे कि मॉसों में) पादप शरीर स्तंभ तथा पत्ती सदृश्य संरचनाओं में विभेदित होता है। पत्तियां स्तंभ सहक उपांगों पर सर्पिल रूप से व्यवस्थित होती हैं। थैलस अधःस्तर, चट्टानों, दीवारों तथा वृक्षों की छालों पर मूल सदृश्य आकृतियों, **मूलाभों** (Rhizoids) द्वारा संलग्न रहते हैं जो जल अवशोषण में सहायता करते हैं। थैलस वायु से सीधे-सीधे भी पानी का अवशोषण कर सकता है। बीजधारी पादपों की तुलना में ब्रायोफाइटा के पादप शरीर में संवहनी ऊतक विद्यमान नहीं होते। मॉस भी स्पंजों की भांति जल धारण किए रहते हैं। आपने मालियों को उद्यानों में पादप लगाने के लिए सूखी मॉस का प्रयोग करते देखा होगा जिसे एक डंडे पर बांधकर चारों ओर से जाली लगाकर गमले में शोभनीय पादपों को उगाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यह कायिक जैसे विखंडन, जैमी एवं प्रकंदों तथा लैंगिक दोनों ही विधियों से जनन करते हैं। लैंगिक जनन, पुंधानी (antheridium) एवं स्त्रीधानी (archegonium) लैंगिक अंगों, जो पत्तीधारी शाखाओं के शीर्षों पर थैलस के अंदर धंसे रहते हैं, के द्वारा संपन्न होता है। निषेचन के लिए जल आवश्यक है। ब्रायोफाइटों में पादप शरीर **युग्मकोद्भिद्** (gametophytic) अवस्था दर्शाता है, और युग्मकधानियों (gametangia) में अगुणित युग्मक धारण करता है। पुलिंग एवं स्त्रीलिंग युग्मक संलयित होकर निषेचित अंड का निर्माण करते हैं, जिसे युग्मज (zygote) कहते हैं। इसमें गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी होती है, और यह द्विगुणित अवस्था (diploid phase) कहलाती है। युग्मज परिवर्धित होकर बीजाणुकोदभिद् (sporophytic) कहलाता है



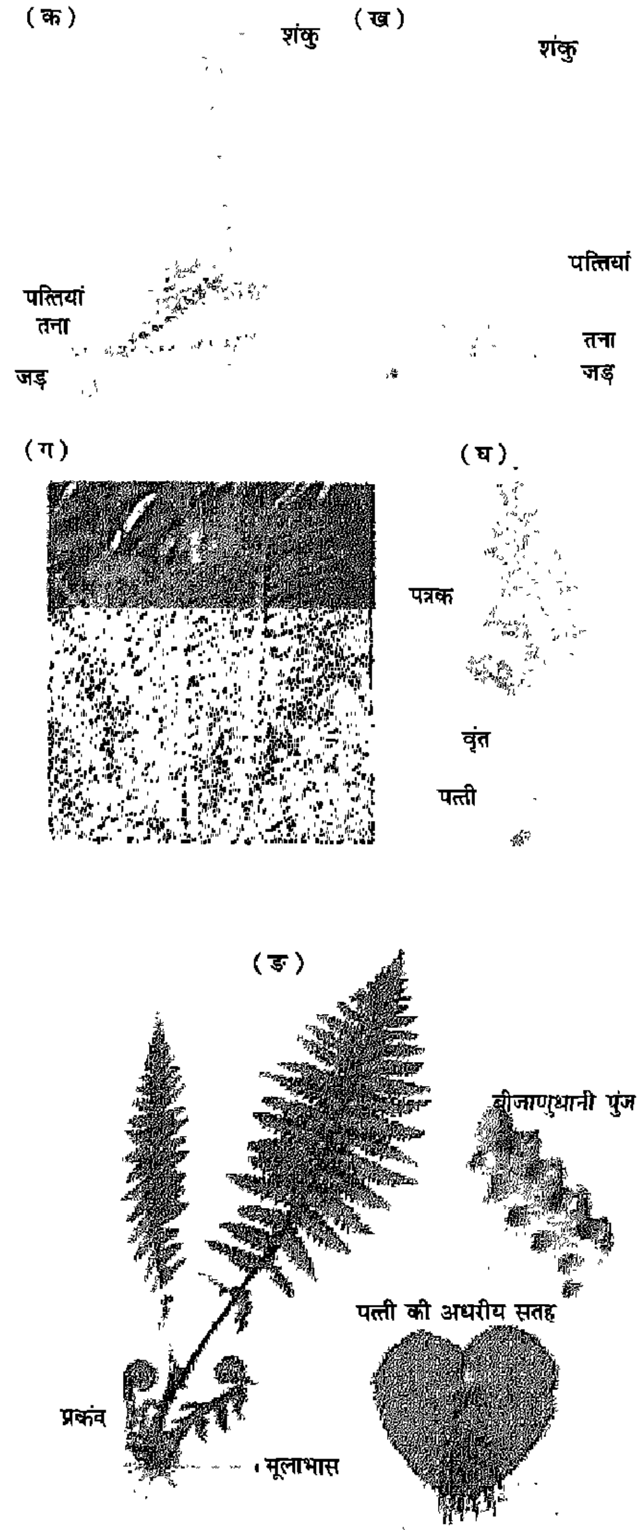
चित्र 5.3 सामान्य ब्रायोफाइट (क) मार्केशिया (ख) ऐन्थोसिरोस (ग) फ्यूनेरिया

और अगुणित युग्मकोद्भिद् से जुड़ा रहता है तथा अर्द्धसूत्री विभाजन द्वारा बीजाणुओं का निर्माण करता है। बीजाणु गुणसूत्रों की आधी संख्या ग्रहण करते हैं, और अगुणित अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। बीजाणु अंकुरित होकर युग्मकोद्भिद् का निर्माण करते हैं। युग्मकोद्भिदी एवं बीजाणोद्भिदी दोनों अवस्थाएं एक के बाद एक आती हैं और यह परिघटना पीढ़ियों का एकांतरण (alternation of generations) कहलाती है। पादप शरीर की संरचना और लैंगिक जनन की विधि के आधार पर ब्रायोफाइटों को तीन वर्गों में बांटा गया है; हिपेटिसी (Hepaticae), एन्थोसिरोटी (Anthocerotae) एवं मसाई (Musci) मार्केंसिया (Marchantia), एन्थोसिरोस (Anthoceros) एवं फ्यूनेरिया (Funaria) क्रमशः इनका प्रतिनिधित्व करते हैं (चित्र 5.3 क, ख, ग)।

5.4 टेरिडोफाइटा

पादपों के इस समूह का नामकरण पर्णांग, टेरिस (Pteris) से किया गया है जो इसके प्रमुख लक्षणों को भी दर्शाता है। यह प्रायः आर्द्र और ऊष्ण कटिबंधी जलवायु में सामान्यतः चट्टानों, मृदा, जलाशयों और दूसरे पादपों पर अधिपादपों के रूप में उगते हुए पाए जाते हैं। इन्हें गमलों में शोभनीय पादप के रूप में भी उगाया जाता है। इनमें से वृक्ष पर्णांग (tree ferns) काफी ऊंचाई तक वृद्धि करके लघु वृक्षों की भांति प्रतीत होता है। कुछ सदस्य जैसे *ईक्वीसेटम* (Equisetum) जलाशयों के समीप उगते हैं। इस समूह के सबसे सामान्य सदस्य हैं। पर्णांग (Dryopteris, Pteris), *लाइकोपोडियम, सैलाजिनेला* एवं *ईक्वीसेटम* (चित्र 5.4)। पर्णांग जैसे लाक्षणिक टेरिडोफाइट में पादप शरीर स्पष्ट अंतःभौमिक स्तंभ-सम, जड़-युक्त घनकंद एवं वायवी पत्तियों-धारी प्ररोह (shoot) का बना होता है। पादप की ऐसी स्थिति में जब वायवी भाग अग्नि अथवा जंतुओं द्वारा नष्ट कर दिए गए हों, घनकंद पुनर्जन्म में सहायता करता है। टेरिडोफाइटो में आदिम संवहनी-तंत्र (primitive vascular system) विद्यमान होता है। एक अन्य सुप्रसिद्ध पर्णांग, *एडिएन्टम* लाक्षणिक गुणन विधि दर्शाता है जब भी इसकी पत्ती का शीर्ष भूमि को छूता है, इसमें अपस्थानिक जड़ें परिवर्धित हो जाती हैं और एक नया पादप बनने लगता है। अतः इसे **चल पर्णांग** (walking fern) भी कहते हैं। आपने इसी प्रकार की कायिक प्रवर्धन की विधि भूस्तरियों (runners) एवं अंतःभूस्तरियों (suckers) द्वारा संपन्न होती हुई भी देखी होगी।

पत्तियां दो प्रकार की होती हैं। कुछ पर्णांग सरल पत्तियां धारण करते हैं जिनमें मात्र एक शिरा (vein)

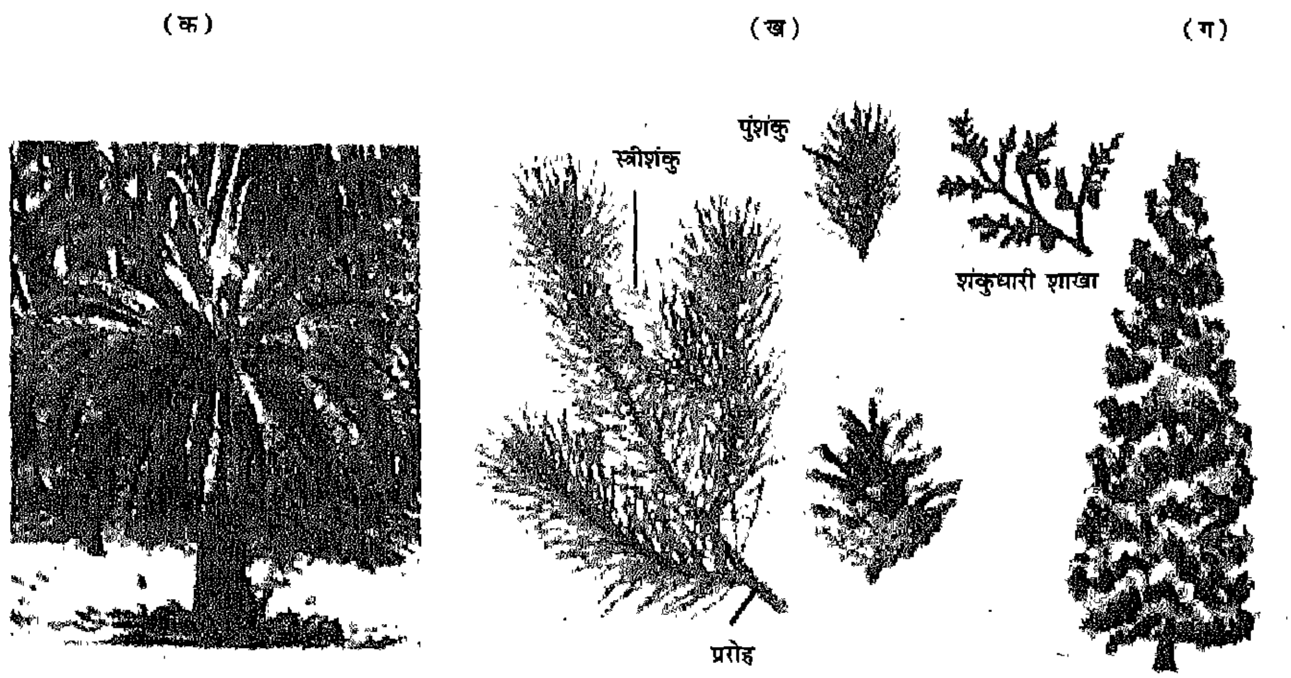


चित्र 5.4 टेरिडोफाइट : (क) लाइकोपोडियम (ख) सैलाजिनेला, (ग) ईक्वीसेटम (घ) एडिएन्टम (ङ) टेरिडियम और इसका प्रोथैलस

विद्यमान होती हैं जबकि दूसरों में संयुक्त पर्ण विद्यमान होते हैं जिनमें कई पत्रक (pinnules) उपस्थित होते हैं जो पुष्पी पादपों से साम्य दर्शाते हैं। *एडिएन्टम* की संयुक्त काले, चमकीले पर्णवृंत धारी पत्तियां इतनी सुंदरता से व्यवस्थित होती हैं जैसे किसी युवती के सुंदर गुंथे हुए बाल (चित्र 5.4), अतः इसे युवती के **बालों-सम पर्णांग** (maiden hair fern) का नाम दिया गया। पत्तियों की निचली सतह पर बीजाणुधानियां (sporangia) पीले अथवा भूरे धब्बों के रूप में जिसे बीजाणुधानी पुंज (sori) कहते हैं; मोतियों की भांति लगे होते हैं। बीजाणुधारक पत्तियां **बीजाणुपर्ण** (sporophylls) कहलाती हैं। सोराइ में भरी बीजाणुधानियों के समूह लगे होते हैं। पादप शरीर युग्मकोद्भिद् अवस्था का द्योतक है और द्विगुणित (2n) होता है। अर्द्धसूत्री विभाजन के उपरांत बने बीजाणु अगुणित (haploid) (1n) होते है और बीजाणुधानियों में विद्यमान एक विशिष्ट विधि द्वारा विकरित होते हैं। यह नम भूमि पर उगते हैं और एक थैलस-सम संरचना **प्रोथेलस** (prothallus) बनाते हैं जो बहुकोशिक होती है और युग्मकोद्भिद् अवस्था (gametophytic phase) का प्रतिनिधित्व करती है। पुंधानी स्त्रीधानी लैंगिक अंग अधर सतह पर परिवर्धित होते हैं। चूंकि बीजाणोद्भिद् (द्विगुणित) तथा युग्मकोद्भिद् (अगुणित) अवस्थाएं एक-दूसरे के बाद एकांतर क्रम में आती हैं; अतः पीढ़ियों का एकांतरण पूरी तरह दिखाई देता है। इनमें, ब्रायोफाइटों के विपरीत बीजाणोद्भिद् प्रमुख अवस्था होती है। टेरिडोफाइटों को चार वर्गों-साइलोप्सिडा (Psilopsida), लाइकोप्सिडा (Lycopsida), स्फीनोप्सिडा (Sphenopsida) एवं टेरोप्सिडा (Pteropsida) में पत्तियों की प्रकृति, पादपकाय के संगठन, संवहनी-तंत्र तथा बीजाणुधानी की स्थिति के आधार पर बांटा गया है।

5.5 नग्नबीजी

इस समूह के अधिकतर सदस्य शंकुधारियों (Conifers) द्वारा दर्शाए जाते हैं जो पर्वतीय स्थलों की शीतल जलवायु में उगते हैं। लेकिन साइकड (Cycads) एवं नीटेलीज (Gnetales) समूह के सदस्य शुष्क एवं तप्त जलवायु में भी भली-भांति उगते हैं। हम इस वर्ग के कुछ सदस्यों को जो ताड़ जैसे दिखते हैं, मैदानी क्षेत्रों में उगता हुआ भी देख सकते हैं। इनमें सबसे सामान्य *साइकस* (Cycas) है। मैदान के लोगों ने शंकुधारियों जैसे ऑरोकेरिया (Araucaria) को शोभनीय सदाबहार पादप के रूप में उगाना प्रारंभ कर दिया है। सबसे सामान्य नग्नबीजी एबीज (Abies;), सिड्रस अथवा देवदार (Cedrus), पाइनस (Pinus) चीड़ एवं अन्य इमारती लकड़ी प्रदायी जातियां हैं (चित्र 5.5)। यह काष्ठिल वृक्ष होते हैं और मात्र कुछ क्षुपीय जैसे एफिड्रा (Ephedra) अथवा आरोही जैसे नीटम (Gnetum) जिनमें जड़, स्तंभ एवं पत्तियों का स्पष्ट विभेदन होता है। नग्नबीजियों के सफलतापूर्वक वृद्धि करने का कारण है कि इनमें भली-भांति परिवर्धित संवहनी तंत्र विद्यमान होता है जिसमें वाहिका (vessels) रहित दारु एवं



चित्र 5.5 नग्नबीजी (क) साइकस (ख) पाइनस (ग) सिड्रस

सहचर कोशिकाओं (companion cells) रहित फ्लोएम ऊतक होते हैं। जो उनकी ऊंचे वृक्षों में जल संवहन करने में सहायता करते हैं। वे पुष्पविहीन होने के कारण ऐसी बीजधारी प्रवृत्ति अपना चुके हैं जो उन्हें बाह्य जल की उस आवश्यकता की आपूर्ति करने में सहायता करते हैं जो युग्मक (male gamete) को स्त्री युग्मक (female gamete) तक पहुंचाने में वांछित होता है।

पत्ती-जैसी विशिष्ट संरचनाओं, **बीजाणुपर्णों** (sporophylls) पर निगमित बीजाणुधानियां दो प्रकार की होती हैं- गुरूबीजाणुपर्ण (mega sporophylls) बीजाणुधानी सहित पत्ती-संरचना जो बीजांड (ovule) धारण करती है। लघुबीजाणुधानियों को परागकोष भी कहते हैं, एक लघुबीजाणुपर्ण में आवरित रहती हैं। लघुबीजाणुपर्ण और गुरूबीजाणुपर्ण क्रमशः नर और मादा शंकुओं का निर्माण करती हैं, जो शंकुधारी पादपों की विशेषता दर्शाते हैं। लघुबीजाणुधानी में परागकण विद्यमान होते हैं जो वायु द्वारा गुरुबीजाणुधानी तक पहुंचाए जाते हैं। यह बाद में क्रमशः नर एवं स्त्रीयुग्मक बनाते हैं। निषेचन के बाद द्विगुणित युग्मज बनता है जो अंडप के अंदर भ्रूण में विकसित होता है। अंडप बाद में पककर बीज बन जाता है। *साइकस* में गुरुबीजाणुपर्ण एक निश्चित शंकु में व्यवस्थित नहीं होते हैं। नग्नबीजी पादपों में पीढ़ी एकांतरण अत्यधिक सुस्पष्ट होता है एवं बीजाणुद्भिद् संतति कहीं अधिक प्रभावी होती है। नग्नबीजियों के पत्तियों की प्रकृति, काष्ठ, संवहनी-तंत्र एवं जनन संरचनाओं के आधार पर पौधों साइकेडाप्सिडा, कोनीफेरोप्सिडा एवं नीटोप्सिडा वर्गों में विभाजित किया गया है।



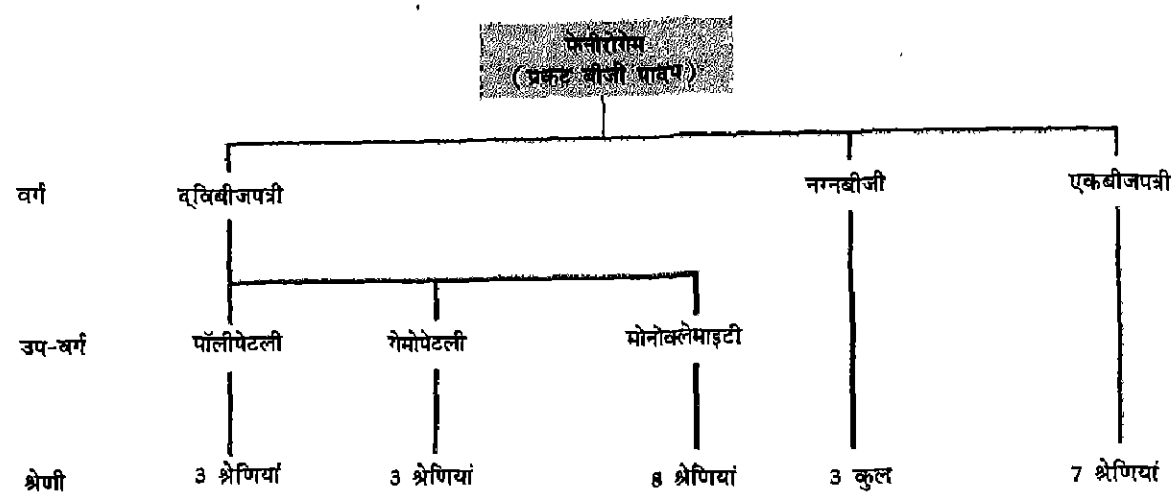
चित्र 5.6 आवृत्तबीजी (क) एकबीजपत्री-मक्का (ख) द्विबीजपत्री-सूर्यमुखी

5.6 आवृत्तबीजी

आवृत्तबीजी ऐसे बीजधारी पादप हैं जो स्थलीय जीवन के लिए भली-भांति अनुकूलित हैं तथा विविध आवासों जैसे शीतल टुंड्रा से तप्त उष्ण कटिबंधीय तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों तक में पाए जाते हैं। साथ ही यह जलीय आवासों में सफलतापूर्वक रह सकते है। वृक्ष, क्षुप एवं शाकीय प्रकृति के साथ यह एकबीजपत्री अथवा द्विबीजपत्री हो सकते हैं (चित्र 5.6)। इन पादपों के शरीर स्पष्टतः जड़, तने एवं पत्तियों में विभेदित होते हैं। नग्नबीजियों के विपरीत इनका संवहनी ऊतक-तंत्र दारु में वाहिकाओं (vessels) एवं फ्लोएम में सहचर कोशिकाओं (Companion cells) की उपस्थिति के कारण पर्याप्त विकसित होता है। आवृतबीजियों में पुष्प, नग्नबीजियों के सदृश विशिष्ट बीजाणुपर्णों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें लघुबीजाणुपर्ण तो पुंकेसरों से और बृहत बीजाणुपर्ण अंडपो से साम्य दर्शाते हैं। आवृतबीजियों में पुंकेसरों से अंडपों पर परागकणों के स्थानांतरण की परिघटना, परागण (pollination) कहलाती है, जो इनका विशिष्ट लक्षण है। इस क्रिया में वायु, जल, कीट, पक्षी तथा मानव-सहित अन्य जीवों द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। निषेचन के पश्चात बीजांड अंडाशय के अंदर ही बने रहते हैं तथा इसी लक्षण के आधार पर ये नग्नबीजियों से भिन्न होते हैं। इस प्रकार आवृतबीजियों में अंडाशय में बंद बीज अंततः फलों में परिवर्धित हो जाते हैं। ये वर्तमान समय की वनस्पति-समूह में प्रमुख हरे पुष्पी पादप हैं।

आवृतबीजियों का वर्गीकरण

लिनिअस के क्रमबद्धता के पादप वर्गीकरण संबंधी कार्य के उपरांत वनस्पति के वर्गीकरणविदों की प्राकृतिक इतिहास और विभिन्न स्तरों पर आपसी संबंधों के विषय में सूचना की जागरूकता उत्पन्न हुई। फलतः पौधों के वर्गीकरण की प्राकृतिक पद्धतियों की ओर लोगों के प्रयास आगे बढ़े, और इस क्रमपद्धतियों के विकास हेतु अध्ययनों की ओर ध्यान लगाया गया। इनमें से एक सर्वाधिक विख्यात प्राकृतिक पद्धति का प्रस्ताव दो अंग्रेज वनस्पतिज्ञों, जॉर्ज बैन्थम (1800-1884) एवं जौसेफ डाल्टन हुकर (1817-1911) ने रखा। इन्होनें उस समय तक ज्ञात सभी बीजधारी पादपों का सही वर्णन एवं



चित्र 5.7 बैन्थम एवं हुकर की बीजी पादपों के वर्गीकरण की पद्धति

वर्गीकरण अपनी पद्धति के अनुसार प्रस्तुत किया और इसमें नग्न अथवा मुक्तबीजधारी नग्नबीजियों को भी सम्मिलित किया। यह अति विषम कार्य जिसमें लगभग 25 वर्ष लगे *जेनेरा प्लान्टेरम* (1862–1883) नामक पुस्तक के तीन खंडों में प्रकाशित किया गया था।

बैन्थम एवं हुकर की वर्गीकरण पद्धति

बैन्थम एवं हुकर की वर्गीकरण पद्धति, पादपों के प्रकार और उनके आपसी संबंधों पर आधारित है। आज भी कई पादपालयों एवं वानस्पतिक उद्यानों में इसका अनुकरण एवं उपयोग किया जाता है। भारत में भी आवृतबीजियों को इसी पद्धति के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। यह पद्धति सुलभ है एवं विद्यार्थियों द्वारा भी प्रायोगिक कक्षाओं में इसको वरीयता दी जाती है। इसमें दिए गए जातिगत विवरण पूर्ण एवं सही हैं तथा ये सीधे प्रेक्षणों पर आधारित हैं। बृहत् जातिवर्गों को खंडों एवं उपखंडों में बांटा गया है। अध्याय 4 में उल्लिखित विभिन्न वर्गिकीय संवर्गों को सभी प्रकार के पादपों के साथ निर्दिष्ट किया गया है। फिर भी वे अपने वर्गीकरण की योजना में कुछ वर्गों को संतोषजनक रूप से स्थान नहीं दे पाए। इनको उन्होंने असामान्य स्थिति के कारण **ऑर्डिनेस एनोमैली** (Ordines Anomali) का नाम दिया। इस पद्धति की सीमा में लगभग 97,000 बीजधारी पादप आते हैं। सभी पादपों के वर्गीकरण का आधार उनके आकारीय लक्षण जैसे पर्णविन्यास, शिराविन्यास, पुष्पीय चक्रों (जैसे बाह्यदलपुंज, दलपुंज, पुमंग एवं जायांग) के सदस्यों की संख्या, बीजों में बीजपत्रों की संख्या एवं बीजों में आवरण की उपस्थिति या अनुपस्थिति, आदि थे। इस आधार पर पादपों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया: (i) द्विबीजपत्री, (ii) नग्नबीजी एवं (iii) एकबीजपत्री (चित्र 5.7)।

वर्ग-1 द्विबीजपत्री

इन पादपों में विविध प्रकार का जैसे एकांतर सर्पिल एवं चक्रित पर्ण-विन्यास होता है और जालिकावत शिराविन्यास। पुष्पीचक्रों में 4-5 सदस्य होते हैं अर्थात पुष्प चतुष्पुटी अथवा पंचपुटी होते हैं। संवहनी पूल खुला होता है अर्थात् दारु तथा फ्लोएम के बीच एधा पाया जाता है। इनके बीजों में जैसा कि नाम दर्शाता है, दो बीजपत्र होते हैं।

बैन्थम एवं हुकर ने द्विबीज पत्तियों को पुष्पीचक्रों जैसे दलपुंज अथवा दल-चक्र की प्रवृत्ति के आधार पर तीन उपवर्गों बहुदली, (Polypetalae), संयुक्तदली गेमोपेटली (Gamopetalae) तथा दलविहीन (Monochlamydeae) में विभाजित किया था। चक्रों की संख्या भी उपवर्ग के विभेदन का एक मानदंड थी। इन तीन उपवर्गों को, पुष्पागांधार (thalamus) पर अंडाशय (ovary) की पुष्पांगों के संदर्भ में स्थिति को ध्यान में रखकर पुनः कई श्रेणियों में विभाजित किया गया है। श्रेणियों को आगे कोहोर्ट (Cohorts) एवं गणों (orders) में विभाजित किया गया है। बैन्थम और हुकर द्वारा प्रयुक्त तकनीकी शब्द 'कोहोर्ट' वर्तमान शब्द 'गण' (Order) से संबोधित किया जाता है। इसी प्रकार उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द 'गण' वर्तमान शब्द 'कुल' से साम्य दर्शाता है। आइए, हम द्विबीजपत्रियों के इन तीन उपवर्गों के मुख्य लक्षणों का अध्ययन करें।

(क) *उपवर्ग* **पॉलीपेटली**

इसके सदस्य पुष्पों के बाह्यदल एवं दल पृथक एवं दो चक्रों का निर्माण करते हैं। इस उपवर्ग में दलपुंज चार या पांच दलों के चक्र का बना होता है जो एक-दूसरे से मुक्त होते हैं।

श्रेणी (i) थैलेमीफ्लोरी

इस श्रेणी में बाह्यदल अंडाशय से पृथक होते हैं। बाह्यदल, दल एवं पुंकेसर बहुत-से होते हैं तथा अंडाशय के नीचे से पुष्पांगाधार से निकलते हैं। इस प्रकार पुष्प जायांगाधारी अर्थात् उच्च अंडाशयधारी होते हैं। अंडाशय के नीचे कोई चक्रिका नहीं होती है। इसके अंतर्गत रेनेलीज (Ranales), पैराइटेलीज (Parietales) एवं माल्वेलीज (Malvales) गण आते हैं।

श्रेणी (ii) डिस्कीफ्लोरी

इसमें बाह्यदल मुक्त (Polysepolous) या संयुक्त बाह्यदलीय (gamosepalous) हो सकते हैं। पुष्प उच्च अंडाशय के साथ जायंगाधारी होते हैं। अंडाशय के आधार के चारों ओर मकरंदधर चक्रिका होती है। इसके अंतर्गत जिरेनियेलीज, औलेकेलीज , सेलास्ट्रेलीज एवं सैपिन्डेलीज, गण आते हैं।

श्रेणी (iii) कैलिसिफ्लोरी

इनमें बाह्यदल प्राय: संयुक्त हो कर अंडाशय के चारों तरफ एक नलिकानुमा रचना बनाते हैं। पुष्प परिजायांगी अथवा जायांगोपरिक होते हैं तथा अंडाशय प्राय: निम्न होता है। इस श्रेणी में रोजेलीज, मिर्टिलीज एवं अम्बेलेलीज गण आते हैं।

(ख) *उपवर्ग* **गैमोपेटली**

इनमें बाह्यदल तथा दल पृथक होते हैं। दलपुंज चार अथवा पांच दलों का होता हैं जो एक-दूसरे से आंशिक या पूर्णरूप से संलग्न होते हैं। पुंकेसर प्रायः दललग्न होते हैं। इस उपवर्ग में भी तीन श्रेणियां है :

श्रेणी (i) इनफेरी

इसमें पुंकेसरों की संख्या दलपुंज के खंडों के समान होती है। पुष्प जायांगोपरिक एवं अंडाशय निम्न होता है। रूबिएलीज, एस्टरेलीज एवं इसके गण कम्पेनुलेलीज आदि हैं।

श्रेणी (ii) हेटरोमेरी

इसके सदस्यों में पुंकेसरों की संख्या दलपुंज के खंडों के समान या इससे दुगुनी होती है। अंडाशय उच्च होता है तथा अंडपों की संख्या दो होती है। पुष्प जायांगाधारी होते हैं। इसमें ऐराइकेलीज , प्राइमुलेलीज एवं ऐबेनेलीज नामक तीन श्रेणियां (गण) सम्मिलित हैं।

श्रेणी (iii) बाइकार्पेलेटी

पुंकेसरों की संख्या कभी-कभी दलपुंज खंडों की संख्या से कम होती है। अंडपों की संख्या दो या इससे अधिक एवं अंडाशय उच्च होता है अर्थात पुष्प जायांगाधारी होते हैं। इसके अंतर्गत जेन्शिएनेलीज, पॉलीमोनिएलीज, परसोनेलीज तथा लेमिएलीज गण आते हैं।

(ग) उपवर्ग **मोनोक्लेमाइडी**

इस उपवर्ग के पुष्प अपूर्ण होते हैं तथा इनमें बाह्यदल एवं दल में अंतर नही होता है। पुष्प में प्राय: केवल एक चक्र का परिदल होता है जो बाह्यदल की तरह का होता है। दल अनुपस्थित होते हैं। इस समूह का कोई कोहोर्ट (गण के समकक्ष) निर्दिष्ट नहीं किया गया है एवं इसके स्थान पर एक या अधिक प्रतिनिधि कुलों का उदाहरण के रूप में उल्लेख किया गया है। इस उपवर्ग की आठ श्रेणियां हैं :

श्रेणी (i) कर्वेम्ब्री

इस श्रेणी के सदस्यों में भ्रूण, भ्रूणपोष के चारों तरफ मुड़े होते हैं। बीजांड प्राय: एक होती हैं। कीनोपोडिएसी, पालीगोनेसी तथा एमरेन्थेसी इत्यादि इसी श्रेणी के सदस्य हैं।

श्रेणी (ii) मल्टीओव्युलेटी एक्वेटिसी

इस श्रेणी के सदस्यों में अनेक बीजांडधारी अंडाशय (Ovary) होती हैं। इस श्रेणी में निमज्जित जलीय पादप आते हैं। (पोडोस्टेमोनेसी जिसे पोडोस्टेमेसी भी कहा जाता है।)

श्रेणी (iii) मल्टीओव्युलेटी टेरेस्ट्रेस

इसके सदस्य स्थलीय पादप हैं जिनमें अनेक बीजांड होते हैं। (नेपेन्थेसी, ऐरिस्टोलोकिएसी इत्यादि)

श्रेणी (iv) माइक्रोएम्ब्री

इनमें भ्रूण सूक्ष्म तथा भ्रूणपोष गूदेदार होता है। (पाइपेरेसी एवं मिरिस्टिकेसी कुल इस में सम्मिलित है।)

श्रेणी (v) डैफ्नेलीज

अंडाशय में प्राय: एक अंडप तथा एक बीजांड होता है। (लॉरिएसी, प्रोटिएसी इत्यादि)

श्रेणी (vi) एक्लेमाइडोस्पोरी

इसके सदस्यों में अंडाशय प्रायः निम्न, एककोष्ठीय एवं 1 से 3 बीजांडयुक्त होता है। (लोरेन्थेसी, सेन्टेलेसी आदि)

श्रेणी (vii) युनीसेक्जुएलीज

पुष्प एकलिंगी होता हैं।

(यूफोबिएसी एवं प्लान्टेनेसी आदि)

श्रेणी (viii) ऑर्डिनेस एनोमेली

इसके अंतर्गत अनिश्चित संबंधों वाले कुल आते हैं। (सेराटोफाइलेसी, सेलिकेसी, एम्पेट्रेसी इत्यादि)

वर्ग II : नग्नबीजी

इस वर्ग को द्विबीजपत्री तथा एकबीजपत्री के बीच रखा गया है। इस वर्ग के सदस्यों के बीजांड या बीज नग्न होते हैं। नग्नबीजियों के अन्य लक्षणों का विवरण पहले दिया जा चुका है। इसके अंतर्गत तीन कुल - सायकेडेसी, कोनीफेरी तथा नीटेसी आते हैं।

वर्ग III : एकबीजपत्री

इस वर्ग के सदस्यों में पत्तियां सरल एवं समानांतर शिराविन्यास-युक्त होती हैं। संवहनी पूल बंद (बिना एधा के) होते हैं जो मृदूतक में बिखरे होते हैं। पुष्प त्रिपुटी (trimerous) होते हैं अर्थात् इनका प्रत्येक पुष्पीय चक्र तीन सदस्यों का बना होता है। बीज में एक ही बीजपत्र होता है। इस वर्ग को परिदलों की प्रकृति एवं अंडाशय की अवस्था के आधार पर सात श्रेणियों में बांटा गया है। ये निम्नलिखित हैं :

श्रेणी (i) माइक्रोस्पर्मी

परिदल दल के समान होता है। पुष्प जायांगोपरिक तथा अंडाशय निम्न होता है। बीज छोटे एवं भ्रूणपोषविहीन (एक्सस्ल्ब्युमिनस) होते हैं (ऑर्किडेसी)।

श्रेणी (ii) एपीगाइनी

परिदल आंशिक रूप से दलीय होता है। अंडाशय प्रायः निम्न होता है जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। बीज पोषक ऊतक के साथ भ्रूणपोषधारी होते हैं (इरीडेसी)

श्रेणी (iii) कोरोनेरी

पुष्प के परिदल दलीय होते हैं। अंडाशय उच्च होता है। बीज भ्रूणपोषधारी होते हैं (लिलिएसी)।

श्रेणी (iv) कैलिसिनी

पुष्प के परिदल बाह्यदलीय होते हैं जिसमें उच्च अंडाशय तथा भ्रूणपोषधारी पामी बीज होते हैं।

श्रेणी (v) न्यूडिफ्लोरी

इसके सदस्यों में परिदल पूर्णतया या तो नहीं होता हैं अथवा शल्की होता है। अंडाशय उच्च एवं बीज भ्रूणपोषी होता है (टाइफेसी)।

श्रेणी (vi) एपोकार्पी

इसके सदस्यों में परिदल के या तो दो चक्र होते हैं या कभी-कभी यह पूर्णतया अनुपस्थित रहता है। अंडप मुक्त होते हैं। अंडाशय उच्च तथा बीज भ्रूणपोष-विहीन होता है (एलिस्मेसी)।

श्रेणी (vii) ग्लूमेसी

परिदल या तो अनुपस्थित रहता है अथवा शल्की एवं पर्याप्त छोटा होता है। अंडाशय एककोष्ठीय तथा एक बीजांड युक्त होता है (ग्रैमिनी)।

एकबीजपत्री एवं द्विबीजपत्री पादपों के बीच के अंतर को सारणी 5.1 में दिया गया है।

सारणी 5.1 एकबीजपत्री एवं द्विबीजपत्री पादपों के विविध लक्षणों में तुलना

लक्षण	एक बीजपत्री	द्विबीज पत्री
आकार	मूसला जड़ें	अपस्थानिक जड़ें
	जालिका-मय शिराविन्यास	पत्तियों में अधिकांशतः समानांतर शिराविन्यास
	चतुष्टयी अथवा पंचतयी पुष्प (Tetramerous)	त्रिपुटी पुष्प (Trimerous)
शरीर	संवहनी पूल एक वलय में व्यवस्थित संख्या 2-6 तथा एधा सहित खुला है	(i) संवहनी पूल भरण ऊतक में छितरे हुए वितरित तथा संख्या में बहुत अधिक तथा एधा-विहीन एवं बंद

बैन्थम एवं हुकर की वर्गीकरण की अच्छाइयां

बैन्थम तथा हुकर द्वारा प्रस्तावित पादप वर्गीकरण की पद्धति, सजीव प्रदर्शों के वर्णन और साथ-साथ सुरक्षित हर्बेरियम पत्रों के वर्णन पर आधारित वर्गीकरणविदों द्वारा बहुत उपयोगी पाई गई। उन्होंने पाया कि यह मात्र एक जाति के लिए नही वरन् वंशों एवं कुलों के लिए भी उपयुक्त है। इसमें दिए गए जातियों के वर्णन समझने में सरल तो थे ही, जातियों की कुल स्तर तक की पहचान के लिए भी व्यवहारिक रूप में उपयोगी पाए गए। इस पद्धति में कई वंशों के भौगोलिक वितरण की सूचना भी दी गई थी। इस पद्धति के प्राकृतिक (जातिवृत्तीय नहीं) होने पर भी यह विकास की आधुनिक धारणा से भी साम्य रखता है। उदाहरणस्वरूप **रैनेलीज गण** इस क्रम में सबसे निम्न गुणों में से एक है तथा अब यह स्थापित किया जा चुका है कि हाल ही में प्राप्त वर्गीकरण संबंधी सूचनाओं के आधार पर यह सबसे प्राचीन है। एकबीजपत्री तथा द्विबीजपत्रीयों के स्थान भी विकासीय प्रवृत्ति से साम्य रखते हैं। यद्यपि यह पद्धति प्राकृतिक है जातिवृत्तीय नहीं। फिर भी इस पद्धति के कुछ पक्ष विकास की वर्तमान अवधारणाओं से सामीप्य दर्शाते हैं। इसे *रैनेलीज गुण* के संदर्भ में जिसे इस व्यवस्था में सर्वप्रथम रखा गया है, भली-भांति समझा जा सकता है। यह गण काल सभी प्रकार आदिगण के रूप में स्वीकृति है। इसी प्रकार एकबीजपत्रियों का द्विबीजपत्रियों से उद्गम् होना भी आधुनिक वर्गीकरण की खोजों के आधार पर समर्थन प्राप्त कर चुका है।

कमियां

बैन्थम तथा हुकर की पद्धति में नग्नबीजियों को द्विबीजपत्रियों तथा एकबीजपत्रियों के बीच स्थान देना वर्गीकीविद् उचित नहीं मानते और यह विचार संतोषजनक तथा स्वीकार्य नहीं माना गया। यह पद्धति प्राकृतिक होते हुए भी कृत्रिम लक्षणों पर आधारित होने के कारण कुल, जाति, गण के संबंध में कोई विकासशील बिंदु इंगित नहीं करती। इसके अंतर्गत निकट संबंध के कुलों को एक-दूसरे से अलग-अलग रखा गया है। मोनोक्लेमाइडी वर्ग प्राकृतिक न होकर कृत्रिम रूप में निर्मित होने का आभास देता है। इसकी पद्धति के द्वारा कीनोपोडिएसी तथा केरियोफिल्लसी जैसी जातियाँ जैसे कुल निकट संबंधित होते हुए भी पास-पास नहीं रखे जा सके।

इनकी पद्धति में ऐस्टरेसी को गैमोपेटली के प्रारंभ में तथा ऑर्चिडेसी को माइक्रोस्पर्मी में रखे जाने को विकास के आधुनिक मापदंडों के अनुसार तर्कसंगत नहीं कह सकते हैं। यह भी ध्यातव्य है कि बैन्थम तथा हुकर द्वारा अपनी वर्गीकरण की पद्धति प्रस्तुत करते समय तक डार्विन द्वारा सुझाई नई विकास संबंधी विविध अवधारणाएं सम्मुख आ चुकी थीं। फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने अपनी पद्धति में इन अवधारणाओं को क्यों समाहित नहीं किया जिससे कि इन दोषों को पूर्णतया सुधारा जा सकता था।

सारांश

सभी जीवित जीवों का वर्गीकरण करने की दो प्रमुख पद्धतियां हैं। द्विजगत पद्धति में पादप जगत के सभी पादपों और जंतु जगत में सभी जंतुओं को सम्मिलित किया जाता है। दूसरी विधि पांच जगत पद्धति है। इसमें कुछ शैवालों और कवकों को छोड़कर अन्य सभी पादपों को पादप जगत में रखा गया है। पादपों को दो उप-जगतों में बांटा गया है- क्रिप्टोगेमी एवं फैनेरोगेमी। इनमें पूर्ववर्त्ती तो पुष्पविहीन होते हैं जबकि बाद वाले पुष्प एवं बीज धारण करते हैं। क्रिप्टोगैमी को आगे थैलोफाइटा, ब्रायोफाइटा एवं टेरिडोफाइटा में विभाजित किया गया है। फैनेरोगेम बीजधारी पादप हैं और इन्हें नग्नबीजियों एवं आवृतबीजियों में बांटा गया है। थैलोफाइटा, शैवालों और कवकों से मिलकर बने हैं। जो मुख्यतः थैलस के संगठन और पोषण-विधि के आधार पर एक-दूसरे से विभेदित किए जाते हैं। शैवालों में भी हरी, लाल और भूरी प्रकार की होती हैं जो स्वपोषी होती हैं। इन्हें आगे थैलस की प्रकृति एवं वर्णक के रंग के आधार पर विभक्त किया गया है। ब्रायोफाइटों में हरा थैलस-सम शरीर होता है। आकार, थैलस की आंतरिक संरचना एवं जननांगों के आधार पर इन्हें तीन वर्गों हिपेटिकी (लिवरवर्ट) एन्थोसिरोटी (होर्नवर्ट) एवं मसाई (मॉस) में बांटा गया है। टेरिडोफाइटों में प्रकन्द-युक्त पादप शरीर होता है। जिस पर भली-भांति परिवर्धित मूलाभ एवं पत्तियां लगी होती हैं। इनमें विविध प्रकार के संवहनी-तंत्र विद्यमान होते हैं।

इस समूह को साइलौप्सिडा लाइकोप्सिडा, स्फीनोप्सिडा एवं टीरोप्सिडा में शरीर के संगठन, संवहनी तंत्र की प्रकृति एवं जनन विधि के आधार पर विभाजित किया गया है।

बीजधारी फैनेरोगेमों को प्रमुखतः नग्नबीजियों एवं आवृतबीजियों में बांटा गया है। इनमें से पूर्ववर्त्ती तो नग्नबीजधारी हैं जबकि पश्चवर्त्तियों में बीज अंडाशयों (फलों) में आवरित होते हैं। नग्नबीजियों और आवृतबीजियों दोनों को ही बीजों की विद्यमानता के फलस्वरूप बीजधारी वर्ग में रखा गया है।

नग्नबीजी पादप एक पूर्ण विकसित शरीर जो जड़, तना एवं पत्तियों में विभाजित होता हैं, से बने होते हैं। उनके बीज नग्न होते हैं। अधिकतर पौधे एक पूर्ण विकसित शंकु उत्पन्न करते हैं जिनमें बीजाणुधानियां होती हैं। नग्नबीजी पादप साइकेडोप्सिडा, कोनीफेरोप्सिडा एवं नीटोप्सिडा वर्गों में विभाजित किए गए हैं।

बीजपत्री पौधों को विभाजित करने के लिए कई पद्धतियां विद्यमान हैं। एक पद्धति प्राकृतिक संबंधों पर आधारित हैं जिसे बैन्थम एवं हुकर नामक वैज्ञानिकों ने प्रस्तावित किया था। इस वर्गीकरण में पादपों को द्विबीजपत्री, नग्नबीजी एवं एकबीजपत्री वर्गों में वानस्पतिक एवं पुष्पी संरचनाओं के आधार पर बांटा गया है। द्विबीजपत्री पौधों में जालिकावत शिराविन्यास खुले संवहन पूल, बीजों में दो दल और चार या पांच भागीय पुष्प होते हैं। द्विबीजपत्री पादपों को पोलीपेटली, गेमोपेटली एवं मोनोक्लेमाइडी उपवर्गों में पुष्प संरचना के आधार पर बांटा गया हैं। इन उपवर्गों को आगे श्रेणी, गण एवं कुलों में विभाजित किया गया है। एकबीजपत्री पादप अधिकांशतः समानान्तर शिराविन्यास, एकपत्री बीज एवं त्रिभागीय पुष्प रखते हैं। संवहन पूल बंद एवं बिखरे होते हैं। एकबीज पत्री सात सीरीज में विभाजित किए गए हैं।

बैन्थम एवं हुकर का वर्गीकरण पादपालय एवं वानस्पतिक उद्यानों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। एक प्राकृतिक पद्धति होने के कारण यह जातिवृत्तीय संबंधों की कुछ वर्तमान अवधारणों से साम्य दर्शाता है। लेकिन इसमें नग्नबीजी पौधों की स्थिति जो द्विबीजपत्री एवं एकबीजपत्री पौधों का मध्य है, अनुचित लगती है। विकासीय आधार पर वंशों, कुलों एवं गुणों को समूहित करने की दृष्टि, से भी निर्बल है, क्योंकि इसके अनुसार कुछ निकट संबंधी कुलों को दूर-दूर रखा गया है।

अभ्यास

1. क्रिप्टोगेमी तथा फेनेरोगेमी में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. शैवालों में जनन की सामान्य विधियों की सूची बनाइए।
3. शैवाल के किसी एककोशिक, कशाभिका-रहित सदस्य का चित्र बनाइए।
4. कोई एक शैवाल कवक से किस प्रकार अंतर दर्शाता है ?
5. शैवालों में पाए जाने वाले विभिन्न वर्णकों को नामित कीजिए।
6. शैवालों के वर्गीकरण के कौन-कौन से आधार हैं ?
7. ब्रायोफाइटों में पीढ़ियों के एकांतरण का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
8. टेरिडोफाइटों के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए।
9. टेरिडोफाइटा के चार वर्गों के नाम बताइए।
10. टेरिडोफाइटा में बीजाणुपर्णओं की प्रकृति का वर्णन कीजिए।
11. नग्नबीजियों के मुख्य लक्षणों का वर्णन कीजिए।
12. द्विबीजपत्रों तथा एकबीजपत्रों की पहचान आप कैसे करेंगे ?
13. उन दो लक्षणों को नामित कीजिए जो द्विबीजपत्रियों को तीन उपवर्गों में वर्गीकरण के लिए प्रयोग किए जाते हैं।
14. उपवर्ग संयुक्तदली की तीन कौन-कौन सी श्रेणियां हैं?
15. मोनोक्लेमाइडी को इनकम्लीटी भी कहा जाता है, क्यों ?
16. मोनोक्लेमाइडी को श्रेणियों में विभाजित करने के कौन-कौन से प्रमुख लक्षण प्रयोग किए जाते हैं ?

17. बैन्थम तथा हुकर की बीजधारी पादपों की वर्गीकरण विधि की कमियों तथा अच्छाइयों का वर्णन कीजिए।

18. तकनीकी शब्द ट्रेकियोफाइटा की व्याख्या कीजिए।

19. कॉलम (I) के पादपों को (II) के पादप समूह से सुमेलित कीजिए।

	कॉलम *I* पादप	कॉलम *II* समूह
(क)	*क्लेमाइडोमोनास*	(1) पुष्पी पादप
(ख)	*साइकस*	(2) टेरिडोफाइट
(ग)	*ऐडिएन्टम*	(3) शैवाल
(घ)	*रोजा*	(4) नग्नबीजी
		(5) कवक

20. रिक्त स्थान भरिए :

(i) पर्णागों में बीजाणुधानियां धारण करने वाले पीले तथा भूरे धब्बे ———— कहलाते हैं।

(ii) नग्नबीजियों में शंकु ———— अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(iii) पुष्पी चक्रों की त्रिपुटी स्थिति ———— का लक्षण है।

(iv) नग्नबीजी ———— बीजी पादप होते हैं। जबकि आवृतबीजी पादप ————।

(v) ———— मूल-सदृश संरचनाएं होती हैं जो ब्रायोफाइटों में पौधों को स्थापित करने और जल अवशोषण में सहायक होती हैं।

अध्याय 6

जंतुओं का वर्गीकरण

अब तक आप यह समझ चुके हैं कि जंतुओं की विविधता का अध्ययन करने के लिए वर्गीकरण एक आदर्श विधि है तथा इस विधि से आप (अध्याय 4) परिचित भी हो चुके हैं। द्विजगत वर्गीकरण विधि को दो भागों में अर्थात् पौधे तथा जंतु में बांटती है। सूक्ष्म जंतुओं के बारे में और अधिक सूचना उपलब्ध होने पर वैज्ञानिकों ने एक जगत और जोड़ा है, तथा एककोशिक पौधों एवं जंतुओं को 'प्रोटिस्टा' में रखा है। इस पद्धति के अंतर्गत 'प्लान्टी' में बहुकोशिक पौधों तथा 'ऐनीमेलिया' में केवल बहुकोशिक जंतुओं को रखा गया है। यह पाठ एककोशिक प्रोटाजोअन प्रोटिस्ट के साथ-साथ जंतुओं के वर्गीकरण में सहायक कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षणों से परिचय करने में उपयोगी होगा।

6.1 जंतुओं के कुछ सामान्य लक्षण

जंतुओं की लाखों जातियां हैं तथा वे सजीवों में बहुतायत में पाई जाती हैं। वे रचना में बहुत विविधता लिए हैं तथा एककोशिक सूक्ष्मदर्शी (amoeba) से लेकर बहुकोशिक बृहदाकार व्हेल तथा दैत्याकार स्क्विड तक इसके अंतर्गत आते हैं।

संगठन की श्रेणी तथा शरीर की निर्माण योजना

जंतु विभिन्न प्रकार की आकृति व आकार प्रदर्शित करते हैं लेकिन उनका संगठन कोशिकीय, ऊतकीय, अंगीय एवं अंगतंत्र स्तर का होता है। कोशिका स्तर का संगठन प्रोटोजोआ में देखा गया है। जिनमें जीवन की सभी क्रियाएं मात्र एककोशिका द्वारा ही संपन्न की जाती हैं, उदाहरण के लिए *अमीबा*। जंतु कोशिकाएं संरचना व कार्य में बहुत विभिन्नता लिए हुए हैं। इनमें कठोर कोशिका भित्ति नहीं होती तथा ये लचीली होती हैं। इससे उच्च स्तर का शारीरिक संगठन बहुकोशिक जंतुओं में देखा गया है इन्हें **मेटाजोआ** कहते हैं। संगठन की जटिलता के आधार पर मेटाजोआ को फिर से दो उपजगतों, **पैराजोआ** व **यूमेटाजोआ** में विभक्त किया गया है। पैराजोआ स्पंजों में कोशिकाएं बिखरी हुई समूहों रहती हैं तथा ऊतक या अंग नहीं बनाती हैं। यूमेटाजोआ जिसमें कि शेष जंतु आते हैं इसमें कोशिकाएं संरचनात्मक व कार्यशील रूप से अंग व अंग तंत्र बनाती हैं। यूमेटाजोआ की शरीर निर्माण योजना या तो अंधथैली (नाईडेरियन हाइड्रा में) या नलिका के अंदर नलिका (शेष सभी यूमेटाजोआ में) से समानता रखता है। चित्र 6.1 शरीर की विभिन्न प्रकार की निर्माण योजना प्रदर्शित करता है।

सममिति

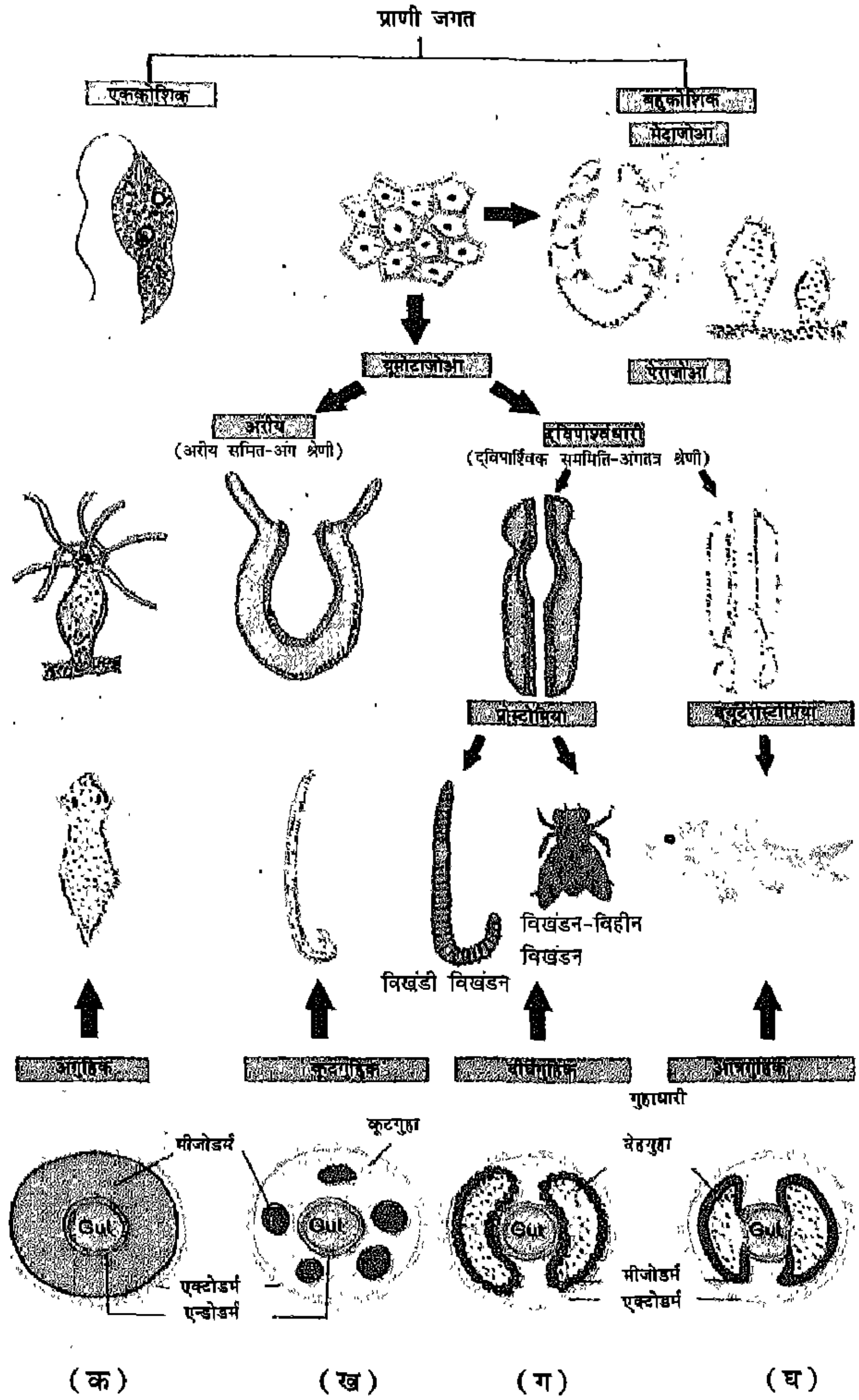
पैराजोआ जंतुओं तथा स्पंज में कोई निश्चित सममिति नहीं पायी जाती। सममिति के आधार पर यूमेटाजोआ जंतुओं को दो वर्ग में बांटा जा सकता है। शरीर के केंद्रीय अक्ष से होकर गुजरने वाली रेखा जंतुओं को दो भागों में बांटती है और ये दोनों भाग लगभग दर्पण प्रतिबिम्ब रूप के सदृश होते हैं। इसे **अरीय** (radial) सममिति कहते हैं तथा जो जंतु इसे प्रदर्शित करते हैं उन्हें **रेडिएटा** कहते हैं। उदाहरण के लिए नाईडेरियन (सी ऐनीमोन, जैलीफिश तथा मूंगे) तथा नीटाफोरेन्स (comb jellies) में इस तरह की शरीर निर्माण योजना पायी जाती है। इन जंतुओं में मुखीय तथा इसके विपरीत विमुखीय सिरा होता है लेकिन दाएं व बाएं पार्श्वभाग नहीं होते। शेष यूमेटाजोआ में शरीर दो समान दाएं व बाएं भागों में बांटा जा सकता है। इस प्रकार की सममिति को द्विपार्श्व सममिति कहते हैं तथा ऐसे जंतुओं को द्विपार्श्व **बाइलेटेरिया** कहते हैं, उदाहरण के लिए मछली। इन जंतुओं में अगला या अग्र भाग तथा पिछला या पश्च भाग होता है, साथ ही एक ऊपरी पीठ या पृष्ठ तल तथा एक पेट अथवा उदरतल होता है।

द्विकोरिक तथा त्रिकोरिक संगठन

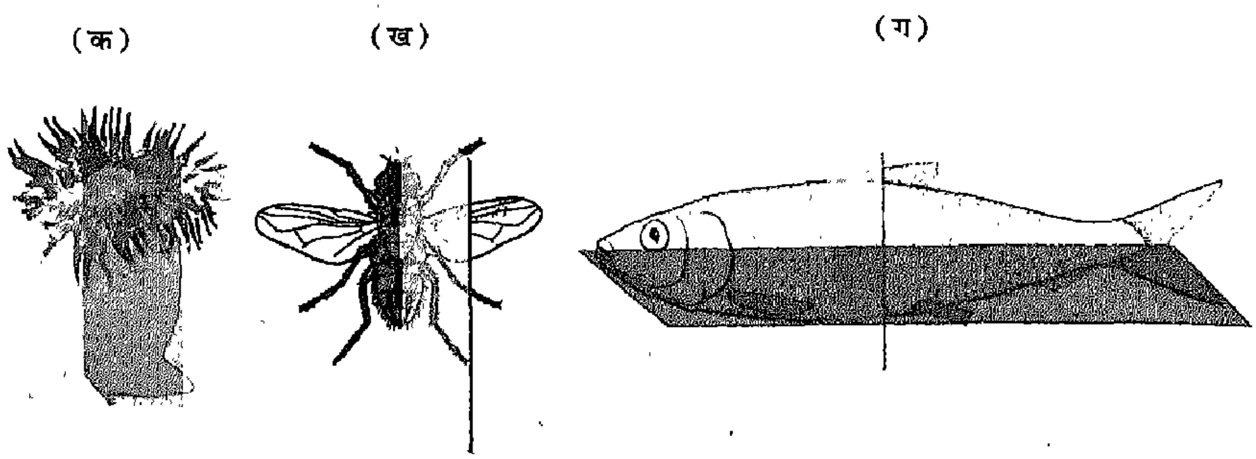
अरीय सममिति वाले जंतुओं में कोशिकाएं दो आधारभूत स्तरों में व्यवस्थित रहती हैं। बाहरी बाह्य त्वचा तथा आंतरिक अंत:त्वचा होती है तथा इनमें बीच में मध्यवर्ती मिज़ोगलिया होती हैं। इसलिए इस प्रकार के जंतुओं को **द्विकोरिक** (diploblastic) कहते हैं। बाइलेटेरिया में बाह्य त्वचा एवं अंत:त्वचा के बीच एक मध्य त्वचा भी उपस्थित होती है इसलिए इनको **त्रिकोविक** (triploblastic) जंतु भी कहते हैं। इन जीवों में भ्रूणीय ब्लास्टोपोर प्रोटोस्टोमिया में मुख तथा ड्युटरोस्टोमिया में गुदा का निर्माण करते हैं।

विखंडन

कुछ बाइलेटरिया में शरीर बहुत से खंडों या भागों का बना होता है जो कि अंगों की क्रमिक पुनरावृति प्रदर्शित करता है



चित्र 6.1 प्रोटोजोआ और मेटाजोआ में शारीरिक संगठन (श्रेणी एवं सममिति सहित) एवं परिवर्धन योजना अगुहिक में देहगुहा अनुपस्थित होती है, (क) अनुप्रस्थ काट में दर्शाया गया अन्य द्विपार्श्विक जंतुओं में देहगुहा का निर्माण (ख-घ). आभासी (कूट) गुहाधारियों में मुख्य शारीरिक गुहा, कूटगुहा होती है, (ख) दीर्णगुहिकों में प्रगुहा के निर्माण, मध्यजननस्तर के उन कोष्ठों के विभक्तीकरण द्वारा होता है जो सम्भावित आंत्र की पार्श्व दिशाओं में विद्यमान होते हैं, (ग) जब कि आंत्रगुहिकों में यह अंतश्चर्म से पार्श्व मध्यजनन कोष्ठों की वृद्धि के फलस्वरूप होता है



चित्र 6.2 शारीरिक सममिति (क) समुद्री एनीमोन में अरीय सममिति (ख) मक्खी में द्विपार्श्विक सममिति (ग) किसी द्विपार्श्वसममित जंतु में अग्र (आगे वाला) एवं पश्च (पूंछ वाला) सिरे तथा अपाक्ष (पृष्ठ) एवं अभ्यक्ष (नीचे वाली) दिशाएं होती हैं

उदाहरण–केंचुआ। इसे द्विपार्श्विकधारी कहते हैं। तथा इस प्रक्रम को **विखंडीकरण** कहते हैं।

देहगुहा

द्विपार्श्विकधारी की शरीर निर्माण योजना उनके भ्रूण की तीन प्रारंभिक भ्रूण स्तरों से बना होता है–ऐक्टोडर्म, मीजोडर्म तथा एंडोडर्म। शरीर भित्ति तथा आहार नाल के बीच में स्थित स्थान मीजोडर्म से आच्छादित होता है तथा देहगुहा (coelom) कहलाता है। शरीर के सभी आंतरिक अंग देहगुहा में पड़े रहते हैं। वे जंतु जिनमें देहगुहा नहीं पायी जाती है उन्हें अगुहिक (acoelomates) प्राणी कहते हैं, उदाहरणार्थ–चपटे कृमि। इनमें एक्टोडर्म व एन्डोडर्म के मध्य स्थित स्थान मृदूतक द्वारा भरा होता है। पैरनकाइमा, मीजोडर्म से उत्पन्न होती है। द्विपार्श्वधारी के तीसरे समूह में देहगुहा मीजोडर्म द्वारा आच्छादित नहीं होती है। इसके स्थान पर मीजोडर्म के बिखरे हुए कोण पाए जाते हैं जो कि त्वचा व आंतरिक अंगों के मध्य उपस्थित होते हैं। इस प्रकार की देहगुहा को कूटगुहा कहते हैं तथा ऐसे जंतु जिनमें कूटगुहा पाई जाती है उन्हें **कूटगुहिक** कहते हैं। उदाहरण–गोलकृमि (चित्र 6.1)।

परपोषी पोषण विधि

पौधे जो कि अपना भोजन स्वयं बनाते है इसलिए इन्हें **स्वपोषी** (autotrophs) कहते हैं, इसके विपरीत जंतु जो कि भोजन के लिए अन्य जीवों पर निर्भर रहते हैं, उन्हें **परपोषी** (heterotrophs) कहते हैं। परपोषी कई प्रकार के होते हैं जैसे **शाकाहारी** (herbivores, पौधों को खाने वाले), **मांसाहारी** (Carnivores, जंतुओं को खाने वाले) तथा **सर्वहारी** (omnivores, जंतुओं एवं पौधों को खाने वाले)। इसके अलावा कुछ अन्य जंतु भी हैं जो भोजन के लिए अन्य जीवों पर निर्भर रहते है इन्हें **परजीवी** (parasites) कहते हैं तथा यह संबंध पोषक-परजीवी संबंध कहलाता है।

सक्रिय गमन

अन्य जगत के सदस्यों की तुलना में जंतु अधिक तेज व जटिल विधि से गति करते हैं। कुछ प्राणी उड़ सकते हैं (तितली, चमगादड़ व चिड़िया), कुछ तैर सकते हैं (जैलीफिश, स्किविड, मछली, ह्वेल) तथा कुछ अन्य जमीन पर दौड़ या चल सकते हैं। प्राणियों की गति या गमन उनकी कोशिकाओं के लचीलेपन से संबंधित होती हैं, संभवतः यही जंतुओं का प्रमुख लक्षण होता है।

जनन एवं परिवर्धन

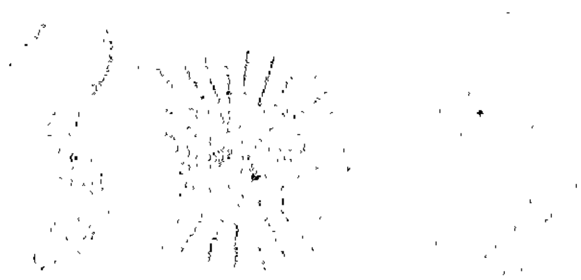
अधिकांश जंतुओं में जनन लैंगिक होता है। अर्द्धसूत्री विभाजन के दौरान बनी कोशिकाएं सीधे ही युग्मक की तरह कार्य करती हैं। नर युग्मक शुक्राणु उत्पन्न करते हैं तथा मादा अंडज उत्पन्न करती है निषेचन के दौरान युग्मकों के मिलने से युग्मनज बनता है। इस प्रकार क्रमिक परिवर्धन से युग्मक एक पूरे जीव में परिवर्धित हो जाता है।

6.2 जंतुओं का वर्गीकरण

जंतु जगत में लगभग 35 संघ शामिल किए गए हैं जिनमें से 11 को मुख्य संघों में सम्मिलित किया जाता है लगभग 99 प्रतिशत जंतु **अकशेरुकी** (बिना रीढ़ की हड्डी वाले) हैं तथा शेष **कशेरुकी** (रीढ़ की हड्डी वाले) हैं। इसके अलावा जंतुओं के जीवन की कुछ अवस्थाओं में मेरूदंड, नोटोकॉर्ड की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर भी इनको दो मुख्य समूहों **नोटोकॉर्ड विहीन** एवं **नोटोकॉर्डधारी** में विभाजित किया गया है।

संघ प्रोटोजोआ (एककोशिक प्रोटिस्ट)

संघ प्रोटोजोआ की लगभग 15, 000 जातियों का अस्तित्व इस पृथ्वी पर देखा गया है जंतु सभी सूक्ष्म जीव हैं जिनमें एक कोशिका में सभी जीवन की क्रियाएं संपन्न होती हैं। इसी वजह से प्रोटोजोआ को अकोशिकीय जीव भी कहते हैं। ये जलीय जीवन जीते हैं तथा लवणीय व अलवणीय जल में पाए जाते हैं। ये सामान्यत: परजीवी होते हैं तथा इनका वितरण विश्वव्यापी होता है। प्रोटोजोआ की कोशिका काय या तो नग्न होती हैं उदाहरण – अमीबा (Amoeba) या फिर इनकी सतह लचीले तनुलक (pellicle) की बनी होती है। कुछ प्रोटोजोआ बहुत से अकार्बनिक यौगिकों से बने हुए कवच स्रवण करते हैं उदाहरणार्थ – फोरामेनीफेंरस। प्रोटोजोआ में विभिन्न प्रकार की गति के लिए विशिष्ट रचनाएं पाई जाती हैं। जैसे – कशाभिका (Elfagellates), पक्ष्माभिका (ciliates,) या कूटपाद (Sarcodines) (चित्र 6.3)।



चित्र 6.3 विभिन्न प्रकार के संचलन अंग धारण किए हुए प्रोटोजोआ के कुछ उदाहरण: (क) कशाभी ट्रिपेनोसोमा कशाभिका सहित (ख) पक्षभकाओं-युक्त हेलिजोआन पक्षभिकाधारी (ग) पक्षभिका-युक्त टेट्राहाइमेना

परजीवी प्रकारों में गमन के अंग अनुपस्थित होते हैं। इनमें कोशिका सतह के नीचे तंत्रिकातंतु एवं संकुचनशील मायोफाइब्रिल या पेशीतंतुकाए पाई जाती हैं। अधिकांश प्रोटोजोआ स्वतंत्रजीवी तथा जल में रहने वाले होते हैं। ये प्राणीसमभोजी होते हैं तथा मुख्य रूप से जीवाणुओं, सूक्ष्म शैवाल तथा सूक्ष्म जंतुओं जैसे रोटीफर या इसके अलावा अन्य प्रोटोजोआ जिसमें इनकी जाति के सदस्य भी शामिल होते हैं, पर भोजन के लिए निर्भर रहते हैं। कुछ प्रोटोजोआ पादपसमभोजी होते हैं। इनमें पर्णहरित पाया जाता है तथा प्रकाशसंश्लेषण के द्वारा ये अपना भोजन स्वयं बनाते हैं उदाहरणार्थ : *यूग्लीना*। परजीवी प्रोटोजोआ पोषक से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। उदाहरण : *मोनोसिस्टिस* (Monocystis)।

लगभग सभी अलवणीय जलीय प्रोटोजोआ में संकुचनशील धानियां पायी जाती हैं जो कोशिका काय का परासरणीय सांद्रण बनाए रखती हैं। इस प्रकरण को **परासरणनियमन** (Osmo-regulation) कहते हैं। संकुचनशीलधानी उत्सर्जन में सहायता करती है। बहुत-से स्पोरोजोआ परजीवी हानिकारक नहीं होते हैं परंतु कुछ हानिकारक भी होते हैं, जैसे प्लाजमोडियम वाइवेक्स (Plasmodium vivax) या प्लाजमोडियम फेल्सीपेरम (Plasmodium falciparum) के द्वारा मनुष्य में मलेरिया होता है। सामान्यतया प्रोटोजोआ एककोशिक होते हैं लेकिन कुछ अमीबीय प्रकार व सभी पक्ष्माभिक प्रोटोजोआ बहुकेंद्रिकीय होते हैं।

विभिन्न प्रोटोजोआ जंतुओं में जनन का तरीका भी अलग-अलग प्रकार का होता है। सभी सारकोडान 'कशाभिक तथा पक्ष्माभिक' में अलैंगिक जनन द्विखंडन, बहुखंडन या मुकुलन के द्वारा होता है। कुछ पक्ष्माभिक, जैसे पैरामीशियम में लैंगिक जनन होता है जिसमें दो जीव एक दूसरे के नजदीक आते हैं तथा युग्मन के द्वारा आनुवांशिक पदार्थों का आदान-प्रदान करते हैं। इस प्रकार के जनन में कोई युग्मक नहीं बनता। स्पोरोजोआ में जीवन की कुछ अवस्थाओं में युग्मक बनते हैं जो कि आकारीय रूप से अलग होते हैं।

उदाहरण

स्वतंत्र विचरणीय-*यूग्लीना, अमीबा, पैरामिशियम, नोक्टिल्यूका, एलफीडियम आदि* । परजीवी – *मोनोसिस्टिस, एंटअमीबा, प्लाज्मोडियम, ट्रिपैनोसोमा, जिआर्डिया* आदि ।

संघ पोरीफेरा (छिद्र-धारी जंतु)

इस संघ के सदस्यों को सामान्यतया स्पंज के नाम से जाना जाता है। यह बहुकोशिक जंतुओं का सबसे पुरातन समूह है। स्पंज की लगभग 5000 प्रजातियां ज्ञात हैं। इनमें से अधिकांश समुद्र में पाई जाती हैं तथा चट्टानों से चिपकी रहती हैं (स्थानबद्ध)। कुछ स्वच्छ जल में रहते हैं। कुछ स्पंज 600 मिलियन वर्ष पुरानी चट्टानों में भी पाई जाती हैं। इनका आकार 1 सेमी से लेकर 1 मीटर तक है। इनमें से कुछ अरीय सममिति धारण किए हुए हैं लेकिन बड़े आकार वाली असममित होती है। ये बहुकोशिकीय होते हैं तथा कोशिका समूह शारीरिक प्लान को प्रदर्शित करते हैं। इनमें ऊतकीय श्रेणी का संगठन नहीं होता है इसलिए इन्हें उपजगत पैराजोआ (Parazoa) में सम्मिलित किया गया है (चित्र 6.4)।

स्पंज स्थानबद्ध व वृंतहीन होते हैं (चित्र 6.4) तथा विभिन्न आकारों में वृद्धि करते हैं, अलवणीय जलीय स्पंज को छोड़कर अधिकांश पानी के नीचे किसी आधार से चिपके रहते हैं। बाहरी वातावरण को असंख्य छिद्र केंद्रीय प्रकोष्ठ से जोड़ते हैं

(क) (ख)



चित्र 6.4 स्पंजों के कुछ रूप; (क) अरीयसममित एवं (ख) असममित

(चित्र 6.5)। शरीर पर कई छोटे-छोटे छिद्र आस्टिया (Ostia) मिलकर नाल-तंत्र बनाते हैं। नाल-तंत्र कशाभिक कॉलर कोशिकाओं जिन्हें कोएनोसाइटस कहते हैं, से स्तरित होती है। शरीर के शीर्ष बिंदु पर एक बड़ा छिद्र उपस्थित होता है जिसे ऑस्कुलम (Osculum) कहते हैं। नाल में ऑस्टिया के द्वारा पानी के साथ भोजन प्रवेश करता है तथा उत्सर्जी पदार्थ शुक्राणु एवं अंडे, ऑस्कुलम से बाहर निकलते हैं। स्पंज द्विस्तरीय होते हैं इसमें अमीबोसाइट, पिनाकोसाईट एवं अन्य प्रकार की कोशिकाएं सम्मिलित हैं। शरीर में आंतरिक कंकाल होता है। यह असंख्य कैल्शियम-युक्त या सिलिका-युक्त कंटिकाओं तथा स्पॉन्जिन तंतुओं से बना होता है। स्पंज में अलैंगिक जनन विखंडन द्वारा होता है। इनमें पुनरुद्भवन की अत्यधिक क्षमता पाई जाती है। लैंगिक जनन के समय कुछ कोशिकाएं, अंड एवं शुक्राणु बन जाती हैं। निषेचन के बाद युग्मज कशाभिक युक्त लार्वा में विकसित होता है जो कुछ समय तैरकर एक नए स्थान पर जाकर स्थित हो जाता है और नए स्पंज में वृद्धि कर लेता है।

उदाहरण

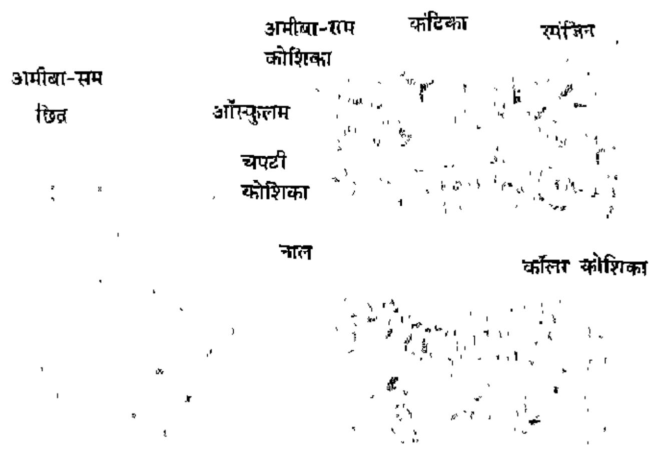
साइकन (स्काइफा), *स्पॉजिला*, *प्रोटेरिऑन* (नेपच्यून का कप), *चैलिना* (मृत मनुष्य की अंगुली), *यूस्पॉजिआ* (स्नान का स्पंज), यूप्लेक्टीला (वीनस के फूलों की टोकरी) इत्यादि।

संघ निडेरिया

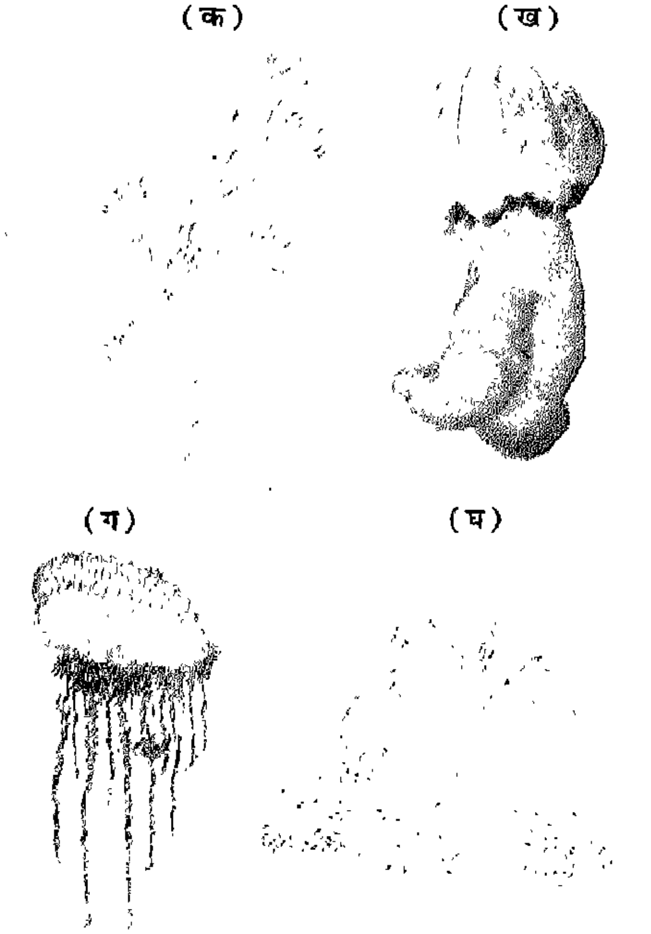
इस संघ में लगभग 9000 प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें अधिकांश समुद्र में पायी जाती हैं तथा कुछ अलवणीय जल में उपस्थित रहती हैं। इसका नाम इन मांसाहारी जंतुओं के स्पर्शक की बाह्य त्वचा पर उपस्थित दंष कोशिका या निडोब्लास्ट की उपस्थिति के आधार पर रखा गया है। निडेरियंस में ऊतकीय श्रेणी संगठन पाया जाता है तथा ये अंध-थैली-सम (blind sac) शारीरिक संगठन प्रदर्शित करते हैं तथा इनमें अरीय सममिति पाई जाती है (चित्र 6.6)।

निडेरियंस द्विस्तरीय जंतु है जिसमें शरीर भित्ति कोशिकाओं के मात्र दो स्तरों से बनी होती है। बाहरी स्तर बाह्यत्वचा होती है तथा अंदर का स्तर अंतःत्वचा का बना होता है। दोनो स्तर मीजोग्लिया की जिलेटिनस परत द्वारा अलग-अलग होते हैं (चित्र 6.7)। शरीर में केवल एक छिद्र होता है जिसे मुख छिद्र कहते हैं, जिसके द्वारा भोजन ग्रहण किया जाता है तथा अपशिष्ट पदार्थ

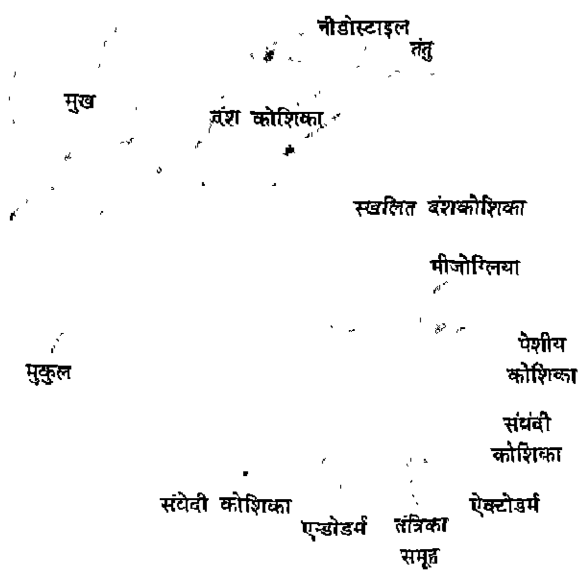
(क) (ख)



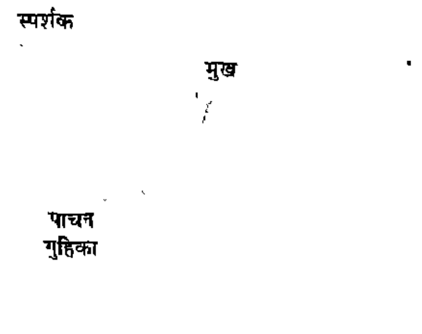
चित्र 6.5 (क) एक सरल स्पंज का रेखाचित्र जिसमें छिद्र, नाल, ऑस्कुलम एवं केंद्रीय आंतरिक कक्ष स्पष्ट है (ख) स्पंज की भित्ति की अनुप्रस्थ काट जिसमें एक छिद्र का स्तर बनाती हुई कशाभिकाधारी कॉलर कोशिकाएं, [illegible] अमीबा-जैसी कोशिकाएं एवं आधात्री पदार्थ [illegible] है



चित्र 6.6 निडेरिया समूह के कुछ सदस्य (क) ओबेलिया (ख) जैलीफिश (ग) फाइसेलिया (घ) समुद्री ऐनीमोन



चित्र 6.7 हाइड्रा की संरचना



चित्र 6.8 पॉलिप एवं मेडुसा प्रकार की शारीरिक आकृतियां (क) दंडहीन पॉलिप (ख) तरणशील मेड्यूसा

उत्सर्जित किए जाते हैं। यह छिद्र जठर संवहन गुहा में खुलता है। गुदा द्वार अनुपस्थित होता है। इस प्रकार की आंत्र जिसमें पहले एक छिद्र होता है इसे सीलेंटेरॉन कहते हैं। इसलिए इस संघ को सीलेंट्रेटा नाम दिया गया तथा इन्हें टीनोफोर्स जंतुओं के साथ वर्गीकृत किया गया। वर्तमान में टीनोफोर्स को एक नए संघ में स्थान दिया गया है।

अंत:त्वचा की कोशिकाएं जो जठरसंवहनी गुहा का अस्तर बनाती हैं जो पाचन एंजाइम उत्पन्न करने के लिए विशिष्टता लिए होती हैं। ये बाह्यकोशिकीय पाचन द्वारा भोजन का पाचन करते हैं, जो घोल के रूप में अवशोषित हो जाता है तथा अंत:त्वचा के द्वारा छोटे कणों के रूप में अंतर्ग्रहण कर लिया जाता है। अपचित पदार्थ मुख के द्वारा ही बाहर निकाल दिए जाते हैं।

निडेरियंस के शरीर के दो मुख्य रूप होते हैं एक पॉलिप तथा दूसरी मेड्यूसा (चित्र 6.8)। पॉलिप अवस्था स्थानबद्ध व एकल या समूह में रहने वाली अवस्था है जो कि बेलनाकार वृत्त से समानता दर्शाती है, इसमें मुख चारों तरफ लगे स्पर्शक ऊपर की ओर होते हैं। मेड्यूसा अवस्था एकल तथा मुक्त तरणक होती है। यह घंटी या छाते की तरह होती है जिसमें मुंह तथा अग्रेषित स्पर्शक नीचे की ओर होते हैं। मेड्यूसा को ऊपर से उलटा हुआ पॉलिप भी कह सकते हैं जिसमें वृंत छोटा हो गया है तथा जो तैर सकता है। बहुत से निडेरियंस में पालिप अवस्था कायिक मुकुलन के द्वारा मेड्यूसा अवस्था को उत्पन्न करती है तथा मेड्यूसा अवस्था लैंगिक जनन द्वारा पॉलिप बनाती है। कई जातियां जैसे कि ओबेलिया अपने जीवन-चक्र में दोनों पॉलिप एवं मेड्यूसा अवस्थाओं से गुजरते हैं, और द्विआकारिकी (dimorphism) प्रदर्शित करते हैं। पॉलिप अवस्था अलैंगिक विधि द्वारा जनन करती है जिसे मुकुलन कहते हैं, वहीं मेड्यूसा अवस्था में लैंगिक जनन के मध्य पानी में युग्मक छोड़ते हैं। अलैंगिक एवं लैंगिक अवस्थाएं द्विगुणित होती हैं केवल युग्मक कोशिकाएं ही अगुणित होती हैं।

ओबेलिया के जीवन–चक्र में इस प्रकार के अलैंगिक एवं लैंगिक अवस्था में परिवर्तन को (Metagenesis) **मेटोजेनेसिस** कहते हैं। इसे पौधों में पाई जाने वाली पीढ़ी-एकांतरण से भ्रमित नहीं होना चाहिए। संरचना एवं क्रियाशीलता में भिन्नता लेते हुए जंतु जुआइड (zooids) एक ही जीव के जीवनकाल में श्रम विभाजन प्रदर्शित करते हैं, इसे **बहु-आकारिकी** (polymorphism) भी कहते हैं। निषेचन के बाद युग्मनज पक्ष्माभिक लार्वा बनाते हैं जिसे प्लेनुला लार्वा कहते हैं जो तैरते हैं, स्थित होकर अवृंत पॉलिप के रूप में वृद्धि करते हैं। कुछ निडेरियनों जैसे **हाइड्रा** में मेड्यूसा अवस्था नहीं पायी जाती।

उदाहरण

हाइड्रा, पोरपिटा, वेलेला, फाइसेलिया (पौरचुगी मैन ऑफ वार), *ओरेलिया* (जैलीमछली), *एडेम्सिया* (*समुद्र ऐनीमेन*), *पेनेट्यूला* (समुद्री पैन), *गोरगोनिया* (समुद्री पंखा)।

संघ टीनोफोरा

टीनोफोर समुद्री जंतु होते हैं जिनका शरीर पारदर्शी तथा चपटा एवं अंडाकार होता है। इनके जीवन चक्र में पॉलिप अवस्था अनुपस्थित होती है। ये द्विपार्श्व सममिति लिए होते हैं, तथा निडोब्लास्ट कोशिकाओं से रहित होते हैं। जब स्पर्शक उपस्थित होते हैं, संख्या में दो होते हैं तथा इनमें कोलोब्लास्ट कोशिकाएं होती हैं। ये जंतु पक्ष्माभिकाओं द्वारा गति करते हैं जो कि आपस में जुड़कर कॉम्बप्लेट या कंघी पट्टी बनाते हैं। इनमें आठ मध्यकंघी पट्टिका पायी जाती हैं। जठरसंवहनीगुहा शाखित होती है तथा बाहर की तरफ मुखपथ में खुलती है। ये द्विस्तरीय जंतु हैं लेकिन इनका मीजोग्लिया निडेरिया से अलग होता है। इनमें अमीबोसाईट तथा अरेखित मांसपेशी पायी जाती है जिनकी तुलना बिखरी हुई कोशिका परत से की जा सकती है। इस लक्षण के आधार पर टीनोफोर्स को त्रिस्तरीय भी कहा जाता है। मुख के विपरीत सिरे पर विशेष संवेदी अंग उपस्थित होते हैं। यह इस संघ के सदस्यों का विशेष गुण है। ये लैंगिक विधि द्वारा ही जनन करते हैं। वे अपने जीवन चक्र में लार्वा अवस्थाएं प्रदर्शित नहीं करते।

उदाहरण

होर्मीफोरा, टीनोप्लाना, बेरोय इत्यादि।

संघ प्लेटीहैलमिन्थीज (*चपटेकृमि*)

लगभग 13,000 प्रजातियां संघ प्लेटीहैलमिंथीज के अंतर्गत आती हैं। ये पृष्ठ-अधरतल से चपटे होते हैं इसलिए इन्हें सामान्यतया चपटे कृमि कहा जाता है। यह अधिकांशतः परजीवी होते हैं जो मनुष्य सहित कई जंतुओं में निवास करते हैं। कुछ मुक्त विचरणकारी होते हैं। जो जलीय अथवा अलवणीय जल में निवास करते हैं (चित्र 6.9)।



चित्र 6.9 कुछ चपटे कृमि (क) पर्णाभि कृमि (ख) टर्बिलेरिया (ग) प्लेनेरिया (घ) फीताकृमि

ये त्रिस्तरीय तथा अखंडित जंतु हैं जो द्विपार्श्व सममिति प्रदर्शित करते हैं। ये अदेहगुहीय है। इनमें मध्यःत्वचा से उत्पन्न होने वाली मृदूतक/कोशिकाएं देहगुहीय स्थानों को भरती हैं। इनका शरीर बाहरी तरफ से पक्ष्माभिक अथवा उपत्वचा से ढका रहता है। इनमें अंगतंत्र स्तर का शारीरिक संगठन पाया जाता हे। आहार नाल अपूर्ण होती है जिसमें मुंह होता है लेकिन गुदा नहीं पाई जाती। परजीवी प्रकारों में आहारनाल नहीं पाई जाती है। ये पोषकों को सीधे ही अपनी देह सतह से अवशोषित कर लेते हैं। तंत्रिका-तंत्र के अंतर्गत सिर में तंत्रिका ऊतक का संघनन पाया जाता है जिसे मस्तिष्क गुच्छिका (brain ganglion) कहते हैं। इस गुच्छिका से एक जोड़ी अधर तंत्रिका रज्जु पीछे की तरफ जाती है। दोनों रज्जुओं को जोड़ने वाली अनुप्रस्थ तंत्रिका सीढ़ीनुमा आभास उत्पन्न करती है। इन कृमियों में बहिचर्म के स्थान पर बाहरी उपत्वचा पायी जाती हैं। सिर पर अंकुश तथा चूषक पाए जाते हैं। जीवन चक्र में सामान्यतया मध्यवर्ती आतिथेय पाए जाते हैं। चपटे कृमियों में उत्सर्जन एवं परासरण के लिए विशेष कोशिकाएं पाई जाती हैं जिन्हें ज्वाला कोशिकाएं कहते हैं।

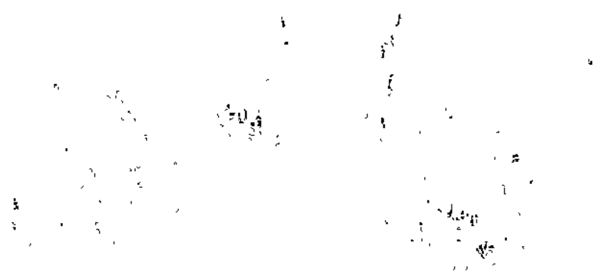
वे अलैंगिक एवं लैंगिक, दोनों प्रकार से जनन कर सकते हैं। स्पंज तथा निडेरियाओं के समान चपटे कृमि भी शरीर के किसी एक भाग से पूरे शरीर का पुनरुद्भवन कर सकते हैं। पुनरुद्भवन एक प्रकार की अलैंगिक क्रियाविधि है। यह लैंगिक प्रजनन भी कर सकते हैं। वे उभयलिंगी अथवा द्विलिंगी होते हैं। दोनों नर व मादा जनन कोशिकाएं एक ही जीव द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। शारीरिक बनावट स्वः निषेचन की अपेक्षा पर-निषेचन को सुगम बनाती है।

उदाहरण

फीताकृमि (टीनिया), *फेसिओला* (लिवर फ्लूक), *एकाइनोकोकस, शिस्टोसोमा, प्लेनेरिया* इत्यादि।

संघ नेमैटहेल्मिन्थीज (गोलकृमि)

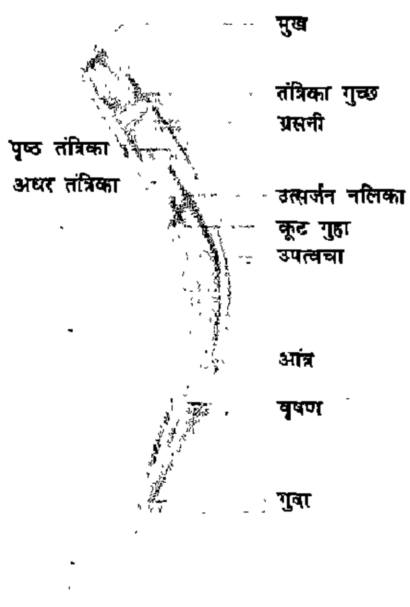
इस संघ में गोलकृमि की लगभग 15,000 जातियां पाई जाती हैं। इस संघ को निमेटोडा के नाम से भी जाना जाता है। इनका शरीर अनुप्रस्थ काट में गोलाकार होता है अत: इन्हें गोलकृमि कहा जाता है। यद्यपि यह प्रतीत नहीं होता है पर जंतुओं में ये बहुत अधिक संख्या में होते हैं। एक बड़ी संख्या में स्वतंत्र रहने वाले सूक्ष्मजीवी निमेटोड जैसे रेब्डाइटिस (Rhabditis) जैव पदार्थ बहुल मृदा में रहते हैं जब कि अन्य जलीय अथवा परजीवी होते हैं (चित्र 6.10)।



चित्र 6.10 कुछ गोलकृमि

अंग तंत्र स्तर के गोल कृमि द्विपार्श्व सममित, त्रिस्तरीय तथा कुटगुहिकीय होते हैं तथा इनकी शारीरिक संरचना नलिका के अंदर नलिका की योजनानुसार बनी होती है। शरीर बेलनाकार तथा उनके छोर नुकीले होते हैं। पाचन-तंत्र मुख, ग्रसनी, आंत्र तथा गुदा में विभक्त होता है (चित्र 6.11)।

मुख के अंदर दांत हो सकते हैं जो काटने तथा ऊतक को अंदर ले जाने में सहायक होते हैं। पेशीय ग्रसनी परजीवी निमेटोडा में पोषक से रक्त ग्रहण करने में सहायक होती है। देहभित्ति में लंबवत पेशियां तथा लचीली उपत्वचा पाई जाती है। आभासी



चित्र 6.11 एक नर गोलकृमि की संरचना

देहगुहा का निर्माण देह भित्ति तथा पाचन पथ की पेशियों द्वारा होता है। जो स्वतंत्र रूप में कार्य करती हैं। गोलकृमि लचकदार शारीरिक गति दर्शाते हैं। पृष्ठीय एवं अधरीय तंत्रिका के साथ तंत्रिका गांठें ग्रसनी के चारों तरफ पाई जाती हैं जो गमन में समन्वय दर्शाती हैं। उत्सर्जी नाल देहगुहा से उत्सर्जी पदार्थ बाहर निकालती है। नर तथा मादा आकारिकी रूप से अलग-अलग होते हैं। मादा नर से लंबी होती है। निषेचित अंडे के चारों तरफ एक कठोर परत पायी जाती है जिसकी सहायता से यह प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रह सकता है।

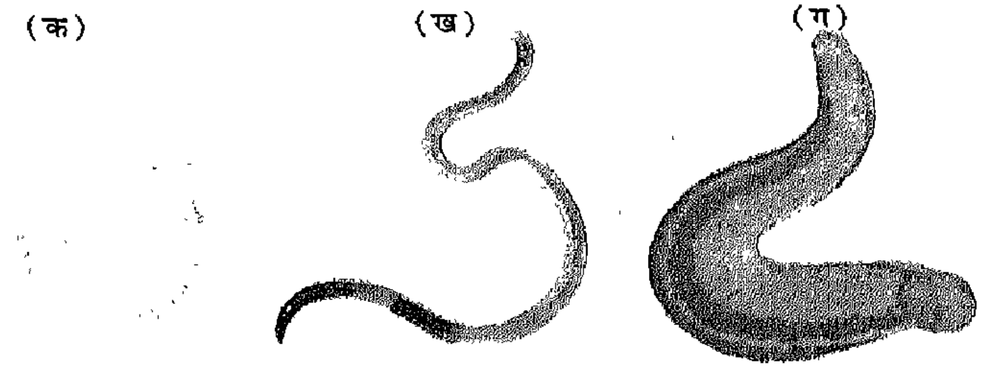
उदाहरण

एस्केरिस, वुचेरेरिया (फाइलेरिया कृमि), *एनसाइक्लोस्टोमा* (हुककृमि), *एन्टऐरोबिअस* (पिनकृमि) एवं रेब्डाइटिस।

संघ-ऐनेलिडा

संघ ऐनेलिडा में लगभग 9,000 से अधिक ऐसी जातियों का समावेश है। जिनमें विखंडन होता है तथा वास्तविक गुहा पाई जाती है। गुहा भी प्राय: पट्टों के द्वारा विभक्त रहती है। ऐनेलिडा त्रिस्तरीय, द्विपार्श्व सममिति दर्शाने वाले जंतु हैं जिनका शारीरिक संगठन अंग-तंत्र प्रकार का होता है (चित्र 6.12)। छल्लों अथवा मुद्रिकाओं (लैटिन-*एन्यूलस*), की सहायता से प्रत्येक खंड बहुत से भागों में विभक्त रहता है। अत: इस संघ को ऐनेलिडा का नाम दिया गया।

बाह्य त्वचा के द्वारा बाहर की ओर उपत्वचा का निर्माण होता है जो शरीर को ढके रखती है। शरीर की भित्ति में अनुदैर्ध्य तथा वृत्ताकार पेशियां पाई जाती हैं जो गमन के समय विपरीत संकुचन पैदा करती हैं। शरीर के निचले भाग में काइटिन-युक्त शूक होते हैं जो गमन के समय जमीन के साथ पकड़ बनाते हैं। पॉलिकीटा वर्ग के जंतुओं के पार्श्वपादों पर अत्यधिक शूक पाए जाते हैं जिस कारण इन्हें पैरापोडिया (Parapodia) कहा जाता है। जोंक, बाह्य परजीवी होती है एवं इसमें शूक या पैरापोडिया नहीं पाए जाते तथा ये पेशियों की सहायता से लहरदार गमन करती हैं। निमेटोड्स की तुलना में एनेलिडा जंतुओं का पाचन-तंत्र सुविकसित होता है तथा मुख एवं गुदा शरीर के आखिरी विपरीत छोरों पर स्थित होते हैं। इसमें पेशीय ग्रसनी होती है जो भोजन निगलने में सहायक होती है, ग्रासनाल भोजन को आमाशय तक पहुंचाता है जहां भोजन को पीसने एवं पचाने की क्रिया होती है तथा एक लंबी आंत्र जिसका मुख्य कार्य भोजन को अवशोषित करना है। अपचित अवशिष्ट गुदा द्वारा ठोस एवं दबे हुआ कृमिक अवशिष्ट के रूप बाहर निकाला जाता है। इनमें रक्तवाहिनियों से निर्मित बंद प्रकार का रक्त परिसंचरण-तंत्र पाया जाता है तथा रक्त के परिवहन हेतु हृदय भी उपस्थित होता है। जंतुओं के विकास-क्रम में एनेलिडा पहला संघ है जिसमें इस



चित्र 6.12 कुछ एनेलिड (क) नेरीस (ख) केंचुआ (ग) जोंक

प्रकार का परिसंचरण तंत्र पाया जाता है। दो मुख्य रक्त वाहिनिकाएं एक पृष्ठीय तथा एक आधारीय शाखांवित होकर शरीर के प्रत्येक खंड त्वचा, पेशियों, आंत्र तथा दूसरे अंगों में जाती हैं। रक्त का ऑक्सीकरण नम त्वचा द्वारा होता है इसीलिए केंचुआ केवल नम वातावरण में रह सकता है। उत्सर्जी अंग मुख्यता नेफ्रीडिया (एक वचन नेफ्रिडियम) होते हैं जो प्रत्येक खंड में पाए जाते हैं। यह एक विशेष प्रकार की नली के रूप में होते हैं जो गुहा से अपशिष्ट पदार्थ लेकर बाहर डालते हैं साथ ही ये जल नियमन में भी सहायक होते हैं। दोनों कार्यों का समन्वय प्रमस्तिष्क गुच्छ के जोड़े द्वारा किया जाता है जो अग्रभाग में ग्रास नाल (ग्रासिका) के ऊपर स्थित होते हैं तथा पार्श्वीय तंत्रिकाओं के द्वारा अधरीय तंत्रिका रज्जु से जुड़े होते हैं। पॉलीकीटों में जनन अंग अलग-अलग जंतुओं में होते हैं जबकि केंचुआ तथा जोंक दोनों उभयलिंगी होते हैं। इनमें ट्रोकोफोर लार्वा पाया जाता है।

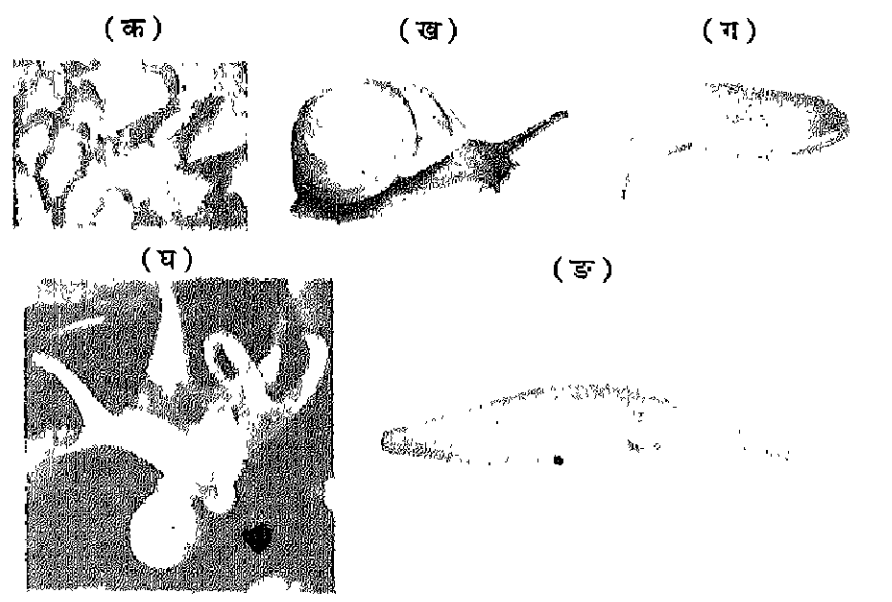
उदाहरण

नेरीस, *एफ्रोडाइट* (समुद्री चूहा), *फेरेटिमा* (केंचुआ), *ट्यूबीफैक्स*, *हिरूडिनेरीया* (जोंक), *कीटोप्टेरिस*, *टेरीबेला*, *बोनीलीआ* आदि।

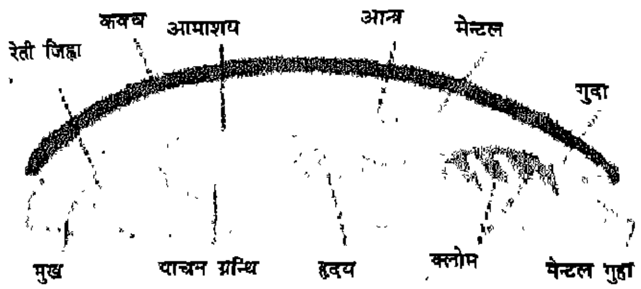
संघ मोलस्का (कोमल शरीर वाले जंतु)

संघ मोलस्का दूसरा सबसे बड़ा जंतु संघ है जिसकी लगभग 60,000 प्रजातियां हैं। मोलस्का बहुत प्राचीन संघ है जो लगभग 500 मिलियन वर्ष से विद्यमान है। ये त्रिस्तरीय, गुहीय और सामान्यतः द्विपार्श्व सममित होते हैं। ये स्थलीय, समुद्री तथा अलवणीय जल में निवास करते हैं (चित्र 6.13)। इनका शरीर कोमल परंतु कठोर कैल्शियम के कवच द्वारा ढका होता है।

चित्र 6.14 एक सामान्य मोलस्क की शारीरिक रचना प्रदर्शित करता है। इन जंतुओं का शरीर अखंडीय तथा सिर, अधर मुलायम तथा पेशीयपाद तथा एकपृष्ठीय अंतरंग कूबड़ में विभक्त होता है। त्वचा नरम तथा कूबड़ के ऊपर प्रावार का निर्माण करती



चित्र 6.13 कुछ मोलस्क (क) द्विकपाटी (ख) घोंघा (ग) कवच-रहित कंबु (घ) ऑक्टोपस (ङ) स्क्विड



चित्र 6.14 किसी मृदुकवची का परिकल्पनाशील शारीरिक गठन

है । अंतरंग कूबड़ में मुख्य रूप से पाचन तथा परिसंचरण तंत्र पाया जाता है । शरीर के बाहरी तरफ तथा प्रावार के नीचे, पंख के समान क्लोम पाए जाते हैं । क्लोम श्वसन तथा उत्सर्जन का कार्य करते हैं । सिर के अग्रभाग पर संवेदी स्पर्शक पाए जाते हैं । मुख में भोजन के लिए रेती के समान छीलने के अंग पाए जाते हैं जिन्हें रेतीजिह्वा (radula) कहते हैं । मोलस्का संघ के जंतु मुख्य रूप से अंड प्रजनक प्रकार के होते हैं तथा विकास ट्रोकोफोर लार्वा या वेलीगर लार्वा के द्वारा होता है ।

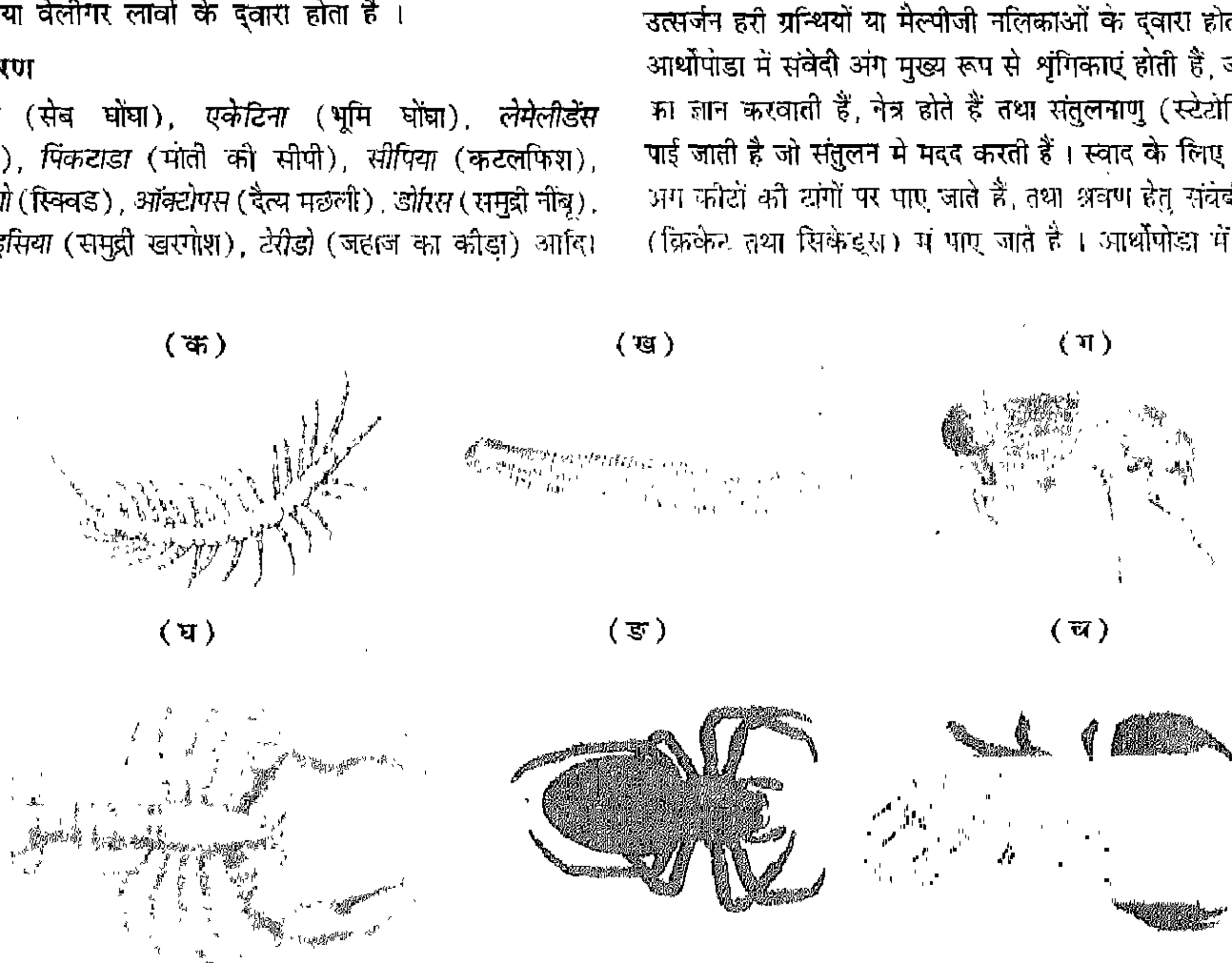
उदाहरण

पाइला (सेब घोंघा), *एकेटिना* (भूमि घोंघा), *लेमेलीडेंस* (सीपी), *पिंकटाडा* (मोती की सीपी), *सीपिया* (कटलफिश), *लोलिगो* (स्क्विड), *ऑक्टोपस* (दैत्य मछली), *डोरिस* (समुद्री नींबू), *एपलाइसिया* (समुद्री खरगोश), *टेरीडो* (जहाज का कीड़ा) आदि।

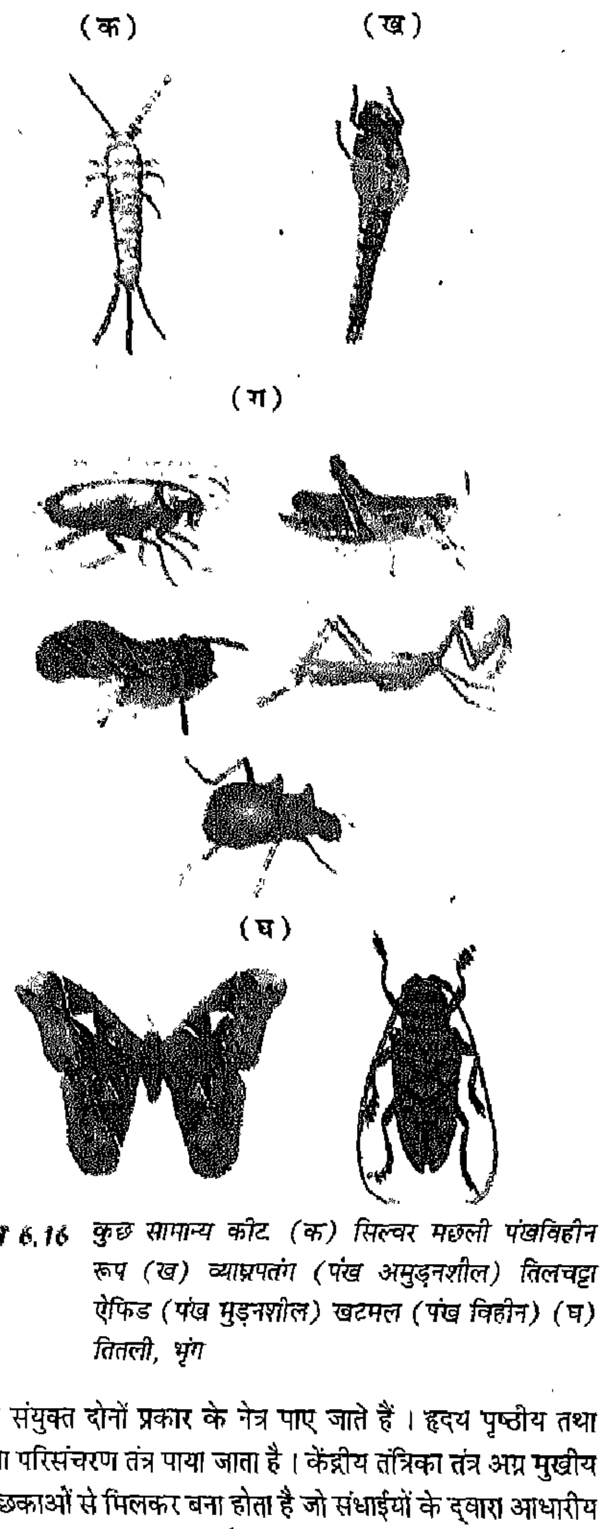
संघ आर्थोपोडा (*संधियुक्त उपांग वाले जंतु*)

संघ आर्थोपोडा प्राणि जगत का सबसे बड़ा संघ है, जिसकी लगभग 9,00,000 प्रजातियां ज्ञात हैं । ये त्रिस्तरीय, गुहीय तथा द्विपार्श्व सममिति वाले होते हैं चित्र (6.15, 6.16) । इनमें काइटनी क्यूटिकल का बर्हिकंकाल होता है । शरीर खंडीय होता है, प्रत्येक खंड पर एक जोड़ी उपांग पाए जाते हैं जो संधियुक्त बर्हिकंकाल से ढके रहते हैं । एनेलिडा की तरह इस संघ के जंतुओं में खंड पट्टिकाओं द्वारा अलग नहीं होते हैं । शरीर सिर, वक्ष तथा उदर में बंटा होता है, कभी-कभी सिर तथा वक्ष मिलकर शिरोवक्ष (सिफैलोथोरेक्स) बनाते हैं। सिर बहुत से जुड़े हुए खंडों से बना होता है जहां उपांग रूपांतरित होकर शृंगिकाओं (स्पर्शक) के समान कार्य करते हैं । अरेकनिड में शृंगिकाएं नहीं पाई जातीं । वक्षीय भाग पर टांगें तथा पंख होते हैं तथा कीटों में उदरीय भाग पर टांगें नहीं पाई जातीं ।

श्वसन अंग क्लोम, पुस्तक क्लोम, पुस्तक फुफफुस एवम् श्वसनिकाओं के द्वारा होता है । वृक्कक अनुपस्थित होते हैं व उत्सर्जन हरी ग्रन्थियों या मैल्पीजी नलिकाओं के द्वारा होता है । आर्थोपोडा में संवेदी अंग मुख्य रूप से शृंगिकाएं होती हैं, जो गंध का ज्ञान करवाती हैं, नेत्र होते हैं तथा संतुलनाणु (स्टेटोसिस्ट) पाई जाती है जो संतुलन मे मदद करती हैं । स्वाद के लिए संवेदी अंग कीटों की टांगों पर पाए जाते हैं, तथा श्रवण हेतु संवेदी अंग (क्रिकेन तथा सिकेडस) में पाए जाते है । आर्थोपोडा में सरल



चित्र 6.15 कुछ सामान्य सन्धिपाद. (क) शतपाद (ख) सहस्रपाद (ग) भृंग (घ) झींगा (ङ) मकड़ी एवं (च) बिच्छू



चित्र 6.16 कुछ सामान्य कीट (क) सिल्वर मछली पंखविहीन रूप (ख) व्याघ्रपतंग (पंख अमुड़नशील) तिलचट्टा ऐफिड (पंख मुड़नशील) खटमल (पंख विहीन) (घ) तितली, भृंग

तथा संयुक्त दोनों प्रकार के नेत्र पाए जाते हैं । हृदय पृष्ठीय तथा खुला परिसंचरण तंत्र पाया जाता है । केंद्रीय तंत्रिका तंत्र अग्र मुखीय गुच्छिकाओं से मिलकर बना होता है जो संधाईयों के द्वारा आधारीय तंत्रिका रज्जु से जुड़े होते हैं यह दो तथा खंडीय गुच्छिका तथा तंत्रिकाओं से बने होते हैं ।

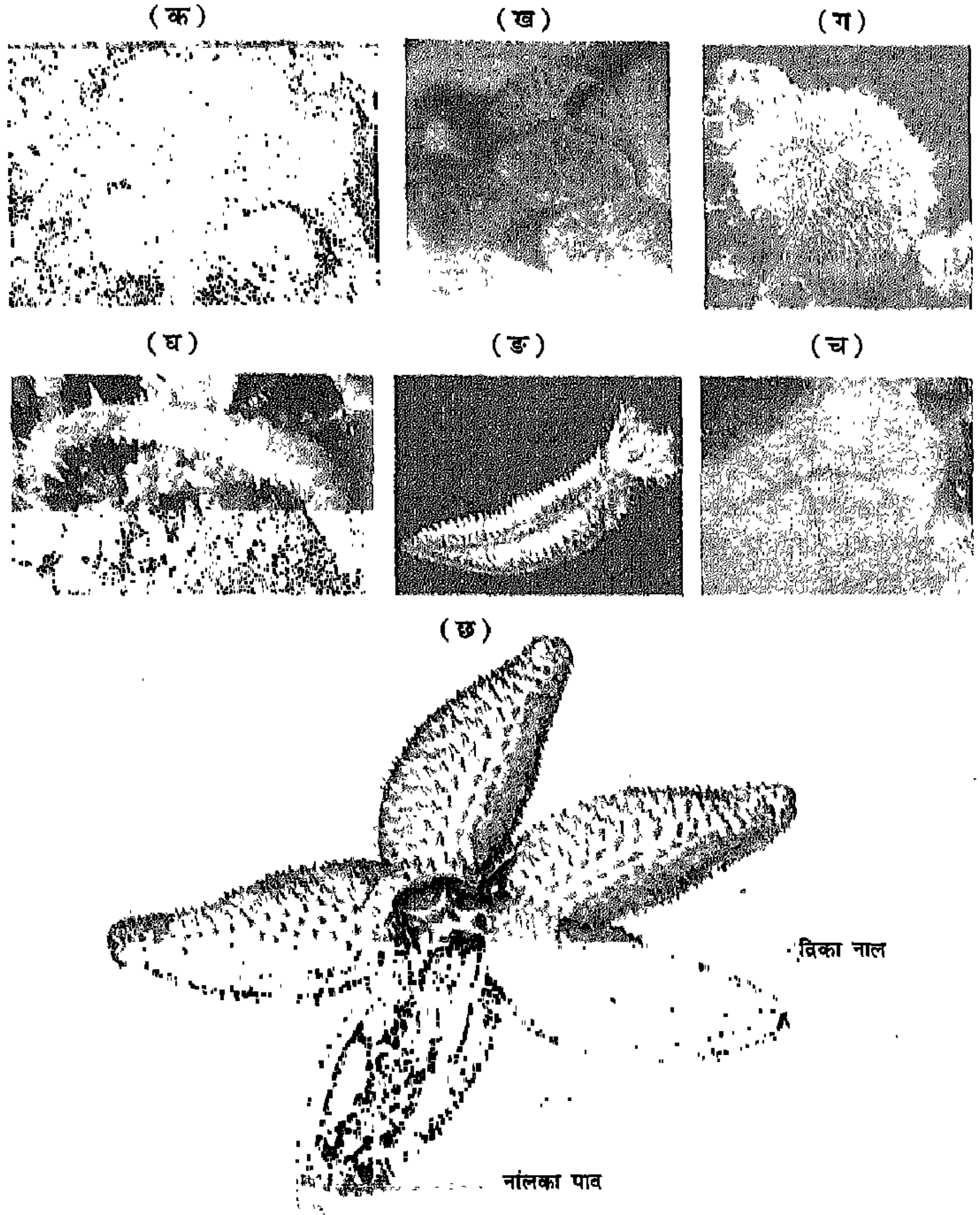
आर्थोपोडा एकलिंगी होते हैं । कुछ जलीय आर्थोपोडा जंतुओं से बाह्य निषेचन में नर व मादा कोशिकाएं जल में संयुग्मित होती हैं । लेकिन कुछ में आंतरिक निषेचन पाया जाता है । नर मादा के जनन अंग में शुक्राणु छोड़ते हैं । सभी स्थलीय आर्थोपोडा जंतुओं में निषेचन आंतरिक होता है । ज्यादातर आर्थोपोडा जंतु अंड प्रजक होते हैं । लेकिन कुछ जैसे बिच्छू में अंडे का निष्कासन मादा के शरीर में होता है । एक समय में पांच बच्चों को जन्म देते हैं ये सजीव प्रजक होते हैं । बहुत से आर्थोपोडा जंतुओं का विकास परिवर्धन सीधा होता है, जो बच्चा अंडे से बाहर आता है वह वयस्क के समरूप होते हैं तथा उनकी आदत एक समान होती है । ये निमोचन की क्रिया द्वारा बढ़ते हैं । कुछ में अंडे से स्वतंत्र लार्वा बनता है जो कि अपने वयस्क से भिन्न होता है । वह क्रिया जिसके द्वारा लार्वा से व्यस्क का निर्माण होता है उस क्रिया को **कायान्तरण** कहते हैं । लार्वा तथा वयस्क दोनों अपनी भोजन लेने की क्रिया तथा आवासीय प्रकृति में भिन्नता रखते हैं ।

उदाहरण

अरेनियस (गार्डन स्पाईडर), *लिम्युलस* (किंग क्रेब), *बूथस* (बिच्छू), *यूपेगोरस* (हरमिटक्रेब), *क्रैंसर* (सामान्य केंकड़ा), *मैक्रोब्रेक्रियम* (झींगा), *लेपिस्मा* (सिल्वर मछली), *पेरीप्लेनेटा* (कॉकरोच), *ऐपिस* (मधुमक्खी), *ऐनोफिलीज* (मच्छर), *मस्का* (मक्खी), *लेप्टोकोरीसा* (धान का कीड़ा : गांधी पोका), *ट्रायोप्स* (टेडपोल मछली), *डेफनिया* (जलीय मक्खी), *साइक्लोप्स, स्क्विला, ऐस्टेकस* (क्रे मछली), *लीपस, बेलेनस* (बर्नाकल) इत्यादि।

संघ एकाइनोडर्मेटा (शूल-युक्त जंतु)

लगभग 6, 000 प्रजातियों का इस संघ के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है। एकाइनोडर्मेटा के सदस्यों में बाह्य त्वचा पर बहुत-से शूल पाए जाते हैं जिसके कारण इन जंतुओं को शूल-युक्त जंतु कहा जाता है । ये सभी समुद्री, त्रिस्तरीय तथा गुहीय जंतु होते हैं (चित्र 6.17) । सभी वयस्क जंतु अरीय सममिति दर्शाते हैं। शरीर पांच अक्षों में बंटा होता है (पंचपदी अरीय समिति), लार्वा द्विपार्श्व सममिति दर्शाते हैं। पट्टिका के समान संरचना वाला कैल्शियममय बर्हिकंकाल पाया जाता है जिसे ऑसिकिल कहते हैं । इनमें शरीर के नीचे की तरफ मुख तथा ऊपर की तरफ गुदा पायी जाती है । इस संघ का मुख्य लक्षण जंतुओं में स्पष्ट जल संवहन तंत्र पाया जाता है जो गुहा का एक भाग होता है । जंतुओं में अरीय नालों तथा नली के समान उपांग पाए जाते हैं जिन्हें नाल पाद कहते हैं । (चित्र 6.17 छ) । पादों का मुख्य कार्य गमन तथा भोजन पकड़ने का होता है । श्वसन के समय नालपाद क्लोम के समान कार्य करते हैं । स्पष्ट परिसंचरण तंत्र का अभाव होता है । मुद्रिका गुहा के समीप तंत्रिका का एक वलय होता है जो ग्रसिका को चारों ओर से घेरे रहती है । इससे पांच अरीय तंत्रिकाएं निकलती हैं जो प्रत्येक भुजा को जाती है । उत्सर्जन कुछ मात्रा में शरीर की परत द्वारा



चित्र 6.17 कुछ इकाइनोडर्म. (क) तारामीन (ख) सैन्ड डालर (ग) समुद्री अर्चिन (घ) होलोथूरॉइड (ङ) समुद्री ककड़ी (च) भंगुर तारा (छ) तारामीन में जल-संवहन तंत्र दर्शाने के लिए एक कटे हुए भाग का रेखाचित्र

होता है तथा कुछ अमीबीय कोशिकाओं द्वारा गुहीय द्रव में किया जाता है। ये कोशिकाएं उत्सर्जी पदार्थों का अवशोषण कर उन्हें त्वचीय क्लोम के द्वारा बाहर निकालती हैं। नर एवं मादा, अलग-अलग होते हैं। जनन अंग पांच जोड़ी पाए जाते हैं जो प्रत्येक भुजा में एक होता है। सामान्यतयां जनन पानी में होता है। परिवर्धन स्वतंत्र तैरते हुए डाईप्ल्यूरूला लार्वा द्वारा होता है। यह लार्वा एक जटिल कायांतरण की क्रिया के द्वारा एक अरीय वयस्क में बदलता है।

उदाहरण

ऐस्टेरियियास (तारा मछली या समुद्री तारा), *एकाइनस* (सी अर्चिन), *एकाइनोकार्डियम* (हृदयार्चिन), *एन्टीडॉन* (पंखतारा अथवा समुद्री लिली), *कुकुमेरिया* (समुद्री खीरा), *ऑफियूरा* (ब्रिटल तारा) इत्यादि।

संघ कॉर्डेटा (कॉर्डेट्स)

वर्गीकरण के अनुसार कार्डेट संघ के जंतुओं में (रज्जु नोटोकार्ड)

जीवन के किसी न किसी अवस्था में या भ्रूणावस्था में पाई जाती है। ऐसे जंतु जिनमें पृष्ठरज्जु अनुपस्थित होती है उन्हें **अकशेरुक प्राणी** कहा जाता है। **कशेरुकी** जंतुओं में पृष्ठ रज्जु कठोर तथा लचकदार शलाका के रूप में पाई जाती है। यह तंत्रिका रज्जु के आधारीय भाग पर पाई जाती है। सभी कशेरुकी जंतु त्रिस्तरीय, गुहीय तथा द्विपार्श्व सममिति दर्शाते हैं। ये पश्च गुदा, पूंछ तथा बंद प्रकार का रक्त परिसंचरण तंत्र रखते हैं। पृष्ठ नलिकाकार तंत्रिका रज्जु तथा ग्रसनीय क्लोम छिद्र (gill slits) भी कशेरुकियों के मुख्य लक्षण हैं। उपरोक्त वर्णित काल्पनिक कशेरुकों के लक्षण चित्र 6.18 में दिखाए गए हैं।

सारणी 6.1 के द्वारा अकशेरुक व कशेरुकियों के विशेष लक्षणों की तुलना बताते हैं। कॉर्डेटा संघ चार उपसंघों में बंटा होता है - उपसंघ **हेमीकॉर्डेटा** या **स्टोमोकॉर्डेटा**, उपसंघ **यूरोकॉर्डेटा** या **ट्यूनिकेटा**, उपसंघ **सिफेलोकॉर्डेटा** या **एक्रेनिया** तथा उपसंघ **वर्टीब्रेटा**।

प्रथम तीन उपसंघों को आद्य माना जाता है जिन्हें **प्रोटोकॉर्डेट** या **नॉनवर्टीब्रेट कॉर्डेट** कहा जाता है। ये सभी जंतु समुद्री तथा नोटोकॉर्ड-धारी होते है, परंतु मेरूदंड अनुपस्थित होती है। हेमीकॉर्डेटा में सत्य प्रष्ठरज्जु अनुपस्थित होती है परंतु क्लोमछिद्र पाए जाते हैं। यूरोकॉर्डेटा के जंतुओं में पृष्ठरज्जु मात्र लार्वा की पूंछ में पाई जाती है। सिफेलोकॉर्डेटा या एक्रेनिएटा में पृष्ठरज्जु सिर से पूंछ तक फैली रहती है। हेमीकॉर्डेटा उपसंघ के जंतुओं में सत्य पृष्ठरज्जु नहीं पाए जाने की वजह से बहुत से वर्गीकरणविद इस उपसंघ को कॉर्डेटा में सम्मिलित नहीं करते हैं।

उदाहरण

हेमीकॉर्डेटा अथवा स्टोमोकॉर्डेटा - *बेलनोगोसस* (जिव्हाकृमि) एवं *ग्लोसोबेलेनस*।



चित्र 6.18 किसी परिकल्पनाशील कशेरुकी का शारीरिक गठन

यूरोकॉर्डेटा अथवा ट्यूनीकेटा - *ऐसीडिया, सियोना, साल्पा, डोलियोलम* आदि।

सिफेलोकॉर्डेटा या एक्रेनिया-*ब्रेकियोस्टोमा* (ऐम्फिऑक्सस अथवा लेंसिलेट)

कशेरुकी उपसंघ के जंतुओं में, भ्रूणावस्था में पृष्ठ रज्जु पाई जाती है जो वयस्क अवस्था में मेरूदंड में परिवर्तित हो जाती है। कशेरुकियों की शृंखला वाला पृष्ठ रज्जु तथ्य पृष्ठीय तंत्रिका रज्जु के द्वारा घिरी रहती है। अत: सभी कशेरुकी जंतु रज्जुकी हो सकते हैं लेकिन सभी कॉर्डेट कशेरुकी नहीं होते।

कॉर्डेट के तीन मुख्य लक्षणों के अतिरिक्त कशेरुकियों में अधरीय पेशीय हृदय दो तीन या चार कोष्ठकों में बंटा होता है, वृक्क उत्सर्जन तथा जल संतुलन का कार्य करता है तथा पंख या टांगों के रूप में दो जोड़ी पार्श्व उपांग होते हैं

जबड़ों की उपस्थिति और अनुपस्थिति के आधार पर वर्टिब्रेटा उपसंघ को फिर से दो उप-समूहों में बांटा जाता है। अधिवर्ग **अग्नेथा** में जबड़ों का अभाव होता है जबकि अधिवर्ग **ग्नेथोस्टोमेटा** में जबड़े पाए जाते हैं। जीवित जंतुओं का सिर्फ एक वर्ग

सारणी 6.1 अकशेरुकी एवं कशेरुकी जंतुओं में अंतर

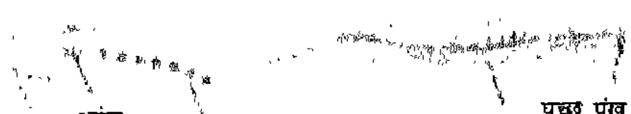
क्रम संख्या	कशेरुकी	अकशेरुकी
1.	पृष्ठरज्जु पाई जाती है	पृष्ठरज्जु अनुपस्थित होता है
2.	केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पृष्ठीय, खोखला तथा एकल होता है	केंद्रीय तंत्रिका तंत्र अधरीय, ठोस एवं दोहरा होता है
3.	ग्रसनी में क्लोमछिद्र पाए जाते हैं	क्लोम छिद्र अनुपस्थित होते हैं
4.	हृदय अधरतल पर होता है	हृदय पृष्ठतल पर होता है
5.	एक खंडी भवन युक्त पश्च गुदा पूंछ पाई जाती है।	शरीर का पश्च भाग (पाइजीडियम) अखंडित होता है

साइक्लोस्टोमेटा ही अभिवर्ग अग्नेथा का प्रतिनिधित्व करता है अन्य सभी कशेरुकी जो जबड़ाधारी होते हैं उन्हें अधिवर्ग ग्नेथोस्टोमेटा में रखा जाता है। इस अभिवर्ग को 6 वर्गों भ विभक्त किया जाता है। कांड्रीक्थीज (उपास्थि कंकाल रखने वाली मछलियां), ओस्टीक्थीज (अस्थि कंकाल रखने वाली मछलियां), उभयचर (जो जल एवं स्थल दोनों में जीवन जीते हैं), सरीसृप (रेप्टीलिया), शुष्क शल्कों द्वारा ढकी त्वचाधारी एवीज (पंख अथवा परयुक्त शरीर), मैमेलिया में (दुग्ध उत्पादन ग्रंथियां धारी)। तीन कशेरुकी वर्गों, साइक्लोस्टोमेटा, कोंड्रीक्थीज तथा ओस्टीक्थीज, के जंतुओं में चलन पंखों (*fins*) द्वारा होता है। अन्य चारों वर्गों के जंतु चतुष्पाद होते हैं जिन्हें टेट्रापोडा कहते हैं। ये वर्ग हैं -- उभयचर, सरीसृप, एवीज तथा मैमेलिया। इस अध्याय में आप विभिन्न कशेरुकी वर्गों के मुख्य तथा सामान्य लक्षणों का अध्ययन करेंगे।

वर्ग साइक्लोस्टोमेटा – इस वर्ग के सभी जंतु कुछ मछलियों पर परजीवी के रूप में लगे रहते हैं। शरीर लंबवत होता है जिस पर 6-14 जोड़ी क्लोमछिद्र एक क्लोम कक्ष में उपस्थित होते हैं जो श्वसन में सहायक होता है तथा एक वृत्ताकार एवं चूसने में सक्षम मुख। शरीर पर शल्क तथा पंख नहीं पाए जाते। एक पृष्ठीय नासा छिद्र आगे की तरफ नासा गुहा में खुलता है। जिसके पीछे एक कार्यरत पिनियल आंख पाई जाती है। जनन अंग मात्र एक होता है जिससे जनन कोशिकाओं को पूर्ण विकसित गुहा में छोड़ा जाता है। कपाल तथा कशेरुक दंड उपास्थि की बनी होती है तथा पृष्ठरज्जु बनी होती हैं। हृदय उपास्थि के बने कैप्सूलों में घिरा होता है। आमाशय अनुपस्थित होता है। परिसंचरण वर्टिब्रेटा के समान होता है। लैम्प्रे समुद्री (चित्र 6.19) होती है परंतु अंडोत्सर्ग एवं स्खलन के लिए नदी में आती हैं। यह अंडोत्सर्ग के बाद भोजन बंद कर देती है और कुछ दिन में नर व मादा की मृत्यु हो जाती है। जीवन चक्र में एमोसीट लार्वा पाया जाता है जो कायांतरण के बाद गमन कर समुद्र में चला जाता है।

उदाहरण

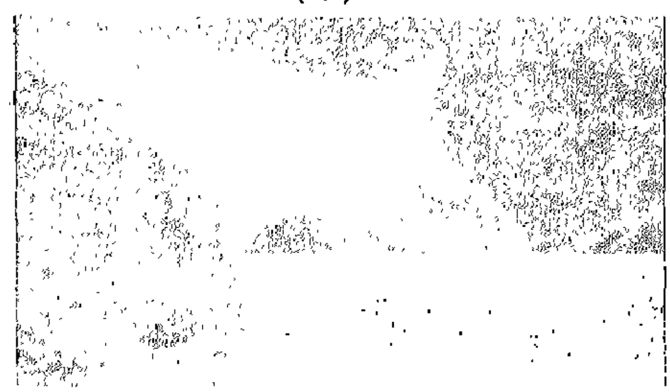
पेट्रोमाइजोन (लैम्प्रे), *मिक्सीन* (हैग मछली) इत्यादि।



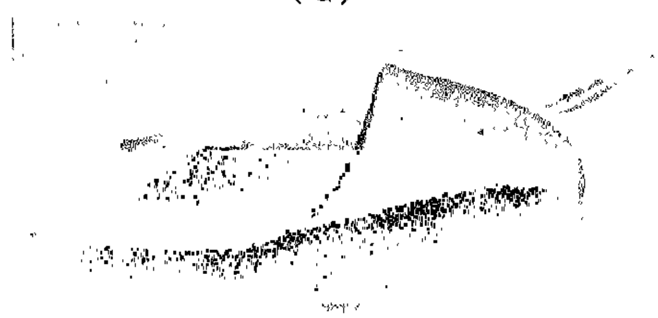
चित्र 6.19 जबड़े-रहित कशेरुकी – एग्नाथा लैम्प्रे

वर्ग कोंड्रीक्थीज – इस वर्ग के सदस्य समुद्री मछलियां होती हैं तथा इनमें अंतःकंकाल उपास्थि का बना होता है। पूरे संसार में लगभग 600 प्रजातियां उपस्थित है। इनका शरीर धारारेखीय होता हैं, जिस पर पांच जोड़ी क्लोम छिद्र पाए जाते हैं, जिन पर किसी प्रकार का कोई आच्छद नहीं पाया जाता। क्लोम छिद्र, सिर के अधरीय अथवा पार्श्व भाग में पाए जाते हैं। सामान्यतः इस वर्ग में शार्क, स्केट और रे मछलियां सम्मिलित हैं (चित्र 6.20)। शार्क रे तथा स्केट की तुलना में तेज गति से तैरने वाली शिकारी मछली है। ये समुद्र के निचले स्तर पर रहने वाली अपमार्जक तथा मॉलस्क प्राणियों को खाने वाली मछलियां होती हैं। शार्क अधिक लंबाई की होती है। इनकी लंबाई 30 सेमी से 16 मीटर तक होती है। कुछ समुद्री किनारों पर भयानक समुद्री शार्क की उपस्थिति के कारण विशेषतः दक्षिण-पश्चिम प्रशांत महासागर के किनारों पर तैरने के लिए मना किया जाता है। इस रक्षात्मक कार्यवाही का निरीक्षण हवाई सैन्य दल द्वारा किया जाता है। ये मुख्य रूप से आस्ट्रेलिया के समुद्री किनारे हैं। नरभक्षी सफेद शार्क की लंबाई 12 मीटर तक होती है। शार्क के दांत बहुत मजबूत होते हैं। त्वचा कड़ी तथा प्लेकॉयड शल्कों द्वारा ढकी होती है। अस्थि मछलियों के विपरीत शार्क मछलियों में वायु कोष व फुफ्फुस अनुपस्थित होने के कारण उत्पलावकता का नियंत्रण करते हैं। इस कारण से शार्क गहराई में आराम से तैरती है। शार्क जरायुज (अपरा) होती है तथा बच्चों को जन्म देती है। शार्क का यकृत विटामिन ए

(क)



(ख)



चित्र 6.20 उपास्थियुक्त मछलियां (क) शार्क (ख) रे

(क)

(ख)

(ग)

(घ)

(ङ)



चित्र 6.21 *अस्थियुक्त मछलियां (क) उड़नशील मछली (ख) चपटी मछली (ग) समुद्री घोड़ा (घ) ईल (सर्पमीन) (ङ) ऐंगलर मीन*

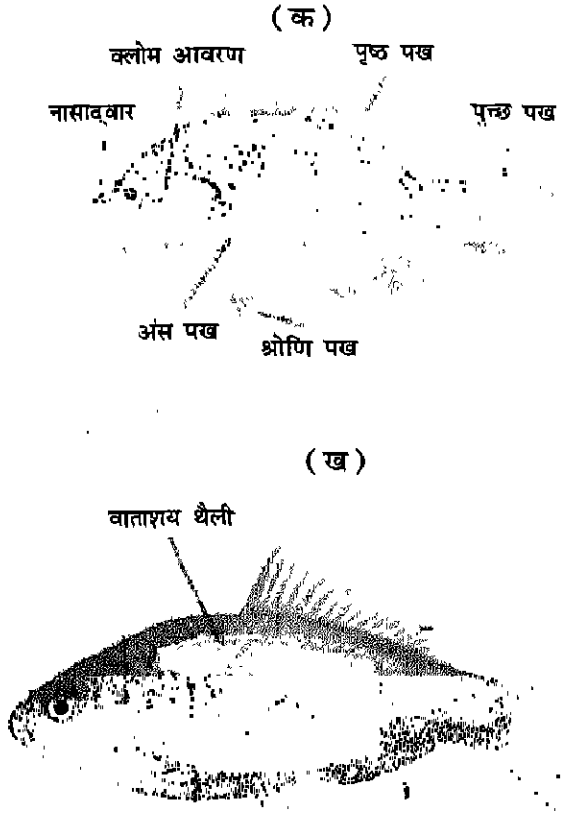
का मुख्य स्रोत है। स्केट तथा रे में विभिन्न उपकरण पाए जाते हैं जैसे टॉरपीडो (विद्युत रे) में, अंस अथवा सिर एवं पख तथा नाक के मध्य पेशियों से रूपांतरित एक विद्युत अंग पाया जाता है। इस अंग द्वारा तीव्र विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है जो किसी शिकार को लकवाग्रस्त करने के लिए पर्याप्त होती है। ट्राइगोन (स्टिंग रे) की पूंछ पर एक जहरीला डंक पाया जाता है। इनके द्वारा निकाला गया विष किसी भी प्राणी को मूर्छित करने के लिए पर्याप्त होता है।

उदाहरण

स्कालियोडॉन (कुत्तामछली), *साइलम* (शार्क), *टोरपीडो* (विद्युत रे), *ट्राइगोन* (डंक रे), *प्रिस्टिस* (आरा मछली) इत्यादि।

वर्ग ओस्टिकथीज : इस वर्ग की लगभग 25,000 जातियां ज्ञात हैं। इनका अंतःकंकाल अस्थियों का बना होता है। उपास्थिधारी मछलियों की तुलना में अस्थिधारी मछलियां छोटे तालाब से लेकर बड़े गहरे समुद्र तक में पाई जाती हैं। अस्थि-युक्त मछलियां विभिन्न आकार, प्रकार तथा लंबाई की होती हैं (चित्र 6.21)। विभिन्न आकार तथा रंगों की होने के कारण इन्हें घर में जलजीव शाला (एक्वेरियम) में रखा जाता है। अधिकांश खाद्य मछलियां अस्थि-युक्त होती हैं। मुख्य अलवणीय जलीय मछलियां जैसे कतला, रोहू, म्रिगल, कलबसू तथा लवणीय मछलियां - पोमफ्रेट, बोम्बे डक तथा भारतीय सैलमोन आदि खाने के काम आती हैं। अस्थिल मछलियों में स्कंध, श्रौणि पृष्ठ, गुदा तथा पूंछ पर पाए जाने वाले पख (fin) तैरने में सहायक होते हैं। उड़न मछली (Exocoetus) में स्कंध पंख बड़े होते हैं तथा रूपांतरित होकर मछली को कुछ मीटर तक हवा में उड़ने में सहायता करते हैं। ये पानी के बाहर उछल सकती हैं। इनमें वायु कोष पाए जाते हैं जो उत्प्लावन का कार्य करते हैं। इस कारण अस्थिल मछलियां किसी निश्चित जगह पर बिना ऊर्जा निष्कासित किए तैर सकती हैं, जबकि उपास्थिधारी मछलियां नहीं। अस्थिल मछलियों के विविध आकार तथा प्रकार का होने के कारण उन्हें किसी एक उदाहरण के द्वारा समझाना मुश्किल है। उनके पंखों तथा वायु कोष के स्थान को चित्र संख्या 6.22 की सहायता से समझा जा सकता है।

मछलियां प्राय: अंडोत्सर्जन करती हैं एवं इनमें बाह्य निषेचन होता है। कुछ मछलियां घोंसला बना कर उनमें अंडोत्सर्जन करती हैं तथा बच्चे बनने तक उनका ध्यान रखा जाता है। समुद्री घोड़े की जाति में नर के उदर पर एक थैला पाया जाता है, जिसमें मादा अंडे देती है एवं वे बच्चे शिशु में परिवर्तित होने तक थैलों में ही बने रहते हैं।



चित्र 6.22 (क) किसी अस्थियुक्त मछली के बाह्य लक्षण; (ख) वाताशय की आंतरिक स्थिति

उदाहरण

लेबियो (रोहू), *कटला* (कटला), *लेट्स* (भेंतकी), *पुंटियस* (पुंटी मछली), *हैटरोप्न्यूस्टिस* (सिंघी), *क्लेरियस* (मगुर), *अनाबुस* (कोई), *चन्ना* (लता मछली), *एक्सोसिटस* (उड़न मछली), *रेमोरा* (चूषक मछली), *ऐकोनीज* (चूषक मछली), *लोफियस* (ऐंग्लर मछली) तथा *हिप्पोकैम्पस* (समुद्री घोड़ा) ।

वर्ग : उभयचर (एम्फिबिया) – इस वर्ग की करीब 3, 000 जातियां ज्ञात हैं । जैसा कि नाम से ही इंगित है इस वर्ग के प्राणी दो जगहों पर निवास कर सकते हैं, डिम्भ अवस्था में ये मछली के समान होते हैं जो पूंछ की सहायता से पानी में तैरते हैं । लार्वा अवस्था के पूर्ण होने पर कायांतरण की क्रिया के द्वारा ये वयस्क में परिवर्तित हो जाते हैं । आकारिकी की दृष्टि से टैडपोल वयस्क से भिन्न होता है ।

वयस्क जमीन पर निवास करते हैं । जनन के लिए इन्हें पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि इनमें बाह्य निषेचन पाया जाता है । इसलिए उभयचर अपने जीवन चक्र को पूर्ण करने के लिए तालाब के पास की जगह पर जीवन जीते हैं । ये दो जोड़ी (अग्रपाद एवं पश्चपाद) की सहायता से गमन करते हैं । अग्रपादों में चार तथा पश्चपादों में पांच अंगुलियां पाई जाती हैं । शरीर सिर तथा धड़ में बंटा होता है व गर्दन अनुपस्थित होती है । त्वचा नम तथा नग्न होती है (शल्क अनुपस्थित होते हैं) आंखों पर पलक पाई जाती है । बाह्य कर्ण की जगह कर्णपटल (tympanum) पाया जाता है । आहारनाल, मूत्राशय तथा जननाल एक सामान्य कोष में खुलते हैं, जिसे अवस्कर कहा जाता है, जो कि बाहर एक छिद्र के द्वारा खुलता है जिसे गुदाद्वार (vent) कहते हैं । इनमें तीन-कोष्ठीय हृदय पाया जाता है, जो मछलियों में पाए जाने वाली दो-कोष्ठीय हृदय से अधिक विकसित होता है । यह फुफ्फुस तथा शरीर से रक्त प्राप्त करता है तथा अकेले निलय द्वारा मिश्रित रक्त शरीर में भेजा जाता है ।

यह असमतापी प्राणी है । इसमें दो अनुकपाल अस्थिकंद (occipital condyle) तथा 10 जोड़ी कपालीय तंत्रिकाएं पाई जाती हैं । लार्वा में श्वसन क्लोम के द्वारा होता हैं । कायांतरण के पश्चात् वयस्क में फुफ्फुस द्वारा श्वसन की क्रिया होती है । कुछ जंतुओं की वयस्क अवस्था में भी गिल पाए जाते हैं । नर एवं मादा अलग-अलग होते हैं । निषेचन बाह्य प्रकार का तथा डिंभक का विकास जलीय वातावरण में होता है । एक भारतीय टोड चित्र संख्या 6.23 में दर्शाया गया है ।



चित्र 6.23 सामान्य भारतीय भेक

उदाहरण

बूफो (टोड), *राना* (मेंढक), *हाइला* (वृक्ष मेंढक), *रेकोफोरस* (उड़नशील मेंढक), *ऐलाइटस* (दाई मेंढक), नेक्टूरस, सलामान्ड्रा *ऐम्बाइस्टोमा* (सैलामेन्डर), ट्राइलोटोट्रिटोन (भारतीय सैलामेन्डर), *इक्थियोफिस* (पादरहित उभयचर) आदि ।

वर्ग : सरीसृप – इस वर्ग की 6, 000 प्रजातियां ज्ञात हैं । आज के समय में यह सबसे कम ऊंचाई का तथा सरकने वाला जंतु है इसलिए इसे सरीसृप कहा जाता हैं । (चित्र 6.24, 6.25) । त्वचा शुष्क शल्क युक्त होती है इनमें किरेटिन द्वारा निर्मित बाह्य त्वचीय शल्क पाए जाते हैं । इनमें बाह्य कर्ण छिद्र नहीं पाए जाते हैं । ये दो जोड़ी पैरों

द्वारा गमन करते हैं (सांप में पाद अनुपस्थित होते हैं) प्रत्येक पैर म पांच अंगुलियां पाई जाती हैं। ये सब असमतापी जंतु हैं। एक अनुकपाल अस्थिकंद (occipital condyle) तथा 12 जोड़ी कपालीय तंत्रिकाए पायी जाती हैं। हृदय तीन-कोष्ठीय दो आलिन्द तथा एक निलय जो अपूर्ण रूप से बंटा होता है. क्रोकोडाइल में पूर्णरूपेण विभक्त हो जाता है। गुदीय छिद्र अनुप्रस्थ होता है. परंतु मगरों (Crocodiles) तथा कच्छपगणों (Chelones) में ऐसी स्थिति नहीं होती। सामान्तया सरीसृप मांसाहारी अथवा कीटाहारी होते हैं। कुछ कछुए शाकाहारी होते हैं। सांप तथा छिपकलियां केंचुली छोड़ते हैं। दो मुख्य लक्षण ये बताते हैं कि सरीसृप वास्तव में जमीन पर निवास करने वाले प्राणी हैं- पहला आंतरिक निषेचन तथा दूसरा विकसित होते हुए भ्रूण के चारों तरफ एमनिआन झिल्ली की उपस्थिति।

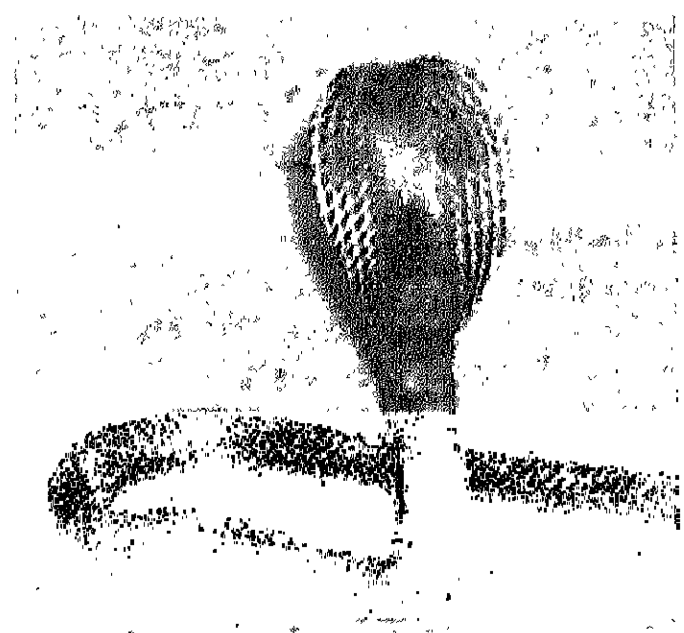
उदाहरण

चेलोन (टर्टल), *ट्रायोनिक्स* (टर्टल), *टेस्ट्यूडो* (टोरटॉइज), *स्फेनोडोन* (एक प्रकार की छिपकली जो जीवित जीवाश्म है), *हैमीडेक्टायलस* (घरेलू छिपकली), *चेमलियॉन* (पेड़ की छिपकली), *केलोटस* (बगीचे की छिपकली), *ड्रेको* (उड़न छिपकली), *ऐंगुइस* (पाद रहित छिपकली), *फ्राइनोसोमा* (सींग धारी मेंढक), *वेरेनस* (मॉनिटर), *पाइथन* (अजगर), *नाजा* (कोबरा, नाग), *क्रोकोडायल* (मगरमच्छ), *ऐलीगेटर*, *ग्रेविएलिस* (घड़ियाल) इत्यादि।

(क)
(ख)
(ग)
(घ)
(ङ)

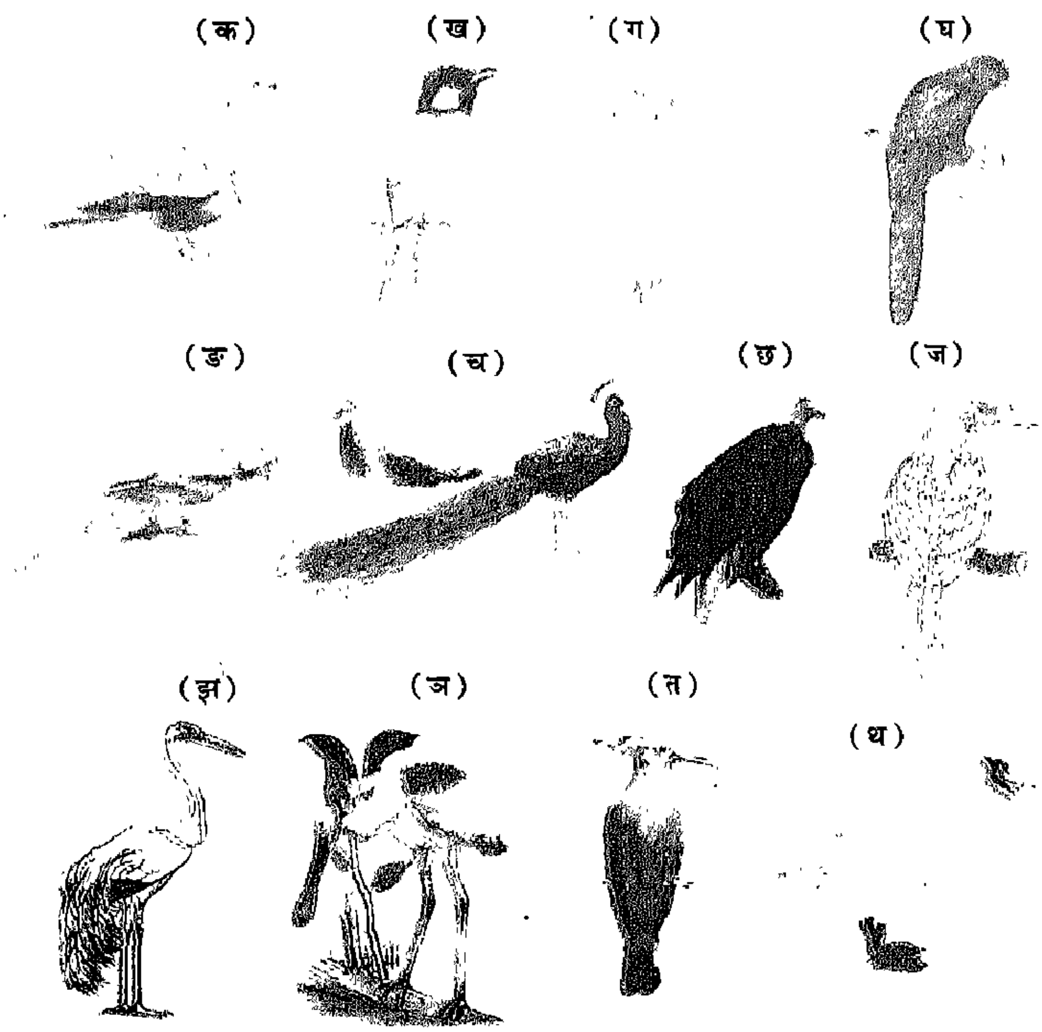


चित्र 6.24 सरीसृप (क) सामान्य कछुआ (ख) मगर (ग) भारतीय घड़ियाल (घ) भारतीय गोह (ङ) टायरेनोसोरस (विलुप्त विशालकाय सरीसृप)



चित्र 6.25 नाजा-नाजा

वर्ग : एवीज -- पक्षियों की करीब 9,000 प्रजातियां ज्ञात हैं। इस वर्ग के प्राणियों के मुख्य लक्षण हैं शरीर के ऊपर पंखों का पाया जाना तथा उड़ने की क्षमता का होना। कुछ ही पक्षी हैं - जिनमें आंशिक या पूर्णरूपेण उड़ने की क्षमता नहीं होती है। जैसे ऐमू, ओस्ट्रिच, तथा कैसोवरी। पक्षी सरीसृपों के वंशज हैं। पश्च पादों पर शल्क पाए जाते हैं। पक्षियों तथा सरीसृपों के अंडे एक जैसे लगते हैं। दोनो अंडों पर कैल्शियम का कवच पाया जाता है। भारतीय महाद्वीप में पक्षी बहुत अधिक पाए जाते हैं। कुछ सामान्य भारतीय पक्षियों को चित्र संख्या 6.26 में दर्शाया गया हैं और इनके बाह्य लक्षण चित्र संख्या 6.27 में दर्शाए गए हैं। अग्रपाद पंखों में रूपांतरित हो जाते हैं। अग्रपाद पर तीन नख-विहीन अंगुलियां तथा पश्च पाद चार नख-युक्त अंगुलियां पाई जाती हैं। पश्च पाद रूपांतरित होकर चलने, तैरने तथा पेड़ों की शाखाओं को पकड़ने में सहायता करती हैं। पूंछ के आधारीय भाग पर तैलीय ग्रंथि पाई जाती है। त्वचा में ग्रंथियां अनुपस्थित होती हैं। अंत: कंकाल की लंबी अस्थियां खोखली होती हैं तथा वो वायु कोषों से जुड़ी होती हैं, जो कि शरीर के वजन को हल्का करती हैं। एक अनुकपाल अस्थिकंद तथा 12 जोड़ी कपालीय तंत्रिकाएं पाई जाती हैं। पक्षी समतापी होते हैं तथा उच्च उपापचय दर रखते हैं तथा शरीर का ताप निश्चित बना रहता हैं। हृदय चार-कोष्ठीय होता हैं, हृदय क्रिया के समय पक्षियों में ऑक्सीकृत व अनॉक्सीकृत रक्त पूर्णरूपेण अलग-अलग रहता है। श्वसन फेफड़ों के साथ वायु कोषों के द्वारा होता है।



चित्र 6.26 सामान्य भारतीय पक्षी (क) फीजेन्ट (ख) बुलबुल (ग) उल्लू (घ) कोयल (ङ) तोता (च) मयूर (छ) गिद्ध (ज) धनेश (झ) सारस (ञ) चमसचंचु (त) हुदहुद (थ) हंस



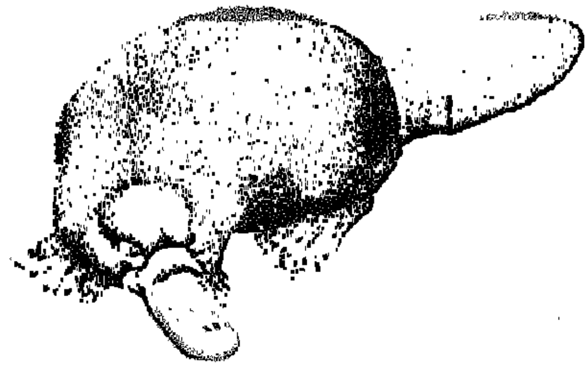
चित्र 6.27 एक पक्षी के बाह्य लक्षण

पक्षियों में दांत नही पाए जाते हैं बल्कि चोंच पाई जाती है, जिसकी सहायता से वे बीजों को पीस सकते हैं, फल उठा सकते हैं, तेजी से मांस निकाल सकते हैं, मकरंद चूसने, लकड़ी को छीलने के समान और कुछ अन्य कार्य भी कर सकते हैं। पाचन तंत्र में दो अतिरिक्त भाग पाए जाते हैं, अन्नपुट तथा गिजार्ड। अन्नपुट भोजन को संग्रहित तथा मुलायम बनाती है। पेशीय गिजार्ड भोजन को तोड़ने तथा पीसने का कार्य करती है। पक्षियों की दृष्टि संवेदिकाएं पूर्ण विकसित होती हैं। ये भोजन की तलाश में भूचिन्हों, विश्राम स्थलों आदि को उड़ते हुए ऊंचाई से देखने में सहायता करती हैं। जहां भोजन होने की संभावना हो वहां यह कुछ ऊंचाई पर उड़ते हैं। पक्षियों में गमन तथा संतुलन में समन्वय करने के लिए मस्तिष्क अच्छी प्रकार विकसित होता है। पक्षी बड़े तथा पीतक-धारी अंडे देते हैं। अत: अंडज प्राणी माना जाता है।

उदाहरण

आर्डिया (ग्रे हेरोन), *कोर्वस* (कौआ), *पेवो* (एक प्रकार का मोर), *गेलस* (मुर्गा), *ऐल्सिडो* (किंगफिशर), *कोलंबा* (कबूतर), *पिस्टिआकुला* (तोता), *बुबो* (उल्लू), *फोनीकॉप्टरस* (फ्लेमिंगो), *एक्यूरिला* (गरुड़), *नियोफ्रोन* (गिद्ध), *मिल्वुस* (चील), *स्ट्रुथियो* (शुतुरमुर्ग) आदि।

वर्ग : स्तनधारी (मैमेलिया) – इस वर्ग की करीब 4, 000 प्रजातियां ज्ञात हैं। स्तनधारी सबसे विकसित तथा प्रभावशाली जंतु होते हैं (चित्र 6.28-6.33)। इस वर्ग के जंतु संसार के सभी वातावरणों में पाए जाते हैं। जैसे ध्रुवीय ठंडे भागों पर, रेगिस्तानों में, समुद्रों में, चोटियों पर, जंगलों, घास वाली जमीन पर तथा अंधेरी गुफाओं में। संसार का सबसे प्रभावशाली स्तनधारी मनुष्य है। स्तनधारियों का सबसे मुख्य लक्षण हैं – उनमें स्तन ग्रंथियां पाई जाती हैं। जो दूध उत्पन्न करती हैं जिसे बच्चे भोजन के रूप

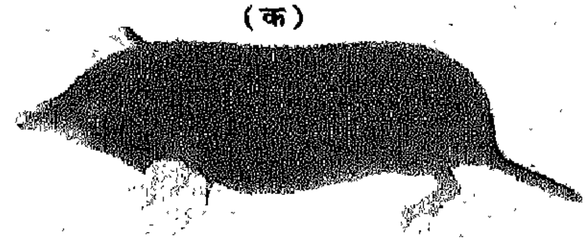


चित्र 6.28 अंडे देने वाला स्तनपायी–प्लेटीपस



चित्र 6.29 थैली में अपने बच्चे के साथ कंगारू

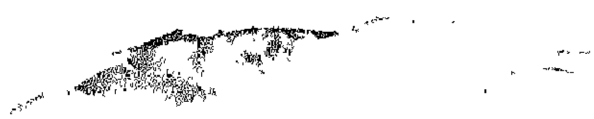
(क)



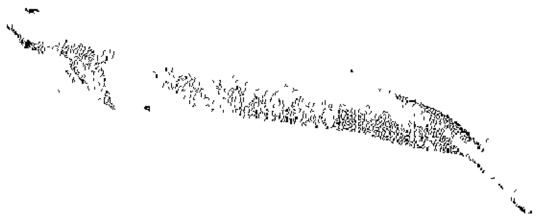
(ख)



चित्र 6.30 कीटभोजी : (क) छछून्द (ख) जाहक (सेई)



चित्र 6.31 उड़नशील स्तनपायी – चमगादड़



चित्र 6.32 ह्वेल

में ग्रहण करते हैं । त्वचा पर बाल पाए जाते हैं । बाह्य कर्ण पाए जाते हैं जबकि दूसरे वर्ग के जंतुओं में नहीं पाए जाते हैं । दांत गर्तिका में पाए जाते हैं । इस प्रकार के दांतों को थीकोडांट कहा जाता है । भोजन को तोड़ने, काटने, पीसने के आधार पर दांत चार प्रकार के होते हैं – कृंतक दंत, रदनक दंत, अग्रचर्वणक तथा चर्वणक (भिन्न दांती रूपी हिटोरोडोंट) । स्तनधारियों में एक जोड़ी दूध के दांत पाए जाते हैं । जिनके स्थान पर बाद में स्थायी दांत आ जाते हैं । इस प्रकार के दांतों के सैट को डाइफायोडांट कहा जाता है । हृदय चार-कोष्ठीय होता है जो शरीर के सभी भागों को ऑक्सीकृत रक्त भेजता है । फुफ्फुस पूर्ण विकसित होता है । श्वसन की क्रिया पेशीय डायफ्राम के द्वारा होती है । यह वक्ष गुहा तथा उदरीय गुहा के बीच में पाया जाता है । स्तनधारी सामान्यतः स्थलीय होते हैं, जो विभिन्न आवासों में पाए जाते हैं । कुछ स्तनधारी उड़ सकते हैं जैसे चमगादड़ (चित्र 6.31) तथा पानी में भी रह सकते हैं जैसे व्हेल (चित्र 6.32) । सबसे अधिक विकसित स्तनधारी वानर-समुदाय होते हैं, स्तनपोषी होने के कारण उनका समस्त विश्व में प्रभुत्व है क्योंकि इनमें संभाषण की क्षमता, मुड़नशील अंगूठा तथा तर्कक्षम चिंतन पाया जाता है (चित्र 6.33)। जैसे लैम्यूर, टैरसियर, सिएमिएन्स, बंदर, ऑरेंग-ऊटैन (ape), गोरिल्ला (ape) आदि ।

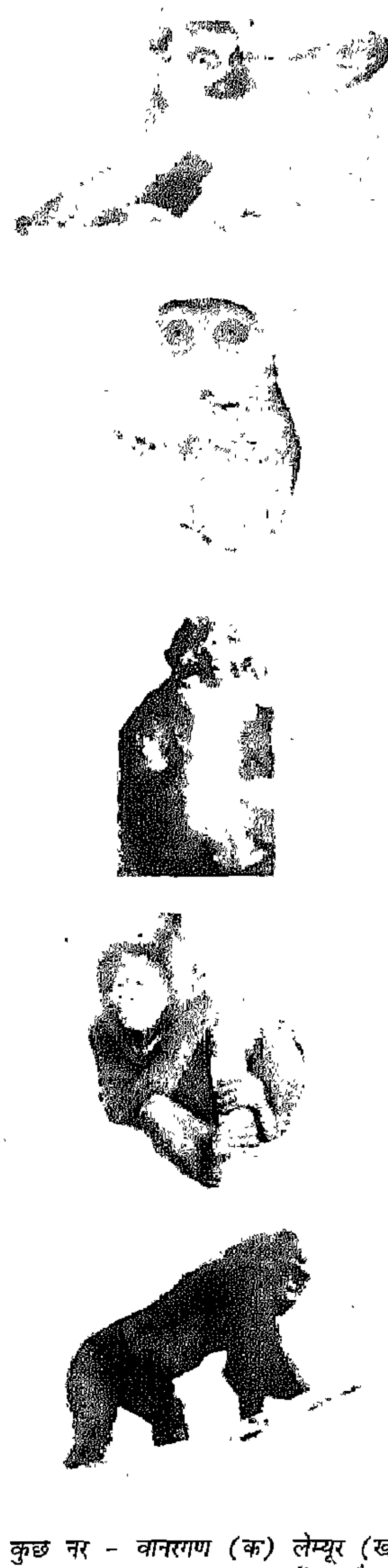
(क)

(ख)

(ग)

(घ)

(ङ)



चित्र 6.33 कुछ नर - वानरगण (क) लेम्यूर (ख) टैरसियर सीमीएन्स (ग) बंदर (घ) ऑरेंग-ऊटैन कपि (ङ) गोरिल्ला कपि

सारांश

विभिन्न प्रकार के लाखों जंतु ज्ञात किए जा चुके हैं तथा बहुत-से अभी भी खोजे जा रहे हैं। जीवों के कुछ मुख्य लक्षणों के आधार पर जंतुओं का वर्गीकरण किया जाता है। वर्गीकरण का मुख्य आधार उनकी आकारिकी तथा प्रकृति के साथ उनका संबंध है। वर्गीकरण के लिए जीवों की तुलनात्मक शरीर, भ्रूणिकी एवं जीवाश्म विज्ञान का उपयोग उनमें वर्गिकी संबंध स्थापित करने के लिए किया जाता है, तथा जीवाश्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इन जंतुओं का अध्ययन वर्गीकरण द्वारा सुगम प्रकार से किया जा सकता है जो पूर्व में तो आकारिकी पर आधारित था लेकिन तत्पश्चात प्रकृति संबंधों पर। वर्तमान में विषमपोषिता जंतुओं की विविधता एवं व्यावहारिक भिन्नताओं के लिए उत्तरदायी है। जंतुओं में भिन्न प्रकार की शारीरिक संगठन श्रेणियां, शरीर निर्माण योजना, देह-गुहा, गति, जनन पाए जाते हैं जिनका वर्गीकरण में उपयोग किया जाता है।

प्रोटोजोआ संघ के जंतु अकोशिकीय या एककोशिक होते हैं जो स्वतंत्र जीवन जीते हैं। ये परजीवी या सहजीवी के रूप में रहते हैं। इनमें स्पष्ट कोई अंग नहीं पाया जाता परंतु कोशिकांग पाए जाते हैं। पोरीफेरा संघ के जंतु बहुकोशिक होते हैं, परंतु ऊतक स्तर का अभाव होता है। लेकिन इनमें कशाभ युक्त कॉलर कोशिकाएं पाई जाती हैं। शारीरिक कार्यों का संपादन बहुत से ऑस्टियाओं के द्वारा किया जाता है। निडेरिया संघ के जंतुओं पर विशेष प्रकार के स्पर्शक मुख के चारों तरफ पाए जाते हैं। इस संघ के जंतु ज्यादातर जलीय और स्वतंत्र रूप में तैरने वाले होते हैं। टिनोफोरा समुद्री जंतु होते हैं। जिनका शरीर पारदर्शक, चपटा या अंडाकार होता है। प्लेटीहैल्मिन्थीज द्विपार्श्व सममिति दर्शाते हैं, शरीर चपटा होता है, परजीवी स्पष्ट चूषक तथा हुक रखते हैं। मॉलस्का संघ के जंतु मुलायम शरीर वाले होते हैं जो कैल्शियम से बनी खोल के द्वारा घिरे होते हैं। श्वसन क्लोम, फुफ्फुस तथा त्वचा द्वारा होता है। संधिपाद (आर्थोपोडा) संघ के जंतुओं में संधियुक्त उपांग खुले प्रकार का रक्त परिसंचरण तंत्र, सरल तथा संयुक्त प्रकार की आंखें तथा शरीर बाह्य कंकाल द्वारा घिरा रहता है जिसे काइटिन कहते हैं। यह सबसे विकसित संघ है।

एकाइनोडर्मेटा संघ के जंतुओं पर शूल त्वचा तथा कैल्शियम की पट्टी पाई जाती है। इन पर लंबे हिलने वाले कांटे पाये जाते हैं। इस संघ के जंतुओं में मुख नीचे तथा गुदा उपर होती है। मुख्य लक्षण इनमें जल संवहन तंत्र पाया जाता है। उत्सर्जन कुछ मात्रा में त्वचा द्वारा, कुछ अमीबीय कोशिकाओं के द्वारा गुहीय द्रव में होता है। पांच जनन अंग पाए जाते हैं। प्रत्येक भुजा पर एक जोड़ा जननांग पाए जाते हैं। निषेचन बाह्य प्रकार का पाया जाता है। कॉर्डेटा संघ के जंतुओं में पूरे जीवन काल या सिर्फ भ्रूणावस्था में पृष्ठरज्जु पायी जाती है। इस संघ के मुख्य लक्षण हैं – पृष्ठीय, खोखला तंत्रिका रज्जु का पाया जाना तथा क्लोम छिद्रों का जोड़ियों में विद्यमान होना। साइक्लोस्टोमेटा, कॉन्डिक्थीज तथा ऑस्ट्रीक्थीज वर्ग के जंतुओं में पख (फिन) पाए जाते है। जो गमन में सहायक होते हैं। शेष चार वर्गों-उभयचर, सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारी जंतुओं में चलन पादों द्वारा होता है तथा यह चतुष्पादी कहे जाते हैं। गमन पादों के द्वारा ही होता है। साइक्लोस्टोमेटा पूर्व कशेरुकी है। परजीवी के रूप में मछलियों पर लगे रहते हैं। कॉन्ड्रिक्थीज वर्ग के सभी जंतु समुद्री होते हैं तथा उनमें उपास्थि का अंतःकंकाल पाया जाता है। शार्क तेज तैरने वाली शिकारी मछलियां होती हैं। ये जरायुज होती हैं। एक साथ चार बच्चों का जन्म देती हैं। टोरपीडो विद्युत धारा उत्पन्न करते हैं जो शिकार को लकवाग्रस्त कर सकते हैं। उभयचर प्राणी अलवणीय जल में रहने के साथ साथ भूमि पर भी रह सकते हैं। इनका टेडपोल लार्वा मछली के समान होता है जो पूंछ की सहायता से पानी में तैरता है, जबकि वयस्क पृथ्वी पर चार पादों की सहायता से गमन करते हैं। सरीसृपों का शरीर शुष्क तथा शल्की त्वचा द्वारा आवरित होता है। ये दो जोड़ी पादों (links) की सहायता से संचलन करते हैं तथा प्रत्येक पाद पर पांच अंगुलियां पायी जाती हैं। सांपों में पाद अनुपस्थित होते हैं। सरीसृपों के दो मुख्य लक्षण हैं - (i) आंतरिक निषेचन (ii) एम्नियोन झिल्ली का पाया जाना – यह परिवर्धन करते हुए एम्नियोन भ्रूण के चारों तरफ पाई जाती है। पक्षी समतापी होते हैं। इनमें चार पाद पाए जाते हैं, अग्रपाद रूपांतरित होकर पंख का निर्माण करते हैं। जो उड़ने में सहायक होते हैं। जब कि पश्चपाद पर चार अंगुलियां पाई जाती हैं जो पक्षी को पकड़ने में, चलने में, तैरने में सहायता करती हैं। स्तनधारी संघ के जंतुओं का शरीर सिर, गर्दन वक्ष तथा पूंछ का बना होता है। अन्य मुख्य लक्षणों में स्तनधारियों के शरीर पर बाल, बाह्य कर्ण, स्तन ग्रंथियां पायी जाती हैं तथा भ्रूण अपरा द्वारा माता से अपना भोजन ग्रहण करते हैं।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :
   (i) जंतुओं की ———— विभिन्नता वर्गीकरण में सहायक होती है ।
   (ii) भोजन ग्रहण करने के विभिन्न प्रकार एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं जो जंतुओं में भिन्नताओं को ———— और जंतुओं के आधार को दर्शाता है ।
   (iii) निषेचन के परिणामस्वरूप ———— बनता है ।
   (iv) हाइड्रा की पाचन-गुहा में दोनों भोजन लेने तथा निकालने हेतु एक ही मार्ग ———— होता है।
   (v) अरीय समिमिति का अर्थ होता हैं शरीर को ———— भागों में समान रूप से विभक्त किया जा सके ।
2. विखंडनवस्था की परिभाषा लिखिए ।
3. जंतुओं में पायी जाने वाली गुहा का कार्य संक्षिप्त में बताइए ।
4. कुछ प्रोटोजोआ जंतुओं में चलन अंग अनुपस्थित होते हैं तथा वे स्वतंत्र जीवन जीते हैं तथा पूर्णपोषी परजीवी (होलोट्राफिक) जीवन दर्शाता है ? अपने विचार बताएं ।
5. "लैंगिक जनन का सबसे पहला प्रमाण सयुग्मन है ।" इस तथ्य की व्याख्या कीजिए ?
6. अलैंगिक जनन के विभिन्न माध्यमों को विस्तार से बताइए ।
7. स्पंज की गुहा में किस प्रकार की कोशिकाओं का आवरण पाया जाता हैं :
   (क) कशाभिकी कोशिकाओं का (ख) चपटी कोशिकाओं का
   (ग) कशाभिकी व चपटी दोनो कोशिकाओं का (घ) इनमें से कोई नहीं
8. हाइड्रा का शारीरिक स्तर होता है :
   (क) एकल स्तरीय (ख) द्विस्तरीय
   (ग) त्रिस्तरीय (घ) बहुस्तरीय
9. सूक्ष्मकृमि संघ (नेमाटोडा) का पाचन-तंत्र बंटा होता है :
   (क) मुख तथा आंत्र में (ख) मुख तथा ग्रसनी में
   (ग) मुख, ग्रसनी तथा आंत्र में (घ) मुख, ग्रसनी आंत्र तथा गुदा में
10. *हिरूडिनेरिया* एवं *फेरिटिमा* निम्न से किस संघ में आते हैं :
   (क) नीडेरिया (ख) प्लेटीहेलिमिन्थीज
   (ग) एनेलिडा (घ) नेमेटहेलीमिन्थीज
11. कीट पृथ्वी पर सभी प्रकार के वातावरण में जीवित रह सकते हैं क्योंकि उनमें :
   (क) एक काइटिन-धारी उपत्वचा उपस्थित होती है
   (ख) शरीर के ऊपर एक मजबूत आवरण होता हैं
   (ग) जल के प्रति अभेदन क्षमता होती है
   (घ) उपरोक्त सभी कारणों से
12. निम्नलिखित में से कौन-से कथन सत्य एवं असत्य हैं :
   (क) सहस्रपाद (मिलीपीड) में 70-100 जोड़े पाद उपस्थित होते हैं ।
   (ख) मोलस्का का शरीर सख्त होता है, परंतु यह एक नरम खोल से ढका रहता है ।
   (ग) अधिकांश एकाइनोडर्मेटा में निषेचन खुले पानी में होता है ।
   (घ) एकानोडर्मेटा कशेरुकी जंतुओं से कोई आधारभूत समानताएं प्रदर्शित नहीं करते ।

13. एक सामान्य पक्षी के पाचन तंत्र का वर्णन कीजिए ।
14. भारतीय उपमहाद्वीप में पक्षी वर्ग के किन्ही पांच सदस्यों के नाम बताइए ।
15. "स्तनधारी वर्तमान काल में सबसे अधिक सफल एवं प्रभावी जंतु हैं ।" इस कथन की पुष्टि कीजिए ।
16. यद्यपि स्तनधारी प्रायः स्थलीय (पृथ्वी पर पाए जाने वाले) जंतु हैं, फिर भी ये विविध प्रकार के आवासों में निवास करते हैं । इस कथन की पुष्टि एक उचित उदाहरण देकर करिए।

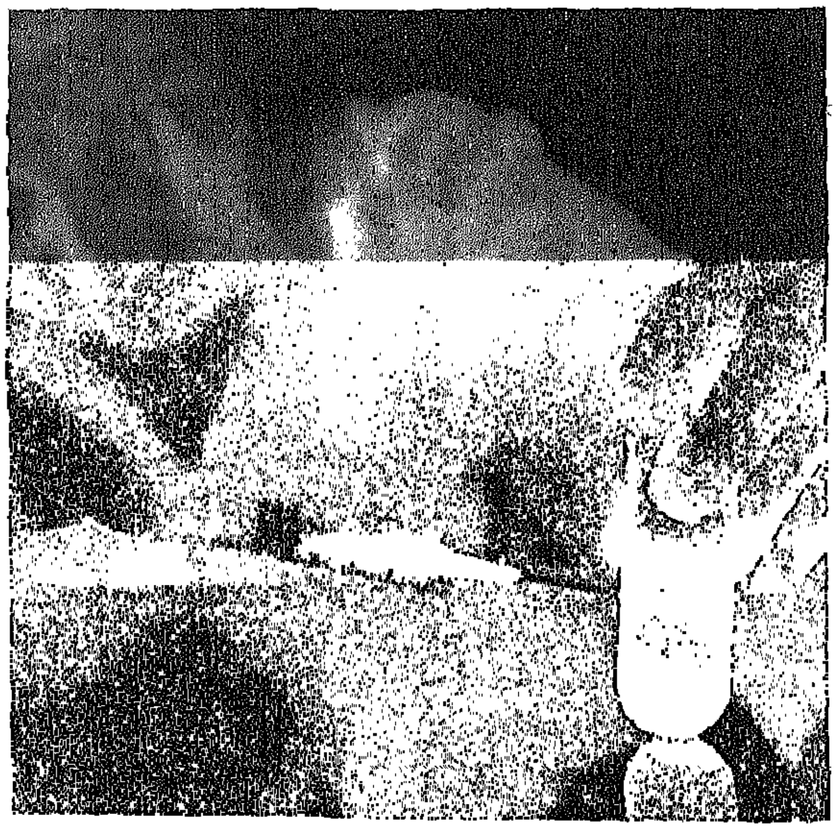
इकाई

तीन



कोशिका तथा कोशिका विभाजन

पिछली इकाई में आप जीवन की विविधता के विषय में पढ़ चुके हैं, तथा यह भी अध्ययन कर चुके हैं कि जीवों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है। आप विभिन्न प्रकार के नामकरणों से भी परिचित हैं। आप जानते हैं कि सभी जीव, कोशिकाओं से बने होते हैं तथा वास्तव में कोशिका ही जीवन की इकाई होती है। कोशिकाओं की संरचना और अंतर्वेशों को देखने के लिए विविध प्रकार के यंत्र तथा तकनीकें प्रयोग में लाई जाती हैं जिनमें सामान्य प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से लेकर इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी तक हैं। इसके अतिरिक्त वर्णलेखन विज्ञान तथा वैद्युत कण संचलन जैसी तकनीकों का प्रयोग कोशिका में विद्यमान विविध बृहद् अणुओं को पृथक करने के लिए किया जाता है। कुछ जीव मात्र एक ही कोशिका के बने होते हैं जब कि अन्य जीवों में बहुत-सी कोशिकाएं पास-पास मिलकर विभिन्न कार्य संपन्न करती हैं। इस प्रकार ये जीव बहुकोशिक जीवों का स्तर प्राप्त करते हैं। उनमें पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के ऊतक श्रमविभाजन द्वारा विविध कार्यों को संपन्न करते हैं। कोशिकाएं अत्यंत सरल संगठन असीमकेंद्रकी अथवा उच्चस्तरीय विभेदन-युक्त होकर ससीमकेंद्रकी हो सकती हैं। सभी कोशिकाएं पूर्ववर्ती कोशिकाओं के विभाजन से बनती हैं। ऐसा विभाजन जिसमें गुणसूत्र द्विगुणित होकर दो कोशिकाओं में समानतः वितरित हो जाते हैं, समसूत्री-विभाजन कहलाता है। अर्द्धसूत्री-विभाजन में गुणसूत्रों की संख्या तथा आनुवंशिक द्रव्य (डीएनए) युग्मक निर्माण हेतु आधे हो जाते हैं। इस इकाई में आप कोशिकाओं हेतु प्रयोग में आने वाले यंत्रों तथा तकनीकों का अध्ययन एककोशिक एवं बहुकोशिक स्थिति, कोशिका संरचना, कोशिकीय अणुओं तथा कोशिका विभाजन से परिचित हो सकेंगे।



जीनधारी पदार्थ (डीएनए) का निष्कर्षण करता हुआ एक वैज्ञानिक

अध्याय 7

यंत्र तथा तकनीकें

सभी जीव कोशिकाओं के बने होते हैं जो अत्यंत सूक्ष्म होती हैं। अतः ये नग्न आंखों से नहीं देखी जा सकतीं। इसलिए कोशिका तथा इसके अणुओं की संरचना के अध्ययन के लिए विविध प्रकार के यंत्रों तथा तकनीकों के उपयोग की आवश्यकता होती है। कोशिका की जांच के लिए सन् 1665 में रॉबर्ट हुक ने सबसे पहले एक सूक्ष्मदर्शी बनाया था। तभी से तीव्र और कई उन्नत तकनीकें तथा यंत्र विकसित हुए हैं। इस अध्याय में आप इनमें से कुछ के विषय में पढ़ेंगे।

7.1 सूक्ष्मदर्शिकी

सूक्ष्मदर्शिकी (Microscopy) से तात्पर्य कोशिका अध्ययन के लिए सूक्ष्मदर्शी के उपयोग से है। जीवविज्ञानी के लिए सूक्ष्मदर्शी एक अपरिहार्य यंत्र है। रॉबर्ट हुक द्वारा प्रयोग में लाया जाने वाला सूक्ष्मदर्शी बहुत ही सरल था। इसमें एक नलिका में आवर्धक लेंस लगे हुए थे। इसको एक **सरल सूक्ष्मदर्शी** (simple microscope)का नाम दिया गया (चित्र 7.1)। विद्यालयों की जीवविज्ञान प्रयोगशालाओं में **संयुक्त सूक्ष्मदर्शी** (compound microscope) का उपयोग होता है जिसमें अवतल-उत्तल लेंसों के संयोजन लगे होते हैं (चित्र 7.2)। यह इनकी आवर्धकता तथा विभेदन क्षमता को बढ़ा देते हैं। इसलिए सूक्ष्मदर्शिकी के कुछ मूलभूत नियमों, जिन पर उसकी प्राथमिक उपयोगिता निर्भर है, का अध्ययन आवश्यक है।

संरचना तथा प्रकार्य में हम एक सूक्ष्मदर्शी की तुलना मानव की आंख से कर सकते हैं। दोनों में लेंस होते हैं तथा दोनों में वस्तु के प्रतिबिंब बनते हैं। सूक्ष्मदर्शिकी के सिद्धांतों में से एक सबसे महत्त्वपूर्ण, जिस पर उसकी उपयोगिता आधारित है, वह है किसी वस्तु का **आवर्धित प्रतिबिंब** प्राप्त करना।

आवर्धन तथा विभेदन क्षमता

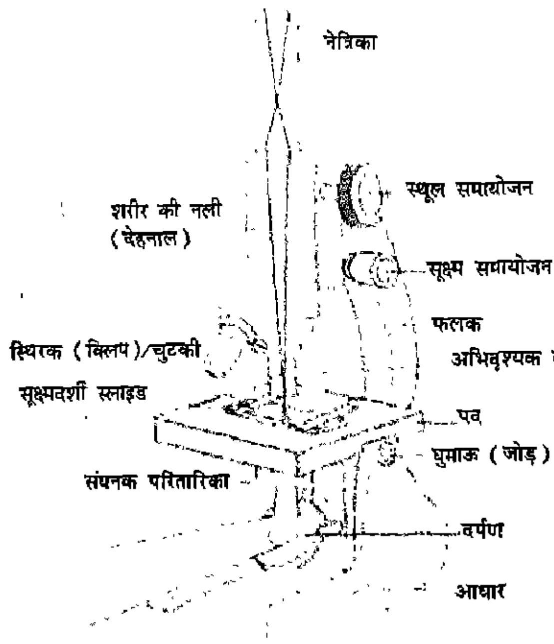
हम प्रकाशीय यंत्रों का उपयोग किसी वस्तु को आवर्धित करने के लिए करते हैं जिसका तात्पर्य हुआ कि प्रकाशीय यंत्रों द्वारा वस्तु की दृष्टिपटलक प्रतिबिंब के आकार को बढ़ाया जा सकता है। किसी वस्तु की नग्न दृष्टिपटल पर प्रतिबिंब तथा उसका



चित्र 7.1 रॉबर्ट हुक द्वारा प्रयोग में लाया गया एक आदि सूक्ष्मदर्शी

आवर्धित प्रतिबिंब का अनुपात उस यंत्र की **आवर्धन क्षमता** (magnifying power) कहलाती है, और इसे निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है :

$$\text{आवर्धन} = \frac{\text{यंत्र की सहायता से दृष्टिपटल पर प्रतिबिंब का आकार}}{\text{नग्न आंख से दृष्टिपटल पर प्रतिबिंब का आकार}}$$



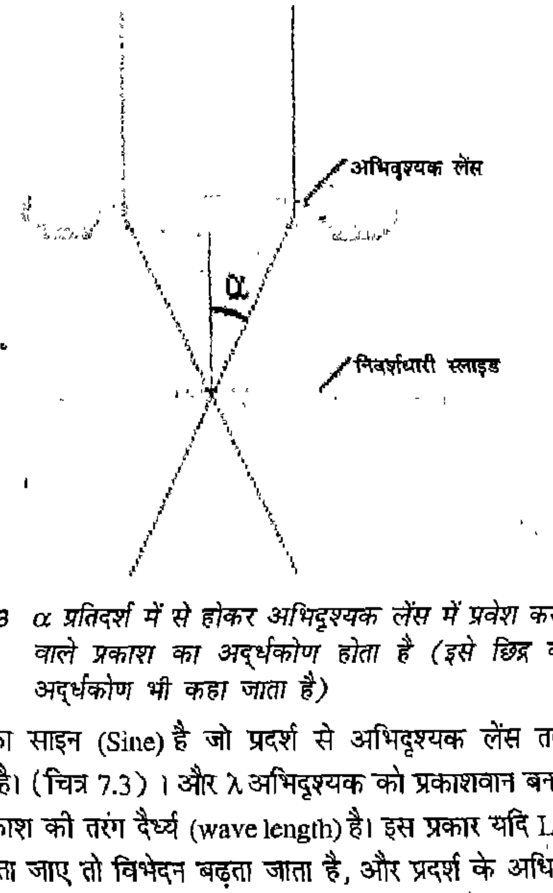
चित्र 7.2 एक संयुक्त सूक्ष्मदर्शी

सूक्ष्मदर्शी की नलिका के ऊपरी भाग में एक अभिनेत्र लेंस (ocular lens) लगा रहता है। नलिका के दूसरे छोर पर, जो निरीक्षण की जाने वाली वस्तु के पास होता है, अभिदृश्यक लेंस (objective lens) लगा रहता है। ये दोनों लेंस आवर्धन क्षमताधारी होते हैं। वस्तु का आवर्धन पता लगाने के लिए अभिनेत्र लेंस तथा अभिदृश्यक लेंस की क्षमताओं को गुणा करते हैं। उदाहरण के लिए यदि अभिनेत्र की आवर्धन क्षमता 10 गुना है और अभिदृश्यक की 40 गुना है तो वस्तु का आवर्धन 400 गुना हुआ (10×40=400)।

विभेदन क्षमता (resolving power) से अभिप्राय आवर्धक यंत्र की उस क्षमता से है जिसके द्वारा पास-पास स्थित दो वस्तुओं के बारे में अलग-अलग विवरण प्राप्त होता है । यंत्र की इस क्षमता का आवर्धन से कोई संबंध नहीं होता, क्योंकि यदि किसी भी प्रदत्त पद्धति में प्रतिबिंब आवर्धित न भी हो तो भी यह भली-भांति विभेदित विवरण प्रस्तुत कर सकता है। इसी प्रकार दूसरी पद्धति में बना हुआ प्रतिबिंब यद्यपि आवर्धित हो सकता है। फिर भी इसमें विविध प्रकार के विवरणों का होना आवश्यक नहीं है। अतः विभेदन क्षमता दो वस्तुओं के बीच की वह दूरी है जिससे हम इन्हें सूक्ष्मदर्शी का उपयोग कर अलग-अलग प्रतिबिंब के रूप में पहचान सकते हैं। दूसरे शब्दों में, विभेदन किसी लेंस की दो समीपवर्ती वस्तुओं को अलग-अलग करने अथवा पहचानने की क्षमता है। आप जानते हैं कि मानव की नग्न आंख की विभेदन क्षमता 100 माइक्रॉन (μ) है। सूक्ष्मदर्शी को प्रारूप देने संबंधी प्रकाश के सिद्धांत का प्रस्तुतीकरण जर्मन भौतिकीविद् अर्न्स्ट ऐबे ने 1876 में किया था। फलतः **ऐबे का समीकरण** वस्तुओं के बीच उस दूरी का आभास इंगित करता है जिसमें वे अलग- अलग पिंडों के रूप में स्पष्ट हो सकें। इसे ऐबे समीकरण में निम्नलिखित रूप से लिख सकते हैं:

$$Lm = \frac{0.61\lambda}{NA}$$

उपरोक्त समीकरण में Lm विभेदन की सीमा अर्थात् विभेदन क्षमता दर्शाते हैं। 0.61 जटिल त्रिज्यामितिक अनुपातों के गणन के फलस्वरूप प्राप्त किया गया है। संख्यात्मक द्वारक numerical aperture (NA) = n Sinα है । इसमें n माध्यम का अपवर्तनांक है तथा Sinα प्रकाश के उस आधे



चित्र 7.3 α प्रतिदर्श में से होकर अभिदृश्यक लेंस में प्रवेश करने वाले प्रकाश का अद्र्धकोण होता है (इसे छिद्र का अद्र्धकोण भी कहा जाता है)

कोण का साइन (Sine) है जो प्रदर्श से अभिदृश्यक लेंस तक पहुंचता है। (चित्र 7.3) । और λ अभिदृश्यक को प्रकाशवान बनाने वाले प्रकाश की तरंग दैर्ध्य (wave length) है। इस प्रकार यदि Lm छोटा होता जाए तो विभेदन बढ़ता जाता है, और प्रदर्श के अधिक से अधिक सूक्ष्म पक्षों को समझा और देखा जा सकता है। यह याद रखें कि विभेदन क्षमता और तरंग दैर्ध्य में व्युत्क्रम अनुपात है। अतः अधिकतम विभेदन प्रकाश के उस भाग से प्राप्त होता है जिसकी तरंग दैर्ध्य सबसे छोटी, अर्थात् दृष्टव्य वर्णक्रम (spectrum) के नीले छोर वाला प्रकाश (450-500 nm) होती है। इसलिए सूक्ष्मदर्शी में सामान्यतः नीले फिल्टर का प्रयोग किया

जाता है। किसी सामान्य सूक्ष्मदर्शी में संग्राही से प्रदर्श पर पड़ने वाला प्रकाश शंक्वाकार होता है। जब इस शंकु का कोण अत्यंत संकरा और मात्र एक बिंदु के रूप में पतला होता जाता है तो स्लाइड से निकलने के उपरांत अधिक नहीं फैलता और न ही अलग-अलग प्रतिबिंब बनाता है, क्योंकि अत्यंत लघु विभेदन होता है। इसके विपरीत यदि प्रकाश का शंकु चौड़ी कोणधारी होगा और यह प्रदर्श से होकर तेजी से फैलता जाएगा तो पास- पास रखे पदार्थ एक-दूसरे से पर्याप्त विलगित प्रतीत होंगे और इस प्रकार पूर्णतः विभेदित भी (चित्र 7.3)।

प्रकाश का वह कोण जो किसी लेंस में होकर गुजर सकता है माध्यम अथवा स्वयं प्रदर्श के अपवर्तनांक (refractive index) पर निर्भर करता है। वायु का अपवर्तनांक 1.00 है। क्योंकि $\sin\alpha$ 1 ($\alpha 90°=1$) से अधिक नहीं हो सकता। वायु में कार्य करने वाले किसी लेंस का संख्यात्मक द्वारक (numerical aperture) 1 से अधिक नहीं हो सकता। वास्तव में सर्वोत्तम अभिदृश्यक लेंस का कोणीय द्वारक 70° ($\sin 70° = 0.94$) है। इसलिए संख्यात्मक द्वारक के 1.00 से अधिक अपवर्तनांक वृद्धि के लिए सर्वाधिक व्यवहारिक विधि निमज्जन तेल का प्रयोग करना है। (निमज्जन तेल का अपवर्तनांक कांच के समान ही होता है) वायु के स्थान पर निमज्जन तेल के प्रयोग द्वारा प्रकाश की किरणें जो पहले अपवर्तन अथवा परावर्तन के कारण प्रवेश नहीं कर पा रही थीं, अब कर सकेंगी।

किसी भी सूक्ष्मदर्शी की विभेदन क्षमता (Lm) संघनित्र (condenser) के संख्यात्मक द्वारक पर निर्भर करती है जैसा कि निम्न समीकरण से स्पष्ट है।

$$Lm = \frac{\lambda}{\text{संख्यात्मक द्वारक अभिदृश्यक} + \text{संख्यात्मक द्वारक संघनित्र}}$$

अधिकांश निमज्जन तेलयुक्त अभिदृश्यों का संख्यात्मक द्वारक अधिक से अधिक 1.4 होता है क्योंकि संख्यात्मक द्वारक का क्षेत्र 1.0 से 1.35 तक ही हो सकता है। फिर भी यदि निमज्जन तेल का प्रयोग नहीं किया गया है तो NA (संख्यात्मक द्वारक) 1 से कम होता है। यह सूक्ष्मदर्शी की विभेदन क्षमता को सीमित करता है। किसी भी प्रकाश सूक्ष्मदर्शी की अधिकतम विभेदन क्षमता, प्रकाश की सूक्ष्मतम दृष्टव्य तरंग दैर्ध्य (426 nm के लगभग) के साथ, जिनके अंतर्गत अधिक से अधिक विखंडन की सर्वोत्तम दशाएं प्राप्त हैं 200 nm तक पहुंचती हैं। दूसरे शब्दों में दो ऐसे समीपवर्ती बिंदु जो एक-दूसरे के 200 nm तक से अधिक समीप हैं, दो अलग प्रतिबिंबों में विभेदित नहीं हो सकते। सूक्ष्मदर्शी वस्तुओं के चयन का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धांत कार्य दूरी है। किसी वस्तु की कार्य दूरी को लेंस के बाह्य धरातल तथा आवरण कांच (यदि प्रयोग में लाया गया हो) अथवा वस्तु के बीच की उस दूरी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जब वह पूर्णतः केंद्रीभूत (focus) हो। किसी ऐसे सूक्ष्मदर्शी के अभिदृश्यक लेंसों जिसका संख्यात्मक द्वारक बड़ा हो तथा विभेदन क्षमता अधिक हो, की कार्य दूरी कम होती है।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी (light microscope) धातु की बनी एक सुदृढ़ तथा टिकाऊ आधार तथा भुजा द्वारा रचित होती है जिसमें शेष भाग जोड़ दिए जाते हैं। इस के आधार पर प्रकाश स्रोत दर्पण अथवा विद्युतीय प्रदीपक (illuminator) होता है। इसकी भुजा पर फोकस करने वाली दो घुंडियां लगी होती हैं। इनमें से छोटी **सूक्ष्म समायोजन** (fine adjustment) के लिए तथा बड़ी **स्थूल समायोजन** (coarse adjustment) के लिए होती है। वस्तु को फोकस करने के लिए ये घुंडियां मंच (Stage) या नासिका खंड (सूक्ष्मदर्शी की बनावट के अनुसार) को ऊपर अथवा नीचे कर सकते हैं।

मंच को सूक्ष्मदर्शी की भुजा की आधी दूरी ऊपर की ओर अवस्थित किया जाता है जिससे स्लाइड को दोनों ओर स्थित **सरल चुटकी** (clip) या **यांत्रिक मंच चुटकी** पकड़े रहे। यांत्रिक मंच चुटकी एक ऐसी युक्ति है जो अवलोकन के समय कार्यकर्ता को मंच घुंडी द्वारा स्लाइड को सरलता से चलाने में सहायता करती है। अर्द्धस्थल संघनित्र या तो मंच के अंदर या उसके नीचे लगा रहता है। यह प्रकाश के शंकु को स्लाइड पर स्थित वस्तु पर फोकस करने में सहायता करता है। सामान्य सूक्ष्मदर्शियों में तो इसकी स्थिति स्थिर होती है लेकिन परिष्कृत सूक्ष्मदर्शियों में इसे ऊर्ध्वस्थ घुमा भी सकते हैं। इसमें एक ऐसा मध्यपट (diaphragm) भी विद्यमान होता है जो संघनित्र लेंस के ऊपर पड़ने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करता है।

सूक्ष्मदर्शी की भुजा का मुड़ा हुआ ऊपरी भाग इसके विविध भागों को पकड़े रहता है। इसके स्थल की ओर के भाग में नासिका खंड होता है, जिस पर एक या अधिक (प्रायः 3 या 4) अभिदृश्यक लेंस लगे रहते हैं और दूसरी ओर एक अथवा दो नेत्र लेंस (eye lens) अथवा नेत्रक। नासिका खंड को इस प्रकार घुमाया जा सकता है कि कोई भी अभिदृश्यक सीधा नेत्रकों की पंक्ति में आ जाए। परिष्कृत सूक्ष्मदर्शियों में दोनों आंखों के प्रयोग के लिए दो नेत्रक लगे रहते हैं। इस प्रकार के सूक्ष्मदर्शी का सिर **द्विनेत्री** (binocular) सिर कहलाता है। इस प्रकार के समायोजन में कई दर्पण तथा संक्षेत्र (*prism*) लगे होते हैं।

नासिका खंड से संबद्ध अभिदृश्यक लेंस विविध आवर्धन क्षमता (magnifying power) के होते हैं। इन्हें नासिका खंड के साथ समायोजक (bodyAssembly) के नीचे किसी भी लक्ष्य की दिशा में घुमाया जा सकता है। आदर्श रूप में एक सूक्ष्मदर्शी **समफोकसतली** (par focal) होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब भी अभिदृश्यक को बदला जाए तो प्रदर्श सदैव केंद्रबिंदु में रहना चाहिए।

7.2 प्रकाश सूक्ष्मदर्शियों में विविधताएं

सूक्ष्मदर्शी की उपरोक्त बनावट **दीप्त क्षेत्र सूक्ष्मदर्शी** (bright field microscope) के लिए है। विशिष्ट लेंसों, संघनित्रों (condensers) एवं प्रकाश स्रोतों के आधार पर हम दीप्तक्षेत्र सूक्ष्मदर्शी के अतिरिक्त तीन विशेष प्रकार के सूक्ष्मदर्शियों का वर्णन कर सकते हैं। दीप्तक्षेत्र सूक्ष्मदर्शी में प्रतिबिंब तब बनता है जब प्रकाश प्रदर्श के बीच से गुजरता है। प्रदर्श अपने चारों ओर के परिवेश की तुलना में कहीं अधिक घनत्वधारी तथा अपारदर्शी होने के कारण प्रकाश का कुछ भाग अपने में समाहित कर लेता है तथा शेष प्रकाश को ऊपर अभिनेत्र लेंस में भेज देता है। इसके फलस्वरूप समीपवर्ती चमकदार दीप्तक्षेत्र की तुलना में प्रदर्श का प्रतिबिंब काला होगा। दीप्तक्षेत्र सूक्ष्मदर्शी एक बहुउद्देशीय यंत्र है और इसका उपयोग जीवंत रंजन-विहीन, सुरक्षित एवं अभिरंजित प्रदर्शों के लिए किया जा सकता है।

अदीप्त क्षेत्र सूक्ष्मदर्शिकी

किसी भी दीप्तक्षेत्र सूक्ष्मदर्शी के संघनित्र में एक चक्रिका जिसे रोक अथवा सीमक (stop) कहते हैं, लगा देते हैं। इससे यह एक अदीप्तक्षेत्र सूक्ष्मदर्शी (dark field microscopy) बन जाता है सीमक इसमें केंद्रीय क्षेत्र से आने वाले समस्त प्रकाश को रोक देता है, तथा वस्तु प्रकाश के तिरछे पुंज द्वारा प्रकाशमान होती है। यह प्रकाश प्रदर्श के पार्श्व से परावर्तित हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप बनने वाला प्रतिबिंब काली पृष्ठभूमि में चमकने लगता है। इस प्रकार के सूक्ष्मदर्शी का सबसे अधिक लाभ यह है कि इससे कोशिका के केंद्रकों, माइटोकांड्रिया एवं रिक्तिकाओं का पता आसानी से लग सकता है।

कला विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी

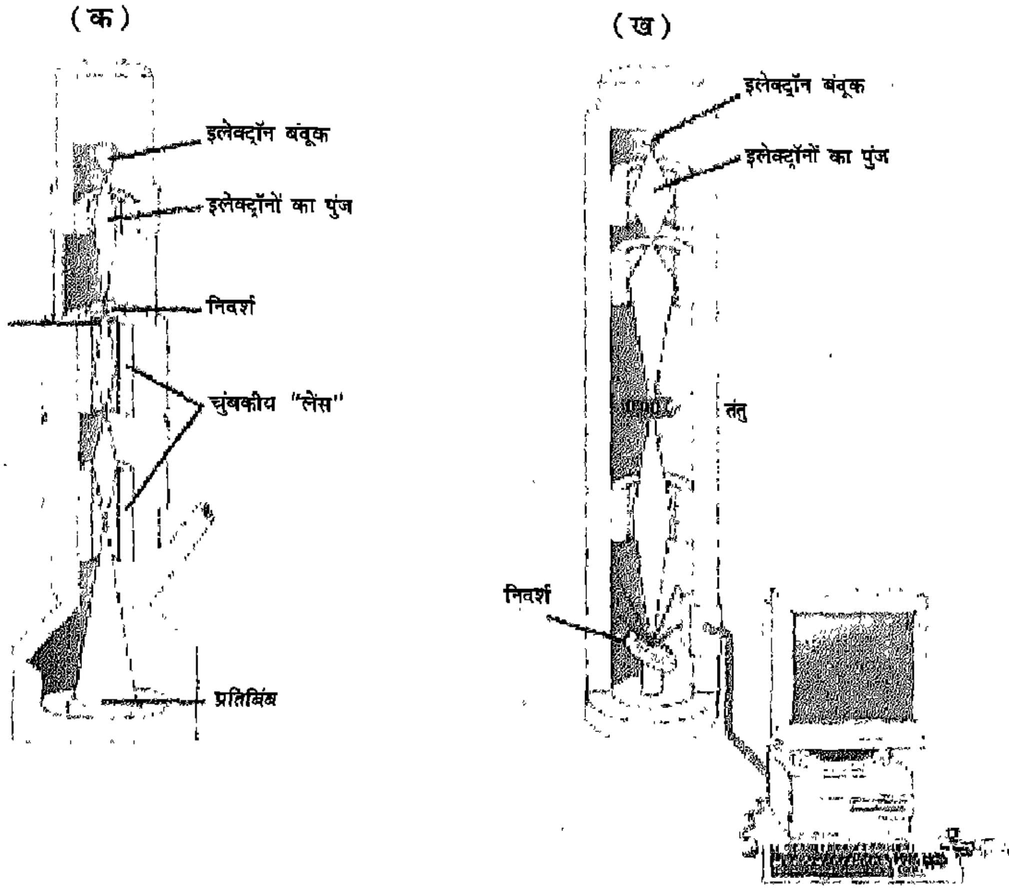
कला विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी (phase contract microscopy) का आधार आंतरिक संरचनाओं के विविध घनत्व के गुण हैं क्योंकि ये इनमें से अत्यधिक कम मात्रा में गुजरने वाले प्रकाश को विशिष्ट रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इस सूक्ष्मदर्शी में ऐसी युक्ति होती है जो प्रदर्श वस्तु से गुजरने वाली किरणों में अल्प परिवर्तन करके प्रकाश की तीव्रता में अंतर लाती है। सघन कोशिकांग (denser organelles) कम सघन वाले कोशिका द्रव्य क्षेत्र की तुलना में प्रकाश मार्ग को अधिक परिवर्तित करते हैं। इसलिए सूक्ष्मदर्शी में बनी विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिबिंब विविधता दर्शाते हैं। इस प्रकार कला विपर्यासी सूक्ष्मदर्शी जीवित कोशिकाओं की आंतरिक संरचना को तथा सूत्री तथा अर्धसूत्री विभाजन के मध्य गुणसूत्रों के व्यवहार के अध्ययन के लिए अत्यंत उपयोगी है।

विभेदक व्यतिकरण विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी

विभेदक व्यतिकरण विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी (differential interference contrast microscopy) का उपयोग रंजन-विहीन सजीव कोशिकाओं के अध्ययन के लिए करते हैं। इन सूक्ष्मदर्शियों में किसी वस्तु के ऊपर से गुजरने से पूर्व प्रकाश की किरणें दो पुंजों में बंट जाती हैं। ऐसा इसलिए संभव होता है क्योंकि इसमें दो प्रिज़्मों सहित अतिरिक्त परिमार्जक लगे रहते हैं। इनके कारण प्रतिबिंब में विपर्यासी रंग और एक के स्थान पर प्रकाश के दो स्रोत बनते हैं। इनमें से एक तो वस्तु से गुजरता है और इसकी कला (Phase) में परिवर्तन (विवर्तित लहर) हो जाता है। दूसरा पुंज जो वस्तु के बीच में से नहीं गुजरता, अपरिवर्तित रहता है। चूंकि प्रकाश के दोनों पुंज एक-दूसरे में विघ्न डालते हैं और सम्मिलित रूप में भी कार्य करते हैं अतः इस विधि को **व्यतिकरण विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी** (Interference Contrast Microscopy) कहते हैं। इस सूक्ष्मदर्शी के प्रयोग से हम बृहत अणुओं जैसे डीएनए, आरएनए एवं प्रोटीन आदि का शुष्क भार ज्ञात कर सकते हैं।

2. प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शिकी

प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शिकी (fluorescent microscopy) एक विशिष्ट सूक्ष्मदर्शिकी है जिसमें दृष्टव्य प्रकाश स्रोतों के स्थान पर पराबैंगनी किरणें प्रयोग की जाती हैं। दर्शक की आंखों की सुरक्षा के लिए इसमें पूरक फिल्टर भी लगे रहते हैं। इस सूक्ष्मदर्शिकी का नाम कुछ रंजकों जैसे एक्रिडीन ओरेंज तथा कोरीफोस्फीन जैसी खनिजों को पराबैंगनी किरणों से अभिघात (bombard) करने से उनकी प्रतिदीप्ति क्षमता से निकला है। जिस वस्तु की परख करनी होती है उसे प्रतिदीप्त रंजक का लेप कर देते हैं। जब इस रंजित वस्तु को पराबैंगनी किरणों द्वारा प्रकाशित किया जाता है तो रंजित प्रदर्श अपनी स्वयं की प्रतिदीप्ति-तरंगदैर्ध्य (अंधेरे क्षेत्र के विपरीत लाल, नारंगी, पीली, अथवा हरी) छोड़ता है। इस प्रकार की सूक्ष्मदर्शिकी का उपयोग बहुत व्यापक है क्योंकि इसे जीवाणुओं, प्रोटोजोआ एवं विषाणुओं के संक्रमण की पहचान हेतु प्रयोग किया जाता है। **प्रतिरक्षी प्रतिदीप्ति प्रतिपिंड संकेतन** तकनीक (immuno fluorescent antibody labelling) प्रतिपिंडों को प्रतिदीप्ति वर्णकों से जोड़ने की वह प्रक्रिया है जिसमें दो या अधिक उसी प्रकार के रंजकों द्वारा जोड़े गए दो या अधिक विभिन्न प्रतिपिंडों का प्रयोग होता है। इसके फलस्वरूप किसी कोशिका में दो अथवा विशिष्ट अणुओं के वितरण का अध्ययन किया जा सकता है।



चित्र 7.4 (क) संचरण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी एवं (ख) क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का आरेख

3. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी

सिद्धांततः, इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (electron microscopy), (चित्र 7.4) संयुक्त सूक्ष्मदर्शी का ही विकसित रूप है और इसमें उसी प्रकार के घटक प्रयोग में लाए जाते हैं। इस विधि में प्रतिबिंब का निर्माण (प्रकाश के स्थान पर) इलेक्ट्रॉनों के एक ऐसे पुंज द्वारा किया जाता है जो उच्चगति प्रदान किए जाने पर तरंगों की भांति चलने लगते हैं। ये तरंगें दृष्टव्य प्रकाश की अपेक्षा 1,00,000 गुणा छोटी होती हैं। इस लक्षण के कारण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की विभेदन क्षमता बहुत अधिक होती है। दो प्रकार के विद्युत चुंबकीय लेंसों के प्रयोग से आवर्धित प्रतिबिंब बनता है। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में कांच निर्मित लेंस होते हैं जबकि इस यंत्र में एक संघनित लेंस, एक प्रदर्शधारक और एक फोकस यंत्र अभिदृश्यक लेंस एवं चुंबकीय लेंस होते हैं। बाद वाले दोनों लेंस प्रतिबिंब आवर्धन हेतु हैं। जिस प्रकार प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में प्रकाश का मार्ग अभिदृश्यक एवं नेत्रीय लेंसों से होकर गुजरता है उसी प्रकार इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शियों में इलेक्ट्रॉनों का मार्ग एक विद्युत चुंबकीय लेंस द्वारा नियंत्रित होता है। चूंकि प्रतिबिंब के निर्माण हेतु इलेक्ट्रॉन उपयोग में आते जाते हैं इसलिए इनका मार्ग तथा गति उच्च निर्वात (high vacuum) में स्थापित किया जाता हैं। तत्पश्चात् नेत्रिका के स्थान पर आवर्धित प्रतिबिंब प्रतिदीप्तशील दर्शक पटल पर बनता है।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन किए जाने वाले प्रदर्श को रसायनों अथवा रंजकों द्वारा इस प्रकार उपचारित किया जाता है कि उनमें अधिक से अधिक विपर्यास उत्पन्न हो सके, और ऐसी स्थिति होने के कारण जीवंत वस्तुओं का अध्ययन इसके द्वारा नहीं किया जा सकता। साथ ही चूंकि इलेक्ट्रॉनों द्वारा निर्मित प्रतिबिंब में कोई रंग नहीं होते अतः इलेक्ट्रॉन छाया चित्र श्याम-श्वेत अथवा भूरी आभा लिए होते हैं। और इन में कंप्यूटर छाया की सहायता से रंग भरे जाते हैं इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी दो प्रकार के होते हैं। (क) संचरण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (transmission electron microscope), (ख) क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (scanning electron microscope)।

संचरण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में इलेक्ट्रॉन वस्तु के बीच से गुजरते हुए प्रतिबिंब बनाते हैं। इसलिए निदर्शों को अति पतले टुकड़ों में काटा जाता है। बाद में इन निदर्शों में विपर्यास बढ़ाने के लिए भारी धातुओं (जैसे–सीसा, टंगस्टन, यूरेनियम) के लवणों के लेप द्वारा अभिरंजित किया जाता है। यह प्रक्रिया इसलिए आवश्यक होती है क्योंकि जैविक द्रव्यों में अधिकांश

संघटक तत्त्व कम भार वाले होते हैं जिसके कारण वे बहुत कम विपर्यास दर्शाते हैं। लेपन द्रव्य को इलेक्ट्रॉन अभिघातों से सुरक्षित रखने में भी सहायता पहुंचाता है। निदर्श को तांबे की जाली पर रखा जाता है (चित्र 7.4क) जिससे कि इलेक्ट्रॉन निदर्श धारक से गुजर सकें।

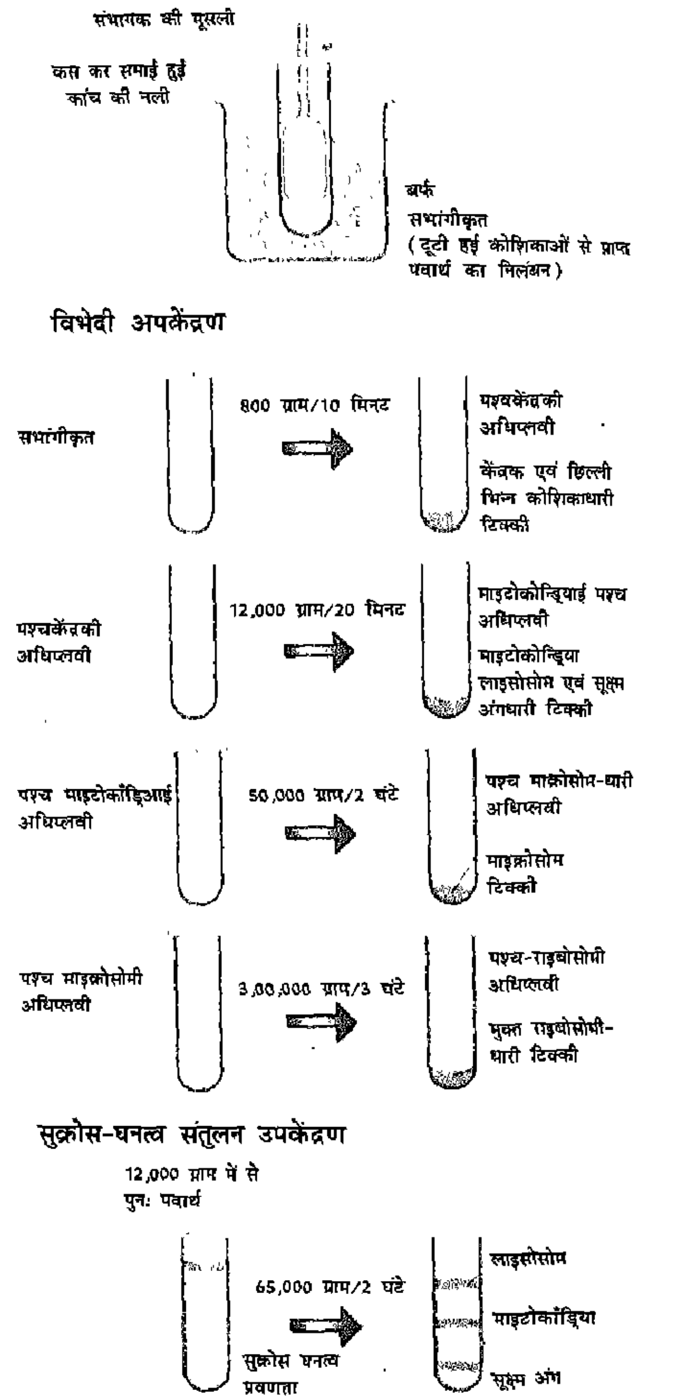
क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्रतिबिंब निदर्श के धरातल से इलेक्ट्रॉन के परावर्तन द्वारा बनती है। इसलिए निदर्शों को भली-भांति सुखाया जाता है तथा स्वर्ण या प्लेटिनम जैसी धातुओं से आवरित अथवा आच्छादित किया जाता है जिससे इलेक्ट्रॉनों के गिरने के समय इस पर परावर्तन धरातल उत्पन्न हो सके। निदर्श से टकरा कर इलेक्ट्रॉन की बौछार वापिस आ जाती है जिसे एक संवेदी संसूचक ले लेता है और अंत में निदर्श का प्रतिबिंब कंप्यूटर चित्र पटल पर प्रदर्शित हो जाता है (चित्र 7.4ख)।

मूल योजना में उत्तरोत्तर भिन्नता बढ़ाने के दृष्टिकोण से इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी तकनीकों में सतत सुधार किए गए हैं। उदाहरण के लिए इसका सर्वाधिक परिष्कृत रूप क्रमवीक्षण **संपरीक्षित सूक्ष्मदर्शी** (scanning probe microscope) है। यह पदार्थ के ढांचे को उच्च सीमा तक विभेदित कर सकता है और इसे 100 मिलियन गुणा आवर्धित कर सकता है। यह सूक्ष्मदर्शी केवल एक परमाणु का प्रतिबिंब भी बनाने में सक्षम है। उसी प्रकार क्रमवीक्षण नालीदार सूक्ष्मदर्शी (scanning tunnelling microscope) विद्युतीय संवाहकों तथा कंप्यूटर चिप्स में त्रुटियों का पता लगाने के लिए धरातल का अवलोकन भी करता है। एक अन्य प्रकार का **सूक्ष्मदर्शी परमाणु बल सूक्ष्मदर्शी** (atomic force microscope) है जो जैविक अणुओं जैसे डीएनए एवं प्रोटीन का विस्तृत प्रतिरूप देखने के लिए उपयोगी है।

7.3 कोशिका प्रभाजन

कोशिका के संघटकों के अध्ययन की दृष्टि से कोशिका के संभाग करना अथवा तोड़ना और उन्हें विभिन्न विधियों द्वारा अलग करना आवश्यक है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को कोशिका प्रभाजन (cell fractionation) कहते हैं। इसके अंतर्गत कोशिका का संभागीकरण आता है जो (क) कोशिका को कांच की गोलियों से पीसकर (ख) कोशिका को दबाव जैसे किसी भौतिक बल के माध्यम से तोड़कर (ग) परासरणी दाब द्वारा (घ) पराश्रव्य तरंगों (Ultrasonic waves) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है (चित्र 7.5)।

इस प्रकार से बने घोल को **कोशिका संभागी** कहते हैं। प्रायः इस कोशिका संभाग में अखंड कोशिकाएं अथवा दूसरे कचरे भी हो सकते हैं। इन घटकों को संभाग से निम्न गति **अपकेंद्रीकरण** (centrifugation) द्वारा अलग कर सकते हैं। इस प्रकार प्राप्त अधिप्लवी को कोशिका मुक्त निष्कर्षण कहते हैं। इसका उपयोग कोशिका के विभिन्न संघटकों जैसे कोशिकांगों को पृथक करने में करते हैं।



चित्र 7.5 प्रभाजन के चरण

अपकेंद्रीकरण

संभाग से कोशिका घटकों के प्रभाजन के लिए प्रायः अपकेंद्रीकरण तकनीक का प्रयोग करते हैं। अपकेंद्री एक ऐसा यंत्र है जिसका प्रयोग कोशिका के विभिन्न घटकों पर अपकेंद्री बल डालने के लिए किया जाता है। जैसे ही घटकों को अपकेंद्र बल में रखा जाता है वे अपने आकार तथा घनत्व के अनुरूप बाहर की ओर आने लगते हैं। इसलिए माध्यम में घटक अलग-अलग गतियों में

चलते हैं। इस लक्षण तथा सिद्धांत का उपयोग पृथक्करण में करते हैं।

अपकेंद्री कई प्रकार के होते हैं। सामान्य औषधालयी अपकेंद्री एक मोटर संचालित यंत्र है। यह प्रति मिनट 5, 000 चक्कर लगा सकता है। उच्चगति अपकेंद्री 50, 000 से 1, 00,000 चक्कर प्रति मिनट तक लगा सकते हैं। और यह प्रशीतित्र तथा अप्रशीतित्र हो सकता है (प्रशीतन इकाई से अपकेंद्री कक्ष को शीतल करने के लिए होती है जिसमें घूर्णक या घूमने की इकाई लगी हो)। उच्च गति से अपकेंद्रण करने वाले अपकेंद्री को **अतिअपकेंद्री** भी कहते हैं। इन अपकेंद्रियों में यह विशेष प्रणाली है कि इनके कोष्ठों में घूमने वाला यंत्र लगा है। वे न केवल प्रशीतित होते हैं बल्कि वायुशून्य भी होते रहते हैं जिससे घूमते समय घूर्णक को किसी प्रकार के अवरोध का सामना न करना पड़े। इस प्रकार के अपकेंद्री में अपकेंद्री बल गुरुत्वाकर्षण बल से 5, 00,000 गुणा तक पहुंच सकता है।

आवश्यकता के अनुरूप कोशिका संभागी विलेय, जिसका अपकेंद्रीकरण द्वारा प्रभाजन होना है, को रखने के लिए विभिन्न प्रकार के घूर्णक प्रयोग किए जाते हैं। औषधालयी अपकेंद्रियों में अधिकतर बाहर निकले हुए घूर्णक होते हैं जिनमें परखनलियां लटकी रहती हैं (चित्र 7.6)। जब किसी अपकेंद्री को चलाया जाता है तो उसकी लटकी हुई परखनलियां क्षैतिज अवस्था में फैल जाती हैं और घूमना प्रारंभ कर देती हैं। इस प्रकार अपकेंद्री नली में रखे हुए संभागी कणों पर पर्याप्त अपकेंद्री बल पड़ता है (चित्र 7.6)।

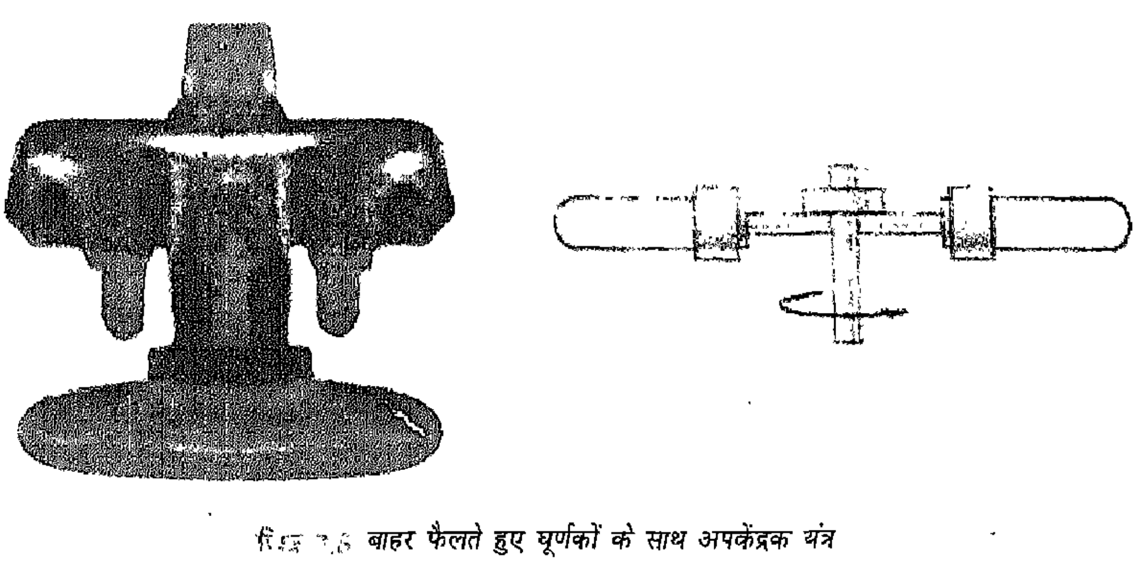
घनत्व प्रवणता अपकेंद्रिता

इस प्रकार के अधिकांश संदर्भों में अपकेंद्रिता सुक्रोस के बढ़ते हुए प्रवणता घनत्व (density gradient centrifugation) द्वारा संपन्न की जाती है। इसमें अधिक गाढ़ा विलेय तो तलहटी में होता है तथा इसका गाढ़ापन ऊपर की ओर धीरे-धीरे कम होता जाता है। एक बार प्रवणता बनने के बाद संभागी सबसे ऊपर परत के रूप में जमा हो जाते हैं तथा जिन्हें अपकेंद्रित कर लिया जाता है। संभागी से अपकेंद्रिता के पश्चात् संघटक विभिन्न गतियों में घूमते हुए अनुपात की साम्यावस्था में पहुंच जाते हैं अथवा विभिन्न स्थितियों पर धारियां बना सकते हैं। इसलिए इस प्रकार किया हुआ वियोजन भी **समान** घनत्व अपकेंद्रिता (isopyknic centrifugation) कहलाती है। घटकों के अवसादन की दर इनके आकारों पर निर्भर करती है तथा इसे **अवसादन गुणांक** (sedimentation coefficient) अथवा **स्वेडवर्ग** एकक कहा जाता है। साथ ही अवसादन गुणांक के ज्ञान के आधार पर कोशिका के आकार तथा संरचना तथा घटकों के प्रकार को निश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार परॉक्सीसोमों को लाइसोसोमों से अथवा रवेदार अंत:द्रव्य जालिका खंडों से रवे-विहीन अंत:द्रव्य जालिका को अलग कर सकते हैं।

उत्प्लावन घनत्व अपकेंद्रिता

एक अन्य परिवर्तन में अणुओं को केवल उनके उत्प्लावन घनत्व (buoyant density centrifugation) के आधार पर अलग कर सकते हैं चाहे उनका आकार तथा संरचना कुछ भी हो। इस विधि में सुक्रोस अथवा सीजियम क्लोराइड (CsCl) के बहुत गाढ़े घोल का उपयोग अति उच्च प्रवणता घनत्व के रूप में करते हैं। वास्तव में काफी देर तक अपकेंद्रण करने से सुक्रोस अथवा सीजियम क्लोराइड के अणु एक सतत घनत्व प्रवणता बनाने का प्रयत्न करते हैं। अपकेंद्रिता के समय संभागी का प्रत्येक घटक आकार तथा संरचना के अनुरूप विभिन्न गतियों में घूमता है। किंतु प्रत्येक घटक नीचे घूमता हुआ उस अवस्था को पहुंचता है जहां निलंबित घोल का घनत्व बृहद् अणु के

(क) (ख)



चित्र 7.6 बाहर फैलते हुए घूर्णकों के साथ अपकेंद्रक यंत्र

उत्प्लावन घनत्व के बराबर होता है। इस अवस्था में घटक तैरने लगता है तथा इसके उत्प्लावन के कारण और नहीं घूमता। इस प्रकार विभिन्न समूह स्थापित हो जाते हैं। जिनका कारण अवसादन गुणांक (sedimentation coefficient) नहीं है बल्कि उत्प्लावन घनत्व है, जो तली में तो सर्वोच्च तथा ऊपर सबसे कम होता है। प्रभेदन की इस प्रकिया को जो अपकेंद्रिता द्वारा हुई है **संतुलन अवसादन** (equilibrium sedimentation) भी कहते हैं। यह विधि इतनी संवेदनशील है कि इसके द्वारा भारी सम-स्थानिक (^{13}C अथवा ^{15}N) अणुओं का पृथक्करण भी संभव है। इस विधि का विकास मैथ्यू मेसेल्सन तथा फ्रेंकलिन स्टाहल ने ^{15}N युक्त भारी डीएनए को ^{14}N युक्त डीएनए से पृथक करने के लिए किया था तथा इसके द्वारा यह प्रमाणित किया जा सका कि डीएनए में अर्द्धसंरक्षी प्रतिकृति (semi-conservative replication) होती है।

कोशिका के बृहत् अणुओं के प्रभेदन अथवा पृथक्करण की अन्य विधियां

कोशिका के अणुओं को अलग-अलग करने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जा सकता है फिर भी इनमें से विशेष महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी निम्नांकित हैं :

(क) वर्णलेखन (Chromatography)

(ख) वैद्युतकणसंचलन (Electrophoresis)

वर्णलेखन

यह कोशिका अणु घटकों को अलग-अलग करने की सर्वाधिक प्रचलित विधि है। इस विधि में अपकेंद्रीयता के पश्चात् शेष घोल (cytosol) को किसी ऐसे अघुलनशील माध्यम में छनने दिया जाता है जो विभिन्न द्रव्यों के अणुओं के लिए भिन्न-भिन्न घनिष्टता दर्शाता हो। इस विधि में वियोजन गुणांक का सिद्धांत प्रयोग किया जाता है। छानने के माध्यम से अणु विभिन्न दरों में अलग हो जाते हैं। कम से कम पांच प्रकार की वर्णलेखन विज्ञान की तकनीकें विकसित हो चुकी हैं वे निम्नवत हैं:

(i) ***अधिचूषण अथवा स्तंभिक वर्णलेखन विज्ञान*** : यह सामान्यत: ऊतक लिपिडों के मिश्रण को अलग-अलग करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

(ii) ***पतली परत एवं कागज वर्णलेखन विज्ञान*** : इसका प्रयोग अमीनो अम्ल न्युक्लिओटाइड तथा निम्न अणु भार वाले उत्पादों के वियोजन के लिए किया जाता है।

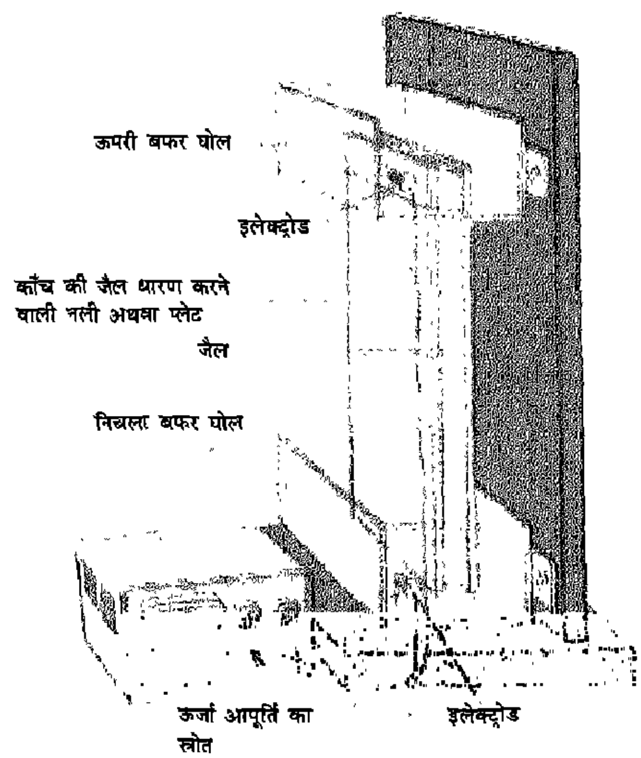
(iii) ***आयन प्रत्यावर्तन वर्णलेखन विज्ञान*** : इसका प्रयोग इंसुलिन विशुद्धिकरण तथा जीव-द्रव्य विखंडन हेतु किया जाता है।

(iv) ***जैलछानन वर्णलेखन विज्ञान*** : इसका प्रयोग प्रोटीनों के अणु भार का पता लगाने के लिए किया जाता है।

(v) ***घनिष्टता वर्णलेखन विज्ञान*** : यह तकनीक प्रतिरक्षी ग्लोब्युलिन (immunoglobulins), कोशिकीय एंजाइमों और संवाहक आरएनए (mRNA) को अलग-अलग करने के लिए काम में लाई जाती है।

वैद्युतकणसंचलन

वैद्युतकणसंचलन विधि में बृहत अणु (विशेषत: प्रोटीन, न्युक्लिओटाइड, न्युक्लिक अम्ल आदि) को एक-दूसरे से बाह्य वैद्युत क्षेत्र की उपस्थिति में (नॉन डिनेचरिंग वैद्युतकणसंचलन) उनके सकल आवेशों (net charges) के अंतर के आधार पर अलग-अलग करते हैं अथवा वैद्युत क्षेत्र के अंतर्गत उनके सकल आवेशों को निष्प्रभावी बनाकर उनके आणविक भार के अनुसार अलग किया जाता है (चित्र 7.7)। इस तकनीक का उपयोग आवश्यकता के अनुसार अन्य कई रूपों में भी किया जाता है। उदाहरण के लिए माध्यम पदार्थ, जिसमें अणु चलते हैं, अलग-अलग हो सकते हैं जैसे पॉलीएक्राइलएमाइड



चित्र 7.7 वैद्युतकण-संचलन (Electrophoresis) यंत्र

जेल वैद्युतकणसंचलन में पॉलीएक्राइलएमाइड (PAGE) तथा ऐगेरोज जेल वैद्युतकणसंचलन में एगेरोज। द्विविमीय (two dimensional) वैद्युतकणसंचलन को दो दिशाओं में किया जा सकता है ; प्रथम दिशा में तो अणु को अविकृतिकारक परिस्थितियों में अलग कर सकते हैं तथा दूसरी दिशा में विकृतिकारक परिस्थितियों में पहली दिशा के लंबवत् विलगन होता है (चित्र 7.7)।

प्रतिरक्षी-वैद्युतकणसंचलन (Immuno-electrophoresis) यह एक अत्यंत संवेदनशील विधि है जिसमें अणुओं को पीकोग्राम से नैनोग्राम तक की मात्राओं में अलग कर सकते हैं। इसके अंतर्गत विशिष्ट प्रोटीनों (ऐसे प्रोटीन जिनमें केवल एक अमीनों अम्ल का अंतर है) की पहचान करने के लिए रेडियोसमस्थानिक, विशिष्ट एंजाइमों अथवा प्रतिदीप्ति वर्णकों से संलगित प्रतिजैविकों का उपयोग कर सकते हैं।

सारांश

कोशिका की संरचना तथा कार्यों के अध्ययन के लिए पिछले 300 वर्षों में अनेकों यंत्र तथा तकनीकें विकसित हुई हैं। इनमें से प्रारंभिक तथा प्रमुख सूक्ष्मदर्शिकी है। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी एक सरल सूक्ष्मदर्शी है जिसमें दो लेंस लगे रहते हैं। संयुक्त सूक्ष्मदर्शी में तीन लेंस होते हैं। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी में आवर्धन क्षमता निम्नवत होती है :

$$\text{आवर्धन क्षमता} = \frac{\text{यंत्र की सहायता से दृष्टिपटलीय प्रतिबिंब का आकार}}{\text{सामान्य आखों से दृष्टिपटलीय प्रतिबिंब का आकार}}$$

और विभेदन क्षमता का सूत्र है, $Lm = 0.61\,\lambda/NA$.

संयुक्त सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग प्रकाशवान क्षेत्र सूक्ष्मदर्शिकी के लिए होता है। जब प्रकाश निदर्श पर पड़ता है तब प्रतिबिंब बनता है। निदर्श कुछ प्रकाश को तो सोखता है तथा शेष प्रकाश नेत्रिका द्वारा सीधा ऊपर नेत्रिका से संचारित होता है जिसके फलस्वरूप हम वस्तु को देख सकते हैं। संघनित्र में एक विशेष रोक चक्रिका लगाकर अंधकार क्षेत्र सूक्ष्मदर्शिकी को पूरा किया जा सकता है। इससे हम छोटी-छोटी कोशिकाओं जैसे जीवाणुओं को भी देख सकते हैं। कला-विपर्यासी सूक्ष्मदर्शियों में ऐसा यंत्र लगा रहता है जो निदर्श में संचारित प्रकाश की गहनता की भिन्नताओं में सूक्ष्मतम परिवर्तन करता है, जिससे बने प्रतिबिंब के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तनीय विपर्यास हो जाता है। विभेदक व्यतिकरण विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी में प्रकाश के दो पुंज वस्तु में संचारित होते हैं और दो ही प्रिज्म इसमें विपर्यास रंग उत्पन्न करते हैं।

प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शिकी में प्रकाश का स्रोत पराबैंगनी किरणें होती हैं और प्रेक्षक की आंखों की सुरक्षा के लिए फिल्टर लगे होते हैं। वस्तु को किसी प्रतिदीप्त रंग द्वारा लेपित किया जाता है। जब पराबैंगनी किरणें अभिरंजित लक्ष्य से गुजरती हैं तब वह स्वयं की प्रतिदीप्ति तरंग-दैर्ध्य छोड़ता है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी में वस्तु को देखने के लिए इलेक्ट्रॉनों की एक धारा का प्रयोग करते हैं। दृष्टव्य प्रकाश की तुलना में इलेक्ट्रॉन की लहरें बहुत छोटी होती हैं जिससे इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की विभेदन क्षमता बहुत बढ़ जाती है। लेकिन इसके द्वारा केवल निर्जीव पदार्थ ही देखे जा सकते हैं क्योंकि निरीक्षण से पूर्व उन्हें रंगना होता है। इससे बना प्रतिबिंब श्वेत तथा श्याम रंग का होता है। लेकिन कंप्यूटर द्वारा रंग भर सकते हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी दो प्रकार के होते हैं : (i) संचरण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी, जिसमें इलेक्ट्रॉन वस्तु से होकर गुजरते हैं और (ii) क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी जिसमें इलेक्ट्रॉन निदर्श से परावर्तित हो जाते हैं। इनके द्वारा हम डीएनए अथवा प्रोटीन की निर्माण प्रणाली का विस्तार से अध्ययन कर सकते हैं।

कोशिका प्रभाजन एक ऐसी विधि है जिसमें कोशिकाओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ा जाता है और फिर उनका अध्ययन करते हैं। कोशिका को सबसे पहले संभागीकरण करते हैं और फिर अपकेंद्रीकरण। तत्पश्चात् अवसादन गुणांक के आधार पर कोशिका के आकार तथा कोशिका के घटकों के संघटन का पता लगाते हैं। उत्प्लावन घनत्व अपकेंद्रिता में सुक्रोस अथवा सीजियम क्लोराइड के उच्च सांद्र के घोल का प्रयोग करते हैं। ये अपकेंद्री नलिकाओं में सतत घनत्व ग्रेडिएंट बनाए रखते हैं और कोशिका के घटक, घनत्व के कारण इतने नीचे बैठ जाते हैं जो उनके घनत्व के बराबर होता है।

अन्य विधियों में वर्णलेखन आता है जिसमें पृथक गुणांक का सिद्धांत लागू होता है। वर्णलेखन विभिन्न प्रकार का होता है—पतली पर्त या कागज, आयन प्रत्यावर्तन, जेल छानन तथा सजातीय। वैद्युतकणसंचलन में कोशिकीय बृहदाणु उनके सकल आवेशों की भिन्नता द्वारा अलग होते हैं। इस प्रकार अणुओं को पीकोग्राम अथवा नैनोग्राम तक भी अलग कर सकते हैं। यह बहुत ही संवेदी विधि है।

अभ्यास

1. एक संयुक्त सूक्ष्मदर्शी का चित्र बनाइए। इसके विभिन्न भागों को चिह्नित कीजिए और प्रत्येक के कार्य का भी वर्णन कीजिए।
2. सूक्ष्मदर्शी की विभेदन क्षमता क्या दर्शाती है ?
3. कला विपर्यासी सूक्ष्मदर्शिकी से आप क्या समझते हो ? यह प्रतिदीप्ति सूक्ष्मदर्शिकी से किस प्रकार भिन्न है ?
4. निम्नलिखित के लिए निदर्श तैयार करने के लिए आवश्यक चरणों की रूपरेखा लिखिए।
   (i) संचरण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी
   (ii) क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी
5. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी, प्रकाश सूक्ष्मदर्शिकी की तुलना में क्यों अधिक दक्ष होती है ?
6. संचरण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी, क्रमवीक्षण सूक्ष्मदर्शिकी से किस प्रकार भिन्न है ?
7. कोशिका प्रभाजन क्या है ?
8. उत्प्लावन घनत्व अपकेंद्रण क्या है ? इसकी खोज किसने की थी ?
9. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :
   (i) वर्णलेखन विज्ञान
   (ii) वैद्युतकणसंचलन
10. जैल वैद्युतकणसंचलन सूक्ष्मतम अणुओं को अलग करने में कैसे सहायक है ? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

अध्याय 8

कोशिका जीवन की इकाई के रूप में

"सभी जीव कोशिकाओं से बने हैं। सभी कोशिकाएं अपनी पूर्ववर्ती कोशिकाओं से उत्पन्न होती हैं"। यह कोशिका सिद्धांत कहलाता है। प्रकाश सूक्ष्मदर्शी की सहायता से कोशिका की संरचना एवं संगठन का अध्ययन, कोशिकाविज्ञान (cytology) कहलाता है। वर्तमान में कोशिका की संरचना एवं प्रकार्यों में संबंध स्थापित करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। जीवविज्ञान की यह शाखा कोशिका जीवविज्ञान (cell biology) कहलाती है, जिसमें कई जैव-रासायनिक तकनीकें और प्रत्येक कोशिका की संरचना तथा कार्य करने की विधि समाहित है। कोशिका जीवविज्ञानी प्राय: उन आधारभूत प्रक्रियाओं का अवलोकन करते हैं जो सभी कोशिकाओं के लिए एक समान हैं। अत: कोशिका जीवविज्ञान एक एकीकृत विषय है तथा कोशिकाविज्ञान के अध्ययन का अर्थ है 'जीवन का अध्ययन करना'।

8.1 कोशिका : जीवन की आधारभूत इकाई

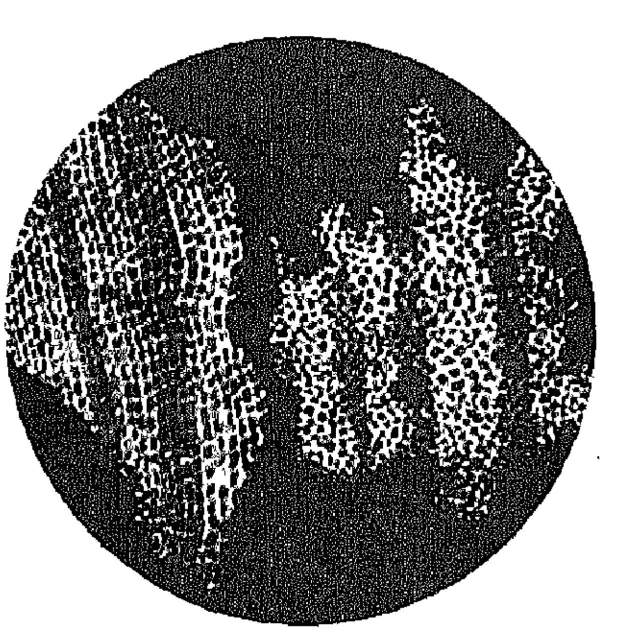
हम ऐसे जीव की कल्पना नहीं कर सकते हैं जो कोशिका का न बना हो। जीव एक अथवा कई कोशिकाओं के बने होते हैं। यदि वे एक कोशिका से बने होते हैं तो एककोशिक जीव कहलाते हैं जैसे कि *अमीबा, क्लेमाइडोमोनास,* जीवाणु और कई प्रकार के कवक, दूसरी ओर यदि जीव कई कोशिकाओं से निर्मित हों तो इन्हें बहुकोशिक जीव कहा जाता है। बहुकोशिक जीव मात्र कुछ कोशिकाओं (जैसे कुछ शैवाल एवं कवक) अथवा लाखों-करोड़ों कोशिकाओं से मिलकर (उदाहरणार्थ मानव, वृक्ष, व्हेल आदि) निर्मित होते हैं। इन बहुकोशिकीय जीवों में कुछ कोशिकाएं एक विशिष्ट प्रकार्य संपन्न करने के लिए विशेषीकृत हो जाती हैं और इस प्रकार विभिन्न कोशिका समूहों में श्रम-विभाजन स्थापित हो जाता है। समान उद्गम और एक समान विशिष्ट प्रकार्य संपन्न करने वाली कोशिकाएं एक **ऊतक** (Tissue) का संगठन करती हैं (जैसे कि पेशी) कई प्रकार के ऊतक सामूहिक रूप से जुड़कर एक **अंग** (organ) का निर्माण करते हैं, जो एक अथवा कई प्रकार के विशिष्ट प्रकार्यों का संपादन करता है (जैसे वृक्क, यकृत, पत्तियां एवं जड़ें)। अधिकांश जंतुओं में अनेकों अंग किसी निश्चित प्रकार्य को संपन्न करने के लिए पारस्परिक रूप से संबंधित होते हैं तथा इस प्रकार एक अंग-तंत्र (organ-system) का निर्माण करते हैं (उदाहरणार्थ पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, आदि)। एक जीव के शरीर में विभिन्न अंग-तंत्र **श्रम विभाजन** (division of labour) का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

चाहे पादप हो या जंतु, प्रत्येक जीव मात्र एककोशिका से ही प्रारंभ होता है। एककोशिक जीव अपना संपूर्ण जीवन चक्र एक कोशिका के रूप में पूरा करते हैं। किंतु अन्य जीवों के जीवन काल में कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि होती है। हमारे शरीर की सभी कोशिकाएं मात्र एक कोशिका, युग्मनज, से प्रारंभ हुई जिसने लगातार विभाजित होकर हमारे बहुकोशिक शरीर का निर्माण किया।

हम जानते हैं कि कोशिकाएं शरीर के मात्र निर्माण खंड ही नहीं हैं, बल्कि जीवन की प्रकार्यात्मक इकाइयां भी हैं। साथ ही किसी जीव के शरीर में कई विविध प्रकार की कोशिकाएं विद्यमान हो सकती हैं। शरीर की सभी कोशिकाओं के आनुवंशिक पदार्थ एक जैसे ही होते हैं। यद्यपि युवा कोशिकाएं विशेषीकृत (specialised) हो सकती हैं जो विशिष्ट प्रकार्य संपन्न करती हैं। किसी भी जीव की नई कोशिकाओं का उद्गम पूर्ववर्ती कोशिकाओं से ही होता है। अत: प्रत्येक कोशिका एक जैसी आनुवंशिक सूचना धारण करती है। इसलिए किसी भी जीव में ये कोशिकाएं नए जीव को उत्पन्न करने में सक्षम होती हैं। कोशिका की यह मध्यक्षमता **पूर्णशक्तता** (totipotency) कहलाती है। एक कोशिका कई कोशिकांगों से बनी होती है जिनके द्वारा कोशिका अपने सभी प्रकार्य करती है। अत: जीवों की सभी क्रियाएं सूक्ष्मरूप से प्रत्येक कोशिका में निहित रहती हैं। इसी कारण कोशिका को **जीवन की मूलभूत इकाई** (basic unit of life) तथा **किसी जीव की संरचनात्मक इकाई** (structural unit of an organism) कह सकते हैं।

8.2 कोशिका की खोज

रॉबर्ट हुक (1665) को कोशिका की खोज का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने कॉर्क की बनी अति पतली फांक पर मधुमक्खी के



चित्र 8.1 पादप के काग ऊतक में बक्से-समकक्ष

छत्ते-जैसी संरचना (चित्र 8.1) देखी जिसकी भित्ति, मंजूषा जैसी कोठरियों अथवा कक्षों की एक स्थूल भित्ति से घिरी हुई थी, जिन्हें उन्होंने प्रथमत: सेलुली नाम दिया जिसे हम आज कोशिका का समानार्थी मानते हैं। उन्होंने इन कोशिकाओं को तरल पदार्थों के संवहन का मार्ग माना जाता था। वर्ष 1683 में लीवेनहॉक ने जीवाणुओं, प्रोटोजोआ, लाल रक्त कोशिकाओं और शुक्राणुओं को सर्वप्रथम मुक्त रूप में देखा था और 1772 में अल्फांसो कोर्टी ने कोशिका में जीवित पदार्थ देखे।

वर्ष 1831 में रॉबर्ट ब्राउन द्वारा एक महत्त्वपूर्ण खोज में *ऑर्किड* क जड़ों की कोशिकाओं में एक लघु गोला विद्यमान पाया जो बाद में **केंद्रक** (nucleus) कहलाया और जिसके बारे में सोचा गया कि सामान्यत: यह प्रत्येक कोशिका में उपस्थित होता है। ह्यूगो वोन मोहल (1838-1846) तथा जोहांस पुरकिंजे (1839) ने कोशिका में जैली-रूपी (Jelly-like) द्रव्य देखा जिसे **जीवद्रव्य** (Protoplast) नाम दिया गया।

8.3 कोशिका सिद्धांत

सूक्ष्मदर्शी के सतत् परिष्कार, अवलोकन, तकनीक की उन्नति तथा वैज्ञानिकों की कोशिका संरचना में अभिरुचि के फलस्वरूप कोशिका के संबंध में ज्ञान का अत्यधिक संचय हुआ है। मैथियास श्लाइडेन (1838) नामक जर्मन वनस्पतिज्ञ ने बड़ी संख्या में पादप ऊतकों का निरीक्षण किया और पाया कि वह सभी एक या अन्य प्रकार की कोशिकाओं से बने हुए हैं। इस ज्ञान के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी ऊतकों का निर्माण कोशिकाओं से होता है। उसी समय थियोडोर श्वान (1839) नामक जंतु वैज्ञानिक ने विविध प्रकार की जंतु कोशिकाओं का अध्ययन किया। अपने इस प्रयास में यद्यपि वह कोशिका भित्ति देखने में सफल नहीं हुए फिर भी वह केंद्रक का भली-भांति अवलोकन कर सके। उनके अनुसार जंतुओं की कोशिकाएं भित्ति के स्थान पर एक पतली जीव द्रव्य कला (plasma membrane) से घिरी रहती हैं। साथ ही उन्होंने पादप ऊतकों का भी निरीक्षण किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोशिका भित्ति पादप का विशेष लक्षण है, जबकि आंतरिक स्तर पर पादपों और जंतुओं दोनों ही की कोशिकाओं में एक जैसा संगठन होता है। दोनों प्रकार की कोशिकाओं में एक स्पष्ट जीवद्रव्य से घिरा हुआ एक केंद्रक विद्यमान होता है। इन अध्ययनों के आधार पर उन्होंने यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि *पादपों तथा जंतुओं के शरीर कोशिकाओं और उनके उत्पादों के बने होते हैं*।

बाद में श्लाइडेन एवं श्वान ने अपने अवलोकनों की तुलना की तथा श्वान की परिकल्पना पर विचार-विमर्श किया। फलत: उनके संयुक्त विचारों से कोशिका सिद्धांत (Cell theory) प्रतिपादित किया गया, किंतु यह सिद्धांत नवीन कोशिकाओं के उद्गम के बारे में (अथवा नई कोशिकाएं कैसे उत्पन्न होती हैं?) कोई प्रकाश नहीं डालता। रुडोल्फ विर्चो ने (1855) यह सुझाया कि कोशिकाएं विभाजित होती हैं एवं नवीन कोशिकाओं का निर्माण पूर्ववर्ती कोशिकाओं से होता है (Omnis Cellula-e-cellula)। बाद में नागेली (Nagli, 1846) और रुडोल्फ विर्चो (1855) ने श्लाइडेन तथा श्वान की परिकल्पना को अंतिम रूप दिया।

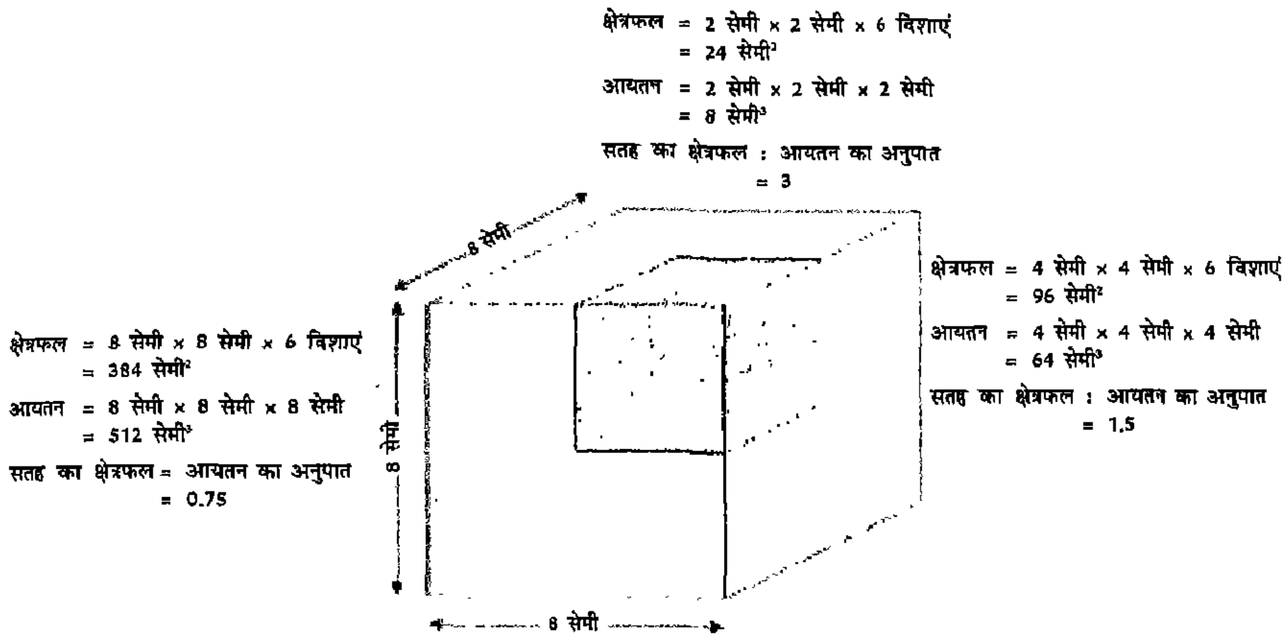
जैसा कि हम आज समझते हैं कोशिका सिद्धांत निम्न मतों से संगठित है :

(i) सभी जीवित जीव कोशिकाओं तथा उनके उत्पादों से बने होते हैं।

(ii) नवीन कोशिकाओं का उद्गम पूर्ववर्ती (pre-existing) कोशिकाओं से होता है।

8.4 एककोशिक तथा बहुकोशिक जीव

अधिकांश कोशिकाएं अत्यंत छोटी होती हैं तथा इनका आयतन 1 से 1000 μm^3 तक होता है। कुछ पक्षियों के अंडे बहुत बड़े होते हैं। किसी एककोशिक जीव को जीवित रहने के लिए पोषकों के अवशोषण, वातावरण के अनुरूप गैसों के आदान-प्रदान के अतिरिक्त और भी अनगिनत कार्य करने होते हैं। उपरोक्त कार्यों को संपन्न करने के लिए प्रथम तो कोशिका को पर्याप्त विशाल होना चाहिए जिससे कि वह बड़ी संख्या में कोशिकांग अपने में समाहित कर सके। दूसरे इसको अपने सतही क्षेत्रफल को बढ़ाना होता है (चित्र 8.2)। जैसे-जैसे कोशिका का आयतन बढ़ता है, इसका सतही क्षेत्र भी बढ़ता जाता है लेकिन कोशिकाओं की वृद्धि तथा तल वृद्धि कभी समानुपाती नहीं होते। जीव विज्ञान के दृष्टिकोण से आयतन के द्वारा इकाई समय में कोशिकाओं के



चित्र 8.2 कोशिका में सतह के क्षेत्र एवं आयतन का अनुपात

रासायनिक क्रिया को निर्धारित होता है, जबकि सतही क्षेत्रफल अवशोषण तथा अपशिष्ट उत्पादों के मुक्त होने की मात्रा को निर्धारित करते हैं। जैसे-जैसे जीवित कोशिका वृद्धि करती है, इसके अपशिष्ट उत्पाद की दर एवं बाहर से पदार्थों के प्रवेश की आवश्यकता सतही क्षेत्रफल की तुलना में तेज हो जाती है। बृहद् जीवों की छोटी कोशिकाएं आयतन एवं सतही क्षेत्रफल के असंगत वृद्धि को संतुलित करती है। अतः तल क्षेत्र और आयतन के अनुपातों को संतुलित अवस्था में बनाए रखने के लिए कोशिकाओं के **माइक्रोविलाई** (microvilli) जैसी अतिरिक्त अवशोषण संरचनाएं धारण करनी होती हैं, जो अवशोषक तल क्षेत्र को बढ़ाती हैं।

ध्यातव्य है कि एककोशिक जीव के विपरीत बहुकोशिक जीव एकल कोशिकाओं के समुच्चय (aggregate) मात्र नहीं होते वरन् वे अलग-अलग कार्यों हेतु स्पष्ट विभेदन दर्शाते हैं जो कि एककोशिक जीव को स्वतंत्र रूप से करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ कोशिकाओं से ऐसे द्रव्य स्रावित होते हैं जो रक्षा हेतु सतत् शरीर के बाहर भेजे जाते हैं। कुछ कोशिकाएं ऐसे संघटक स्रावित करती हैं जो इन्हें एक-दूसरे से बांधे रहते हैं। कुछ अन्य कोशिकाएं पाचन, प्रकाशसंश्लेषण, विलेयों का संचालन, तंत्रिका आवेग के स्थानांतरण की प्रेरणा देने के साथ ही कुछ अत्यंत विशेषीकृत होकर जनन करती हैं। यहां तक कि मृत कोशिकाएं भी अपनी भूमिका का निर्वहन करती हैं। उदाहरणार्थ जंतुओं में मृत कोशिकाओं का बाह्य आवरण चर्म का बाहर भाग बन कर आंतरिक जीवंत कोशिकाओं को सुरक्षा प्रदान करता है। पादपों में जल संवहन, दारु वाहिकाओं तथा वाहनिकाओं द्वारा संपन्न किया जाता है, जो मृत कोशिकाएं ही हैं। इस प्रकार कोई एक बहुकोशिक जीव अपनी विविध प्रकार की कोशिकाओं के साथ एककोशिक जीव की तुलना में कहीं अधिक दक्ष होता है। इसके अतिरिक्त बहुकोशिक जीव एककोशिक जीव की तुलना में अन्य रूपों में भी लाभ उठाने की स्थिति में है। क्योंकि उनमें नियंत्रण वहन करने की क्षमता एककोशिक जीव की अपेक्षा कहीं अधिक अंतर्निहित होती है। बहुकोशिक जीवों के लाभ तथा सीमा संबंधी बिंदुओं को नीचे दर्शाया गया है :

(i) बहुकोशिक जीव की कोशिकाओं में एक विशेष समन्वय स्थापित रहता है, जैसे कि हृदय की पेशियों द्वारा रक्त पंप करना तथा तंत्रिका कोशिकाओं द्वारा संवेदन (nerve impulse) पहुंचाना।

(ii) इस प्रकार की क्षमता के फलस्वरूप यह कोशिकाएं दुहरा अस्तित्व धारण करती हैं—व्यक्तिगत तथा सामूहिक (ऊतक की इकाई के रूप में)।

(iii) बहुकोशिक जीवों में यदि कुछ कोशिकाओं की मृत्यु भी हो जाती है तो जीवित कोशिकाएं विभाजित होकर मृत कोशिकाओं का स्थान ले लेती हैं जो एककोशिक जीवों के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट लाभ है। उदाहरण के लिए मनुष्य की चर्म तथा रक्त कोशिकाएं आदि।

(iv) यद्यपि एक ही युग्मनज से उत्पन्न हुई कोशिकाएं समान आनुवंशिक द्रव्य धारण करती हैं फिर भी बहुकोशिक जीवों में कई स्तरों पर विभेदन स्पष्ट होता है, जिससे इनमें उच्च कोटि का विशेषीकरण (specialisation) संभव होता है।

(v) कुछ विभेदित कोशिकाएं अपने मौलिक कार्यों को अस्थायी अथवा अनिवार्य रूप में छोड़ देती हैं। उदाहरण के लिए यकृत कोशिकाएं। पेशियां या बाह्यत्वचा की कोशिकाएं तो विभेदन के उपरांत भी सूत्री विभाजन में सक्षम होती हैं। लेकिन तंत्रिका कोशिकाएं तथा लाल रक्त कोशिकाएं विभेदन के पश्चात् विभाजन में असमर्थ हो जाती हैं । यहां तक कि लाल रक्त कोशिकाओं में केंद्रक ही अनुपस्थित होता है।

(vi) यद्यपि इस विभेदन का आधार अभी तक समझा नहीं जा सका है किंतु बहुकोशिक जीवों में इसके आश्चर्यजनक लाभ अंतर्निहित हैं, जैसे कि (क) दीर्घ जीवन (ख) अग्रेतर विशेषीकरण, (ग) सुरक्षित, विघ्न-रहित जीवन के क्रियाकलाप, (घ) बाह्य उद्दीपन, द्रव्यों का आदान-प्रदान, परिवहन, स्राव आदि के लिए कोशिका तल तथा आयतन के मध्य उचित संतुलन स्थापित रखना।

विभेदन के स्तर के आधार पर किसी जीव में पाए जाने वाली कोशिकाओं को मुख्यत: तीन भिन्न श्रेणियों में समूहित किया जा सकता है :

(i) अविभेदित कोशिकाएं (Undifferentiated cells) : यह कोशिकाएं विभाजन तथा परिवर्धन में सक्षम होती हैं। उदाहरण के लिए जंतुओं में कोशिकाएं (stem cells) तथा पौधों में विभज्योतकी कोशिकाएं (meristematic cells) ।

(ii) विभेदित कोशिकाएं (Differentiated cells) : यह सूत्री विभाजन के उपरांत बनने वाली कोशिकाएं हैं जो विशेषीकृत हो चुकी हैं, अथवा स्पष्ट श्रम का विभाजन दर्शाती हैं। इसीलिए यह कोशिकाएं निश्चित लक्षण धारण करती हैं और निर्धारित कार्यों को संपन्न करती हैं। उदाहरण के लिए लाल रक्त कोशिकाएं (RBCs) ऑक्सीजन तथा कार्बन डाईऑक्साइड का परिवहन, पेशी कोशिकाएं गति एवं संचलन , तथा पर्ण मध्योतकी कोशिकाएं प्रकाशसंश्लेषण संपन्न करती हैं।

(iii) विविभेदित कोशिकाएं (Dedifferentiated cells) : ये ऐसी कोशिकाएं हैं जो अपने उद्गम के उपरांत विभेदित हो चुकी होती हैं। किंतु आवश्यकता होने पर पुन: अविभेदित विभज्योतकी अवस्था में आने की क्षमता रखती हैं। यह कोशिकाएं घाव भरने, पुनर्जनन तथा द्वितीयक वृद्धि के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। वह प्रक्रिया जिससे उनका विशेषीकरण नष्ट हो जाता है विविभेदन (dedifferentiation) कहलाती है।

जैसा कि आप अब तक समझ चुके होंगे, सभी जीवों की कोशिकाएं, चाहे वह एककोशिक अथवा बहुकोशिक क्यों न हों, संरचना, आणविक संगठन और विविध प्रकार के क्रिया-कलापों में समानता दर्शाती हैं। यह जीवन की एकता का सबल परिचायक है।

सारांश

कोशिका की सर्वप्रथम खोज रोबर्ट हुक ने 1665 में की थी और 1831 में रॉबर्ट ब्राउन ने केंद्रक खोजा था। विर्चो (1855) ने सुझाया कि कोशिकाओं की उत्पत्ति पूर्ववर्ती कोशिकाओं से होती है। श्लाइडेन एवं श्वान ने अपने कोशिका सिद्धांत में उद्घोषित किया था कि सभी जीवित जीव कोशिकाओं से निर्मित होते हैं जो उनकी संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक इकाइयां हैं और जिनके पारस्परिक प्रकार्य ही जीव के कार्य संपादन का निर्धारण करते हैं। किसी एककोशिक जीव द्वारा जीवन की सभी अभिक्रियाएं और क्रिया-कलाप मात्र एक कोशिका द्वारा ही संपन्न किए जाते हैं । ऐसे जीव अपने आयतन और सतही क्षेत्रफल में वृद्धि कर अनगिनत कोशिकांगो को समाहित कर लेते हैं। दूसरी ओर बहुकोशिक जीवों में श्रम-विभाजन होता है और कोशिकाएं विविध कार्यों का संपादन करने के लिए विभेदित हो जाती हैं। इससे उनकी उत्तरजीविता संबंधी क्षमताओं में वृद्धि होती है।

अभ्यास

1. कोशिका की खोज किसने की थी ?
2. पूर्णशक्तता की परिभाषा लिखिए।
3. कोशिका विभेदन से आप क्या समझते हैं ?
4. सभी कोशिकाओं में आधारभूत समानताएं कौन-कौन सी हैं ?
5. कोशिका सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया था ?
6. कोशिका सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

7. एककोशिक जीवों की तुलना में बहुकोशिक जीवों के अधिक उत्तरजीवी होने की संभावना क्यों होती हैं ?
8. निम्न में से कौन-से कथन सत्य अथवा असत्य हैं ?
   (क) ऊतक स्वतंत्र लेकिन परस्पर अभिक्रियाएं करने वाले वाहकों से बनते हैं।
   (ख) विर्चो ने यह मत प्रस्तावित किया था कि कोशिकाओं की उत्पत्ति पूर्ववर्ती कोशिकाओं से होती है।
   (ग) कोशिका सिद्धांत का प्रतिपादन रॉबर्ट हुक द्वारा किया गया था।
   (घ) किसी जीव में मृत कोशिकाओं की कोई भूमिका नहीं होती।
9. सही उत्तर को चिह्नित (✓) कीजिए:
   नई कोशिकाओं की उत्पत्ति होती है ?
   (क) जीवाण्विक किण्वन से
   (ख) अजैविक पदार्थों से
   (ग) पूर्ववर्ती कोशिकाओं से
   (घ) पुरानी कोशिकाओं के पुनर्जनन द्वारा
10. "कोशिका जीवन की आधारभूत इकाई है" : कथन के औचित्य की ओर अपने बिंदु व्यक्त कीजिए।
11. टिप्पणी कीजिए : "किसी जीव का प्रकार्य उसकी कोशिकाओं की अभिक्रियाओं और पारस्परिक क्रियाओं का योगफल होता है।"

अध्याय 9

कोशिका की संरचना

जीवजगत की विविधता से आप भली-भांति परिचित हैं जिसमें सूक्ष्मजीवाणुओं से लेकर विशाल, बहुकोशिक पादप और जंतु तक सभी कोशिकाओं से बने होते हैं जो वस्तुतः जीवन की मूलभूत इकाई है। पूर्ववर्ती अध्याय में आपने उन उपकरणों तथा तकनीकों का अध्ययन कर लिया है जो कोशिका के संरचनात्मक पक्ष को समझने के लिए उपयोग में ली जाती हैं। इस अध्याय में आपका परिचय कोशिका की विभिन्न कोशिकाओं की संरचना और उनके द्वारा संपन्न कार्यों से कराया जाएगा। इस विधि से आपको कोशिका जैसी सूक्ष्म इकाई के गतित्व (dynamics) को समझने में भी सहायता मिलेगी। सामान्यतः कोशिकाओं को हम भिन्न दो प्रमुख प्रकारों में विभाजित कर सकते हैं।

(क) **असीमकेंद्रकी कोशिकाएं** (Prokaryotic cells)

(ख) **ससीमकेंद्रकी कोशिकाएं** (Eukaryotic cells)।

असीमकेंद्रकी कोशिकाओं की संरचना अपेक्षाकृत सरल होती है जबकि ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में उच्चकोटि का विभेदन होता है।

1. असीमकेंद्रकी कोशिका एवं इसका संगठन

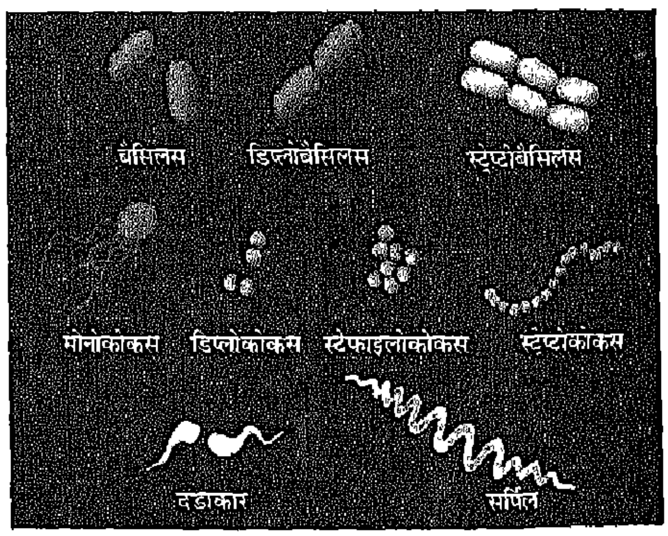
असीमकेंद्रकी कोशिकाओं के अंतर्गत जीवाणु, नील-हरित शैवाल, माइकोप्लाज्मा अथवा प्ल्यूरो-न्यूमोनिया - जैसे जीव स्पाईरोकीट एवं रिकिटिसी सम्मिलित हैं। सामान्यतः असीमकेंद्रकी कोशिकाएं, सभी ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं की तुलना से आकार में अपेक्षाकृत छोटी होती हैं लेकिन इनका विभाजन ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं की तुलना में अधिक तेजी से होता है। सामान्यतः सभी सत्य जीवाणुओं का कोशिका संगठन असीमकेंद्रकी होता है। अतः असीमकेंद्रकी कोशिकाओं के आकार एवं रूपरेखा में बहुत अधिक विभेद पाया जाता है। सामान्यतः जीवाणुओं के चार मूल आकार होते हैं (चित्र 9.1)।

(i) **कोकस अथवा गोलाकार** (**Coccus or Spherical**) : गोलाकार कोशिकाएं अकेली (**मोनोकोक्कस**) दो के समूह में (**डिप्लोकोक्कस**) अथवा लंबी शृंखला (**स्ट्रेप्टोकोक्कस**) के रूप में विद्यमान हो सकती हैं।

(ii) **बैसिलस अथवा दंडाकार** (Bacillus) : इनका सबसे सामान्य रूप दंडाकार है जो पर्याप्त अंतर दर्शाता है क्योंकि यह चपटा, गोल या सिगार के रूप में हो सकती है। कोशिकाएं एकल रहती हैं किंतु यह विभाजन के बाद जोड़े बनाने के लिए साथ-साथ रह सकती हैं।

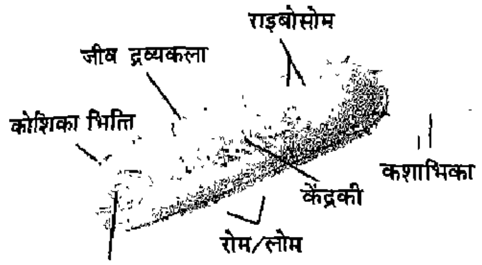
(iii) **विब्रियों अथवा कोशाकार** (Vibrio) : कुछ दंडाकार जीवाणु मुड़े हुए भी या अर्द्धविराम कॉमा के रूप के भी हो सकते हैं।

(iv) **सर्पिल** (Spirilla) : बहुत से जीवाणु लंबे स्प्रिंग जैसे सर्पिल रूप होते हैं यह अर्द्धविराम की भांति भी दिखाई देते हैं, अन्य जीवाणु अत्यधिक चक्रित होते हैं जो कार्कपेंच की भांति दिखाई देते हैं (जैसे स्पाइरोकीट)।



चित्र 9.1 जीवाणुओं के रूप

असीमकेंद्रकी कोशिकाएं आकार में भिन्नता दर्शाती हैं। सबसे छोटी जीवाणुकोशिका लगभग 100-200 nm के व्यास की होती हैं और यह आकार एक बृहद विषाणु के आकार के लगभग बराबर होता है। यद्यपि यूबैक्टीरिया कोशिकाएं चौड़ाई में 1.1-1.5 mm तथा लंबाई में 2.0-2.6 mm होती हैं। कुछ जीवाणु हरे, नीले शैवाल बहुत लंबे (500 μm तक) होते हैं जैसे **एपुलोप्सियम फिशेल्सिन**, **स्पाइरोकीट्स** तथा **ओस्सिलेटोरिया** जैसे एक विशाल जीवाणु (500 μm तक के आकार का) की खोज भूरा सर्जन मछली की आंत में की गई।



चित्र 9.2 एक जीवाणुकोशिका की परासंरचना

अब यह भली-भांति सुनिश्चित है कि कुछ असीमकेंद्रकी कोशिकाएं साधारण ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं से अधिक बड़ी होती हैं।

असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में विविध संरचनाएं पाई जाती हैं (चित्र 9.2)। यहां तक कि ग्राम धनात्मक तथा ग्राम ऋणात्मक कोशिकाओं में भित्ति की रचना तथा मोटाई में भी अंतर होता है। इन सब में विविधताओं के होते हुए भी असीमकेंद्रकी कोशिकाएं मूलभूत संरचना और महत्त्वपूर्ण संघटकों की दृष्टि से समानता दर्शाती हैं। प्रत्येक असीमकेंद्रकी कोशिका अवश्यंभावी रूप से एक जटिल कोशिकाभित्ति से घिरी रहती है। कोशिकाभित्ति के अंदर परिद्रव्यी (periplasma) स्थान तथा उसके नीचे जीव-द्रव्य कला विद्यमान होती है जो अंतर्वेशित होकर आंतरिक झिल्ली की संरचनाओं को निर्मित करती है। कोशिकांगो का आंतरिक परिवेश बहुत सरल होता है क्योंकि ये झिल्ली से बंधे नहीं होते। केंद्रकाभ कहे जाने वाले एक पृथक क्षेत्र में आनुवंशिक द्रव्य स्थापित रहता है। केंद्रकाभ एवं इसके चारों ओर के कोशिकाद्रव्य के बीच किसी भी प्रकार की परिसीमन झिल्ली नहीं होती है। राइबोसोम तथा समावेशित पिंड कोशिका-द्रव्य के मैट्रिक्स में अनियमित रूप से फैले रहते हैं।

कोशिका आवरण

अधिकांश असीमकेंद्रकी कोशिकाओं, विशेषत: जीवाणु कोशिकाओं में एक जटिल रासायनिक कोशिका आवरण (cell envelope) होता है। कोशिका आवरण के विभिन्न स्तर एक-दूसरे पर चट्टीसम (stacked) होते हैं एवं भली-भांति चिपके रहते हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ये तीनों मूल परत अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। बाह्य परत **ग्लाइकोकैलिक्स** जिसके पश्चात् क्रमश: कोशिका भित्ति एवं कोशिकाकला (जीवद्रव्य कला) होती है। यद्यपि प्रत्येक परत का भिन्न कार्य है पर ये तीनों मिल कर एक सुरक्षा इकाई बनाते हैं। यह आवरण कोशिका के आयतन का 10-50 प्रतिशत भाग निर्मित करता है।

ग्लाइकोकैलिक्स बृहद् अणुओं से बनी बाह्यतम परत है। यह कोशिकाओं की सुरक्षा के साथ उन्हें एक-दूसरे से चिपके रहने में सहायता करती है। यह परत विभिन्न जीवाणुओं में मोटाई तथा रासायनिक बनावट में भिन्न होती है। कुछ में यह परत ढीली होती है जिसे **अवपंक परत** (slime layer) कहते हैं। अन्य में ये मोटे एवं कठोर आवरण के रूप में हो सकती है जो **संपुटिका** (capsule) कहलाता है। संपुटिका तथा अवपंक परत बहुशर्कराइड (polysaccharide) की बनी होती है किंतु इसमें कभी-कभी प्रोटीन भी विद्यमान होता है। संपुटिका के कारण कोशिका में गोंदीय एवं चिपकने वाला लक्षण होता है। यह परत जीवाणुओं के जीवन के लिए नितांत आवश्यक नहीं है किंतु कभी-कभी अतिविशिष्ट तथा प्रतिरक्षाजनी हो सकती है।

कोशिकाभित्ति (cell wall) के नीचे कोशिका आवरण की दूसरी परत है। यह परत कोशिका की बनावट निश्चित करती है तथा जीवाणु के अल्प परासरण दाबी घोल (*hypotonic*) में फटने तथा निपातित (collapse) होने से बचाने में एक सशक्त संरचनात्मक भूमिका प्रदान करती है। यह परत एक विशेष बृहद् अणु जो **पेप्टीडोग्लाइकेन** (murein) के कारण कठोर होती है। यह लंबी ग्लाइकेन लड़ियों (N-acetyl muramic acid and N-acetyl glucosamine) के आवर्ती ढांचे से बना होता है। जो लघुपेप्टीइड शृंखला द्वारा तिर्यकबद्ध होती है तथा एक सशक्त तथा लचीला ढांचा सहायता के लिए प्रदान करती है। बहुत से प्रतिजिविकी (antibiotics) (जैसे Penicillin तथा Cephalosporins) पेप्टीडोग्लाइकेन लड़ियों की तिर्यकबद्धता का प्रतिरोध करते हैं, इसलिए इन प्रतिजीवियों की उपस्थिति में कोशिकाएं अपघटित होने लगती हैं। **लाइसोजाइम** एंजाईम जो लार तथा अणुओं में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है कुछ जीवाणुओं के प्रति प्रतिरोध, पेप्टीडोग्लाइकेन के जल-विघटन से उत्पन्न करता है।

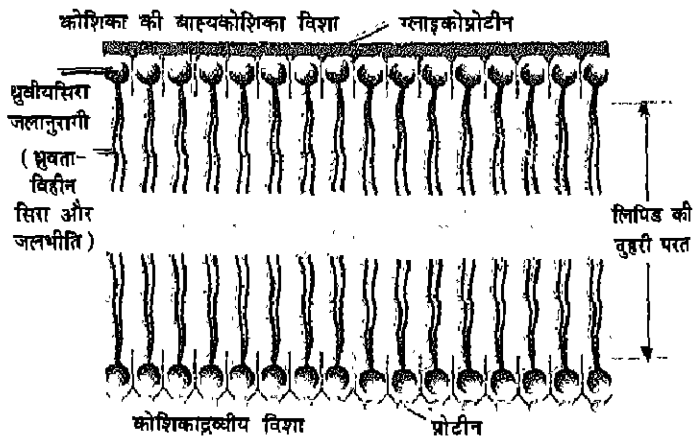
ग्राम अभिरंजन (Gram staining) जीवाणुओं को दो समूहों, ग्राम धनात्मक तथा ग्राम ऋणात्मक जीवाणु (सारणी 9.1) में वर्गीकृत करने की विशेष तकनीक है, जीवाणु स्फटिक बैंगनी या जेन्शियेन बैंगनी के क्षारीय घोल में अभिरंजित किए जाते हैं। तब जीवाणु की अभिरंजित स्लाइड को 0.5 प्रतिशत आयोडिन के घोल में उपचारित करने के पश्चात् क्रमश: पानी तथा अल्कोहल या ऐसीटोन से पाई जाती है। दोनों समूहों के कोशिका आवरण भिन्न होते हैं। ग्राम धनात्मक जीवाणुओं में कोशिका भित्ति मोटी तथा मुख्यत: पैप्टीडोग्लाइकेन की बनी होती है। ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं में कोशिका आवरण तीन परतों की बनी होती हैं। इसमें क्रमश: एक बाह्य झिल्ली, पेप्टीडोग्लाइकेन की एक पतली परत एवं कोशिका झिल्ली होती है। ग्राम धनात्मक कोशिका भित्ति 20-80 nm तक मोटी होती है तथा टेकोइक अम्ल में दृढ़ता से घिरी होती है। ग्राम ऋणात्मक जीवयुग्मों में बाह्यझिल्ली का बाह्यतल

तालिका 9.1 ग्राम धनात्मक तथा ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं में अंतर

ग्राम धनात्मक जीवाणु	ग्राम ऋणात्मक जीवाणु
जीवाणु ग्राम रंजक से रंगे जाने पर और अल्कोहल से धुलाई के उपरांत भी नीला तथा गुलाबी रंग दर्शाते हैं।	जीवाणु अल्कोहल से धुलाई के उपरांत रंजक धारण नहीं करते ।
बाह्यकला अनुपस्थित होती है ।	बाह्य कला उपस्थित होती है ।
कोशिका-भित्ति 20-80 nm स्थूल होती है ।	कोशिका-भित्ति 7.5-12 nm स्थूल होती है ।
भित्ति सपाट होती है ।	भित्ति लहरियादार होती है और मात्र कुछ ही स्थलों पर प्लाज्मालेमा के संपर्क में होती है ।
म्यूरिन अथवा म्यूकोपेप्टाइड का अंश 70-80 प्रतिशत तक होता है ।	म्यूरिन अथवा म्यूकोपैप्टाइड का अंश 10-20% होता है ।
कशाभिका की आधार संरचना में 2 वलय होते हैं ।	कशाभिका की आधार संरचना में 4 वलय होते हैं ।
कोशिका भित्ति में टेइकोइक अम्ल उपस्थित रहता है।	कोशिका भित्ति में टेइकोइक अम्ल अनुपस्थित होता है।
ग्राम धनात्मक समूह में अपेक्षाकृत कम रोगजनक जीवाणु होते हैं।	ग्राम ऋणात्मक समूह में कहीं अधिक रोगजनक जीवाणु होते हैं ।

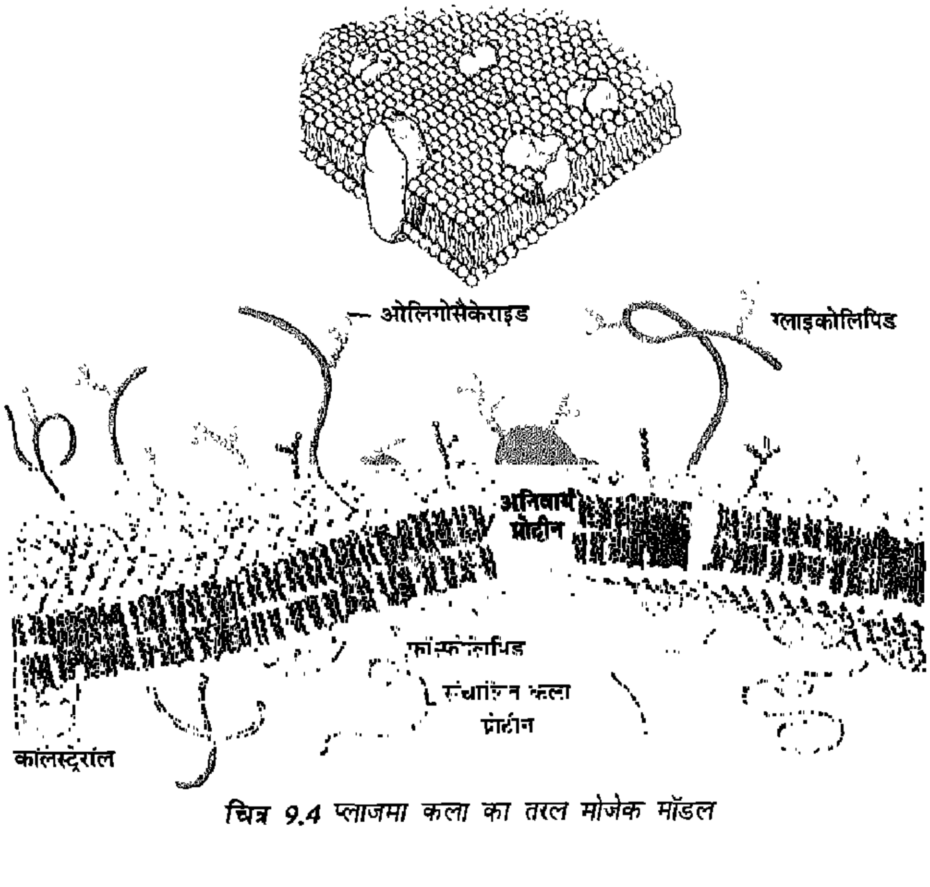
वसा-बहुराइड (Lipopolysaccharides) का होता है जिसका एक भाग झिल्ली के लिपिड में समाकलन करता है। अतः तल में कई प्रकार के प्रोटीन होते हैं जो पेप्टीडोग्लाइकेन में जुड़े रहते हैं। ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं की बाह्यझिल्ली में प्रोटीन होते हैं जो पोरिंस (Porins) कहलाते हैं तथा जो जलरागी (hydrophilic) लघुभार अणु वस्तुओं के निकास तथा आगमन के लिए नलिकाओं का कार्य करते हैं। कवकीय जीवाणु (Mycobacterium) तथा नौकार्डिया (Noccardia) में ग्राम धनात्मक प्रकार की भित्ति होती है किंतु उनकी कोशिका भित्ति का एक भाग वसायुक्त अम्ल की एक लंबी शृंखला का बना होता है जो माइकोइक अम्ल कहलाता है।

जीवद्रव्य कला सभी सजीवों के लिए नितांत आवश्यक है। असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में झिल्ली कोशिकाद्रव्य का एक घेरा बनाती है जो बाहर से कोशिका बाह्य (Extracellular) आधात्री (Matrix) तथा कोशिका भित्ति से सुरक्षित होता है। कला कोशिका के बाहरी वातावरण के संबंधों के लिए उत्तरदायी है। कला की दूसरी विशेषता उसकी अर्ध पारगम्य प्रकृति (semipermeable nature) है। यह विभिन्न स्थितियों में कुछ वस्तुओं के लिए पारगम्य है क्योंकि झिल्ली में कुछ वाहक अणु गढ़े हुए होते हैं, जो विशेष अणुओं को बांध लेते हैं तथा एक विशेष दिशा में संचालित करते हैं। इसलिए कला विशेष अणुओं के बहाव को बहुत-से कक्षों के बाहर तथा अंदर नियमित करती हैं इसकी अर्द्धतरल प्रकृति के कारण इसमें बहुत से गतिशील परिवर्तन होते रहते हैं। जीवद्रव्य कला के रासायनिक संघटक विभिन्न होते हैं, लिपिड 20-79 प्रतिशत, प्रोटीन 20-70 प्रतिशत, अल्पशर्कराईड (oligosaccharides) 1.5 प्रतिशत तथा जल 20 प्रतिशत जो ऊतक तथा जीव के ऊपर निर्भर करता है । इसके मुख्य लिपिड संघटक फास्फेलिपिड, ग्लाइकोलिपिड तथा कोलेस्टेरॉल विभिन्न प्रकार की कोशिका कलाओं में अपने संबंधित अनुपात में भिन्न होते हैं। कला से संबद्ध लिपिड अपने ध्रुवीय अथवा अध्रुवीय अंत के साथ विषम होते हैं। यह उभय स्नेही (amphipathic) भी कहलाते हैं क्योंकि इनमें जलरागी (hydrophilic) तथा जलविरोधी (hydrophobic) दोनों ही प्रकार के क्षेत्र विद्यमान होते हैं (चित्र 9.3)।



चित्र 9.3 एकल कला प्रतिमान

ध्रुवीय किनारे जल से पारस्परिक क्रिया करते हैं तथा जलरागी कहलाते हैं। जबकि अध्रुवीय किनारे जलरोधी हैं तथा एक-दूसरे से मिले होते हैं। लिपिड एक द्विपरतीय संरचना (bilayered structure) बनाते हैं इसलिए कला का बाह्यतल जलरागी है। जलरोधी किनारे अंदर गढ़े होते हैं तथा घिरे हुए पानी से दूर रहते हैं, और इनमें से बहुत से उभयसंवेदी लिपिड फास्फेलिपिड हैं। *जीवाणुओं में कला ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं से भिन्न होती है क्योंकि* इनमें स्टीरोल विद्यमान नहीं होते जैसे - कोलेस्ट्रेरॉल। यद्यपि कुछ जीवाणुओं में पंचचक्रीय (pentacyclic) स्टेरोल जैसे अणु होते हैं जिनको होपेनोइडस कहते हैं। यह होपेनोइड जीवाणु कला के स्थायित्व के लिए जाने जाते हैं। कोशिकाकला बहुत पतली होती है। हिम उत्कीर्णन (freeze etching) तकनीक द्वारा यह देखा गया है कि इसकी अंत संरचना जटिल है। इसमें कुछ गोलाकार प्रोटीन होते हैं जो लिपिड की द्विपद उपपरत में पड़े रहते हैं; कुछ प्रोटीन तल से जुड़े रहते हैं तथा परिधीय प्रोटीन (Peripheral proteins) कहलाते हैं। कला उत्तरदायी बहुत से कार्य प्रोटीन द्वारा कर दिए जाते हैं। ग्लाइकोलिपिड की भांति, प्रोटीन की अपनी स्वयं की अल्पशर्कराइडश्रृंखला हो सकती है जो विशालरूप से धरातल के बाहरी ओर उनसे जुड़ी रहती है (oligosaccharide)। यह ग्लाइकोकेलिक्स के निर्माण में सहायता करते हैं। कला में प्रोटीन कई प्रकार का पाया जा सकता है। यह **संचालित कला प्रोटीन** (transmembrane proteins) हो सकते हैं जो एकल कुंडली की भांति द्विपर्ती लिपिड पर्त से बाहर निकली रहती है। दूसरी ओर **बाह्य प्रोटीन** (extrinsic) कोशिका द्रव्य तल या बाह्य तल पर पाए जा सकते हैं जैसे (spectrin)। यह बाह्य प्रोटीन वसा अम्ल श्रृंखला से सहसंयोजकता से जुड़े रहते हैं या असहसंयोजकता से संचालित कला प्रोटीन से जुड़े रहते हैं, बाह्य प्रोटीनों की तुलना में कुछ प्रोटीन असानी से अलग नहीं किए जा सकते इसलिए इन्हें **अंतर प्रोटीन** (intrinsic) कहते हैं। **जीव द्रव्य कला के लिए** विश्व स्तर पर स्वीकृत तरल मोजेक मॉडल (चित्र 9.4) रासायनिक विश्लेषण आंकड़ों तथा विभिन्न तकनीकों की सहायता से जैवभौतिकीय द्रव्यों के अध्ययन पर आधारित है। यह निदर्श एस. जोनथन सिंगर तथा गार्थ निकोल्सन ने 1972 में प्रस्तावित किया था। इनके अनुसार कला एक सतत् लिपिड द्विपतीय संरचना है जिसमें प्रोटीन अणुओं में समाकलित हैं। प्रकृति से अद्र्धद्रवी तथा गतिक है। प्रोटीन लिपिड तथा प्रोटीन अणु संचालन क्रिया में सहायता करते हैं। अभी तक दो प्रकार के प्रोटीनों की खोज हुई है। परिधीय प्रोटीन जो कला से ढीले जुड़े होते हैं और इसलिए जलीय घोल में आसानी से विलगित हो सकते हैं। बचे हुए प्रोटीन अनिवार्य होते हैं; जो आसानी से अलग नहीं किए जा सकते। यह प्रोटीन लिपिड से विलग होने पर जलीय घोल में अघुलनशील हैं। कुछ बृहद् प्रोटीन लिपिड पर्त के बाहर दोनों ओर



चित्र 9.4 प्लाजमा कला का तरल मोजेक मॉडल

तक आ जाते हैं जिन्हें नालीदार प्रोटीन समझा जाता हैं। जिनसे जल घुलनशील द्रव्य निकल सकें। कुछ समाकल प्रोटीन जो लिपिड द्विपर्त को अनुप्रमाणित करते हैं मात्र एक धरातल पर दिखाई देते हैं। बहुत से समाकल प्रोटीन तथा कुछ कला लिपिड अल्पशर्कराइड से जुड़े रहते हैं। इस अल्पशर्कराइड श्रृंखला का एक भाग कोशिका बाह्य द्रव में प्रक्षेपित रहता है (चित्र 9.4)।

जीवाणु कोशिका की जीवद्रव्य कला की अविश्वसनीय रूप से विविध भूमिकाएं सफलतापूर्वक संपन्न करनी चाहिए। यह विशेष रूप से कोशिकाओं में बिना कोशिकाभित्ति के कोशिका द्रव्य सुरक्षित रखता है, तथा इसे परिवेश से अलग करता है। यह चुनी हुई पारगम्यता विशेष आयन तथा अणुओं को कोशिका के अंदर आने या बाहर जाने में वरणात्मक पारगम्यता के रोधक का कार्य करती है जो कुछ अणुओं को तो अंदर या बाहर जाने देती है जबकि अन्यों को रोकती है। यह आवश्यक द्रव्यों की रिसाव द्वारा होने वाली हानि को रोकती है तथा अणुओं की संचालन क्रिया को बढ़ाती है, जो इसके बिना कला को पार नहीं करेंगे। इस प्रकार की संचलन विधि खाद्यान्न पोषकतत्त्व ग्रहण करने, अपशिष्ट स्राव, प्रोटीन स्राव में प्रयोग की जा सकती है। इसके अतिरिक्त जीवाणुविक जीवद्रव्य कला (bacterial plasma membrane) श्वसन, प्रकाशसंश्लेषण, लिपिड संश्लेषण तथा कोशिका-भित्ति की संरचना करने जैसी जटिल उपापचयी क्रियाओं का एक स्थल है। इतना ही नहीं, कुछ ग्राही अणु भी जीव द्रव्यकला से संबद्ध होते हैं जो जीवाणुओं को उनके परिवेश में उपस्थित रसायनों की पहचान तथा उनसे प्रतिक्रिया के लिए उत्तरदायी हैं। असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में जटिल कला-संबद्ध कोशिकांग (जैसे सूत्रकणिका, हरित लवक इत्यादि) नहीं होते किंतु कई प्रकार की कला-संबद्ध संरचनाएं देखी जा सकती हैं। इनमें सरलता से मिलने वाली एक संरचना **मेसोसोम** (चित्र 9.2 देखें) है। यह जीवद्रव्य कला के पटिकाओं (Vesicles), नली (tubules) और पटलिकाओं (lamellae) के रूप में बढ़े भाग हैं। ये प्रायः ग्राम-धनात्मक जीवाणुओं में देखे जाते हैं। यद्यपि मेसोसोम की खोज बहुत पहले हो चुकी थी किंतु उनका सही कार्य अभी तक अविदित है। कभी-कभी यह विभाजित हो रही कोशिकाओं की कोशिका भित्ति अथवा गुणसूत्रों के साथ भी संबंध देखे गए हैं। इसलिए, यह अभिधारणा है कि ये (क) कोशिका भित्ति निर्माण, (ख) गुणसूत्र प्रतिकृति एवं संतति कोशिकाओं में उनका वितरण, (ग) स्रावी क्रियाओं तथा (घ) जीवद्रव्य कला के तल-क्षेत्र एवं एंजाइम अंश को बढ़ाने का कार्य करते हैं।

वर्णकीलवक (Chromatophores), असीमकेंद्रकी कोशिकाओं के आंतरिक कला-तंत्र हैं जो नील-हरित जीवाणु तथा पर्पल जीवाणुओं में जटिल एवं विस्तृत प्रकाशसंश्लेषण तंत्र निर्मित करते हैं। नाइट्रीकारक (nitrifying) जीवाणुओं में ये कलाएं गोलाकार, चपटी अथवा नलिकाकार थैलियों के पुंज बनाते हैं जोकि वृहत्तर उपापचयी प्रक्रियाओं के लिए कला तल-क्षेत्र को बढ़ाने में मदद करते हैं।

अंतर्विष्ट पिंड

जीवाणुओं में सुरक्षित पदार्थ अंतर्विष्ट संरचनाओं (inclusion bodies) या भंडार कणों के रूप में कोशिका-द्रव्य में संग्रहित होते हैं। ये किसी भी कला-तंत्र से संबद्ध नहीं होते हैं वरन् कोशिका-द्रव्य में मुक्त पड़े रहते हैं, जैसे **फॉस्फेट कण, सायनोफायसीन कण** तथा **ग्लाइकोजेन कण**। कुछ अन्य अंतर्विष्ट संरचनाएं एक-पर्ती कला द्वारा घिरी हो सकती हैं जो कि 2-4 nm मोटी होती हैं जैसे - पॉली-B-हाइड्रॉक्सीब्युटारेट कण, सल्फरकण, कार्बोक्सीसोम एवं गैस-धानी।

अन्य विशिष्ट अंतर्विष्ट संरचना **गैस-धानी** है जो अधिकतर नील- हरित जीवाणु, गुलाबी तथा हरी प्रकाशसंश्लेष्णीय जीवाणुओं तथा कुछ जलीय मुक्त-प्लावी प्रकारों में पाई जाती है। मूल रूप से ये बहुत से खोखली, बेलनाकार गैस पुटिकाओं के छोटे-छोटे पुंज हैं। ये जलपारगम्य नहीं हैं किंतु वातावरण के गैसों के लिए पारगम्य हैं। गैस-धानियों के कारण ही जीवाणु, जल सतह पर अथवा इसके नजदीक तैरते रहते हैं। इन धानियों की मदद से ही ये जीवाणु सूर्य प्रकाश ग्रहण करने के लिये स्वयं को जलाशयों में अवस्थित करते हैं अथवा तीव्र सूर्य प्रकाश से बचते हैं।

दो मुख्य अकार्बनिक अंतर्विष्ट संरचनाएं बहुफॉस्फेट अथवा **वॉल्युटिन कण** एवं **गंधक के कण** हैं। ये कण क्षारीय रंजक द्वारा कई प्रकार के रंग दर्शाते हैं, अत: इन्हें **विविधरंजक कणिका** (metachromatic granules) कहते हैं। वॉल्युटिन कण, फॉस्फेट बहुलक के बने होते हैं एवं यह फॉस्फेट के भंडार के रूप में कार्य करते हैं। कुछ जीवाणु अस्थायी रूप से गंधक का भंडारण गंधक कणों के रूप में करते हैं। ये तब बनते हैं जब जीवाणुओं हाइड्रोजन सल्फाइड का प्रयोग प्रकाश द्वारा संश्लेषण के समय इलेक्ट्रॉन दाता के रूप में किया जाता है। ये कण परिद्रव्यीय स्थान अथवा विशेष कोशिकाद्रव्य गोलियों (cytoplasmic globules) में एकत्र होते हैं।

असीमकेंद्रकी कोशिका का कोशिका द्रव्य (cytoplasmic matrix) बहुधा राइबोसोमों द्वारा भरा रहता है। राइबोसोम भी कोशिका की जीवद्रव्य कला से जुड़े रहते हैं। वे लघु संरचना जैसे निम्न आवर्धन पर साधारण किंतु वास्तव में रासायनिक तथा संरचना दोनों में बहुत जटिल होते हैं। राइबोसोमों की नाप 14-15 × 20 nm तक होती है। ये दो उपघटकों 50S तथा 30S के बने होते हैं जो एक 70S के पूर्ण राइबोसोम की संरचना करते हैं (कण जितना भारी तथा सुसंबद्ध होता है स्वेडवर्ग संख्या उतनी ही अधिक होती है)। यह स्मरणीय है कि S का मान अणु भार में अनुपातिक

नहीं है जैसे 50S तथा 30S का योग 80 है किंतु राइबोसोम मात्र 70S प्रकार का ही होता है।

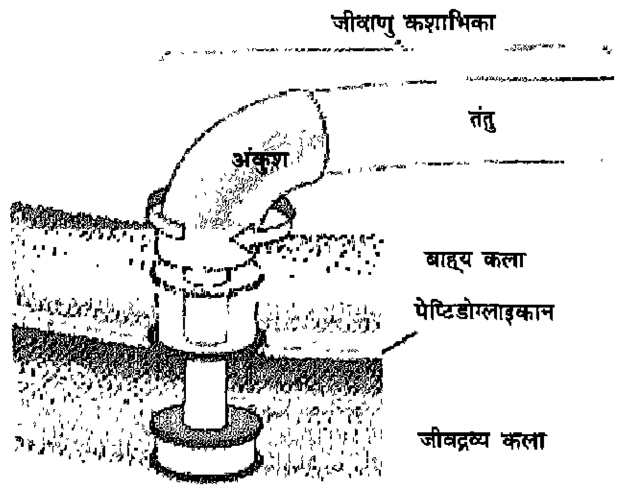
राइबोसोम प्रोटीन संश्लेषण का स्थल है। मैट्रिक्स राइबोसोम आधात्री द्वारा संश्लेषित प्रोटीन कोशिकाओं के अंदर ही रहते हैं। जो राइबोसोम जीवद्रव्य कला के ऊपर रह कर प्रोटीन बनाते हैं व कोशिका से बाहर भेजे जाते हैं। बहुत से राइबोसोम एकल संदेशवाहक आरएनए (mRNA) में एकत्रित होते हैं जो बहुराइबोसोम अथवा पाली राईबोसोम (polysome) के नाम से जाना जाता है। पॉलीसोम के सभी राइबोसोम एक साथ संदेशवाहक आरएनए में निहित सूचना को प्रोटीन में अनुवादित करते हैं।

असीमकेंद्रकी प्राणियों में कला संबद्ध स्पष्ट परिभाषित केंद्रक नहीं होते तथा उनके आनुवंशिक द्रव्य भी अन्य अणुओं (प्रोटीन) की भांति जटिल नहीं होते और न ही यह गुणसूत्रों में निहित होते हैं। इनमें आनुवंशिक द्रव्य एक एकल वर्तुलाकार डीएनए का बना होता है तथा एक **केंद्रकाभ** में निश्चित होता है। कुछ दशाओं में आरएनए तथा सूक्ष्मतर प्रोटीन भी दृश्यगत होते हैं। डीएनए लड़ियों की लंबाई कोशिकाओं की लंबाई से 250-700 गुनी हो सकती है। इसलिए यह कोशिका के केंद्रकाभ में भली प्रकार स्थापित होने के लिए दक्षता से पैक किया गया है। डीएनए केंद्रीय प्रोटीनों की सहायता से व्यापक पाशीय (looped) तथा कुंडलित होता है। यह प्रोटीन उन हिस्टोन प्रोटीनों से भिन्न होते हैं। जो ससीमकेंद्रकी में होते हैं। केंद्रकाभ बहुधा मध्यकाय से संबद्ध होती है। विलगित निर्माण में केंद्रकाभ जीव द्रव्यकला से संबद्ध पाया गया है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवाणु डीएनए कोशिका कला से संबद्ध होता है तथा प्रतिकृत डीएनए के संतति कोशिकाओं में वितरण में जीवद्रव्य कला संबद्ध होती है।

कशाभिका

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शिकी अध्ययनों द्वारा यह प्रकाश में आया कि कशाभिका (flagellum) तीन भागों के बने होते हैं। **तंतु, अंकुश, आधारीय शरीर** (चित्र 9.5)।

तंतु, कशाभ का सबसे लंबा तथा प्रत्यक्ष भाग है। यह कोशिका धरातल से सबसे ऊपर तक जाता है। यह एक खोखली, कठोर, बेलनाकार संरचना है जो **फ्लैजिलिन** प्रोटीन की बनी होती है, प्रोटीन अणु तंतु में सर्पिल सर्पिलाकार व्यवस्थित होते हैं। और माप में लगभग 20nm व्यास तथा 1-70 nm लंबाई के होते हैं। तंतु मुड़ा हुआ और नलिकाकार अंकुश (हुक) में धंसा रहता है और आधारीय काय से जकड़ा रहता है। अंकुश, तंतु से पूर्णतया भिन्न होता है तथा अलग-अलग प्रोटीनों की उपइकाइयों का बना होता है। आधारीय काय

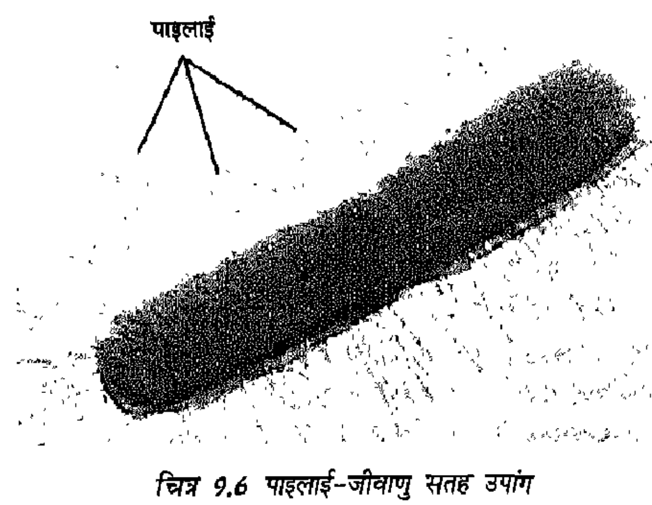


चित्र 9.5 जीवाणु की कशाभिका की इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से दृष्टव्य आधार संरचना

कशाभ का सबसे जटिल भाग है। ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं में चार गोले होते हैं जो एक मध्य दंड से जुड़े होते हैं। ग्राम धनात्मक कोशिकाओं में केवल दो आधारीय शरीर गोले होते हैं। इनमें से आंतरिक गोला जीवद्रव्य कला से संबद्ध रहता है जबकि बाह्य गोला पैप्टीडोग्लाइकेन कला से। तंतु, अंकुश तथा आधारीय शरीर इस प्रकार व्यवस्थित रहते हैं कि यह संरचना तंतुओं को 360° पर चक्रित होने देती है न कि कोड़े की भांति आगे-पीछे। जैसे-जैसे लघुकशाभ घूमते हैं यह शरीर को विपरीत दशाओं में घुमाते हैं तथा जीवाणुओं को आगे की ओर बढ़ाते हैं।

रोम एवं झालर

यह दो आपस में परिवर्तनशील नाम ऐसे जीवाणु धरातली उपांगो को दर्शाते है जो गतिशीलता में संबद्ध नहीं हैं। **पाइलाई** (Pili) लंबी नलिकाकार संरचनाएं हैं। (चित्र 9.6) जो **पिलिन** नाम के विशेष प्रोटीन से बनी होती हैं। सत्य पाइलाई अब तक ग्राम ऋणात्मक



चित्र 9.6 पाइलाई-जीवाणु सतह उपांग

जीवाणुओं में देखे गए हैं और इस रूप में से यह संयुग्मन प्रक्रिया में सम्मिलित होते हैं। इस प्रक्रिया में बहुधा डीएनए का आंशिक परिवर्तन एककोशिका (**दाता कोशिका**) से दूसरी कोशिका (**पाता कोशिका**) में हो पाता है।

इस प्रकार पाइलाई की बनावट आनुवंशिक रूप से नियंत्रित हो जाती है विशेष रूप से कोशिका के समान जब सुसंगत जीवाणु कोशिकाओं में संयुग्मन होता है। झालर (Fimbrae) लघु शूक जैसे तंतु हैं जो कोशिका के बाहर प्रवर्धित होते हैं। यह कृश तनु नलिकाएं कुंडलित उप-इकाई के बने होते हैं, जो 3-10 nm व्यास के होते हैं। कुछ प्रकार के झालर, जीवाणु को ठोस धरातल द्वारा चट्टानों तथा आने वाले ऊतकों पर जुड़ने में सहायता करते हैं। यह उन कोशिकाओं के आपस में चिपटने के लिए भी उत्तरदायी हैं जो घोलों तथा अन्य मोटे पुंजों पर झिल्ली बनाते हैं।

9.2 ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं का संगठन

जैसा कि परिभाषा से ही स्पष्ट है ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में एक केंद्रक होता है जिसमें डीएनए द्विपरतधारी कलाओं से आवारित रहता है। सभी पादप एवं जंतु इसी श्रेणी में आते हैं। सामान्यत: ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में निम्न संघटक होते हैं। कोशिका भित्ति (जो जंतु कोशिकाओं और कुछ आदि जीवियों में अंनुपस्थित होती है), जीवद्रव्य झिल्ली, कोशिका द्रव्य एवं कोशिकांग। जब तक इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की खोज नहीं हुई थी ऐसी मान्यता थी कि कोशिका द्रव्य की अत्यंत सरल संरचना होती है लेकिन अब ज्ञात हुआ है कि कोशिका द्रव्य की संरचना अत्यंत जटिल होती है जिसमें कोशिका द्रव्य आधात्री (cytoplasmic matrix) एवं कई कोशिकांग विद्यमान होते हैं। गतिशील कोशिकाओं में संचलन के लिए अतिरिक्त उपांग विद्यमान होते हैं। पादप कोशिकाओं में एक भली-भांति दृढ़ कोशिका भित्ति होती है जो जंतुओं में विद्यमान नहीं होती। इसी के फलस्वरूप सामान्यत: जंतु कोशिकाओं का आकार अनियमित होता है।

कोशिका भित्ति

पादप कोशिकाओं का आकार एवं रूपरेखा स्थायी होती है क्योंकि इनमें कोशिका-भित्ति एक विशिष्ट कोशिका बाह्यआधात्री (extra-cellular matrix) के रूप में होती है जो पादप कोशिका झिल्ली की बाह्य सतह से भली-भांति संबद्ध होती है। यह पर्याप्त स्थूल, दृढ़ एवं मजबूत होती है और 0.1 nm से कई माइक्रोमीटर तक मोटी पाई गई है। कोशिका भित्ति का संगठन और प्रकृति कोशिकाओं के प्रकार और उसके द्वारा किए कार्य के अनुरूप विविधता दर्शाते हैं। कवकों की कोशिका-भित्तियां बहुशर्कराधारी के ऐसे रेशों से बनी होती हैं जो काइटिन (Chitin) अथवा सैलूलोस से संगठित होते हैं और इनमें मिले-जुले ग्लाइकेनों (Glycans) की एक पतली पर्त विद्यमान होती है। शैवालों में कोशिका भित्तियां सामान्यत: सैलूलोज, गैलेक्टैन्स, मैनन तथा सिलिकेन डाइऑक्साइड एवं कैल्शियम कार्बोनेट जैसे खनिजों से परिपूर्ण होती हैं। उच्च पादपों में कोशिका भित्ति के रेशे बहुशर्कराधारी सेल्यूलोज से निर्मित होते हैं और पैक्टिन, लिग्निन एवं हेमीसैल्यूलेस से बनी बहुशर्कराधारी तिर्यक संयोजित आधात्री अंत:स्थापित होते हैं। दो कोशिकाओं के बीच विद्यमान इस प्रकार की पैक्टिन परत को मध्य पट्टलिका (middle lamella) कहते हैं (चित्र 9.7 क)।

प्राथमिक भित्ति

पादप कोशिकाओं में पादप भित्ति अत्यंत जटिल सूक्ष्म तंतुओं के जाल, जो जैली-सम आधात्री के रूप में व्यवस्थित है, की बनी होती है और निम्न तीन प्रकार से संगठित होती है:

(i) **सेल्यूलोज सूक्ष्म तंतु** (Cellulose microfibrils) : यह जायलोग्लूकेन शृंखलाओं के रूप में हाइड्रोजन बंधकों की सहायता से एक-दूसरे से संबद्ध रहते हैं। इस प्रकार एक सतत जाली का निर्माण होता है जो दूसरे जाल में अंत:स्थापित होता है।

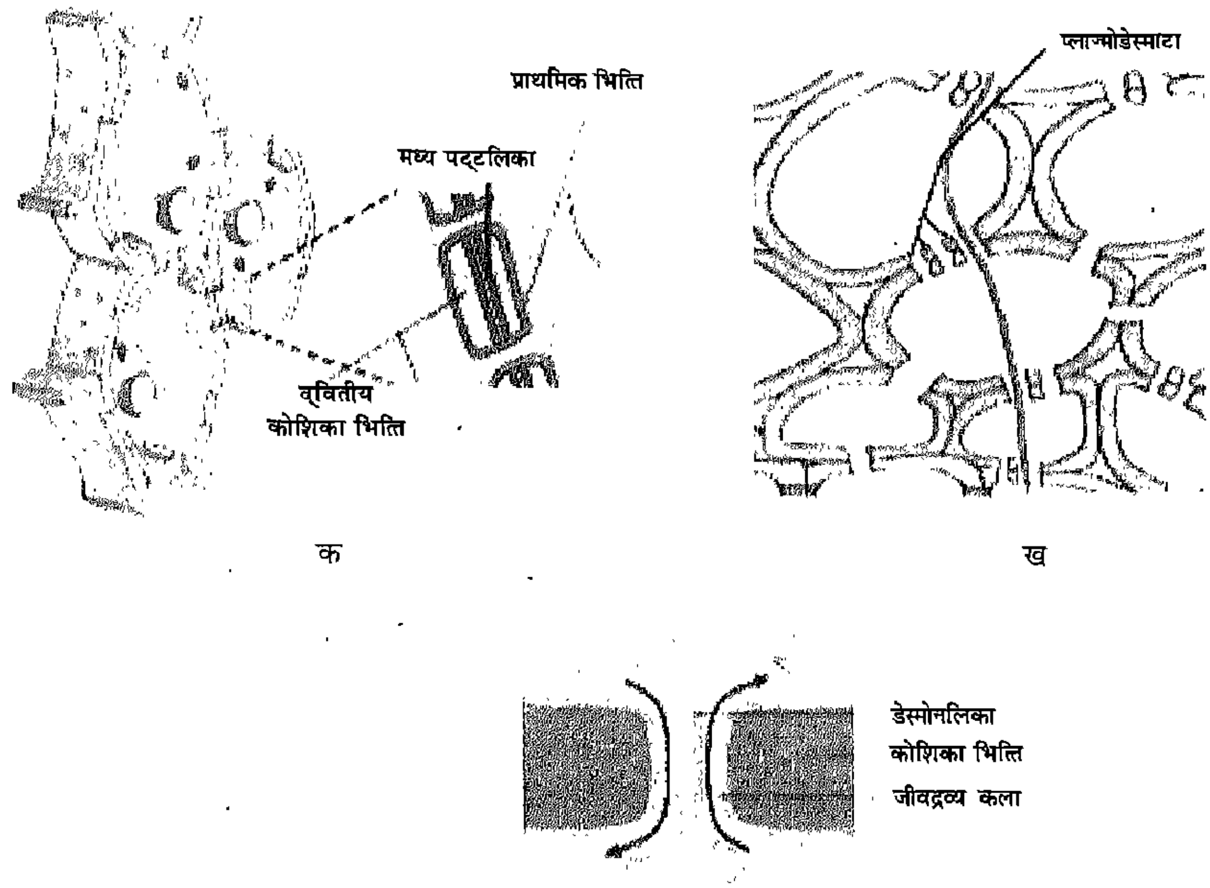
(ii) **पेक्टिक बहुशर्कराइड** (Pectic Polysaccharides) : यह द्वितीय जाल का निर्माण करती हैं जो गेलेक्टो यूरोनिक अम्ल अवशेष में धनी होता है और कैल्शियम सोपानों एवं अन्य आइनी अंतरक्रियाओं पर आधारित तिर्यक जोड़ों का निर्माण करते हैं।

(iii) **संरचनात्मक प्रोटीन** (Structural Proteins) : यह तीसरा, आपस में गुथा हुआ जाल है जो संरचनात्मक प्रोटीनों का बना होता है और पूर्व में वर्णित दो प्रकार के जालों के बीच फंसा रहता है और इस प्रकार मस्सा (Wart) और बाना (Waft) जैसी संरचना बनाता है।

जब कोई कोशिका युवा और छोटी होती है तो सेल्यूलोस के रेशे बिखरे रहते हैं और इसके तंतुओं के आपस की तिर्यक संधियां पूर्ण नहीं होतीं किंतु तरुण कोशिकाओं की कोशिका भित्ति के रेशों में विद्यमान तिर्यक संधियों के पूर्णता धारण करने के कारण कोशिका की अग्रिम वृद्धि संभव हो पाती है। गत दिनों में वैज्ञानिकों ने एक्सपैंसिन (Expansin) नामक एक नए प्रोटीन वर्ग की खोज की है जो भित्ति को ढीला कर कोशिका के विस्तार के लिए उत्तरदायी है। यह क्रिया सेल्यूलोस के अणुओं के योग द्वारा संभव होती है।

द्वितीय भित्ति

जब भी द्वितीयक भित्ति विद्यमान होती है तो यह समानांतर पंक्तियों में स्थित ऐसे सेल्यूलोज तंतुओं से मिलकर बनती है जो अन्य प्रकार के रेशों के पुंजों से एक कोण पर अवस्थित होते हैं। कभी-कभी द्वितीयक भित्ति पर हेमीसेलुलोस, पेक्टिन एवं लिग्निन का भी जमाव हो सकता है।



चित्र 9.7 (क) मध्य पटल, प्राथमिक भित्ति एवं द्वितीयक भित्ति, (ख) प्लाज्मोडेस्माटा (ग) डेस्मोनलिका दर्शाती कोशिका भित्ति

तृतीयक भित्ति

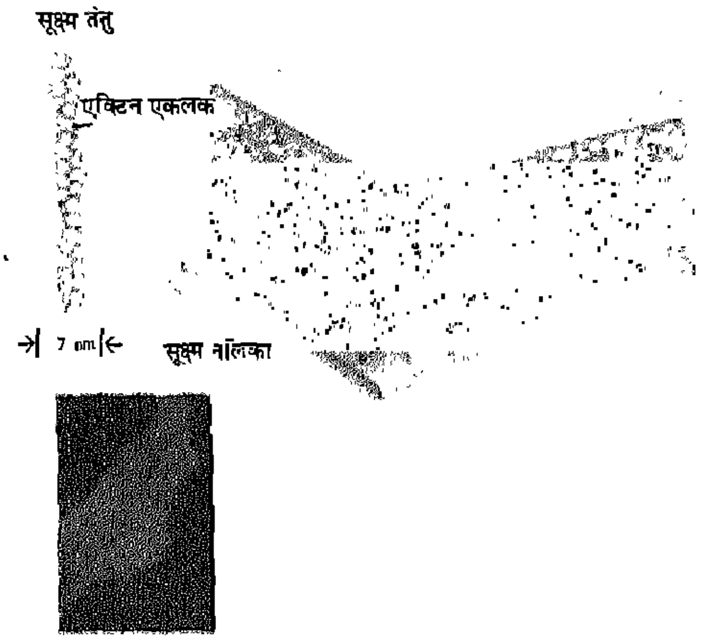
कुछ पादपों में, विरल रूप में सेलुलोस तंतु-विहीन एक सबसे सूक्ष्म भीतरी परत भी विद्यमान होती है। समीपवर्ती कोशिकाओं के मध्य विद्यमान कोशिका द्रव्यी सोपान (cytoplasmic bridges) **प्लाज्मोडेस्मेटा** (Plasmodesmata) कहलाते हैं (चित्र 9.7 ख)। इनमें से प्रत्येक एक महीन, कोशिका-द्रव्यी नलिका का बना होता है जिसमें अस्तर के रूप में प्लाज्मा झिल्ली और प्राय: अंत: प्रद्व्यी जालिका (Endoplasmic reticulum) निर्मित नलिका, प्लाज्मोडेस्माटा डेस्मोट्यूब्यूल (dismotubule) (चित्र 9.7 ग) विद्यमान होती है। प्लाज्मोडेस्माटा जीवंत पदार्थ की निरंतरता बनाए रखने में योगदान करते हैं और ऐसी स्थिति में कोशिका द्रव्य को प्राय: **संद्रव्य** (symplasm) कहते हैं। इसके विपरीत, अंतरा कोशिकीय स्थल जिनमें अजैव पदार्थ विद्यमान होते हैं, **अपद्रव्य** (apoplasm) कहलाता है। लिगनिथधारी भित्तियों में ऐसे स्थल मात्रा कहीं-कहीं विद्यमान होते हैं जहां स्थूलन नहीं होता जो गर्त्त (pits) कहलाते हैं। प्राय: यह गर्त भित्तियों के दोनों ओर युग्मों में विद्यमान होते हैं अत: यह गर्त युग्मक (pits pairs) कहलाते हैं।

जीव द्रव्य कला

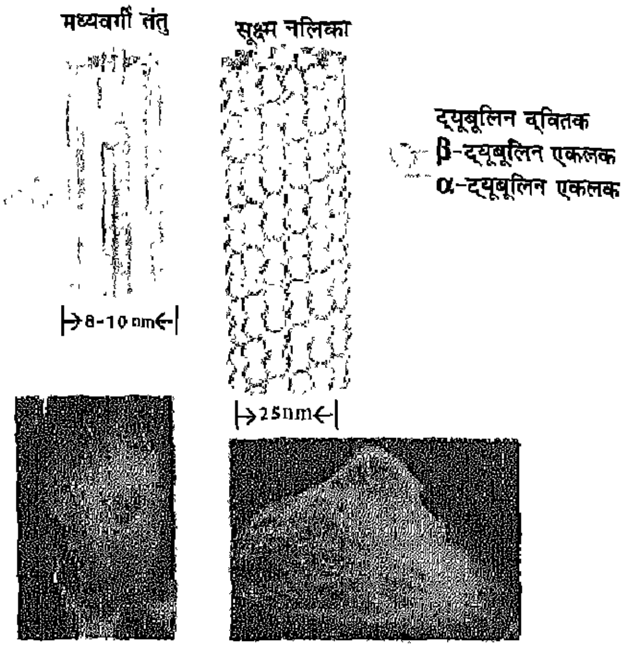
यह सामान्य रूप से लिपिड की द्विपर्ती संरचना के रूप में विद्यमान होती है जिसमें प्रोटीन अणु अंत:स्थापित होते हैं, और इसमें विविध प्रकार के स्टीरोल (Sterols) विद्यमान हो सकते हैं। स्टीरोल के अणु फोस्फोलिपिड की तुलना में कहीं अधिक दृढ़ होते हैं और इसलिए स्टीरोल की उपस्थिति ससीमकेंद्रकी कलाओं को स्थायित्व प्रदान करते हैं। यह कलाएं चयनित पारगम्य है अर्थात् वे कुछ अणुओं के लिए तो रोधक (barrier) हैं जब कि अन्य का प्रवेश निर्बाध होने देती हैं।

कोशिका कंकाल

ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं की यह भी क्षमता है कि वे विविध प्रकार की आकृतियां धारण कर सकती हैं तथा भिन्न-भिन्न दिशाओं में संचलन कर सकती हैं यह इनके कोशिका-कंकाल पर निर्भर करता है। कोशिका-कंकाल का संगठन तीन प्रमुख प्रकार के प्रोटीन तंतुओं से होता है वे हैं – **सूक्ष्म तंतु** (microfilament) **सूक्ष्म नलिकाएं** (microtubules) एवं **मध्यवर्गी तंतु** (intermediate filaments)। सूक्ष्म तंतु



चित्र 9.8 सूक्ष्म तंतु



चित्र 9.9 सूक्ष्म नलिका

(चित्र 9.8) का व्यास लगभग 8 nm होता है जो या तो आधात्री में बिखरे रहते हैं अथवा जाल अथवा समानांतर क्रम में सज्जित रहते हैं। यह किसी कोशिका की आकृति में परिवर्तन लाने अथवा उसको गति प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसे कोशिकीय संचलन हम वर्णक कणों, अमीबीय गतियों अथवा जीवद्रव्य के बहाव में सरलतापूर्वक देख सकते हैं। सूक्ष्म तंतु ऐक्टिन सदृश्य प्रोटीनों के बने होते हैं।

गोल, नलिकाकार अणुओं से बनी सूक्ष्म नलिकाएं खोखली, लगभग 25 nm व्यास की होती हैं (चित्र 9.9)। इनमें दो उप-इकाइयां अल्फा तथा बीटा, बेलनाकार संरचना बनाने के लिए सर्पिल रूप से व्यवस्थित होती हैं। इनके एक चक्र या आवृति में लगभग 13 इकाइयां उपस्थित रहती हैं। सूक्ष्म नलिकाएं निम्नांकित कार्य करती हैं :

(i) कोशिका की संरचना बनाए रखना,
(ii) कोशिका संचलन में सूक्ष्म तंतुओं के साथ संबद्ध रहना
(iii) अंतर, कोशिकीय संवहन में सहभागिता।

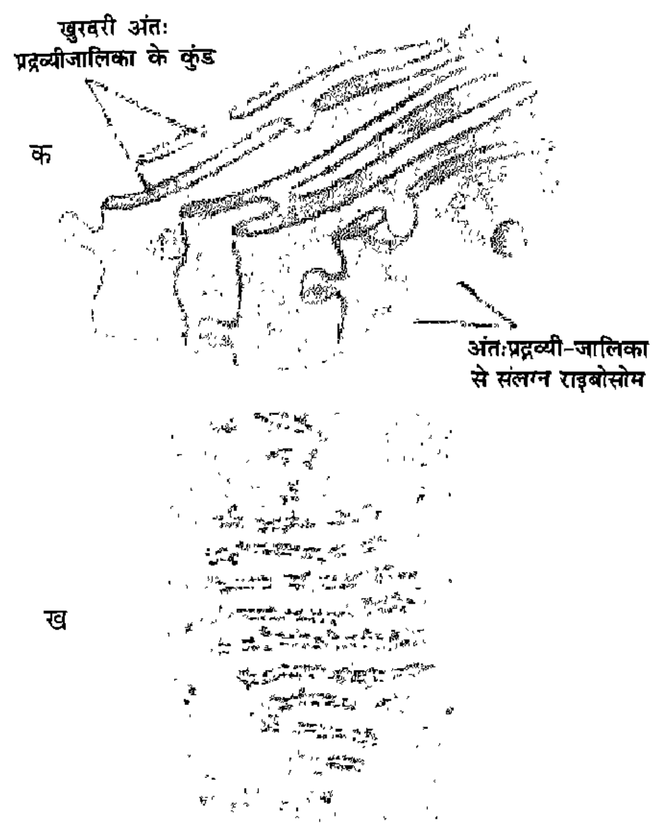
यह कोशिकांगों के संचलन में मुख्य भूमिका निर्वहन करती हैं जैसे गुणसूत्रों की गति। ऐसी कोशिकाओं में जहां कोल्चिसीन जैसे रसायनों की अभिक्रिया के फलस्वरूप सूक्ष्म नलिकाएं छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, गुणसूत्रों की गति नहीं करती। मध्यवर्गी तंतु दृढ़ तथा टिकाऊ होते हैं। यह प्रोटीन के रेशों अथवा 8-10 nm के व्यासधारी ऐसे तंतुओं से निर्मित होते हैं जो कोशिका द्रव्यीय आधात्री में विद्यमान होते हैं। अधिकांश जंतु कोशिकाओं के केंद्रक के चारों तरफ एक टोकरी का निर्माण करते हैं और कोशिकाओं के संधि स्थल पर विद्यमान होते हैं।

अंत:प्रद्रव्यी जालिका

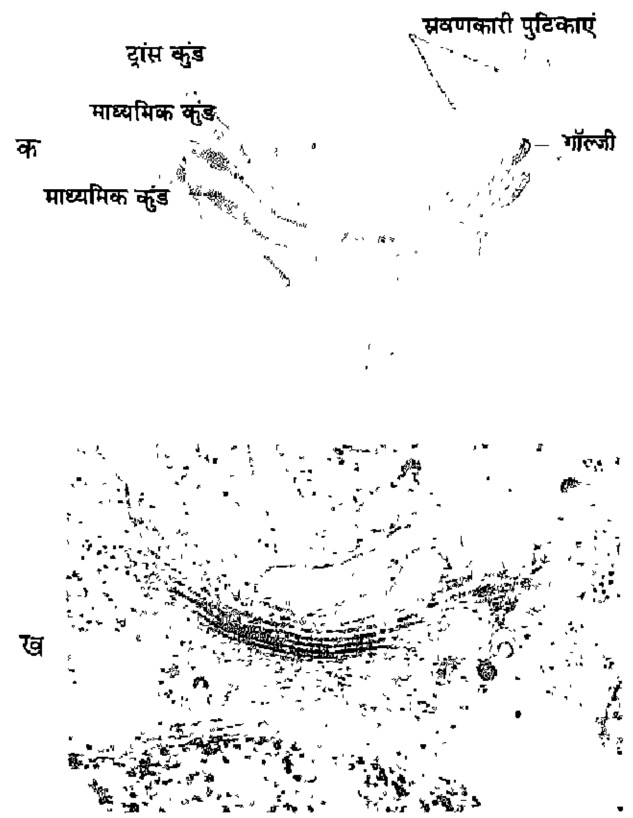
इस तकनीकी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग कीथ पोर्टर (1953) ने कोशिका के अंत:द्रव्य में एक महीन जालिका (जाल) की पहचान करने के लिए किया था। यह एक अनियमित कला युक्त नलिकाओं के जाल के रूप में होती है जो एक सख्त चादर के रूप में एक आंतरिक स्थल को आवरित करती है।

ऐसी कोशिकाओं में जो सक्रिय स्रवण में कार्यरत हैं, अंत:प्रद्रव्यी जालिका (Endoplasmic reticulum) की बाहरी सतह पर राइबोसोम जड़े रहते हैं और ऐसी संरचना के कारण इसे खुरदरी अंत:प्रद्रव्यी जालिका (rough endoplasmic reticulum, RER) कहते हैं (चित्र 9.10)। इसके विपरीत उन कोशिकाओं में जो बड़ी मात्रा में लिपिड उत्पादन करती हैं, अंत:प्रद्रव्यी जालिका के ऊपर राइबोसोम विद्यमान नहीं होते हैं। अत: यह चिकनी अंत:प्रद्रव्यी जालिका (smooth endoplasmic reticulum; SER) कहलाती हैं। अंत:प्रद्रव्यीय जालिका कोशिका द्रव्य आधात्री को यांत्रिक सहायता देने के साथ-साथ अन्य बहुत से कार्य भी संपन्न करती हैं जैसे :

(i) स्रवण (सीरम प्रोटीनों), लाइसोसोम अथवा कला प्रोटीनों का अंत:प्रद्रव्यी जालिका पर संश्लेषण और इसका अंत:प्रद्रव्यी जालिका की गुहिका द्वारा संवहन,
(ii) लिपिडों का संश्लेषण,
(iii) औषधियों का विषरहित किया जाना।



चित्र 9.10 (क) अंत:प्रद्रव्यी जालिका (ख) इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी दृश्य



चित्र 9.11 (क) गॉल्जी यंत्र (ख) इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी दृश्य

(iv) कैल्शियम (Ca^{2+}) के आयनों के अंत:ग्रहण और अवमुक्ति द्वारा पेशियों के संकुचन से संबद्ध होना।

गॉल्जी काय अथवा यंत्र

यह एक झिल्लीदार कोशिकांग है जो एक-दूसरे पर सटे हुए सपाट, थैली जैसी एक 'कुंडिकाओं' से निर्मित होता है (चित्र 9.11)। यह कुंड चिकनी अंतः प्रद्रव्यी जालिका से समानता दर्शाते हैं। प्रायः एक चट्टे में 4-8 कुंड होते हैं। कुंडों के बाहरी किनारे पर नलिकाओं और पुटिकाओं का एक जटिल जाल विद्यमान होता है। इस संरचना में सुनिश्चित ध्रुवीकरण भी प्रतीत होता है क्योंकि दोनों सतह अथवा किनारे एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्न होते हैं क्योंकि निर्माणकारी सतह (सिस सतह) की पुटिकाएं तो अंत:प्रद्रव्यी जालिका के साथ संबद्ध होती हैं जबकि परिपक्वन सतह (ट्रांस सतह) की पुटिकाएं स्थूलन धारिता और पुटिका निर्माण के माप में भिन्नता दर्शाते हैं (चित्र 9.11)। ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न पदार्थों के संवहन सिस से ट्रांस सतह तक स्थित पुटिकाओं जो अगले और उससे भी अगले कुंड की ओर से मुकुलित होती है। यद्यपि सभी ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में गॉल्जी काय विद्यमान होते हैं, बहुत से कवकों और कशाभिकाधारी आदि जीवियों में भली-भांति निर्मित गॉल्जी काय विद्यमान नहीं होती। इन जीवों में कुंड एक अथवा कई चट्टे धारण करते हैं। यह चट्टे **डिक्टिओसोम** कहलाते हैं।

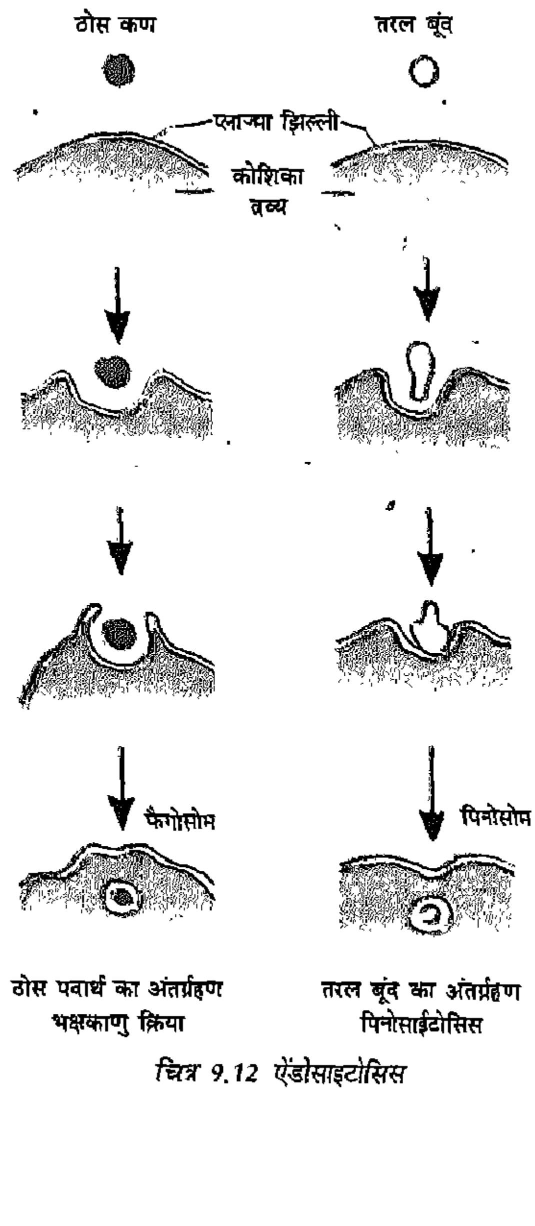
गॉल्जी काय का मुख्य कार्य द्रव्य को संवेष्ट कर स्रवण के लिए तैयार करना है। जब अंत:प्रद्रव्यी जालिका से गॉल्जी काय में संचलित होता है इसी बीच पुटिकाओं का अंत:प्रद्रव्य जालिका से मुकुलन समाप्त हो जाता है। यह पुटिकाएं गॉल्जी काय में जाती हैं तथा समपक्ष कुंड (सिस - कुंडों) के साथ संगलित हो जाती हैं। गॉल्जी काय संरचना में, साथ ही साथ कार्यप्रणाली दृष्टि से अंत:प्रद्रव्यी जालिका से निकटतम संबद्ध है। सबसे अधिक प्रोटीन जो अंत:प्रदव्यी जालिका द्वारा संश्लेषित होते हैं, ग्लाइको प्रोटीन हैं जो गॉल्जी काय में संवहन के पश्चात् वहीं पर रूपांतरित हो जाते हैं। यहां प्रोटीनों में लक्ष्य स्थान तथा विभिन्न नियति पर निर्भर विशेष समूह मिल जाते हैं और तब उन्हें उनके निर्दिष्ट स्थलों तक उन पुटिकाओं में आवरित कर भेजा जाता है जो गॉल्जी काय से मुकुलित होती हैं।

लयनकाय

यह गॉल्जी काय से पुटिकाओं के मुकुलन द्वारा बनते हैं। यह एक एकल कला द्वारा सीमाबद्ध होते हैं तथा माप में 500 nm के लगभग होते हैं। यह अंत:कोशिकीय पाचन से संबद्ध है। ऐसी

पुटिकाओं में विद्यमान एंजाइम हाइड्रोलेज वर्ग के होते हैं जो अम्लीय परिस्थितियों में सक्रिय होते हैं। अम्लीय अवस्था लाइसोसोमों में प्रोटोनों के सतत् बहाव द्वारा बनी रहती है। पाचनशील एंजाइम खुरदरी अंतःप्रद्रव्यी जालिका (आर.ई.आर) पर संश्लेषित किए जाते हैं और लाइसोसोमों में भर दिए जाते हैं। कभी-कभी गॉल्जी यंत्र की समीपवर्ती चिकनी अंतःप्रद्रव्यी जालिका (एस.ई.आर.) भी मुकुलन कर लाइसोसोमों का निर्माण कर सकते हैं।

अधिकांश कोशिकाएं पदार्थों के अंत: ग्रहण ऐंडोसाइटोसिस की परिघटना दर्शाती हैं (चित्र 9.12)। यह दो प्रमुख प्रकार की होती है **भक्षकाणु क्रिया** (phagocytosis) एवं **पिनोसाईटोसिस**। प्रथम प्रकार की प्रक्रिया में बड़े कण अथवा कभी-कभी सूक्ष्म जीव भी अंतर्ग्रहित अवकाशिका अथवा **फैगोसोम** में समाहित कर लिए जाते हैं जबकि दूसरी क्रिया में किंचत मात्रा में समीपवर्गी तरल अपने घुले हुए अणुओं के साथ परिसरीय पुटिकाओं अथवा



चित्र 9.12 ऐंडोसाइटोसिस

पिनोसोम (pinosome) के रूप में काटकर अलग कर दिए जाते हैं। भक्षक काय (phagosome) तथा परिसरीय काय (पिनोसोम) को एक साथ अंतःकाय (endosome) कहा जाता है इसके विपरीत कभी-कभी कोशिकाएं भी पदार्थों को बाहर निकालने से संबद्ध होती हैं और यह क्रिया स्रवण द्वारा संपन्न होती है, तथा **एक्सोसाइटोसिस** कहलाती है। नए बने भक्षक काय प्राथमिक लयनकाय (लाइसोसोमों) से संयोजित हो जाते हैं जो जल-अपघटनीय एंजाइम धारण करते हैं और **द्वितीयक लाइसोसोमो** का निर्माण करते हैं। जब द्वितीयक लाइसोसोम में पदार्थ का पाचन हो जाता है तो पुटिका एवं अवशिष्ट, बिना पचा पदार्थ अवशेष काय (residual body)। कहलाती है। जो इन जीवों पर आक्रमण करने वाले जीवाणुओं का पाचन करने तथा पोषण में भी सहयोग प्रदान करती है और इस प्रकार यह एक सुरक्षा की प्रक्रिया है। कभी-कभी एक प्रकार के द्वितीयक लाइसोसोम में कोशिका अपने स्वयं के कोशिकाद्रव्य के एक भाग का पाचन कर लेते हैं, और यह आत्मघाती लाइसोसोम (residual lysosomes) कहलाते हैं। ऐसी स्थिति में लाइसोसोम, कोशिका में बिना पाचक एंजाइमों को अवमुक्त किए, कार्य कर सकते हैं। ज्ञातव्य है कि कलाधारी कोशिकांगों का यह जटिल जाल जिसमें लाइसोसोम, अंतःकाय एवं अन्य संबद्ध रचनाएं तथा गॉल्जी काय एक समन्वयी विधि से कार्यरत रहते हैं जिसकी प्रमुख भूमिका कोशिका के भीतर पदार्थों का आयात-निर्यात करने की है।

कोशिका द्रव्यी रसधानी

कोशिका द्रव्यी रसधानी (Cytoplasamic Vacuoles) यह कोशिका द्रव्य में विद्यमान, कोशिका-द्रव्य विहीन क्षेत्र है। एक मान्यता के अनुसार इनका निर्माण अंतःप्रद्रव्यी जालिका के अत्यधिक विस्तार से होता है। पादप कोशिकाओं में रिक्तिकाएं एक अदर्धपारगम्य कला, टोनो प्लास्ट से घिरी रहती हैं। जबकि जंतु कोशिकाओं की रिक्तिकाएं लाइपोप्रोटीनधारी कला से आवरित रहती हैं। इनके कार्य और इनमें विद्यमान पदार्थों के आधार पर रिक्तिकाओं को चार भागों में वर्गीकृत किया जाता है:

(i) रस रसधानी या सैप वैक्योल ; यह खनिज लवणों तथा खाद्यान्नों का भंडारण एवं सांद्रण करती हैं।

(ii) संकुचनशील रसधानी (contractile vacuoles): यह परासरण नियमन तथा उत्सर्जन में भाग लेती है।

(iii) भोजन रसधानी (food vacuoles) जो पाचक प्रकिया बनाए रखते हैं और इस प्रकार खाद्य पदार्थों को पचाने में सहायता करते हैं।

(iv) वायु रसधानी (air vacuoles): यह केवल असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में होते हैं तथा उपापचयी गैसों के भंडारण के साथ कोशिकाओं को तरणशीलता (buoyancy) बनाए रखने में भी सहायता करते हैं।

वृताकार काय (स्फीरोसोम)

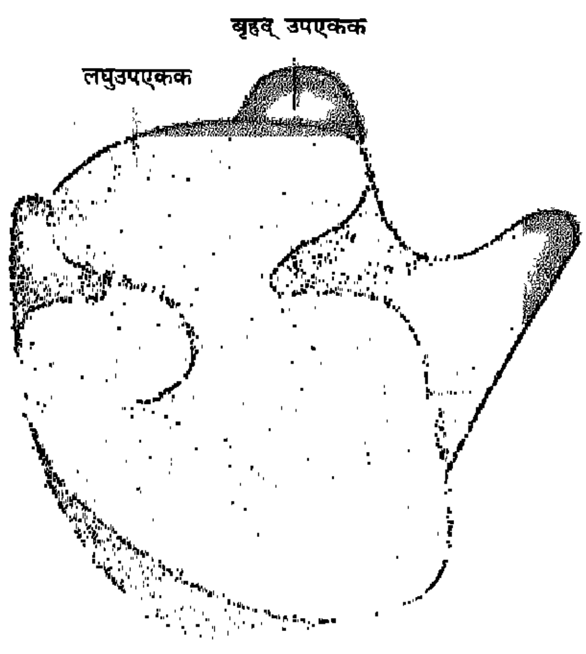
यह कला से आवरित वृताकार संरचनाएं हैं जो कोशिका-द्रव्य आधात्री (मैट्रिक्स) में विद्यमान होती हैं। यह लिपिड एवं वसाओं के संश्लेषण एवं भंडारण से संबद्ध हैं और यह अंत: प्रद्रव्यी जालिका से परिवर्धित होती हैं। कुछ पादपों में स्फीरोसोम लयनकाय (लाइसोसोम) जैसी अभिक्रियाएं भी दर्शाते हैं।

सूक्ष्मकाय

यह भी एकल कला से आवरित कोशिकांग है जो श्वसन को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की आक्सीकरण प्रक्रियाओं से संबद्ध है। यह कोशिकांग रवेदार किनारों और खुरदरी आधात्री के बने होते हैं। सूक्ष्मकाय (Microbodies) दो प्रकार के होते हैं : **परऑक्सीसोम** और **ग्लाईऑक्सीसोम**। परआक्सीसोमो में परआक्साइड जैव-संश्लेषण के लिए एंजाइम विद्यमान होते हैं। वैसे तो यह सभी पादप एवं जंतु कोशिकाओं में पाए जाते हैं किंतु प्रकाशसंश्लेषी कोशिकाओं में इनकी संख्या प्रचुर होती है। कुछ पादपों की मध्योतकी कोशिकाओं में यह 70-100 तक पाए जाते हैं जहां यह माइटोकॉन्ड्रिया एवं हरित लवकों से संबंध स्थापित कर प्रकाश संश्लेषण में भाग लेते हैं। ग्लाईआक्सीसोम प्राय: वसा-बहुल पादप कोशिकाओं में पाए जाते हैं और ट्राईग्लिसराइड उपापयप से ग्लाईआक्सीलेटचक्र के द्वारा संबद्ध है।

राइबोसोम

ससीमकेंद्रक कोशिकाओं के राइबोसोम या तो अंत:प्रद्रव्यी जालिका से संबद्ध हो सकते हैं अथवा मुक्त रूप से कोशिकाद्रव्यी



चित्र 9.13 राइबोसोम

आधात्री में फैले रहते हैं। राइबोसोम 80S प्रकार के होते है और इनकी 60S एवं 40S की दो उपइकाइयां होती हैं। सामान्य रूपरेखा में छोटा एकक अंडाकार एवं टोपी जैसी संरचना दर्शाता है। जबकि विशाल उपएकक गुंबदाकार प्रतीत होता है। छोटे एकक में एक चबूतरा, एक खांच, एक शीर्ष, एक आधार होता है जबकि दूसरी ओर बृहद् एकक में एक प्रवर्ध, एक मेंड़ और एक दंड विद्यमान होता है।

अंत:प्रद्रव्यी जालिका से संबद्ध राइबोसोम स्रवणकारी कला एवं लयनकायिक प्रोटीनों को संश्लेषित करते हैं। जब कि मुक्त राइबोसोम अस्रवणकारी प्रोटीनों को संश्लेषित करते हैं। कुछ प्रोटीन राइबोसोमों के ऊपर संश्लेषित हो जाती हैं वे केंद्र, माइटोकॉन्ड्रिया तथा हरित लवक (Chloroplast) जैसे कोशिकांगो से सबंधित कर दिए जाते हैं। संश्लेषण के उपरांत प्रोटीनों की उपयुक्त तहों का जमाव विभिन्न प्रोटीनों की सहायता से संभव होता है जिन्हें **चैपरोन** कहते हैं और जो माइटोकॉन्ड्रिया जैसे कोशिकांगों में प्रोटीनों के संवहन में भी सहायक होते हैं। कभी-कभी बहुत से राइबोसोम मात्र एक संदेशवाहक आरएनए (Messenger RNA) से संबद्ध होकर विविध प्रकार के प्रोटीन अणुओं के साथ संश्लेषण में सहायता करते हैं। संदेशवाहक (आरएनए) एवं राइबोसोमों से बनने वाली ऐसी जटिल संरचनाएं **बहुराइबोसोम** (polyribosome) अथवा **पोलीसोम** कहलाती हैं।

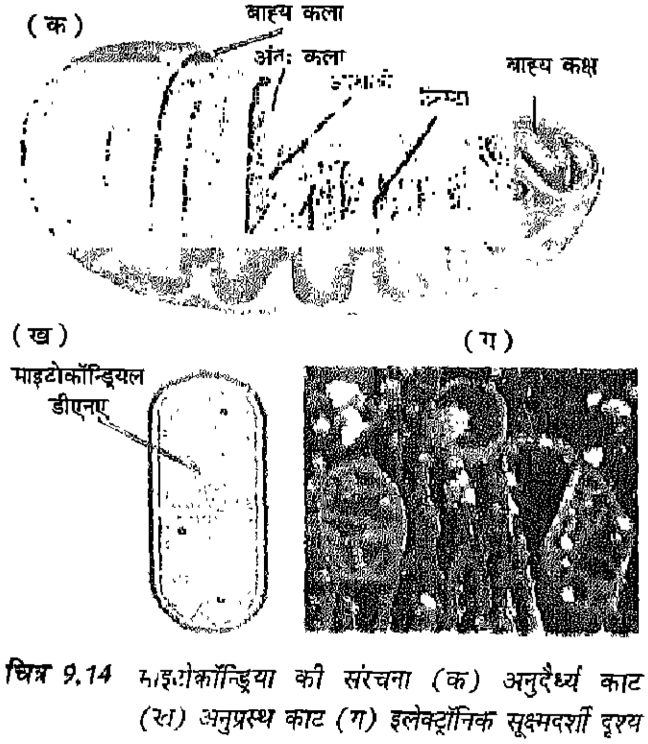
माइटोकॉन्ड्रिया

यह कोशिका का ऊर्जा गृह भी कहलाता है तथा इलेक्ट्रॉन परिवहन और ऑक्सीडेटिव फोस्फोरिलेशन द्वारा ATP (ऊर्जा) के उत्पादन से संबद्ध है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में देखने पर माइटोकॉन्ड्रिया बेलनाकार संरचना जैसे दिखाई देते हैं जिनका माप लगभग 0.6-2.0 nm व्यास में तथा 5-10 nm लंबाई में होता है। बहुधा कोशिकाएं 1000 या और अधिक माइटोकॉन्ड्रिया-धारी होती हैं किंतु कुछ कोशिकाएं जैसे यीस्ट तथा एककोशिक शैवाल मात्र एक माइटोकॉन्ड्रिया धारी भी हो सकती हैं। बृहद् नलिकाकार माइटोकॉन्ड्रिया सतत् जालिका रूपी संरचना में व्ययतित होकर कोशिका द्रव्य के बीच से निकली हुई रहती है।

माइटोकॉन्ड्रिया एक दुहरी कला से संबद्ध होती है, बाह्यकला तथा अंत:कला दोनों 6-8 nm की अंत:कला दूरी से अलग रहती हैं (चित्र 9.14)। अंत:कला कई मोड़ बनाती है जो **क्रिस्टी** कहलाते हैं। यह इसके क्षेत्रफल को बढ़ाते है। विभिन्न जातियों के माइटोकॉन्ड्रिया में क्रिस्टी की आकृति विविध प्रकार की होती है। उदाहरण के लिए कवकों के माइटोकॉन्ड्रिया में यह तश्तरी के आकार की होती है, जबकि यूग्लीना के क्रिस्टी पुटिका (vesicles) आकार के हो सकते हैं। आंतरिक कला

माइटोकॉन्ड्रिया की आधात्री को आवरित करती है, जो पर्याप्त घनी होती है और राइबोसोम डीएनए एवं वृहद् केल्शियम फास्फेट की कणिकाओं से लदी रहती है। माइटोकॉन्ड्रिया के राइबोसोम कोशिका के राइबोसोमों की अपेक्षा लघु होते हैं और कई लक्षणों में जीवाणुओं के राइबोसोम के समान होते हैं जैसे कि आकार, उपइकाइयों का संगठन आदि। माइटोकॉन्ड्रिया का डीएनए जीवाणुओं के डीएनए की तरह एक बंद वृत्ताकार अणु होता है। माइटोकॉन्ड्रिया की आधात्री और कक्ष अन्य कोशिकांगों से रासायनिक एवं एंजाइम भी संगठन में भिन्न होते है। माइटोकॉन्ड्रिया की बाह्य एवं आंतरिक कलाएं भिन्न-भिन्न लिपिड धारण करती हैं। ATP के निर्माण हेतु वांछित एंजाइम एवं इलेक्ट्रॉन वाहक मात्र आंतरिक कला में विद्यमान होता है जबकि ट्राइ कार्बोजायलिक चक्र (TCA cycle) के एंजाइम आधात्री में स्थित होते हैं, माइटोकॉन्ड्रिया की आंतरिक कला में 8.5 n m व्यासधारी छोटे-छोटे वृत्त होते हैं, जो कला की आंतरिक आधामी से दंडों द्वारा जुड़े होते हैं। यह संरचनाएं F_1 कण अथवा प्रारंभिक कण कहलाते हैं और कोशिकीय श्वसन में ATP उत्पादन से संबद्ध होते हैं (चित्र 9.14)।

माइटोकॉन्ड्रिया में डीएनए एवं राइबोसोमों की उपस्थिति इन कोशिकांगों को अपने कुछ प्रोटीनों के उत्पादन की दृष्टि से स्वतंत्र बनाती है किंतु फिर भी माइटोकॉन्ड्रिया के अधिकांश प्रोटीन कोशिकाकेंद्रक के निर्देशन में संश्लेषित किए जाते हैं। माइटोकॉन्ड्रिया का गुणन द्विखंडी विभाजन (Binary fission)



चित्र 9.14 माइटोकॉन्ड्रिया की संरचना (क) अनुदैर्ध्य काट (ख) अनुप्रस्थ काट (ग) इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी दृश्य

से होना असीमकेंद्रकी जीवाणु-सदृश्य लक्षण है। माइटोकॉन्ड्रिया का एक अन्य महत्त्वपूर्ण लक्षण है उनकी रचना में होने वाला सतत् परिवर्तन। यह कोशिका की क्रियात्मक कार्य की ओर कोशिकांग में होने वाली क्रियाशीलता पर निर्भर करती है। जब ATP की सांद्रता न्यून होती है अथवा श्वसन शृंखला बाधित होती है तो माइटोकॉन्ड्रिया **निष्क्रिय स्थिति** में दिखाई देते हैं, ऐसी दशा में माइटोकॉन्ड्रिया की आधात्री अपेक्षाकृत बड़ा क्षेत्र घेरती है। इसके विपरीत **सक्रिय अथवा सघन स्थिति** में क्रिस्टी अत्यधिक बिखरे रहते हैं और अंतराकलास्थल कहीं अधिक बड़ा प्रतीत होता है।

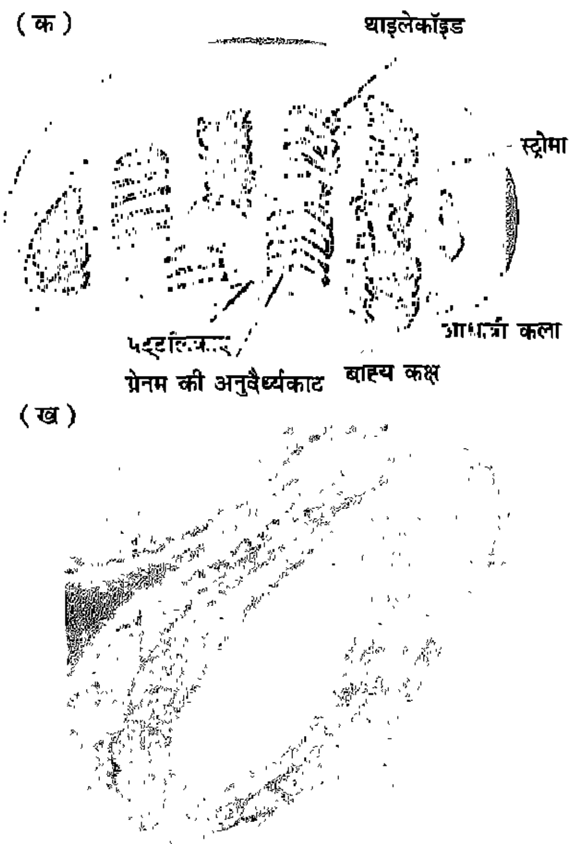
लवक

लवक (Plastids) वे कोशिकांग हैं जो मात्र पादप कोशिकाओं में और कुछ अनिश्चित संबंधों वाले एककोशिकीय जीवों (Euglena) में विद्यमान होते हैं। वर्णक धारण की प्रकृति के आधार पर इन्हें कई प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। **हरितलवकों** में तो पर्णहरित वर्णक होते हैं जबकि वर्णीलवकों में क्लोरोफिल के अतिरिक्त वर्णक हो सकते हैं। **अवर्णी लवक** (leucoplast) बिना किसी वर्णक के होते हैं यद्यपि वे जब चाहे और वर्णक विकसित करने की क्षमता रखते हैं। यह कोशिकांग दो कलाओं से आबद्ध होते हैं, जैसा कि इन कोशिकांगों में अपने स्वयं के आनुवंशिक द्रव्य तथा डीएनए, आरएनए तथा राइबोसोम जैसे प्रोटीन सश्लेषण यंत्र विद्यमान होते हैं वे विखंडन जैसी प्रक्रिया द्वारा गुणन में सक्षम हैं।

पर्णहरित हरे रंग का वर्णक है जो हरितलवकों में विद्यमान होता है। यह दो उत्पादों के निर्माण के कार्य में आने वाली वांछित प्रकाशशक्ति को रोके रखने का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए ATP तथा शक्ति अणुओं को काम करने के लिए, NADPH, यह दोनों अणु CO_2 के स्थायीकरण में उपयोगी हैं।

वर्णीलवक (chromoplast) अन्य वर्णकों को जैसे कैरोटिनॉइड (carotenoids) जिसमें जैंथोफिल एवं कैरोटिन सम्मिलित हैं, को संश्लेषित और भंडारण करते हैं। यह पादपों में पीत, नारंगी या लाल रंगों के लिए उत्तरदायी है। यह जंतुओं के कवकों में विटामिन A के पूर्ववर्ती के रूप में कार्य करते हैं।

अवर्णीलवक (leucoplast; रंगविहीन लवक) भंडारण कोशिकांगों की भांति कार्य करते हैं तथा द्रव्य भंडारण के आधार पर वर्गीकृत किए जाते हैं जैसे **मंड लवक** (amyloplasts)। यह मंड के रूप में कार्बोहाइड्रेट का भंडारण करते हैं। **प्रोटीन लवक** (aleuroplasts or proteinoplasts) प्रोटीनों का भंडारण करते हैं,



चित्र 9.15 (क) हरितलवक की संरचना
(ख) इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्म दर्शी दृश्य

जबकि **तेलद लवक** (elaioplasts)। तेल अथवा वसाओं का भंडारण करते हैं ।

हरितलवक, हरे पादपों की पत्तियों में पाया जाता है तथा अत्यधिक सामान्य है और जीववैज्ञानिकी रूप से महत्त्वपूर्ण लवक है। प्रत्येक हरितलवक एक चिकनी बाह्य कला से आबद्ध है, जो कोशिकांगों के अतिरिक्त भागों के बीच में कोशिका द्रव्य में द्रव्य का परिवहन नियमित करता है। आंतरिक कला, बाह्य कला के समानांतर दौड़ती है तथा व्यापक रूप से भीतर की ओर मुड़ जाती है, वलय बनाती है। अंदर की ओर समानांतर झिल्लीदार चादर शृंखला बनाती है जो **पट्टलिका** (lamellae) कहलाती है। वे द्रव जो आधात्री में लटके रहते हैं **पीठिका** (stroma) कहलाते हैं (चित्र 9.15)।

बाद वाले 50 प्रतिशत घुलनशील प्रोटीनों, राइबोसोमों, डीएनए तथा प्रोटीन संश्लेषण यंत्रों द्वारा बने होते हैं। हरितलवकों में अधिकतर पटलिकाएं एक थैली जैसी संरचना बनाने के लिए संगठित होती हैं, जो **थाइलाकोइड** कहलाती हैं। यह चपटी पुटिकाएं हैं जो पीठिका में कलायुक्त जाल के रूप में व्यवस्थित रहती हैं। ये थाइलाकोइड सिक्कों के चट्टों की भांति खड़े किए जा सकते हैं और विशिष्ट संरचना **ग्रेना** बनाते हैं। किसी एक हरितलवक में 40-60 ग्रेना विद्यमान हो सकते हैं तथा प्रत्येक ग्रेना में 2-100 लघु चपटे थाइलाकोइड होते है। मोटे तौर पर ऐसा आकलन किया गया है कि 50 प्रतिशत हरितलवक , प्रोटीन थाइलाकोइडों में विद्यमान रहते हैं। दूसरे शब्दों में पर्णहरित, केरोटेनॉइड तथा प्लास्टोक्विलोन जैसे वर्णचक्र उन थाइलाकोइड कलाओं में विद्यमान होते हैं, जो प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया में भागीदारी करती हैं।

माइटोकॉन्ड्रिया एवं हरितलवकों में समानताएं

(i) ऐसी कल्पना की गई है कि माइटोकॉन्ड्रिया एवं हरितलवकों का उदय स्वतंत्र जीवों के रूप में हुआ होगा और वे इस प्रकार का जीवन पर्याप्त समय तक बिताने के उपरांत शनैः शनैः पादप एवं जंतु कोशिकाओं से सहजीवी संबंधों की वृद्धि होती गई और वे वर्तमान स्थिति में विकसित हो गए।

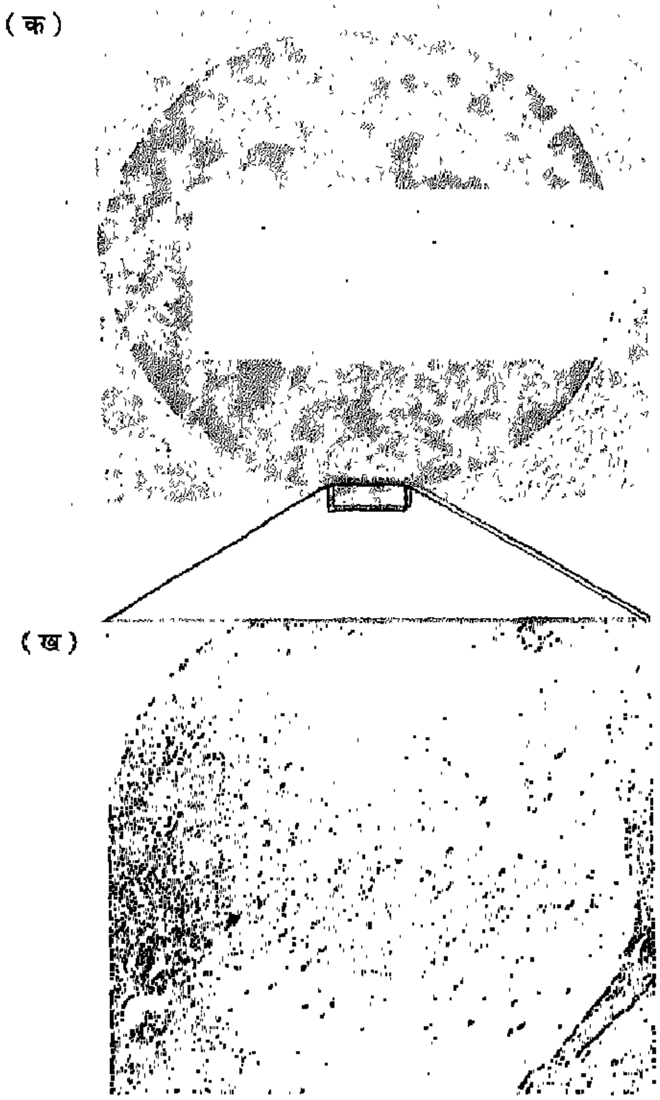
(ii) माइटोकॉन्ड्रिया एवं हरितलवकों का उद्गम और वृद्धि समान विधियों से ही होती है। वे पूर्ववर्ती कोशिकांगों के विभाजन से बनते हैं।

(iii) दोनों ही कोशिकांग डीएनए, आरएनए एवं राइबोसोम धारण करते हैं जो सभी प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक हैं। अत: वे अर्द्ध-स्वतंत्र जीवन निर्वाह करते हैं। माइटोकॉन्ड्रिया (mt DNA) तथा क्लोरोप्लास्ट डीएनए (cp DNA) आकार में वृत्ताकार हैं यद्यपि cp DNA, mt DNA से बहुत बड़ा है। दोनों में आनुवांशिक सूचनाएं सीमित होती हैं।

(iv) सहजीवी परिकल्पना के अनुसार असीमकेंद्रकियों के बीच एक ओर बहुत-सी समानताएं हैं तथा दूसरी ओर माइटोकॉन्ड्रिया तथा हरितलवकों में अंतर भी हैं जैसे वृत्ताकार डीएनए की उपस्थिति, हिस्टोन (Histones) तथा 70S राइबोसोम से संबद्ध नहीं होती।

केंद्रक

केंद्रक अपेक्षाकृत एक बृहद् अंगक है जो ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं की सभी क्रियाओं का नियमन करती है (चित्र 9.16 क)। कुछ कोशिकाएं एक से अधिक केंद्रक वाली होती हैं जैसे **द्विकेंद्रक** कोशिकाओं में प्रति कोशिका दो केंद्रक विद्यमान होते हैं जैसे *पैरामीशियम* तथा **बहुकेंद्रकी** कोशिकाओं में बहुत से केंद्रक होते हैं जैसे *एस्केरिस*। कुछ कोशिकाओं में तरुणाई में केंद्रक नहीं होते जैसे **स्तनधारी आरबीसी** तथा **चालनी नलिका कोशिकाएं** (संवहनी पादपों में भोजन संवाहक तंतु)।



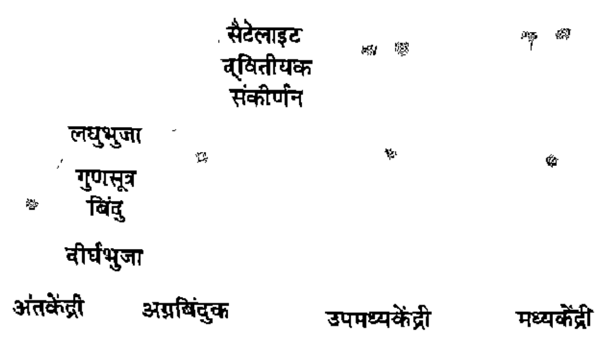
चित्र 9.16 केंद्रक एवं केंद्रक आवरण की संरचना (क) केंद्रक की संरचना (ख) इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से दृष्टव्य केंद्रकीय आवरण एवं छिद्र

केंद्रक आनुवंशिक सूचनाओं का भंडार गृह है। यह 1953 में एक डेनिश जीव वैज्ञानिक जोएशिम हैम्मरलिंग द्वारा *एसिटेबुलेरिया* पर उसके अध्ययन के आधार पर प्रमाणित किया जा चुका है।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों ने यह दिखा दिया है कि केंद्रक दो कलाओं द्वारा ढका हुआ होता है, जो एक केंद्रक आवरण बनाती है। आंतरिक तथा बाह्य कलाएं एक संकुचित स्थान द्वारा अलग रहती हैं जो **परिकेंद्रकी स्थान** (Perinuclear space) कहलाता है। बाह्य कला अंत:द्रव्यी जालिका के सतत् साथ रहती है तथा अंत:कला केंद्रक की वस्तुओं को घेरे रहती है। निश्चित स्थानों पर आवरण केंद्रक छिद्र (nuclear pore) नामक लघु संरचना की उपस्थिति से विच्छिन्न हो जाते हैं (चित्र 9.16 ख)। छिद्र वृत्ताकार संरचना से परिबद्ध होते हैं जो **वलयिका** (annuli) कहलाती है। छिद्र तथा वलयिका मिलकर **छिद्र सम्मिश्र** बनाते हैं। छिद्र, केंद्रक द्रव्यों तथा कोशिका द्रव्यों के बीच द्रव्य विनिमय का कार्य करते हैं। आरएनए तथा राइबोसोम केंद्रक को छोड़ते हैं। कोशिका विभाजन के बीच केंद्रक आवरण हट जाता है तथा केंद्रक के पुर्नसंगठन के बीच पुन: प्रत्यक्ष होने लगता है।

केंद्रकी द्रव्य में **केंद्रिक** तथा **क्रोमेटिन** विद्यमान होते हैं। केंद्रक एक सर्पिल संरचना है, जो बचे हुए केंद्र से कला द्वारा अलग नहीं किया जाता। यह एक विशिष्ट रचना निश्चित गुणसूत्र केंद्रक संगठन क्षेत्र द्वारा उत्पादित है तथा उसी के साथ रहता है, केंद्रक राइबोसोमी आरएनए का संश्लेषण स्थान भी है। कोशिकाओं में केंद्रकी बृहद् तथा बहुसंख्यी होते हैं जो प्रोटीन संश्लेषण में सक्रियता से सम्मिलित रहते हैं।

कोशिका की अंतरावस्था के बीच गुणसूत्र तथा अकुंडलित होते हैं तथा एक ढीले अस्पष्ट जालिका के रूप में होते हैं। जो **क्रोमैटिन** कहलाती है तथा जिसमें डीएनए, आरएनए एवं प्रोटीन विद्यमान होते हैं। प्रोटीनों का वह प्रकार जो डीएनए से उपस्थित तथा संबद्ध होता है हिस्टोन-युक्त एवं हिस्टोन-विहीन प्रोटीन है। गुणसूत्र धागे जैसी संरचानाएं होती हैं जो कोशिका विभाजन के मध्य प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखी जा सकती हैं। उच्च जीवों में सुसंगठित केंद्रक निश्चित संख्या में विशिष्ट आकार तथा आकृति के गुणसूत्र धारण करता है। गुणसूत्र की आकृति (चित्र 9.17) प्राय: मध्यावस्था (metaphase) एवं पश्चावस्था (anaphase) में अधिक सरलता से देखी जा सकती है जब प्राथमिक संकीर्णन (primary constriction) अथवा गुणसूत्र बिंदु (Centromere) स्पष्ट दिखाई देता है।



चित्र 9.17 गुणसूत्र बिंदु की स्थिति के अनुसार विभेदित गुणसूत्रों के प्रकार

गुणसूत्र बिंदु की स्थिति के अनुरूप गुणसूत्रों को कई प्रकारों में विभाजित किया गया है :

(i) **अंतकेंद्री** (Telo centric) - जब गुणसूत्र बिंदु शीर्ष में स्थित होता है।

(ii) **अग्रबिंदु** (Acrocentric) - जब कि गुणसूत्र बिंदु के ऊपर एक अंत खंड (Telomere) स्थित होता है।

(iii) **उपमध्य केंद्री** (Submetacentric) - जब गुणसूत्र बिंदु उपशीर्ष की स्थिति में होता है।

(iv) **मध्यकेंद्री** (Metacentric) - जब गुणसूत्र बिंदु गुणसूत्र के बीचोंबीच स्थित होता है।

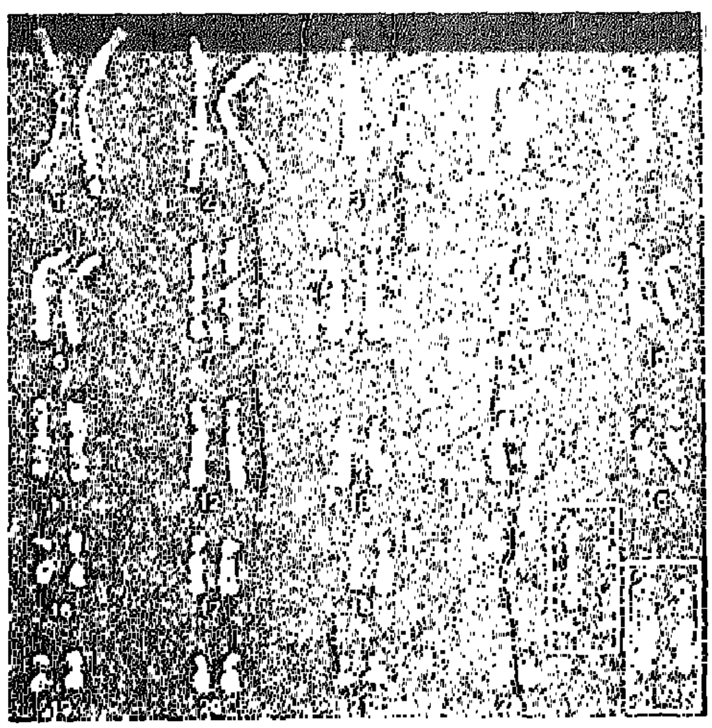
गुणसूत्र बिंदु के अतिरिक्त कुछ गुणसूत्र में द्वितीयक संकीर्णन भी देखा जाता है जो यदि गुणसूत्र की भुजा के दूरस्थ क्षेत्र पर विद्यमान हो तो गुणसूत्र के छोटे से अंश के रूप में अलग दिखेगा जिसे **सैटेलाइट** कहते हैं। सैटेलाइट मुख्य गुणसूत्र से क्रोमेटिन के एक धागे द्वारा जुड़ा रहता है। क्योंकि द्वितीयक संकीर्णनों की स्थिति सदैव स्थाई होती है। अतः इन्हें **चिह्नक** (Markers) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे गुणसूत्र जिनमें सैटेलाइट होते हैं चिह्नक गुणसूत्र हैं तथा **सैट गुणसूत्र** कहलाते हैं।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी के द्वारा किए गुणसूत्र आकारिकी के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि गुणसूत्र की पूरी लंबाई में एक कुंडलित तंतु विद्यमान होता है जिसे **वर्णसूत्र** (Chromonema) कहते हैं। यह गुणसूत्रों का जीन-युक्त खंड है। वस्तुतः अर्द्धगुणसूत्र आधा गुणसूत्र होता है जबकि वर्णसूत्र एक ऐसी संरचना है जो अर्द्धगुणसूत्र से छोटी होती है और एक अर्द्धगुणसूत्र में एक से अधिक **वर्णसूत्र** हो सकते हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के द्वारा अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक अर्धगुणसूत्र लगभग 30 nm व्यास-धारी क्रोमेटिन तंतु का बना होता है और प्रत्येक क्रोमेटिन तंतु में मात्र एक डीएनए की दुहरी कुंडली (double helix) होती है।

गुणसूत्र प्ररूप

किसी पादप अथवा जाति विशेष के सभी सदस्य गुणसूत्रों के एक विशेष समुच्चय (set) को लाक्षणिक रूप से धारण करते हैं जिनमें कुछ स्थाई लक्षण होते हैं, जैसे कि गुणसूत्रों की संख्या, सापेक्ष आकार, गुणसूत्र बिंदु की स्थित भुजा की लंबाई, द्वितीयक संकीर्णन एवं सैटेलाइट। वे सभी लक्षण जिनके द्वारा गुणसूत्रों के समुच्चय की पहचान की जा सकती है, जाति विशेष का **गुणसूत्र प्ररूप** (karyotype) कहलाता है। गुणसूत्र प्ररूप का रेखांकित चित्रण (गुणसूत्रों की आकारिकी से संबद्ध लक्षण) उस जाति का **गुणसूत्री आलेख** (idiogram) कहलाता है जिसमें जीव के अगुणित (haploid) समुच्चय के गुणसूत्रों को घटते हुए आकारिक क्रम में श्रेणीबद्ध किया जाता है।





चित्र 9.18 मनुष्य का गुणसूत्र आलेख

गुणसूत्र प्ररूपी के अध्ययन के लिए निम्न विधियां काम में लाई जाती हैं :

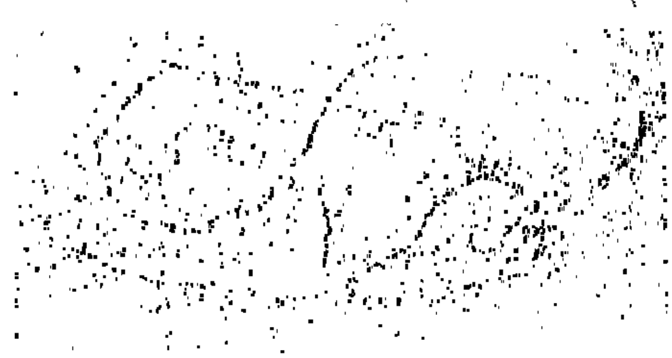
(i) **पट्ट-रचना तकनीक** (Banding Technique) — गुणसूत्र पट्ट रचना का विकास गुणसूत्र प्ररूप बनाने में अत्यधिक लाभदायक प्रमाणित हुई है जिनमें गुणसूत्रों का संज्ञान, विभिन्न प्रकार की पट्टियों की रेखाकार विभिन्नता कराती है जो आकृति में समान है। पट्ट-रचना (बैंडिंग) तकनीक द्वारा वह क्षेत्र जिनमें डीएनए पुनरावृत्ति होती है, का संज्ञान होता है। धारियों की (पट्टियों की) विभिन्न प्रकार की भिन्नता जैसे क्यू, सी, जी या आर पट्टियां जंतुओं के गुणसूत्र प्ररूपों के लिए प्रयोग की गई हैं। इसी प्रकार सी तथा एन पट्टियां पादप गुणसूत्र प्ररूपों के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

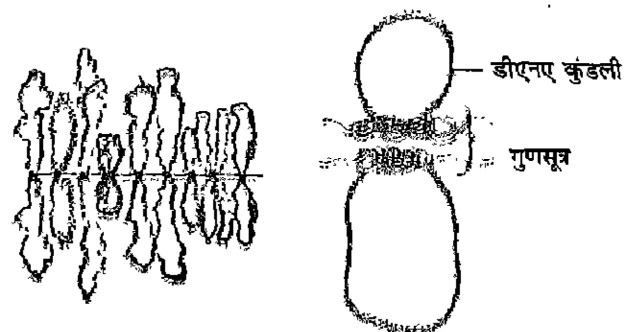
(ii) **प्रतिदीप्ति स्वस्थाने संकरण** (Fluorescence *in situ* hybridisation, FISH) **एवं बहुरंगी प्रतिदीप्ति स्वस्थाने संकरण** (multicolour fluorescence *in situ* hybridisation McFISH) जंतुओं तथा पादपों में व्यापक रूप से प्रयोग किए जा चुके हैं। यहां स्वस्थाने संकरण जो डीएनए का परीक्षण करते हैं, रेडियोधर्मिता, रेडियोधर्मिता-विहीन् अणुओं से चिह्नित कर दिए जाते हैं और उनका प्रयोग विशेष डीएनए क्रम के गुणसूत्रों पर स्थिति निर्धारण के लिए किया जाता है। Mc FISH में डीएनए के प्रतिदीप्ति रंगों द्वारा चिह्नित किया जा सकता है जिससे एक या अधिक रंगों का प्रयोग डीएनए के एक या अधिक क्रमों की अवस्था को साथ ही साथ उन्हीं गुणसूत्रों पर निर्धारित करने के लिए किया जाता है।

(iii) **कोशिकीद्रव्यमापन** (Flow cytometry)- यह एक ऐसी तकनीक है जिसमें कई हजार गुणसूत्रों का निलंबन कर दिया जाता है तथा निलंबित गुणसूत्रों को डीएनए बंधित प्रतिदीप्त (binding fluorochrome) रंगों में रंजित किया जाता है। जैसे ही यह गुणसूत्र कोशिका के बीच से निकलती है। प्रत्येक गुणसूत्र की प्रतिदीप्तिता माप ली जाती है तथा **आयत चित्र** (Histogram) के रूप में इसका परिणाम दिखाई दे जाता है। इस आयत चित्र में प्रत्येक उभार एक गुणसूत्र या उसी आकार के गुणसूत्र समूह को दर्शाता है। यह तकनीक इतनी यथार्थ होती है कि इसके द्वारा 1.5–4.0 Mbp (mega base pairs) जैसी लघु विभिन्नताओं को भी खोजा जा सकता है। यह असुगुणिता (aneuploidy), **द्विगुणन** (duplication) अथवा **विलोपन** (deletion) की पहचान में सहायता करती है।

गुणसूत्र प्रारूप के उपयोग

(i) यह किसी जीव के प्रार्थमिक तथा विकसित लक्षणों को इंगित करती है। यदि किसी गुणसूत्र प्ररूप द्वारा किसी समुच्चय के





चित्र 9.19 लैम्पब्रुश गुणसूत्र

सबसे बड़े गुणसूत्र में अत्यधिक आकार का अंतर दर्शाया जाता है। जिसमें मध्य केंद्रकी गुणसूत्र कम हो तो गुणसूत्र प्ररूप कहलाता है, जो एक अपेक्षाकृत उन्नत लक्षण है,

(ii) विभिन्न जातियों के गुणसूत्रों की तुलना और समानता के द्वारा इनके विकासीय संबंधों को भी प्रदर्शित किया जा सकता है,

(iii) बाह्य कोशिक द्रव्य मापन तकनीक द्वारा हम एक 1.5–4.0 Mbp (mega base pairs) युग्मक तक के अंतर की पहचान कर सकते हैं फलत: किसी गुणसूत्र में उत्पन्न कोई भी विविधता जैसे कि द्विगुणन एवं विलोपन (deletion) की जांच सरलता से संभव है।

विशेष प्रकार के गुणसूत्र

कुछ जीवों में ऐसे विशिष्ट ऊतक विद्यमान होते हैं जिनमें विशिष्ट प्रकार की संरचना वाले गुणसूत्र पाए जाते हैं।

(i) **लैंप ब्रुश गुणसूत्र** : यह गुणसूत्र कुछ प्राणियों के प्राथमिक युग्मकपुटी (oocyte) के केंद्रकों में अर्द्ध सूत्री विभाजन की द्विपट्ट (diplotene) अवस्था में पाए जाते हैं (चित्र 9.19)। यह गुणसूत्र बहुत सी प्रजातियों के शुक्राणु कोशिका (spermatocytes) में तथा **ऐसीटेबुलेरिया** के महाकेंद्रक (Giant nucleus) और पादपों में भी पाए जाते हैं। यह गुणसूत्र सरंचना की दृष्टि से बहुत परिवर्तन दर्शाते हैं। बनावट में यह परिवर्तन इनकी लंबाई में अत्यधिक वृद्धि है।



चित्र 9.20 पोलीटीन गुणसूत्र

(ii) **पोलीटीन गुणसूत्र** (Polytene chromosomes) : यह गुणसूत्र डिप्टीरा कीटों जैसे कि मच्छर, ड्रोसोफिल एवं काइरोनोमस में पाए जाते हैं। यह डीएनए की विशाल मात्रा के कारण बहुत बड़ा आकार धारण कर लेते हैं (चित्र 9.20)। यह कोशिकाएं सूत्री विभाजन नहीं कर सकतीं और रूपांतरण के मध्य इनकी मृत्यु अवश्यंभावी है। पोलीटीनी गुणसूत्र में विद्यमान डीएनए के कई बार गुणन के कारण होती है चूंकि इस क्रिया में केंद्रक विभाजन नहीं होता। अत: यह अंत: पुन: द्विगुणन (endomitosis) कहलाती है, क्योंकि इस प्रकार निर्मित होने वाली संतति के अर्द्ध गुणसूत्र (Chromatids) अलग-अलग नहीं होते वरन् साथ-साथ सटे रहते हैं।

तारककेंद्र

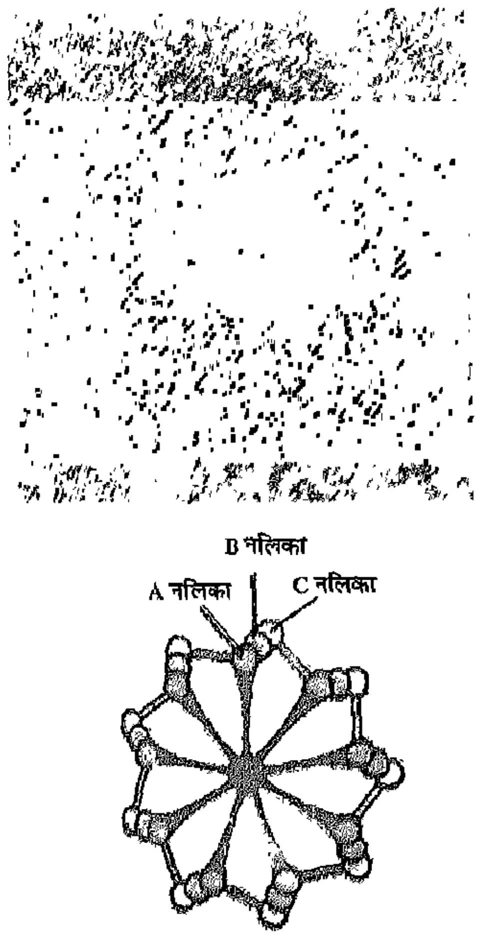
तारककेंद्र (centriole) यह सूक्ष्मदर्शी से भी न देखी जा सकने वाली, सूक्ष्म नलिका गुण, उप बेलनाकार संरचनाएं हैं जो प्राय: दो कणों के रूप में पाई जाती हैं अत: यह **डिप्लोसोम** भी कहलाती हैं। जो एक विशिष्ट कोशिका द्रव्य, **परितारक केंद्र** (centrosphere) अथवा **कीनोप्लाज्म** में विद्यमान रहती है। थेओडोर बौवरी नाम के वैज्ञानिक ने वर्ष 1888 में गुणसूत्र बिंदु और केंद्रक द्रव्य से मिलाकर बनी जटिल संरचना को **सैंट्रोसोम** का नाम दिया। दोनों तारक केंद्र एक दूसरे के लंबवत् स्थित होते हैं (चित्र 9.21)। प्रत्येक तारककेंद्र की संरचना गाड़ी के पहिये जैसी होती है जिसमें 9 किनारे वाले ट्यूब्यूलिन से निर्मित तिर्यक



चित्र 9.21 तारककाय चित्रवत् (ऊपर), फोटो...

सूत्रक होते हैं जो 40° के कोण पर झुके होते हैं। इन तीन उपसूत्रकों को बाहर की ओर से क्रमश: C, B, A कहते हैं (चित्र 9.22)। यद्यपि ऐसी अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक उपसूत्र में सूक्ष्म नलिकाओं की भांति 13 आदि तंतु विद्यमान होते हैं किंतु वास्तव में दोनों C एवं A उपसूत्र B उपसूत्र के साथ 2 से 3 उपतंतुओं में भागीदारी करते हैं। इसके केंद्र में एक प्रोटीन निर्मित धुरी उपस्थित रहता है। प्रत्येक तिहरे सूत्र का उपसूत्रक धुरी से अरीय प्रोटीनों से निर्मित धागों से संबद्ध रहता है, जो अर कहलाते हैं। यह अर भी C तथा A के संधिकर्ताओं से दो प्रकार के स्थूलनों X एवं Y द्वारा जुड़े रहते हैं।

तारककाय (centrioles) घने, रवाहीन, जीव द्रव्य के गोलों द्वारा एक अथवा दो श्रेणियों में घिरे रहते हैं जिन्हें **मैसूल्स** अथवा परितारकाय (Pericentriolar) सैटेलाइट कहते हैं। यह कोशिका-चक्र की G-2 अवस्था में नए गुणसूत्र निर्माण करने में सहायक होते हैं। तारकाय आधार काय, पक्ष्माभिका, कशाभिका एवं ताराकार तर्कु ध्रुवों के निर्माण के



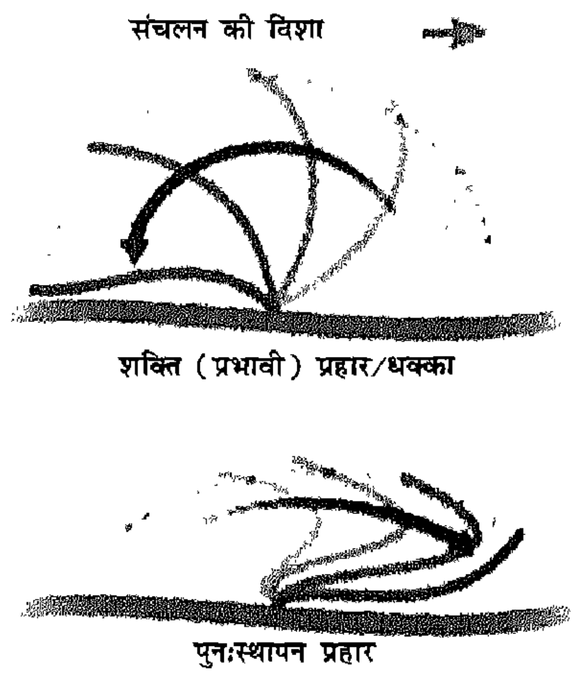
चित्र 9.22 तारककाय की अनुप्रस्थ काट

लिए भी उत्तरदायी हैं। यह प्रायः जंतु कोशिकाओं, कशाभिका धारी जीवों एवं बीजाणु एवं युग्मकों आदि में तो उपस्थित होते हैं किंतु पादप कोशिकाओं में विद्यमान नहीं होते है।

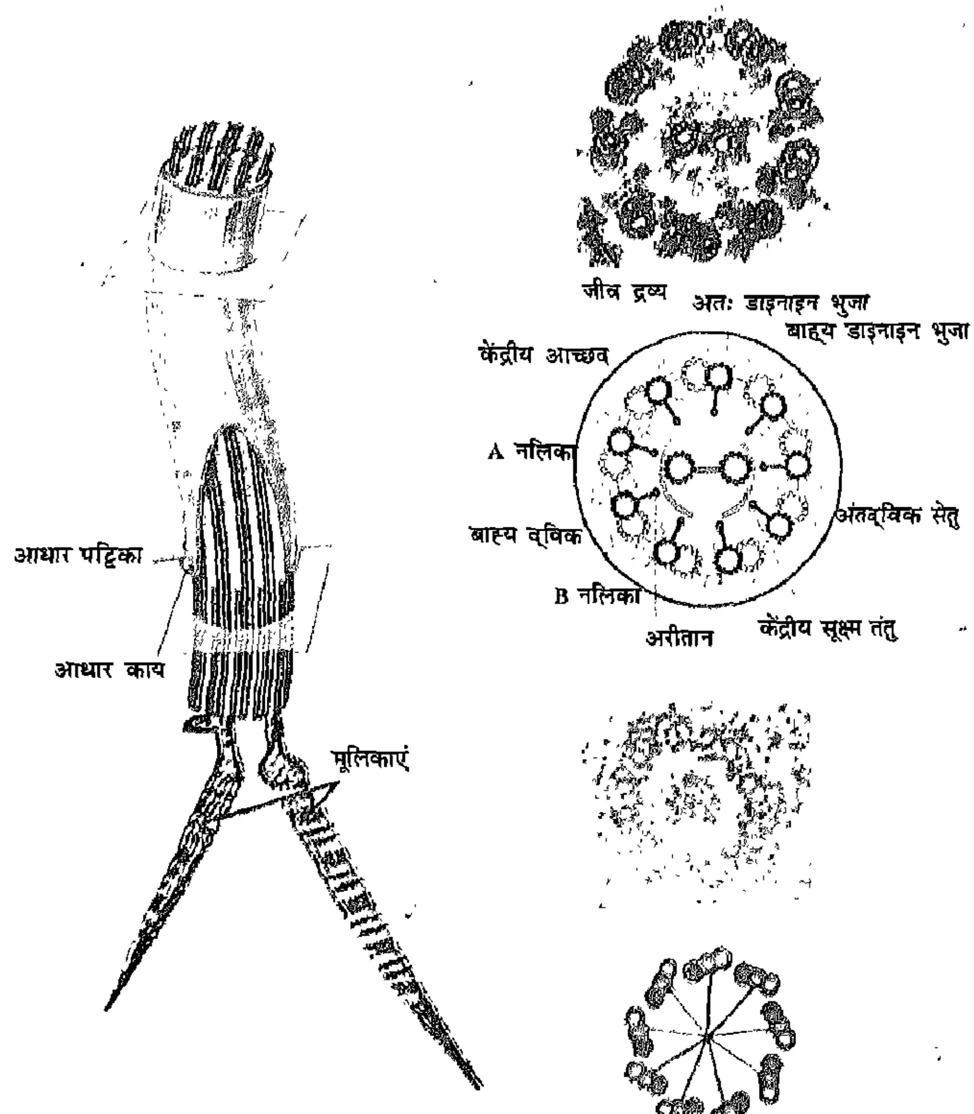
पक्ष्माभ एवं कशाभिका

पक्ष्माभ एवं कशाभिका (Cillia and Flagella) रोम सदृश्य अत्यंत स्पष्ट ऐसे अंगक हैं जो कोशिका की मुख्य सतह पर विद्यमान होते हैं और गतिशीलता (mobility) से संबद्ध हैं, यद्यपि दोनों चाबुक जैसी संरचनाएं हैं जो सूक्ष्मजीवियों को आगे बढ़ाती हैं अथवा पीछे धकेलती है तथा एक-दूसरे से दो कारणों से अलग-अलग रहती है। प्रथमतः **पक्ष्माभ** तो 5-20 μm लंबी होती है जबकि कशाभिका 100-200 μm लंबे। दूसरी ओर उनकी संचलन की प्रणाली भी भिन्न-भिन्न है। कशाभिका तरंगित विधि से संचलन करते हैं और स्वतंत्र ताल (beat) द्वारा ऐसी सर्पिल तरंगें उत्पन्न करते हैं जो इसके आधार अथवा शीर्ष पर प्रारंभ होती हैं। यदि तरंग आधार से शीर्ष की ओर चलती है तो कोशिका आगे की ओर बढ़ जाती है जब कि दूसरी ओर शीर्ष से आधार की ओर चलने वाली ताल, कोशिका को जल की ओर खींचती है। कभी-कभी कशाभिका पर पार्श्वरोम अथवा **फ्लीमर फिलामेंट्स** तंतु जो स्थूल व दृढ़ रोम के रूप में होते हैं, विद्यमान होते हैं जिसके फलस्वरूप तंतु के शीर्ष से नीचे की ओर चलने वाली तरंग, कोशिका को धक्का देने के स्थान पर आगे की ओर खींचती है। इस प्रकार की कशाभिका को टिंसेल प्रकार की कशाभिका कहते हैं जब कि नग्न कशाभिका चाबुक प्रकार (whiplash) की कशाभिका कहलाती है। दूसरी ओर पक्ष्माभ में दो स्पष्ट अवस्थाओं वाली ताल है। बल अथवा प्रभावी आघात (चित्र 9.23) में वो पक्ष्माभ तरल पदार्थों के बीच से चप्पू (oar) की भांति आगे बढ़ती हुई जीव को जल में अग्रसर करती है, इसके उपरांत पक्ष्माभ अपनी लंबाई में नीचे की ओर मुड़ जाती है, और **पुनःस्थापन आघात** (recovery stroke) में आगे की ओर खिंचकर एक बार पुनः प्रभावकारी आघात (effective stroke) की तैयारी प्रारंभ हो जाती है। वस्तुतः कार्य भी पक्ष्माभधारी सूक्ष्म जीव अपनी ताल (beat) को इस प्रकार समन्वयित करता है कि इसके कुछ कशाभिका तो पुनर्स्थापन अवस्था में होते हैं, जबकि अन्य अपने प्रभावकारी आघात संचालन करते रहते हैं। इस समन्वय के फलस्वरूप जीव जल में भली-भांति गति करते रहते हैं।

अपनी भिन्नताओं के होते हुए भी पक्ष्माभ एवं कशाभिका परासंरचना (ultrastructure) की दृष्टि से बहुत समानता दर्शाते हैं क्योंकि दोनों कला-आवरित (membrane-bound) बेलनाकार रचनाएं हैं। ये अंगक, चार भागों से निर्मित जटिल रचनाएं हैं – आधार काय, मूलिकाएं, आधार तश्तरी एवं शैफ्ट



चित्र 9.23 पक्ष्माभ की गति



चित्र 9.24 विभिन्न भागों को दर्शाती पक्ष्माभ की काट

(चित्र 9.24) **शैफ्ट** अथवा **एक्सोनीम** सूक्ष्म नलिकाओं (microtubules) के 9 जोड़ों से बने द्विक (doublets) हैं जो दो केंद्रीय नलिकाओं के चारों ओर एक वृत्त में व्यवस्थित रहते हैं। यह सूक्ष्म-नलिकाओं की 9+2 व्यवस्था प्रणाली कहलाती है, प्रत्येक द्विक में उपनलिका (sub-tubule) A से बाहर की ओर समीपवर्ती द्वितक में प्रवेश करते हुए भुजाओं के युग्म भी विद्यमान होते हैं। साथ ही एक अरीय तान (spoke) उपनलिका से आंतरिक सूक्ष्मनलिकाओं के जोड़े से जुड़ी होती हैं। यह सूक्ष्मनलिकाएं, कोशिका-द्रव्य में विद्यमान ऐसी आकृतियों के समान ही होते हैं। संरचना की दृष्टि से ट्यूब्यूलिन, संकुचनशील प्रोटीन, एक्टिन से समानता दर्शाती है।

प्रत्येक पक्ष्माभ अथवा कशाभिका के आधार पर कोशिका-द्रव्य में एक आधार काय स्थित होती है जो एक लघु बेलनाकार संरचना है जिसकी कोर पर नौ सूक्ष्मनलिका तिर्यक (microtubule-triplets) 9+0 प्रणाली में विद्यमान होते हैं जो अन्य अंगकों से एक आधार-तश्तरी द्वारा अलग बने रहते हैं। आधार काय इन कोशिकाओं के निर्माण को दिशा प्रदान करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि पक्ष्माभिका एवं कशाभिका अपने शीर्षों पर विद्यमान पूर्व-निर्मित सूक्ष्मनलिका उप-एककों के योग द्वारा वृद्धि करते हैं।

पक्ष्माभों एवं कशाभिकाओं में मुड़ने की क्षमता इसलिए होती है कि इनमें विद्यमान सूक्ष्म नलिकाओं के द्विक (doublets) एक-दूसरे के पार्श्व में अपनी व्यक्तिगत लंबाई बनाए रखते हुए सरकते रहते हैं। द्विक भुजाएं जो लगभग 15 *nm* लंबी होती हैं डाइनाइ नामक प्रोटीनों की बनी होती हैं। एटीपी तो पक्ष्माभिकाओं एवं कशाभिकाओं की गति को बल प्रदान करती है और विलायित

डाइनाइन एटीपी को अपघटित करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि डाइनाइन की भुजाएं समीपवर्ती द्विकों की उपभुजिका B के साथ परस्पर क्रिया कर सर्पिल गति करते हैं। पक्ष्माभ एवं कशाभिका 10-40 आघात अथवा तरंग प्रति सैकिंड की दर से ताल प्रदान करते हुए सूक्ष्मजीवों को अत्यंत द्रुत गति से आगे की ओर धकेलते **(नोदन)** हैं। यह गतियां उच्च श्रेणी के जंतुओं द्वारा दर्शायी गई गतियों के समान अथवा कहीं अधिक है। इस क्रम में कीर्तिमान ***मोनास स्टिगमैटिका*** नामक कशाभिका-धारी जीव का है जो 260 μm प्रति सैकिंड की गति से तैरता है (लगभग 40 कोशिका लंबाई प्रति सेकेंड)। पैरामीशियम नामक आदि जीव 1500 μm अथवा अधिक की दूरी प्रति सेकेंड पार करता है (अर्थात् 12 कोशिका लंबाई प्रति सैकिंड)।

असीमकेंद्रकी तथा ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं के बीच के अंतर को सारणी 9.2 में संक्षिप्त रूप में दिया गया है।

तालिका 9.2 असीमकेंद्रकी तथा ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में अंतर

असीमकेंद्रकी कोशिकाएं	ससीमकेंद्रकी कोशिकाएं
संगठित केंद्रक की कमी; आनुवंशिक द्रव्य केंद्रकाभ के रूप में होते हैं।	केंद्रक सुसंगठित होते हैं।
केंद्रक-कला विद्यमान नहीं होती।	केंद्रक-कला विद्यमान होती है।
डीएनए हिस्टोन के साथ जुड़ा नहीं होता है।	डीएनए हिस्टोन से क्रोमेटिन बनाने के लिए जुड़ा रहता है।
डीएनए वृत्ताकार और गुणसूत्रों में भरा नहीं होता है।	रेखाकार डीएनए भली-भांति निर्मित गुणसूत्रों में भरा होता है।
कला-आवरित कोशिकांग विद्यमान नहीं होते।	कला आवरित कोशिकांग होते हैं।
माइटोकॉन्ड्रिया विद्यमान नहीं होते।	माइटोकॉन्ड्रिया विद्यमान होते हैं।
हरितलवक अनुपस्थित, प्रकाशसंश्लेषीय जीवाणुओं में प्रकाशसंश्लेषी पट्टिका उपस्थित होती है	पादप कोशिकाओं में हरित-लवक उपस्थित होते हैं ।
राइबोसोम मात्र 70S प्रकार के होते हैं।	कोशिकाद्रव्य में राइबोसोम 80S प्रकार के तथा 70S प्रकार के शैल (कोशिकांगों में) तथा पादपों में, तथा जंतुओं में क्रमशः 80S एवं 55S प्रकार के होते हैं ।
कोशिका भित्ति म्यूरीन नाम के म्यूकोपेप्टाइडोस से बनी होती है।	जंतुओं में कोशिका भित्ति नहीं होती। पादपों में यह सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज एवं लिग्निन की बनी होती है।
कशाभिका सरल, फ्लैजिलीन की बनी होती है, 9+2 संगठन अनुपस्थित होता है।	विशेषतः कशाभी तथा 9+2 संगठन दर्शाते हैं।
कोशिका-द्रव्य प्रवाह नहीं पाया जाता।	कोशिका द्रव्य प्रवाह पाया जाता है।
सूक्ष्मनलिकाओं से बना है, कोशिका कंकाल विद्यमान नहीं होता है। विभिन्न प्रकार के पाइलाई उपस्थित होते हैं ।	सूक्ष्म नलिकाओं से बना कोशिका-कंकाल उपस्थित होता है।
विभिन्न प्रकार के रोम विद्यमान होते हैं।	रोम विद्यमान नहीं होते।

सारांश

कोशिकाएं सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं, असीमकेंद्रकी और ससीमकेंद्रकी। संरचना की दृष्टि से असीमकेंद्रकी, ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं से कहीं सरल होती हैं। जीवाणु, असीमकेंद्रकी कोशिकाओं का एक उदाहरण है। इनमें केंद्रकी कला कला-आवरित कोशिकांग, सूक्ष्मनलिकाएं और कोशिका-द्रव्यी प्रवाह सभी अनुपस्थित होते हैं। केंद्रक सरल होता है। डीएनए हिस्टोन-रहित और एक न्यूक्लिऑइड में धंसा रहता है। असीमकेंद्रकियों के आवरण में तीन मूलभूत परत होते हैं (i) ग्लाइकोकेलिक्स (ii) कोशिका-भित्ति और (iii) जीवद्रव्य कला। कोशिका कला की संरचना की व्याख्या करने के लिए सिंगर एवं निकोल्सन ने एकल कला अवधारणा को सर्वाधिक स्वीकृत तरल मोजैक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया था। जीवद्रव्य कला, प्रकाशसंश्लेषण और श्वसन का स्थल है और असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में लिपिड तथा कोशिका-भित्ति के संघटकों का संश्लेषण करते हैं। इसके कारण इसमें इन क्रियाओं को संपन्न करने के लिए एंजाइमों और हॉरमोनों की पर्याप्त मात्रा विद्यमान होती है। इन जीव द्रव्य कला कोशिका में अंतर्वेशित हो जाते हैं और नलिकाओं की पुटिकाएं अथवा पट्टलिकाएं बनाते हैं जो मीजोसोम कहलाते हैं और जीवद्रव्यकला को अधिक उपापचयी क्रिया संपन्न करने के लिए बृहद् स्थल प्रदान करते हैं। कोशिका द्रव्य में पॉलीफॉस्फेट, साइनोफाइसियन कणिकाएं, ग्लाइकोजन कणिकाएं, कार्बोक्सीसोम, मेटाक्रोमेटिक कणिकाएं, वोल्यूटिन कणिकाएं, गंधक की कणिकाएं, गैस रसधानियां, राइबोसोम और न्यूक्लिऑइड विद्यमान होते हैं। न्यूक्लिऑइड द्विसूत्री डीएनए के एकल वृत्ताकार ऐसे अणु से बना होता है जिसमें न्यूक्लिआइड प्रोटीन भरे रहते हैं। कशाभिका तीन भागों-तंतु, आधार काय और एक अंकुश (हुक) से बनी होती है। झालर सूक्ष्म, कंटक-सम ऐसे तंतु होते हैं जो कोशिका से बाहर की ओर निकले रहते हैं और जीवाणुओं को ठोस सतह से जोड़ते हैं। पाइलाई, पाइलिन नाम की प्रोटीन से बनी नलिकाकार संरचनाएं हैं जो मैथुन की प्रक्रिया में सहायक होती हैं।

ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में केंद्रक एवं कोशिका द्रव्य नामक दो प्रमुख भाग होते हैं- कोशिका, एक कोशिका भित्ति से आवरित रहती है जो सेलुलोस तथा काइटिन की शैवालों में, पेक्टिन, मैनान्स एवं खनिजों और उच्च पादपों में पेक्टिन, लिग्निन एवं हेमीसेलुलोस की बनी होती है। प्राथमिक भित्ति सेलुलोस के सूक्ष्म सूत्रकों से संगठित होती है जो ऐसी जाइलोग्लूकॉन शृंखलाओं से संबद्ध होते हैं जिनमें पेक्टिन का पॉलीसेकेराइड जाल अंतर्वेषित होता है और संरचनात्मक प्रोटीनें तृतीय परस्पर संधि का जाल बनाती हैं। जब कोशिका अविभेदित होती है, सूत्र आपस में ढीले रूप से संबद्ध होते हैं तथा इनकी पारस्परिक-संधियाँ पूर्ण नहीं होती। लेकिन जैसे-जैसे यह परिपक्व होती जाती हैं, परस्पर-संधियाँ मज़बूत होती जाती हैं और भित्ति दृढ़ हो जाती है। प्राथमिक भित्ति पर द्वितीयक भित्ति का जमाव होता जाता है जो सेलुलोस, हेमीसेलुलोस, पेक्टिन एवं लिग्निन की बनी होती है। कुछ पादपों में तृतीय कोशिका भित्ति का भी जमाव होता है। समीपवर्ती कोशिकाओं में आपसी संबंध के लिए कोशिका भित्ति में महीन कोशिकाद्रव्यीय योजक, प्लाज्मोडेस्माटा भी विद्यमान होते हैं। ससीमकेंद्रियों की कोशिकाद्रव्यीय कला की संरचना असीमकेंद्रियों की कला के समान ही होती है।

कोशिका-द्रव्यी आधात्री, कोशिका-द्रव्यी प्रवाह दर्शाती है और इसमें जल एवं प्रोटीनों की भारी मात्रा विद्यमान रहती है। कोशिका-कंकाल, सूक्ष्म, वृहद् एवं माध्यमिक प्रोटीन तंतुओं से बना होता है और कोशिकीय गतियों एवं अंतःकोशिकीय संवहन से संबद्ध होता है।

अंतःप्रद्रव्यी जालिका में नलिकाएं एवं पुटिकाएं विद्यमान होती हैं, जो दो प्रकार की होती हैं : खुरदरी एवं चिकनी। यह पदार्थों के संवहन और प्रोटीनों, लाइपोप्रोटीनों तथा ग्लाइकोजनों के संश्लेषण में सहायक होती हैं। गॉल्जी काय एक कलाधारी, चपटे थैलियों से निर्मित कोशिकांग हैं जिनमें कोशिकाओं के स्राव भरे रहते हैं और उनसे बाहर की ओर संवाहित किए जाते हैं। लाइसोसोम, एक कला से आवारित एंजाइम-धारी ऐसी संरचनाएं हैं जो सभी प्रकार के बृहद् अणुओं का पाचन करती हैं। वे कोशिकाओं की आत्मघाती थैलियां भी कहलाती हैं। स्फीरोसोम वसाओं का संश्लेषण एवं संग्रह करते हैं। प्रकाशसंश्लेषी कोशिकाओं में परऑक्सीसोम जैसी बृहद्काय प्रचुर संख्या में पाई जाती हैं जब कि ग्लाईऑक्सीसोम वसा के उपापचय से संबद्ध होते हैं।

राइबोसोम, प्रोटीन संश्लेषण में संलग्न रहती है। यह मुक्त रूप से कोशिका-द्रव्य में रहते है अथवा अंतःप्रद्रव्यी जालिका से संबद्ध रहते हैं, प्रोटीन संश्लेषण के बीच राइबोसोम एम आरएनए से बहुराइबोसोम बनाने के लिए संबद्ध रहते हैं

माइटोकॉन्ड्रिया आक्सीकृत फॉस्फोरीकरण में तथा एडेनोसीन ट्राईफोस्फेट के उत्पादन में सहायता करती है। यह दुहरी कला से आबद्ध रहती है जिसकी बाह्यकला सपाट तथा आंतरिक बहुत-सी पुटिकाओं से मंडित होती है। यह अपने स्वयं के डीएनए तथा राइबोसोम रखती है तथा एक स्वनियंत्रित कोशिकांग है। लवक वर्णकधारी कोशिकांग है तथा केवल पादप कोशिकाओं में पाए जाते हैं। यह दो कला धारी संरचना है (बाह्य सपाट तथा आंतरिक व्यापक रूप से थाइलेकॉइड में मुड़ी हुई) तथा ग्रेना

धारण करती है। जो स्ट्रोमा आधात्री में निलंबित रहते हैं। ग्रेना प्रकाश अभिक्रिया का स्थल है तथा स्ट्रोमा अप्रकाशिक अभिक्रिया का। हरे रंग के लवक हरितलवक होते हैं जिसमें पर्णहरित होता है, जबकि अन्य रंगीन लवक, वर्णीलवक होते हैं जो केरोटीन एवं जेन्थोफिल धारण कर सकते हैं। वर्णविहीन लवकों में कोई वर्णक विद्यमान नहीं होता है। यह तीन प्रमुख प्रकारों के होते हैं : एमाइलोप्लास्ट, एल्यूरोप्लास्ट एवं इलियोप्लास्ट।

केंद्रक, एक केंद्रकीय आच्छद से आवरित करता है जो केंद्रकीय छिद्रों धारी एक द्विकलायुक्त संरचना है। इसकी आंतरिक कला केंद्रकीय द्रव्य एवं क्रोमेटिन पदार्थ को घेरती है। केंद्रिका एक वृत्ताकार आकृति है जो केंद्रक में स्थित होती है और आरएनए तथा राइबोसोमों का उप इकाइयों के संश्लेषण में सहायक होती है। तारक काय, जंतु कोशिकाओं में युग्मों में विद्यमान होते हैं जिनमें से एक-दूसरे के लंबवत् अवस्थित होता है। इसकी संरचना गाड़ी के पहिए-सदृश होती है जिसमें ट्यूब्यूलिन निर्मित 9 बाह्य तिर्यक विद्यमान होते हैं। इसके केंद्र में प्रोटीन की एक धुरी होती है जिससे आधार कायों, पक्ष्माभों, कशाभिकाओं एवं तर्कुसूत्रों का निर्माण होता है।

पक्ष्माभ एवं कशाभिकाएं कोशिकाओं की गतिशीलता से संबद्ध होती हैं और यह तो कशाभिकाएं पक्ष्माभों से लंबी होती हैं, कशाभिकाएं तो तरंगित संचलन से गति करती हैं जब कि पक्ष्माभ ताल एवं नोदन द्वारा जीव को आगे की ओर ढ़केलती हैं। कशाभिकाएं टिंसैल अथवा प्रतोद प्रकार की हो सकती है। पक्ष्माभ कशाभिकाएं दोनों ही चार भागों-आधारकाय, मूलिका आधार तश्तरी एवं शैफ्ट की बनी होती हैं इनमें सूक्ष्म नलिकाओं की व्यवस्था प्रणाली 9+2 होती है।

अभ्यास

1. जीवद्रव्यतंतु क्या होते हैं ?
2. ग्लाइकोकैलिक्स का क्या महत्त्व है?
3. बहुराइबोसोम की परिभाषा दीजिए।
4. परऑक्सीसोमो में विद्यमान एंजाइमों के नाम बताइए।
5. कोशिका-कंकाल संरचनाएं क्या हैं ?
6. कोशिका-भित्ति के मुख्य कार्य कौन-कौन से हैं ?
7. गॉल्जी काय के प्रमुख कार्यों की सूची बनाइए।
8. विभिन्न प्रकार के अंतःप्रद्रव्यी जाल कौन-कौन से हैं ?
9. गाल्जीकॉय , हरितलवकों एवं माइटोकॉन्ड्रिया के कार्यों का वर्णन कीजिए।
10. कशाभिका एवं पक्ष्माभ के कार्यों का वर्णन कीजिए।
11. अंतर दर्शाइए:
    (क) सूक्ष्म नलिकाएं एवं सूक्ष्म तंतु
    (ख) प्राथमिक भित्ति एवं द्वितीयक भित्ति
    (ग) रंगविहीन लवक एवं वर्णक-युक्तलवक
12. केंद्रक, माइटोकॉन्ड्रिया एवं लवक की परासंरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।
13. प्लाज्माझिल्ली के तरल मोजैक मॉडल का वर्णन कीजिए।
14. असीमकेंद्रकी एवं ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं को विभेदित कीजिए।
15. कोशिका आवरण क्या है ? इसकी रासायनिक प्रकृति का वर्णन कीजिए।
16. ग्राम-धनात्मक एवं ग्राम-ऋणात्मक जीवाणुओं की कोशिका-भित्तियों में क्या अंतर है ?
17. असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में कौन-कौन से कोशिका अंतर्वेश होते हैं ?
18. राइबोसोम की संरचना कैसी होती है ?
19. पाइलस एवं झालर में क्या भेद हैं ?

अध्याय 10

कोशिका के अणु

अब तक आप कोशिका की संरचना से परिचित हो चुके हैं। आपको ज्ञात है कि कोशिका का प्रत्येक घटक एक विशेष कार्य के लिए उत्तरदायी है। कोशिका घटक कुछ आधारभूत अणुओं के बने होते हैं जो जटिल पारस्परिक क्रियाओं में सहायता करते हैं। कोशिकाएं बहुत-से अणु धारण किए होती हैं जो विभिन्न प्रकार के कार्यों को संपन्न करते हैं। अणुओं का यह संग्रह **कोशिका कुंड** (cellular pool) कहलाता है। कोशिका कुंड में जल, अकार्बनिक द्रव्य तथा कार्बनिक संघटक विद्यमान होते हैं। अकार्बनिक द्रव्यों में लवण, खनिज आयन तथा जल सम्मिलित हैं। मुख्य कार्बनिक पदार्थ कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, अमीनो अम्ल, प्रोटीन, न्यूक्लियोटाइड, अमीनो अम्ल, केंद्रकी अम्ल, हार्मोन तथा विटामिन हैं। इनमें से कार्बनिक अणु तो जलीय अंत:कोशिकीय द्रव्य में कोलॉइडी दशा में रहते हैं तथा अन्य लिपिड झिल्ली तथा कोशिका भित्ति जैसी अजलीय अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं। जंतुओं में कोशिका कुंडों का संयोजन, बाह्य कोशिका द्रव्य से नितांत भिन्न होता है। यह विशेषता कोशिका द्रव्य झिल्ली की चयनित पारगम्यता द्वारा बनाए रखी जाती है। कोशिका इस कुंड को विशेष अणुओं के आवागमन द्वारा बनाए रखती है। इस अध्याय में आप कोशिकाओं के विभिन्न द्रव्यों तथा बृहद् अणुओं के बारे में अध्ययन करेंगे।

10.1 अकार्बनिक द्रव्य

लवण, खनिज आयन तथा जल किसी कोशिका में विद्यमान मुख्य अकार्बनिक द्रव्य हैं। आइए हम उनकी उपलब्धता तथा कार्यों के बारे में अध्ययन करें।

खनिज तत्त्व

अधिकांश तत्त्व पृथ्वी के अंत:पटल पर अकार्बनिक यौगिकों के रूप में मिलते हैं। खनिज तत्त्व सजीवों में भी अकार्बनिक तथा कार्बनिक अणुओं और आयन के घटकों के रूप में पाए जाते हैं। सभी शरीर तरलों में खनिजों की उस मात्रा, जो आयनों तथा यौगिकों के रूप में विद्यमान हैं, के बीच संतुलन होता है। जंतुओं के शरीर के मुख्य खनिज, कैल्शियम, फॉस्फोरस, सोडियम, क्लोरीन, मैग्नीशियम तथा गंधक होते हैं। अन्य खनिज बहुत सूक्ष्म मात्रा में पाए जाते हैं जैसे कि लोहा, तांबा, कोबाल्ट, मेंग्नीज, मोलिब्डेनम, जिंक, फ्लोरीन, आयोडीन तथा सेलेनियम।

पादपों की वृद्धि के लिए आवश्यक खनिज दो भागों में विभाजित किए जाते हैं। प्रचुर मात्रा में वांछित खनिज तत्त्व **बृहत्पोषक तत्त्व** (macronutrients) कहलाते हैं तथा उनमें फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मेंग्नेशियम, गंधक तथा लोहा सम्मिलित हैं। सूक्ष्म मात्रा में वांछित खनिज **सूक्ष्ममात्रिक तत्त्व** (micronutrients) कहलाते हैं और वे मेंग्नीज, कोबाल्ट, जिंक, बोरॉन, तांबा तथा मोलिब्डेनम हैं। एक ही खनिज विविध भूमिकाएं निभा सकता है।

बहुत-से खनिज तत्त्व कोशिकीय घटकों की संरचना में भाग लेते हैं। सल्फर युक्त अमीनो अम्ल प्रोटीनों में प्रवेश करता हैं। कैल्शियम हड्डियों तथा दांतों को, फॉस्फेट के साथ जमा होकर शक्ति तथा दृढ़ता प्रदान करता है। इसलिए हड्डियों में कैल्शियम तथा फॉस्फोरस की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उनकी धूल खाद के रूप में उपयोग की जाती है। कैल्शियम कार्बोनेट, अकशेरुकियों का बहि:कंकाल निर्माण करता है। मृदुकवचियों (mollucs) के कवच चूना (CaO) प्राप्त करने के लिए जलाए जाते हैं। पादप कोशिकाओं में कैल्शियम पेक्टेट, मध्य पट्टलिका (middle lamella) बनाता है। मैग्नीशियम भी हड्डियों तथा दांतों को कठोर बनाने में सहायता करता है। आपको ज्ञात है कि लोहे की कमी से रक्ताल्पता (anaemia) की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसा हीमोग्लोबिन संश्लेषण प्रक्रिया निष्क्रिय होने के कारण होता है। लोहा (Fe^{2+}) पोरफाइरन से मिलकर हीम बनाता है। यह विभिन्न प्रोटीनों से आबद्ध होकर श्वसन वर्णक बनाते हैं जो श्वसन में सहायता करते हैं। यह रक्त कोशिकाओं की लाल रक्त कणिकाओं में ऑक्सीजन संवाहक वर्णक **हीमोग्लोबीन** तथा पेशी कोशिकाओं के ऑक्सीजन भंडारक **मायोग्लोबीन** में भी सम्मिलित रहते हैं। **साइटाक्रोम** हीम-प्रोटीन संयोजन है जो ऑक्सीकारक का कार्य करते हैं। पादप वर्णक पर्णहरित (chlorophyll), मैग्नीशियम (Mg^{2+}) तथा पोरफाइरिन एवं लंबी

लिपिड पूंछ के साथ एक जटिल संरचना है। स्तनपोषियों में आयोडीन अकार्बनिक आयोडीन के रूप में, प्रोटीनबद्ध हो कर रक्त में तथा थाइरॉयड हार्मोनों में पाया जाता है। आयोडीन की आहारी न्यूनता थाइराइड की क्रियाशीलता को घटाती है तथा थाइरॉइड ग्रंथि को बढ़ाती है, फलत: गलगण्ड (goitre) नामक रोग फैलता है। भारत के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र की मृदा में आयोडीन की न्यूनता, फसलों तथा पीने के पानी में भी आयोडीन की कमी का कारण बन गई है। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों के लोगों में गलगण्ड रोग व्यापक रूप से फैला रहता है। इस विकार को दूर करने के लिए सामान्य नमक को आयोडीन-युक्त करके दिया जा रहा है।

सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान खनिज तत्त्व अधिकांशत: एंजाइम प्रक्रिया में आवश्यक होते हैं। उदाहरण के लिए मैंगनीज उन एंजाइम अभिक्रियाओं के लिए आवश्यक हैं जो ओलिगोशर्कराइडों तथा ग्लाइकोप्रोटीनों के संश्लेषणों हेतु संपन्न होती हैं। माइटोकॉन्ड्रिया मैंगनीज-बहुल होते हैं। एंजाइम नाइट्रोजिनेज द्वारा उत्प्रेरित नाइट्रोजन के बंधन के लिए मोलिब्डेनम आवश्यक है जब कि तांबा साइटोक्रोम ऑक्सीडेस में पाया जाता है। मैग्नीशियम अधिकांशत: ऐसे एंजाइमों के लिए आवश्यक है जो एटीपी का प्रयोग करते हैं।

सोडियम तथा पोटेशियम परासरणी प्रभाव द्वारा इन दो आयनों की सांद्रता के बाह्य तथा अंत:कोशिक द्रव्यों को रखने के लिए उत्तरदायी हैं। यह दोनों आयन झिल्ली के विभव (potential) का भी संधारण करते हैं। सोडियम तथा पोटेशियम आयन तंत्रिका कोशिकाओं में विद्युत आवेगों के संचालन के लिए भी आवश्यक है। यहां तक कि यह कैल्शियम तथा मैग्नीशियम तंत्रिका कोशिका तथा पेशियों की उत्तेज्यता को कम करते हैं। कोशिकाओं तथा बाह्य कोशिकाद्रवों, दोनों ही में द्विक्षारीय (HPO_4^{2-}) तथा एकक्षारीय फॉस्फेट ($H_2PO_4^-$) एक अम्ल क्षार 'बफर' के रूप में कोशिका के द्रवों की H^+ आयन सांद्रता बनाए रखने के लिए कार्य करते हैं।

जल

आप स्मरण कर सकते हैं कि जीवंत कोशिकाओं का 70-90 प्रतिशत भाग जल होता है। मानवों में शरीर का 2/3 भाग जल का बना होता है तथा इसका लगभग 55 प्रतिशत (20-22 लीटर) जल अंत:कोशिक जल के रूप में कोशिकाओं में विद्यमान रहता है शेष बाह्यकोशिक द्रवों जैसे रक्त, ऊतक, द्रव तथा लसीका के रूप में पाया जाता है।

जल एक सूक्ष्मध्रुवीय अणु है जो झिल्लियों द्वारा शीघ्रता से निकल जाता है। आप स्मरण करें कि जल के अणु में विपरीत ध्रुवता वाले ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन एवं हाइड्रोजन परमाणु किस प्रकार हाइड्रोजन बंधों द्वारा जुड़े रहते हैं (चित्र 2.4 ख देखें)। दो जल अणुओं के ऋण विद्युती ऑक्सीजन आपस में एक हाइड्रोजन के साथ एक हाइड्रोजन बंध द्वारा जुड़ जाते हैं। इस प्रकार अनेक जल अणु हाइड्रोजन बंधों से बंध कर अल्पकालिक बृहत्अणु समूह की रचना करते हैं। इस प्रकार अनेक जल अणुओं के हाइड्रोजन बंध मिल कर जाल-सम संरचना (lattice structure) बनाते हैं। जल अणुओं के बीच शीघ्र गति से हाइड्रोजन बंधों के बनने तथा वियोजन के कारण इसकी तरलता बनी रहती है।

जल सजीवों में विलायक का काम करता है। पानी में घुलने के लिए किसी विलेय अणु को जल के साथ हाइड्रोजन बंध निर्माण करना आवश्यक है जिससे वह इस जाल-सम संरचना से जुड़ जा सके। विलेयों के जलरागी (hydrophilic) ध्रुवीय समूह जल के अणुओं के साथ हाइड्रोजन बंध बना सकते हैं। इस प्रकार ध्रुवीय अणु हाइड्रोजन बंधन की जाल-सम संरचना से जुड़ कर पानी में घुल जाते हैं। जल की यह विलायक क्षमता घुले हुए ध्रुवीय विलेयों जैसे कि ग्लूकोस को कोशिका-द्रव्य में समान रूप से विसरित कर देती है और यह बाह्यकोशिकीय तरलों में संवाहित हो जाते हैं। किंतु जलरोधी (hydrophobic) अध्रुवी समूह जल की जाल-सम संरचना से संबद्ध नहीं होते हैं। इसलिये वसाओं जैसे अध्रुवीय अणु जल में नहीं घुलते और इन्हें ध्रुवीय अणुओं के साथ जल में संवाहित होना पड़ता है।

जल अणु-संबंध आकृतियों को बनाए रखता है तथा जीवंत पदार्थ के संरचनात्मक संगठन को स्थिर रखता है। शरीर के जलीय तरलों में प्रोटीन तथा न्युक्लीक अम्ल वलयित तथा कुंडलित हो जाते हैं। जिससे विशेष त्रिविमय आकारों की स्थापना होती है जो जीव-वैज्ञानिक अभिक्रियाओं के लिए उपयुक्त हैं। जल तथा फास्फोलिपिड अणुओं की पारस्परिक क्रिया अणुओं को झिल्ली की लिपिड द्विपरत में व्यवस्थित करती हैं। तापक्रम पर निर्भर करते हुए जल का आयन सूक्ष्म परंतु महत्त्वपूर्ण स्तर तक H^+ एवं OH^- के रूप में आयनीकृत होता है। प्रोटीन, न्युक्लीक अम्ल तथा फास्फोलिपिड जल को या जल से H^+ प्राप्त करके अथवा देकर विशेष आयनिक स्थिति धारण कर लेते हैं। कोशिकाओं के जलीय माध्यम में खनिज लवण भी आयनित होते हैं। ऐसी घुलनक्षमता धारण करने के कारण जल रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए एक आदर्श माध्यम बनाता है। विलयित अणु तथा आयन अंत:मिश्रित होकर आपस में निकट संबंध बनाते हैं। जल एक अभिकर्मक है तथा बहुत-सी जैवरासायनिक अभिक्रियाओं के लिए H^+ तथा OH^- का साधन भी। प्रकाशसंश्लेषण क्रिया में जल पर्णहरितों को इलेक्ट्रॉन प्रदान करता है तथा आण्विक ऑक्सीजन के लिए ऑक्सीकरण करता है।

जल किसी भी जीव में अंत:वातावरण की सततता बनाए रखने में सहायता करता है। कुछ द्रव्य जो अम्लों अथवा क्षारों को बाह्यकोशिक द्रव्य के रूप में निष्क्रिय करने में समर्थ है, कोशिकी

द्रव्य में घुले रहते हैं जैसे बाईकार्बोनेट (HCO_3), कार्बोनिक अम्ल, डाइबेसिक फॉस्फेट (HPO_4^{2-}) तथा मोनोबेसिक फॉस्फेट ($H_2PO_4^-$)। अम्ल तथा क्षार इन द्रव्यों के साथ शरीर के तरलों में मिले रहते हैं तथा इनके द्वारा निष्क्रिय कर दिए जाते हैं। विलायक क्रिया के कारण जल pH भी स्थिर बनाए रखने में सहायक है। इसका सापेक्ष ताप (specific heat) एवं संचरण क्षमता (mobility) ऊष्मा को पूर्ण शरीर में समान वितरण करने में सहायता करती है। जल के वाष्पीकरण की उच्च गुप्त ऊष्मा (latent heat) के कारण अतिरिक्त ऊष्मा स्वेद के वाष्पीकरण द्वारा निकाल दी जाती है जिससे शरीर का ताप निश्चित रहता है। मूत्र द्वारा अपशिष्ट उत्पादों का निष्कासन कर समस्थापन अथवा होमोओस्टेसिस की स्थिति बनाए रखने में सहायता करता है।

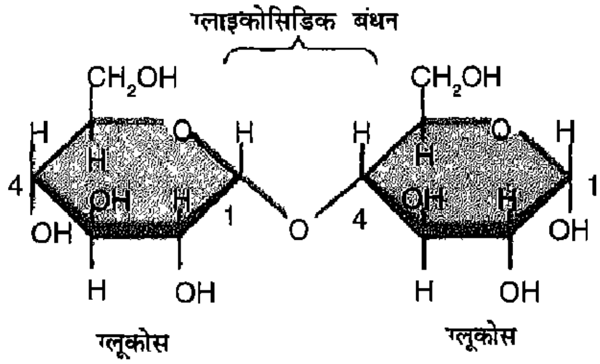
10.2 कार्बनिक यौगिक

कार्बनिक अथवा जैविक अणु सूक्ष्म तथा सरल हो सकते हैं। अधिकांशत: यह सरल अणु एकत्र होकर विशाल और जटिल अणु बनाते हैं जो बृहत्अणु (macromolecules) कहलाते हैं। यह मुख्यत: चार कुलों के हैं। **कार्बोहाइड्रेट**, **लिपिड**, **प्रोटीन** तथा **न्यूक्लीक अम्ल**, लिपिड के अतिरिक्त सभी बृहत्अणु **बहुलीकरण** प्रक्रिया द्वारा बनाए जाते हैं। जिसमें पुनरावृती **एकलक** एकक विभिन्न लंबाइयों की शृंखलाओं में बंधित रहते हैं। एकलकों की यह शृंखलाएं, **बहुलक** (polymers) कहलाती हैं। बृहत्अणुओं का विशाल आकार तथा जटिल त्रिविमतीय बनावट उनको संरचनात्मक घटकों, आणविक संवाहक, शक्तिसाधन, एंजाइम, खाद्य भंडारण तथा आनुवंशिक सूचना के स्रोत के रूप में कार्य करने हेतु सक्षम बनाती है।

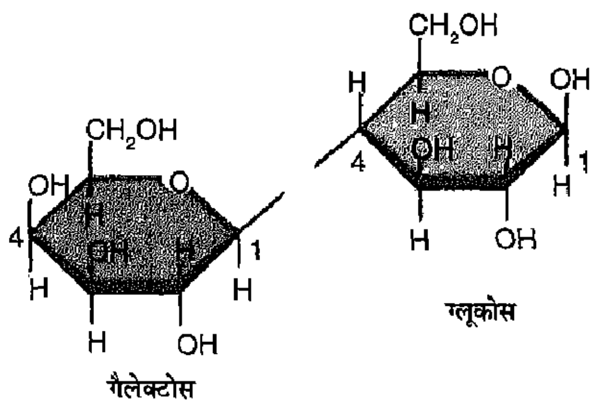
कार्बोहाइड्रेट

कार्बोहाइड्रेट, कार्बन तथा जल का सम्मिश्रण होते हैं। यद्यपि कार्बोहाइड्रेटों को एक सामान्य सूत्र $(CH_2O)_n$, जिसमें n एक का परास 3-7 है, द्वारा दर्शाया जा सकता है। कुछ कार्बोहाइड्रेट सल्फर तथा नाइट्रोजन के अतिरिक्त अणु भी धारण किए होते हैं। इन अणुओं में कार्बन, शृंखला अथवा वलय के रूप में होते हैं जिसमें दो या अधिक हाइड्रोक्सिल समूह तथा एक ऐल्डीहाइड अथवा एक कीटोन समूह होते हैं। अत: उन्हें तकनीकी परिभाषा बहुहाइड्रॉक्सी, एल्डीहाइड (polyhydroxy aldehyde) अथवा कीटोन द्वारा संबोधित किया जाता है।

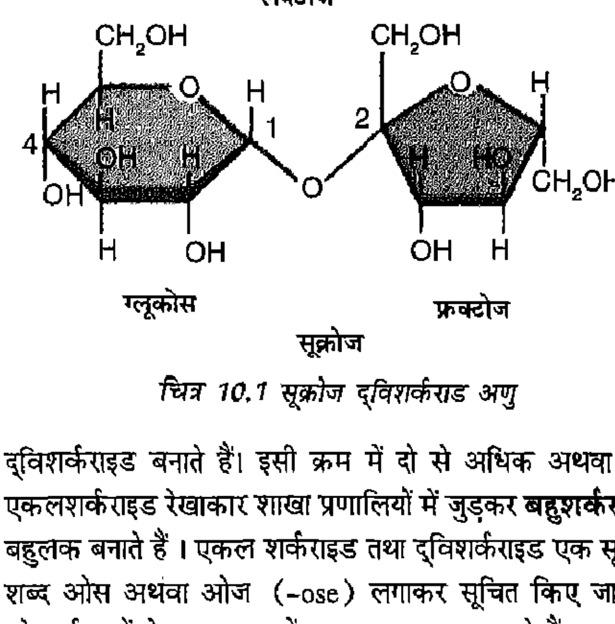
यह अणु अत्यधिक विविध आकृतियों में पाए जाते हैं। सामान्य नाम **चीनी** (शर्करा) एक सरल कार्बोहाइड्रेट जैसे एक **एकलशर्कराइड** अथवा **द्विशर्कराइड** के लिए दिया गया है जिसका स्वाद मीठा होता है। यह एकलशर्कराइड जिसमें ऐसा सरल बहुहाइड्रॉक्सी-एल्डीहाइड अथवा कीटोन है जिसमें 3-7 कार्बन विद्यमान होते हैं (चित्र 10.1)। दो एकलशर्कराइड अणु मिलकर



माल्टोज



लेक्टोज



सूक्रोज

चित्र 10.1 सूक्रोज द्विशर्कराइड अणु

द्विशर्कराइड बनाते हैं। इसी क्रम में दो से अधिक अथवा कई एकलशर्कराइड रेखाकार शाखा प्रणालियों में जुड़कर **बहुशर्कराइड** बहुलक बनाते हैं। एकल शर्कराइड तथा द्विशर्कराइड एक सूचित शब्द ओस अथवा ओज (-ose) लगाकर सूचित किए जाते हैं जो शर्कराओं के कुछ लक्षणों का आभास प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए हेक्सोज 6 कार्बनों का बना होता है, तथा पेंटोस 5 कार्बनों को धारण करता है। ग्लूकोस फलों की शर्करा है तथा जाइलोज एक पेंटोस है जिसे यह नाम ग्रीक शब्द साइलोन (xylon, काष्ठ) के लिए दिया गया है। इसलिए द्विशर्कराइड भी इसी भांति नामित हैं; दुग्ध शर्करा लेक्टोज, दुग्ध का एक मुख्य संघटक है; **माल्टोज**

का अर्थ माल्ट शर्करा है तथा **इक्षु शर्करा** (Sucrose) सामान्य खाने वाली शर्करा (cane sugar) है।

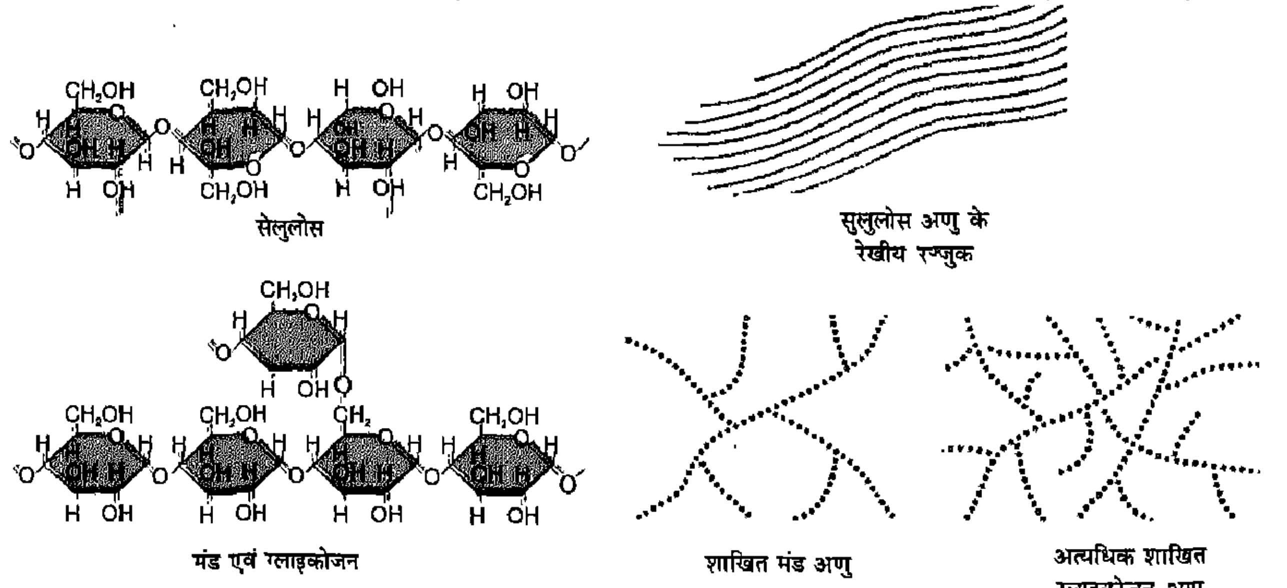
कार्बोहाइड्रेट बंध

द्विशर्कराइड तथा बहुशर्कराइड ग्लाइकोसाइडी बंधों के द्वारा जुड़े होते हैं जिनमें समीपी शर्करा एकक के हाइड्रोक्सी ऑक्सीजन अणु से एक शर्करा एकक का कार्बन जुड़ा होता है उदाहरणार्थ माल्टोज तब बनता है जब प्रथम ग्लूकोस क्रमसंख्या एक का कार्बन द्वितीय ग्लूकोस के चौथे कार्बन से मिलकर बंध बनाता है और इक्षु शर्करा (sucrose) के निर्माण में जब ग्लूकोस तथा फलशर्करा-फ्रक्टोज क्रमशः अपने (1) तथा (2) कार्बनों के बीच मिलते हैं। इसी प्रकार दुग्धशर्करा के बनने में ग्लूकोस तथा गेलेक्टोस (1) तथा (4) कार्बन में मिलते हैं। यह बंध बनाने के लिए एक कार्बन अपना OH समूह छोड़ता है तथा दूसरा OH समूह से हाइड्रोजन मुक्त करता है। और एक जल अणु मुक्त होता है अतः यह अभिक्रिया **निर्जलीकरण संश्लेषण** कहलाती है अधिकतर बहुलक अभिक्रियाओं में यह एक सामान्य प्रक्रिया है। तीन बहुशर्कराइड (मंड, सेलुलोस तथा ग्लाइकोजन) संरचनात्मक रूप के साथ जैव रासायनिकी के लिए सुस्पष्ट होते हैं। यद्यपि सभी एकल शर्कराइड ग्लूकोस के बहुलक हैं (चित्र 10.2)। उनकी भिन्नताओं के आधार प्रथमतया सीधे ग्लूकोस अणुओं को साथ-साथ परिबद्ध होने में दिखाई पड़ते हैं। जो अंतिम उत्पाद पर लक्षणों को अधिकतम प्रभावित करते हैं। प्रत्येक प्रकार के सहसंयोजी आबद्ध का संश्लेषण तथा विखंडन विशेष एंजाइम द्वारा किया जाता है।

बहुशर्कराइडों के कार्य

बहुशर्कराइड मूलतः संरचनात्मक अवलंब तथा सुरक्षा में योगदान करते हैं तथा खाद्यान्न एवं शक्ति भंडारक के रूप में कार्य करते हैं। पादपों में कोशिका भित्ति तथा बहुत-से सूक्ष्मदर्शी शैवाल, सेलुलोस से शक्ति तथा दृढ़ता प्राप्त करते हैं। अपनी इस भूमिका के कारण सेलुलोस संभवतः पृथ्वी पर सबसे सामान्य कार्बनिक पदार्थ है और कुछ कीटाणु, कवक तथा आदिजीवी ही इसे पचा सकते हैं। अन्य संरचनात्मक बहुशर्कराइड एमीनो अम्लों के नाइट्रोजन क्षारों, लिपिडों या प्रोटीनों से संयुग्मित हो सकते हैं। ठोस संवर्धन माध्यम बनाने के लिए **ऐगार** एक अनिवार्य बहुशर्कराइड है जो कुछ समुद्री शैवालों का संघटक है। यह गेलेक्टोज तथा सल्फरधारी कार्बोहाइड्रेट का एक जटिल बहुलक है। क्रस्टेशियन तथा कीटों के बाह्य कंकाल और कुछ कवकों की कोशिका भित्ति काइटिनधारी होती है जो ग्लूकोसअमीन का बहुलक है। पेप्टाइडोग्लाइकेन एक विशेष प्रकार का सम्मिश्रण है जिसमें बहुशर्कराइड (glycans) पैप्टाइड खंडों (अमीनो अम्लों की लघु शृंखला) से जुड़े रहते हैं। यह अणु, जीवाणुओं की कोशिका भित्ति के संरचनात्मक आधार का मुख्य स्रोत है। ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं के कोशिका आवरण में भी वसाबहुशर्कराइड होता है। जो लिपिडों तथा बहुशर्कराइडों का एक सम्मिश्रण होता है तथा ज्वर तथा आघात-समलक्षण प्रेरित करने के लिए उत्तरदायी हो सकता है।

बहुत-सी कोशिकाओं को बाह्य धरातल पर विविध प्रकार की प्रोटीनों से आलेप किए हुए बहुशर्कराइड का बना कोमल शर्करा लेपन रहता है। यह सम्मिश्रण म्यूकोप्रोटीन अथवा ग्लाइकोप्रोटीन कहलाता है और यह संरचना **ग्लाइकोकेलिक्स** कहलाती है। यह संरचना अन्य कोशिकाओं के साथ संपर्क अथवा उन संसूचकों के धरातली अणुओं के स्थल की भांति कार्य करती है जो बाहरी उत्तेजना को प्राप्त करने तथा उसका प्रत्युत्तर देने के लिए उत्तरदायी है। लघुशर्करा अणु मानव रक्त के प्रकार के साथ-साथ विभेदन दर्शाते हैं, तथा कार्बोहाइड्रेट तथा बृहद् प्रोटीन अणुओं के बने होते हैं जो **प्रतिरक्षी** (antibody) कहलाते हैं। बहुत-से जीवाणु रक्षात्मक



चित्र 10.2 मंड एवं ग्लाइकोजन

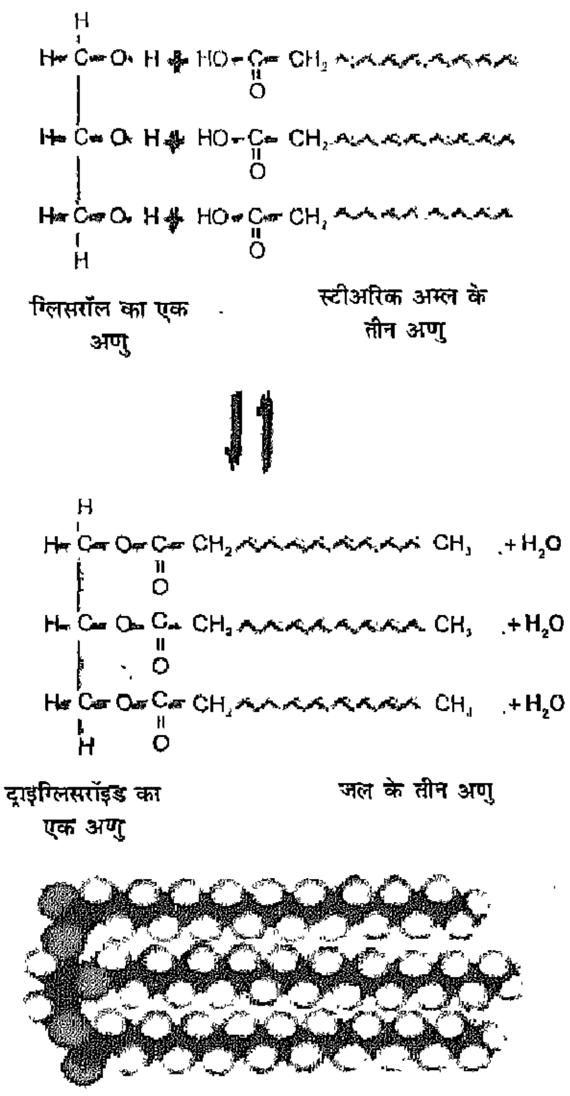
बहुशर्कराइड संपुटिका से लेपित होते हैं जो उनकी संक्रमणता में योगदान करती है। कुछ विषाणु ग्लाइकोप्रोटीनधारी होते हैं जो आसंजन करके अपनी अतिथेय कोशिका पर आक्रमण कर देते हैं। बहुशर्कराइड बहुधा कोशिकाओं द्वारा ग्लूकोस बहुलक जैसे **मंड** अथवा **ग्लाइकोजन** के रूप में भंडारित किए जाते हैं। किंतु मात्र उन जीवों में जिनमें उचित पाचक एंजाइम विद्यमान होते हैं, इनको तोड़कर पोषण स्रोत के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। चूंकि दो ग्लूकोस अणुबंधों को तोड़ने के लिए एक जल अणु चाहिए, अतः यह प्रक्रिया **जल अपघटन** (*hydrolysis*) भी कहलाती है। मंड हरे पादपों, सूक्ष्मदर्शिक शैवालों तथा कवकों का प्राथमिक भंडारित भोजन है। ग्लाइकोजन (पशु मंड) पशुओं तथा कुछ जीवाणुओं और कवकों में भंडारित कार्बोहाइड्रेट है।

लिपिड

यह तकनीकी नाम ग्रीक शब्द *लिपोस* से लिया गया है जिसका अर्थ वसा है। यह कार्यकारी नाम ऐसे विविध पदार्थों के लिए है जो ध्रुवीय विलायकों जैसे जल में तो नहीं घुलते लेकिन बेंजीन, ईंधन एवं क्लोरोफार्म जैसे अध्रुवी विलेयकों में सरलता से घुल जाते हैं। यह इसलिए होता है कि लिपिडों में अपेक्षाकृत लंबी और जटिल हाइड्रोकार्बन शृंखलाएं होती हैं, जो अध्रुवी होती हैं और जल-रोधी यौगिकों के वे मुख्य समूह जिन्हें तीन प्रकार के लिपिडों **ट्राइग्लिसरॉइड, फॉस्फोलिपिड, स्टीरॉइड** तथा **मोम** में वर्गीकृत किया गया है।

ट्राइग्लिसरॉइड

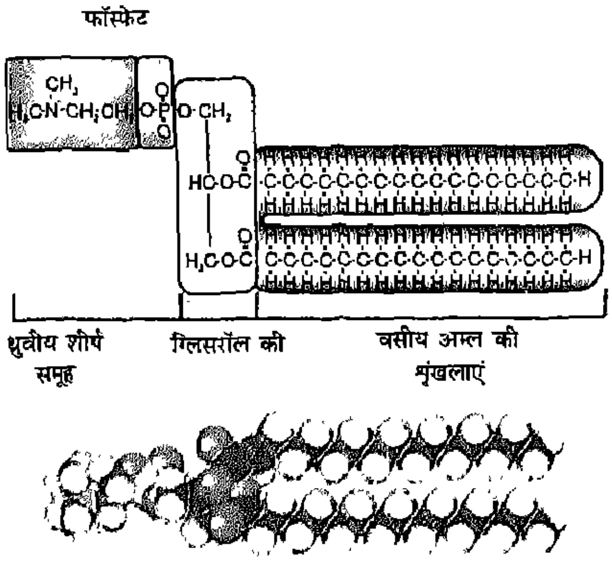
भंडारित लिपिडों का एक समूह ट्राइग्लिसरॉइड है जिसके अंतर्गत **वसाएं** तथा **तेल** आते हैं। यह मात्र एक ग्लिसरॉल अणु से संगठित होते हैं जो तीन वसीय अम्लों से बंधा होता है (चित्र 10.3)। **ग्लिसरॉल** तीन कार्बनधारी अल्कोहल है तथा इसमें तीन OH समूह होते हैं जो बंधन स्थलों के रूप में कार्य करते हैं। **वसीय अम्ल** लंबी शृंखला वाले हाइड्रोकार्बन अणु होते हैं जिनके एक सिरे पर कार्बोक्सिल समूह (COOH) विद्यमान होता है जो ग्लिसरॉल के OH समूहों में से एक से बंधन कर एक ऐस्टर बंध का निर्माण करता है। वसीय अम्ल का हाइड्रोकार्बन भाग लंबाई में 4–24 कार्बनों से बना हो सकता है। वसा संतृप्त या असंतृप्त हो सकती है, यदि शृंखला में कार्बन एकल बंधित है तो वसा संतृप्त होती है। यदि कम से कम एक C=C शृंखला में द्विबंध है तो ऐसी स्थिति में वसा असंतृप्त होती है। वसीय अम्लों की संरचना उनकी शारीरिक वसा तथा तेलों (द्रव-वसाओं) के लिए उत्तरदायी है जो चिकने तथा अघुलनशील हैं। अधिकांश ठोस वसाएं संतृप्त होती हैं जब कि तेल असंतृप्त होते हैं। अधिकतर कोशिकाओं में लंबे समय के लिए ट्राइग्लिसरॉइड सांद्रण रूप में जैसे बिंदुक या गोलिकायों के रूप में भंडारित किए जाते है।



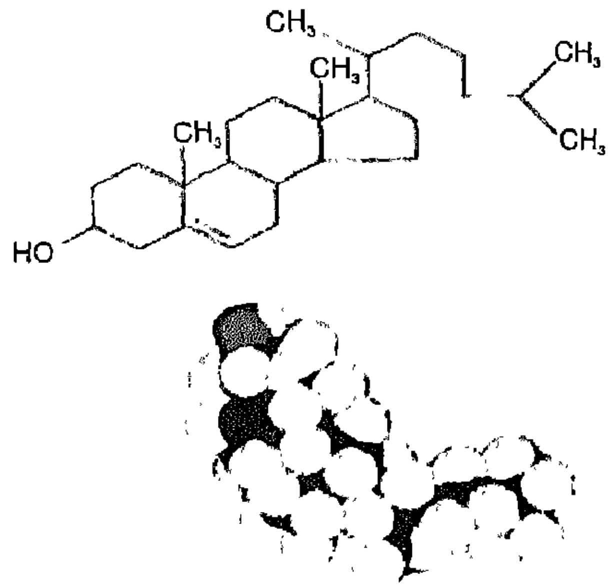
चित्र 10.3 ट्राइग्लिसरॉइड अणु

कला लिपिड

लिपिडों का एक वर्ग फॉस्फोलिपिड है, जो कोशिका-कलाओं का मुख्य संरचनात्मक संघटक है। यद्यपि फॉस्फोलिपिड ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्लों को धारण करने में ट्राईग्लिसरॉइड के समान ही हैं फिर भी इनमें कुछ विशेष भिन्नताएं भी हैं। फॉस्फोलिपिड मात्र दो वसीय अम्ल धारण करते हैं जो ग्लिसरॉल से जुड़े हैं जबकि तृतीय ग्लिसरॉल बंध स्थल फॉस्फेट समूह से जुड़ा है (चित्र 10.4)। यह फॉस्फेट (क्रमशः) एक अल्कोहल से बंध करता है। यह लिपिड फॉस्फोरिक अम्ल/अल्कोहल अणुओं के 'शीर्ष' पर आवेशित होने तथा अणुओं की लंबी वसीय अम्लों द्वारा बनी पूंछ पर न्यून आवेश के कारण जलरागी तथा जलरोधी दोनों क्षेत्र धारण किए रहते हैं। जब यह किसी जलीय घोल की ओर अनावृत होते हैं तो आवेशित शीर्ष जल की ओर आकृष्ट



चित्र 10.4 फॉस्फोलिपिड



चित्र 10.5 कोलेस्टेरॉल

होते हैं और अध्रुवी पुच्छिकाएं जलीय प्रावस्था के प्रति प्रतिकर्षण दर्शाती हैं। जिस प्रकार लिपिड प्राकृतिक रूप से एकल तथा द्विपरती (bilayered) आकृति धारण कर लेते हैं, वे कोशिका कलाओं के प्राथमिक ढांचे का बहुमूल्य घटक बन जाते हैं। क्योंकि जब दो एकल पर्तें द्विपर्ती बनाने के लिए पास-पास आती हैं तो प्रत्येक एकल पर्त का बाह्य जलरागी मुख स्वतः ही विलेयन अभिमुख हो जाएगा तथा जलरोधी भाग द्विपरती क्रोड में निमज्जित हो जाएगा। लिपिड द्विपरती की संरचना कला के चयनित पारगम्यता तथा तरल प्रकृति जैसे प्रकार्यों में सहायता करती है।

स्टीरॉइड

यह जटिल यौगिक है जो सामान्यतः कोशिका कला तथा प्राणिओं के हॉर्मोनों में पाए जाते हैं। इनमें सबसे सुपरिचित **टेरोल, कोलेस्टेरॉल** है (चित्र 10.5)। जो प्राणी कोशिकाओं तथा कोशिका भित्ति-विहीन जीवाणु समूह में, जो **माइकोप्लाज्मा** कहलाते हैं, कोशिका कला संरचना को भी सुदृढ़ बनाता है। कवकों की कोशिका कला भी **ऐर्गोस्टेरॉल** नामक स्टीरोल धारण करती है। **प्रोस्टेग्लेन्डिन** सूक्ष्म मात्रा में पाए जाने वाले वसा अम्ल व्युत्पन्न हैं जो शोथ, प्रत्युर्जति (एलर्जी) रक्त के थक्कों के निर्माण तथा चिकनी पेशियों के संकुचन की प्रतिक्रियाओं में सहभागिता करते हैं।

मोम

मोम लंबी शृंखला धारी अल्कोहल तथा संतृप्त वसीय अम्लों के बीच बनने वाले ऐस्टर हैं (चित्र 10.6)। यह पदार्थ तप्त होने पर पिघलकर लचीला किंतु ठंडा होने पर कठोर एवं जलरोधी होता है (उदाहरण के लिए पैराफिन)। फर, पंख, फल, पत्तियां, मानवीय त्वचा तथा कीटों के बाह्य कंकाल मोम के लेपन से प्राकृतिक रूप से ही जल अभेद्य हो जाते हैं। ऐसे जीवाणु जो तपेदिक एवं कोढ़ फैलाते हैं, डी-मोम उत्पन्न करते हैं, जो उनकी रोगजनकता (pathogenicity) में सहयोग प्रदान करता है।

$$\underset{\text{पामिटिक अम्ल}}{CH_3(CH_2)_{14}-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-OH} + \underset{\text{हेक्साकोसोनॉल}}{H-O-CH_2(CH_2)_{24}CH_3}$$

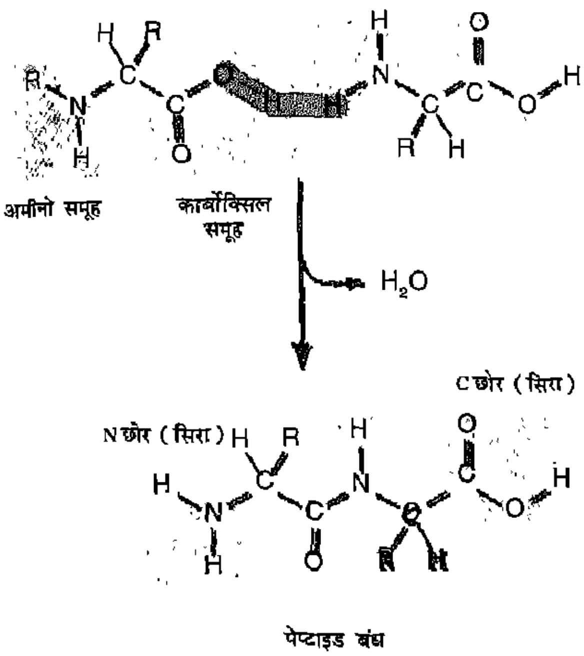
$$\downarrow -H_2O$$

$$\underset{\text{हेक्साकोसाइल पामिटेट}}{CH_3(CH_2)_{14}-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O-CH_2(CH_2)_{24}CH_3}$$

चित्र 10.6 मधुमक्खी का मोम

प्रोटीन

कोशिकाओं में सबसे प्रमुख जैविक अणु प्रोटीन होते हैं जो रासायनिक एवं भौतिक संरचना की दृष्टि से अत्यंत विविध होते हैं। इस तकनीकी शब्द को गेरैडस जोहेन्स मुल्डर (1802-1880) ने ग्रीक शब्द प्रोटेयोस जिसका अर्थ **"प्रथम स्थान"** होता है, से लिया था। सभी सजीवों की संरचना व्यवहार और विलक्षण गुण बड़ी सीमा तक उनमें विद्यमान प्रोटीनों की क्रियाशीलता पर निर्भर होते हैं। प्रोटीनों के निर्माण खंड **अमीनो अम्ल** होते हैं जो लगभग 20 विभिन्न प्राकृतिक रूपों में पाए जाते हैं। सभी अमीनो अम्लों में एक कार्बन का बना आधारकंकाल होता है, जो एक अमीनो अम्ल समूह (NH_2) एक कार्बोक्सिल समूह (COOH), एवं एक हाइड्रोजन परमाणु H से जुड़ा



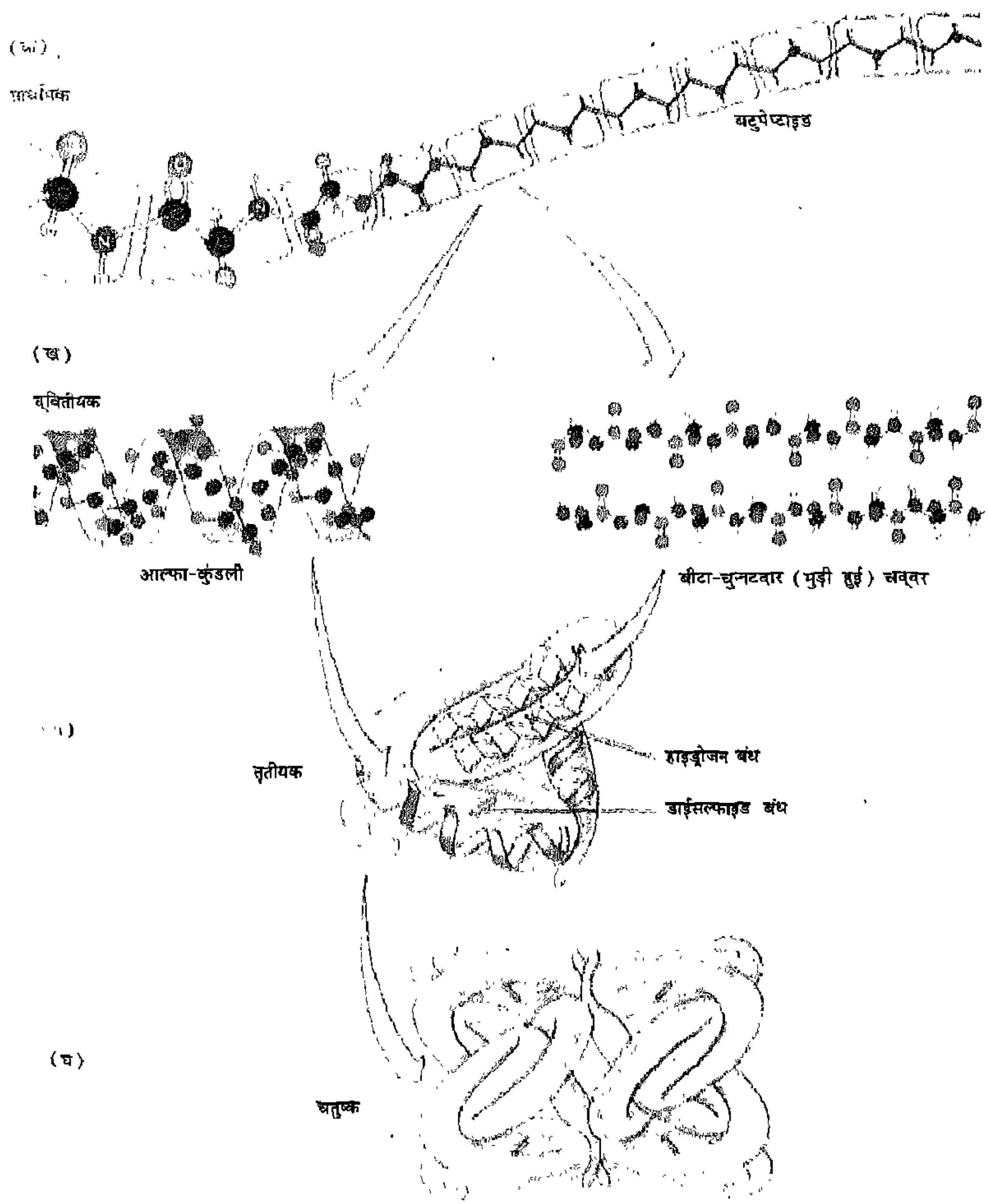
चित्र 10.7 पेप्टाइड बंध

होता है। अमीनों अम्लों में विविधताएं R समूह पर पाई जाती हैं, जो प्रत्येक अमीनो अम्ल समूह में भिन्न होता है और उस अणु एवं प्रोटीन को जो इसे धारण करती हैं, विशिष्ट लक्षण प्रदान करता है। एक अमीनो अम्ल के अमीनो समूह और दूसरे अमीनो अम्ल के कार्बोक्सिल समूह के बीच बनने वाला सहसंयोजक आबंध, **पेप्टाइड बंध** कहलाता है (चित्र 10.7)। इस प्रकार के आबंधन से यह संभव है कि ऐसे अणुओं का निर्माण किया जाए जो मात्र दो अमीनो अम्ल अथवा हजारों अमीनो अम्लों की एक शृंखला से बने होते हैं। वास्तव में पेप्टाइड उस अणु को कहते हैं जो अमीनो अम्लों की छोटी-सी शृंखला के रूप में विद्यमान होता है, जैसे द्विपेप्टाइड (दो अमीनो अम्ल धारी), ट्राईपेप्टाइड (तीन अमीनो अम्लधारी) तथा टेट्रापेप्टाइड (चार अमीनो अम्लधारी)। किसी भी **बहुपेप्टाइड** में अमीनो अम्लों की संख्या अगणित होती है जो अधिकतर 20 से अधिक होते हैं। और यह प्राय: किसी प्रोटीन का लघु उपएकक होता है। प्रोटीन इस वर्ग के यौगिकों में सबसे बड़े होते हैं तथा साधारणत: 50 अमीनो अम्ल धारण करते हैं। बहुधा बहुपेप्टाइड तथा प्रोटीन शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग होते हैं यद्यपि सभी बहुपेप्टाइड इतने बड़े नहीं होते कि उन्हें प्रोटीन की संज्ञा दी जाए।

प्रोटीनों की संरचना

प्रोटीन राइबोसोमों के ऊपर संश्लेषित होते हैं जो अमीनो अम्लों की रेखाकार शृंखला के रूप में आपस में पेप्टाइड बंधों द्वारा आबद्ध होती हैं। संश्लेषण पूर्ण होने के तुरंत बाद प्रोटीन विशिष्ट त्रिविमीय आकारों में वलयित हो जाते हैं। वलय विधा के अनुरूप प्रोटीनों के चार स्तर स्वीकार किए जा चुके हैं (चित्र 10.8) जैसे **प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक** एवं **चतुष्क**। प्राथमिक प्रोटीन संरचना ठीक उसी प्रकार वर्णित होती है जिस प्रकार *शृंखला में अमीनो अम्लों के प्रकार, संख्या तथा* प्राथमिक संरचना का निर्धारण किया जाता है (चित्र 10.8क)। सर्वप्रथम जिस प्रोटीन के प्राथमिक संरचना का वर्णन किया गया वह इंसुलिन था। यह अग्नाशयी हॉर्मोन स्तनपोषियों में ग्लूकोस चयापचय को *नियंत्रित करता है। द्वितीय प्रोटीन संरचना अणु* के बाहरी धरातल पर उपस्थित विभिन्न कार्यकारी समूह अनावृत होकर हाइड्रोजन बंध का निर्माण होने के कारण बनती है। यह अमीनो अम्ल शृंखला अथवा पेप्टाइड के कुंडलीय समाकृति में घुमाए जाने के कारण बनती है और α-कुंडली कहलाती है अथवा यह सपाट β– चुन्नटदार चद्दर में बदल जाती है (चित्र 10.8 ख)। कुछ प्रोटीनों में दोनों प्रकार की द्वितीयक समाकृतियां होती हैं। तृतीयक प्रोटीन संरचना तब निर्मित होती है जब द्वितीयक स्तर के प्रोटीन घूमते हुए तृतीय अवस्था में मरोड़ लेते हैं। बाह्यत: तृतीयक संरचना कार्यकारी समूहों के बीच अतिरिक्त बंधों द्वारा बनती है। प्रोटीनों में सिस्टीन जैसे सल्फरधारी अमीनो अम्लों के साथ, अणु के दो विभिन्न भागों पर सल्फर अणुओं के बीच द्विसल्फाइड बंधों की सहसंयोजकता द्वारा तृतीयक स्थिरता प्राप्त की जाती है (चित्र 10.8 ग)। चतुष्क प्रोटीन संरचना कुछ जटिल प्रोटीनों द्वारा दर्शाई जा सकती है जिनमें एक से अधिक पॉलीपेप्टाइड एक बृहद् बहुएकक प्रोटीन बनाते हैं (चित्र 10.8 घ)। प्रोटीनों में चतुष्क संरचना जो दो या अधिक पॉलीपेप्टाइड शृंखलाओं की बनी होती है। एक-दूसरे के बारे में तथा इनकी पारस्परिक प्रकृति के बारे में इन शृंखलाओं का विशेष पूर्वाभिमुखीकरण दर्शाती है तथा इसे स्थायित्व प्रदान करती है। प्रोटीन की पॉलीपेप्टाइड एकल शृंखलाएं उपएकक कहलाती हैं, तथा सक्रिय प्रोटीन स्वयं बहुलक (multimeric) कहलाते हैं। अब तक 32 उपएकक तक के बने बहुलकी प्रोटीन बनाए जा चुके हैं। सबसे साधारण बहुलकी प्रोटीन, डाइमर्स, ट्राइमर्स, टेट्रामर्स, पैंटामर्स तथा डैकामर्स प्रकार के हैं।

अंत:शृंखला बंधनों तथा मरोड़ों का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि कोई भी प्रोटीन मात्र उसी अणु के साथ सक्रिय हो सकती है जो ताला-चाबी की भांति इसके विशेष धरातल आकार का पूरक या उसके अनुरूप है। विशेषता की यह अवस्था कई हजार विभिन्न कोशिकीय अभिक्रियाओं को वांछित कार्यकारी विविधता प्रदान कर सकती है। उदाहरण के लिए एंजाइम कोशिका में रासायनिक अभिक्रियाओं के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं तथा लगभग प्रत्येक

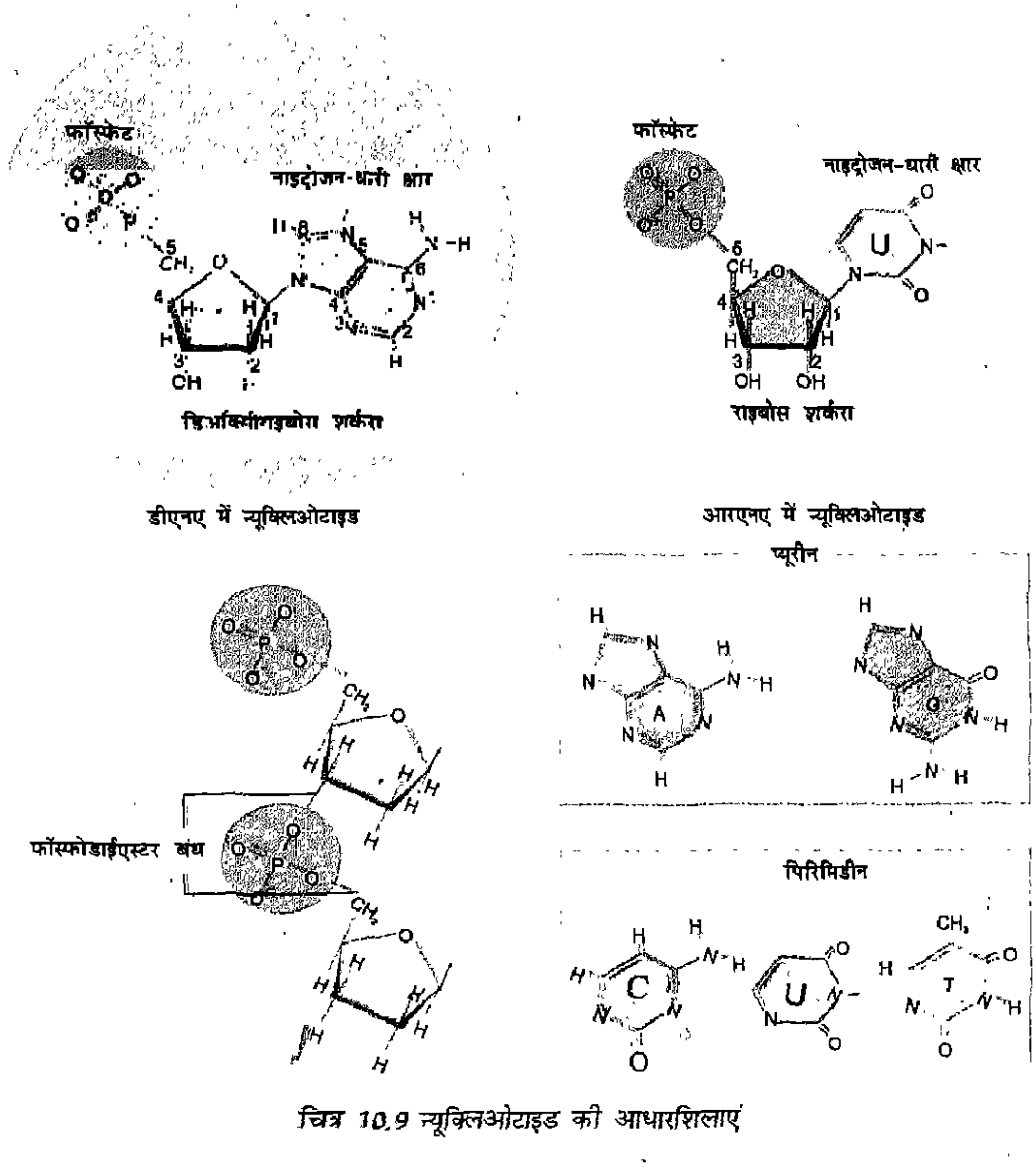


चित्र 10.8 प्रोटीन संगठन के स्तर : (क) प्राथमिक (ख) द्विवितीयक (ग) तृतीयक (घ) चतुष्क

अभिक्रिया को भिन्न एंजाइम की आवश्यकता होती है। प्रतिजीवी ऐसे ग्लाइकोप्रोटीन हैं जिनमें जीवाणुओं, विषाणुओं तथा अन्य सूक्ष्म जीवों के साथ संलग्न होने के लिए विशेष क्षेत्र होते हैं। जीवाणु आविष मात्र एक विशेष अवयव अथवा ऊतक पर ही सक्रिय होते हैं तथा कोशिका कला में सन्निहित प्रोटीनों का मात्र निश्चित पोषकों के लिए प्रतिक्रिया स्थान होता है। प्रोटीन की कार्यकारी त्रिविमीय आकारिकी **प्राकृतिक दशा** (native state) कहलाती है, और यदि यह किसी माध्यम द्वारा विघटित की गई है तो इस प्रोटीन को अप्राकृतिक कहा जाता है। साबुन, डिटर्जेंट, अम्ल, अल्कोहल तथा कुछ विसंक्रामक अंत:शृंखला बंधनों को विघटित कर देते हैं, जो अणुओं को क्रियाहीन बनाने में सहायक होते हैं।

न्यूक्लीक अम्ल

आपको यह ज्ञात है कि न्यूक्लीक अम्ल दो प्रकार के होते हैं, **डीऑक्सीराइबो न्यूक्लीक अम्ल** (DNA) तथा **राइबोन्यूक्लीक अम्ल** (RNA) (देखिए अध्याय 2)। यह (प्रथमत:) मूलत: कोशिका केंद्रक से पृथकित किए गए थे। उसके कुछ काल बाद इन्हें ऐसे जीवाणुओं तथा विषाणुओं में पाया गया जिनमें स्पष्ट केंद्रक नहीं होता है । सभी ज्ञात कोशिकाओं तथा विषाणुओं में केंद्रक अम्लों की सार्वभौम उपस्थित सूचना देने वाले अणुओं के रूप में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका पर बल देते हैं। डीएनए में विस्तृत तथा विशेष निदर्शों के साथ प्रत्येक जीव की विशिष्ट नियमबद्ध आनुवंशिक योजना समाहित होती है । हम यहां पर डीएनए, आरएनए तथा उनके संबंधी एटीपी (adenosine triphosphate) की संरचना और कार्यों के बारे में संक्षेप में विचार करेंगे। दोनों केंद्रक अम्ल **न्यूक्लिओटाइड** कहलाए जाने वाले एककों के पुनरावर्ती बहुलक हैं (चित्र 10.9)। जिनमें से प्रत्येक तीन लघु एककों; एक **नाइट्रोजन धारी क्षार**, **एक पेंटोस** (5 कार्बनधारी) **शर्करा** तथा एक **फॉस्फेट** का बना होता है। नाइट्रोजन चक्रित यौगिक हैं जो **प्यूरिन** (दो चक्री) तथा **पिरिमिडीन** (एकचक्री), दोनों में से किसी भी एक आकार में हो सकता है, **प्यूरिन** (Purine) दो प्रकार की होती है : **ऐडेनिन** (A) तथा **गुआनिन** (G) तथा **पिरिमिडीन** तीन प्रकार की होती हैं **थाइमीन** (T), **साइटोसीन** (C) तथा **यूरेसिल** (U)। डीएनए को आरएनए से भिन्नता दर्शाने वाला लक्षण है कि डीएनए **यूरेसिल** के अतिरिक्त सभी नाइट्रोजन क्षार धारण करता है जबकि आरएनए थाइमीन के अतिरिक्त सभी नाइट्रोजन क्षार धारण करता है। परंतु डीएनए तथा आरएनए के बीच सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर उनके शर्करा अणु में होता है। आरएनए में नाइट्रोजन क्षार सह-संयोजकता द्वारा राइबोस शर्करा से तथा डीएनए में डीऑक्सीराइबोस शर्करा, जिसमें राइबोस से एक ऑक्सीजन कम होती है, से जुड़ा रहता है।

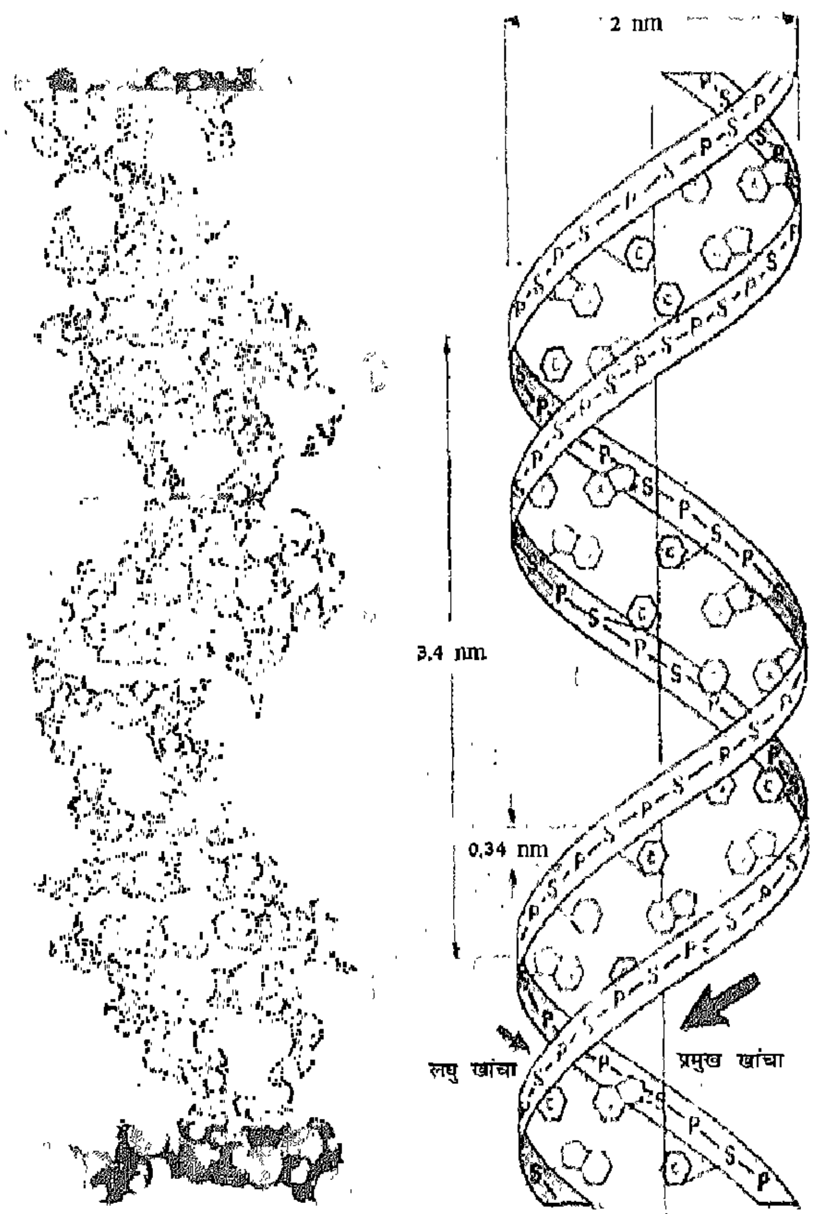


चित्र 10.9 न्यूक्लिओटाइड की आधारशिलाएं

फॉस्फेट, (PO_4^{3-}) फॉस्फोरिक अम्ल की व्युत्पति है, जो शर्करा अणु की शृंखला में जोड़ने वाला अंतिम संयोजक बंध प्रदान करता है। इस प्रकार की किसी न्युक्लीक अम्ल लड़ी का मुख्य भाग एकांतर क्रम में व्यवस्थित फॉस्फेट-शर्करा-फॉस्फेट शर्करा अणुओं की शृंखला है।

डीएनए की दुहरी कुंडली

डीएनए एक लंबा अणु है और दो ऐसी लंबी बहु न्यूक्लीओटाइडधारी लड़ियों द्वारा निर्मित होता है, जो आपस में हाइड्रोजन बंधों द्वारा जुड़ी रहती हैं। यह बंध नाइट्रोजन क्षारों के अनुपूरक युग्मों के बीच होते हैं (चित्र 10.10)। नाइट्रोजन क्षारों के बीच युग्मन एक क्रम के अनुसार होता है जिसमें एडेनीन थाइमीन के साथ दो हाइड्रोजन बंधनों (A = T) तथा साइटोसीन गुआनिन के साथ तीन हाइड्रोजन बंधनों (C ≡ G) के साथ युग्म करती हैं। डीएनए की लड़ियों की तुलना कभी-कभी ऐसी घुमावदार सीढ़ी से की जाती है जिसमें शर्करा-फॉस्फेट तो सीढ़ी के डंडे की भांति और युग्मित नाइट्रोजन क्षार, इसके सोपानों का कार्य करते हैं। न्यूक्लिओटाइड युग्मों तथा क्षारों के चट्टों के अनुक्रमण के कारण डीएनए की वास्तविक संरचना एक ऐसी दुहरी कुंडली है जो कुछ-कुछ सर्पिल (घूमती हुई) सीढ़ी जैसी दिखाई देती है। डीएनए की संरचना का इसके प्रकार्य से घनिष्ट संबंध है।



चित्र 10.10 डीएनए की दुहरी कुंडली संरचना

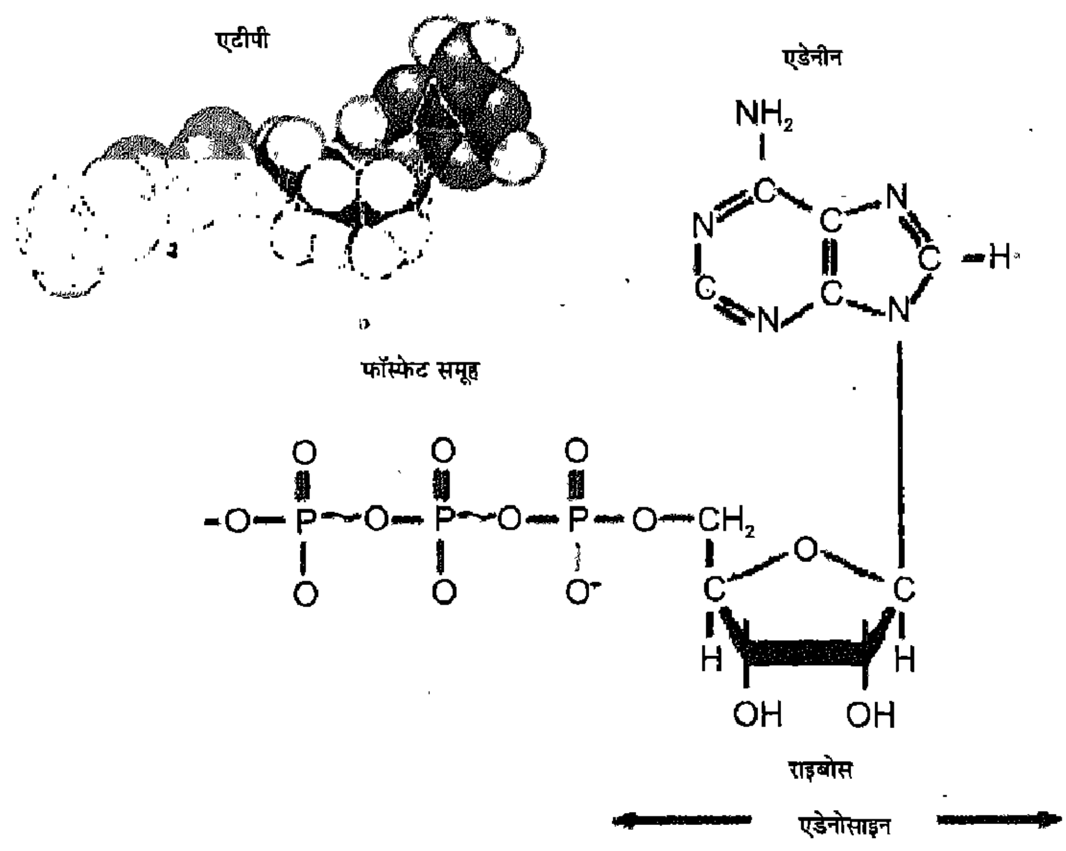
आरएनए डीएनए की भांति आरएनए भी न्यूक्लिओटाइडों की लंबी शृंखला का बना होता है, लेकिन आरएनए एक लड़ी से निर्मित, राईबोसशर्करा-युक्त तथा थाइमीन के स्थान पर यूरेसिल धारी होता है। डीएनए सांचा (template) का प्रयोग करते हुए कई प्रकार के कार्यशील आरएनए निर्मित होते हैं। विभिन्न प्रोटीन संश्लेषण के लिए मुख्यत: तीन प्रकार के आरएनए आवश्यक होते हैं। **संदेशवाहक आरएनए** (mRNA) जीन डीएनए की प्रति होती है और अमीनो अम्ल का ऐसा अनुक्रम देती हैं जो प्रोटीन में समाविष्ट होता है; **स्थानांतर आरएनए** (tRNA) एक संवाहक है जो प्रोटीन निर्माण के लिए सही प्रकार के अमीनो अम्ल प्रदान करता है तथा राइबोसोमी आरएनए (rRNA) जो राइबोसोमों का मुख्य संघटक है। इन आवश्यक अभिक्रियाओं के संबंध में अधिक जानकारी अध्याय 14 में दी गई है।

एटीपी (ATP)

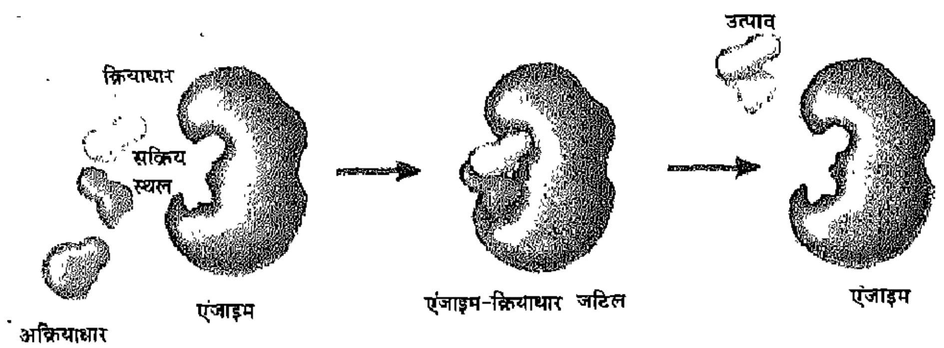
यह एडेनीन, राइबोज तथा तीन फॉस्फेट-धारी एक न्यूक्लिओटाइड है तथा **कोशिका का ऊर्जा अणु है** जो द्वितीय तथा तृतीय बंधनों के बीच वाले PO_4 के टूटते समय ऊर्जा मुक्त करने वाले उच्च ऊर्जा यौगिकों की श्रेणी में आता है (चित्र 10.11)। इन उच्च ऊर्जा बंधकों के कारण एटीपी कोशिकीय रासायनिक प्रतिक्रियाओं के लिए ऊर्जा एकत्र और मुक्त करना संभव होता है। तीसरे फॉस्फेट का जल विदलन कोशिकीय कार्यों के लिए मात्र ऊर्जा ही नहीं छोड़ता, वरन् एडोनोसाइन डाइफॉस्फेट भी उत्पन्न करता है। एडीपी (ADP) तीसरे फॉस्फेट के पुन: स्थापित होते ही पुन: एटीपी में रूपांतरित हो सकती है तथा इस प्रकार यह ऊर्जा भंडार अथवा ऊर्जा मुद्रा का कार्य करती है। न्युक्लियोटाइड प्राय: ट्राइफॉस्फेट के रूप में आरएनए तथा डीएनए संश्लेषण में उपयुक्त होते हैं।

एंजाइम

कभी-कभी किसी पदार्थ की छोटी-सी मात्रा भी रासायनिक प्रतिक्रिया की दर (गति) पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। प्रतिक्रिया के अंत तक यह वस्तु समाप्त होती या बदलती नहीं। ऐसे पदार्थ **उत्प्रेरक** (catalyst) कहलाते हैं और यह परिघटना **उत्प्रेरण** (catalysis)। यदि प्रतिक्रिया की गति बढ़ जाती है तो यह धनात्मक कहलाती है और यदि यह घट जाती है तो ऋणात्मक। जैविक (कार्बनिक) तथा अकार्बनिक दोनों ही प्रकार के पदार्थ उत्प्रेरक



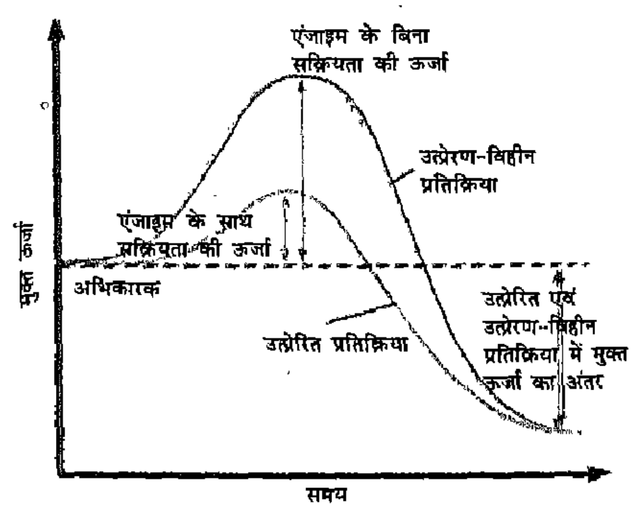
चित्र 10.11 एडेनोसाइन ट्राइफॉस्फेट-उच्च ऊर्जा अणु



चित्र 10.12 एंजाइम की क्रिया ताला एवं कुंजी क्रियाविधि

की भूमिका निभा सकते हैं। कोशिका में प्रतिक्रिया की दर तथा दक्षता कुछ विशेष अणुओं के ऊपर निर्भर करती है जो **एंजाइम** कहलाते हैं तथा कोशिका द्वारा संश्लेषित किए जाते हैं। एंजाइम जैविक उत्प्रेरक होते हैं। प्रत्येक कोशिका के डीएनए में इसके द्वारा वांछित सभी एंजाइमों के उत्पादन के लिए आवश्यक सूचना (आधार) विद्यमान होता है। किसी भी समय में ऐसे एंजाइमों का उत्पादन करने के लिए जिनकी आवश्यकता उन विशिष्ट प्रतिक्रियाओं को होती है, कोशिका इस सूचना का उपयोग करती है। एंजाइम जीवंत कोशिकाओं द्वारा संश्लेषित किए जाते हैं लेकिन वे कोशिकाओं में से निष्कर्षण के उपरांत भी अपनी उत्प्रेरण क्षमता बनाए रखते हैं। रेनेट की गोलियों का उपयोग (जिनमें बछड़े के पेट से प्राप्त एंजाइम रेनेन विद्यमान होता है), लंबे समय से केज़ीन (दूध को जमाकर पनीर) प्राप्त करने के लिए प्रयोग होता रहा है जिसे खाद्य सामग्रियों सहित विभिन्न प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। यद्यपि अधिकांश एंजाइम प्रोटीन होते हैं लेकिन सभी प्रोटीन एंजाइम नहीं होते। अधिकांश एंजाइमों में एक प्रोटीन-विहीन भाग **प्रोस्थेटिक समूह** (Prosthetic group) होता है जो एंजाइम के साथ मजबूती से जुड़ा रहता है। कुछ प्रोस्थेटिक समूह धातुओं के यौगिक होते हैं उदाहरणार्थ साइटोक्रोमों के प्रोस्थेटिक समूह के रूप में लौह-पोरफाइरीन सम्मिश्र कार्य करते हैं। साथ-साथ कुछ कार्बनिक यौगिक एवं अकार्बनिक आयन भी एंजाइम की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक होते हैं। यह एंजाइम के साथ अपेक्षाकृत शिथिलता से जुड़े होते हैं और **सह-कारक** (co-factors) कहलाते हैं। निकोटिनिक अम्ल (नियासीन) का पूर्वगामी, निकोटिनेमाइड ऐडेनिन डाईन्यूक्लीओटाइड (NAD) और विटामिन B_2 (राइबोफ्लेविन) का क्रियाशील रूप, फ्लेविन एडेनिन डाईन्यूक्लिओटाइड (FAD) माइटोकॉन्ड्रिया के कई आक्सीकारक एंजाइमों के जैविक सह-कारक अथवा **सह-एंजाइम** (coenzyme) हैं। कुछ धातुएं विशेषत: सूक्ष्ममात्रा में पाई जाती हैं, वे भी एंजाइम की प्रतिक्रिया को अग्रसर करती है उदाहरणार्थ लौह (Fe^{++}) केटेलेज की क्रिया को उत्प्रेरित करने वाला सह-कारक है।

सभी एंजाइमों की विशिष्ट त्रिविम संरचना होती है, जिसका एक भाग **सक्रिय स्थल** (active site) कहलाता है। एक एंजाइम में एक से अधिक सक्रिय स्थल विद्यमान हो सकते हैं। सक्रिय स्थल ताले (lock) की भांति कार्य करता है जिसमें अभिकारक (reactant), जो सामान्यत: **क्रियाधार** (substrate) कहलाता है, चाबी (key) की भांति उपयुक्त रूप में बैठ जाता है (चित्र 10.12)। वह बिंदु जिस पर क्रियाधार, क्रियाधारक स्थल से जुड़ता है, क्रियाधार-बंधक स्थल (Substrate-binding site) कहलाता है। क्रियाधार बंधन के फलस्वरूप क्रियाशीलता ऊर्जा में कमी आती है और प्रतिक्रिया अग्रसर होने लगती है (चित्र 10.13)। प्रतिक्रिया के पूर्ण हो जाने पर एंजाइम **उत्पादों** को अवमुक्त कर देता है और एक बार पुन: उत्प्रेरक के रूप में कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता है। एंजाइम कितनी तेजी से कार्य करते हैं इसका अनुमान इस संज्ञान से लगाया जा सकता है कि कार्बोनिक एनहाइड्रेज जो ज्ञात एंजाइमों में सर्वाधिक द्रुतगामी है, का मात्र एक अणु प्रति मिनट 36 मिलियन (36×10^6) कार्बन डाईऑक्साइड अणुओं का जलयोजन करता है।



चित्र 10.13 सक्रियकारक ऊर्जा

$$CO_2 + H_2O \xrightarrow{\text{कार्बोनिक एनहाइड्रेज}} H_2CO_3$$

उत्प्रेरित प्रतिक्रिया, उत्प्रेरण-विहीन प्रतिक्रिया की तुलना में एक करोड़ (10^7) गुना तेज होती है।

एंजाइमों के गुण

विशिष्टता

प्रत्येक एंजाइम एक विशिष्ट क्रियाधार अथवा विशिष्ट क्रियाधारों के समूह के परिवर्तन को ही उत्प्रेरित कर सकता है। क्रियाधार के प्रति विशिष्टता को सरलतापूर्वक दर्शाया जा सकता है।

आदर्श तापक्रम

एंजाइम सामान्यत: तापक्रम के एक ऐसे लघु परास में कार्य करते हैं जो जीव के शरीर के तापक्रम से सामीप्य दर्शाता है। उदाहरणार्थ मानवीय एंजाइम सामान्य शारीरिक तापक्रम पर कार्य करते हैं। प्रत्येक एंजाइम की अधिकतम क्रियाशीलता एक विशेष तापक्रम पर ही रहती है, जिसे *आदर्श तापक्रम (Optimum temperature)* कहते हैं। निम्न तापक्रम एंजाइम को अस्थायी रूप से निष्क्रिय अवस्था में सुरक्षित रखता है। आप जानते हैं कि भोजन को मशीनी अवस्था (frozen state) में दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है क्योंकि निम्न तापक्रमों पर न तो सूक्ष्मजीवियों और न ही भोजन के एंजाइमों द्वारा इसे सड़ाया अथवा दूषित किया जा सकता है। उच्च तापक्रम पर प्रोटीनों की प्रकृति के विरुपण के कारण एंजाइम की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। इसी कारण, मात्र कुछ कोशिकाएं ही 45° से अधिक तापक्रम सहन कर सकती हैं जबकि तप्त झरनों में 100° पर निवास करने वाले कुछ ताप-सह सूक्ष्मजीवों में ताप-रोधी एंजाइम विद्‌यमान होते हैं।

आदर्श pH

प्रत्येक एंजाइम एक विशिष्ट pH पर ही अधिकतम क्रियाशीलता दर्शाता है जो आदर्श pH कहलाती है। इस pH के नीचे तथा ऊपर दोनों ही स्थितियों में क्रियाशीलता का ह्रास हो जाता है। प्राय: अधिकांश अंत:कोशिक एंजाइम उदासीन pH पर सर्वोत्तम कार्य करते हैं लेकिन कुछ पाचक एंजाइम अम्लीय तथा क्षारीय परास में आदर्श रूप से कार्यरत रहते हैं। उदाहरणार्थ प्रोटीन पाचक एंजाइम, पेप्सिन जो आमाशय में पाया जाता है, का आदर्श pH 2.0 है और एक दूसरे प्रोटीन-पाचक एंजाइम, ट्रिप्सिन, जो ग्रहणी में पाया जाता है, क्षारीय pH 8.5 पर सर्वाधिक कार्य करता है।

एंजाइम-क्रियाधार जटिल

प्रत्येक एंजाइम (E) के अणु में क्रियाधार-बंधक स्थल विद्‌यमान होता है जिसके फलस्वरूप एक उच्च क्रियाशीलता दर्शाने वाला एंजाइम-क्रियाधार जटिल निर्मित होता है जो तत्काल उत्पाद अथवा उत्पादों (P) एवं अपरिवर्तित एंजाइम में विघटित हो जाता है।

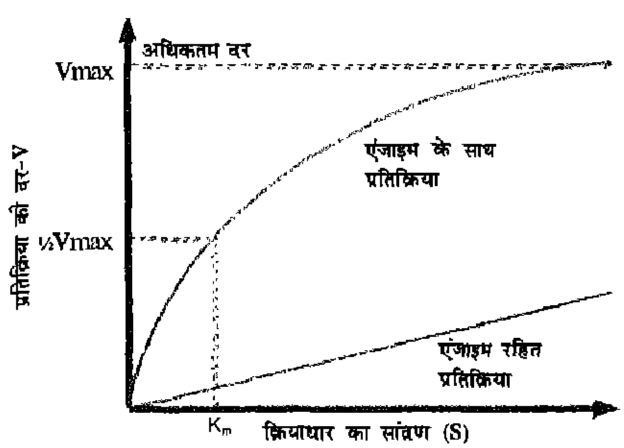
$$E + S \rightleftharpoons ES \longrightarrow EP \longrightarrow E + P$$

(सूक्ष्म-कालिक)

उत्प्रेरण के लिए एंजाइम-क्रियाधार जटिल का निर्माण आवश्यक है। क्रियाधार के प्रति एंजाइम की संलग्नता जितनी ही अधिक होती है, उतनी ही अधिक इसकी उत्प्रेरण क्रियाशीलता होती है।

क्रियाधार सांद्रता का प्रभाव

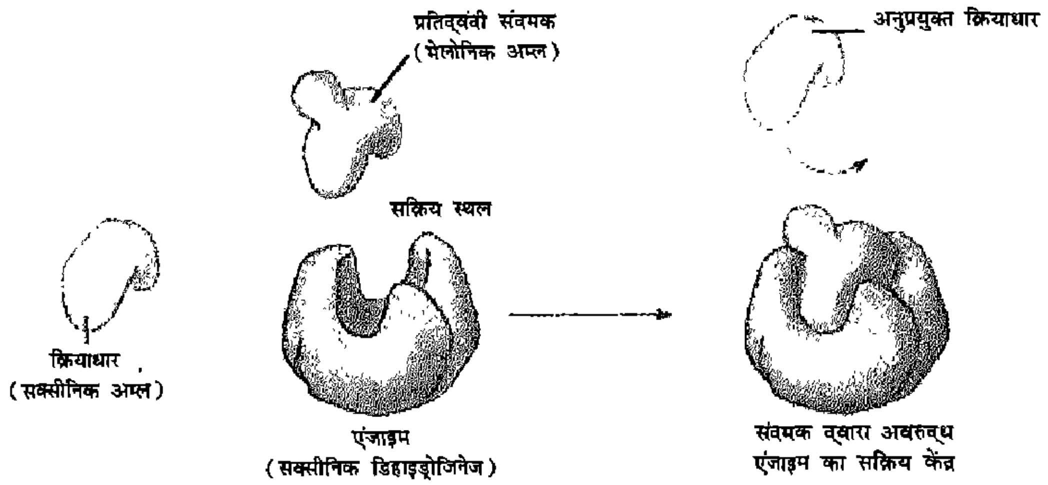
क्रियाधार की सांद्रता (S) के बढ़ने के साथ-साथ, पहले तो एंजाइम प्रतिक्रिया की गति (V) बढ़ती है। और शनै: शनै: सर्वोच्च गति (Vmax) धारण करती है जो क्रियाधार के सांद्रण बढ़ने पर भी अग्रसर नहीं होती (चित्र 10.14)। ऐसा इसलिए होता है कि एंजाइम के अणुओं की संख्या, क्रियाधार के अणुओं से कहीं कम होती है और क्रियाधार के सांद्रण बढ़ने से, सभी एंजाइम अणु संतृप्त हो जाते हैं तथा एन्जाइम का कोई भी भाग, क्रियाधार के अतिरिक्त अणुओं से बंधन करने के लिए मुक्त नहीं बचता।



चित्र 10.14 क्रियाधार के सांद्रण का एंजाइम की क्रिया पर प्रभाव

एंजाइम की प्रक्रिया का संदमन

एंजाइम की प्रक्रिया चार भिन्न-भिन्न विधियों से संदमित की जा सकती हैं। प्रोटीनों के विरूपण द्वारा एंजाइम के संदमन का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। तीन अन्य विधियां, जिनसे एंजाइमों को संदमित किया जा सकता है, निम्नवत् हैं :



चित्र 10.15 एंजाइम की क्रिया का प्रतिस्पर्धात्मक संदमन

प्रतिस्पर्धात्मक संदमन

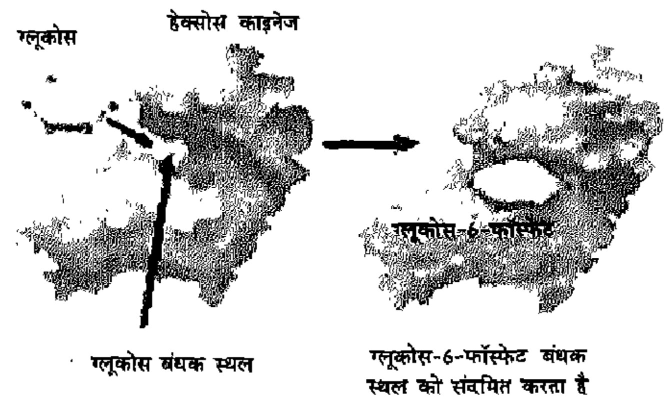
किसी एंजाइम की प्रक्रिया को एक ऐसे पदार्थ की उपस्थिति से घटाया अथवा संदमित किया जा सकता है जो अपनी आणविक संरचना में क्रियाधार से समानता रखता हो। ऐसा संदमक उस एंजाइम का **प्रतिस्पर्धी संदमक** (competitive inhibitor) कहलाता है। क्रियाधार से निकटतम संरचनात्मक साम्य के फलस्वरूप, संदमक, क्रियाधार से क्रियाधार-बंधक स्थल (substrate binding site) के लिए प्रतिस्पर्धा करता है (चित्र 10.15)। परिणामत: एंजाइम उत्प्रेरण में सहभागी नहीं हो सकता और इसकी क्रियात्मकता घट जाती है। उदाहरण के लिए सक्सीनिक डिहाइड्रोजिनेज का मेलोनेट द्वारा संदमन जो संरचना में सक्सीनिक से निकट की समानता दर्शाता है। इसकी तुलना हम ऐसे ताले से कर सकते हैं जो मूल चाबी के समान अन्य चाबी के प्रयोग द्वारा अवरोधित हो गया हो। ऐसे प्रतिस्पर्धी संदमकों का उपयोग प्राय: जीवाण्विक रोगजनकों (bacterial pathogens) के नियंत्रण हेतु किया जाता है। उदाहरण के लिए सल्फा औषधियां जीवाणुओं के फोलिक अम्ल संश्लेषण में प्रतिस्पर्धी संदमक हैं क्योंकि वे p-अमीनो बेंजोइक अम्ल का स्थान ग्रहण कर लेती हैं और इस प्रकार संश्लेषण की प्रक्रिया का अगला चरण अवरुद्ध हो जाता है।

प्रतिस्पर्धा-रहित संदमन

सायनाइड से किसी जंतु की मृत्यु इसलिए हो जाती है क्योंकि इसके द्वारा साइटोक्रोम ऑक्सिडेज कोशिकीय श्वसन के लिए आवश्यक एक माइटोकॉन्ड्रिआई एंजाइम का संदमन होता है। यह प्रतिस्पर्ध-रहित एंजाइम संदमन का एक उदाहरण है। यहां संदमक (सायनाइड) की क्रियाधार (साइटोक्रोम C) से कोई संरचनात्मक समानता नहीं है और यह क्रियाधार-बंधन स्थल पर न जुड़कर किसी अन्य स्थल पर एंजाइम से जुड़ता है। इस प्रकार प्रतिद्वंद्वी-रहित संदमन में क्रियाधार बंधन तो होता है लेकिन उत्पादों का निर्माण नहीं होता।

एलोस्टीरिक नियंत्रण अथवा पुनर्निवेश संदमन

कुछ एंजाइमों की क्रियाशीलताएं, विशेषत: उनकी जो किन्हीं प्रतिक्रियाओं की श्रृंखलाओं के भाग होते हैं (चयोपचयी मार्ग), आंतरिक रूप में संदमित हो जाती है (देखिए अध्याय 2)। कुछ विशिष्ट निम्न अणुभार वाले पदार्थ, जैसे कि श्रृंखला में किसी अन्य एंजाइम के उत्पाद, संदमक के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार का नियंत्रक पदार्थ पर अपनी एंजाइम के विशिष्ट स्थल क्रियाधार स्थल को छोड़कर स्वयं को जोड़ लेता है। यह बंधन प्रतिक्रिया को घटाता-बढ़ाता है ऐसे एंजाइम, **ऐलोस्टीरिक एंजाइम** कहलाते हैं, उदाहरणार्थ ग्लाइकोलिसिस के मध्य ग्लूकोस को ग्लूकोस-6-फॉस्फेट में परिवर्तन करने वाला हेक्सोकाइनेज उत्पाद के ऐलोस्टीरिक प्रभाव द्वारा होने वाली एंजाइम प्रक्रिया में कमी



चित्र 10.16 पुनर्भरण संदमन

को **पुनर्निवेश या पुनर्भरण संदमन** (feedback inhibition) कहते हैं जैसे हेक्सोकाइनेज का ग्लूकोस-6-फॉस्फेट द्वारा ऐलोस्टीरिक संदमन (चित्र 10.16)।

हॉर्मोन

हॉर्मोन की व्युत्पति ग्रीक भाषा के शब्द हॉर्मोन (Hormon) से हुई जिसका अर्थ है 'क्रियाशीलता हेतु सचेत हो जाना'। आदर्श परिभाषा के अनुसार, हॉर्मोन एक ऐसा पदार्थ है जो सूक्ष्म मात्रा में किसी एक ऊतक द्वारा संश्लेषित किया जाता है और परिसंचारी तंत्र द्वारा अन्य अंग में पहुंचाया जाता है। वे ऊतक अथवा अंग जिनमें उनका उत्पादन होता है **प्रभावक** (effectors) कहलाते हैं और जहां उनका प्रभाव होता है, **लक्ष्य** (targets) कहलाते हैं। अपनी क्रिया के स्थल के अनुसार हॉर्मोन दो प्रकार के होते हैं : स्थानीय एवं सामान्य। स्थानीय हॉर्मोनों के विशिष्ट स्थानीय प्रभाव होते हैं, जैसे कोलासिस्टोकाइनिन। दूसरी ओर सामान्य हॉर्मोन विभिन्न अंतःस्रावी ग्रंथियों द्वारा स्रावित किए जाते हैं और रक्त द्वारा कार्यिक प्रतिक्रियाएं करने के लिए अपने उद्गम स्थान से स्थानांतरित किए जाते हैं; उदाहरणार्थ वृद्धि हॉर्मोन, थायरॉयड हॉर्मोन, एड्रिनोकोर्टिकोट्रोपिन, आदि।

हॉर्मोनों की आवश्यकता अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में होती है और वे विविध प्रकार के नियंत्रक कार्य जैसे वृद्धि, कायिक एवं लैंगिक परिवर्धन, कोशिकी ऑक्सीकरण से तापीय नियंत्रण और कार्बोहाइड्रेटों, प्रोटीनों और वसाओं का चयोपचय करते हैं। कोशिक स्तर पर हॉर्मोन की प्रक्रिया इसके विशिष्ट अभिग्राहक (receptor) के साथ संबंध से प्रारंभ होती है।

पादप "फाइटोहॉर्मोन" कहलाते हैं। यह ऐसे जैविक यौगिक हैं जिनका उत्पादन प्राकृतिक रूप से उच्च पादपों में होता है और जो वृद्धि अथवा किसी अन्य प्रकार की कार्यिक क्रिया को अपने उद्गम स्थल अथवा अपने उत्पादन के स्थान से अत्यंत दूर नियंत्रित करते हैं। ऑक्सिन, जिब्बरेलिन, साइटोकाइनिन, एब्सिसिक अम्ल (ABA), एवं इथाइलीन पादपों में पाए जाने वाले चार प्रमुख प्रकार के हॉर्मोन हैं।

विटामिन

यह भोजन के ऐसे जैविक अणु हैं जो सामान्य चयोपचय हेतु सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते हैं लेकिन मानव एवं अन्य जंतुओं में इनका संश्लेषण पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है। इनमें से किसी भी प्रकार की भोजन संबंधी अथवा कार्मिक कमी के फलस्वरूप विशिष्ट प्रकार के रोग लक्षण दिखाई दे सकते हैं जिनका निवारण मात्र उस विटामिन के प्रयोग द्वारा ही संभव होता है। विटामिनों का संश्लेषण पादपों और जीवाणुओं द्वारा किया जाता है। इनका वर्गीकरण विलेयता (solubility) के आधार पर किया जाता है जैसे :

(क) **जल विलेय विटामिन** (Water soluble vitamins) जिसमें B- समूह के विटामिन और विटामिन C (एस्कोर्बिक अम्ल) आते हैं। B- समूह के विटामिन धान्यों के संपूर्ण दानों, शिम्बों, हरी पत्तियों वाली सब्जियों, मांस एवं दूध के उत्पादों में पाए जाते हैं। सिट्रस फल विटामिन C के अच्छे स्रोत हैं।

(ख) **वसा विलेय विटामिनों** (Fat soluble vitamins) में A, D, E और K विटामिन आते हैं। यह वसीय भोजन में पाए जाते हैं जैसें वसा-युक्त मांस, यकृत, दूध की वसाएं, अंडे का पीतक, वानस्पतिक बीजों के तेल आदि। विटामिन सह-एंजाइम (coenzyme) अथवा सह कारक (cofactor) के रूप में कार्य करते हैं और मानव तथा जंतुओं की सामान्य चयोपचयी क्रिया के लिए अत्यंत सूक्ष्ममात्रा में वांछित होते हैं।

सारांश

कोशिकाओं में लवण, खनिज एवं जल जैसे सामान्य अकार्बनिक पदार्थ विद्यमान होते हैं। कोशिका के लिए आवश्यक मात्रा के आधार पर खनिजों को प्रमुख एवं गौण दो समूहों में बांटा जाता है। यह कोशिका के संघटकों जैसे प्रोटीनों एवं अमीनो अम्ल का तथा साथ ही हड्डियों एवं दांतों के घटक होते हैं। खनिजों की कमी के फलस्वरूप विविध प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। जल, कोशिका का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। यह एक अच्छा विलायक भी है तथा सभी रासायनिक प्रक्रियाओं एवं आणविक संगठनों को बनाए रखने में सहायता प्रदान करता है। साथ ही यह कोशिका स्तर पर आंतरिक वातावरण की स्थिरता बनाए रखने में भी सहायक है। कोशिका के जैव रासायनिक बृहद् अणु चार वर्गों में विभाजित किए जाते हैं : कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, प्रोटीन एवं न्यूक्लीक अम्ल। कार्बोहाइड्रेट का आधारभूत एकक एक एकल शर्कराइड होता है जो एक बहुहाइड्रोक्सीएल्डीहाईड अथवा ऐसा कार्बन अणु होता है जिसमें 3–7 कार्बन होते हैं। एक द्विशर्कराइड दो एवं बहुशर्कराइड कई एकल शर्कराइडों से मिलकर बनता है। पादपों में कोशिका भित्ति की सेलुलोस संरचना के अवयव एवं मंड भंडारण उत्पाद एवं जंतुओं में ग्लायकोजन भंडारण उत्पाद कुल मिलाकर तीन प्रकार के बहुशर्कराइड होते हैं। अन्य संरचनात्मक बहुशर्कराइड में कोशिका भित्ति का संघटक सेलुलोस, पौधों में संग्रहीत खाद्य-स्टार्च, जंतु संग्रहीत – ग्लाइकोजन, एगार काइटिन, पेप्टीडोग्लायकेन, लिपोबहुशर्कराइड एवं ग्लायकोकेलिक्स होते हैं। इनमें से कुछ कोशिकाओं में ग्राही का कार्य करते हैं। लिपिड, वसीय अम्लों की ऐसी लंबी शृंखला के रूप

में होते हैं जो ग्लिसरॉल से बंधे होते हैं, इनके प्रमुख प्रकार स्टीरॉल, ट्रायग्लिसराइड, फॉस्फोलिपिड एवं मोम। ट्राइग्लिसराइड दो प्रकार के होते हैं– संतृप्त एवं असंतृप्त। फॉस्फोलिपिड कोशिका झिल्ली कला के संरचनात्मक घटक हैं। इनमें जलरोधी एवं जलपेयी शीर्ष होते हैं, कोलेस्टेरोल नामक स्टीरोल जंतुओं एवं भित्ति-रहित जीवाणुओं में कोशिक कला की संरचना को दृढ़ता प्रदान करता है। लंबी शृंखला वाले अल्कोहल के संतृप्त वसीय अंग का ऐस्टर, मोम कोशिकाओं के जलअभेद्य बनाकर और भी अधिक सुरक्षा प्रदान करता है। प्रोटीनों, अमीनो अम्लों की लंबी शृंखलाएं होती हैं। सजीवों में 20 प्रकार के अमीनो अम्ल पाए जाते हैं, सभी प्रकार की प्रोटीनें इन अमीनो अम्लों के विविध संयोजनों के उत्पादस्वरूप बनती हैं। किसी भी प्रोटीन की संरचना पेप्टाइड शृंखला के विशिष्ट बिंदुओं के मरोड़ के आधार पर प्रोटीन प्राथमिक, द्वितीय एवं तृतीयक संरचना धारण कर सकती है, और उसे त्रिविमीय आकार प्रदान करती हैं, कुछ प्रतिपिंड अथवा एंजाइम एक बार और मुड़कर चतुष्की संरचना भी बनाते हैं। संरचना के विघटन के कारण प्रोटीनों की प्रकृति नष्ट हो जाती है।

न्यूक्लीक अम्ल दो प्रकार के होते हैं : डीएनए एवं आरएनए। इनमें विशेषत: संकेतित ऐसा आनुवंशिक कार्यक्रम होता है जिसमें कोशिका क्रियाकलापों एवं जीव की वंशानुगतता के नियंत्रण के लिए विशिष्ट और विस्तृत निर्देश समाहित होते हैं। केंद्रकीय अम्ल न्यूक्लीओटाइडों के बहुलक होते हैं। प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड एक नाइट्रोजन-युक्त क्षार, पंचतयी शर्करा, तो डीएनए में डीआक्सीराइबोज और आरएनए में राइबोज तथा एक फॉस्फेट का बना होता है। प्यूरीन का एक क्षार एक पिरिमिडीन से बंधन करता है, A=T एवं G≡C। न्यूक्लीक अम्ल की रीढ़ फॉस्फेट–शर्करा फॉस्फेट–शर्करा के एकांतर क्रम में व्यवस्थित अणुओं की शृंखला द्वारा निर्मित होती है। डीएनए दो लंबी बहुन्यूक्लिओटाइडधारी ऐसी लड़ियों से बनता है जो आपस में हाइड्रोजन बंधों से सधी रहती हैं। यह संरचना एक अक्ष के चारों ओर कुंडलित रूप में मुड़ी रहती है। आरएनए वैसे तो डीएनए के समान होता है किंतु यह एक लड़ी का बना है और इसमें थायेमीन नाइट्रोजन क्षार के स्थान पर यूरेसिल नामक नाइट्रोजन क्षार होता है। यह तीन प्रकार का होता है। संदेशवाहक आरएनए स्थानांतर आरएनए एवं राइबोसोमी आरएनए। यह प्रोटीन संश्लेषण में सहभागी होता है और उन जीवों में आनुवंशिक पदार्थ के रूप में कार्य करता है जिनमें डीएनए अनुपस्थित होता है। एटीपी भी ऐसा न्यूक्लीओटाइड है जिसमें नाइट्रोजन क्षार ऐडेनीन राइबोस शर्करा एवं तीन फास्फेट अणु विद्यमान होते हैं, इसमें तीन ऊर्जा बहुल बंध होते हैं जो ऊर्जा का भंडारण करते हैं और टूटने पर इसे अवमुक्त करते हैं।

एंजाइम ऐसे रासायनिक पदार्थ हैं जो कोशिकाओं में रासायनिक क्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं। यह सजीव कोशिकाओं द्वारा निस्सारित तथा संश्लेषित किए जाते हैं। अधिकांश एंजाइम प्रोटीन होते हैं किंतु सभी प्रोटीन एंजाइम नहीं होते। अधिकतर एंजाइमों में प्रोटीन-विहीन भाग जो प्रोस्थेटिक समूह कहलाता है, होता है। एंजाइम अभिक्रियाओं को जैविक अथवा अजैविक आयनों तथा कुछ विशिष्ट धातुओं से सहायता मिलती है। एंजाइम अधिकतर क्रियाधार विशिष्टता दर्शाते हैं तथा इनकी अभिक्रियाओं के लिए अनुकूल तापमान और pH की आवश्यकता होती है। एंजाइम अल्पकालिक क्रियाधार जटिल बनाते हैं और क्रियाधार की सांद्रता से प्रभावित होते हैं, इनकी क्रियाशीलता को प्रतिस्पर्धी, प्रतिस्पर्धा–विहीन अथवा पुनर्निवेशन संदमकों द्वारा रोका जा सकती है।

वे रासायनिक पदार्थ जो पादपों एवं जंतुओं, दोनों ही द्वारा संश्लेषित किए जाते हैं, हॉर्मोन कहलाते हैं। हॉर्मोनों का अभिक्रिया स्थान संश्लेषण स्थान से पूर्णतया भिन्न होता है। यह सूक्ष्ममात्रा में वांछित होते हैं तथा बहुत-सी शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। अवयवी द्रव्यों का दूसरा समूह जो विटामिन कहलाता है सूक्ष्म मात्रा में वांछित है। यह मुख्यतया पादपों में संश्लेषित किए जाते हैं। विटामिन वसा अथवा जल में घुलनशील होते हैं। इनकी न्यूनता बहुत-सी अनियमितताओं तथा रोगों का कारण बनती हैं।

अभ्यास

1. बृहद्अणु क्या होते हैं ? उदाहरण दीजिए।
2. भंडारण बहुशर्कराइडों के दो उदाहरण दीजिए।
3. काइटिन क्या है ?
4. ग्लाइकोसाइडिक बंध कैसे बनते हैं? व्याख्या कीजिए।
5. सजीव में बहुशर्कराइडों के कार्यों की व्याख्या कीजिए।
6. प्रोटीनों की तृतीयक संरचना से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।

7. संतृप्त एवं असंतृप्त वसा में क्या भेद होता है ?
8. ट्राइग्लिसराइड का संगठन कैसा होता है ?
9. फॉस्फोलिपिडों की संरचना का वर्णन कीजिए। यह कोशिका झिल्ली में किस प्रकार व्यवस्थित रहते हैं ?
10. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए।
    (i) स्टीरॉइड
    (ii) मोम
11. एटीपी की संरचना और कार्य क्या हैं ?
12. अमीनो अम्ल का आपस में बंधन किस प्रकार होता है ? यह बंधन कैसे बनते हैं ? स्पष्ट कीजिए।
13. अमीनो अम्ल की संरचना को चित्रित कीजिए।
14. प्रोटीन के प्राथमिक की संरचना का वर्णन कीजिए।
15. डीएनए की संरचना का वर्णन कीजिए।
16. आरएनए के कितने विभिन्न प्रकार हैं ?
17. डीएनए तथा आरएनए में अंतर दर्शाइए।
18. प्रोस्थेटिक समूह एवं सहकारक के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।
19. एंजाइम की संरचना को समझाइए।
20. एंजाइम की प्रमुख विशेषताओं का विवरण दीजिए।
21. क्रियाधार की सांद्रता किस प्रकार एंजाइम प्रतिक्रिया की गति को प्रभावित करता है?
22. एंजाइम क्रिया के ताला और कुंजी परिकल्पना की व्याख्या कीजिए।
23. प्रतिस्पर्धात्मक संदमन क्या है? इसकी एलोस्टेरिक संदमन से तुलना कीजिए।
24. एलोस्टेरिक संदमन को पुनर्भरण संदमन क्यों कहा जाता है? समझाइए।
25. आप हार्मोन की व्याख्या किस प्रकार करेंगे?
26. विटामिनों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है?

अध्याय 11

कोशिका चक्र

आप कोशिका और उसके विभिन्न कोशिकांगों से तो परिचित हैं ही, जो कोशिका को उसके अलग-अलग कार्यों को करने में सक्षम बनाते हैं। कोशिकाएं पूर्ववर्ती कोशिकाओं के विभाजन से ही बनती हैं और फिर उनका विभेदीकरण होता है। आप इन सभी विषयों के बारे में इस अध्याय में पढ़ेंगे।

कोशिका विभाजन का महत्त्व इससे भी जाना जा सकता है कि ससीमकेंद्रकी जंतुओं का जीवन युग्मनज (निषेचित अंड) के बनने से शुरू होता है। इस एकल कोशिका से खरबों कोशिकाएं बारंबार विभाजनों द्वारा परिवर्धित होती हैं जो विभेदीकरण की प्रक्रिया द्वारा अंगों का निर्माण करती हैं। इस प्रक्रिया में कोशिका विभाजन की दर एवं विभाजित होने वाली कोशिकाओं की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। कुछ ही कोशिकाएं ऐसी होती हैं जो भ्रूणीय अवस्था की तुलना में पूर्ण विकसित जंतु में भी विभाजित होती रहती हैं। फिर भी वयस्क ऊतकों जैसे मेरूरज्जु और जनन ऊतकों (प्राणियों में) और विभज्योतकी भागों (पादपों में) की कोशिका में विभाजन लगातार होता रहता है।

11.1 कोशिका चक्र

जब एक कोशिका को विभाजित होना होता है तो यह अपेक्षा की जाती है कि उसके आनुवंशिक घटकों सहित सभी घटकों का संश्लेषण हो जिससे पदार्थ का द्विगुणन हो सके। विभाजन के पश्चात् दुगुनी मात्रा में बना पदार्थ संतति कोशिकाओं में चला जाता है। *घटनाओं का वह निश्चित क्रम जिसके द्वारा कोशिका अपने घटकों को दुगुना करती है और तत्पश्चात् दो में विभाजित हो जाती है, कोशिका चक्र कहते हैं।* उक्त घटनाक्रम जीनों द्वारा नियंत्रित होता है।

कोशिका चक्र की दो मुख्य अवस्थाएं होती हैं:

(i) अंतरावस्था और

(ii) समसूत्री विभाजन

यद्यपि कोशिका अपना अधिकांश जीवनकाल अंतरावस्था में ही बिताती है। वह अवस्था जिसमें तेजी से जैव-संश्लेषण होता है जिसमें कोशिका का आकार दुगुना हो जाता है और गुणसूत्रों की संख्या भी दुगुनी हो जाती है। यद्यपि स्तनियों की तंत्रिका कोशिकाएं जन्म के बाद बिल्कुल विभाजित नहीं होती। इसलिए मानव तंत्रिका-कोशिका का अंतरावस्था काल प्राणी में आजीवन बना रहता है। ससीमकेंद्रकी कोशिका का विभाजन समसूत्री एवं अर्द्धसूत्रीविभाजन द्वारा होता है। विभाजन का काल जटिल क्रमागत अवस्थाओं को प्रदर्शित करता है जिनके द्वारा कोशिकीय पदार्थ बराबर मात्रा में संतति कोशिकाओं में विभाजित हो जाते हैं। कोशिका विभाजन सिर्फ अंतिम अवस्था होती है। कोशिका विभाजित होने से पहले अपने आणविक घटकों को दुगना कर लेती है। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि *कोशिका विभाजन पहले से द्विगुणित आणविक इकाइयों का अंतिम विभाजन होता है।*

अंतरावस्था

इस अवस्था को कभी-कभी विश्राम अवस्था भी कहते हैं लेकिन वास्तव में यह कोशिका की महत्त्वपूर्ण सक्रियता की अवधि है। तीन मुख्य प्रक्रम जो अंतरावस्था में कोशिका विभाजन की तैयारी से पहले होते हैं, वह हैं:

(i) डीएनए की प्रतिकृति बनने के साथ ही केंद्रक प्रोटीन जैसे हिस्टोन का निर्माण होता है।

(ii) जंतु कोशिकाओं में, तारककाय विभाजित होकर एक जोड़ी नए तारककायों को बनाता है जो एक दूसरे के आमने-सामने या विपरीत ध्रुवों पर स्थित होते हैं। सेंट्रिओल का द्विगुणन जनक सेंट्रीओल की पार्श्ववृद्धि द्वारा होता है।

(iii) ऊर्जा-युक्त यौगिकों का संश्लेषण जो सूत्रीविभाजन के समय ऊर्जा प्रदान करते हैं तथा अंतरावस्था के अंत के काल में नयी प्रोटीनों एवं अन्य कोशिका द्रव्यी घटकों का निर्माण करते हैं।

अंतरावस्था को तीन कालों में विभाजित किया जाता है :

(i) पश्च सूत्री अंतरकाल (G_1) : यह कोशिका विभाजन के अंत में होता है इस काल में आरएनए एवं प्रोटीनों का संश्लेषण होता है लेकिन डीएनए का संश्लेषण नहीं होता है।

(ii) संश्लेषण अवस्था (S) डीएनए की प्रतिकृति बनती है और केंद्रक में इसकी मात्रा दुगनी हो जाती है।

(iii) पूर्व-सूत्री विभाजन अंतरालकाल अवस्था (G_2) के समय आरएनए और प्रोटीनों का संश्लेषण जारी रहता है लेकिन डीएनए संश्लेषण रुक जाता है। अधिकांश कोशिकाओं में S अवस्था G_2 अवस्था और सूत्री- विभाजन अवस्था का काल सामान्यत: निश्चित होता है।

G_1 अवस्थाकाल की लंबाई सामान्यत: बदलती रहती है। कोशिकाएं जो जल्दी-जल्दी विभाजित नहीं होतीं उनकी एक लंबी G_1 अवस्था होती है जबकि बारंबार विभाजित होने वाली कोशिकाओं की यह अवस्था छोटी होती है। G_1 अवस्था काल के समय किसी कोशिका को इन तीनों में से एक विकल्प चुनना पड़ता है:

(i) कोशिका चक्र जारी रहे और वे विभाजित होती रहे।
(ii) कोशिका हमेशा के लिए अपना विभाजन रोक दे और G_0 अवस्था या विश्राम अवस्था में चली जाए और
(iii) कोशिका चक्र G_1 काल के एक निश्चित बिंदु पर आकर रुक जाए।

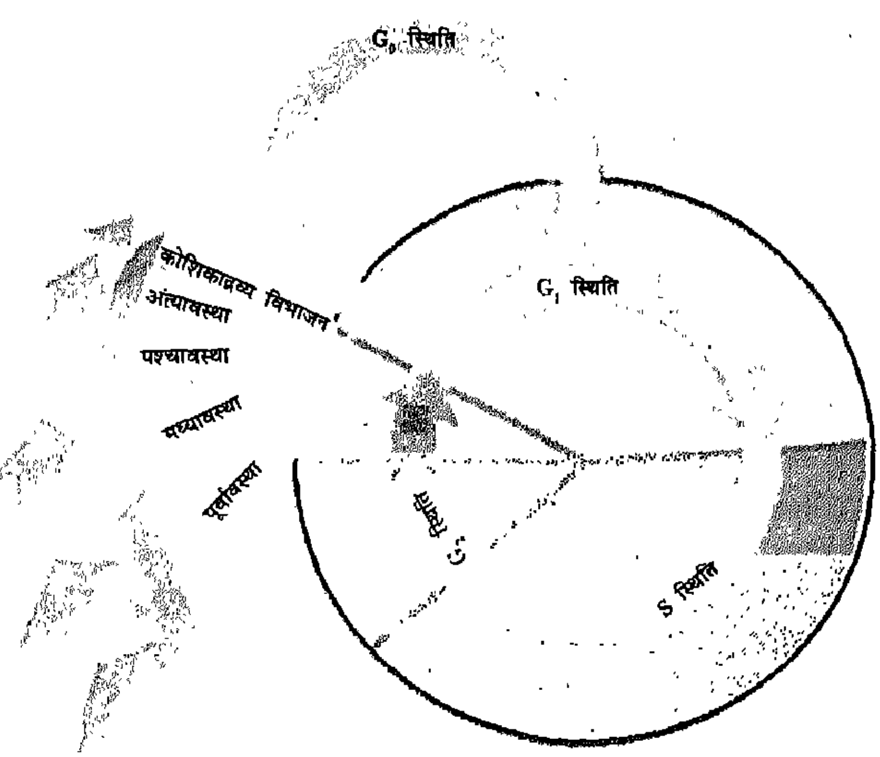
कोशिका को स्थगन अवस्था में आ जाने को G_0 अवस्था कहते हैं कोशिका का G_0 अवस्था में आ जाने को यह माना जाता है कि वह कोशिका चक्र से हट गई है। जब परिस्थितियां परिवर्तित होती हैं और पुन: वृद्धि होती है तो कोशिका पुन: G_1 काल में प्रवेश कर जाती हैं। ससीमकेंद्रकी अंतरावस्था के समय गुणसूत्र संघनित एवं असंघनित चक्र में रहते हैं जबकि G_1 अवस्था में यह पूर्णत: बिखरे हुए रहते हैं।

अनेक जीवों में कोशिका चक्र के नियंत्रण में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बिंदु G_1 अवस्था में होता है। इस मध्य यह निर्धारित किया जाता है कि क्या कोशिका नया चक्र प्रारंभ करेगी अथवा G_0 अवस्था में अवरुद्ध हो जाएगी। एक बार यह G_1 अवरोध बिंदु पारित हो जाए तो कोशिका एक नए चक्र को पूरा करती है।

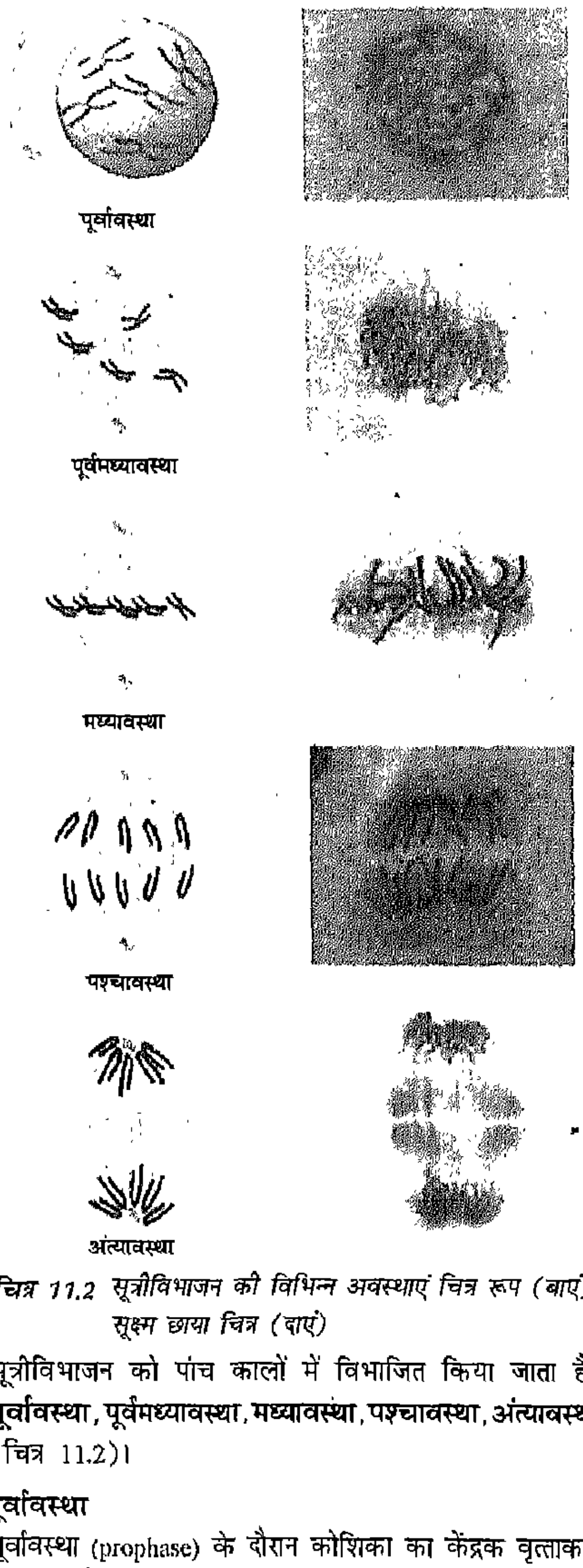
G_1 अवस्था का समापन कई उद्दीपनों से हो सकता है और फिर कोशिका विभाजन प्रारंभ होता है। एक बार उच्च ससीम-केंद्रकी कोशिका S अवस्था में प्रवेश कर जाती है तो इसके डीएनए का प्रतिकृतिकरण प्रारंभ हो जाता है तथा कोशिका विभाजन हेतु समर्पित कर देती है। *अंतरावस्था* के समय, गुणसूत्रों का प्रतिकृतिकरण होता है। इस प्रकार हर गुणसूत्र में अब दो अर्द्धगुणसूत्र (Chromatids) बन जाते हैं। इसके पश्चात् कोशिका सूत्रीविभाजन अवस्था (M) में प्रवेश कर जाती है। अनेक जीवों में प्रमुख नियंत्रण बिंदु G_2 अवस्था के समसूत्री विभाजन में प्रवेश का निर्णय होता है, जिसमें कोशिका के समसूत्री विभाजन में प्रवेश का निर्णय होता है। इस प्रकार कोशिका चक्र को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है : G_1 अवस्था, S अवस्था, G_2 अवस्था और M अवस्था (चित्र 11.1)।

11.2 सूत्रीविभाजन

कोशिका विभाजन की वह क्रियाएं जबकि गुणसूत्रों का द्विगुणन होता है और तत्पश्चात् समान रूप से संतति कोशिकाओं में विभाजित हो जाता है, को सूत्रीविभाजन (Mitosis) कहते हैं।



चित्र 11.1 कोशिका चक्र की अवस्थाएं



चित्र 11.2 सूत्रीविभाजन की विभिन्न अवस्थाएं चित्र रूप (बाएं) सूक्ष्म छाया चित्र (दाएं)

सूत्रीविभाजन को पांच कालों में विभाजित किया जाता है: **पूर्वावस्था, पूर्वमध्यावस्था, मध्यावस्था, पश्चावस्था, अंत्यावस्था** (चित्र 11.2)।

पूर्वावस्था

पूर्वावस्था (prophase) के दौरान कोशिका का केंद्रक वृत्ताकार हो जाता है। कोशिका-द्रव्य के गाढ़ेपन में वृद्धि हो जाती है। गुणसूत्र छोटे, मोटे तथा अभिरंजन योग्य हो जाते हैं। पूर्वावस्था के अंत में कुछ गुणसूत्र सिकुड़ कर अपनी लंबाई के 1/25 हो जाते हैं। गुणसूत्रों का द्विगुणन होने से वे दिखाई देने लग जाते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र में दो अर्द्धगुणसूत्र के बने होते हैं जिसे सहोदर अर्धगुणसूत्र (क्रोमेटिड) कहते हैं तथा ये गुणसूत्रबिंदु पर जुड़े रहते हैं। पूर्वावस्था की प्रगति के साथ, गुणसूत्र जो पूर्वावस्था के समय रेखीयक्रम में वितरित रहते हैं वे केंद्र को छोड़ कर केंद्रककला की ओर पलायन करते हैं।

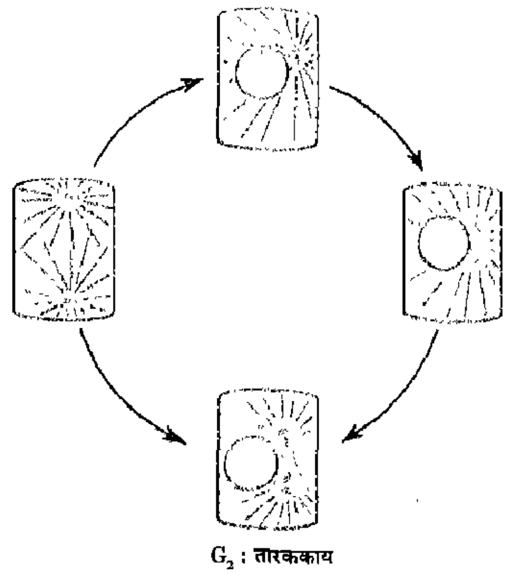
तारककेंद्रक, जो अंतरावस्था के दौरान द्विगुणित हुआ था अब कोशिका के विपरीत ध्रुवों की ओर खिसकने लगते हैं (चित्र 11.3)। दोनों ध्रुवों के मध्य तर्कुतंतु बनना प्रारंभ हो जाते हैं। तर्कुतंतु वे सूक्ष्मनलिकाएं होती हैं जो मुख्यत: ट्यूब्यूलिन नामक प्रोटीनों की बनी होती हैं इनके साथ अन्य प्रोटीनें संबद्ध रहती हैं। तर्कु एक सक्रिय रचना होती है और ये विलयित होकर पुनर्निर्माण चक्र में चली जाती हैं। तारक केंद्रक से निकलने वाली तारे-सम किरणें एक तर्कु मिलकर सूत्री विभाजन उपकरण या माइटोटिक एपेरेटस बनाते हैं।

पूर्वमध्यावस्था

पूर्वमध्यावस्था (prometaphase) का प्रारंभ, केंद्रक कला के विलीन होने से, चिह्नित होता है। जब केंद्रककला विलुप्त हो जाती है तो जीवद्रव्य और केंद्रकद्रव्य में कोई विभेद नहीं रह जाता। गुणसूत्र तर्कु से गुणसूत्रबिंदु पर जुड़े रहते हैं। इस तरह के सूत्रीविभाजन को बाह्यकेंद्रकीय सूत्रीविभाजन या **सत्यसूत्रीविभाजन** (eumitosis) कहते हैं। कई प्रोटोजोआ जंतु और कुछ जंतु कोशिकाओं में कोशिका विभाजन के दौरान केंद्रक कला-विहीन नहीं होता तथा सूत्रीविभाजन केंद्रककला के अंदर होता है अत: इसे **अंतराकेंद्रकीय सूत्रीविभाजन या पूर्वसूत्रीविभाजन** (premitosis) कहते हैं। कुछ प्रोटिस्ट जीवों में तारककेंद्र, केंद्रक के अंदर उपस्थित होता है। ऐसी स्थिति में सूत्रीविभाजन अंतराकेंद्रकीय एवं केंद्रीय दोनों प्रकार का होता है। जब तारककेंद्र, केंद्र के बाहर होता है, समसूत्री विभाजन बाह्य केंद्रकीय व केंद्रीय होता है। जब केंद्रक कला विलीन होती है, तो कोशिका के केंद्र में एक तरल क्षेत्र दिखाई देता है, इस स्थान से गुणसूत्र मुक्त रूप से एवं बिना किसी अवरोध के गमन करते हैं जिससे वे मध्यरेखा की ओर बढ़ना प्रारंभ करते हैं।

मध्यावस्था

मध्यावस्था (metaphase) में गुणसूत्र मध्यरेखा पर एक तल पर विन्यासित होकर **मध्यांश पट्टिका** (equatorial plate) या **मध्यावस्था पट्टिका** (metaphasic plate) बनाते हैं। कभी-कभी मध्य रेखा पर मात्र तारक केंद्र स्थित होता है। गुणसूत्रों की भुजाएं मध्य रेखा के विपरीत दिखाई देती हैं। छोटे गुणसूत्र सामान्यत: केंद्र की ओर विन्यासित रहते हैं जब कि बड़े परिधि की ओर (चित्र 11.2)।



चित्र 11.3 पूर्वावस्था के मध्य तारककाय (सेंट्रोसोम) का द्विगुणन

पश्चावस्था

पश्चावस्था (anaphase) में गुणसूत्र अल्प समय के लिए मध्यरेखा पर रहते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र के सहोदर अर्धगुणसूत्र एक-दूसरे से अलग होने लगते हैं। अलग होने की यह प्रक्रिया गुण सूत्र बिंदु से प्रारंभ होती है। अब इन्हें संतति गुणसूत्र कहते हैं। ये इस प्रकार दिखाई देते हैं जैसे कि एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो रहे हों। गुणसूत्रों के दो अलग-अलग समूह, ध्रुवों की ओर गमन करते हैं। गुणसूत्रों का गमन तर्कुतंतु, जो कि गुणसूत्र-बिंदु से जुड़े रहते हैं, के धीरे-धीरे सिकुड़ने के कारण होता है।

अंत्यावस्था

अंत्यावस्था (telophase) का प्रारंभ दो संतति गुणसूत्र समूह के विपरीत ध्रुवों पर पहुंचने से प्रारंभ होता है। इस अवस्था में, तर्कु विलुप्त हो जाते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र समूह के चारों तरफ एक नवीन केंद्रक झिल्ली का निर्माण होता है। केंद्रिकाएं पुनः दिखाई देने लगती हैं। इसके बनने के स्थान को **केंद्रकीय संगठक** (*न्यूक्लिओलर ऑर्गेनाइजर*) कहते हैं। जो एक या अधिक गुणसूत्रों पर संकीर्णन बिंदु के रूप में होते हैं (चित्र 11.2)। अंतरावस्था स्थिति को पुनर्स्थापित करने के लिए अंत्यावस्था प्रावस्था से संबंधित परिवर्तन होते हैं। एक प्रकार से यह पूर्वावस्था की विपरीत क्रिया होती है। प्रत्येक संतति कोशिका में गुणसूत्र एवं केंद्रिकाओं की उतनी ही मात्रा जाती है, जितनी मातृकोशिका में थी। गुणसूत्र धीरे-धीरे अकुंडलित और कम सघन होते जाते हैं। वे अंततः अपनी रंजित होने की क्षमता भी खो देते हैं।

कोशिकाद्रव्य विभाजन

जंतु कोशिका में एक विदलन दरार अंत्यावस्था की प्रारंभिक अवस्था में दृष्टिगत होना शुरू होती है। यह दरार या संकीर्णन धीरे-धीरे गहरा होता जाता है जैसे ही तर्कु टूटता है अंततः बढ़ते हुए संकीर्णन मिल जाते हैं और कोशिका द्रव्य दो संतति कोशिकाओं में बंट जाता है। कोशिकाद्रव्य के इस विभाजन को **कोशिकाद्रव्य विभाजन** (cytokinesis) कहते हैं। जब केंद्रक विभाजन बिना कोशिकाद्रव्य विभाजन के होता है तो **बहुकेंद्रकीय कोशिका** (syncytium) बनती है, जिसमें एक ही कोशिका में कई केंद्रक उपस्थित होते हैं।

पादपों में, दो संतति कोशिकाओं के मध्य कोशिका पट्टिका का निर्माण होता है। यह मध्य से परिधि की तरफ बढ़ती है और अंत में कोशिका भित्ति से जुड़ जाती है। दो समीपस्थ कोशिकाओं के मध्य यह कोशिका मध्य पट्टलिका को दर्शाती है।

विभाजन के दौरान जैसे माइट्रोकॉन्ड्रिया, लवक, गॉल्जी काय, लाइसोसोम कोशिकांग और कोशिकाद्रव्य, दो संतति कोशिकाओं में बंट जाते हैं। इनमें से माइट्रोकॉन्ड्रिया और लवक तो स्वयं का पुनर्निर्माण करते हैं, लेकिन दूसरे कोशिकांगों का भविष्य अभी तक ज्ञात नहीं है।

आप केंद्रक के सूत्रीविभाजन और असूत्री कोशिका विभाजन में भ्रमित न हों। फ्लेमिंग ने 1882 में असूत्री कोशिका विभाजन का वर्णन किया था। असूत्री विभाजन में केंद्रक विभाजन एक ऐसी क्रिया जो सूत्री विभाजन से अलग होती है। इसमें केंद्रक का एक मुद्गराकार

आकृति में विदलन होता है जिस बीच कोशिका के केंद्रक में गुणसूत्रों को पहचाना नहीं जा सकता और तर्कु का निर्माण भी नहीं होता। असूत्री विभाजन कोशिका विभाजन हो भी सकता है और नहीं भी। इस तरीके से जो केंद्रक बनते हैं तो सामान्यत: असमान आकार के होते हैं। यह प्रक्रिया कुछ प्रोटिस्टों, कशाभिकाधारियों, कुछ विशेष जंतु ऊतकों में, तथा जीर्ण एवं ह्रासित होती हुई उच्च पादपों की कोशिकाओं में होती है।

सूत्रीकोशिका विभाजन का महत्व

(i) *गुणसूत्रों का समान वितरण होता है :* सूत्रीविभाजन का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण गुणसूत्रों का समान मात्रा में बंटना हैं। दोनों संतति कोशिकाओं में से प्रत्येक कोशिका के गुणसूत्रों में युग्मनज से लेकर बारंबार सूत्रीविभाजन होता है फलत: शरीर की सारी कोशिकाओं का आनुवंशिक संगठन हर विभाजन में निश्चित बना रहता है। इसलिए सूत्रीविभाजन से कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित बनी रहती है।

(ii) *सतह / आयतन अनुपात :* समसूत्री विभाजन कोशिका के सतह आयतन अनुपात को बनाए रखता है। एक छोटी कोशिका को बड़ी कोशिका की तुलना में आयतन के संबंध में अधिक सतह उपलब्ध होगी। जैसे-जैसे कोशिका का आकार बढ़ेगा तो उपलब्ध सतह का क्षेत्रफल बढ़े हुए आयतन की तुलना में कम होता जाएगा। लेकिन आगे होने वाले विभाजनों में कोशिका का आकार छोटा होने से सतह आयतन अनुपात पुन: स्थापित हो जाएगा।

(iii) *केंद्रक-कोशिकाद्रव्य अनुपात :* बहुकोशिकीय प्राणियों की वृद्धि सूत्रीविभाजन के कारण से होती है। कोशिका बिना केंद्रक और कोशिकाद्रव्य के अनुपात को बिगाड़े आकार में बहुत अधिक वृद्धि नहीं कर सकती। जब एक विशिष्ट आकार प्राप्त कर लिया जाता है तो कोशिका केंद्रक कोशिकाद्रव्य अनुपात को बनाए रखने के लिए विभाजित होती है। इस प्रकार मुख्य रूप से कोशिकाओं की संख्या बढ़ने के कारण वृद्धि होती है इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जाता है कि मानव शरीर में 6×10^{12} कोशिकाएं होती हैं जो सारी मात्र एक युग्मनज कोशिका से उत्पन्न होती हैं।

(iv) *मरम्मत :* शरीर की मरम्मत इसलिए संभव होती है कि कि सूत्रीविभाजन से इसमें नई कोशिकाएं जुड़ती रहती हैं। ऊपरी अधिचर्म की कोशिकाओं में वृद्धि, कोशिकाएं आहार नाल की भीतरी सतह की ओर आरबीसी (रक्ताणु) निरंतर प्रतिस्थापित होती रहती हैं। एक अनुमान के अनुसार मानव शरीर में प्रतिदिन 5×10^{9} कोशिकाएं बनाई और हटाई जाती हैं।

(v) *बहुकोशिकी प्रणाली* होने की वजह से विभेदीकरण हेतु अवसर प्राप्त होता है।

11.3 अर्द्धसूत्रीविभाजन या अर्द्धसूत्रण

अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiosis) जनन कोशिकाओं में होता है, जिनका भविष्य लैंगिक कोशिकाएं अथवा युग्मक बनाना होता है। लैंगिक जनन करने वाले प्राणियों में अर्द्धसूत्री विभाजन की कई अवस्थाएं समसूत्री विभाजन की तरह होती हैं। अर्द्ध सूत्रण में, **अर्द्धसूत्रण I** और **अद्धसूत्रण II** विद्यमान होती हैं। और इनमें प्रत्येक में पूर्वावस्था, मध्यावस्था, पश्चावस्था और अंत्यावस्था होती है। प्रथम अर्द्धसूत्री विभाजन के दौरान प्रत्येक समजात जोड़े के गुणसूत्र पृथक होते हैं और अलग-अलग कोशिकाओं में वितरित हो जाते हैं। द्वितीय अर्द्धसूत्री विभाजन में अर्द्धगुणसूत्र जो प्रत्येक गुणसूत्र को बनाते हैं, पृथक हो जाते हैं और संतति कोशिकाओं में वितरित हो जाते हैं। इस प्रकार हर कोशिका में गुणसूत्र की संख्या और डीएनए की मात्रा घट कर आधी रह जाती है।

अंतरावस्था की G_2 अवस्था के अंत में समसूत्री विभाजन की भांति अर्द्धसूत्री विभाजन होता है। अर्द्धसूत्री विभाजन के दौरान होने वाले प्रमुख चरण निम्नवत हैं:

(i) बिना डीएनए का प्रतिकृति बने हुए एक के बाद एक क्रमश: दो विभाजन होना।

(ii) युग्मित होना तथा काइएज्मेटा का बनना और जीन-विनिमय (क्रॉसिंग ओवर)

(iii) समजात गुणसूत्रों का पृथक्कीकरण तथा,

(iv) सहोदर अर्द्धगुणसूत्रों का पृथक होना।

पूर्वावस्था I

आकारिकी के दृष्टिकोण से प्रथम अर्द्धसूत्रीविभाजन की पूर्वावस्था एक लंबी प्रक्रिया है जिसमें समजात गुणसूत्र जोड़ा बनाते हैं और आनुवंशिक पदार्थों का विनिमय करते हैं। सुविधा के लिए प्रथम पूर्वावस्था को पांच उप-अवस्थाओं मे बांटा गया है। **लेप्टोटीन** (leptonema), **जाइगोटीन** (zygonema), **पैकेइटीन** (pachynema), **डिप्लोटीन** (diplonema) और **डाइकाइनेसिस** (diakinesis)।

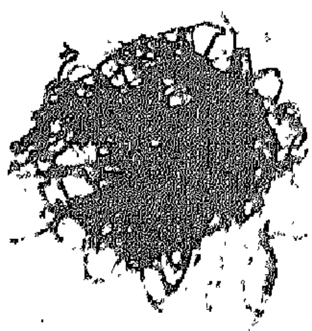
अब हम हर प्रावस्था का कुछ विस्तृत अध्ययन करेंगे।

लेप्टोटीन

जब लेप्टोटीन प्रावस्था शुरू होती है तो प्रत्येक गुणसूत्र प्रथमत: अंतरावस्था से संघनित होकर लंबे धागे बनाते हैं और अपने दोनों सिरों से केंद्रकीय आवरण से खास संरचना द्वारा जुड़ा होते है जिसे **आसंजन पट्टिका** (attachment plate) कहते हैं। हालांकि हर गुणसूत्र प्रतिकृति कर चुका है और इसमें दो सहोदर अर्द्धगुणसूत्रों

का बना होता है, ये अर्धगुणसूत्र एक-दूसरे के बहुत निकट होते हैं और इसलिए एकल सूत्र के बने प्रतीत होते हैं (चित्र 11.4क)।

(क)



(ख)



चित्र 11.4 (क) लेप्टोटीन (ख) जाइगोटीन

जाइगोटीन

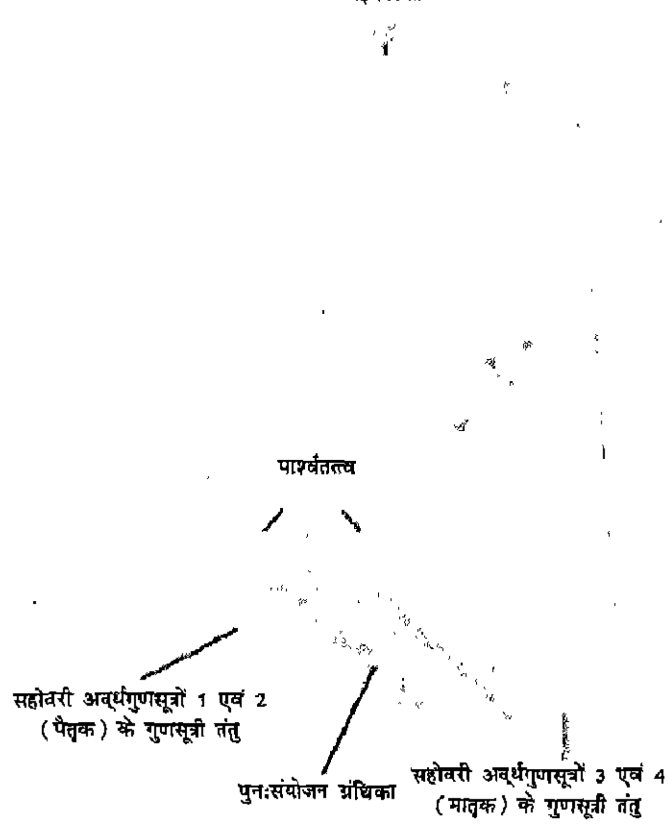
जैसे ही सजातीय गुणसूत्र युगल बनाना प्रारंभ करते हैं, जो **साइनेप्सिस** कहलाता है, जाइगोटीन उपावस्था शुरू हो जाती है। युगल गुणसूत्रों में से एक गुणसूत्र दोनों पृथक जनकों के गुणसूत्रों से आता है। प्राय: साइनेप्सिस तब शुरू होता है जब दो गुणसूत्रों के समजात सिरे से लाए जाते हैं। केंद्रकीय आवरण पर यह जिप की भांति सतत् रहता है जिसके कारण दोनो समजात गुणसूत्र साथ-साथ सटे रहते हैं। युग्मन तीन चरणों में निम्नलिखित तरीकों से पूर्ण होता है:

(i) *प्रोटर्मिनल युग्मन* : दो समजात गुणसूत्रों में किनारों पर युग्मन प्रारंभ हो जाता है जो धीरे-धीरे गुणसूत्र बिंदु की ओर बढ़ता है।

(ii) *प्रोसेंट्री युग्मन* : इसमें युग्मन गुणसूत्र बिंदु के समीप आरंभ होकर सिरों की ओर प्रगति करता है।

(iii) *मिश्रित युग्मन* : इसमें युग्मन अनेक स्थानों पर साथ-साथ आरंभ होता है।

साइनेप्सिस के फलस्वरूप हर जीन अपने उस ऐलील के निकट आता है जो समजात गुणसूत्र पर स्थित होता है। एक लाक्षणिक समजात गुणसूत्र सीढ़ीनुमा संरचना द्वारा निकट लाए जाते हैं, जिसे **सिनेप्टोनिमल सम्मिश्र** कहते हैं (चित्र 11.5)।



चित्र 11.5 सिनैप्टोनिमलसम्मिश्र

इस तरीके से जो गुणसूत्र विन्यास बनता है उसे **युगली** (bivalent) कहते हैं। अर्द्धसूत्री विभाजन के पूर्वावस्था I में प्रत्येक समजाती गुणसूत्र में दो सहोदर अर्द्धगुणसूत्र होते हैं, इस प्रकार प्रत्येक युगली में चार अर्द्धगुणसूत्र होते हैं, जो **चतुष्टक** (tetrad) कहलाते हैं।

पैकेटीन

साइनेप्सिस के पश्चात् यह कहा जाता है कि कोशिका पैकीटीन में प्रवेश कर गई जहां ये कई दिनों तक रह सकती है। इस अवस्था में सिनेप्टोनीमल सम्मिश्र पर बहुत से पुन: संयोजनी पिंड कुछ-कुछ दूरियों पर बनते हैं। ऐसा समझा जाता है कि ये पुन:संयोजन पिंड ग्रंथिकाएं गुणसूत्र के पुन: संयोजन में मदद करती हैं। इस समजात जोड़े के असहोदर अर्द्धगुणसूत्र (किसी समजात युग्म के अलग-अलग गुणसूत्रों के अर्द्धगुणसूत्र) आपस में लिपटकर खंडों का एक-दूसरे से आदान-प्रदान (क्रॉसिंग ओवर) करते हैं।

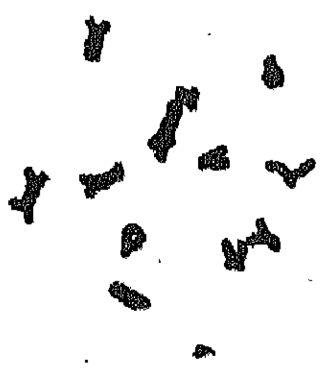
डिप्लोटीन

इसकी शुरूआत समजात गुणसूत्रों के पृथक्करण द्वारा चिह्नित होती है। फिर भी यह पृथक्करण पूरा नहीं हुआ है। ये एक या

अधिक बिंदुओं पर जुड़े रहते हैं, जहां जीन-विनिमय हुआ था। इन बिंदुओं को **काइएज्मेटा** कहते हैं। अंडकों (Oocytes) में डिप्लोटीन महीनों या सालों चलती रह सकती है। इस अवस्था में गुणसूत्र असंघनित होते हैं और आरएनए संश्लेषण में लग जाते हैं। कुछ जातियों में गुणसूत्र बहुत फैल जाते हैं और **लैम्पब्रुश गुणसूत्र** बनाते हैं जो उभयचरों और कुछ दूसरे प्राणियों में पाए जाते हैं।

डायाकाइनेसिस

डायाकाइनेसिस की शुरूआत काइएज्मेटा के अंत होने से होती है। इस अवस्था में आरएनए का संश्लेषण रुक जाता है और गुणसूत्र संघनित और स्थूलित होकर केंद्रक भित्ति से संलग्न हो जाते हैं। सहोदर अद्र्धगुणसूत्र का हर युग्म सेंट्रोमियर से जुड़ा होता है, जबकि समजात गुणसूत्रों के असहोदर अद्र्धगुणसूत्र एक दूसरे से या तो टीलोमर (telomeres) पर या उनके पास संपर्क में रहते हैं (चित्र 11.6)।



चित्र 11.6 अद्र्धसूत्री विभाजन में डायाका इनेसिस

मध्यावस्था I

मध्यावस्था प्रथम के दौरान युगली मध्य पट्टिका के तल में व्यवस्थित होकर मध्य रेखा पट्टिका (equatorial plate) बनाती हैं (चित्र 11.7)। प्रत्येक गुणसूत्र का गुणसूत्र बिंदु विपरीत ध्रुव की ओर विन्यासित रहता है तथा गुणसूत्रों की भुजाएं मध्य रेखा पट्टी की ओर रहती हैं।

पश्चावस्था I

इस अवस्था में युगली के दोनों सदस्य एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करते हुए प्रतीत होते हैं और विपरीत ध्रुवों की ओर गति करते हैं। इस प्रकार हर ध्रुव को आधी संख्या में गुणसूत्र अथवा गुणसूत्र का अगुणित समुच्चय प्राप्त होता है। इस प्रकार गुणसूत्रों की वास्तविक संख्या आधी रह जाती है। गुणसूत्रों की गति तर्कुतंतुओं के छोटे होने के कारण से होती है जैसे कि सूत्रीविभाजन में होता है।

अंत्यावस्था I

इस अवस्था में अंत:प्रद्रव्यी जालिका द्वारा संतति गुणसूत्रों के समूह के चारों ओर केंद्रककला बनाई जाती है और केंद्रक में एक केंद्रिका दृष्टिगत होने लगती है। परिणामस्वरूप दो संतति कोशिकाएं बनती हैं जिनमें से प्रत्येक अगुणित गुणसूत्र संख्या धारण करती है।

अंत: अद्र्धसूत्री अंतरावस्था

यह प्रथम अर्धसूत्री विभाजन की अंत्यावस्था और द्वितीय अद्र्धसूत्री विभाजन की पूर्वावस्था के बीच की अवस्था है। सूत्रीविभाजन के कोशिका चक्र में तो गुणसूत्रों के डीएनए का प्रतिकृतिकरण इस अवस्था में होता है लेकिन अर्धसूत्री विभाजन में डीएनए का प्रतिकृतिकरण नहीं होता है। संतति कोशिकाओं में गुणसूत्र संख्या के ह्रास के लिए यह महत्त्वपूर्ण है।

द्वितीय अर्धसूत्रीविभाजन

द्वितीय अर्धसूत्रीविभाजन मूल रूप से सूत्रीविभाजन की भांति ही होता है। यह हर अगुणित अर्धसूत्रीकोशिका को दो संतति कोशिकाओं में विभाजित कर देता है। सूत्रीविभाजन की भांति इसको भी चार अवस्थाओं में वर्णित किया गया है (चित्र 11.7)।

पूर्वावस्था II

पूर्वावस्था II, पूर्वावस्था I की भांति जटिल व्यवहार प्रदर्शित नहीं करती और इसमें सूत्रीपूर्वावस्था के लक्षणों को प्रदर्शित करती है। सूत्रीविभाजन की भांति तर्कु निर्माण होता है और केंद्रकीय कला अदृश्य हो जाती है।

मध्यावस्था II

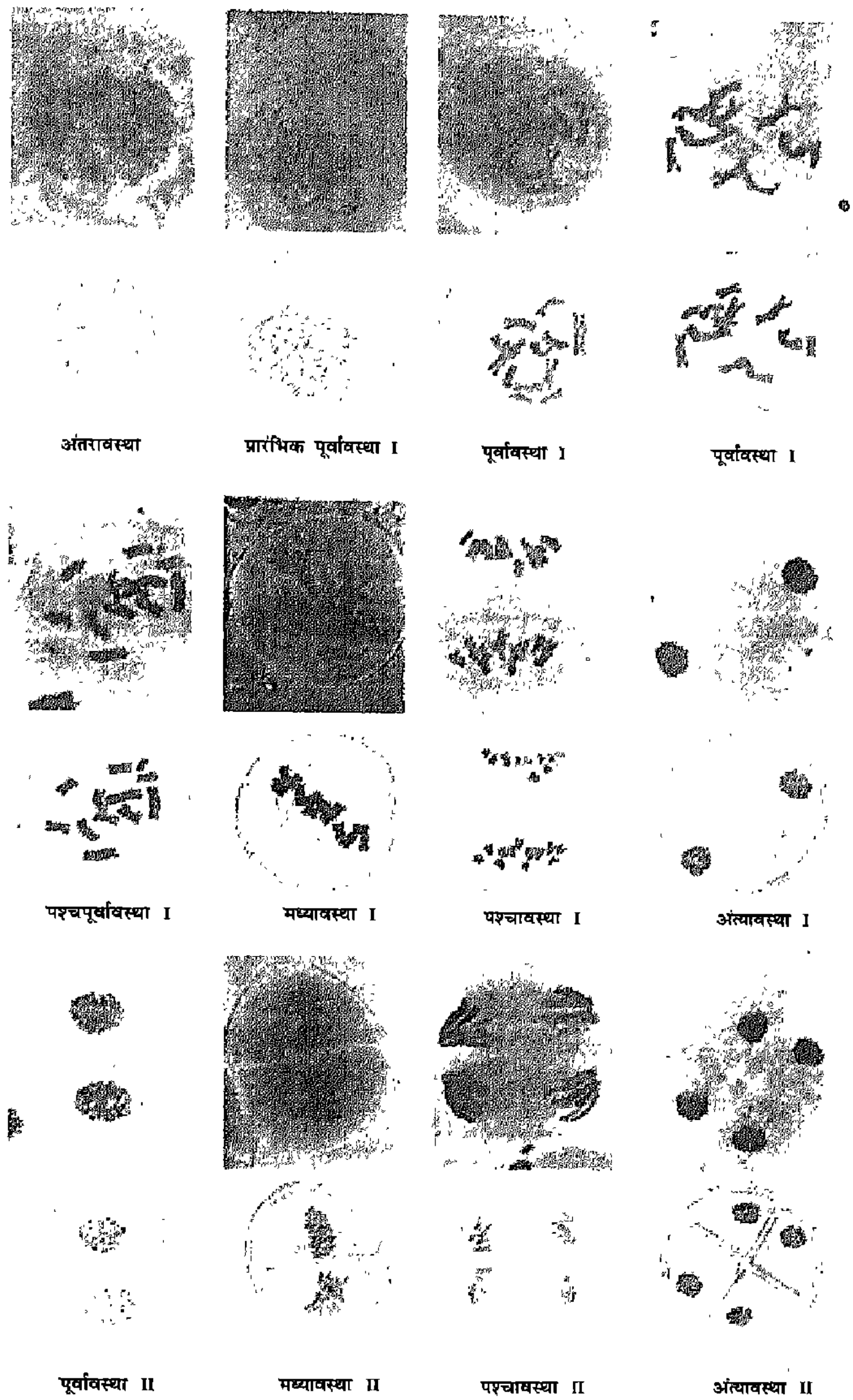
गुणसूत्र मध्य रेखा पट्टिका पर झुके रहते हैं तथा तर्कु से इनके संबंध सूत्रीविभाजन की मध्यावस्था के समान होते हैं।

पश्चावस्था II

इस अवस्था में प्रत्येक गुणसुत्र के दो सहोदर अर्धगुणसूत्रों में अलग-अलग हो जाते हैं जो विपरीत ध्रुवों की ओर गति करते हैं। विभाजन के बाद हर अद्र्धगुणसूत्र गुणसूत्र में परिवर्तित हो जाता है। अत: प्रत्येक गुणसूत्र में प्रतिकृतिकरण के पहले एक और बाद में दो अद्र्धगुणसूत्र होते हैं।

अंत्यावस्था II

इस अवस्था में गुणसूत्रों के चार समूह 4 अगुणित केंद्रकों के रूप में व्यवस्थित हो जाते हैं। गुणसुत्र अंतरावस्था में लौट आते हैं। अंतप्रद्रव्यी जालिका गुणसूत्रों के चारों ओर केंद्रककला का निर्माण करती है। केंद्रिका पुन: दृष्टिगत हो जाती है। यह राइबोसोमी प्रोटीनों के सहयोग से राइबोसोमी डीएनए सांचे पर संश्लेषित होने वाले आरएनए के उसके साथ संबद्ध होने के कारण होता है। इस अवस्था में प्रत्येक केंद्रक में अगुणित गुणसूत्र होते हैं और यह चार कोशिकाओं का निर्माण करते हैं।



चित्र 11.7 अर्द्धसूत्रीविभाजन की अवस्थाएं

अर्द्धसूत्री विभाजन का महत्व

(i) अर्द्धसूत्रीविभाजन लैंगिक रूप से प्रजनन करने वाले प्राणियों में गुणसूत्रों की निश्चित और अपरिवर्तित संख्या बनाए रखता है।

(ii) जीन विनिमय द्वारा अर्द्धसूत्री विभाजन, जीनों के आदान प्रदान की प्रक्रिया को अवसर प्रदान करता है और इस तरह से जाति में आनुवंशिक परिवर्तन उत्पन्न करता है। यह परिवर्तन विकासीय प्रक्रिया हेतु कच्चे माल के समान सिद्ध होता है।

(iii) निम्न के कारणें से अर्धसूत्री विभाजन का आनुवंशिकी पर प्रभाव पड़ता है :

(अ) समजात गुणसूत्रों का युग्मन

(ब) जीन-विनिमय और पुनर्गठन की प्रक्रिया

(स) समजात गुणसूत्रों का पृथक्करण।

आप सूत्री और अर्द्धसूत्री विभाजनों का तुलनात्मक ज्ञान सारिणी संख्या 11.1 से प्राप्त कर सकते हैं :

सारिणी 11.1 सूत्रीविभाजन और अर्धसूत्रीविभाजन में अंतर

सूत्रीविभाजन	अर्धसूत्रीविभाजन
मात्र एक डीएनए प्रतिकृतिकरण के एक क्रम के बाद कोशिका सिर्फ एक बार विभाजित होती है ।	दो क्रमिक कोशिका विभाजन होते हैं-- प्रथम और द्वितीय अर्द्धसूत्री विभाजन ।
सूत्रीविभाजन कायिक कोशिकाओं में होता है ।	अर्द्धसूत्री विभाजन जनन कोशिकाओं में होता है ।
यह लैंगिक और अलैंगिक दोनों ही विधियों से जनन करने वाले प्राणियों में होता है ।	यह मात्र लैंगिक जनन करने वाले जीवों में होता है ।
डीएनए सिर्फ एक कोशिका के विभाजन के लिए प्रतिकृत होता है ।	दो बार कोशिका विभाजन के लिए डीएनए एक बार प्रतिकृत होता है ।
पूर्वावस्था सूक्ष्मकालिक मात्र कुछ घंटों की होती है	पूर्वावस्था अपेक्षाकृत लंबी होती है और कुछ दिनों तक चलती है।
पूर्वावस्था अपेक्षाकृत सरल होती है ।	पूर्वावस्था जटिल होती है और लेप्टोटीन, जाइगोटीन, पैकेटीन और डिप्लोटीन तथा डाएकाइनेसिस में विभाजित होती है।
कोशिका सिर्फ एक बार विभाजित होती है और गुणसूत्र भी एक बार ।	इसमें दो बार कोशिका विभाजन होता है लेकिन गुणसूत्र केवल एक बार विभाजित होते हैं ।
कोई साइनेप्सिस नहीं होता ।	पूर्वावस्था I के दौरान समजात गुणसूत्रों में साइनेप्सिस होता है ।
पूर्वावस्था के दौरान गुणसूत्र के दोनों अर्द्धगुणसूत्रों में खंडों का विनिमय नहीं होता ।	पूर्वावस्था I की पैकेटीन में समजात गुणसूत्र के समजात खंडों का विनिमय होता है ।
पूर्वावस्था और मध्यावस्था के दौरान हर गुणसूत्र में दो अर्द्धगुणसूत्र, गुणसूत्र बिंदु पर संलग्न रहते हैं । पूर्वावस्था में अर्द्धगुणसूत्र की भुजाएं एक-दूसरे के समीप स्थित होती हैं ।	पूर्वावस्था और मध्यावस्था के दौरान गुणसूत्र युगली बनाते है । प्रत्येक युगली में चार अर्धगुणसूत्र और दो गुणसूत्रबिंद, होते हैं। पूर्वावस्था II में अर्धगुणसूत्र भुजाएं एक--दूसरे से पृथक रहती हैं ।
पश्चावस्था के दौरान गुणसूत्रबिंदु विभाजित होता है ।	पश्चावस्था I के समय गुणसूत्रबिंदु का विभाजन नहीं होता सिर्फ पश्चावस्था II के समय इसका विभाजन होता है ।
अंत्यावस्था में तर्कुतंतु पूर्णत: विलुप्त हो जाते हैं ।	अंत्यावस्था II के समय तर्कु तंतु पूरी तरह विलुप्त नहीं होते ।
अंत्यावस्था में केंद्रिकाएं पुन: दृष्टिगत होती हैं ।	अंत्यावस्था I के समय केंद्रिका पुन: दृष्टिगत नहीं होती ।
सूत्रीविभाजन के उपरांत गुणसूत्रों की संख्या समान रहती है। संतति कोशिकाओं का आनुवंशिक संगठन अपनी जनक कोशिका के समान होता है ।	गुणसूत्र संख्या घटकर द्विगुणित से अगुणित रह जाती है । संतति कोशिकाओं का आनुवंशिक संगठन अपनी जनक कोशिका से भिन्न होता है । जीन-विनिमय के कारण प्रत्येक गुणसूत्र में मातृ एवं पितृ जनक जीनों का मिश्रण होता है ।

सारांश

सभी असीमकेंद्रकी जीव अपने जीवन का प्रारंभ एक कोशिका से करते हैं। एक कोशिका से अरबों-खरबों कोशिकाएं उत्पन्न होती हैं। कोशिका विभाजन दो प्रकार का होता है--सूत्री और अर्द्धसूत्री। कोशिका चक्र पूर्ण शृंखलाबद्ध पदों को प्रदर्शित करता है जिसके द्वारा कोशिकीय पदार्थ दो संतति कोशिकाओं में बराबर विभाजित हो जाता है। कोशिका चक्र में दो काल होते हैं : (i) अंतरावस्था: कोशिका विभाजन की तैयारी की अवस्था तथा (ii) विभाजन का वास्तविक समय। अंतरावस्था को पुन: विभक्त किया जाता है G_1, S, G_2 । G_1 में कोशिका बढ़ती है। S अवस्था में क्रोमेटिन पदार्थ का द्विगुणन जैसे कि डीएनए का निर्माण होता है जबकि G_2 में प्रोटीन का। जंतुओं में तारककेंद्र विभक्त होकर नया जोड़ा बनाता है। अंतरावस्था में गुणसूत्रों का प्रतिकृतिकरण होता है। इस प्रकार से हर गुणसूत्र में अब दो अर्द्धगुणसूत्र होते हैं।

सूत्रीविभाजन की मुख्य अवस्थाएं हैं ; पूर्वावस्था, पूर्वामध्यावस्था, मध्यावस्था, पश्चावस्था एवं अंत्यावस्था। पूर्वावस्था गुणसूत्रों के छोटे तथा स्थूल होने से स्पष्ट होती है। साथ-साथ ही तारककेंद्र विपरीत ध्रुवों की ओर गति करता है। केंद्रकीय आवरण विलोपित हो जाता है, तर्कुतंतु दिखना प्रारंभ हो जाते है तथा केंद्रिका अदृश्य हो जाती है। मध्यावस्था में गुणसूत्र केंद्र में आकर मध्य-पट्टिका बनाते हैं। गुणसूत्र बिंदु भी मध्यावस्था रेखा पर व्यवस्थित हो जाते हैं तथा गुणसूत्रों की भुजाएं विपरीत दिशा की ओर विन्यासित रहती हैं । पश्चावस्था के समय गुणसूत्रबिंदु विभाजित हो जाते हैं। संतति गुणसूत्र भी दो में विभक्त होकर पृथक हो जाते हैं। प्रत्येक गुणसूत्र समूह विपरीत ध्रुवों की तरफ प्रस्थान करते हैं। जब गुणसूत्रों के दोनों समूह विपरीत ध्रुवों पर पहुंच जाते हैं तो अंत्यावस्था प्रारंभ होती है। प्रत्येक गुणसूत्र समूह के चारों ओर एक केंद्रक आवरण का निर्माण होता है। केंद्रिकाएं भी पुन: उपस्थित हो जाती हैं। गुणसूत्र अकुंडलित होकर अपनी आकृति खो देते हैं। कोशिका-द्रव्य विभाजन से अभिप्राय है कोशिका-द्रव्य का विभाजन। किसी जंतु कोशिका में दो संतति केंद्रकों के बीच एक खांच दिखाई देने लगती है, यह खांच गहरी होती जाती है तथा दो संतति कोशिकाओं का निर्माण करती है। इसके विपरीत पादप कोशिका में कोशिका के मध्य से एक कोशिका पट्टिका वृद्धि करती हुई परिधि की ओर बढ़ती है तथा दो संतति केंद्रकों को पृथक कर देती है। सभी कोशिकांग संतति कोशिकाओं में समान मात्रा में वितरित हो जाते हैं। सूत्री विभाजन, संतति कोशिका में पितृ कोशिकाओं के समान गुणसूत्रों की संख्या का नियमन करता है। यह सतह--आयतन अनुपात का नियमन भी करता है। यह विभाजन केंद्रक-कोशिका द्रव्य सूचकांक को भी पुनः स्थापित करता है। सजीवों में शरीर की वृद्धि तथा टूटे हुए ऊतकों एवं अंगों की मरम्मत आदि भी सूत्रीविभाजन द्वारा होती है।

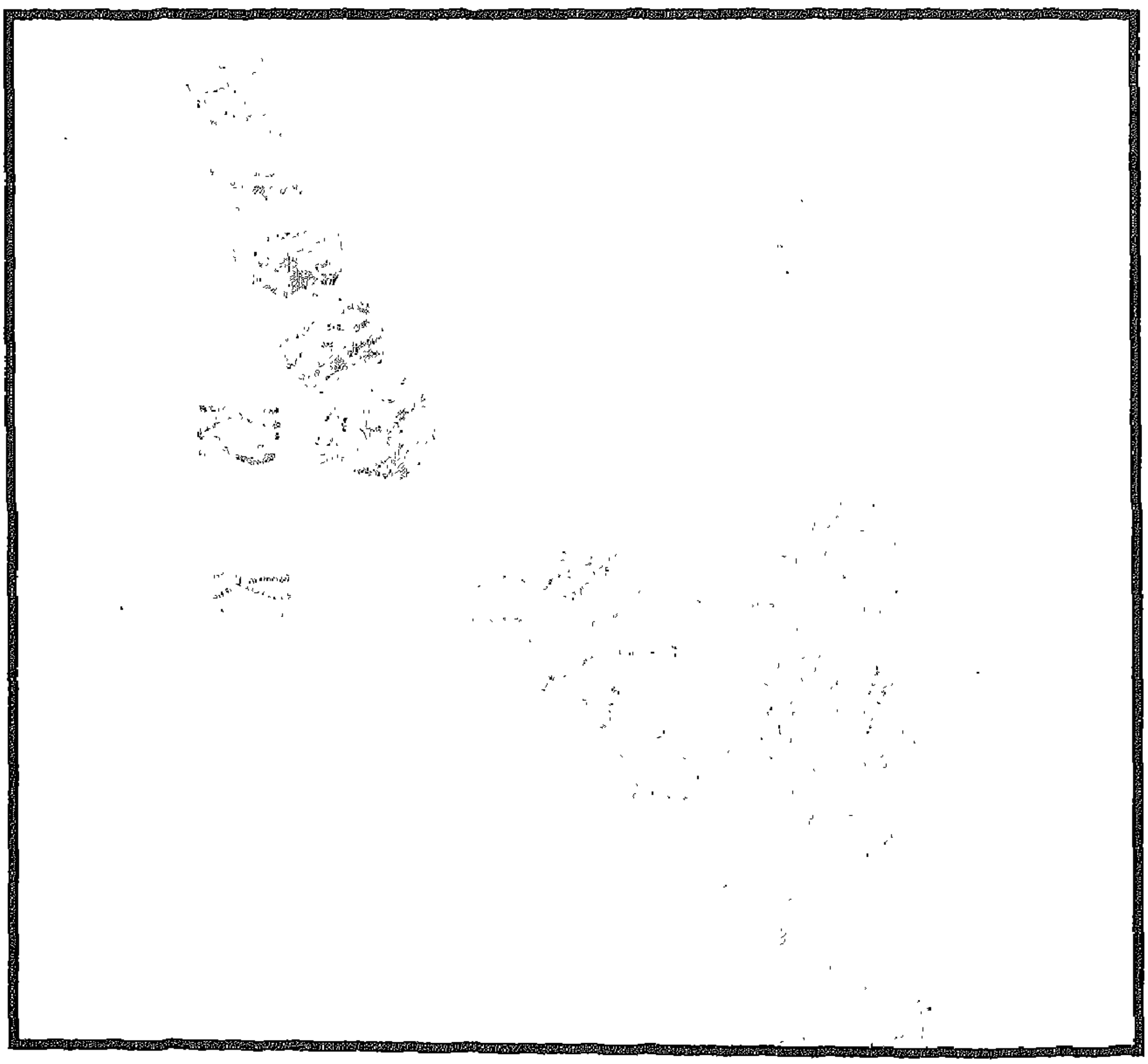
पूर्वावस्था में केंद्रक आवरण नष्ट हो जाता है। तर्कु सूक्ष्म नलिकानुमा प्रोटीन का बना होता है तथा यह पश्चावस्था जन्य गति प्रदान करता है। गुणसूत्रों की लंबाई पश्चावस्था के समय अपेक्षाकृत छोटी हो जाती है तथा वे ध्रुवों की ओर गति करते हैं।

अर्द्धसूत्रीविभाजन जनन कोशिकाओं में होता है जिसके द्वारा गुणसूत्रों की संख्या जनन कोशिका की तुलना में संतति कोशिका घट कर आधी रह जाती है। अर्द्धसूत्री विभाजन को दो प्रावस्थाओं में बांटा जाता है-प्रथम एवं द्वितीय अर्द्धसूत्री प्रावस्था-अर्द्धसूत्री विभाजन प्रावस्था-I व II। प्रथम अर्द्धसूत्री विभाजन प्रावस्था में समजात गुणसूत्र जोड़े युगली बनाते हैं तथा काइऐज्मा के माध्यम से आनुवंशिक पदार्थों का विनिमय करते हैं। इसके उपरांत वे पृथक होकर संतति कोशिकाओं में बंट जाते हैं । इसमें पूर्वावस्था- I, पांच उपरांत अवस्थाओं में विभाजित की जाती है। ये हैं : लेप्टोटीन, जाइगोटीन, पैकेटीन, डिप्लोटीन और डाएकाइनेसिस । मध्यावस्था-I के समय युगली मध्यावस्था पट्टिका पर व्यवस्थित हो जाते हैं जिसमें उनकी भुजा पट्टिका पर तथा गुणसूत्र बिंदु विपरीत ध्रुवों की ओर विन्यासित रहते हैं। इसके पश्चात् पश्चावस्था-I अवस्था आती है जिसमें समजात गुणसूत्र एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होकर संतति गुणसूत्र के साथ विपरीत ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं। तदनुसार प्रत्येक ध्रुव जनक कोशिका की तुलना में आधे गुणसूत्र प्राप्त करता है। अंत्यावस्था I के समय केंद्रक आवरण एवं केंद्रिका पुन: दिखाई देने लगते हैं। अर्द्धसूत्री विभाजन-II की विभिन्न प्रावस्थाएं सूत्रीविभाजन के ही समान होती हैं। इसमें प्रत्येक गुणसूत्र का बिंदु टूट कर दो संतति गुणसूत्रों को अलग कर देता है। प्रत्येक संतति कोशिका में एक संतति गुणसूत्र चला जाता है। अर्द्धसूत्री विभाजन जाति की गुणसूत्र संख्या का नियमन करता है । अर्द्धसूत्री विभाजन के पश्चात् चार संतति कोशिकाएं बनती हैं जिसमें से प्रत्येक में गुणसूत्रों की संख्या आधी रहती है।

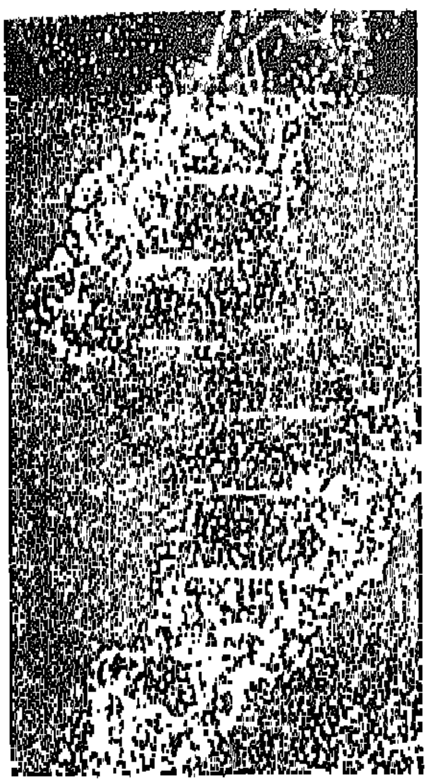
अभ्यास

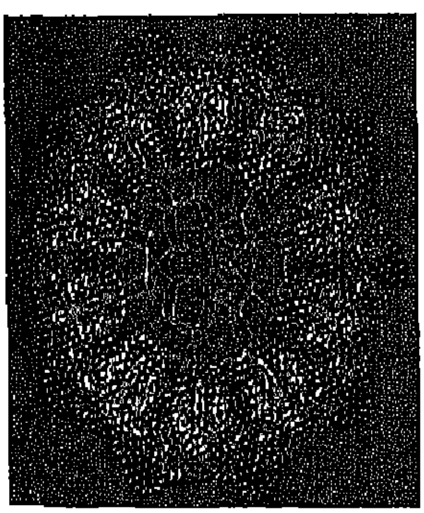
1. कोशिका चक्र क्या है ?
2. सूत्रीविभाजन की अंतरावस्था के समय होने वाले परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।

3. सूत्रीविभाजन की पूर्वावस्था के समय होने वाली घटनाओं के क्रम का वर्णन कीजिए।
4. अर्द्धसूत्रीविभाजन को ह्रासित विभाजन क्यों कहते हैं जब कि सूत्रीविभाजन को समानुपातिक विभाजन कहते हैं?
5. उन बलों के नाम लिखिए जो कोशिका विभाजन के समय गुणसूत्री गति में सहायता करते हैं।
6. सूत्रीविभाजन का महत्त्व बताइए।
7. अर्द्धसूत्रीविभाजन की मध्यावस्था- I और सूत्रीविभाजन की मध्यावस्था में अंतर दर्शाइए।
8. अर्द्धसूत्री विभाजन की प्रावस्था- I की विभिन्न उपावस्थाओं के नाम लिखिए।
9. काइएज्मेटा क्या हैं तथा इनका क्या महत्त्व है ?
10. जंतु और पादप कोशिका के कोशिका-द्रव्य विभाजन में क्या भिन्नता है? स्पष्ट कीजिए।
11. अर्द्धसूत्रीविभाजन लैंगिक जनन करने वाले प्राणियों में क्यों आवश्यक है ?
12. अर्द्धसूत्रीविभाजन II के समय होने वाले क्रमबद्ध परिवर्तनों का चित्र बनाइए।
13. जायगोटीन के समय होने वाले युगलीकरण की विभिन्न विधियां कौन-कौन सी हैं ?
14. अर्द्धसूत्री और सूत्रीविभाजन में अंतरों की सूची बनाइए।



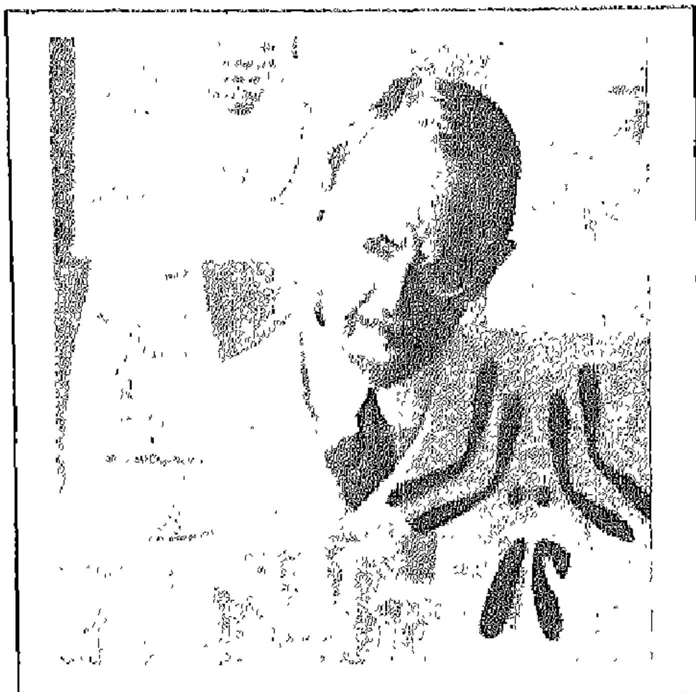
इकाई चार





आनुवंशिकी

अलैंगिक एवं लैंगिक जनन द्वारा जीवन की सततता संभव हुई। लैंगिक जनन नई संततियां उत्पन्न करने के अतिरिक्त इनमें जनकों के लक्षणों को समाहित कर विविधता उत्पन्न करते हैं। ये लक्षण किस प्रकार वंशानुगत होते हैं तथा वे कौन-से नियम हैं, जो वंशागतता को संचालित करते हैं। एक लंबे समय तक जब तक कि एक शताब्दी पूर्व मेन्डल एवं अन्य वैज्ञानिकों ने इस रहस्य से पर्दा उठाया, पहेली बनी रहीं। अब हम यह भली-भांति जानते हैं कि आनुवंशिकी की इकाई जीन हैं तथा यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होते रहते हैं। वंशागतता के समय गुणसूत्रों एवं जीनों का समानांतर व्यवहार, जीनों के गुणसूत्रों पर उपस्थित होने की पुष्टि करता है। जीनें विशिष्ट गुणसूत्रों के विशिष्ट स्थलों पर रेखीय क्रम में विन्यासित रहती हैं। किसी भी जीव की क्षमता से संबंधित सूचना एवं कार्यक्रम का संवाहन करने वाले अणु को डीऑक्सीराइबोस न्यूक्लिक अम्ल अथवा डीएनए कहते हैं। कुछ विषाणुओं में यह कार्य राइबोस न्यूक्लिक अम्ल अथवा आरएनए द्वारा संपन्न किया जाता है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह पता चल चुका है कि असीमकेंद्रकियों एवं ससीमकेंद्रकियों में जीन किस प्रकार कार्य करते हैं? इसके अलावा यह भी संज्ञान में आ चुका है कि जीन किस प्रकार अभिव्यक्ति करते हैं? परंतु अभी तक यह पूर्णतः पता नहीं चल सका है कि डीएनए की संकेतित सूचना के कुछ अंश तो सदैव अभिव्यक्ति करते रहते हैं, लेकिन अन्य मात्र आवश्यकता पड़ने पर ऐसा करते हैं। जीन की अभिव्यक्ति में विभेद ही सामान्य वृद्धि, विभेदन और कैंसर रोग के समझने का आण्विक आधार प्रस्तुत करती है। आण्विक जैविकी के क्षेत्र में हुई प्रगति ने हमें कुछ ऐसे सशक्त उपकरण एवं तकनीकें प्रदान की हैं जिनके द्वारा विशिष्ट जीनों को पृथक तथा एक जीव से दूसरे में स्थानांतरित भी किया जा सकता है। इन जीन तकनीकों द्वारा कृषि एवं चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न किए गए हैं। जैसे-जैसे वैज्ञानिकों द्वारा मानव समेत अन्य जीवों के समस्त आनुवंशिक पदार्थ का मानचित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है, हम उससे विभिन्न रोगों के निदान, अपराध विज्ञान एवं जैविक विकास के रहस्यों को समझने की ओर आशाभरी दृष्टि से देख रहे हैं। इस इकाई द्वारा आप आनुवंशिकी के विभिन्न पहलुओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।



थॉमस हन्ट मोर्गन

(1866-1945)

अमेरिकी आनुवंशिकीविद् थॉमस हन्ट मोर्गन ने जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय, अमेरिका में अध्ययन किया था। प्रारंभ में मोर्गन की अभिरुचि भ्रूणविज्ञान की ओर थी लेकिन बाद में उन्होंने वंशागतता से संबद्ध कार्य कर अपना शोधक्षेत्र परिवर्तित कर लिया । मोर्गन ने पाया कि विशिष्ट गुणों के जनकों से अनेक संततियों में स्थानांतरण की दृष्टि से बहुत तेजी से गुणन करने वाली फलमक्खी एक आदर्श प्रायोगिक जीव है। ऑस्ट्रियन वैज्ञानिक ग्रेगर मेन्डल द्वारा आनुवंशिकी के क्षेत्र में किए गए शोधकार्य का अनुसरण करते हुए मोर्गन ने फलमक्खी की वंशावली के चित्रण में बौने पंख, असममित शरीर और बेमेल आंखों का रंग आदि कुछ उत्परिवर्तित लक्षणों को सम्मिलित करते हुए वंशागतता की विस्तृत व्याख्या की । उन्होंने यह अनुभव किया कि ड्रोसोफिला में गुणसूत्रों की तुलना में जीनों की संख्या कहीं अधिक होती है । उन्होंने लैंगिक गुणसूत्रों तथा आनुवंशिक मानचित्रण की तकनीक की भी खोज की । हम मोर्गन के आभारी हैं कि 1926 में प्रकाशित उनकी पुस्तक दी थ्योरी ऑफ दी जीन के द्वारा आनुवंशिकी, जीव विज्ञान की एक विधिसंगत शाखा के रूप में स्वीकृत हो गई । उन्हें 1933 में कार्यिकी अथवा चिकित्सा-विज्ञान में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया था।

अध्याय 12

वंशागतता का आनुवंशिक आधार

पूर्ववर्ती इकाइयों में आप जैविक जीवन के कई पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं, अब हम अध्ययन करेंगे कि लक्षण और विशेषताएं किस प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक वंशागत होते हैं। यद्यपि कोशिका संगठन स्तर पर, जीवन के अलग-अलग रूपों में एकसमान प्रतिरूप हो सकते हैं, जीव के स्तर पर सरलता से पर्याप्त विविधता प्रकट हो जाती है। इस विविधता का आकलन करते हुए एक बिंदु जिसने आपका ध्यान अवश्य आकर्षित किया होगा, वह है किसी जाति के सदस्यों में निकट समानता। यह समानताएं तब और भी दृढ़ प्रतीत होती हैं जब हम समान पूर्वजों की संतानों--अर्थात् मां-बाप (जनकों) और उनकी संतति की ओर दृष्टिपात करें। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक जीवंत जीव में लक्षणों का एक ऐसा समुच्चय विद्यमान होता है जिससे इसे किसी जाति-विशेष के सदस्य के रूप में सरलता से पहचाना जा सकता है। आनुवंशिकी में हम इस विषय का अध्ययन करते हैं कि कैसे एक जाति के सदस्यों में विशिष्ट लक्षणों का समावेश होता है और यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी कैसे बनाए रखे जाते हैं। यद्यपि आनुवंशिकी अपेक्षाकृत एक नई शाखा है, इसका मानवीय परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्त्व है।

12.1 वंशागति : आनुवंशिकता एवं विविधता

जीवन के रूपों में पर्याप्त विविधता पाई जाती है लेकिन फिर भी यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो पाएंगे कि कुछ समानताओं के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में बांट सकते हैं। उदाहरणार्थ, मानव शिशु मानवों के समान लक्षणों वाले तथा कुतिया के पिल्ले सदैव उसकी प्रजाति के अनुरूप लक्षणधारी होते हैं। यह स्थिति "जैसा बाप- वैसा बेटा" नामक कहावत में भली-भांति चरितार्थ होती है। यदि हम इस कहावत की समीक्षा आनुवंशिकी के ज्ञान के संदर्भ में करें तो इससे जीवन की सतत्ता का आभास भली-भांति होता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि लक्षणों के एक समुच्चय को धारण करने की क्षमता एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित की जाती है, यह परिघटना आनुवंशिकता अथवा वंशागति कहलाती है।

इस समानता में किसी जाति के सदस्यों के लक्षणों में पाए जाने वाले भेद अथवा विविधताएं भी सम्मिलित हैं। कुल मिलाकर हम किसी कुल के सदस्यों में एक-जैसी जुड़वां संतानों को छोड़कर, सरलतापूर्वक अंतर कर सकते हैं और इसी प्रकार हम अपने पालतू कुत्ते का अन्य कुत्तों से भेद कर सकते हैं। अत: हमें किसी भी आनुवंशिक घटक की जाति विशेष में विद्यमान इन विविधताओं की भी व्याख्या करनी चाहिए। जैसा कि हम बाद में अध्ययन करेंगे, आनुवंशिकता (संतान की जनकों से समानता) एवं विविधताएं (आपस में तथा संतानों और जनकों में भिन्नताएं) एक ही मूलभूत अभिक्रिया के दो पक्ष हैं।

वंशागतता और विविधता के दूसरे घटक का संबंध किसी जाति की जनन-विधि से है। एक सामान्य विश्लेषण के आधार पर हम पाएंगे कि अधिकांश लैंगिक जनन करने वाले जीवों, जैसे कि प्राय: सभी जंतुओं, पादपों एवं कुछ सूक्ष्मजीवियों में विविधता, सरलता से दृष्टव्य है। दूसरी ओर बहुत से निम्न श्रेणी के जीव जैसे सूक्ष्मजीव, कवक कुछ पादप एवं कुछ निम्न जंतु अलैंगिक जनन दर्शाते हैं। यहां संतान का जन्म मात्र एक ही जनक से होता है और वे मात्र उसी के लक्षण प्राप्त करते हैं।

12.2 मेन्डल से पूर्व के आनुवंशिकता संबंधी विचार

यह कहना कठिन है कि लोगों ने वंशागतता की विद्यमानता प्रथमत: कब जानी। पुरातत्त्व संबंधी कई प्रकार के प्रमाणों जैसे गुफा-चित्रों और प्रस्तर पर बने खुदाई आकारों से हजारों वर्ष पूर्व पशुओं एवं पादपों के सफल पालतूकरण का अभिलेख प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राग्-ऐतिहासिक मानव ने मानव वंशागतता और आनुवंशिक विविधताओं का कृत्रिम चयन सीखा। लंबे समय तक यह विचार रहा कि गर्भाधान के समय पूर्वजों के लक्षण किसी प्रकार "मिश्रित" हो जाते हैं तथा संतानों में आवश्यक रूप से पूर्वजों के विभिन्न लक्षणों का सम्मिश्रण होता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक श्लाइडेन एवं श्वान द्वारा कोशिका सिद्धांत के प्रतिपादित होने पर जीवों के

आकस्मिक उद्गम का सिद्धांत अस्वीकृत हो गया। परंतु जीवों का लक्षणों के साथ संबंध, विशेष सृष्टि के धार्मिक विश्वास के साथ जुड़ा रहा।

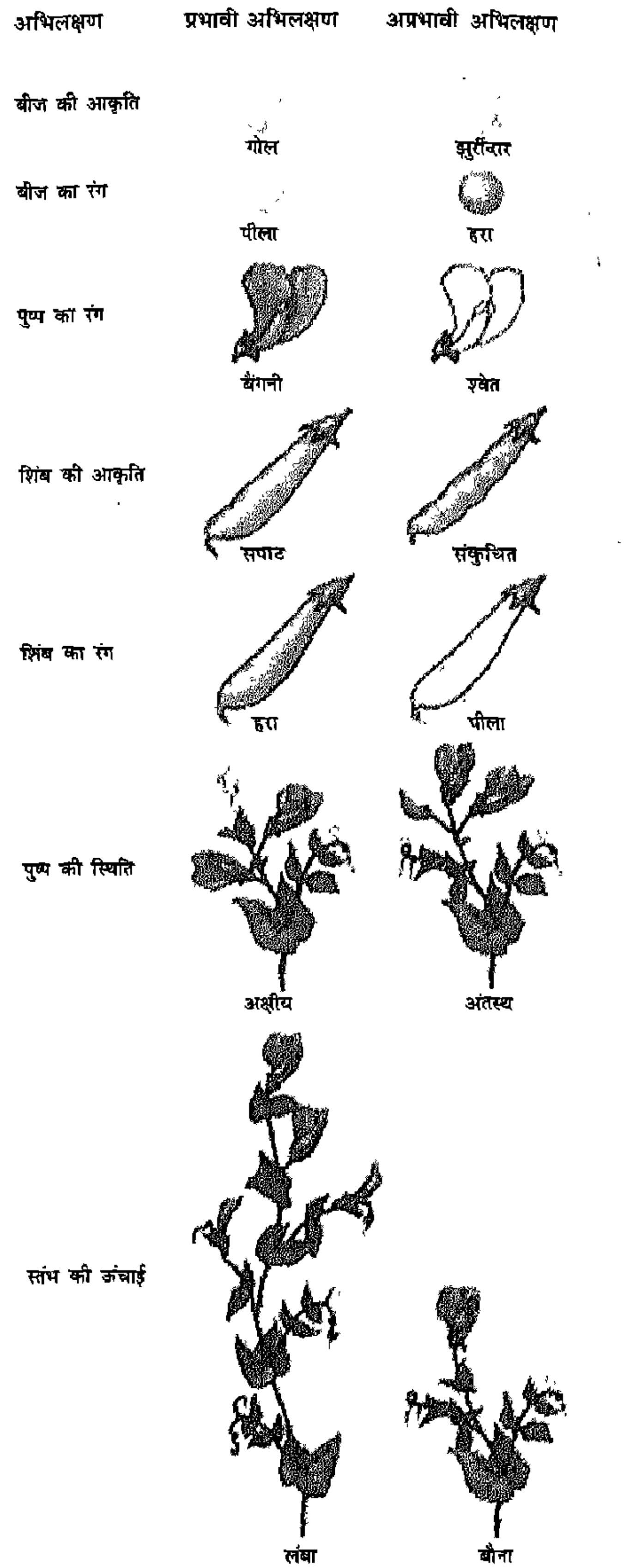
चार्ल्स डार्विन, जो अपने **प्राकृतिक वरण के सिद्धांत** (theory of natural selection) के लिए प्रसिद्ध हैं, ने भी अपनी पैंजीनवाद की परिकल्पना सम्मुख रखी। इसके अनुसार शरीर के प्रत्येक भाग में से एक प्रतिनिधि 'जैम्यूल' उत्पन्न होता है जो रक्त-चक्रण के फलस्वरूप वीर्य में एकत्र हो जाता है अंततः यह 'जैम्यूल' संतान में लक्षण स्थानांतरित करते हैं। वर्ष 1892 में आगस्त वाइजमान ने यह मत प्रतिपादित किया कि जीवों में दो प्रकार के पदार्थ होते हैं : काय-द्रव्य एवं जनन-द्रव्य। प्रथम तो पूर्ण शरीर का निर्माण करता है जो विकास, वृद्धि तथा अंत में मृत्यु को प्राप्त होता है। जबकि दूसरा अमर होता है। स्पष्टतः यह अगली पीढ़ी में सततता बनाए रखता है।

12.3 ग्रेगर मेन्डल और उनका आनुवंशिकता का सिद्धांत

अब हम देखेंगे कि किस प्रकार ग्रेगर मेन्डल ने आनुवंशिकता का सिद्धांत खोजा। 1856 में मेन्डल ने मटर में नियंत्रित संकरण संबंधी अपने प्रयोग ब्रूनो के गिरिजाघर के उद्यान में प्रारंभ किए। ये प्रयोग 7 वर्षों तक चलते रहे। 1865 में उन्होंने अपने प्रयोगों के कुछ परिणामों को प्रकाशित किया, लेकिन उनका कार्य वर्षों तक अज्ञात और अप्रशंसित रहा। वर्ष 1900 में तीन आनुवंशिकीविदों ने स्वतंत्र रूप से इनकी पुनः खोज की। मेन्डल को "आनुवंशिकी का पिता" ठीक ही कहा गया है।

मेन्डल का प्रयोग

मेन्डल ने अपने प्रयोगों के लिए उद्यानी मटर *पाइसम सैटाइवम* का चयन किया। लेकिन उन्होंने इस पौधे का चयन क्यों किया? यह इसलिए उपयुक्त था क्योंकि मटर का पौधा छोटा होता है, इसे सहजता से उगाया जा सकता था, साथ ही इसमें कृत्रिम विधि से संकरण भी संभव था। मटर का पौधा द्विलिंगी होने के कारण प्रकृति से स्व-निषेचित होता है और इसका आसानी से प्रयोगात्मक पर-परागण भी किया जा सकता है। इसमें पर्याप्त संतानें प्राप्त होती हैं और यह एक ऋतु में ही जीवन-चक्र पूरा कर लेता है, साथ ही मटर की कई शुद्ध प्रजनन प्रजातियां भी उपलब्ध हैं। मेन्डल ने सात लक्षणों का अध्ययन किया, जिनमें से प्रत्येक एक दृष्टिगत लक्षण और दो विपरीत रूपों (forms) का प्रतिनिधित्व करता है (चित्र 12.1)। साथ ही उन्होंने अपने प्रयोगों के सही-सही अभिलेख रखे जैसे कि प्रयोग की गई व्यष्टियों की संख्या और प्रकार जो आनुवंशिक अध्ययनों में वांछित होते हैं।



चित्र 12.1 मटर के पादप में विपरीत अभिलक्षणों के सात युग्म

प्रयोग की रूपरेखा

मेन्डल के प्रयोग मटर के दो ऐसे पादपों का संकरण करने पर आधारित थे जिनमें आपस में कुछ विपरीत लक्षण विद्यमान थे। उनके द्वारा चुने गए ऐसे सात लक्षण सारणी 12.1 में दिए गए हैं।

सारणी 12.1 मटर के तुलनात्मक लक्षणों के वे सात युग्म जिनका उपयोग मेन्डल ने अपने प्रयोगों में किया था

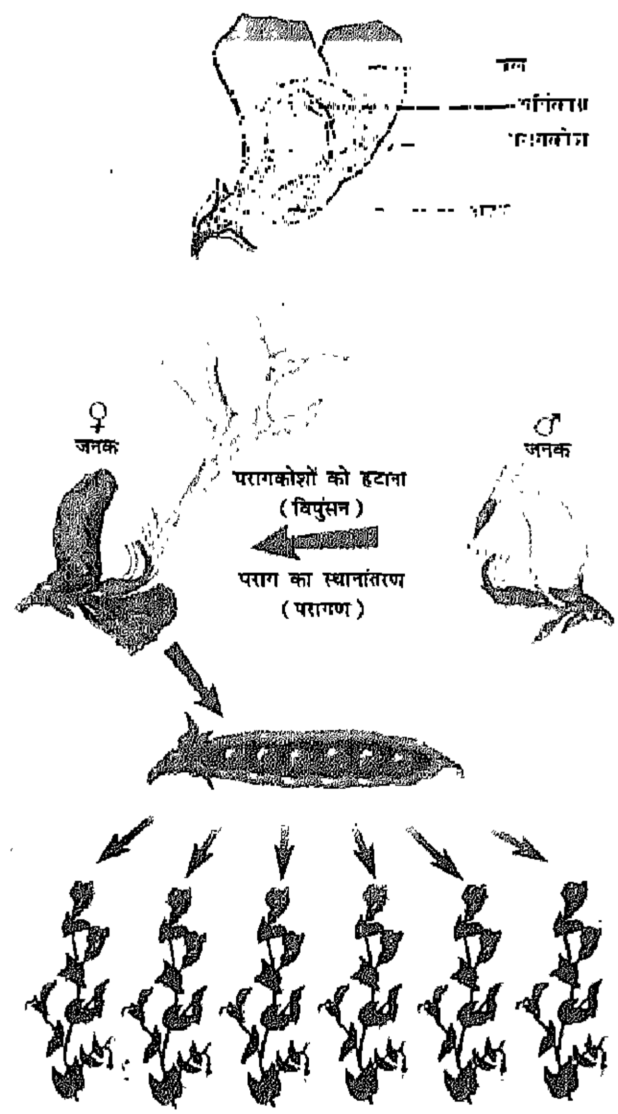
क्रम संख्या	लक्षण	विपरीत लक्षण
1.	स्तंभ की ऊंचाई/लंबाई	लंबा/बौना
2.	पुष्प का रंग	बैंगनी/श्वेत
3.	पुष्प की स्थिति	अक्षीय/शीर्ष
4.	शिंब का आकार	सपाट/संकुचित
5.	शिंब का रंग	हरा/पीला
6.	बीज का आकार	गोल/झुर्रीदार
7.	बीज का रंग	पीला/हरा

मेन्डल द्वारा किया गया सरलतम संकरण, जिसे **एकसंकर संकरण** कहते हैं, ऐसे पौधों पर किया गया था जो उपरोक्त वर्णित एक जोड़े विपरीत तुलनात्मक लक्षणों के में भेद दर्शाते थे, उदाहरणार्थ लंबे अथवा बौने, बैंगनी पुष्पधारी अथवा श्वेत पुष्पधारी आदि। संकरण करने के लिए एक प्रकार के पादप से पराग लेकर, दूसरे प्रकार के अंडों का निषेचन (समागम अथवा संकरण; चित्र 12.2) कर बीजों के रूप में संतान संग्रहीत की गयी थी। शनैः शनैः मेन्डल ने अपने प्रयोगों का विस्तार कर संकरणों में दो अथवा तीन विरोधी लक्षणधारी युग्मों को सम्मिलित किया जो **द्विसंकर** एवं **त्रिसंकर** संकरण कहलाए। संकरण की विधि मात्र इस अपवाद के मूलतः ऊपर वर्णित ही रही कि इनमें जनक एक-दूसरे से एक, दो अथवा तीन विपरीत लक्षणों में अंतर धारण किए थे। प्रथम पीढ़ी (F_1 संतति) की संततियों का स्वनिषेचन कर द्वितीय पीढ़ी (F_2 संतति) संततियां प्राप्त की गई।

प्रयोग के परिणाम

किसी संकरण के मूल, जनक (माता-पिता) अथवा P संतति कहलाते हैं और उनकी संतान F_1 अथवा प्रथम संतति कहलाती है तथा F_1 संतति के स्वनिषेचन से प्राप्त संतान F_2 अथवा द्वितीय संतति कहलाती है। आइए अब हम मेन्डल द्वारा प्राप्त गणनाओं का संकरण क्रम में परीक्षण करें और उनके द्वारा प्रतिपादित आनुवंशिकता के सिद्धांत को समझने का प्रयास करें।

किसी एक लंबे एवं एक बौने स्तंभधारी पादप का संकरण एक संकर संकरण का सामान्य उदाहरण प्रस्तुत करता है।



चित्र 12.2 मटर में संकरण हेतु अपनाए जाने वाले चरण

जब शुद्ध प्रजनन करने वाले लंबे पादपों का संकरण, शुद्ध प्रजनन करने वाले बौने पौधों से किया गया तो F_1 पीढ़ी में सभी लंबे पादप उत्पन्न हुए। और जब इन F_1 पादपों का स्वनिषेचन किया गया तब मेन्डल ने पाया कि F_2 पीढ़ी की 1064 संतानों में से 787 लंबे थे और 277 बौने। स्पष्ट है कि बौनापन का जो लक्षण F_1 पीढ़ी में अदृश्य हो गया था, F_2 पीढ़ी में पुनः स्पष्ट हो गया। यह भी दृष्टव्य है कि यह आंकड़े मात्र एक संकर से प्राप्त नहीं हुए थे वरन् कई लंबे एवं बौने पादप संकरों, F_1 के स्व-निषेचन और F_2 पीढ़ी की कुल 1064 संतानों के सर्वेक्षण का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन परिणामों को और भी तर्कपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने के लिए संपूर्ण अंकों के अनुपात के रूप में परिवर्तित करना सामान्य आनुवंशिक पद्धति के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार विश्लेषण के उपरांत मेन्डल ने सुझाया कि संतानें

2.84 लंबी : 1 बौनी अथवा लगभग 3:1 के अनुपात में प्रकट होती हैं ।

मेन्डल ने ऐसे ही संकर अन्य विपरीत लक्षणों के युग्मधारी पादपों के साथ भी किए और प्रत्येक स्थिति में ऊपर वर्णित संकर के अनुरूप ही परिणाम प्राप्त हुए । प्रत्येक संकर में F_1 पीढ़ी की संतानें तो एक जनक के समान थीं लेकिन F_2 पीढ़ी में यह लगभग 3:1 के अनुपात में विभाजित थीं और इस प्रकार यह एक बार पुन: 3/4 तो F_1 पीढ़ी के जनक के समान थीं और 1/4 विपरीत लक्षण धारणकर्ता के समान। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक संकरण में F_2 पीढ़ी की संततियों की पर्याप्त संख्या का विश्लेषण किया गया था और सभी में लक्षणों के एक युग्मों का अनुपात लगभग 3:1 ही पाया गया (सारणी 12.2) ।

यहां इस ओर भी ध्यान देना वांछनीय होगा कि F_1 एवं F_2 संततियों की वंशागतता की विधा एक-जैसी ही होती है चाहे कोई भी पादप अंड (स्त्रीलिंग) अथवा शुक्राणु (पुल्लिंग) का स्रोत क्यों न हो । दूसरे शब्दों में एक संकर संकरण का परिणाम वही रहेगा चाहे गुलाबी पुष्पधारी पादप, श्वेत पुष्पधारी पादपों का परागण करें अथवा इसके बिल्कुल विपरीत की स्थिति हो। ऐसे संकर **पारस्परिक संकर** (reciprocal crosses) कहलाते हैं । मेन्डल ने अपने द्वारा संपन्न किए गए विभिन्न एकसंकर संकरणों के फलस्वरूप पाए गए परिणामों के आधार पर चार अवधारणाओं को सम्मुख रखा जो **वंशागतता के सिद्धांत** कहलाए ।

अवधारणा 1

मेन्डल ने सुझाया कि प्रत्येक आनुवंशिक लक्षण एकक कारकों के **एक युग्म से नियंत्रित होता है** जिन्हें अब सामान्यत: **ऐलील** अथवा **ऐलील आकारिक युग्म** कहते हैं । यदि हम सत्य-प्रजनक जनकों की एक एकसंकर संकरण अवधारणा का विश्लेषण इस आलोक में करें तो पाएंगे कि लंबेपन एवं बौनेपन के नियंत्रण हेतु दो एकक कारक विद्यमान होते हैं । इस प्रकार तीन मेल संभव हैं: या तो लंबे एवं बौने स्तंभों के लिए दो कारक उपस्थित होते हैं अथवा इनमें से एक कारक अलग-अलग व्यष्टि के लिए होता है ।

अवधारणा 2

F_2 पीढ़ी में प्राप्त परिणामों के आधार पर मेन्डल यह प्रस्तावित कर सके कि जब किसी एक व्यष्टि में दो असमान एकक कारक विद्यमान होते हैं, तो इनमें से मात्र एक ही अभिव्यक्त हो सकता है, दूसरा नहीं । इनमें से जो अपने को अभिव्यक्त कर सका, **प्रभावी एकक कारक** और दूसरा, जिसकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, **अप्रभावी एकक कारक** कहलाता है। यह तकनीकी शब्द लक्षणों की स्थिति दर्शाने के लिए भी उपयोग में लाए जाते हैं जैसे कि लंबे स्तंभ का बौने स्तंभ पर प्रभावी कहा जाता है जबकि बौना स्तंभ अप्रभावी हुआ । अब हम इन एकक कारकों को जीन कहते हैं ।

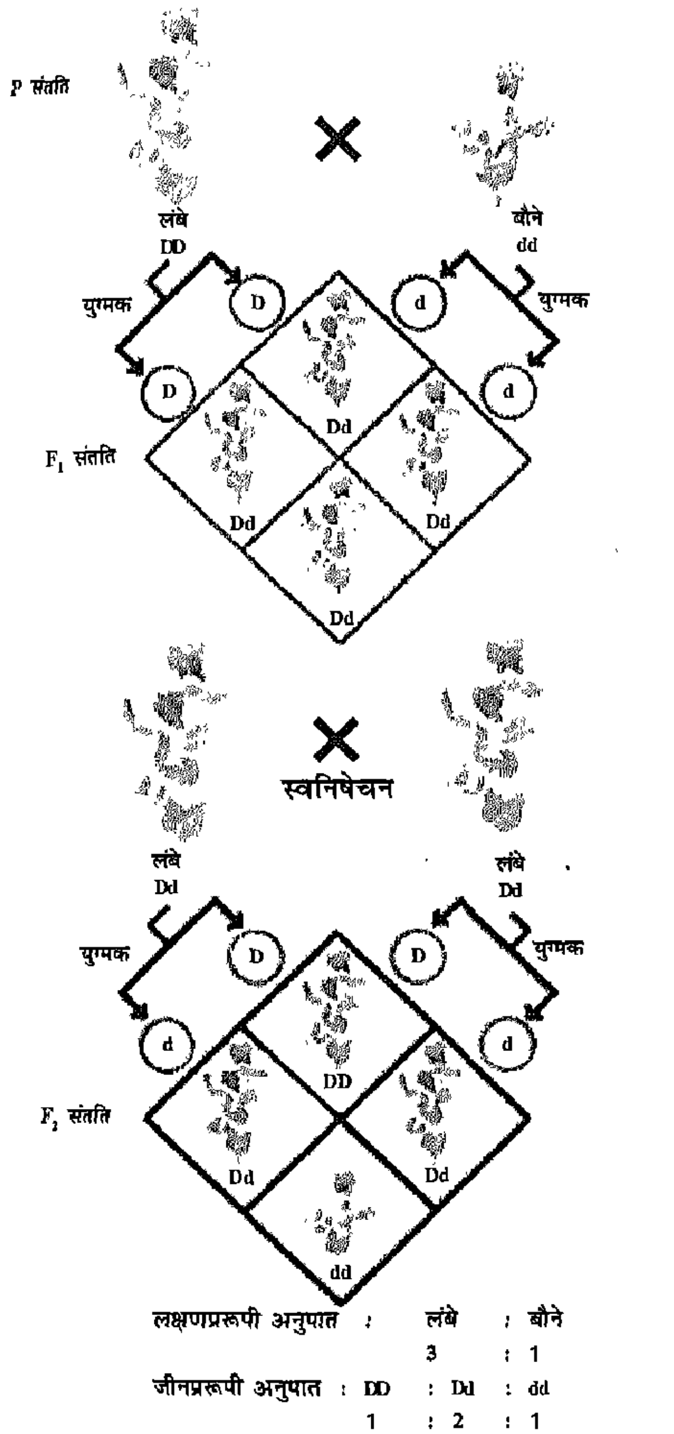
अवधारणा 3

जब युग्मकों का निर्माण होता है तो युग्मरूप में विद्यमान एकक कारक संयोगिक रूप में (randomly) पृथक अथवा अलग-अलग होते हैं जिससे प्रत्येक युग्मक द्वारा एक अथवा दूसरा एकक कारक समान संभावना के साथ ग्रहण कर लिए जाते हैं । इससे युग्मक की शुद्धता सुनिश्चित होती है । इस अवधारणा के साथ हम अपना विवेचन संकरणों की द्वितीय संतति (F_2 पीढ़ी) तक बढ़ा सकते हैं जैसा कि सारिणी 12.2 में दर्शाया गया है । जब P पीढ़ी में (लंबे × बौने) युग्मकों का निर्माण होता है तो प्रत्येक युग्मक जनक से एक और मात्र वही एकक कारक – लंबेपन अथवा बौनेपन के लिए प्राप्त करेंगे । ऐसी स्थिति में चूंकि लंबापन प्रभावी है, F_1 पीढ़ी के सभी पादप लंबे होंगे ।

जब F_1 पीढ़ी के लंबे पादप युग्मकों का निर्माण करेंगे तो पृथक्करण के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक युग्मक में संयोगिक (random) लंबे अथवा बौने एकक कारकों का समावेश होगा । अगले निषेचन में जो एक अनायास घटना है, F_2 पीढ़ी में इन एकक कारकों

सारणी 12.2 : एकसंकर संकरणों का विश्लेषण

क्रम संख्या	संकरण	F_1	F_2	अनुपात
1.	लंबा × बौना स्तंभ	लंबे स्तंभ	787 लंबे, 277 बौने	2.84:1
2.	बैंगनी × श्वेत पुष्प	बैंगनी पुष्प	705 बैंगनी, 224 श्वेत	3.15:1
3.	अक्षीय × शीर्ष शिंब	अक्षीय शिंब	651 अक्षीय, 207 शीर्ष	3.14:1
4.	सपाट × संकुचित शिंब	सपाट शिंब	882 सपाट, 299 संकुचित	2.95:1
5.	हरे × पीले शिंब	हरे शिंब	428 हरे, 152 पीले	2.82:1
6.	गोल × झुर्रीदार बीज	गोल बीज	5474 गोल, 1850 झुर्रीदार	2.96:1
7.	पीले × हरे बीज	पीले बीज	6022 पीले, 2011 हरे	3.01:1



चित्र 12.3 सत्य-प्रजनक लंबे और सत्य-प्रजनक बौने पादपों में मेन्डल द्वारा किया गया एकसंकर संकरण

के चार मेल समान बारंबारता के साथ उत्पन्न होंगे : (i) लंबे/लंबे, (ii) लंबे/बौने, (iii) बौने/लंबे, (iv) बौने/बौने (चित्र 12.3)।

यदि हम अवधारणा 2 को प्रयोग में लाएं, तो मेल (i), (ii) एवं (iii) से तो लंबे पादप प्राप्त होंगे और मात्र मेल (iv) बौने पादप प्रदान करेगा। दूसरे शब्दों में हम F_2 पीढ़ी की भविष्यवाणी 3/4 लंबे और 1/4 बौने अथवा 3:1 का अनुपात-धारी संतति के रूप में कर सकते हैं। वास्तव में मेन्डल ने यही परिणाम पाए थे और सभी एक संकर संकरणों में भी ऐसा ही होता है। यदि हम अवधारणा (iii) को प्रयोग में लाएं, तो संयोजन (i) एवं (iv) से क्रमश: समजात लंबे एवं समजात बौने पादप उत्पन्न होंगे जबकि संयोजन (ii) एवं (iii) से विषमजात लंबे पादप निर्मित होंगे और जीन-प्ररूपी अनुपात F_2 पीढ़ी में समजात लंबे विषमजात लंबे और समजात बौनों के लिए क्रमश: 1:2:1 अनुपात होगा। अवधारणा (iii) को सामान्यत: **पृथक्कता का सिद्धांत** (Principle of Segregation) अथवा **युग्मकों की शुद्धता** (Purity of Gametes) कहते हैं। जब किसी व्यष्टि से युग्मक बनते हैं तो ऐलील पृथक अथवा अलग-अलग हो जाते हैं, अत: प्रत्येक युग्मक ऐलीलों के जोड़ों में से मात्र एक सदस्य प्राप्त करता है (और युग्म स्थिति निषेचन के मध्य संयोगिक संलग्न से पुन: स्थापित हो जाती है)।

अवधारणा 4

इस अवधारणा को **कारकों के स्वतंत्र अपव्यूहन का सिद्धांत** (Principle of Independent Assortment of Factors) कहा जाता है। इसके उपरांत मेन्डल ने अपने कार्य का विस्तार द्विसंकर अथवा दो कारक संकरणों को संपन्न करके किया, जिनमें दो जोड़े जनक पादप विपरीत लक्षणधारी थे। उदाहरण के लिए हम ऐसे संकरण का अवलोकन कर सकते हैं जिसमें गोल और पीले बीज वाले पादपों का संकरण हरे और झुर्रीदार बीजधारी पादपों के साथ किया गया। परिणामत: F1 पीढ़ी के सभी पादप पीले और गोल बीजधारी उत्पन्न हुए जो यह इंगित करते थे कि पीला रंग तो हरे पर और बीज का गोल लक्षण झुर्रीदार बीज पर प्रभावी है। इनके स्वनिषेचन के समय मेन्डल ने परिकल्पना की थी कि एक जोड़ी एकक कारक दूसरे एक जोड़ी एकक कारक से अलग वंशागत होंगे अर्थात् उनका अपव्यूहन स्वतंत्र होगा। इसलिए युग्मकों को एकक कारकों के सभी संभाव्य मेल समान बारंबारता में धारण होंगे। इस उदाहरण में एकक कारकों को धारण करने वाले युग्मक निम्न मेल प्रदान करेंगे :

(i) पीले, गोल (ii) पीले, झुर्रीदार (iii) हरे, गोल और (iv) हरे, झुर्रीदार।

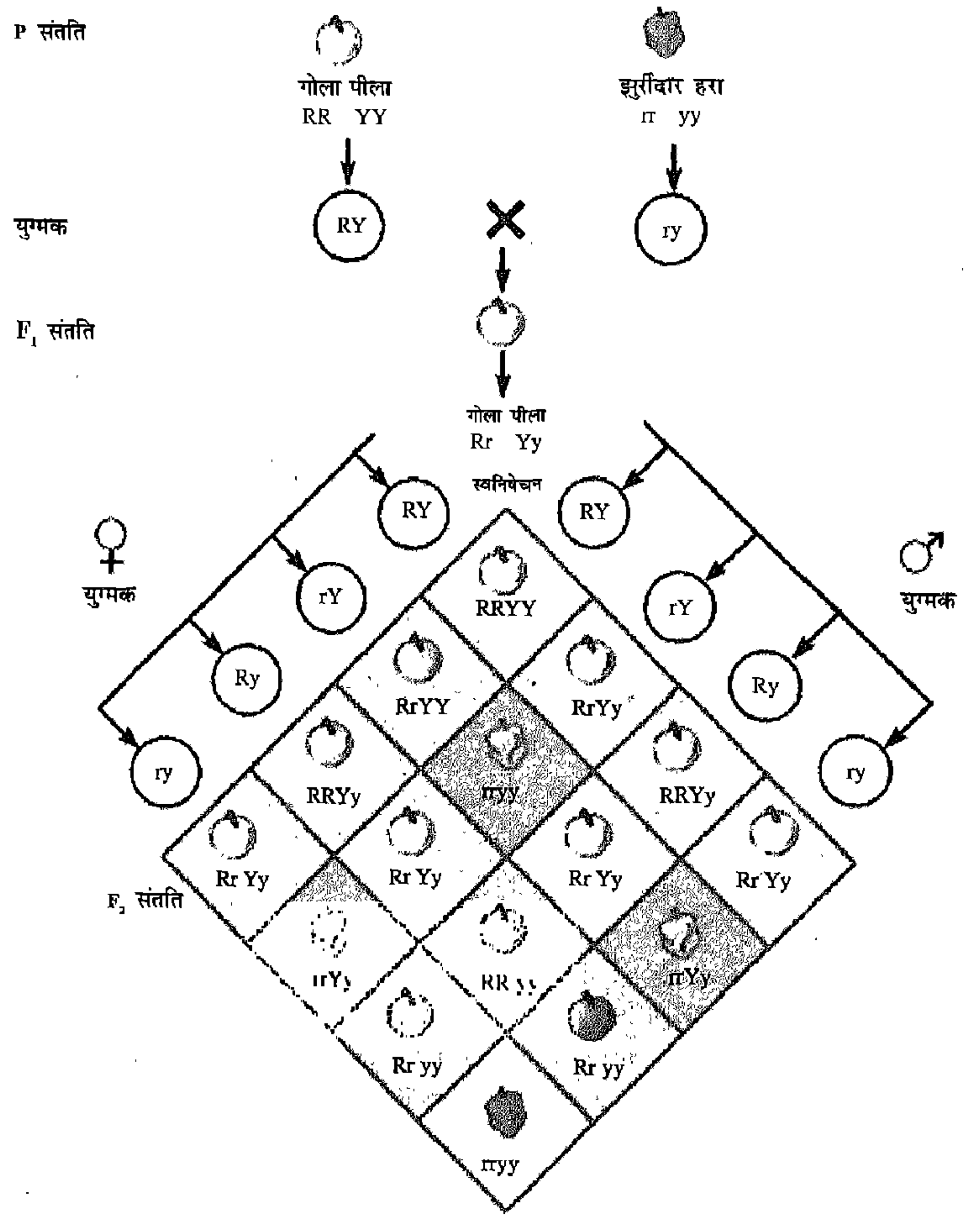
निषेचन के दौरान प्रत्येक युग्मनज में इनमें से दो मेल प्राप्त करने की संभावना होगी प्रत्येक जनक में से एक इससे बनने वाली संतान का निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है : 9/16 पीले, गोल;

3/16 पीले, झुर्रीदार;

3/16 हरे, गोल व

1/16 हरे, झुर्रीदार।

मेन्डल के द्विसंकर आंकड़ों (data) में प्रयोग करते समय यह भविष्यवाणी एक बार पुन: सत्य सिद्ध हुई (चित्र 12.4)।



लक्षणप्ररूपी अनुपात : गोल पीला : गोल हरा : झुर्रीवार पीला : झुर्रीवार हरा
9 : 3 : 3 : 1

जीनप्ररूपी अनुपात : RRYY : RrYY : RRYy : rrYY : RrYy : rrYy : RRyy : Rryy : rryy
1 : 2 : 2 : 1 : 4 : 2 : 1 : 2 : 1

चित्र 12.4 एक ऐसे द्विसंकर संकरण के परिणाम जिसमें दोनों जनकों में विपरीत लक्षणों, जैसे कि बीज का रंग और बीज की आकृति में अंतर था

यदि दो विरोधी लक्षणों के युग्म स्वतंत्र रूप से वंशागत हों तो, स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धांत का विवरण इस प्रकार किया जा सकता है **जब दो स्वतंत्र घटनाएं साथ-साथ संपन्न हो रही हों तो उन दोनों की सम्मिलित संभाव्यता, इनमें से प्रत्येक के होने के गुणनफल के बराबर होगी।**

उदाहरणार्थ : पीले × हरा और उसी प्रकार गोल × झुर्रीदार के पृथक्करण से 3/4 पीले : 1/4 हरे और 3/4 गोल बीज : 1/4 झुर्रीदार बीज उत्पन्न होंगे।

यदि हम दोनों घटनाओं को एक साथ सम्मिलित कर दें तो (3/4) पीले × (3/4) गोल बीज

= 9/16 पीले गोल :

(3/4) पीले × (1/4) झुर्रीदार बीज

= 3/16 पीले, झुर्रीदार बीज :

(1/4) हरे × 3/4 गोल

= 3/16 हरे, गोल बीज और

(1/4) हरे × (1/4) झुर्रीदार

= 1/16 हरे व झुर्रीदार बीज प्राप्त होंगे। द्विसंकर में यही संकरण प्राप्त किया गया है (चित्र 12.4)।

12.4 आनुवंशिक शब्दावली एवं संकेत

मेन्डल के कार्य और अन्य आनुवंशिक परिघटनाओं को अच्छी तरह समझने के लिए हमें कुछ तकनीकी शब्द और शब्दावली से परिचित होना वांछनीय होगा जिनका आनुवंशिक अध्ययनों में सामान्यत: प्रयोग किया जाता है (सारणी 12.3)।

हम इस प्रश्न का उत्तर कि मेन्डल ने प्रत्येक लक्षण के लिए एकक कारकों के युग्मों को ही क्यों चुना और भी अधिक सूझ-बूझ के साथ प्राप्त कर सकते हैं। प्रथमत: तो प्रत्येक लक्षण

सारणी 12.3 आनुवंशिक शब्दावली

तकनीकी शब्द	अर्थ	उदाहरण
लक्षण	यह किसी जीव विशेष का पहचानने योग्य लक्षण है।	तने की ऊंचाई
अभिलक्षण	एक वंशागत लक्षण और इसकी पहचान योग्य विभेदन।	लंबे अथवा बौने
एकक कारक	वंशागतता की एक इकाई जिसे आधुनिक आनुवंशिकीविद् 'जीन' कहते हैं प्रत्येक जीन अथवा कारक एक लक्षण को नियंत्रित करता है।	D or d
ऐलील	प्रत्येक जीव कम से कम दो विकल्पी रूपों में विद्यमान रहता है जिनमें से प्रत्येक एक ऐलील का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक जीन एक ऐलीली- आकारिक युग्म का बना होता है।	Dd, Dd, Dd
जीन चिह्न	प्रत्येक लक्षण का बोध एक संकेत द्वारा किया जाता है और अप्रभावी लक्षण का प्रथम अक्षर उसको चिह्न करने के लिए चयनित किया जाता है जैसे कि dd से बौनेपन और DD से लंबापन इंगित होता है (कभी-कभी इसे tt एवं TT से भी संदर्भित करते हैं)।	
लक्षणप्ररूप	दृष्टव्य आकारिकी दर्शक सम्मुच्चय जो व्यष्टि की ऐलीलों के विभिन्न संयोजनों से निर्धारित होता है।	लंबापन अथवा बौनापन
जीनप्ररूप	किसी व्यष्टि को आनुवंशिक संघटक द्वारा उसके एक लक्षण अथवा लक्षणों के एक समुच्चय द्वारा दर्शाया जाना।	DD, Dd, dd
समजात	जब किसी युग्म में दो समान ऐलील उपस्थित होते हैं और इस प्रकार एक ही ऐलील की दो प्रतियां विद्यमान होती हैं तो यह आपस में समजात संयोजन कहलाते हैं।	DD, dd
विषमयुग्मजी	जब किसी युग्म में दो असमान ऐलील होते हैं तो यह विषमयुग्मजी अवस्था में कहलाते हैं।	D d
प्रभावी	एक ऐसा ऐलील जो लक्षणप्ररूप की दिखावट को एक वैकल्पिक ऐलील की उपस्थिति में भी प्रभावित करता है।	D
अप्रभावी	एक ऐसा एलील जो लक्षण प्ररूप की दिखावट को एक अन्य समान एलील की उपस्थिति में ही प्रभावित कर सकता है।	d

के दो विरोधी प्ररूप (अभिलक्षण) थे जो निश्चय ही दो स्पष्ट एकक कारकों से नियंत्रित होने चाहिए। दूसरी ओर यद्यपि F_1 संतति में मात्र एक प्रभावी लक्षणधारी लक्षण प्ररूप प्रकट हुआ, अप्रभावी लक्षणधारी एकक कारक भी अदृश्य नहीं हुआ था। यह F_2 संतति की संतानों में पुन: दृष्टिगत होने के लिये आच्छादित हो गया था और F_1 के स्वपरागण के फलस्वरूप F_2 संतान में पुन: प्रकट हो गया। वास्तव में मेन्डल की तर्कसंगत विश्लेषण शक्ति को अद्भुत ठहराया जाना चाहिए क्योंकि कुछ सरल परंतु सुस्पष्टत: संपन्न किए गए संकरण प्रयोगों के आधार पर वह यह मत रखने में सफल रहे कि वंशागतता का नियंत्रण असतत् कणधारी एककों द्वारा होता है और यह किस प्रकार एक संतति से अगली संतति तक पहुंचाए जाते हैं।

12.5 विश्लेषण की विधियां

पनेट का वर्ग

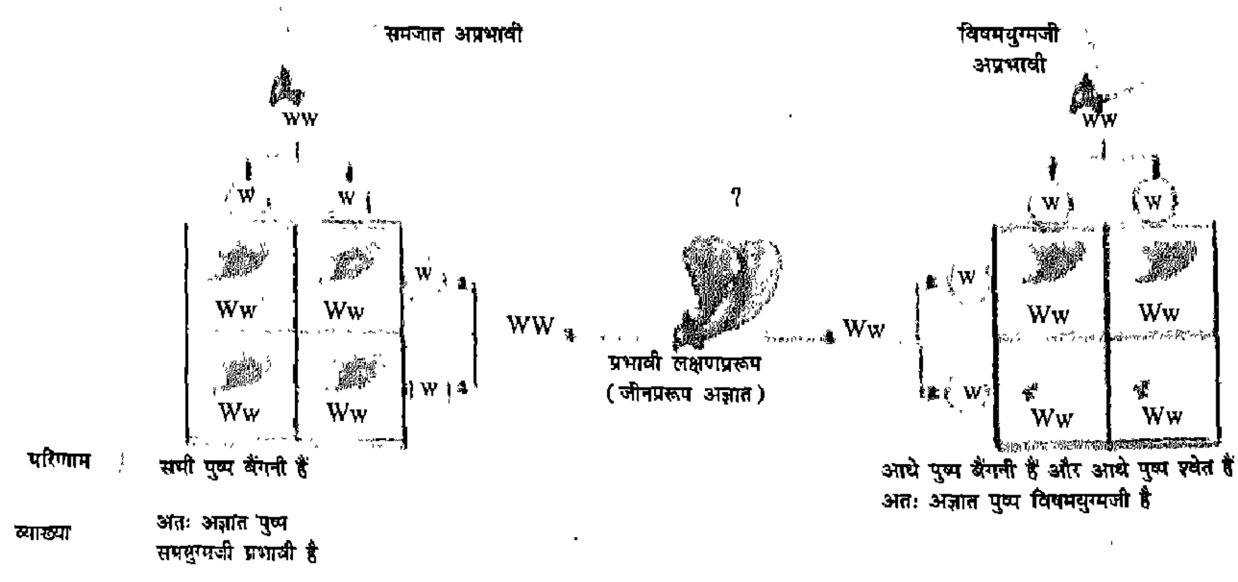
युग्मकों के विविध संयोगों के फलस्वरूप बने जीन प्ररूपों एवं लक्षणप्ररूपों का निर्धारण पनेट वर्गों की सहायता से सरलतापूर्वक किया जा सकता है जिसे आर.सी. पनेट ने प्रस्तुत किया था। यहां प्रत्येक संभव युग्मक एक विशिष्ट कालम या पंक्ति में रखा जाता है जिसका लंबवत् कालम मादा और क्षैतिज कालम नर दर्शाते हैं। तब युग्मक सभी संभव संयोगों में मेल कर सकते हैं और इस प्रकार निर्मित होने वाले जीनप्ररूपों को लक्षणप्ररूपों के साथ-साथ खानों में अंकित कर दिया जाता है (देखें चित्र 12.3, 12.4)।

परीक्षण संकरण

अब तक आप समझ चुके हैं कि मेन्डल के संकरण प्रयोगों में दो ऐसे शुद्ध प्रजननकारी जनकों का योगदान था जिन्होंने F_1 पीढ़ी में विषमयुग्मजी संतति का उत्पादन किया। यह सिद्ध करने के लिए कि F_1 संतति विषमयुग्मजी है मेन्डल ने एक सरल संकरण अथवा **परीक्षण संकरण** प्रस्तावित किया जिसके F_1 पीढ़ी का संकरण, स्वनिषेचन के स्थान पर किसी अप्रभावी जनक से किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त परिणामों का विश्लेषण नीचे दर्शाई गयी विधि के अनुसार सरलतापूर्वक किया जा सकता है (चित्र 12.5)। यदि आप एक ऐसे संकर संकरण का अध्ययन करें जिसमें F_1 पीढ़ी का परीक्षण संकरण किया गया हो तो 1:1 अनुपात की संतति प्राप्त होगी। इसी आधार पर आप यह परिणाम निकाल सकते हैं कि द्विसंकर संकरण में परीक्षण संकरण का अनुपात 1:1:1:1 होगा। परीक्षण संकरण को अन्य उद्देश्यों के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है। अब तक आप यह समझ चुके होंगे कि समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी जीनप्ररूपों को उनके समान लक्षणप्ररूप होने के कारण विभेदित नहीं किया जा सकता है। अगर इन दोनों पर परीक्षण संकरण किया जाए तो समयुग्मजी प्रभावी शुद्ध प्रजनन करते हैं जबकि विषमयुग्मजी जीनप्ररूपी पृथक्करण को दर्शाते हैं।

त्रिसंकर संकरण

द्विसंकर संकरणों का विश्लेषण करने के उपरांत, मेन्डल ने त्रिसंकर संकरण अथवा तीन कारकधारी संकरण भी संपन्न किए। ऐसे संकरणों के परिणाम कहीं अधिक जटिल हैं लेकिन



चित्र 12.5 किसी समजात एवं विषमजात प्रभावी जीन प्ररूप में भेद ज्ञात करने के लिए परीक्षण संकरण संपन्न किया जा सकता है

इनका विश्लेषण भी सरलतापूर्वक पृथक्करण एवं स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धांतों का उपयोग कर, किया जा सकता है ।

12.6 मेन्डल के कार्य की पुन: खोज

मेन्डल ने अपने मटर का कार्य 1856 में प्रारंभ किया था लेकिन इसके सम्मुख रखने का अवसर प्रथमतः 1865 में प्राप्त हुआ । यों तो खोज को अगले वर्ष (1866 में) प्रकाशित कर दिया गया लेकिन यह 35 वर्ष तक अज्ञात और असम्मानित बनी रही । ऐसा कई कारणों से हुआ प्रतीत होता है । प्रथमत: मेन्डल के वंशागति संबंधी विचार, उसके पूर्ववर्ती विचारकों की अपेक्षा अत्यंत सरल थे, साथ ही मेन्डल द्वारा जैव-वैज्ञानिक परिघटना का गणितीय हल उस समय के चिंतकों की विचारधारा के प्रतिकूल था । इसके अतिरिक्त उसके द्वारा प्रस्तुत स्पष्ट अथवा एककों की परिकल्पना ने सततता-विहीन विविधता की अवधारणा को जन्म दिया जब कि उसके समसामयिक लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिक जैसे चार्ल्स डार्विन और अल्फ्रेड रसैल वैलेस, विकास में सतत् विविधता के महत्त्व का समर्थन करते थे। फलत: इस कालावधि में वैज्ञानिकों का सर्वाधिक ध्यान इस समय जैविक विकास की विचारधारा के प्रति केंद्रित रहा। मेन्डल का कार्य तत्कालीन वैज्ञानिक समुदाय पर वांछित प्रभाव डालने में सफल नहीं हो सका।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में मेन्डल द्वारा संपन्न प्रयोगों के समान ही संकरण प्रयोग, तीन वनस्पतिज्ञों, ह्यूगो डी व्रीज, कार्ल कोरेन्स एवं ऐरिक शरमैक-सेयसेनेग ने स्वतंत्र रूप से अलग-अलग किए। इसके परिणामस्वरूप मेन्डल के कार्य की पुन: खोज और आनुवंशिकी नाम से विज्ञान की एक नई शाखा का उदय हुआ ।

12.7 मेन्डल के बाद का युग - वंशागतता के अन्य प्रतिरूप

मेन्डल के नियमों के वर्ष 1900 में पुन: स्थापन के उपरांत, एक सामान्य विधि जिसका आनुवंशिकीविदों ने अनुसरण किया था, मेन्डल के प्रयोगों का अन्य जीवों और विभिन्न लक्षणप्ररूपों का प्रयोग करते हुए पुन: संपन्न करना। यद्यपि ऊपरी तौर पर यह पुनरावृत्ति प्रतीत हो सकती है । इस काल में इस बारे में प्रचुर सूचना सामने आई कि जीनें लक्षणप्ररूप का नियंत्रण किस प्रकार करती हैं । साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि लक्षणप्ररूप मात्र एक और एक का ही संबंध नहीं है वरन् विभिन्न पारस्परिक क्रियाओं का परिणाम होता है । ऐसी पारस्परिक क्रियाएं ऐलील अथवा ऐलील-विहीन स्तर पर हो सकती हैं और अन्य प्रकार की वंशागतता विधियों को जन्म दे सकती हैं ।

इन विधियों का अध्ययन करने से पूर्व, आइए हम जीन संकेत लिखने की अन्य आनुवंशिक परिपाटियों की ओर दृष्टिपात करें। जैसी कि हम पूर्व में व्याख्या कर चुके हैं, किसी ऐलील



ग्रेगर जोहान मेन्डल
(1822–1884)

आनुवंशिकी के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान करने वाले बालक जोहान मेन्डल का जन्म 1822 में हाइत्सनडोर्फ नामक गांव में (जो अब चैकोस्लोवाकिया अथवा चेक गणतंत्र में आता है), एक कृषक परिवार में हुआ था । वह अपने स्कूल का एक मेधावी विद्यार्थी था और उसने 1843 में सेंट थौमस चर्चघर में कार्य प्रारंभ करने से कई वर्ष पूर्व तक दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था । यहीं उन्होंने ग्रेगर नाम तो धारण किया ही, उन्हें अपने अध्ययन एवं शोध के लिए प्रोत्साहन और सहायता भी मिली । 1849 में उन्होंने अध्यापन प्रारंभ किया और 1851-1853 तक वियना विश्वविद्यालय में भौतिकी एवं वनस्पतिविज्ञान का अध्ययन भी किया और फिर ब्रुनों अध्यापन करने लौट आए । 1856 में मेन्डल ने संकरण संबंधी अपने प्रथम प्रयोग मटर के साथ प्रारंभ किए जिन्हें उन्होंने अगले 10 वर्ष तक अत्यंत सावधानीपूर्वक जारी रखा । ध्यातव्य है कि अपने शोध कार्य के लिए किसी रूप में भी सम्मानित न होने पर भी आनुवंशिकी में उनकी अभिरुचि बनी रही । उनकी मृत्यु 1884 में वृक्क विकार से हुई ।

की पहचान इसके उत्प्रेरित लक्षणप्ररूप से की जाती है और संकेत को भी इसी से प्राप्त किया जाता है (जिसमें आदि अक्षर और अधिकांशत: तीन अन्य अक्षर भी जोड़े जाते हैं)। यदि यह अप्रभावी हो तो इसे छोटे अक्षरों (lower case letter) और प्रभावी हो तो बड़े अक्षरों (upper case letter) से संकेतित किया जाता है। चूंकि उत्प्रेरित ऐलील (mutant allele) किसी वन्य-प्रकार की ऐलील (wild type allele) से प्राप्त होता है, अत: इसको भी उसी किंतु एक ऊपरी अभिलेख + (superscript+) द्वारा संकेतित किया जाता है।

अपूर्ण प्रभाविता (Incomplete Dominance)

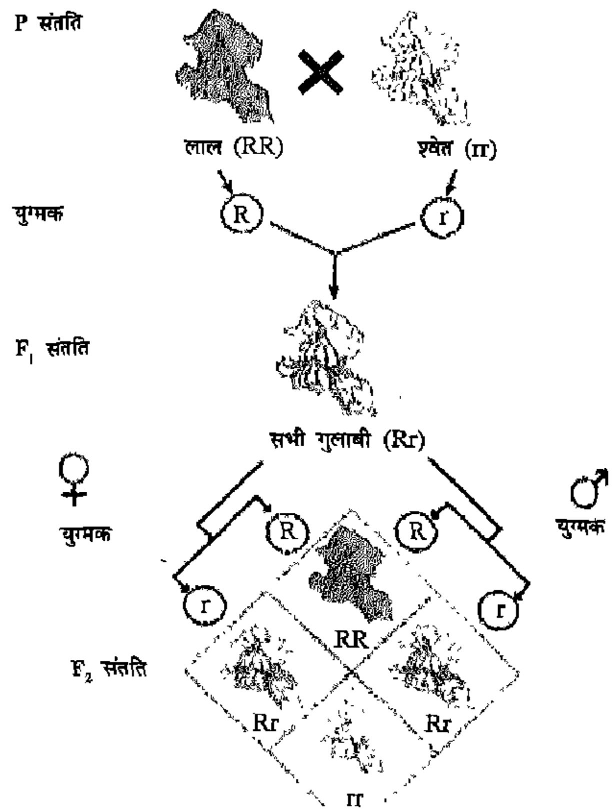
अभी तक हमने जाना है कि किसी जीन के दो एलीलों में से एक दूसरे पर पूर्णत: प्रभावी होती है और इसलिए विषमयुग्मजी में अप्रभावी ऐलील को अभिव्यक्त नहीं होने देती, गुलाबांस (four-o'-clock ; *मिराबिलिस जलापा*) एवं स्नेपड्रेगन (Antirrhinum majus) जैसे पादपों में यदि लाल रंग के पुष्पधारी पादपों का संकरण सफेद रंग के पुष्पों से किया जाता है तो F_1 संतति में गुलाबी रंग के पुष्प उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार प्रभाविता अपूर्ण अथवा आंशिक प्रतीत होती है। वंशानुगत की यह स्थिति लक्षणों के मिश्रण (blending) के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं हुई है, जैसा कि कुछ लोग (मेन्डल के चिंतन के विपरीत) सोच सकते हैं। इसे F_1 (गुलाबी) X F_1 (गुलाबी) के संकरण के परिणामों के आधार पर आसानी से समझा जा सकता है (चित्र 12.6)।

F_2 संतति में, लाक्षणिक एक संकर संकरण की भांति जीनप्ररूपी अनुपात 1:2:1 प्राप्त होता है। अंतर मात्र इतना है कि लक्षणप्ररूपी अनुपात भी 1:2:1 है। ध्यातव्य है कि लक्षणस्वरूप स्तर पर अपूर्ण प्रभावित के उदाहरण विरले ही हो सकते हैं। किसी विषमयुग्मनज में अप्रभावी ऐलीन भी अभिव्यक्त होकर अलग प्रकार के लक्षण प्ररूप का निर्माण करती है।

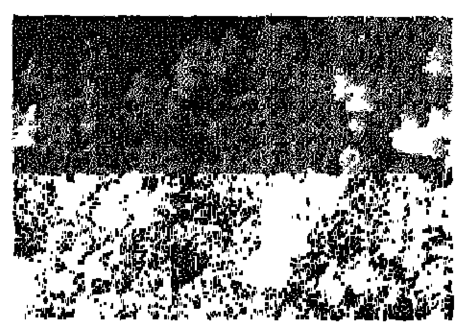
अन्य प्रकार की ऐलीली पारस्परिक क्रियाएं

ऐलील अपूर्ण अप्रभाविता के साथ-साथ सहप्रभाविता भी दर्शा सकते हैं। यहां किसी विषमयुग्मनज में दोनों ही एलील अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं। यह परिघटना मनुष्यों में MN रक्त समूहों में देखी गई है। लाल रक्त कोशिकाएं दो प्रकार के मूल प्रतिजीवी (native antigens) वहन करते हैं। M एवं N और किसी भी व्यक्ति में MM, MN, अथवा NN धारण कर सकता है। जिसके अनुसार एक अथवा दोनों ही प्रतिजीवी उपस्थित होते हैं।

इसी प्रकार किसी जीन के उत्पाद किसी जीव के बने रहने के लिए आवश्यक होते हैं। फलत: ऐसी जीन में होने वाले उत्परिवर्तन के फलस्वरूप बनने वाले कार्यविहीन उत्पाद इसकी जीवंतता (viability) को प्रभावित करेंगे, इन्हें घातक उत्परिवर्तन (lethal mutations) कहा जाता है और इनके दो रूप हो सकते हैं। यदि एक प्रभावी ऐलील सामान्य लक्षणप्ररूप (phenotype) के लिए पर्याप्त होती है तो विषमयुग्मनज आगे जीवित रहेगा (अप्रभावी घातक ऐलील -Recessive lethal allele)। लेकिन यदि विषमयुग्मनज आगे जीवित नहीं रहता है तो उत्परिवर्तन के फलस्वरूप प्रभावी घातक ऐलील (dominant lethal allele) का निर्माण हो चुका है।

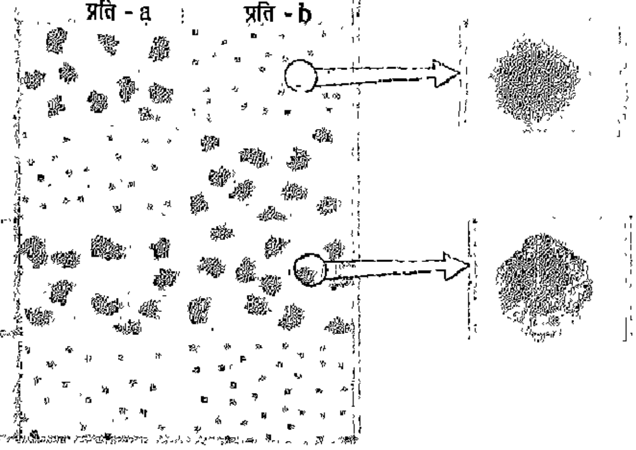


लक्षणप्ररूपी अनुपात	:	लाल	:	गुलाबी	:	श्वेत
		1	:	2	:	1
जीनप्ररूपी अनुपात	:	RR	:	Rr	:	rr
		1	:	2	:	1



चित्र 12.6 ऐसे स्नेपड्रेगन पादप जिसमें एक ऐलील दूसरे ऐलील पर अपूर्ण रूप से प्रभावी है, संपन्न किए गए एक संकर संकरण के परिणाम

रक्त के समूह	जीन प्ररूप	प्रतिजन	कोशिकाओं द्वारा निर्मित प्रतिरक्षी	मिलाए गए प्रतिरक्षियां के प्रति प्रतिक्रिया (प्रति - a, प्रति - b)
A	$1^A 1^A$ अथवा $1^A 1^O$	A	b	
B	$1^B 1^B$ अथवा $1^B 1^O$	B	a	
AB	$1^A 1^B$	A तथा B दोनों	न तो प्रति - a और न ही प्रति - b	
O	$1^O 1^O$	A या B में कोई भी नहीं	प्रति - a एवं प्रति - b दोनों ही	



चित्र 12.7 मनुष्यों में A, B एवं O रक्त प्रकार की पहचान जिसका आधार बहुऐलील है एवं दो ऐलील तीसरे पर सहप्रभावी रूप से क्रियाशील हैं।

बहुऐलीली अवस्था (Multiple Alleles)

अभी तक हमने जीन के दो वैकल्पिक रूपों के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया है जिसका अभिप्राय है कि एक ही लक्षण का नियंत्रण दो ऐलील करते हैं । मेन्डल के बाद के युग के आनुवंशिक अध्ययनों से, यह स्पष्ट होने लगा कि किसी जीन के तीन अथवा अधिक ऐलील पाए जा सकते हैं । ऐसी स्थितियों में वंशागतता की स्थिति **बहुऐलीली** (multiple allelism) कहलाई जाने लगी । चूंकि किसी द्विगुणित व्यष्टि में मात्र दो ऐलील ही पाए जा सकते हैं अत: बहुऐलीली स्थिति मात्र एक जनसंख्या में दृष्टव्य हो सकती है ।

बहुऐलीलों का सरलतम उदाहरण मनुष्यों में A, B और O रक्त समूहों की वंशागतता है । मानव की जनसंख्याओं में इस लक्षण के लिए तीन अलग-अलग ऐलील पाए जा सकते हैं : I^A, I^B एवं I^O जहां I^A और I^B क्रमश: A एवं B प्रतिजनों के लिए उत्तरदायी है, I^O द्वारा कतई पहचान योग्य A एवं B प्रतिरक्षी का उत्पादन नहीं किया जाता । अत: मनुष्यों में रक्त समूहन का निर्धारण उनके प्रतिरक्षी के प्रकारों से किया जा सकता है, जैसाकि चित्र 12.7 में दर्शाया गया है ।

मानवीय रक्त समूह निर्धारण के कई व्यावहारिक उपयोग हैं। प्रथम इसकी सहायता से रक्त आधान (blood transfusion) के मध्य रक्त समूहों की संगतता (compatibility) का पता लगाया जा सकता है । इसके साथ ही दूसरे उपयोगिता के रूप में विवादित जनकों के मामलों में अधिक सही स्थिति का पता लगाया जा सकता है । यह भी पता चला है कि पादपों और जंतुओं में कई अन्य प्रकार के लक्षणप्ररूपों का नियंत्रण बहुऐलीलों (multiple alleles) द्वारा किया जाता है, उदाहरणार्थ *ड्रोसोफिला* की आंख का रंग और पादपों में स्वअसंगतता (self-incompatibility) में निर्धारित करने वाली जीनों में कई ऐलील हो सकते हैं ।

12.8 द्विजीनी पारस्परिक क्रिया

लक्षणप्ररूप स्तर पर जीन अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर ज्ञान ने ऐसे उदाहरण भी प्रस्तुत किए जहां एक लक्षणप्ररूप का नियंत्रण एक जीन द्वारा न किया जाकर ऐसा कई ऐलील-रहित जीनों के सहयोग द्वारा होता है । ऐसी जीनें अवश्यंभावी रूप से लक्षणप्ररूप स्तर पर पारस्परिक क्रिया दर्शाती हैं जो इस तथ्य पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की ऐलील किसी व्यक्ति विशेष द्वारा वहन (carry) की जा रही है, नीचे हम दो जीनी पारस्परिक क्रियाकलापों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिनमें से कुछ के लिए तो हम कल्पनाओं का सहारा लेंगे और अन्य के प्रति कुछ मान्यताएं।

(i) प्रत्येक स्थिति में एक विशिष्ट लक्षणस्वरूप की उत्पत्ति होती है ।

(ii) विचारणीय जीनें सामान्य प्रभाविता दर्शातीं हैं और स्वतंत्र रूप से अपव्यूहित (independent assortment) होती हैं ।

(iii) समयुग्मनज और विषमयुग्मनज दोनों ही लक्षणप्ररूप स्तरों पर जैसे कि AA अथवा Aa और BB अथवा Bb अपना संबंधित लक्षणप्ररूप प्रभावी ऐलील द्वारा नियंत्रित होना इंगित करेंगे। इसलिए उन्हें A- अथवा B- की संज्ञा दी जा सकती है दूसरे शब्दों में - दर्शाता है कि दोनों में से कोई भी ऐलील उपस्थित होनी चाहिए ।

(iv) दो जीन युग्मों (Aa), (Bb) के लिए F_1 संतति अवश्यंभावी रूप से विषमयुग्मनज होनी चाहिए जिसका स्वनिषेचन अथवा अंतरासंकरण (intercrossing) किया जाना है।

तालिका 12.4 जीनों की पारस्परिक-क्रिया के कुछ सामान्य उदाहरण

क्रम संख्या	F_2 लक्षणप्ररूप AaBb × AaBb	[illegible]				लक्षणप्ररूपी अनुपात एवं व्याख्या
	उदाहरण	9A-B-	3A-bb	3aaB-	1aabb	
1.	चूहे में आवरण का रंग	अगौती	रंजकविहीन	काला	रंजक विहीन	9:3:4 अप्रभावी प्रबलता (संपूरक जीनें)
2.	कद्दू में फल का रंग	सफेद	सफेद	पीला	हरा	12:3:1 प्रभावी प्रबलता
3.	मटर में पुष्प का रंग	बैंगनी	सफेद	सफेद	सफेद	9:7 पूरक जीनें (किसी लक्षण प्ररूप के लिए दोनों प्रभावी ऐलील आवश्यक होते हैं)
4.	कद्दू में फल की आकृति	चक्राकार	गोल	गोल	लंबी	9:6:1 किसी भी ऐलील द्वारा बनाया लक्षण प्ररूपी
5.	शेफर्ड पर्स में फल की आकृति	त्रिकोणीय	त्रिकोणीय	त्रिकोणीय	अंडकाकार	15:1 दोनों में से कोई भी ऐलील अलग-अलग अथवा साथ-साथ वही लक्षण प्ररूप बनाती है
6.	मुर्गों में पंख का रंग	सफेद	सफेद	रंगीन	सफेद	13:3 संदमक जीन (एक जीन दूसरे की अभिव्यक्ति में अवरोध पहुंचाती है)

(v) एक सामान्य द्विसंकर संकरण (dihybrid cross) में F_1 संतति के जीनप्ररूप चार लक्षण प्ररूप वर्गों में बंट जाते हैं जैसे- 9/16 A-B-, 3/16 A-bb, 3/16 aaB- और 1/16 aabb.

प्रबलता (Epistasis)

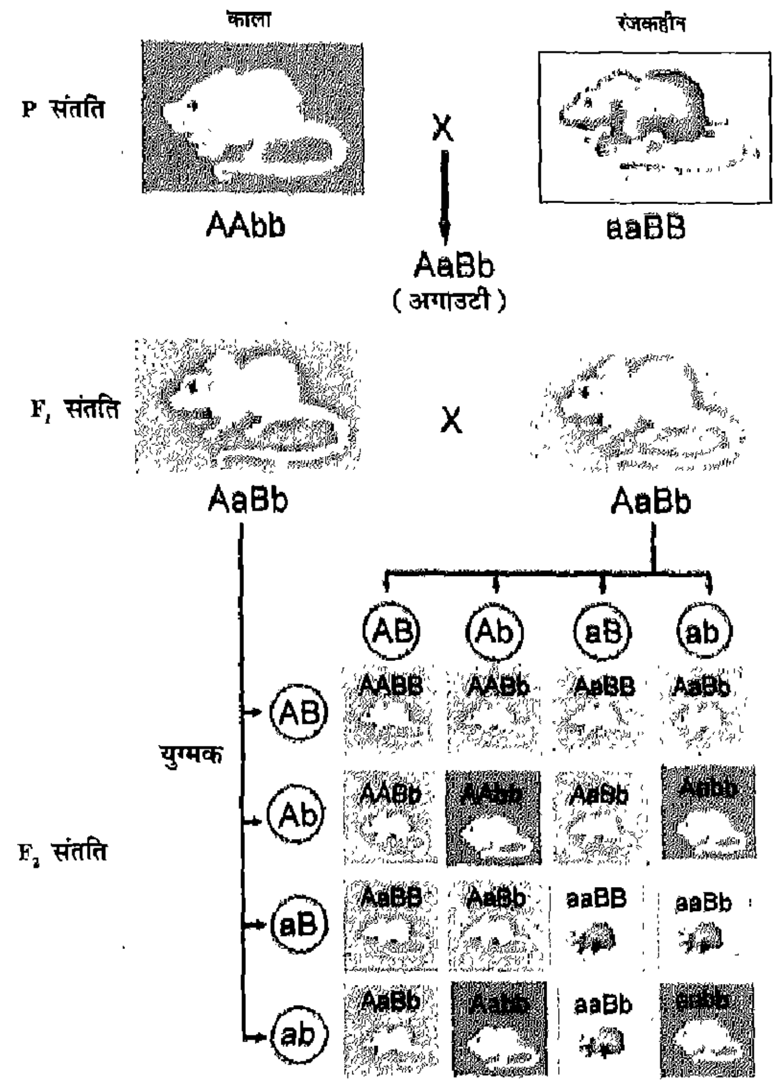
जीनों की पारस्परिक क्रियाशीलता के सर्वोत्तम उदाहरण वे हैं जो प्रबलता (epistasis) की परिघटना का प्रदर्शन करते हैं। यहां एक जीन दूसरी ऐलील-विहीन जीन की अभिव्यक्ति को परिवर्तित अथवा आच्छादित करती है। प्रबल जीन (epistatic gene) कहलाती है और जो आच्छादित होती है अबल जीन (hypostatic gene) कहलाती है। ध्यातव्य है कि दोनों में से कोई भी ऐलील अप्रभावी अथवा प्रभावी (recessive or dominant) प्रबलता की स्थिति उत्पन्न कर सकती है। कुछ दशाओं में ऐसी पारस्परिक क्रिया के परिणामतः नए लक्षण प्ररूपों का उदय हो सकता है। इन सभी स्थितियों में परिवर्तित द्विसंकर अनुपात (modified dihybrid ratio) बनेगा जैसा कि तालिका 12.4 में दर्शाया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहां प्रबलता तो दो जीनों (नॉन-एलीली) के बीच की पारस्परिक प्रक्रिया है, प्रभाविता की स्थिति एक ही जीन के विभिन्न ऐलीलों की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

अब हम ऐसे एक संकरण की विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे जिसमें आवरण के रंग का समावेश है। आप अपनी ओर से कल्पनाओं और व्याख्याओं के आधार पर अन्य उदहारणों को हल कर सकते हैं।

इस उदाहरण में, आवरण के रंग का निर्धारण A/a युग्म द्वारा होता है जिसमें A- अगौती और aa काला लक्षणप्ररूप इंगित करती है। B/b ऐलील युग्म में, अप्रभावी ऐलील b, A/a पर प्रबलता प्रस्तुत करती है। इस प्रकार A bb की उपस्थिति में A- एवं aa दोनों ही एक प्रकार का लक्षणप्ररूप (रंजक विहीन) बनाते हैं। यह अप्रभावी प्रबलता (recessive epistasis) की स्थिति का उदाहरण है (चित्र 12.8)। इन उदाहरणों को समझते हुए, आपको यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम मेन्डल के पृथक्करण एवं स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धांतों से अलग नहीं हट रहे हैं। आप जिनमें दो को देख रहे हैं वे मात्र लक्षणप्ररूप स्तर पर हैं और वे भी इसलिए कि यह दो जीनों द्वारा नियंत्रित हैं।

12.9 बहुजीनी लक्षण

मेन्डल ने उन लक्षणों में सावधानीपूर्वक अंतरों का वर्णन किया था जो एकांतरक्रम में असंतत विविधता (discontinuous variation) की स्थिति को अभिव्यक्त कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, इनमें लक्षणप्ररूपी अंतर स्पष्ट थे। ऊंचे अथवा बौने पादप, बैंगनी अथवा श्वेत पुष्प, हरे अथवा पीले बीज आदि। लेकिन ऐसा सदैव नहीं होता है। यदि आप अपनी कक्षा में ही देखें तो पाएंगे कि सतत् विविधता के दो महत्त्वपूर्ण उदाहरणों का चयन कर सकते हैं, वे हैं मानव की ऊंचाई और त्वचा का रंग। आप पाएंगे कि स्पष्ट वैकल्पिक रूपों के स्थान पर लक्षणप्ररूप की कई श्रेणियां हैं कई अन्य लक्षण जैसे बीजों का आकार और रंग, पादपों की ऊंचाई और उत्पादन इस क्रम में अन्य उदाहरण हैं ऐसे लक्षण **बहुजीनी** (polygenic) अथवा **मात्रात्मक** (quantitative) कहलाते हैं।



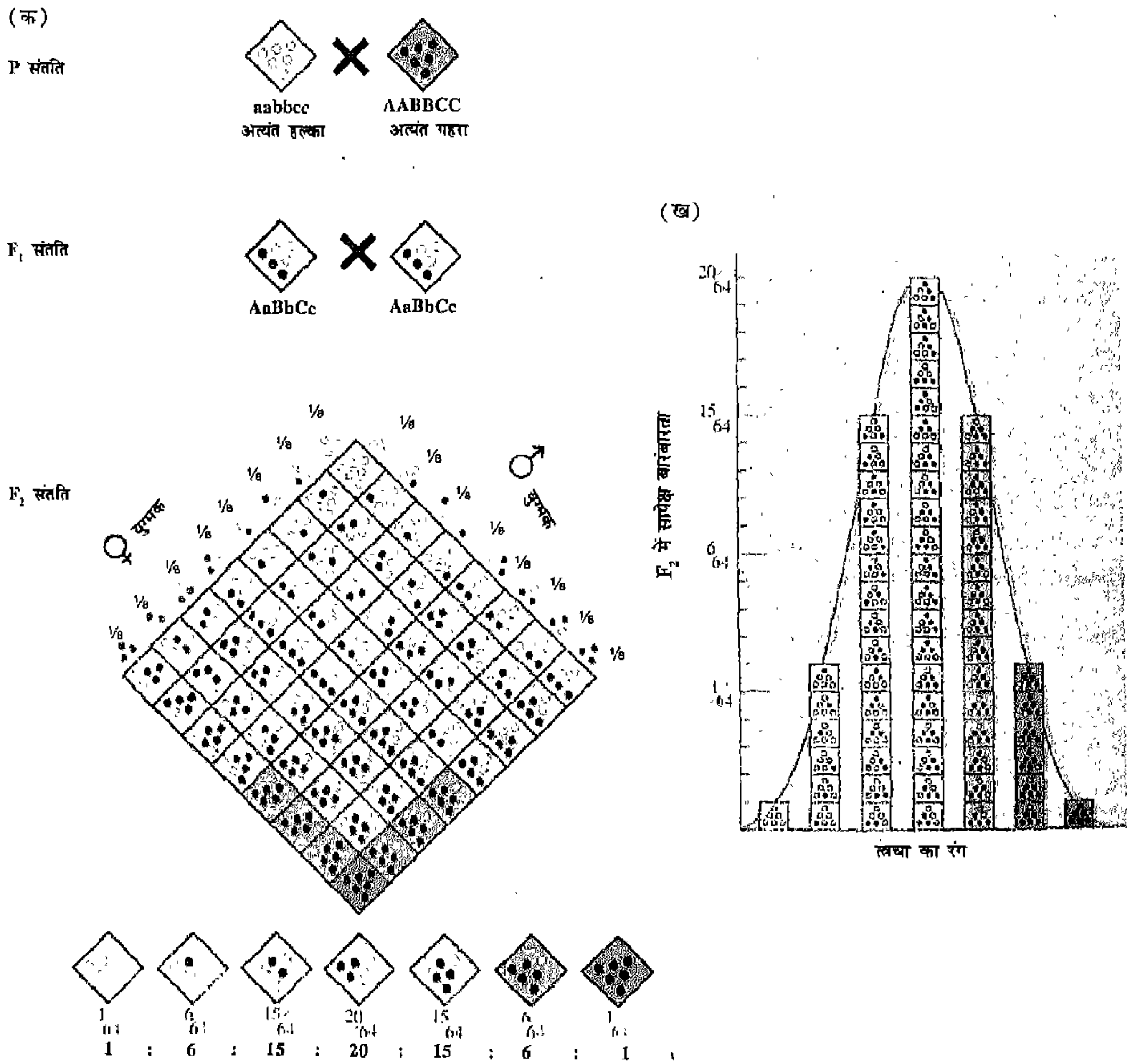
लक्षणप्ररूपी अनुपात : अगाउटी : काला : रंजकविहीन
9 : 3 : 4

जीनप्ररूपी अनुपात : AABB : AABb : AaBB : AaBb : AAbb : Aabb : aaBB : aaBb : aabb
1 : 2 : 2 : 4 : 1 : 2 : 1 : 2 : 1



चित्र 12.8 दो ऐसे जीनों द्वारा निर्धारित लक्षण की वंशागतता, जिसमें एक ऐलील दूसरे ऐलील युग्म पर प्रबलता दर्शाता है

यद्यपि बहुजीनीलक्षण वातावरण द्वारा सरलतापूर्वक प्रभावित हो जाते हैं, उन पर तीन अथवा अधिक जीनों का नियमन होता है। साथ ही लक्षणप्ररूप प्रत्येक ऐलील का मात्रात्मक योगदान दर्शाता है। आइए, हम इस बहुजीनी अथवा बहुगुणित जीन लक्षण की चर्चा मानवीय त्वचा के रंग की वंशागतता के अध्ययन के आधार पर करें। अब तक आप यह भलीभांति समझ चुके होंगे कि इस लक्षण के लिए पूर्णतः विरोधी लक्षणप्ररूप विद्‌यमान नहीं होते। साथ ही हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि यह लक्षण तीन जीनों A, B एवं C द्‌वारा नियंत्रित होता है। उस संकरण में जिसको समझने का हम प्रयास कर रहे हैं। काली त्वचाधारी एवं उज्जवल त्वचाधारी मार्गों के बीच मेल कराने से और फिर इस प्रकार उत्पन्न बीच के रंगधारी त्वचा वाले व्यक्तियों में जो F_1 संतति में अपेक्षित हैं एक बार पुनः मेल कराया जाए (चित्र 12.9क)।



चित्र 12.9 (क) बहुजीनों द्‌वारा नियंत्रित मानव त्वचा की वंशागतता दर्शाता एक संकरण (ख) यदि बहुजीनी संकरण में F_2 संतति की सापेक्ष बारंबारता को लक्षणप्ररूपी अभिव्यक्ति की सीमा के विपरीत अंकित किया जाए तो एक लाक्षणिक घंटी–सम वक्र निर्मित होता है

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि

(i) इने गिने और मात्र थोड़े ही व्यक्ति अपने जनकों की श्रेणी में आते हैं;

(ii) चूंकि लक्षणप्ररूप की अभिव्यक्ति का स्तर योगदान करने वाली ऐलीलों की संख्या पर निर्भर था अतः यह और भी परिमाणात्मक था; एवम्

(iii) यदि F_2 संतति के आंकड़ों को ग्राफ की सहायता से अंकित किया जाए तो घंटी के आकार की वक्र रेखा (Curve) सामने आएगी (चित्र 12.9ख)।

इस उदाहरण द्वारा हमने यह कल्पना की है कि इसमें तीन जीन युग्मों का समावेश है लेकिन यदि लक्षण प्ररूप के निर्धारण में जीनों की अधिक संख्या कार्यरत हो तो F_2 संतति में अधिक विविधता की अपेक्षा की जा सकती है। पादपों एवं जंतुओं के कई उदाहरणों के अध्ययन के फलस्वरूप अब यह पूर्णतः स्वीकार किया जा चुका है कि लक्षणों की एक बहुत बड़ी संख्या का नियंत्रण ऐसी बहुजीनों द्वारा होता है जिनमें ऐलील लक्षणप्ररूप के निर्माण में योगात्मक रूप में योगदान करते हैं। यद्यपि प्रत्येक योगात्मक ऐलील का प्रत्येक बिंदु पर संपूर्ण योगदान सूक्ष्म हो सकता है लेकिन यह अन्य सभी योगात्मक ऐलीलों के अन्य बिंदुओं पर विद्यमान प्रभाव के समान होता है इसके फलस्वरूप F_2 संतति में सतत विविधता उत्पन्न होती है लेकिन जैसा कि हम चित्र 12.9(क) में देख चुके हैं जीनों का आनुवंशिक स्थानांतरण अथवा संचरण ऐसी स्थिति में भी मेन्डल के सिद्धांतों का अनुपालन करता है।

12.10 बहुप्रभाविता (Pleiotropy)

हम ऐसे उदाहरण देख चुके हैं जो एक जीन एक लक्षणप्ररूप का नियंत्रण करती है लेकिन ऐसे भी उदाहरण उपलब्ध हैं जहां एक ही जीन बहुत से लक्षणप्ररूपों का नियंत्रण कर सकती है। ऐसी जीन **बहुप्रभावी जीन** (Pleiotropic gene) कहलाती है। बहुप्रभाविता का आधार चयोपचयी मार्गों का ऐसा आपसी संबंध है जो विभिन्न लक्षणप्ररूपों के निर्माण में योगदान कर सकता है उदाहरण स्वरूप एक लक्षण के लिए यचन किये हुए उत्प्रेरण अन्य कई लक्षणों को भी प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए *ड्रोसोफिला* में सफेद आंख संबंधी उत्प्रेरण शरीर के कई अन्य भागों में वर्णकविहीनता (depigmentation) की स्थिति उत्पन्न कर सकता है जो बहुप्रभाविता का एक अच्छा रूप है।

सारांश

जीव विज्ञान की विशिष्ट शाखा के रूप में आनुवंशिकी का उदय बीसवीं सदी के प्रारंभिक काल में हुआ। यद्यपि इसका इतिहास धनी और प्रागैतिहासिक काल तक से संबद्ध है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह संज्ञान कि आनुवंशिक लक्षण पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होते हैं, पर्याप्त पहले प्राप्त हो गया होगा। जीवन की सततता और विविधता ही वंशागतता की अभिक्रिया के अंतरंग घटक हैं। मेन्डल ने उस समय लक्षणों के स्थानांतरण की अभिक्रिया की स्थापना की जब उसने उद्यान की मटर में सात लक्षणों की वंशागतता का अध्ययन किया। उसने स्पष्ट किया कि इन लक्षणों का नियंत्रण एकक कारकों से होता है, जिन्हें बाद में जीन कहा गया, और जो युग्म अथवा ऐलीलों के रूप में विद्यमान रहते हैं। युग्म में ऐलील प्रभावी/अप्रभावी संबंध दर्शाते हैं और इनमें प्रभावी ऐलील अपनी अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार, युग्मक निर्माण के समय एकक कारकों का इस प्रकार पृथक्करण होना चाहिए जिससे प्रत्येक युग्मक में दो में से एक कारक समान संभाव्यता से समाहित हो जाए। मेन्डल ने यह विचार भी व्यक्त किया कि एकक कारकों का प्रत्येक युग्म दूसरे युग्म से स्वतंत्र रूप से पृथक्करण करता है जिससे सभी संभव संयोग समान संभाव्यता से निरूपित हो सकें। साथ ही जीनप्ररूपों और लक्षणप्ररूपों की संभावनाएं आनुवंशिक अनुपात के रूप में दर्शाई जाती है। यद्यपि मेन्डल के नियमों ने उसके जीवनकाल में कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं किया लेकिन 1900 में आनुवंशिकी के विज्ञान का जन्म उस समय हुआ जब इन नियमों की खोज स्वतंत्र रूप से तीन वैज्ञानिकों ने की।

मेन्डल के कार्य की पुनःखोज के उपरांत, आनुवंशिकी के अध्ययन का विस्तार कर इसमें अन्य कई पादपों, जंतुओं और लक्षणों का समावेश कर दिया गया, इसके परिणामस्वरूप वंशागतता की कई वैकल्पिक विधियां सामने आई। मूलतः यह दो प्रकार के आपसी क्रिया-कलाप द्वारा उत्पन्न हुई। एक तो ऐलील के स्तर पर और दूसरी ऐलील-विहीनता के स्तर पर। उदाहरण के लिए अपूर्ण प्रभाविता में, अथवा आंशिक प्रभाविता एवं सह-प्रभाविता के कारण विषमयुग्मजों में विभिन्न प्रकार की लक्षणप्ररूपी अभिव्यक्तियां उत्पन्न हो गई और मेन्डल की प्रति जीन दो ऐलील वाली अवधारणा के स्थान पर, कई जीनों में बहुऐलील उपस्थित पाए गए। उत्प्रेरण से उत्पन्न ऐसे ऐलीलों की पहचान मात्र एक जनसंख्या में की जा सकती है, क्योंकि किसी द्विगुणित जीव में मात्र दो वैकल्पिक ऐलील धारण किए जा सकते हैं।

जीनों की अन्योन्य क्रिया के फलस्वरूप कई वंशागत स्थितियों में मेन्डल द्वारा संस्थापित F_2 अनुपातों में परिवर्तन दिखाई पड़े। प्रबलता की स्थिति में एक जीन की अभिव्यक्ति अन्य जीन अथवा जीनों को आच्छादित कर लेती है। अभिव्यक्ति प्रकट

करने वाली अथवा प्रबल ऐलील, उस जीन पर प्रभावी अथवा अप्रभावी हो सकती है जिसे आच्छादित किया गया है और जो अबल जीन कहलाती है। कुछ लक्षण बहुत से जीनों द्वारा भी नियंत्रित होते हैं और ऐसी वंशागतता, बहुजीनी वंशागतता कहलाती है। ऐसी बहुजीनी अथवा परिमाणात्मक विशेषताओं में कई जीन लक्षणप्ररुप के प्रति अतिरिक्त योगदान करते हैं जिससे सतत् विविधता उत्पन्न होती है। साथ ही ऐसी एकल जीन भी प्रकाश में आई हैं जो कार्यिकी की दृष्टि से असंबद्ध जीनों के कई लक्षणों को प्रभावित करती हैं।

अभ्यास

1. निम्न तकनीकी शब्दों की व्याख्या कीजिए:
   (i) एकक कारक (ii) ऐलील
   (iii) प्रभाविता/अप्रभाविता (iv) समयुग्मजी/विषमयुग्मजी
   (v) परीक्षण संकरण
2. निम्न जीन प्ररूपों से कितने प्रकार के युग्मकों का निर्माण हो सकता है ? प्रत्येक प्रकार में उनका जीनप्ररूप क्या होगा ?
   (क) Aa; (ख) AA BB; (ग) Aa Bb; (घ) DD Ee Cc; (च) FF II Jj
3. *पाइसम सेटाइवम* (मटर) में शिंब सपाट (I प्रभावी) अथवा संकुचित (i, अप्रभावी) हो सकते हैं नीचे दिए हुए संकरणों में आप कितने प्रतिशत सपाट किस्मों की अपेक्षा रखते हैं ? (क) II × ii; (ख) Ii × ii (ग) II × II; (घ) Ii × Ii.
4. जनकों का जीनप्ररूप क्या होगा यदि संतान का लक्षणप्ररूप निम्न अनुपात में हो ? (चिह्नों Aa और Bb का उपयोग कीजिए):
   (क) 9:3:3:1, (ख) 1:1:1:1
5. यदि मटर के एक लंबे तथा पीले बीजधारी पादप (DdYy) और लंबे तथा हरे बीजों-युक्त (Dd yy) पादप के संकर में संततियों का कितना अनुपात होगा:
   (क) लंबा और हरा (ख) बौना और हरा
6. पालतू पशुओं में सींग-विहीन स्थिति (H) सींगधारी (h) पर और काला रंग (B) लाल (b) पर प्रभावी है, इन जीनों के युग्मों को स्वतंत्र रूप से अपव्यूहित होने की कल्पना कीजिए तो
   (क) BbHh × bbhh संकरण में से संतान का कितना अनुपात काला एवं सींग-विहीन होगा?
   (ख) Bbhh × Bbhh संकरण में कितने काले और सींगधारी, लाल और सींगधारी तथा लाल एवं सींग-विहीन होंगे?
7. कल्पना कीजिए कि गिनी सुअर में खुरदरा आवरण (S) चिकने आवरण (s) पर और काला (W) श्वेत (w) पर प्रभावी है ऐसी स्थिति में क्या दो खुरदरे, काले गिनी सुअरों के मेल के फलस्वरूप खुरदरी, श्वेत तथा चिकनी, काली संताने उत्पन्न हो सकती हैं?
8. आँख के रंग के लिए *ड्रोसोफिला* में निम्न ऐलील विद्यमान हो सकते हैं : लाल, श्वेत, खूबानी, इओसिन, शराबी, मूंगिया, चेरी-सम आदि। चित्र द्वारा दर्शाइए कि इन ऐलीलों में से कितने एक मक्खी में विद्यमान होंगे ?
9. गेहूँ में, दाने का रंग बहुजीनों के तीन युग्मों द्वारा निर्धारित किया जाता है ऐसी स्थिति में संकरण: AABBCC (गहरे रंग) × aaBBcc (हलके रंग) में से
   (क) संतान का कौन-सा अनुपात अपने किसी भी जनक के समान होगा ?
   (ख) F_2 संतति AABBcc एवं AaBbcc में से किस में गहरा रंग होगा ?
10. आप कैसे विभेदन करेंगे:
    (i) सतत् एवं असतत् विविधता के बीच
    (ii) अपूर्ण प्रभाविता एवं सह-प्रभाविता के बीच
    (iii) प्रभाविता एवं प्रबलता के बीच
11. कम से कम पांच ऐसे मानवीय लक्षणों की सूची बनाइए जो आपके अनुसार वंशागतता की बहुजीनी विधि के अंतर्गत आते हैं।
12. किसी काले एवं श्वेत गिनी सुअर के संकरण में F_1 संतति के सभी सदस्य काले हैं लेकिन ऐसी दो F_1 संततियों के संकरण से उत्पन्न F_2 में 3/4 काले और 1/4 श्वेत गिनी सुअर विद्यमान पाए गए हैं ऐसी स्थिति में–
    (क) प्रत्येक स्तर पर संभव जीनप्ररूपों में कौन-कौन से होंगे ?
    (ख) यदि दो F_2 संतति के श्वेतों का मेल कराया जाय तो संतान कैसी होगी ?

अध्याय 13

वंशागति का गुणसूत्रीय आधार

बारहवें अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कि जीन का माता-पिता से बच्चों में संचारित होने के लिए आनुवंशिकी के कुछ मूलभूत सिद्धांत लागू होते हैं । लैंगिक जनन करने वाले जंतुओं में एक कोशिका से दूसरी कोशिका तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आनुवंशिक सततता (genetic continuity) बनाए रखने के लिए एक समन्वित प्रक्रिया की आवश्यकता होती है । यह प्रक्रिया अगुणित युग्मकों के निर्माण, निषेचन के द्वारा द्विगुणता की पुन: स्थापना, एवं कायिक कोशिकाओं के गुणन को सुनिश्चित करती है । वह संरचना जो जीनों के स्थानांतरण में वाहक का कार्य करता है, गुणसूत्र (chromosome) कहलाता है। वह विधि जिसके अंतर्गत गुणसूत्र अथवा आनुवंशिक पदार्थ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में तथा सहजीवों से उनकी संततियों में पहुंचती हैं वास्तव में एक सुनिश्चित प्रक्रिया है । यह सब कुछ दो-विभाजन प्रक्रियाओं द्वारा संपन्न होता है जिन्हें सूत्री (Mitosis) और अर्द्धसूत्री (Meiosis) विभाजन कहते हैं । जिसके बारे में आप इकाई 3 में पूर्व परिचित हो चुके हैं । यद्यपि कोशिका विभाजन की यह दोनों प्रक्रियाएं बहुत-सी समानताएं लिए रहती है, परंतु इनके परिणाम बहुत भिन्न होते हैं । आप याद कर सकते हैं कि सूत्री विभाजन सुनिश्चितता से आनुवंशिकी पदार्थों का द्विगुणन तथा संतति कोशिकाओं में समान रूप से वितरण करता है। दूसरी ओर अर्द्धसूत्री विभाजन में गुणसूत्रों की संख्या आधी रह जाती है।

पिछले अध्याय में आप आनुवंशिकी के सिद्धांतों तथा बाह्यलक्षणीय अनुपात, जो विभिन्न पारस्परिक क्रियाओं द्वारा ऐलील एवं नॉन-ऐलील में प्राप्त किया जाता है, से भलीभांति परिचित हो चुके हैं । आनुवंशिकी सिद्धांत सभी सजीवों के लिए उपयोगी हैं । अब हम गुणसूत्रों की संरचना के आधार पर आनुवंशिकी को समझेंगें । आनुवंशिकी जीन पर आधारित होती है तथा जीन गुणसूत्र पर स्थित होते हैं । विभिन्न जीवों में ऐलील जोड़े के स्थानांतरण पर आनुवंशिकी का अध्ययन किया जाता है। जीन स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते हैं, तथा इनका पृथक्करण युग्मों (जोड़े) में होता है । जीनों का इस प्रकार जोड़ों में पृथक्करण सहलग्नता को दर्शाता है । बाद में यह ज्ञात हुआ कि यह लक्षण उन जीनों में पाया जाता है जो एक ही गुणसूत्र पर स्थित होते हैं ।

विभिन्न प्राणियों में अनेक आनुवंशिकी संकरण द्वारा दो जीनों की सहलग्नता को प्रदर्शित किया गया है। यदि जीन एक ही गुणसूत्र पर स्थित है तो इसे क्रॉसिंग ओवर द्वारा पृथक किया जा सकता है। जीन विनिमय (crossing over) अर्द्धसूत्री विभाजन की प्रावस्था-1 में होता है (जिसे आप अध्याय 11 में पढ़ चुके हैं), जिसका परिणाम पुनर्गठन के रूप में अथवा नए ऐलील के पुनर्गठन के रूप में होता है। पुनर्गठन की घटना (प्रतिशत के रूप में) जीन के मध्य दूरी को दर्शाता है । इसका उपयोग सहलग्नता और जीन मानचित्र बनाने में किया जाता है । इस अध्याय में हम आपको सहलग्नता, जीन-विनिमय व जीन मानचित्र प्रक्रिया से अवगत कराएंगे ।

यद्यपि पुनर्गठन भिन्नता का महत्त्वपूर्ण स्रोत है, वस्तुत: ऐलील संबंधी भिन्नता उत्पन्न करने वाली मूलभूत क्रियाविधि, उत्परिवर्तन (mutation) कहलाती है । गुणसूत्र की संख्या एवं संरचना में परिवर्तन से लक्षणप्ररूप परिवर्तन होते हैं ।

13.1 गुणसूत्रों एवं जीनों के मध्य समानांतरता

आपने अध्याय 12 में पढ़ा है कि जीन किस प्रकार सजीवों के बाह्य लक्षणों को नियंत्रित करती हैं और किस प्रकार अगली पीढ़ी में संचारित होती हैं । फलत: गुणसूत्र और जीनों के मध्य एक प्रकार की समानांतरता आंकी जा सकती है:

(i) प्रत्येक जाति की कायिक कोशिकाओं में विशेष एवं निश्चित संख्या में गुणसूत्र होते हैं । द्विगुणित कोशिकाओं में समान प्रकार के गुणसूत्र जोड़े में पाए जाते हैं जिन्हें समजात गुणसूत्र (homologous chromosomes) कहते हैं, यह आकार एवं आनुवंशिक सामग्री धारण करने की दृष्टि से भी समान होते हैं, जैसा कि हम आगे वर्णन करेंगे ।

समजात गुणसूत्रों का एक सदस्य माता जनक से और दूसरा पिता जनक से आता है । इसी प्रकार प्रत्येक जीन ऐलील-आकारिक युग्म के रूप में रहती है जिनका योगदान दोनों जनकों द्वारा समान रूप से होता है ।

(ii) प्रत्येक गुणसूत्र सहोदर अर्द्ध गुणसूत्र से बनी द्विसंरचना होती है जो सूत्री विभाजन के समय दोनों अर्द्ध गुणसूत्र, दो संतति केंद्रक और संतति कोशिकाओं में पृथक हो जाते हैं । ऐलील जोड़े के प्रत्येक सदस्य को भी सूत्री विभाजन के समय संतति कोशिका में एक निश्चित स्थान प्राप्त होता है । इस तरह का वितरण बहुकोशिक जीवों की कोशिकाओं का आनुवंशिक संगठन बनाए रखता है ।

(iii) अर्द्धसूत्री विभाजन के समय गुणसूत्र के जोड़े का प्रत्येक सदस्य पृथक होकर संतति केंद्रकों में चले जाते हैं । इसी प्रकार ऐलील जोड़े का प्रत्येक सदस्य अर्द्धसूत्री विभाजन के समय पृथक हो जाता है जिससे अगुणित कोशिका अथवा युग्मक में एक ही ऐलील विद्यमान रह जाता है।

(iv) जब निषेचन के समय दोनों अगुणित युग्मक मिलते हैं तब न केवल गुणसूत्र द्विगुणित होते हैं बल्कि प्रत्येक ऐलील युग्म की भी पुनर्स्थापना होती है ।

13.2 आनुवंशिकी का गुणसूत्र सिद्धांत

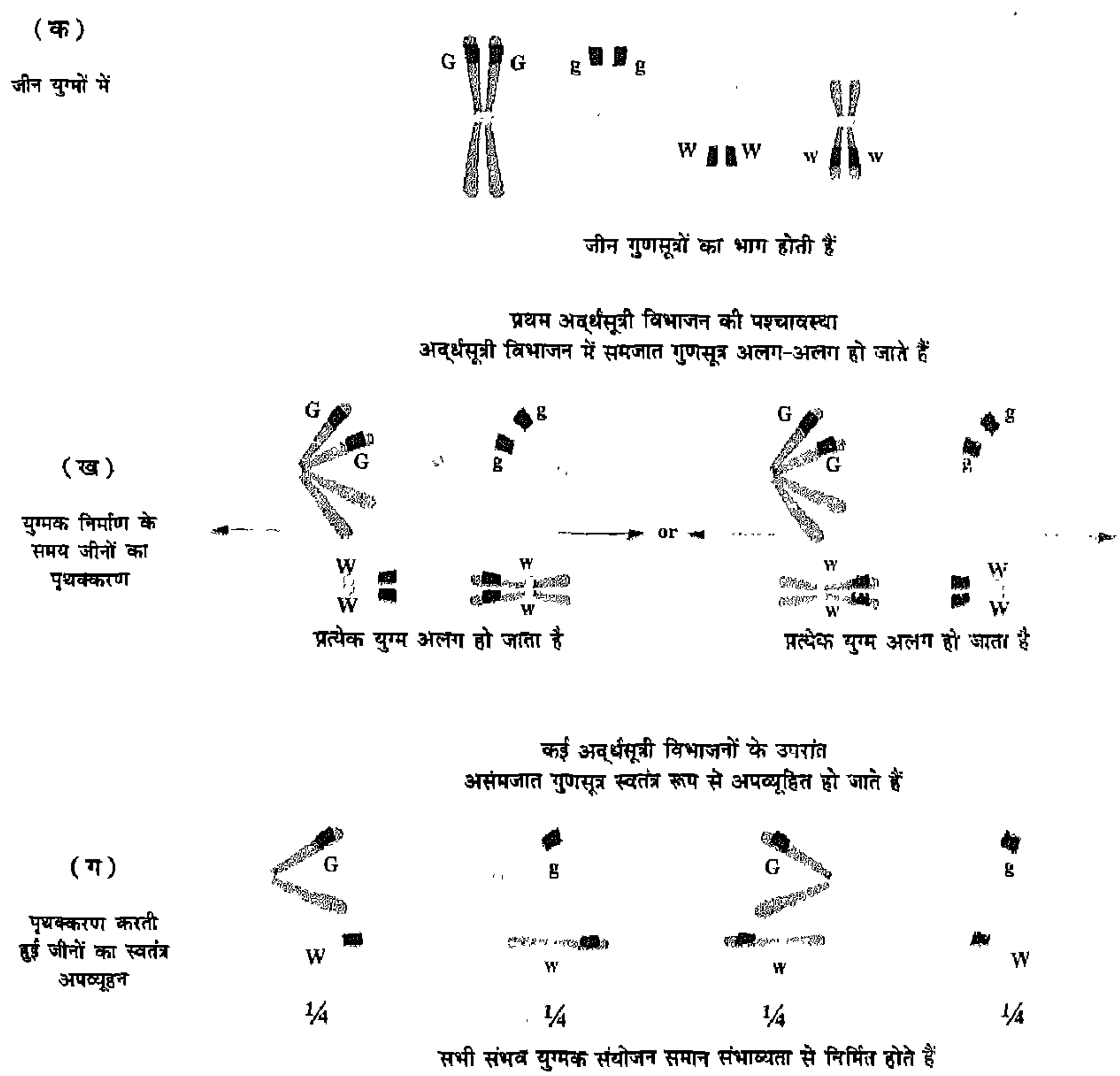
जिस समय मेन्डल, मटर पर किए कार्यों को अंतिम रूप दे रहे थे उसी समय विलियम फ्लेमिंग ने (1879) सेलामेण्डर की कोशिकाओं के केंद्रकों में गुणसूत्रों को देखा था । फ्लेमिंग एवं अन्य कोशिकाविदों ने आनुवंशिकी में केंद्रक की भूमिका को स्पष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण बताया । सन् 1902 में कोशिकीय वैज्ञानिक वाल्टर शटन और थियोडोर बावेरी ने स्वतंत्र रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि अर्द्धसूत्री विभाजन के समय गुणसूत्र का व्यवहार पृथक्करण एवं स्वतंत्र अपव्यूहन के कोशिकीय आधार के रूप में कार्य कर सकता है । उन्होंने यह भी दर्शाया कि गुणसूत्रों को मेन्डेलियन इकाई कारक के साथ समान ठहराया जा सकता है न कि गुणसूत्र पर स्थित जीनों के। इस कार्य से 'वंशागतता के गुणसूत्र सिद्धांत' (Chromosome Theory of Heredity) को थामस मोर्गन, अल्फ्रेड, स्टर्टवेन्ट एवं काल्विन ब्रिजेज ने फलमक्खी (*Drosophila*) पर शोध कर प्रतिपादित किया। आनुवंशिकी इकाई, **कारक** शब्द को 1909 में जोहान्सन ने जीन की संज्ञा दी।

अगर हम यह स्वीकार करें कि जीनें गुणसूत्रों के समजात जोड़े पर स्थित होती हैं (चित्र 13.1 क) तो हम पृथक्करण एवं स्वतंत्र अपव्यूहन के सिद्धांत की व्याख्या कर सकते हैं । जब समजात जोड़े के सदस्य पृथक होते हैं तो उनको ले जाने वाली ऐलील भी पृथक होकर विभिन्न युग्मकों में चली जाती है। इससे यह भी समझाया जा सकता है कि ऐलीलों का पृथक्करण अलग-अलग लक्षणों को नियंत्रित कैसे करता है (चित्र 13.1ख)। दूसरी ओर यदि हम दो ऐसे समजात जोड़ों को लेते है जिनमें प्रत्येक पर एक ऐलील युग्म स्थित है, तो एक गुणसूत्र युग्म दूसरे से स्वतंत्र रूप से पृथक हो जाता है। इस प्रकार चार प्रारूप बनते है जो स्वतंत्र अपव्यूहन का आधार बनाते हैं (चित्र 13.1ग)।

सजीवों में लक्षणप्ररूप विविधता यह दर्शाती है कि जीनों की संख्या गुणसूत्र की अपेक्षा कहीं अधिक होती है । दूसरे शब्दों में गुणसूत्र पर बड़ी संख्या में जीन विद्यमान होते हैं जबकि एक गुणसूत्र पर जीन की स्थिति सुनिश्चित कर दी जाती है तो इसे हम **बिंदुपथ** कहते हैं । प्रत्येक ऐलील जोड़ा यद्यपि एक विशेष समान लक्षण विनिर्दिष्ट करता है फिर भी, उसमें भी, सूचना में थोड़ी-सी भिन्नता होती है जो भिन्न रूपों को प्रदर्शित करती है।

13.3 स्वतंत्र अपव्यूहन एवं संलग्नता

आप वंशागतता के गुणसूत्र सिद्धांत का स्मरण कीजिए । यहां प्रावस्था-1 में गुणसूत्र पृथक्करण के आधार पर जीनों के स्वतंत्र अपव्यूहन एवं पृथक्करण को समझाया गया है । हम दो तरह की परिस्थितियों को सोच सकते हैं प्रथमत: यह कि जीन विभिन्न गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं, दूसरी वे उसी गुणसूत्र पर स्थित हो । यदि हम (चित्र 13.1ग) को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि ऐसी दो जीनें अलग-अलग गुणसूत्रों पर स्थित होती हैं। उनका स्वतंत्र रूप से अपव्यूहन होता है और इनमें सहलग्नता नहीं पाई जाती । इसके विपरीत ऐसी जीनें जो एक ही गुणसूत्र पर स्थित होती हैं वे भी दो स्थितियां प्रदर्शित करेगीं या तो दो के मध्य जीन विनिमय होगा अथवा नहीं। चित्र 13.2, दोनों परिस्थितियां और इन दोनों स्थितियों के निष्कर्ष को दर्शाता है। उदाहरणार्थ जब दो संतति गुणसूत्रों में आदान-प्रदान अथवा पारगमन होता है तो साथ ही दो नए ऐलील संयोजन बनते हैं। अर्द्धसूत्री विभाजन 1 के दौरान जब जीन विनिमय होता है तो समजात गुणसूत्र का प्रत्येक सदस्य दो संतति गुणसूत्रों द्वारा बना हुआ होता है । आपको यह तथ्य भी ध्यान में रखना है कि जीन विनिमय के समय किसी बिंदु पर केवल असंतति गुणसूत्र ही भाग ले सकते हैं । जिससे दो प्रकार के युग्मकों का निर्माण होता है। एक तो वे गुणसूत्र जिनमें जीन विनिमय नहीं होता है, वे जीन-विनिमय रहित कहलाते हैं और वे पैतृक समान गुणसूत्रों का निर्माण करते हैं, और दूसरे वे, जिनमें जीन विनिमय होता

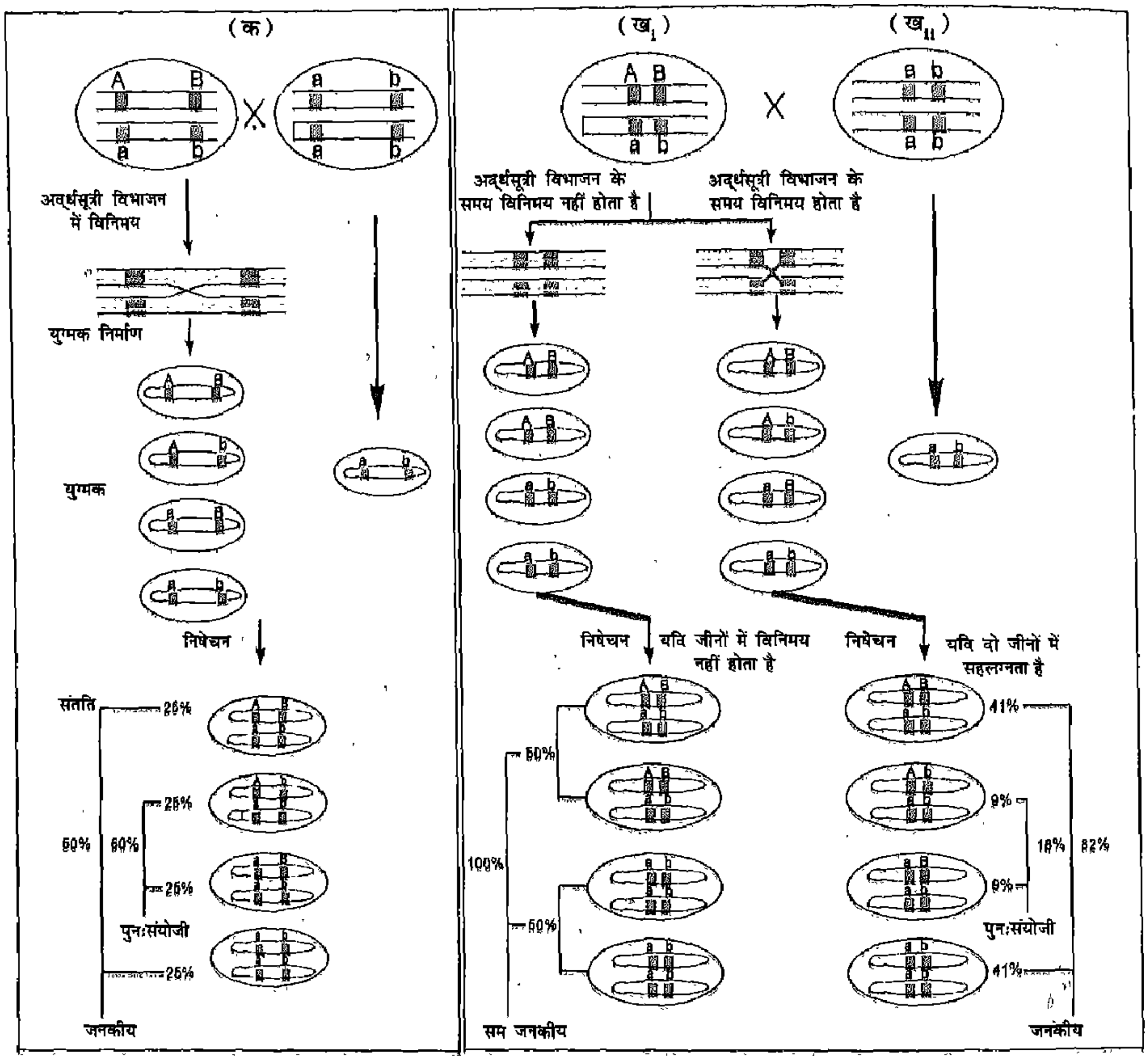


चित्र 13.1 मेन्डल के वंशागतता के नियमों और गुणसूत्रों के व्यवहार के बीच आपसी संबंध (क) दो अलग-अलग समजात गुणसूत्रों के युग्मों पर स्थित दो जीनों के युग्मों G/g एवं W/w को दर्शाया गया है (ख) प्रत्येक ऐलील युग्म का युग्मक निर्माण के मध्य पृथक्करण (ग) ऐसे दोनों ऐलील युग्मों का पृथक्करण जो स्वतंत्र अपव्यूहन दर्शाते हुए सभी संभव युग्मक संयोग समान संभाव्यता के साथ दर्शाते हैं

है। वे नए पुन:संयोजी युग्मक बन जाते हैं। यदि जीनों में विनिमय नहीं होता है तो वे बिना किसी परिवर्तन के स्थानांतरित हो जाते हैं और यह पैतृक गुणसूत्र अथवा जीन विनिमय रहित (non-crossover) युग्मक बनाते हैं । यह लक्षण **पूर्ण सहलग्नता** कहलाता है (चित्र 13.2)। ध्यातव्य है कि दो जीनों के मध्य विनिमय की बारंबारता गुणसूत्र पर उनकी स्थिति के मध्य दूरी के समानुपाती होती है ।

13.4 पूर्ण व अपूर्ण सहलग्नता

जैसा कि चित्र 13.2 में बताया गया है, यदि यह ऐसी दो जीनों के बारे में विचार करें जो एक ही गुणसूत्र पर स्थित होती हैं, तो दो संभावनाएं दिखाई देती हैं (चित्र 13.2 क)। जब दोनों जीनें एक-दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होती हैं जिससे कि सभी अर्द्धसूत्री कोशिकाओं में जीन विनिमय संभव हो सकें इस प्रकार की स्थिति में 50 प्रतिशत जनकीय गुणधारी एवं 50



चित्र 13.2 ऐसे दो ऐलील युग्मों का पृथक्करण जो यदि (क) एक ही गुणसूत्र पर स्थित होते हुए यदि दूर-दूर हों, तो स्वतंत्र अपव्यूहन करेंगे (ख) यदि एक ही गुणसूत्र पर और पास-पास हों (ख-i) तो जीन विनिमय नहीं होगा और दोनों ऐलील युग्मों का नई पीढ़ी में संचरण अविच्छिन्न रूप में होगा जो पूर्ण सहलग्नता की स्थिति है (ख-ii) ऐसी दशा में जीन विनिमय होता तो है लेकिन आशा से कम कोशिकाओं में इस प्रकार पुनः संयोजियों का निर्माण 50 प्रतिशत की बारंबारता पर नहीं होता है

प्रतिशत पुनःसंयोजित गुणधारी गुणसूत्रों का निर्माण होगा तथा बनने वाले युग्मकों में जीनप्ररूप अनुपात 1:1:1:1 होगा। ऐसी स्थिति में दोनों जीनों के संचारण को उस परिस्थिति से विभेदित नहीं किया जा सकता जबकि जीनें दो अलग-अलग गुणसूत्रों पर स्थित होकर स्वतंत्र अपव्यूहन करती हैं। (ख-i) दूसरी स्थिति में जब जीनें एक दूसरे के समीप होती है तो दो परिस्थितियां बनती हैं। (ख-i तथा ख-ii) या तो उनमें जीन-विनिमय नहीं होगा तथा पूर्ण सहलग्नता वाले युग्मक प्राप्त होंगे। वास्तव में कभी भी ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न नहीं होती है तथा सबसे समीप स्थित जीनों के मध्य भी जीन विनिमय होता है। ये परिस्थितियां जिन्हें अपूर्ण सहलग्नता भी कहते हैं, में पैतृक या जीन विनिमय रहित युग्मकों की

प्रबलता होती है (जो उदाहरण दिया गया है उसमें 82 प्रतिशत पैतृकर्ता दर्शाते हैं तथा 18 प्रतिशत पुनर्गठन वाले होते हैं)। यह दो जीनों के मध्य सहलग्नता का स्पष्ट उदाहरण है। इस प्रकार के संबंध से *ड्रोसोफिला* नामक फलमक्खी में सर्वप्रथम मोर्गन व उसके शोधार्थी स्टर्टवेन्ट ने 1911 में प्रदर्शित किए और आज तक भी ये प्रयोगात्मक परिणाम वैध हैं। उपरोक्त विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वे जीनें जो एक गुणसूत्र पर विद्यमान होती हैं, यह भी सहलग्नता प्रदर्शित करती हैं। सहलग्नता कितनी प्रभावशाली है वह इस बात पर निर्भर करता है कि इन जीनों के मध्य कितनी दूरियां हैं। दूसरे शब्दों में उनकी सहलग्नता जीन-विनिमय द्वारा सहजता से समाप्त की जा सकती है। अत: एक गुणसूत्र पर उपस्थित जीनें एक सहलग्नता समूह का निर्माण करती हैं तथा इनकी संख्या एक जीव के अगुणित गुणसूत्रों की संख्या के बराबर होगी।

13.5 जीन विनिमय

वर्ष 1910 में मोर्गन ने फलमक्खी पर प्रयोग शुरू किए। फलमक्खी प्रयोगशाला में सामान्य संवर्धन माध्यम पर आसानी से परिवर्धित की जा सकती है तथा जीवन-चक्र दो सप्ताह में पूरा कर लेती है और एक बार के जनन मिलन के पश्चात् अधिक संख्या में अंडे पैदा कर संतति पीढ़ी का निर्माण करती है। अत: इस मक्खी पर प्रयोग करना मटर को प्रयोग हेतु उपयोग में लेने की तुलना में बहुत लाभप्रद है। उदाहरणत: मटर का पौधा बीज निर्माण में पूरा मौसम ले लेता है, फिर इन बीजों के लक्षणप्ररूपों जैसे पादप की ऊंचाई और पुष्प का रंग आदि का पता लगाने के लिए इन्हें पुन: उगाया जाता है। इसके अलावा फलमक्खी में नर व मादा की पहचान आसान है जबकि मटर में पुष्पों में नर एवं मादा की पहचान अपेक्षाकृत रूप से कठिन है। इस प्रकार *ड्रोसोफिला* में स्वत: जनन किसी भी चरण में संभव नहीं है। बल्कि इच्छित जीनप्ररूप (जीनोटाइप) की नर तथा मादा मक्खियों में संकरण आसानी से किया जा सकता है।

मोर्गन ने *ड्रोसोफिला* पर बहुत से एकल संकरण व द्विसंकरण प्रयोग किए तथा महत्त्वपूर्ण आनुवंशिक सूचनाएं प्रदान की। उदाहरणार्थ उसके एक द्विसंकर संकरण प्रयोग जिसमें पीले शरीर (y) व सफेद नेत्र (w) वाले उत्परिवर्ती मादा मक्खियों को सलेटी शरीर व लाल आंख वाली जंगली प्रारूप वाली नर मक्खियों के मध्य संकरण के पश्चात पाया कि F_1 पीढ़ी की सभी मादा तो जंगली प्रारूप वाली है तथा नरों ने दोनों उत्परिवर्तित लक्षण धारण किए हुए हैं (चित्र 13.3)। F_1 संतति के नर और मादा जिसमें विनिमय के द्वारा जीनों का नया पुनर्गठन हुआ जो F_1 संतति में दिखाई दिए। इसी प्रकार के संकरण में, जिसमें सफेद आँख तथा छोटे पंख थे, के मध्य जनन प्रदान के पश्चात् यह देखा गया कि F_2 पीढ़ी में 98.7 प्रतिशत पीली एवं सफेद आंखों वाली तथा जंगली मक्खी के गुणधारी मक्खियां पैदा हुईं। शेष बची 1.3 प्रतिशत मक्खियों का शरीर पीला तथा आंखें लाल थीं तथा कुछ में सलेटी शरीर और आंखें सफेद थी। यदि हम इन्हें लक्षणप्ररूप के आधार पर वर्गीकृत करें तो पाएंगे कि प्रथम वर्ग जनकों के सदृश्य था तथा दूसरा पुन:संयोजन लक्षणों के बनने से इस प्रक्रिया को इस तरह समझाया जा सकता है कि F_1 मक्खियों में युग्मक निर्माण के समय आनुवंशिक पदार्थों का पुन:संयोजन हुआ। दूसरी और समान संकरण प्रयोग जिनमें सफेद आंख ओर छोटे नेत्र वाली मक्खियों पर प्रयोग के पश्चात मोर्गन ने पाया कि F_2 संतति में 62.8 प्रतिशत संततियों में जनकों के लाक्षणिक गुण विद्यमान थे तथा 37.2 प्रतिशत में नए जीन पुन:संयोजन के लक्षण पैदा हुए थे।

सन् 1911 में मोर्गन के सामने दो कठिन प्रश्न उभर कर आए:

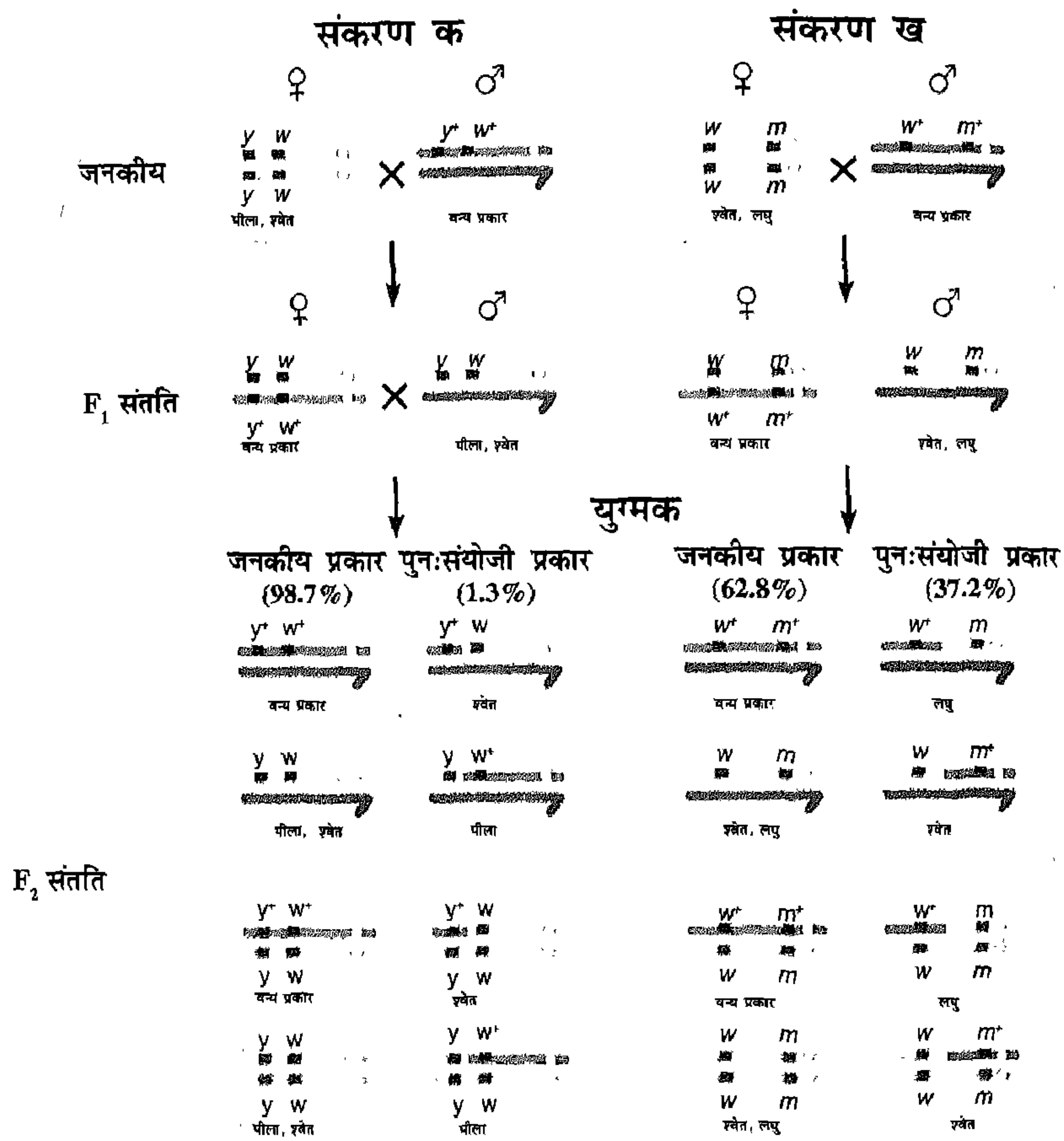
(i) जीनें किस प्रकार पृथक होती है?

(ii) स्पष्ट पृथक्करण की बारंबारता विभिन्न जीनों में अलग-अलग क्यों दिखाई देती है?

इस क्रम में मोर्गन को ज्ञात एक कोशिकाविज्ञानी एफ. जानसेन्स के कोशिकाविज्ञान संबंधी कुछ प्रेक्षण उपरोक्त दोनों प्रश्नों को समझाने में बहुत लाभप्रद रहे। जानसेन्स ने दिखाया था कि अर्द्धसूत्री विभाजन के समय दो सिनेप्स समजात गुणसूत्र काइऐज्मेट (एकल काइऐज्मा) बनाकर विनिमय करते हैं। मोर्गन ने यह प्रतिपादित किया कि काइऐज्मा जीन विनिमय अथवा आनुवंशिक विनिमय का बिंदु है। जिससे कि पुन:संयोजन होता है। विभिन्न संकरण के प्रयोगों के परिणामस्वरूप मोर्गन ने निष्कर्ष निकाला कि सहलग्न जीनें गुणसूत्र पर रेखित क्रम (linearly) में विन्यासित रहती हैं तथा यदि इनके मध्य विनिमय होता है तो दो जीनें पृथक हो जाती हैं।

13.6 पुन:संयोजन

शब्द पुन:संयोजन के बारे में हम यह पूर्व में ही बता चुके हैं तथा इस शब्द को कई बार जीनों के पुन:संयोजन हेतु उपयोग में ले चुके हैं। परंतु इस शब्द को सही प्रकार समझना अति आवश्यक है। **पुन:संयोजन** वह प्रक्रिया है जो बहुत-सी परिस्थितियों में हो सकती है परंतु सबसे अधिक अर्द्धसूत्री विभाजन के समय घटित होती है। अत: यह एक अर्द्धसूत्री है जो ऐसे अगुणित उत्पाद



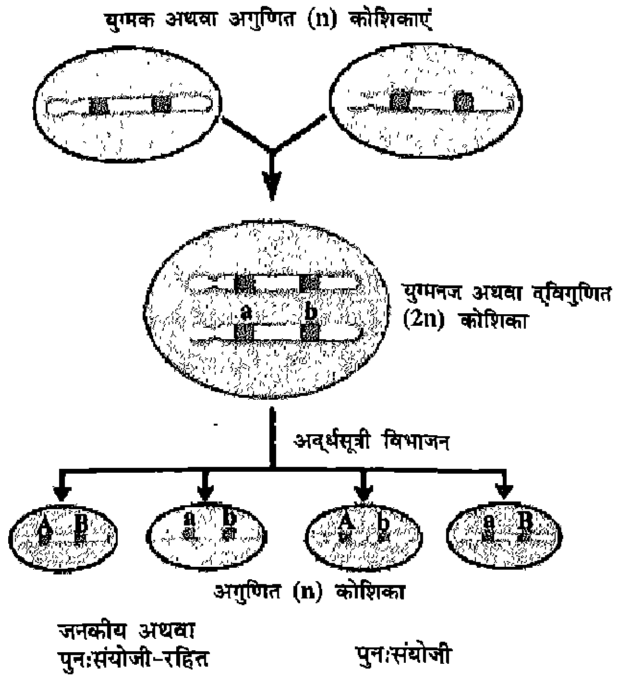
y = शरीर का पीला रंग　　w = आँख का रंग श्वेत　　m = लघु पंख

y+ = शरीर का रंग सामान्य भूरा　　w+ = आँख का रंग सामान्य लाल　　m+ = सामान्य पंख

चित्र 13.3 मोर्गन द्वारा संपन्न किए गए दो द्विसंकरी संकरणों के परिणाम । 'क' संकरण में y एवं w जीनों में संकरण दिखाया गया है। संकरण 'ख' में w एवं m जीनों में संकरण दिखाया गया है।
**टिप्पणी : y एवं w के बीच सहलग्नता की शक्ति w एवं m से कहीं अधिक है ।*

बनाती है जिसका जीनप्ररूप द्विगुणक के दो अगुणित जीनप्ररूपों से भिन्न होता है। पुनःसंयोजन का प्रतिफल **पुनःसंयोजी** कहलाता है (चित्र 13.4)।

आप स्मरण कर सकते हैं कि मोर्गन ने यह सुझाया था कि पुनःसंयोजी का बनना अर्द्धसूत्री विभाजन I के समय काइऐज्मा निर्माण के कारण होता है । इससे **काइऐज्मा-प्ररूप परिकल्पना**



चित्र 13.4 पुन:संयोजी एवं पुन:संयोजी-रहित (जनकीय प्रकार के) युग्मकों का निर्माण

(Chiasma-type hypothesis) बनी जो निम्न तथ्यों पर आधारित है (चित्र 13.5) :

(i) पूर्वावस्था I में जाइगोटीन के समय समजात गुणसूत्र जोड़ा जो प्रत्येक दो संतति गुणसूत्रों का बना होता है, युग्मन (synapsis) करते हैं ।

(ii) पैकीटीन प्रावस्था के समय दोनों संतति गुणसूत्र समजात बिंदुओं पर टूट जाते हैं तथा पुन: जुड़ जाते है ।

(iii) यह पुन: जुड़ना दो अलग सहोदरा अर्ध गुणसूत्रों (nonsister chromatids) के मध्य होता है जिसमें शारीरिक रूप से विनिमय देखा जा सकता है ।

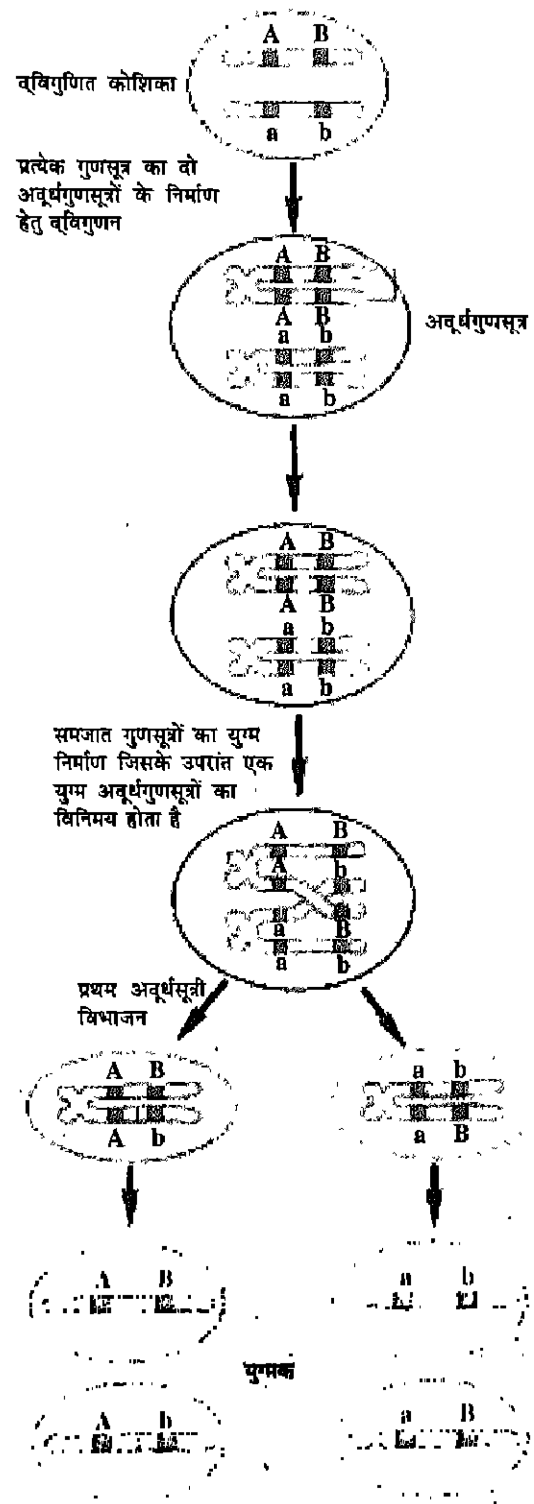
(iv) शारीरिक विनिमय से जीनों में आदान-प्रदान होता है जिसमें पुन:संयोजन होता है ।

13.7 गुणसूत्र मानचित्रीकरण : जीन मानचित्र निर्माण की ओर अगला चरण

जीन मानचित्रीकरण हेतु एक परीक्षण संकर व उसके उपरांत चाही गयी जींस की पुन:संयोजन आवृत्ति की आवश्यकता होती है । चाही गयी जींस के पुन:संयोजन की आवृत्ति निम्न संबंध से ज्ञात की जा सकती है:

$$\text{पुन:संयोजन बारंबारता} = \frac{\text{पुन:संयोजियों की कुल संख्या}}{\text{संतति की कुल संख्या}}$$

इसे प्राय: कुल जनसंख्या के प्रतिशत से आंकलित किया जाता है।



चित्र 13.5 काइज्मा का निर्माण जिसके फलस्वरूप पुन: संयोजी का निर्माण। सहोदरा-इतर अर्धगुणसूत्रों के खंडन और पुन:संयोजन के परिणामस्वरूप आनुवंशिक पदार्थों अथवा पुन:संयोजियों में आदान-प्रदान होता है

पुन:संयोजन की बारंबारता में अंतर दो जीनों के मध्य दूरियों के द्वारा निर्धारित किया जाता है। दो जीन जितनी पास-पास होंगी, विनिमय के होने की संभावनाएं उतनी ही कम होंगी। यह पुन:संयोजन बारंबारता को निम्नतम गणक के रूप में या इसके विपरीत देखी जा सकती हैं। इसके विपरीत यदि दो जीनें एक-दूसरे से अधिक दूरी पर होती हैं तो विनिमय एक से अधिक बिंदुओं पर भी हो सकता है (द्वि अथवा बहु विनिमय की स्थिति)।

एल्फ्रेड एच. स्टर्टवेन्ट ने उपरोक्त प्रस्ताव को सर्वप्रथम स्वीकार करते हुए सुझाव दिया कि पुन:संयोजन की बारंबारता को एक गुणसूत्र पर उपलब्ध जीनों की सापेक्ष दूरी प्रस्तावित करने के काम में ले सकते हैं। इससे सहलग्न जीनों का मानचित्र (सहलग्न मानचित्र) तैयार करने में काम में ले सकेंगे। आइए देखें कि इसे किस प्रकार तैयार किया जा सकता है। मोर्गन द्वारा अध्ययन की गयी तीन जीनें जिनके मध्य विनिमय या पुन:संयोजन किया गया है वे हैं-पीली काय (y), सफेद आंख (w) एवं छोटे पंख (m), इनकी पुनरावृत्ति है पीली काय-सफेद आंख 1.5%, सफेद आंख-छोटे पंख 34.5%, पीली काय--छोटे पंख 36.1%।

आप इन तीन जीनों के अनुक्रम को गुणसूत्र पर कैसे अंकित करेंगे। वास्तव में इनके, क्रम को तीन संभावनाओं द्वारा ज्ञात किया जा सकता है ये हैं (i) ywm, (ii) ymw, (iii) wym।

स्टर्टवेंट ने यह तर्क दिया कि जीनें रेखीय क्रम में विन्यासित होती हैं। इनके बीच की दूरियां योगात्मक होती हैं। इसको आधार मानते हुए उन्होंने जीनों का मानचित्र तैयार किया। (चित्र 13.6 क, ख)।

ऐसा मानचित्र निर्माण करने के लिए, पुन:संयोजन की बारंबारता 0.01 (अथवा 1% पुन:संयोजन) को एक इकाई मानचित्र दूरी के समतुल्य माना जाता है जिसे मोर्गन के योगदान के सम्मान में **सेंटीमोर्गन** (cM) भी कहते हैं।

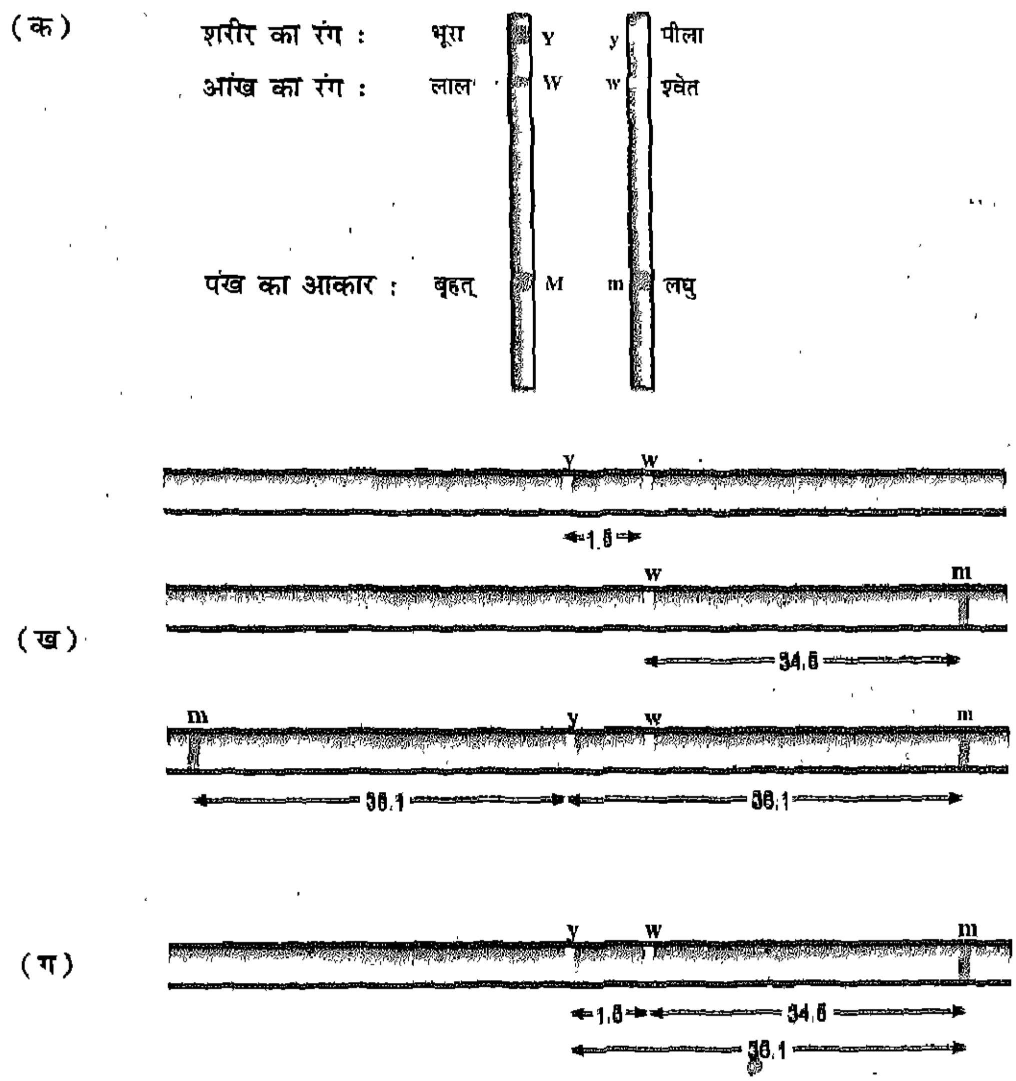
y व m जींस के बीच जीन मानचित्र दूरी 36.1 प्रतिशत इकाई है जो कि मानचित्र दूरी का कुल योग 1.5 + 34.5 = 36 है। (कभी-कभी दो लगातार विनियम होने के कारण अधिकांश उदाहरणों में इसे सटीक प्रकार से नहीं जोड़ा जाता है।) जीनों की गुणसूत्र पर तुलनात्मक स्थिति जानने के लिए एक जीन के दो अलग-अलग ऐलील को भिन्न-भिन्न चिह्नों के रूप में कार्यकर उन्हें चिह्नित बिंदु के रूप में कार्य में लिया जा सकता है। आनुवंशिक चिह्नों को गुणसूत्र पर तुलनात्मक दूरियों पर चिह्नित करने के द्वारा गुणसूत्र का **आनुवंशिक मानचित्र** तैयार होता है (चित्र 13.6 ग)।

पिछले कुछ वर्षों में विस्तृत आनुवंशिकी मानचित्र तैयार किए गए जिन्हें, DNA पर स्थित न्यूक्लियोटाइड के क्रम की जानकारी के आधार पर तैयार किया गया है, जोकि गुणसूत्र बनाते हैं। जब कभी नए भिन्न जीन की खोज होती है, तब जो प्रथम प्रश्न पूछा जाता है, वह है "यह जीन गुणसूत्र पर कहां स्थित होता है ?" यह विधि न केवल जीवन अभियांत्रिकी में महत्त्वपूर्ण है बल्कि इसकी मूलभूत महत्ता के आधार पर गुणसूत्र की विस्तृत संरचना या संपूर्ण जीनोम को समझने में मदद मिलती है।

मेन्डल सहलग्नता क्यों नहीं पहचान पाए ?

हम पूर्व में यह चर्चा कर चुके है कि दो ऐसी जीनें जो एक ही गुणसूत्र पर परस्पर समीप स्थित होती हैं, स्वतंत्र अपव्यूहन प्रदर्शन करने में सफल नहीं हो पाती और सहलग्नता दर्शाती हैं। हमने अध्याय 12 में देखा है कि मेन्डल ने मटर के सात युग्म विकल्पियों पर कार्य किया था और सहलग्नता की पहचान नहीं की थी। दूसरे शब्दों में किसी भी युग्मविकल्पी ने ऐसे परिणाम नहीं दर्शाए जो कि स्वतंत्र अपव्यूहन के आधार पर समझाए जा सकें। प्रारंभ में वैज्ञानिकों ने यह सोचा था कि मेन्डल ने सात लक्षणों का चयन किया था और मटर की प्रत्येक द्विगुणित कोशिका में सात जोड़े गुणसूत्र ही विद्यमान होते है। तद्नुसार यह जीनें संभवत: विभिन्न गुणसूत्रों पर वितरित होने के कारण स्वतंत्र अपव्यूहन कर सकीं और लक्षणों का यह चयन मात्र संयोग था। मटर के इन लक्षणों पर एस. ब्लिक्स्ट द्वारा की गई विस्तृत खोजों के पश्चात पता चला कि यह सभी सात लक्षण जिनका मेन्डल ने चयन किया था, वस्तुत: चार विभिन्न गुणसूत्रों पर स्थित होते है – दो गुणसूत्र संख्या 1 पर, तीन गुणसूत्र संख्या 4 पर, और एक-एक गुणसूत्र संख्या 5 एवं 7 पर। गुणसूत्र संख्या 1 पर विद्यमान दोनों जीनें परस्पर इतनी दूरी पर स्थित होती हैं कि वे सामान्यत: सहलग्नता नहीं दर्शाती। इसी प्रकार गुणसूत्र संख्या 4 पर उपस्थित तीन में से दो जीनें, तीसरी से इतनी दूरी पर स्थित होती हैं कि वे सहलग्नता प्रदर्शित ही नहीं कर सकती। इस प्रकार मात्र एक जीन, युग्म सहलग्नता दर्शाने हेतु शेष बचता है जो फूली विपरीत संकुचित शिंब और लंबे विपरीत बौने पौधे जैसे विशिष्ट लक्षणों का नियंत्रण करता है।

यदि हम मेन्डल द्वारा प्रकाशित आंकड़ों पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि उन्होंने इस विशिष्ट लक्षण समुच्चय का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है क्योंकि संभवत: ऐसा संकरण उन्होंने किया ही नहीं होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मेन्डल के समक्ष सहलग्नता की समस्याएं क्यों नहीं उत्पन्न हुईं।



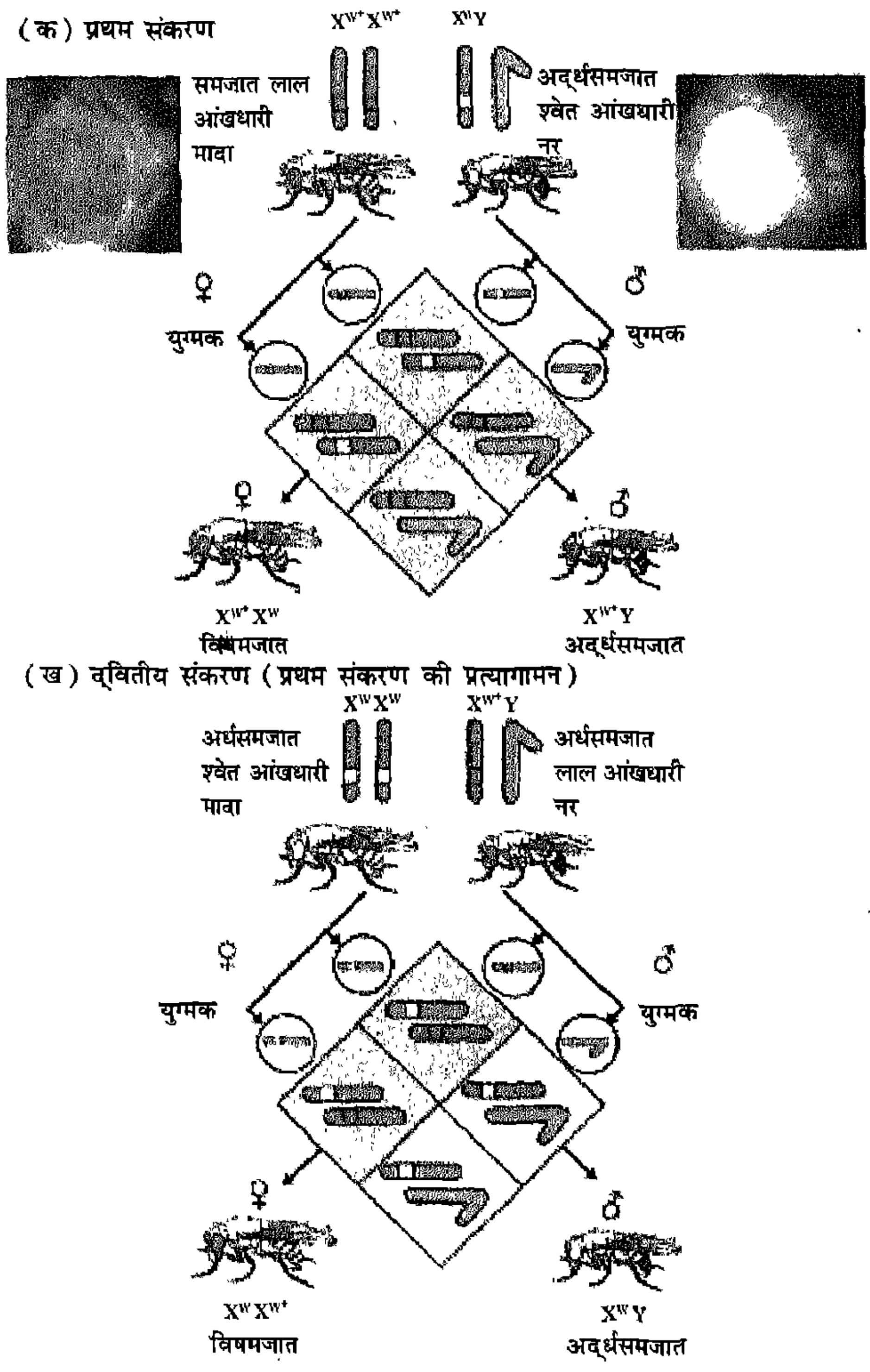
चित्र 13.6 ड्रोसोफिला में एक गुणसूत्र मानचित्र (सहलग्न मानचित्र) (क) वह क्षेत्र जो y, w एवं m जीनों की सापेक्ष स्थिति इंगित करता है (ख) y तथा w तथा w एवं m की मानचित्र दूरियां तथा y-w के बाईं तथा दाईं ओर m का संभावित स्थान (ग) इनसे प्राप्त वास्तविक मानचित्र

13.8 लिंग-सहलग्न वंशागतता

बहुत से लैंगिक रूप से विभेदित (एकलिंगी) जीवों में प्रत्येक कोशिका में एक जोड़ी गुणसूत्र होते हैं जिन्हें **लिंग गुणसूत्र** कहते हैं। बहुत-से प्राणी व पादपों में कोई भी एकलिंगी जीव एक जोड़ा असमान गुणसूत्र धारण कर सकता है और दूसरे लिंग में समान गुणसूत्र का एक जोड़ा होता है उदाहरणतया, मनुष्य व *ड्रोसोफिला* में नर में X एवं Y गुणसूत्र पाए जाते हैं तथा मादा में दो X गुणसूत्र पाए जाते हैं। इस लिंग गुणसूत्र को अन्य गुणसूत्रों से विभेदित करने के लिए शेष बचे गुणसूत्रों को **आटोसोमल** अथवा अलिंग गुणसूत्र कहते हैं। हम पूर्व में देख चुके हैं कि सभी जीनें जो एक ही गुणसूत्र पर उपस्थित होती हैं, सहलग्नता प्रदर्शित करती हैं। अब हम उन लक्षणों की वंशागतता की बात करेंगे जो उन लिंग गुणसूत्र से संबंधित हैं तथा देखेंगे कि इस प्रकार की वंशागतता में क्या अंतर है। ऐसी सर्वप्रथम उत्परिवर्तित ऐलील जिसका मोर्गन ने 1910 में *ड्रोसोफिला* की सहलग्नता के संदर्भ में अध्ययन किया वह वास्तव में X गुणसूत्र पर पाया जाता है। यह उत्परिवर्तित ऐलील सफेद आंख (*w*) लक्षणरूप प्रदर्शित करता है तथा यह लक्षण अपनी जंगली प्रजाति लाल आंख (w^+) की तुलना में अप्रभावी भी है।

इस अवधारणा के विषय में हम सफेद आंख एवं लाल आंख वाली फलमक्खियों के बीच किए गए व्युत्क्रम संकरण के द्वारा समझ सकते हैं (चित्र 13.7)।

अगर आप इन एकसंकर संकरण के परिणामों पर गौर करें तो पाएंगे कि ये समरूप नहीं है। आप को स्मरण होगा कि मेन्डल के एकसंकर संकरण में F_1 तथा F_2 के आंकड़े समान थे चाहे कोई



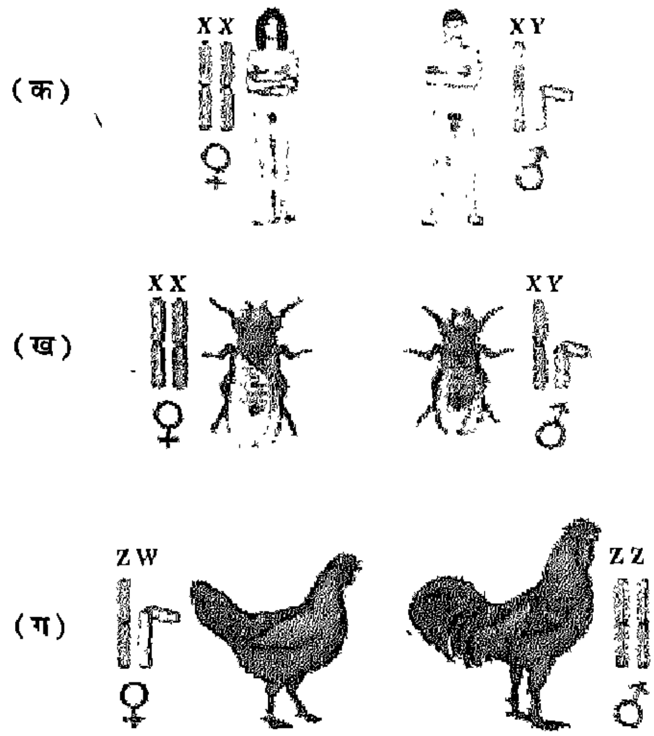
चित्र 13.7 एक लिंग सहलग्न लक्षण की वंशागतता। ड्रोसोफिला में X गुणसूत्र पर स्थित श्वेत-आंख का निर्धारण करने वाली ऐलील की वंशागतता (क) मादा में लाल आंख और नर में श्वेत आंख का निर्धारण करने वाली ऐलील का धारण होता है (ख) एक ऐसी व्युत्क्रम संकरण जिसमें श्वेत आंख-धारी ऐलील का योगदान मादा द्वारा होता है और नर लाल आंख वाली ऐलील को संधारित करती है। ज्ञातव्य है कि व्युत्क्रम संकरण का परिणाम भिन्न होता है

भी जनक अप्रभावी लक्षण में अपना योगदान कर रहा हो। इसके विपरीत मॉर्गन ने सुझाया कि X- गुणसूत्रबद्ध अप्रभावी ऐलील एक आड़ी-तिरछी रेखा के रूप में वंशागति दर्शाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अप्रभावी जीन समजात माता से नर संततियों में संचारित होते हैं। मॉर्गन ने परिकल्पना दी कि नर में सिर्फ एक ही ऐलील उपस्थित होता है जो कि X- गुणसूत्र पर पाया जाता है तथा इसके *संगत का कोई ऐलील Y- गुणसूत्र पर नहीं होता है।* इस को अर्द्धयुग्मजी (hemizygous) अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में मादा में दो समजात X- गुणसूत्र (2X) होते हैं जिस पर दो ऐलील उपस्थित होते है। मॉर्गन एवं उसके शिष्य काल्विन ब्रिजेज के लिंग गुणसूत्र पर किए गए कार्य से भी वंशागतता के गुणसूत्रीय आधार के सिद्धांत को समर्थन मिलता है।

13.9 लिंग निर्धारण के आधार

हम ऊपर देख चुके हैं कि दोनों ड्रोसोफिला एवं मनुष्य में गुणसूत्र पूरक एक *अलैंगिक गुणसूत्र समूह* (2A) व एक *लैंगिक गुणसूत्र जोड़े के रूप में होते हैं;* मादा में 2A + XX व नर में 2A + XY गुणसूत्र होते हैं । मनुष्य व ड्रोसोफिला दोनों में, नर में, दो प्रकार के युग्मक पाए जाते हैं जबकि मादा में केवल एक प्रकार के युग्मक ही पाए जाते हैं (चित्र 13.8 क, ख)। इसके बाद के अध्ययन से यह तथ्य स्थापित हुआ कि Y गुणसूत्र एक जीन Sry रखता है (लिंग निर्धारक भाग)। जो कि वृषण निर्धारण कारक टी.डी.एफ. के लिए कोड का *कार्य करता है। टी.डी.एफ. नर लिंग निर्धारण हेतु आवश्यक है तथा* इसकी अनुपस्थिति में मादा लिंग का विकास होता है । इस निरीक्षण से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि लिंग निर्धारण एक जोड़े गुणसूत्र या लिंग गुणसूत्र द्वारा किया जाता है । तथा Y गुणसूत्र दोनों प्रजातियों में नर लक्षण पैदा करने में मदद करता है। लेकिन विभिन्नताओं के अध्ययन के पश्चात् लिंग गुणसूत्र की बनावट के बारे में प्राप्त प्रमाण व उसके बाद की अणुजैविकी के विश्लेषण से यह सत्यापित हो जाता है कि Y गुणसूत्र मनुष्य व अन्य स्तनधारियों में नर लिंग निर्धारण करता है परंतु *ड्रोसोफिला* में नहीं।

केल्विन ब्रिजेज द्वारा ड्रोसोफिला पर किए गए प्रयोगों ने यह दर्शाया कि इस मक्खी में लिंग निर्धारण X गुणसूत्र व अलैंगिक गुणसूत्र का अनुपात कराता है। तदनुसार 2A + 2X या 3A + 3X जिसमें X/A अनुपात 1.0 होने पर जननक्षम मादाएं बनती हैं । यदि अनुपात इकाई से अधिक हो जाता है (3X + 2A अथवा X/A अनुपात 1.5), ऐसी परिस्थिति में पश्च मादा (metafemales) बनती हैं जो दुर्बल व जनन क्षमता विहीन होती हैं । 2A + XY तथा 2A + XO गुण सूत्र के समुच्चय से नर बनते हैं जिसमें 2A + XO गुणसूत्र समुच्चय अजननशील नर का निर्माण करता है। अतः X/A अनुपात 0.5 की नर लिंग निर्धारण में आवश्यकता होती है। जब यह अनुपात घट जाता है जैसे कि 3A + XY साथ में X/A



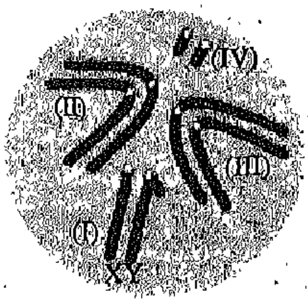
चित्र 13.8 गुणसूत्रों के अंतर द्वारा लिंग का निर्धारण (क, ख) मानव एवं ड्रोसोफिला दोनों में ही मादा में XX गुणसूत्रों का युग्म विद्यमान होता है (समयुग्मकी) जब कि नर में इसका संगठन XY (विषमयुग्मकी) होता है (ग) कई पक्षियों में, मादा में तो असमान गुणसूत्र ZW पाए जाते हैं और इसके विपरीत नर में समान गुणसूत्र ZZ पाए जाते हैं

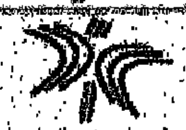
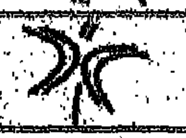
अनुपात = 0.33, अजननक्षम पश्च नरों का निर्माण होता है । ब्रिजेज ने यह भी दर्शाया कि जिन *ड्रोसोफिला* मक्खियों में X/A अनुपात 0.5 एवं 1.0 के बीच पाया गया, उनसे उत्पन्न हुई मक्खियों में कई प्रकार की आकारिक एवं लैंगिक विकृतियां उत्पन्न हुई। इस तरह की मक्खियों को जो अजननक्षम थीं, को अंतरलिंगी भी कहते हैं। यह परिणाम सुझाते हैं कि *ड्रोसोफिला* नर के विकास के कारक अलिंगी गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं न कि लैंगिक गुणसूत्र पर। X गुणसूत्र हालांकि मादा निर्धारणकारी कारकों को अपने अंदर निहित किए हुआ होता है। उदाहरणार्थ *Sxl* । इस तरह की लिंग निर्धारण प्रक्रिया को *लिंग निर्धारण का आनुवंशिक संतुलन सिद्धांत* कहते हैं (चित्र 13.9)।

पक्षियों और तितलियों में XX नर होते हैं तथा XY मादा । इस भ्रांति को दूर करने के लिए लिंग निर्धारणकारी इन गुणसूत्रों को सामान्यतः ZZ (नर) तथा ZW (मादा) के नाम से दर्शाया गया है (चित्र 13.8ग) ।

इन जीवों में मादा दो तरह के युग्मक पैदा करती है । तदनुसार अण्डज संतति के लिंग को निर्धारित करता है ।

सामान्य द्विगुणित नर



गुणसूत्र का संगठन	गुणसूत्र का पूरककाय	गुणसूत्रों का X अलिंगसूत्र समुच्चय से अनुपात	लैंगिक आकारिकी
	$3X/_{2A}$	1.5	पश्चमादा
	$3X/_{3A}$	1.0	मादा
	$2X/_{2A}$	1.0	मादा
	$2X/_{3A}$	0.67	मध्यलिंगी
	$3X/_{4A}$	0.75	मध्यलिंगी
	$X/_{2A}$	0.50	नर
	$XY/_{2A}$	0.50	नर
	$XY/_{3A}$	0.33	पश्चनर

चित्र 13.9 ब्रिजेज द्वारा प्रतिपादित ड्रोसोफिला में लिंग निर्धारण की जीनीय संतुलन अवधारणा

13.10 आनुवंशिक भिन्नताएं

आइए हम पुन: उस अवधारणा पर ध्यान दें जिसे हमने अध्याय 12 में पढ़ा था। आप पुन: स्मरण करें कि वंशागतता के साथ में सदैव एक महत्त्वपूर्ण घटक जुड़ा हुआ है वह है भिन्नताएं। दूसरे शब्दों में, जबकि लक्षणों का एक पूरा समुच्चय जनकों से संतति को प्रेषित कर दिया जाता है तो भिन्नता के कारण न केवल वे एक दूसरे से अलग दिखाई देते हैं बल्कि संतति भी एक दूसरे से विभेदित की जा सकती है। ये भिन्नताएं विभिन्न क्रियाविधियों द्वारा उत्पन्न होती हैं। जैसे कि जीन के पुन: संगठन, उत्परिवर्तन, वातावरण से अंतर क्रियाएं आदि। गुणसूत्र विकृतियों के कारण भिन्नताओं की आवृति कम होती है। हम पहले ही इसकी चर्चा कर चुके हैं कि पुनर्संगठन की प्रक्रिया कैसे होती है। नीचे के उपखंड में हम दो क्रियाविधियों के बारे में चर्चा करेंगे।

जीन उत्परिवर्तन

वे विभिन्नताएं जो कि जीन स्तर पर उत्पन्न होती हैं तथा जीवों में विभिन्नता का कारण बनती हैं साथ ही यह विभिन्न जंतुओं में विविधताओं का कारण भी बनती हैं। इस प्रकिया को **जीन उत्परिवर्तन** कहते हैं। उत्परिवर्तन शब्द सबसे पहले सन् 1901 में ह्यूगो डी व्रीज ने प्रतिपादित किया। यह प्रयोग उसने एक पौधे जिसका नाम इवनिंग प्राइमोज अर्थात् **ओइनोथेरा लेमार्किआना** पर किया। हालांकि इस पौधे में उत्पन्न अधिकांश विभिन्नताओं का कारण बाद में गुणसूत्र विकृतियां बनीं जिनकी चर्चा हम बाद में करेंगे। उत्परिवर्तन आनुवंशिकता का एक इतना महत्त्वपूर्ण विषय है कि इसकी परिभाषा देना आवश्यक है। जीन उत्परिवर्तन को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि *जीनों में आए अचानक व निश्चित परिवर्तन जोकि वंशागत होते हैं।*

यह प्रक्रिया इतनी महत्त्वपूर्ण है कि आनुवंशिक पदार्थ जैव रासायनिक प्रक्रिया की विशिष्टता से संबंधित विषय में भी इसे जोड़ दिया गया है । जिसका अध्ययन आप अध्याय 14 में करेंगे। *अब यह स्पष्ट है कि परिवर्तन वर्तमान में दिखाई देने वाली* जनसंख्या में आनुवंशिकी विभिन्नताओं में दिखाई देता है। ये विभिन्नताएं प्राकृतिक वरणवाद के लिए कच्ची सामग्री प्रस्तुत करती हैं जिससे कि जैव विकास होता है । इसके परिणाम से बनने वाली लक्षणप्ररूप विभिन्नताएं आनुवंशिकी के विशेषज्ञों को उन जीनों के अध्ययन के प्रति प्रेरित करती हैं जो कि विभिन्न लक्षणों के रूपांतरण का नियंत्रण करते हैं तथा अगली पीढ़ी में उनका प्रेषण करते हैं। अत: उत्परिवर्तन वे चिह्न उपलब्ध कराते हैं जिनके बिना आनुवंशिक विश्लेषण असंभव होता है । उदाहरणार्थ मटर के सभी पौधे यदि एक ही प्रकार के लक्षणप्ररूप प्रदर्शित करते हैं तो मेन्डल अपने प्रयोगों को नहीं कर पाता। उत्परिवर्तन के इस प्रकार के योगदान ने अन्य विभिन्न क्षेत्रों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है वे हैं– जीवों का उद्‌भव, वर्गीकरण, प्रेरण तथा उत्परिवर्तन की उपयोगिताएं।

प्रकृति में उत्परिवर्तन जब अचानक पैदा होते हैं तो उन्हें **स्वत: उत्परिवर्तन** कहते हैं। हालांकि कुछ ऐसे कारक होते हैं जैसे विकिरण तथा कुछ रसायन, जिन्हें उत्परिवर्तक (म्यूटजेन) कहते हैं, के उपयोग से प्रेरित उत्परिवर्तन कर सकते हैं। उत्परिवर्तन यदि युग्मक कोशिका में होती है तो यह अगली पीढ़ी में प्रेषित होता है परंतु जब यह कायिक कोशिका में होता है तो होने वाले परिवर्तन उस विशेष जीव तक ही सीमित रहते हैं । इसी प्रकार एक द्विगुणित कोशिका में अप्रभावी उत्परिवर्तन प्रदर्शित नहीं किए जाते क्योंकि वे प्रभावी जंगली प्रकार की ऐलील या गुण से प्रभावहीन हो जाते हैं । इनको प्रदर्शित होने के लिए या तो ये समजातीय स्थिति में होने चाहिएं या ये प्रभावी अलैंगिक गुणसूत्र अथवा सहलग्न अप्रभावी उत्परिवर्तन के रूप में हों । इसी प्रकार के उत्परिवर्तन प्रारंभिक विकास अवस्थाओं में होते हैं। उनके संततियों में प्रसारित होने के अवसर अधिक होते हैं बजाय कि उन परिस्थितियों में जबकि ये उत्परिवर्तन व्यस्क अवस्था में होते हैं । उत्परिवर्तन किसी आकारकीय लक्षण को प्रभावित करते हैं तो ये आसानी से पहचाने जा सकते हैं । जीव रासायनिक व्यावहारिकी, नियमन कारी व मृत्युकारक उत्परिवर्तनों को भी प्रेरित किया जा सकता हैं । उत्परिवर्तन की आणविक क्रियाविधि हम अध्याय 14 में भी पढ़ेगें।

गुणसूत्री विकृतियां

जीन उत्परिवर्तन के अलावा गुणसूत्र में भी परिवर्तन हो सकते हैं । क्योंकि यह परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं अर्थात् बाह्य प्ररूप लक्षणों के रूप में अभिव्यक्त किए जा सकते हैं इसलिए इन्हें **गुणसूत्री परिवर्तन** या **गुणसूत्री विकृतियों** के रूप में ही जाना जा सकता है । आप स्मरण कीजिए कि जीन उत्परिवर्तन में गुणसूत्र पर किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है । इस प्रकार की गुणसूत्री विकृतियों में या तो गुणसूत्र की रचना में परिवर्तन होता है या इनकी संख्या में परिवर्तन होता है ।

गुणसूत्र की रचना में परिवर्तन

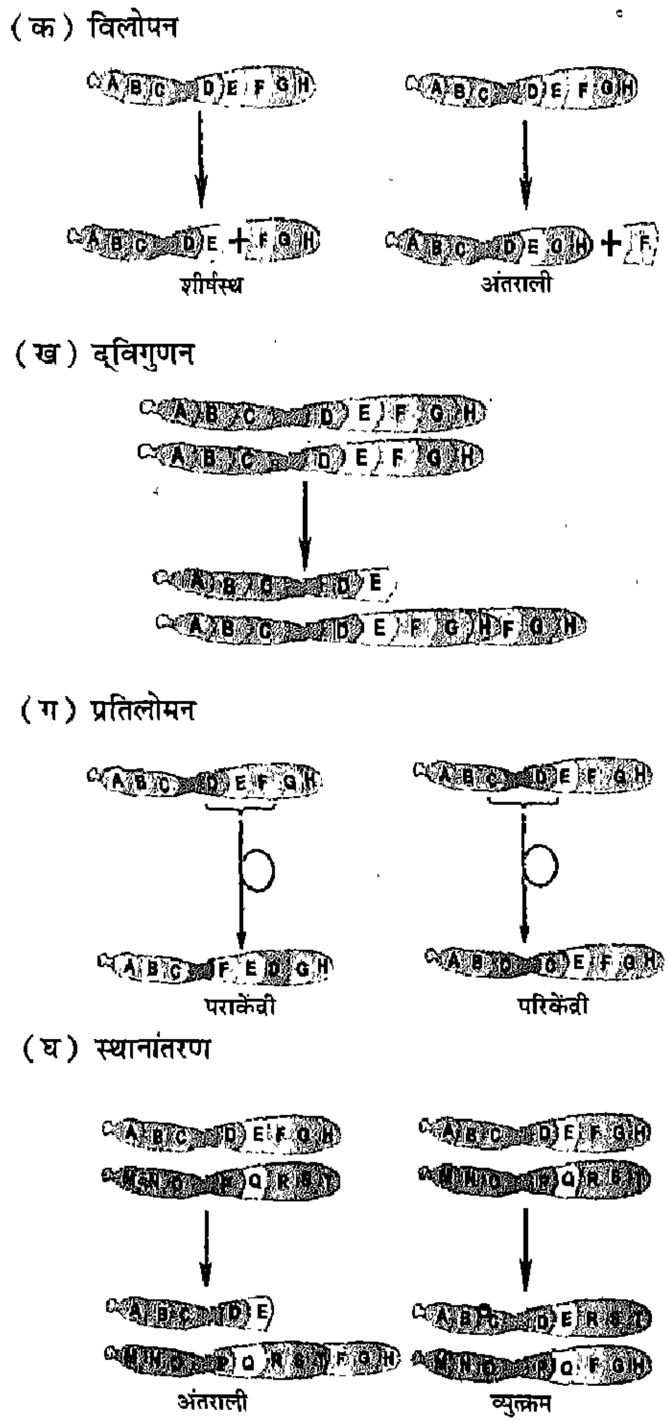
आपने इकाई तीन में पढ़ा है कि जीवित कोशिका में गुणसूत्रों की एक निश्चित संख्या होती है जिनकी एक निश्चित रचना व आकार होता है । यह द्विगुणित जंतुओं में जोड़े में पाए जाते हैं। गुणसूत्रों के विन्यास में किसी भी प्रकार का परिवर्तन आनुवंशिक परीक्षण या कोशिकीय परीक्षण से (गुणसूत्र रंजन) देखा जा सकता है। इसके लिए उचित होगा कि इन्हें जोड़े में सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखा जाए । चार विभिन्न प्रकार के रचनात्मक परिवर्तन जो गुणसूत्रों में देखे जा सकते हैं वे हैं– *विलोपन, द्विगुणन,* व्युत्क्रमण, प्रतिस्थापन। इन सभी में गुणसूत्री खंडीकरण होता है तदुपरांत गुणसूत्र का पुनर्विन्यास होता है। इनमें से अधिकांश विकृतियां जीनों के क्रम को प्रभावित गुणसूत्र पर बदल देती हैं।

कभी-कभी गुणसूत्र का एक हिस्सा खो जाता है इसे **विलोपन** कहते हैं । यह हानि गुणसूत्र के एक सिरे पर या दोनों सिरों के मध्य में हो सकती है । पहली स्थिति को **शिखरीय** व दूसरी स्थिति को **अंतस्थ विलोपन** कहते हैं (चित्र 13.10 क)। उदाहरणार्थ क्राई डु चाट सिंड्रोम मनुष्य के पांचवें गुणसूत्र की छोटी भुजा के आधे हिस्से के विलोपन द्वारा होता है । इस प्रकार की विकृति में बच्चे की चिल्लाहट, बिल्ली के रोने के समान प्रतीत होती है।

द्विगुणीकरण तब होता है जबकि गुणसूत्र के एक हिस्से की पुनरावृत्ति हो जाती है। *यह अग्रेतर क्रम में अथवा विपरीत क्रम में हो* सकती है। आनुवंशिक पदार्थ के आधिक्य की परिस्थिति में कुछ नए कार्य या लक्षणप्ररूप अथवा गंभीर विलोपन लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे कि *ड्रोसोफिला* में छड़ीनुमा नेत्र का बनना (चित्र 13.10 ख)।

जब गुणसूत्र का एक खंड टूटता है तथा 180° के घूर्णन के पश्चात पुन: जुड़ जाता है तो इस अवस्था को **व्युत्क्रमण** कहते हैं। यदि सेन्ट्रोमियर व्युत्क्रमित खंड में सम्मिलित होता है तो इसे **पैरीसेंट्रिक** कहते हैं *परंतु यदि व्युत्क्रमण किसी एक भुजा में होता* है तथा इसमें सेन्ट्रोमियर सम्मिलित नहीं होता है तो इसे **पैरासेंट्रिक** व्युत्क्रमण कहते हैं (चित्र 13.10 ग)। लगभग एक प्रतिशत नवजातों में व्युत्क्रमण पाया जाता है जिसे जी-पट्टिका गुणसूत्र कैरियोटाइपिंग द्वारा पहचाना जा सकता है।

कभी-कभी गुणसूत्र बीच से खंडित होकर उसी के समजात गुणसूत्र पर पुन:स्थापित हो जाते हैं । इसे **अंत:स्थीय प्रतिस्थापन** कहते हैं (चित्र 13.10 घ)। अन्य प्रकार में दो असमजातीय गुणसूत्री में खंड का विनिमय होता है इसे **पारस्परिक प्रतिस्थापन** कहते हैं । इसे ह्यूगो डी व्रीज के



चित्र 13.10 गुणसूत्र संरचना/संघटन में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले चार विभिन्न प्रकार की असामान्यताएं (क) विलोपन (ख) द्विगुणन (ग) प्रतिलोमन (घ) स्थानांतरण

(1901) इवनिंग प्राइमरोज नामक पौधों में दर्शाया । हम इस प्रतिस्थापन को डाउन सिन्ड्रोम के संदर्भ में आगे अध्ययन करेंगे । ल्यूकेमिया की कुछ अवस्थाओं जैसे चिरकालिक माइलॉयड ल्यूकेमिया जिसमें मैलिग्नेन्ट कोशिका में 22वें गुणसूत्र के लंबे हिस्से के प्रतिस्थापन के कारण छोटे हो जाते हैं। व्युत्क्रमण व विलोपन के कारण असंतुलित अर्द्धसूत्रण उत्पाद उत्पन्न होते हैं जिसके कारण बांझपन होता है । इनमें से कुछ जीनों को नए स्थान पर स्थापित करते हैं जिसके कारण जीन परिवर्तित गुणों का प्रदर्शन करते हैं।

गुणसूत्रों में संख्यात्मक परिवर्तन

आकार की ही तरह गुणसूत्रों की संख्या का परिवर्तन भी बाह्य प्रारूप लक्षण पर असर डालते हैं । आपको विदित है कि प्रत्येक जाति में गुणसूत्रों की एक विशिष्ट संख्या होती है जो कि एक मूल समुच्चय अथवा **एकगुणित संख्या** का परिचायक है। जिनमें उक्त एकगुणित संख्या की कई प्रतियां होती है उन्हें **सुगुणित** (Euploid) कहते हैं एवं वे सुगुणित जीव जिनमें एक गुणित संख्या की दुगुने से ज्यादा प्रतियां होती हैं उन्हें **बहुगुणित** (Polyploid) कहते हैं । इस प्रकार एक गुणित (n) व द्विगुणित ($2n$) के अतिरिक्त त्रिगुणित ($3n$), चतुर्गुणित ($4n$), पंचगुणित ($5n$), षष्ठगुणित ($6n$) इत्यादि भी होते हैं। गुणसूत्रों का संख्यात्मक परिवर्तन जब एकल गुणसूत्रों के स्तर पर होता है तो ऐसे जीवों को **असुगुणित** (Aneuploids) कहते हैं।

बहुगुणितों में गुणसूत्रों की संख्या **वृद्धि** में जब एक ही जीव के गुणसूत्र के समुच्चय सम्मिलित होते हैं **स्वबहुगुणित** कहलाते हैं तथा **परबहुगुणिता** की स्थिति में अलग-अलग जीवों के गुणसूत्रों के समुच्चय सम्मिलित होते हैं। इन दो वर्गों को स्व तथा पर उपसर्गों के साथ निर्देशित किया जाता है । उदाहरणस्वरूप स्व-चतुर्बहुगुणित, एवं परचतुर्बहुगुणित इत्यादि। हमारे बहुत से फसलीय पौधे जैसे–गेंहू, कपास, तंबाकू, प्राकृतिक परबहुगुणित हैं एवं परबहुगुणिता के कारण मानव द्वारा विकसित खाद्यान्न, ट्रिटिकेल की उत्पत्ति हुई है।

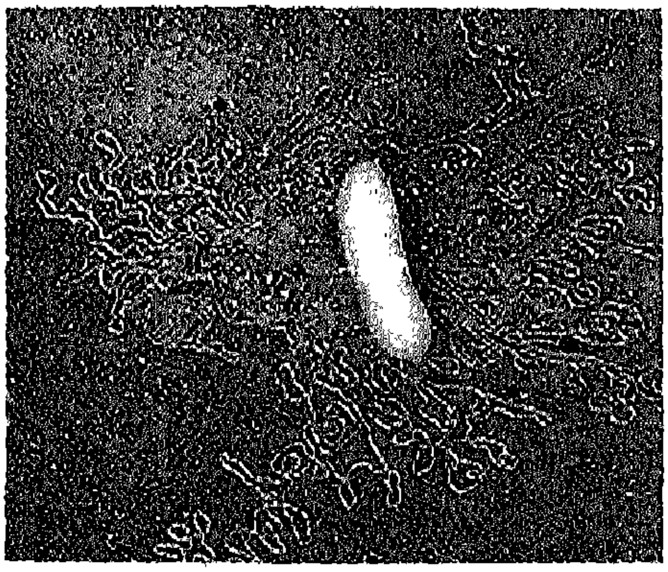
असुगुणिता में एक (2n-1) या समजात जोड़े के दोनों गुणसूत्र (2n-2) की क्षति हो जाती है । इन्हें क्रमशः एकन्यूनसूत्र (Monosomic) तथा द्विन्यून सूत्र (Nullisomic) कहते हैं। इसी प्रकार एक अतिरिक्त गुणसूत्र की उपस्थिति (2n+1) को एकाधिसूत्रता (Trisomic) कहते हैं। इन परिस्थितियों की चर्चा इसी अध्याय में हम मानव विकृतियों की चर्चा के साथ करेंगे।

फसल संकरण एवं बागवानी में बहुगुणिता के महत्वपूर्ण अनुप्रयोग हैं। परबहुगुणिता का उपयोग दो भिन्न प्रजातियों के आनुवंशिक सूचनाओं को सम्मिश्रित करने के लिए किया जा सकता है। फसल अभियांत्रिकी में भी असुगुणिता का उपयोग किया जा रहा है। मनुष्यों में असुगुणिता के कारण ही सामान्य परिवर्धन में कई गुणसूत्रों की भूमिका (अलैंगिक व लैंगिक) की जानकारी प्राप्त हो सकी है।

13.11 असीमकेंद्रकी गुणसूत्र

असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में केंद्रकीय झिल्ली नहीं होती व आनुवंशिक पदार्थ एक सघन रचना, जिसे **केंद्रकाभ** कहते हैं, में पाया जाता है। केंद्रकाभ प्रायः एक वृहत् वृत्ताकार गुणसूत्र का बना होता है जो *ई. कोलाई* जीवाणु में 1.2 मि.मी. लंबा होता है। यह गुणसूत्र डीएनए तथा इससे जुड़े प्रोटीन का बना होता है। ये प्रोटीन ससीमकेंद्रकी हिस्टोन से समानता रखते हैं, एवं एक बहुत बड़ी संख्या में धनायन द्वारा फॉस्फेट समूहों के ऋणायन को संतुलित किया जाता है।

कोशिका की तुलना में गुणसूत्र का वृहत् आकार कुंडलीकरण व अतिकुंडलीकरण के कारण संभव हुआ है जिन्हें आसानी से इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा दर्शाया जा सकता है। अतः एक गुणसूत्र एक सहसंयोजित बंद वृत्ताकार रचना है जिसमें डीएनए के कई वलय अतिकुंडलित होते हैं (चित्र 13.11)।



चित्र 13.11 न्यूक्लिओइड को अवमुक्त करने के लिए लयित (lysed) की गई जीवाणु कोशिका का छायाचित्र ज्ञातव्य है कि यह एक अत्यधिक कुंडलित संरचना है

13.12 ससीमकेंद्रकी गुणसूत्र

असीमकेंद्रकी के विपरीत ससीमकेंद्रकी गुणसूत्र अपनी संरचना और संगठन में जटिल होते हैं । इस जटिलता का कारण प्रति गुणसूत्र डीएनए की वृहद् मात्रा, गुणसूत्रों की अधिक संख्या व डीएनए के साथ कई प्रोटीन का जुड़ा होना है। *इ. कोलाई* की तुलना में, जहां गुणसूत्र की लंबाई 1.2 मि.मी. है, 46 मानवीय गुणसूत्र मिलकर 2 मीटर लंबे होते हैं। क्रोमैटिन पदार्थ की इतनी बड़ी मात्रा एक केंद्रक, जो व्यास में 5 μm से ज्यादा बड़ी नहीं होती है, में समाहित रहती है। अतः क्रोमैटिन पदार्थ लगभग 10,000 गुणा संघनित होकर एक समसूत्री गुणसूत्र बनाता है। असीमकेंद्रकी क्रोमैटिन में डीएनए धनायनी हिस्टोन व कम धनात्मक आवेशी नॉन हिस्टोन प्रोटीन से जुड़े होते हैं।

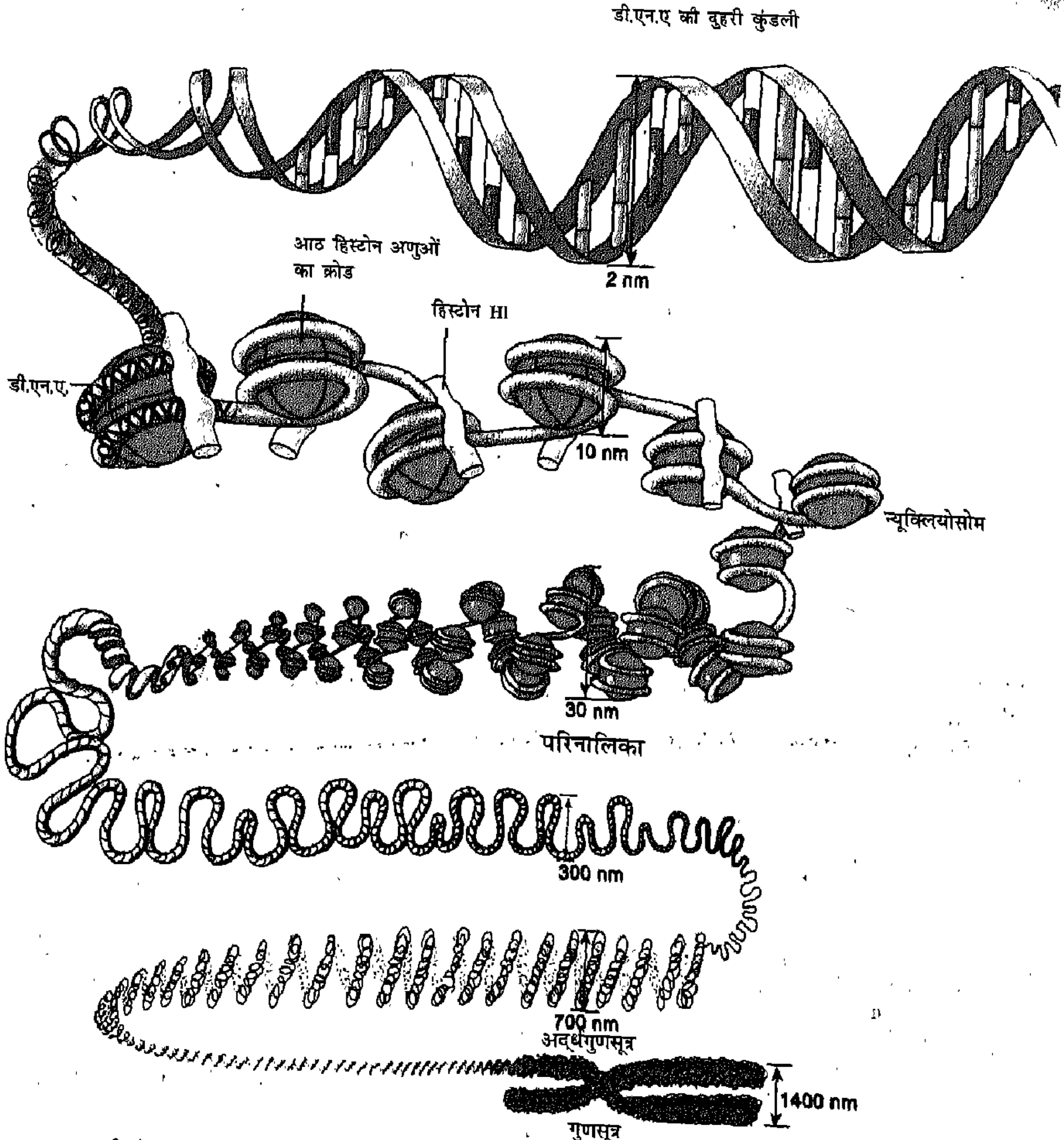
हिस्टोन का डीएनए से जुड़ाव अतिविशिष्ट होता है। इसमें गोलाकार संरचनाओं की एक रेखीय व्यवस्था बनती है जिसे न्यूक्लियोसोम कहते हैं। प्रत्येक न्यूक्लियोसोम हिस्टोन के अष्टक का बना होता है। डीएनए की एक निश्चित लंबाई इन हिस्टोन अष्टक पर लिपटी रहती है। न्यूक्लियोसोमीय संगठन एक क्रोमैटिन तंतु बनाता है जिसकी मोटाई 10 nm होती है, जोकि पुनः संघनित होकर एक मोटा तंतु बनाता है जिसकी मोटाई 30 nm होती है जिसे सॉलीनॉइड कहते हैं। यह सॉलीनॉइड रचना पुनः वलयन पैदा करती है तथा क्रोमैटिन तंतु अब 300 nm मोटा हो जाता है। इसके उपरांत क्रोमैटिन तंतु संतति गुणसूत्र में परिवर्तित हो जाता है जिसकी मोटाई 700 nm होती है तथा यह सूक्ष्मदर्शी द्वारा दिखाई देने लगता है (चित्र 13.12)। क्रोमैटिन की वलनित कुंडली केंद्रकीय पट्टिका के द्वारा बंधे रहते हैं जो कि नॉन हिस्टोन प्रोटीन के बने होते हैं।

13.13 मानव आनुवंशिकी

हम अन्य सजीवों की तरह आनुवंशिकी के सभी सिद्धांतों का पालन करते हैं। सबसे बड़ी कठिनाई ये है कि मनुष्य में नियंत्रित संकरण नहीं किया जा सकता है तथा मनुष्य जनन के पश्चात् संतति की संख्या भी सीमित होती है।

अध्ययन की विधियां

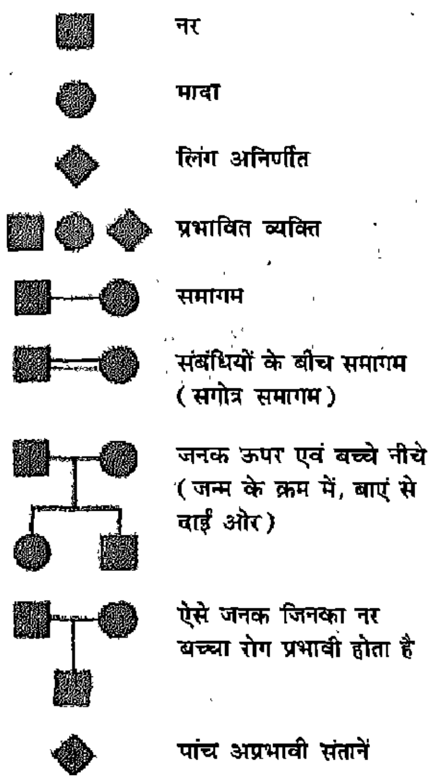
ऊपर दर्शाई गई सीमाओं को देखते हुए मनुष्य में आनुवंशिकीय अध्ययन व इसके विश्लेषण की विधियां कुछ अलग हैं। अध्येता को मानव समष्टि का यह समझकर विश्लेषण करना चाहिए कि परिवारों में उसे आनुवंशिकीय अध्ययन हेतु आवश्यक संसर्ग अकस्मात रूप से मिल सकें। इस प्रकार के संसर्ग को सूचनात्मक संसर्ग कहते हैं तथा ऐसे परिवारों के आनुवंशिक आंकड़ों का निरीक्षण यदि दो से तीन पीढ़ियों तक किया जाए जिसमें कुछ विशिष्ट लक्षणप्ररूप का स्थानांतरण हो रहा हो, इसे वंशावली विश्लेषण कहते हैं। अपवादस्वरूप कई ऐसे बाह्यप्ररूप मिल सकते हैं जिससे कि एक मनुष्य दूसरे से अलग दिखाई दे। रंजकहीनता, बौनापन, वर्णांधता इत्यादि कई ऐसे लक्षण हैं जो वंशानुगत होते हैं। एक वंशावली बनाई जा सकती है जिसमें कि कुछ स्तर के चिह्न



चित्र 13.12 ससीमकेंद्र की गुणसूत्र को उत्पन्न करने के लिएं मूलभूत क्रोमैटिन संघटकों में होने वाले विविध परत और अत्यधिक परतों के चरण

विदित हों। कुछ इस तरह की वंशावली के चिह्न चित्र 13.13 में दर्शाए गए हैं।

सामान्य मेन्डलीय विश्लेषण (जिसमें कि अप्रभावी व प्रभावी एलील निहित हो) हेतु वंशावली के कुछ सामान्य नियमों का पालन करना आवश्यक है। अप्रभावी एलील के संदर्भ में ऐसा पाया गया है कि अप्रभावित माता-पिता के संतति में भी लक्षण पाए जा सकते हैं। लेकिन, दो प्रभावित लक्षणधारी व्यक्तियों के संतति में अप्रभावित संतान नहीं हो सकती है। प्राय: ऐसे अप्रभावी एलील समरक्त विवाहों जैसे चचेरे भाई-बहन की स्थिति में दर्शित होते हैं।

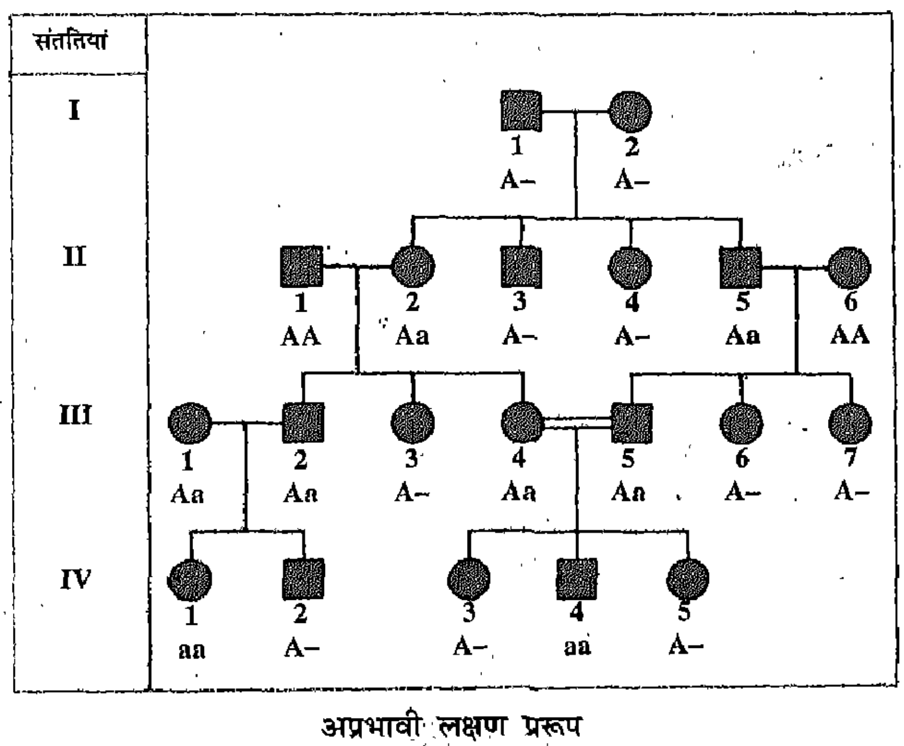


चित्र 13.13 मानवीय वंशावली के विश्लेषण में किसी एक लक्षण की वंशागतता का अध्ययन करने के लिए प्रयोग में लाए गए संकेत

सामान्य वंशावली विश्लेषण का न सिर्फ चिकित्सीय खोजों में व्यापक उपयोग है वरन् भावी माता-पिता को आए दिन के परामर्श के लिए भी उपयोगी है जो अपने भावी संतानों में बीमारी की अवस्था के संचारण के विषय में मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहते हैं। प्रायः केवल एक वंशावली के विश्लेषण से वैसे निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं जो एक वांछित संकरण के द्वारा निकाला जाता है जिसमें बड़ी संख्या में संतति की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार की अवस्था में निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कई स्वतंत्र वंशावलियों का विश्लेषण किया जाता है जिसमें एक ही गुण का अध्ययन किया गया है (चित्र 13.14)।

आनुवंशिक विकृति

मानव वंशागति के विषय में अति प्राचीनकाल से ही अभिरुचि रही है क्योंकि विशेषता के संचारण व विविधता की उत्पत्ति के संबंध में वे भी समानता दर्शाते हैं। लेकिन वास्तविक आनुवंशिक विश्लेषण की शुरूआत मेन्डल के वंशागति के नियमों की पुनर्खोज के तुरंत बाद शुरु हुई। सर आर्किबाल्ड गैरोड एवं विलियम बेटसन ने (1902) मनुष्यों की कई विकृतियों के बारे में सूचित किया था जो मेन्डलीय जीन के समान वंशागति दर्शाते हैं। इस तरह की कई स्थितियों में विकृतियों को उपापचय के स्तर तक खोजा जा



चित्र 13.14 ऐसी सचित्र वंशावली, जिसमें अप्रभावी ऐलील द्वारा निर्धारित लक्षणप्ररूप की वंशागत दर्शाई गई है

सारणी 13.1 मनुष्य की कुछ आनुवंशिक विकृतियां

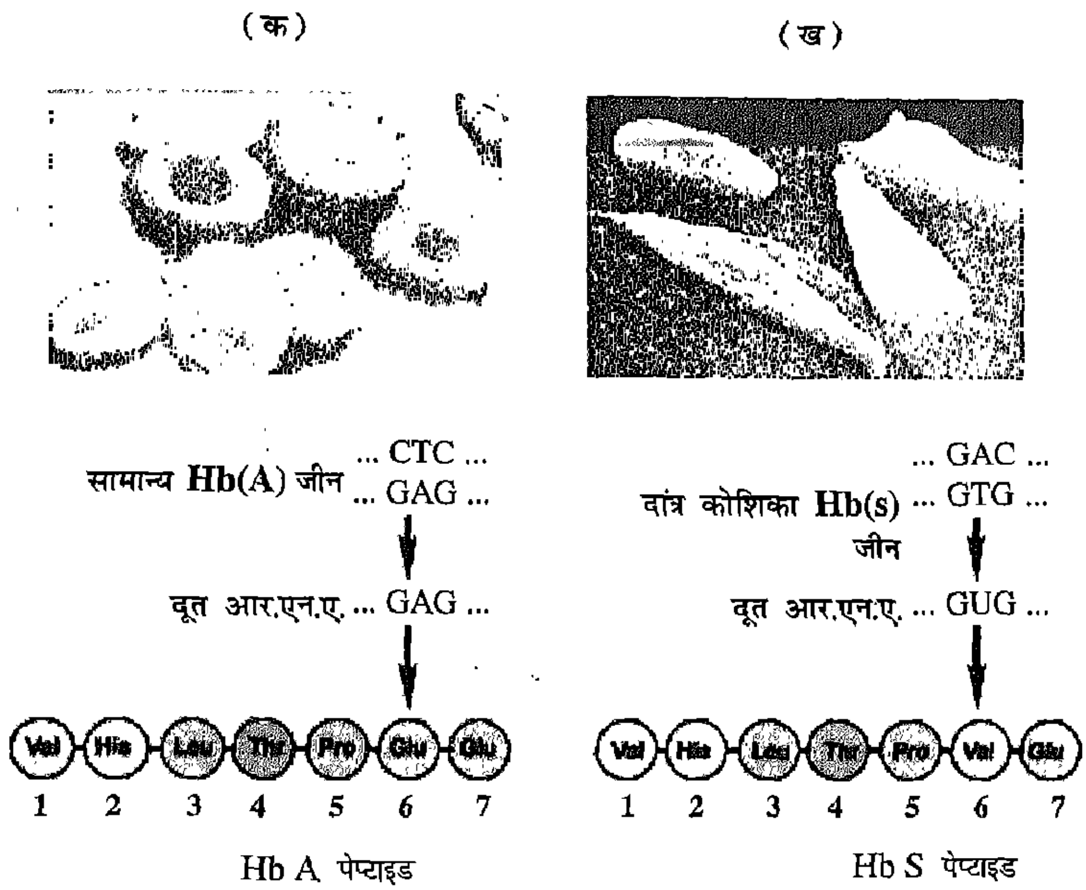
विकृति	प्रभावी/अप्रभावी	अलिंगी/लिंगी	लक्षण	प्रभाव
दांत्र कोशिका अरक्तता	अप्रभावी	अलिंगी (गुणसूत्र -11)	लाल रक्त कणिकाओं का समूहन, इनका तेजी से क्षरण जिससे अरक्तता उत्पन्न होती है।	लाल रक्त कणिकाओं में असामान्य हीमोग्लोबिन
फिनाइलकीटोन्यूरिया	अप्रभावी	अलिंगी (गुणसूत्र-12)	शिशु में मस्तिष्क विकास का अवरूद्ध होना तथा मानसिक विकृति।	किण्वक फिनाइल ऐलानीन हाइड्रॉक्सिलेस की विकृत अवस्था
पुटाभि फाइब्रोसिस	अप्रभावी	अलिंगी (गुणसूत्र-7)	फेफड़ों में श्लेष्मा का जमाव, यकृत एवं अग्नाशय में विकृतियां	क्लोराइड आयन के परिवहन में बाधा।
हटिंगटन का रोग	प्रभावी	अलिंगी (गुणसूत्र-4)	अधेड़ अवस्था में मस्तिष्क ऊतकों का लगातार क्षरण	मस्तिष्क कोशिका उपापचय में अवरोधी कारकों का निर्माण
हीमोफिलिया A/B	अप्रभावी	लिंगी (X-गुणसूत्र)	रक्त स्कंदन का अभाव	रक्त स्कंदन के कारक VIII/IX की विकृत प्रावस्था
वर्णांधता	अप्रभावी	लिंगी (X-गुणसूत्र)	हरे एवं लाल रंग को विभेदित नहीं कर सकना	हरे एवं लाल रंग की शंकुओं की विकृति।

सकता है (अल्केप्टान्यूरिया नामक इस विकृति की चर्चा अध्याय 14 में की जाएगी)। इस तरह की विकृति अथवा गलतियां पूर्व में चर्चित वंशागति के नियमों की तरह संतति के स्तर तक संचारित होती हैं। इस प्रकार ये न सिर्फ यह प्रदर्शित करते हैं कि जीन किस प्रकार से उपापचय व लक्षण प्रारूप को नियंत्रित करते हैं वरन् इनके वंशावली विश्लेषण से आनुवंशिक परामर्शों में भी मदद मिलती है। आनुवंशिक परामर्श इस प्रकार के रोगों के प्रसार को नियंत्रित करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। हम कुछ उदाहरणों की सहायता से कुछ ज्ञात मानवीय आनुवंशिक विकृतियों को समझने का प्रयास करेंगे (सारणी 13.1)।

दांत्र कोशिका अरक्तता

दांत्र कोशिका अरक्तता (Sickle-cell anaemia) एक ऐसी विकृति है जिसमें प्रभावित व्यक्ति की लाल रक्त कणिकाएं निम्न ऑक्सीजन तनाव की अवस्था में लंबी एवं वक्र हो जाती हैं। रक्ताणुओं को इस प्रकार हांसियानुमा आकार में परिवर्तन सामान्य व्यक्तियों में नहीं होता है व वे अपना द्विअवतल आकार बनाये रखते हैं (चित्र 13.15 क)। इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति की कोशिकाओं में लाल रक्त कणों के जमाव के कारण दौरे आते हैं क्योंकि ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी के कारण गंभीर क्षति होती है। इसे दांत्र कोशिका संकट भी कहा जाता है। ये रक्ताणु सामान्य रक्त कणों की तुलना में शीघ्र नष्ट भी होते हैं जिसके फलस्वरूप अरक्तता हो जाती है।

यह बीमारी जीन के एक जोड़े विकल्प Hb^A व Hb^S द्वारा नियंत्रित होती है। वंशावली के विश्लेषण से तीन प्रकार के जीन प्ररूप लक्षण व दो प्रकार के बाह्य प्ररूप लक्षणों के बारे में पता चलता है इसमें समजात जीन प्ररूप लक्षणों वाले व्यक्ति Hb^AHb^A व Hb^SHb^S होते हैं जो क्रमशः सामान्य व पीड़ित होते हैं। असमजात Hb^AHb^S दांत्र हांसिया कोशिका विशेषता दर्शाते हैं। यद्यपि ये समयुग्मज सामान्य दिखते हैं लेकिन वे एक सामान्य जीन विकल्प व दूसरा विकृत जीन विकल्प लिए रहते हैं। इस प्रकार ये विकृत जीन के वाहक होते हैं जिसे वे लगभग 50 प्रतिशत मामलों में संतति के स्तर तक संचारित कर सकते हैं (चित्र 13.15 ख)। इस कमी का कारण हीमोग्लोबिन β - अणु की ग्लोबिन श्रृंखला में छठे स्थान पर ग्लूटामीन अमीनो अम्ल के स्थान पर वैलीन का प्रतिस्थापित होना है। इस खोज का महत्त्व न



चित्र 13.15 हीमोग्लोबिन के उस महत्त्वपूर्ण β पेप्टाइड भाग का छायाचित्र जिसमें लाल रक्त कोशिकाएं और अमीनो अम्ल का संघटक स्पष्ट होता है। (क) सामान्य व्यक्ति से (ख) दांत्र कोशिका अरक्तता से पीड़ित व्यक्ति से

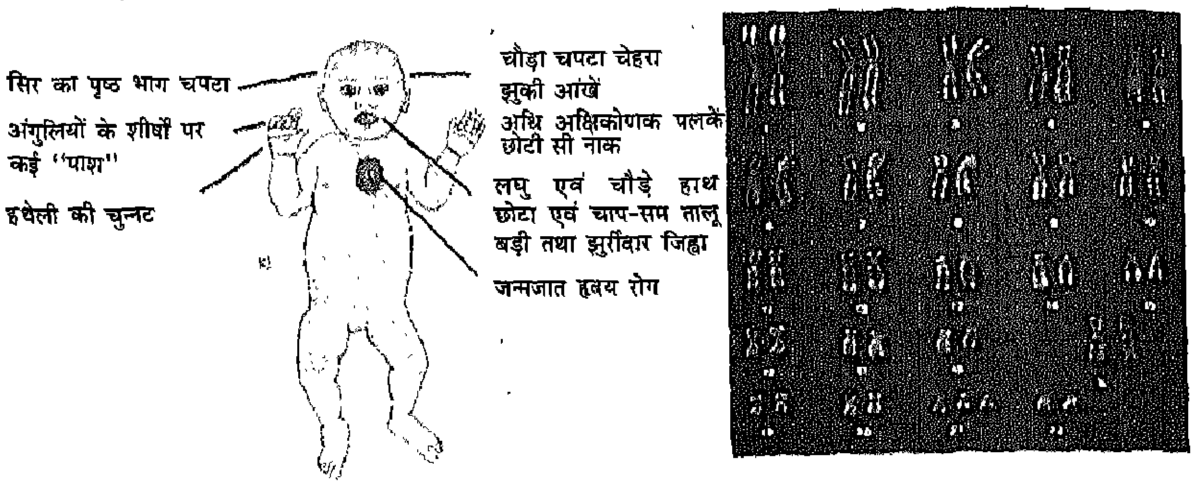
सिर्फ यह है कि जीन प्रोटीन का ब्यौरा देते हैं (अध्याय 14 देखें) वरन् आण्विक बीमारियों के वंशागति के धारणा को स्थापित भी करते हैं (चित्र 13.15)।

फेनिल कीटोनमेह (फेनिलकीटोन्यूरिया)

अल्केप्टोन्यूरिया (अध्याय 14 देखें) की तरह फेनिल कीटोनमेह नवजात शिशु में उपापचय की एक विकृति है। इसके फलस्वरूप मानसिक अवरुद्धता होती है एवं इसकी वंशागति अलैंगिक गुणसूत्रीय लक्षण के रूप मे होती है। प्रभावित शिशु में उपापचय का चरण बाधित रहता है जिसके कारण वे फेनिल ऐलानीन नामक अमीनो अम्ल को टायरोसीन में परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। इसके कारण फेनिल ऐलानीन का उत्पादन अत्यधिक होता है तथा वे फेनिल पायरुविक अम्ल और अन्य व्युत्पन्नों में परिवर्तित हो जाते हैं। ये प्रमस्तिष्क मेरु द्रव में जमा होकर मानसिक अवरूद्धता उत्पन्न करते हैं एवं वृक्क में इनके अल्प अवशोषण के कारण ये मूत्र द्वारा भी उत्सर्जित होते हैं।

डाउन सिंड्रोम

पहले के दो उदाहरणों में उत्परिवर्तित जीन-विकल्पों एवं उनके विकृत उत्पाद के कारण आनुवंशिक विकार उत्पन्न होता है। ऐसी विकृतियां गुणसूत्रों की संख्या के असंतुलन एवं गुणसूत्रों के पुनर्विन्यास के कारण भी होती हैं। इस वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण डाउन सिंड्रोम है जिसकी व्याख्या सर्वप्रथम 1866 ई. में लैंगडॉन डाउन ने की थी। प्रभावित व्यक्ति का बाहरी रूप-रंग काफी अलग और विशिष्ट होता है। उसकी आंखों के कोने पर एक सुस्पष्ट तह होती है तथा उनका कद छोटा होता है। सिर छोटा और गोल, जीभ बाहर निकली तथा झुर्रीदार होती है जिसके कारण मुख आंशिक रूप से खुला रहता है। हाथ छोटे और चौड़े होते हैं जिस पर अंगुलि छाप की एक विशिष्ट बनावट होती है। शारीरिक, मनोप्रेरक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध होता है तथा जीवन की संभावना कम हो जाती है। इस अवस्था की उत्पत्ति का कारण एक अतिरिक्त गुणसूत्र, जिसे गुणसूत्र संख्या 21 के रूप में पहचाना गया है, का होना है। आपको याद



चित्र 13.16 डाउन सिंड्रोम से पीड़ित व्यक्ति की स्थिति दर्शाता एक चित्र और उसका गुणसूत्र प्ररूप

होगा कि मनुष्यों की दैहिक कोशिका में 46 गुणसूत्र होते हैं जबकि डाउन सिंड्रोम के रोगी में यह संख्या 47 होती है जो गुणसूत्र संख्या 21 की एक अतिरिक्त प्रति के विद्यमान रहने के कारण होती है (चित्र 13.16)। इस प्रकार की अवस्था को एकाधिसूत्रता कहते हैं। जो n+1 नर या मादा युग्मक के बनने और उनके सामान्य युग्मक (n) से निषेचन [n + (n + 1)] के कारण उत्पन्न होती है। ये (n + 1) प्रकार के युग्मक पश्चावस्था में समजात गुणसूत्रों के पृथक नहीं होने के कारण उत्पन्न होते हैं जिसे हम **अवियोजन** (non-disjunction) के नाम से जानते हैं। अधिक आयु की माताओं (35–40 साल) में ऐसे युग्मक, जिसमें अतिरिक्त गुणसूत्र होते हैं, बनने की संभावना ज्यादा होती है। चूंकि यह विकृति एक दुर्लभ अर्धसूत्री विभाजन की असामान्य अवस्था है अत: इसकी परिवारों में वंशागति होने की संभावना नहीं है। लेकिन अत्यल्प अवस्थाओं में ऐसा भी होता है। इस अवस्था को पारिवारिक डाउन सिंड्रोम कहते हैं जो गुणसूत्र संख्या 21 के एक बड़े भाग के गुणसूत्र संख्या 14 पर प्रतिस्थापन के कारण होता है। प्रतिस्थापन के बारे में हम इसी अध्याय में पहले चर्चा कर चुके हैं। ऐसे व्यक्ति कुल 46 गुणसूत्र ही प्रदर्शित करते हैं लेकिन गुणसूत्र संख्या 21 के आंशिक एकाधिसूत्रता के कारण वे डाउन सिंड्रोम की अवस्था दर्शाते हैं।

एलझाइमर रोग

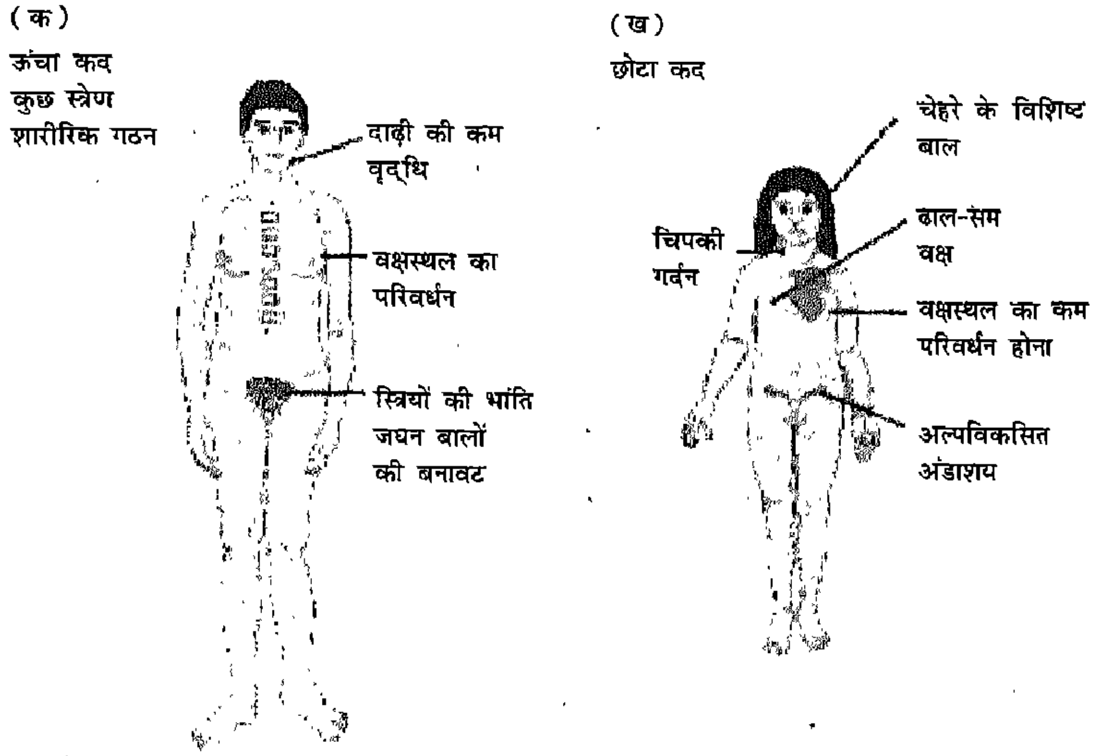
यह स्मरणहीनता, निर्णय करने की क्षमता का ह्रास एवं शारीरिक दुर्बलता की दशा है। यह मस्तिष्क में एक एमिलॉयड प्रोटीन के इकट्ठा होने व तंत्रकोशिका के ह्रास के कारण होती है। इस रोग में सम्मिलित एमिलॉयड–β प्रोटीन एक पेप्टाइड है जिसका उत्पादन व संसाधन एक सामान्य मस्तिष्क में बड़ी एमिलॉयड पूर्ववर्ती प्रोटीन से कई प्रकार से होता है। यह डाउन सिंड्रोम में सामान्य (गुणसूत्र 21 की एकाधिसूत्रता से संबंद्ध होने के कारण) है। एलझाइमर रोग से संबंधित कई जीन सहलग्न किए गए हैं पर ये सिर्फ रोग के प्रति अतिसंवदेनशीलता की संभावना व्यक्त करते हैं।

लिंग गुणसूत्र सहलग्न आनुवंशिक विकृतियां

मनुष्यों में जहां प्रत्येक द्विगुणित कोशिका में 46 गुणसूत्र होते हैं, 2A + XXY(47) जैसी अवस्था अथवा X या Y या दोनों गुणसूत्रों की बढ़ी हुई मात्रा हो, विपथगामी लैंगिक विकास को प्रदर्शित करते हैं (सारणी 13.2)।

सारणी 13.2 विपथगामी लैंगिक विकास

गुणसूत्र का संघटन	गुणसूत्र की संख्या	प्रभाव के प्रकार	लैंगिक विभिन्नता
2A + XXY/XXXY	**47/48**	**क्लाइनेफेल्टर सिंड्रोम**	**नर**
2A + XXX/XXXX	**47/48**	**मादा**	मादा
2A + XYY	**47**	**नर**	नर
2A + XO	**45**	**टर्नर सिंड्रोम**	मादा



चित्र 13.17 *मानवों में लिंग गुणसूत्र संघटन में असंतुलन के फलस्वरूप प्रकट हुई आनुवंशिक अवस्था से संबद्ध लक्षणप्ररूप (क) क्लाइनेफेल्टर (ख) टर्नर सिंड्रोम*

क्लाइनफेल्टर सिंड्रोम से ग्रस्त व्यक्ति में समग्र रूप से पुरुष-सदृश विकास होता है पर स्त्रियोचित लक्षणों का विकास पूर्ण रूप से निषेधित नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति बांझ होते हैं (चित्र 13.17 क)। 2A+XXX(47) की अवस्था में स्त्रियों की जननेंद्रियां प्रायः सामान्य होती हैं पर जनन-क्षमता सीमित एवं अल्प मानसिक अवरुद्धता पाई जाती है। X-गुणसूत्र की अतिरिक्त मात्रा से प्रभाव ज्यादा सुस्पष्ट दिखाई देते हैं। अतिरिक्त Y-गुणसूत्र 2A+XYY की अवस्था दर्शाते हैं। जिन पुरुषों में ऐसी अवस्था होती है उनका कद सामान्य से अधिक होता है एवं उनकी बुद्धि सामान्य से कम होती है। उनमें मनोविकृति की तरफ झुकाव पाया जाता है। इसी प्रकार केवल एक X गुणसूत्र वालों [2A+XO(45)] में स्त्रियोचित विकास तो होता है पर अंडाशय अल्प विकसित होते हैं। इस स्थिति के अन्य लक्षणप्ररूपों टर्नर सिंड्रोम में छोटा कद, चिपकी गर्दन, चौड़ी छाती, द्विवितीयक लैंगिक लक्षणों का अभाव एवं बांझपन प्रमुख हैं (चित्र 13.17 ख)। इस प्रकार, लिंग गुणसूत्रों की संख्या में किसी भी प्रकार का असंतुलन सामान्य लैंगिक विकास के लिए आवश्यक आनुवंशिक सूचना को बाधित कर सकता है।

सारांश

18वीं सदी के अंत तक गुणसूत्रों की खोज एवं केंद्रकीय विभाजन के समय इनके व्यवहार के अध्ययन से मेन्डल के योगदान की पुनः खोज हुई। इकाई कारक (जीन) एवं अर्द्धसूत्री विभाजन में गुणसूत्रों से इनके संबंध को वंशागति के गुणसूत्रीय सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित किया गया। इस संबंध को दर्शाने के लिये कई दिशाओं में शोध-अध्ययन किया गया। एक प्रकार की धारणा के अंतर्गत असीमकेंद्रकी एवं ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं की गुणसूत्रीय संरचना को समझा गया एवं यह अवधारणा स्थापित हुई कि दोनो स्थितियों में यह डिऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (डीएनए) एवं इससे जुड़े प्रोटीन का बना होता है। लेकिन ससीमकेंद्रकी में इनकी संरचना का स्तर उच्च होता है।

एक अन्य प्रकार के अध्ययन में गुणसूत्रों पर जीनों की अवस्थिति का अंवेषण किया गया। ऐसे जीन जो समयुग्मज गुणसूत्र जोड़े के एक भाग (homologue) पर पाए जाते हैं, सहलग्न जीन कहलाते हैं क्योंकि वे युग्मक बनने के समय एक साथ संचारित

होते हैं। अद्‌र्धसूत्री विभाजन के समय होने वाली जीन विनिमय की क्रिया में जीनों की समयुग्मज गुणसूत्रों के बीच अदला-बदली होती है जिसके कारण पुनःसंयोजी बनते हैं और युग्मकों में आनुवंशिक विविधता उत्पन्न होती है। पिछली सदी के पूर्व में आनुवंशिक वैज्ञानिकों ने यह समझ लिया था कि जीन विनिमय के आधार पर सहलग्न जीनों का मानचित्र तैयार किया जा सकता है। इससे कई जीवों के सहलग्नता मानचित्र बनाने में सहायता मिली। पुनःसंयोजन के कारण जीनों के नये समुच्चय बनने में मदद मिलती है, जो विविधता उत्पन्न करते हैं।

प्रत्येक जीव के गुणसूत्रीय संरचना के आधार पर विशिष्ट होने के अंवेषण के कारण आनुवंशिकी का ज्ञान और भी अग्रसरित हुआ। सर्वप्रथम, कई लैंगिग विभेद योग जातियों में लिंग गुणसूत्रों को पहचाना गया। इन अवस्थाओं में अन्य गुणसूत्रों को अलिंग सूत्र कहा गया। लिंग गुणसूत्रों पर पाए गए जीनों की वंशागति एक विशिष्ट क्रम में होती है। मनुष्यों में एक परिवर्तित लिंग गुणसूत्र के द्वारा यह स्थापित किया गया कि Y-गुणसूत्र के कारण ही नर-विभेदन होता है जब कि *ड्रोसोफिला* में ऐसा X-गुणसूत्र एवं अलिंग सूत्रों के अनुपात के कारण होता है।

आनुवंशिक विविधता का एक महत्वपूर्ण स्रोत पुनःसंयोजन है, फिर भी इसके लिए उत्परिवर्तन काफी क्रांतिक है। उत्परिवर्तन की उत्पत्ति जीनों में परिवर्तन के कारण होती है जिसका परिणाम कार्य के परिवर्तन एवं लक्षणप्ररूप के बदलाव के रूप में होता है। ऐलीली विविधता के लिए उत्परिवर्तन एक प्राथमिक स्रोत है।

उत्परिवर्तन के अतिरिक्त, गुण सूत्रीय परिवर्तन, जिसमें संख्या एवं संरचना सम्मिलित है, के कारण भी विविधताएं उत्पन्न होती है। बहुगुणिता में गुण सूत्रों के संपूर्ण समुच्चय की वृद्धि होती है जबकि असुगुणिता में एक या दो गुणसूत्रों की प्राप्ति अथवा हानि होती है। गुणसूत्रों के बड़े हिस्से विलोपन अथवा द्विगुणन के द्वारा परिवर्तित होते हैं, जिससे जीनों की संख्या में परिवर्तन होता है। व्युत्क्रमण एवं प्रतिस्थापन के द्वारा गुण सूत्र पर जीनों का क्रम बदल जाता है, लेकिन जीनों की संख्या नहीं परिवर्तित होती है। विषमयुग्मजता के कारण असामान्य अर्धसूत्री विभाजन होता है जो बंध्यता का कारण है।

अभ्यास

1. अद्‌र्धसूत्री विभाजन के मध्य गुणसूत्रों के व्यवहार को आप निम्न में से किस स्थिति से संबंद्ध करेगें ?
   (i) किसी ऐलील युग्म का पृथक्करण
   (ii) दो जीनों का स्वतंत्र अपव्यूहन
2. निम्न में विभेदन कीजिए :
   (i) पूर्ण सहलग्नता तथा अपूर्ण सहलग्नता।
   (ii) जीन-विनिमय तथा जीन-विनिमय युग्मक
3. एक परीक्षण संकरण में AaBb × aabb, 90% संततियां जनकों के समान है, ज्ञात कीजिए:
   (i) शेष व्यष्टियों में संतति का प्रकार।
   (ii) क्या जीनें सहलग्नित हैं ?
   (iii) क्या जीनों के मध्य कोई जीन-विनिमय है ?
4. यदि गुणसूत्रों पर स्थित जीनों के मध्य निम्नांकित दूरियां है तो जीनों को सही क्रम देते हुए आनुवंशिक मानचित्र तैयार कीजिए :
   a — b = 5 cm
   b — c = 3 cm
   a — c = 2 cm
5. क्या होगा यदि —
   (i) द्विगुणित जीनोम में गुणसूत्रों के संपूर्ण समुच्चय जोड़ दिए जाए?
   (ii) द्विगुणित जीनोम में से एक गुणसूत्र घटाया जाए अथवा जोड़ा जाए?
   (iii) जब गुणसूत्र का एक भाग विलुप्त हो जाए?

(iv) जब गुणसूत्र का एक भाग टूटकर अन्य विषमजात गुणसूत्र से जुड़ जाए?

(v) जब गुणसूत्र का एक भाग टूटकर समजात गुणसूत्र से जुड़ जाए?

6. निम्न को परिभाषित कीजिए :

(i) तारक काय को सम्मिलित करते हुए अंतर्वलन।

(ii) स्त्री जिसमें मात्र एक X-गुणसूत्र ही विद्यमान हो।

(iii) पुरुष जिसमें एक अतिरिक्त X-गुणसूत्र विद्यमान हो।

(iv) एक जाति जो दो विभिन्न जातियों से प्राप्त जीनों को धारण करती हो।

7. किसी समष्टि में विभिन्नताओं को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी क्रियाविधियों की सूची बनाइए।

8. यदि आप मनुष्य में लिंग-निर्धारण करने की क्रिया से अनभिज्ञ हैं तथा आप को एक क्लाइनेफेल्टर एवं टर्नर सिंड्रोम से ग्रस्त व्यक्ति मिलें तो ऐसी स्थिति में आप X एवं Y गुणसूत्रों की भूमिका के बारे में क्या कहेंगे ?

9. एक लाल नेत्रधारी एवं सफेद नेत्रधारी *ड्रोसोफिला* मक्खियों के मध्य हो रहे व्युत्क्रम संकरण के परिणामों के अंतर को आप किस प्रकार समझाएंगे?

10. अध्याय 12 की अभ्यास संख्या 12 में दर्शाए गए चित्रों के परिणामों को ध्यान में रखते हुए अर्द्धसूत्री के समय गुणसूत्रों के व्यवहार को समझाइए।

11. मनुष्य में XXY गुणसूत्री संगठन किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है ?

12. मनुष्यों में लिंग-निर्धारण किस प्रकार होता है ?

13. एकाधिसूत्रता को परिभाषित कीजिए।

14. मनुष्य में होने वाले किन्ही दो लिंग-सहलग्न रोगों के नाम बताइए।

15. यदि ड्रोसोफिला में 2n = 8 हों तो इसमें कितने सहलग्न समूह उपस्थित हैं ?

16. नर ड्रोसोफिला में कितने समजातीय गुणसूत्र उपस्थित होते हैं ?

17. यदि किसी कोशिका में गुणसूत्रों के दो से अधिक समुच्चय उपस्थित हों तो उसे आप कैसे संबोधित करेंगे?

18. गुणसूत्रों की वंशानुगति का सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया था ?

19. असुगुणिता क्या है ? इसका एक उदाहरण दीजिए।

20. आनुवंशिकी के प्रयोगों में ड्रोसोफिला के उपयोग से क्या लाभ हैं ?

21. असीमकेंद्रकी एवं ससीमकेंद्रकी गुणसूत्रों में क्या अंतर है स्पष्ट कीजिए?

22. वर्णांधता एक अप्रभावी लक्षण है। एक सामान्य दृष्टि वाले दंपत्ति से एक वर्णांध तथा दूसरा सामान्य पुत्र उत्पन्न होते हैं। यदि दंपत्ति के पुत्रियां भी हैं तो उनमें सामान्य दृष्टि धारिता का क्या अनुपात होगा ?

23. चित्र संख्या 13.6 में दिए आंकड़ों का सर्वेक्षण कर बताइए कि इनमें अन्य दो जीनक्रम क्यों संभव नहीं है ?

अध्याय 14

जीन की प्रकृति : अभिव्यक्ति एवं नियमन

अब तक आप यह समझ चुके हैं कि जनक से संतानों में वंशागत लक्षणों का संचारण होता है। यह परिघटना जाति विशेष के सदस्यों के बीच एक तरह की निरंतरता का आधार प्रदान करती है और इन लक्षणों के लिए कारक या जीन, जो गुणसूत्रों पर पाए जाते हैं, उत्तरदायी होते हैं। यह युग्मकों द्वारा द्विगुणित युग्मनज कोशिका में प्रवेश करते हैं। जीनों के संचारण की यही विधि है। यह सभी लैंगिक जनन करने वाले जीवों में होता है। इस प्रकार संतानों को 50 प्रतिशत गुणसूत्र एवं जीन तो पिता से मिलते हैं एवं शेष 50 प्रतिशत माता से। इस अध्याय में आप जीनों की रचना एवं उनकी अभिव्यक्ति तथा नियंत्रण या नियमन के विषय में अध्ययन करेंगे।

जिस काल में इन तथ्यों की खोज की जा रही थी, तभी कोशिका के जैव-रासायनिक स्वरूप को अच्छे ढंग से समझा जाने लगा था। इसके कारण एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आया कि कौन-सा जैविक अणु जीन की रासायनिक रचना बनाता है तथा क्या उसके द्वारा वे सभी कार्य किए जा सकते हैं जो जीन के लिए निर्दिष्ट है? आनुवंशिक ज्ञान के आधार पर जीन में निम्नलिखित लक्षण होने चाहिए:

(i) जीन को जीवों के वंशागत लक्षणों की सूचना को संग्रहित एवं अभिव्यक्त करने में सक्षम होना चाहिए।

(ii) जीन को ठीक अपने समान प्रति बनाने में सक्षम होना चाहिए जिसे आने वाली पीढ़ी को संचारित किया जा सके।

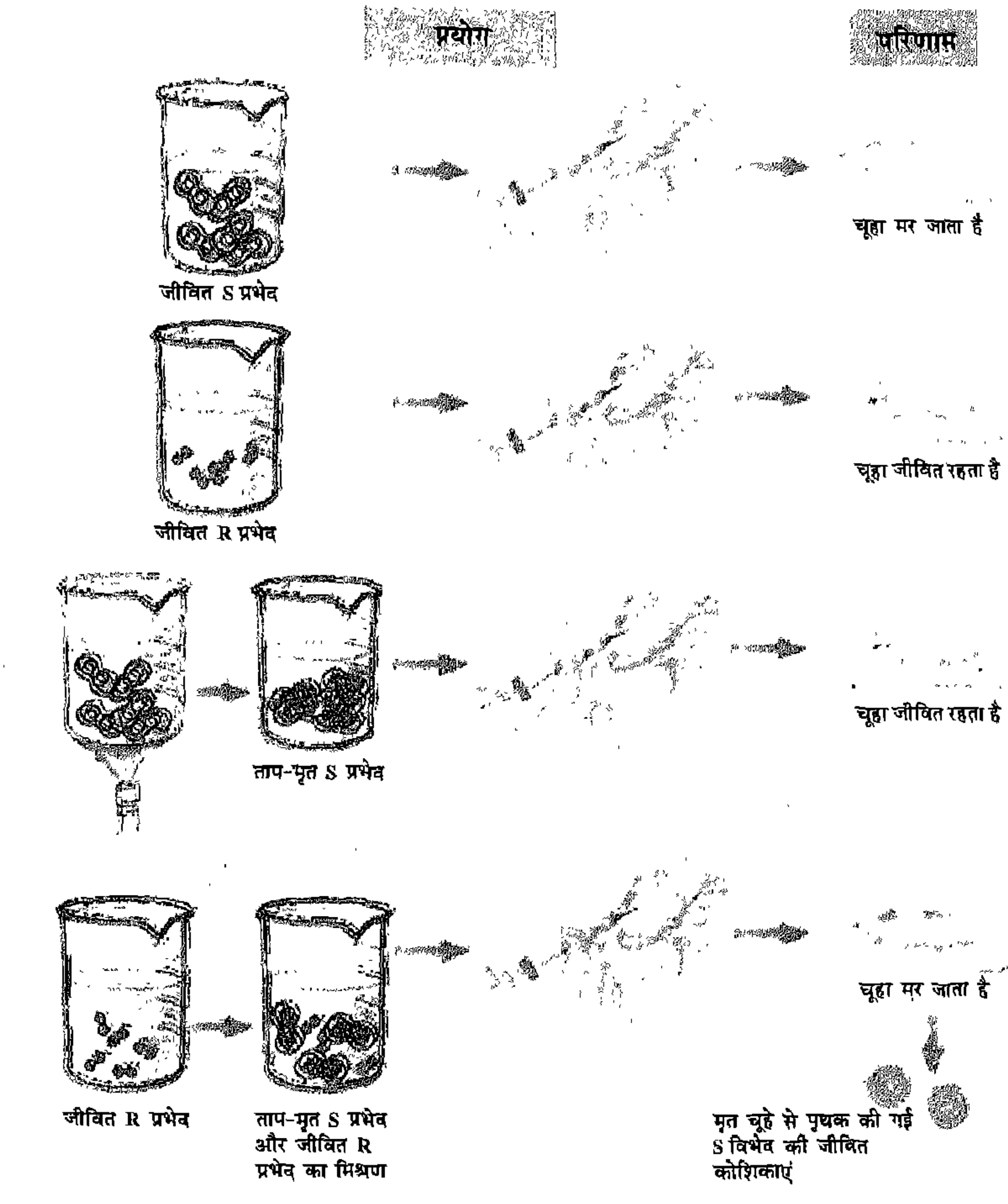
(iii) जीन में उत्परिवर्तित होने की संभावना तथा प्रक्रिया भी रहनी चाहिए जिससे विकास के लिए आवश्यक जैविक विविधता की उत्पत्ति हो सके।

आइए, अब कोशिका के प्रमुख जैविक अणुओं पर विचार करें। जब उनकी विविधता का विभिन्न जीनों की अपेक्षित भिन्नता के साथ सहसंबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है तो प्रोटीनों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। विभिन्न लक्षण प्ररूपों के लिए विभिन्न जीनों का होना संभाव्य है तथा साम्य के तौर पर प्रोटीन की विविधता भी जीवों में पाई जाती है। इसी कारण लंबे समय तक प्रत्यक्ष प्रायोगिक प्रमाण के अभाव में भी प्रोटीन को ही जीन का रासायनिक स्वरूप समझा जाता था।

14.1 आनुवंशिक पदार्थ की प्रकृति

उपर्युक्त लिखित प्रमाणों की खोज के समय ससीमकेंद्रकी केंद्रककी के एक अन्य जैविक अणु डिऑक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल (डीएनए) के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। इसकी व्याख्या सर्वप्रथम फ्रेड्रिक मीशर ने 1868 ई॰ में की थी। वंशागति की प्रक्रिया में कोशिका के केंद्रक की भूमिका पहले से ही ज्ञात थी। इन सूचनाओं ने जीन के जैव-रासायनिक स्वरूप को समझने के लिए नई खोजों को प्रेरित किया। पर इसका उत्तर एक अप्रत्याशित स्रोत से मिला।

फ्रेड्रिक ग्रिफिथ नामक एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने 1928 में जीवाणुओं में रूपांतरण की प्रक्रिया की खोज *स्ट्रेप्टोकोकस न्यूमोनी* (डिप्लोकोकस) जीवाणु की रोगजनकता पर किए जा रहे कार्य से की। जीवाणु का यह प्रभेद मानव सहित सभी स्तनधारियों में न्यूमोनिया रोग का कारण है। जीवाणु के S-प्रभेद की रोगजनक कोशिका एक संपुटिका से घिरी रहती है तथा अगार के माध्यम पर संवर्धित किए जाने पर एक चिकने और चमकीले समुदाय के रूप में दिखाई पड़ती है। कुछ उत्परिवर्तित प्रभेद रुक्ष कॉलोनी बनाते हैं तथा R-प्रभेद कहे जाते हैं। इस प्रभेद द्वारा न्यूमोनिया नहीं फैलता है। जब S-प्रभेद के जीवाणुओं को ऊष्मा द्वारा मृत करके चूहे में इंजेक्शन द्वारा प्रवेश कराया जाता है तो बीमारी के कोई लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। पर आश्चर्यजनक रूप से ऊष्मा द्वारा मृत S-प्रभेद (निष्क्रिय) एवं जीवित R-प्रभेद (अरोगजनक) को मिश्रित कर चूहे में इंजेक्शन देने पर रोग उत्पन्न हो जाता है। ऐसी बीमारी से मृत चूहों के रक्त में से जीवित S-प्रभेद के जीवाणु पुनः प्राप्त किए गए। इस आधार पर ग्रिफिथ ने एक "रुपांतरण सिद्धांत" प्रस्तावित किया। जिसके अनुसार मृत S-प्रभेद की कोशिका से एक रासायनिक पदार्थ निकलता है जो R-प्रभेद के जीवाणु को S-प्रभेद में रूपांतरित कर देता है। यह एक स्थायी आनुवंशिक परिवर्तन है क्योंकि S-प्रभेद के ये जीवाणु समान कोशिकाओं को उत्पादित करते रहते हैं (चित्र 14.1)।

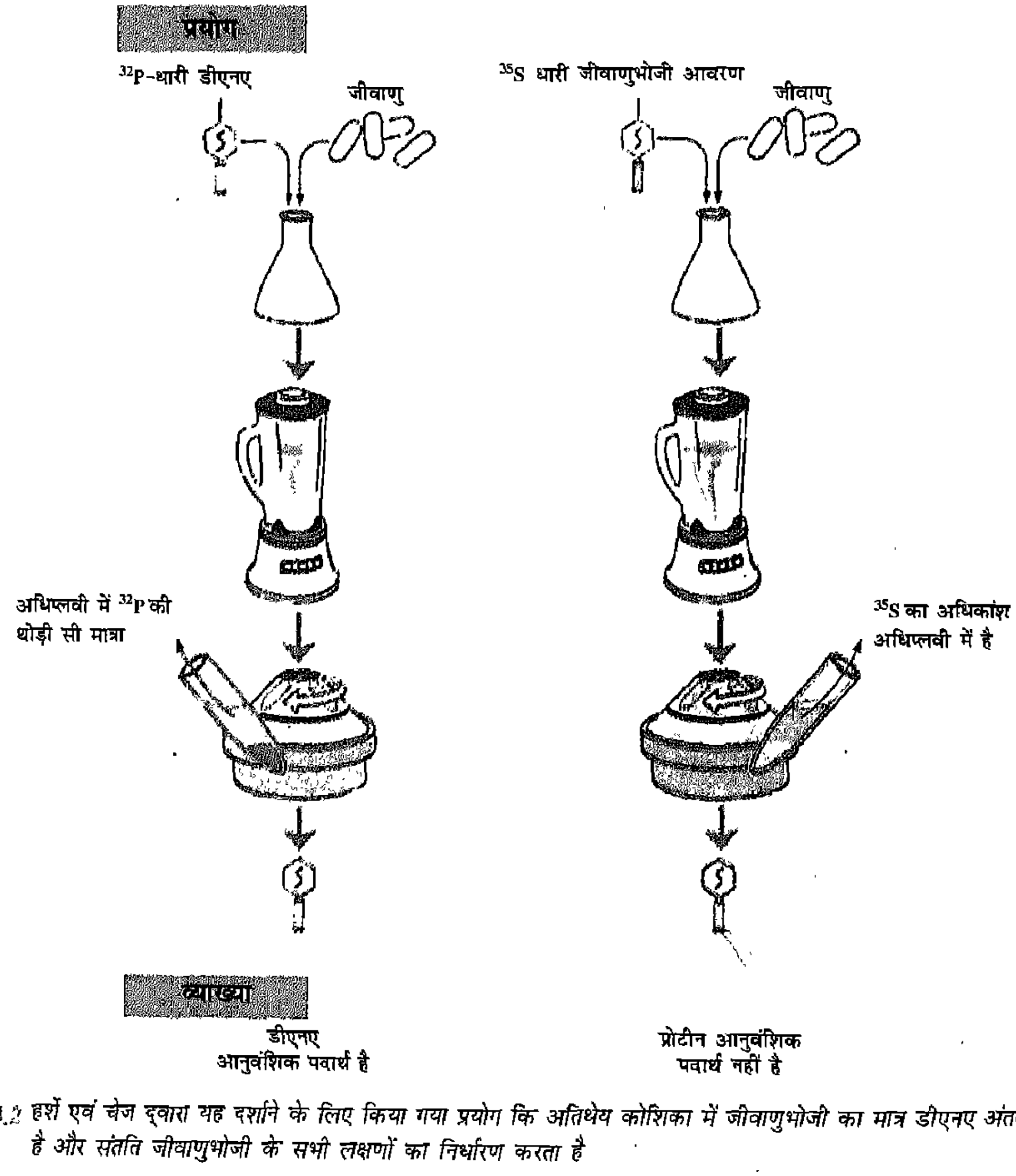


चित्र 14.1 स्ट्रेप्टोकोकस जीवाणु में रूपांतरण दर्शाते हुए ग्रिफिथ का प्रयोग

1944 ई. में ओस्वाल्ड टी. एवरी, कॉलिन मैक्लिऑड तथा मैक्लीन मैककार्टी ने मिलकर यह उद्घाटित किया कि उक्त रूपांतरण पदार्थ डीएनए ही है । उन्होंने यह दिखाया कि S-प्रभेद के जीवाणु से निकाले गए डीएनए के कारण ही R-प्रभेद के जीवाणुओं में रोगजनक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि डीएनए में आनुवंशिक लक्षण होते हैं।

एक अन्य निश्चित प्रमाण 1952 ई. में अल्फ्रेड डी. हर्शे तथा मारथा चेज के द्वारा T_2 जीवाणुभोजियों पर किए गए प्रयोग से मिला । एक जीवाणुभोजी की आण्विक संरचना काफी सरल होती है क्योंकि इसमें प्रोटीन से बनी एक संपुटिका होती है जिसके सिर के भाग में डीएनए पाया जाता है। हर्शे एवं चेज के प्रयोग का आधार प्रोटीन एवं डीएनए में मिलने वाले कुछ विशेष तत्त्व थे। डीएनए में फॉस्फोरस पाया जाता है जो प्रोटीन

में अनुपस्थित है तथा प्रोटीन में सल्फर पाया जाता है जो डीएनए में अनुपस्थित रहता है। अपने प्रयोग में उन्होंने जीवाणुभोजियों के एक संवर्धन में डीएनए को फॉस्फोरस के रेडियोधर्मी समस्थानिक (^{32}P) से चिह्नित किया तथा एक दूसरे जीवाणुभोजी संवर्धन में प्रोटीन को सल्फर के समस्थानिक (^{35}S) से चिह्नित किया। इन जीवाणुभोजियों को स्वतंत्र रूप से अलग-अलग *ई. कोलाई* जीवाणुओं में संक्रमित किया गया। कुछ समय पश्चात् उक्त मिश्रणों को एक सम्मिश्रक द्वारा अच्छी तरह से विलोड़ित किया गया। जिससे जीवाणुभोजियों के खाली संपुटक अथवा 'कपट' जीवाणु कोशिकाओं से अलग हो गए। इन्हें अपकेंद्रीकरण द्वारा पृथक कर लिया गया। हर्शे एवं चेज ने पाया कि जिस संवर्धन में ^{32}P का प्रयोग किया गया था उसमें रेडियोधर्मिता जीवाणु-कोशिकाओं में पाई गई तथा बाद में संतति जीवाणुभोजियों में भी यह उपस्थित थी। लेकिन जिसमें ^{35}S का प्रयोग किया गया था उसमें रेडियोधर्मी पदार्थ जीवाणुभोजियों के खाली संपुटकों तक ही सीमित था। इससे एक सरल एवं सीधा निष्कर्ष यह निकाला गया कि केवल डीएनए ही जीवाणुभोजियों के सभी लक्षणों को अगली संतति तक संचारित करने में सक्षम है और इस प्रक्रिया में प्रोटीन की कोई भूमिका नहीं होती है (चित्र 14.2)।



चित्र 14.2 हर्शे एवं चेज द्वारा यह दर्शाने के लिए किया गया प्रयोग कि अतिथेय कोशिका में जीवाणुभोजी का मात्र डीएनए अंतर्वेशित होता है और संतति जीवाणुभोजी के सभी लक्षणों का निर्धारण करता है

इस प्रकार डीएनए एवं केंद्रकों के युग्मकों द्वारा संचारित होने तथा उपर्युक्त दो प्रमाणों के कारण इसकी संरचना पर आनुवंशिक पदार्थ के रूप में विचार करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

14.2 डीएनए एवं इसकी संरचना

1953 ई. में जब जेम्स वाटसन तथा फ्रांसिस क्रिक ने डीएनए की संरचना को प्रस्तावित किया तब तक इसके रासायनिक घटकों की जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। डिऑक्सीराइबोन्यूक्लीक अम्ल (डीएनए) चार प्रकार के मूल इकाइयों के बने होते हैं जिन्हें न्यूक्लियोटाइड कहा जाता है (अध्याय 2 एवं 10 भी देखें)। प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड एक पेंटोस शर्करा (डिऑक्सीराइबोज), एक फॉस्फेट समूह तथा एक नाइट्रोजन-धारी क्षार का बना होता है। केवल शर्करा एवं नाइट्रोजन-धारी क्षार से बनी उपइकाई को न्यूक्लियोसाइड कहते हैं। चारों न्यूक्लियोसाइड क्षार के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। ये चारों क्षार एडेनीन (A), गुआनीन (G), थायमीन (T) अथवा सायटोसीन (C) हो सकते हैं। एडेनीन तथा गुआनीन प्यूरीन प्रकार के एवं थायमीन तथा सायटोसीन पिरिमिडीन प्रकार के क्षार हैं। अपने रासायनिक स्वरूप में प्रत्येक न्यूक्लिओटाइड एक डिऑक्सी-5-एकल फॉस्फेट होता है, (जैसे डीएएमपी, डीजीएमपी, डीटीएमपी अथवा डीसीएमपी। इस प्रकार डीएनए एक बहुन्यूक्लियोटाइड है। 1949 ई. में इरविन चारगाफ ने अपने अध्ययनों में दर्शाया कि विभिन्न स्रोतों से प्राप्त डीएनए क्षार संरचना के संदर्भ में कुछ नियमों का पालन करते हैं। इन्हें चारगाफ के नियम कहते हैं जो निम्नवत् हैं :

(i) प्यूरीन न्यूक्लियोटाइडों की कुल मात्रा पिरिमिडीन न्यूक्लियोटाइड की कुल मात्रा के बराबर होती है [A]+[G]=[T]+[C]।

(ii) A और T तथा G और C का अनुपात बराबर होता है लेकिन [A] +[T] एवं [G] +[C] का समान होना आवश्यक नहीं है।
अत: [A] = [T]; [G] = [C]

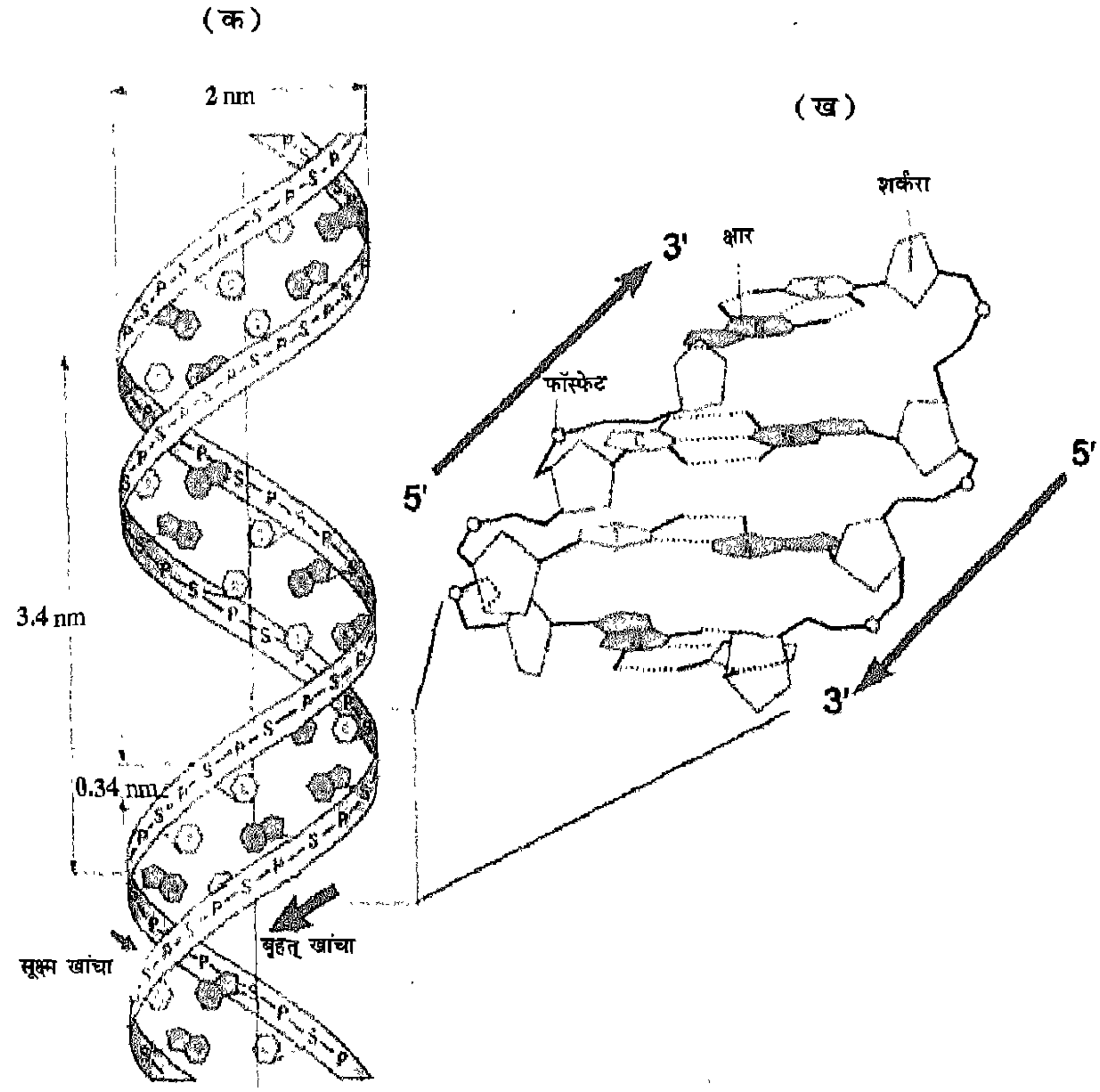
परंतु $$\frac{[A]+[T]}{[G]+[C]} = \text{जीव के साथ परिवर्तनीय}$$

1953 ई. में मॉरिस एच.एफ. विलकिंस तथा रोजेलिन ई. फ्रैंकलिन ने रवेदार (crystalline) डीएनए का एक्स-किरण विवर्तन चित्र लिया। अपने अध्ययनों के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि यह दो समानांतर समान लड़ियों का बना एक लंबा अणु है। इसकी दोनों लड़ियां कुंडलाकार हैं। इसकी संरचना में नियमित चट्टिया (stack) होते हैं। इस कुंडलीकृत रचना का एक चक्कर प्रति 3.4 nm पर होता है एवं इसका व्यास 2.0 nm होता है। परस्पर दो चट्टियों के बीच की दूरी 0.34 nm होती है (चित्र 14.3 क)।

वाट्सन एवं क्रिक ने इस सुरागों के आधार पर तथा जीन के कार्यों के आलोक में डीएनए का सुप्रसिद्ध द्वि-कुंडलीय मॉडल प्रस्तुत किया। इस मॉडल के आधार पर उन्होंने प्रस्तावित किया कि प्रत्येक लड़ी एकांतर रूप से डिऑक्सीराईबोज शर्करा तथा फॉस्फेट की बनी होती है। इसमें फॉस्फेट का एक अणु, शर्करा के दो अणुओं को फॉस्फोडाईएस्टर बंध से जोड़ता है (दो निकटवर्ती शर्कराओं के -OH समूहों के बीच फॉस्फेट समूह सेतु का काम करता है)। इन समानांतर लड़ियों के बीच क्षार जोड़े के रूप में हाइड्रोजन बंध की मदद से सटे रहते हैं। चारगाफ के नियमों को ध्यान में रख कर उन्होंने प्रस्तावित किया कि क्षारों की जोड़ी में हमेशा A एवं T तथा G एवं C की जोड़ी ही बनती है। इसकी दो लड़ियां एक-दूसरे को प्रति-समानांतर होती हैं (जैसे एक 5'→3' दिशा में एवं दूसरी 3'→5' दिशा में) (चित्र 14.3b)।

प्यूरीन एवं पिरिमिडीन क्षारों की विशिष्ट जोड़ी बनाने की प्रवृत्ति न सिर्फ डीएनए के व्यास के साथ मेल खाती है बल्कि एक-दूसरे के प्रति पूरक संरचना को भी दर्शाती है। ये पूरक संरचनाएं आपस में पर्याप्त कुशलता से हाइड्रोजन बंध बनाती हैं। इसमें A और T के बीच दो (A = T) तथा G और C के बीच तीन (G≡C) बंध होते हैं। क्षारों के सटे होने के कारण डीएनए की द्विकुंडलीय रचना में बड़े एवं लघु खांचे बन जाते हैं। कुंडली के प्रत्येक चक्कर में दस क्षार रहते हैं। डीएनए संरचना के इस कार्य के लिए वाटसन एवं क्रिक को विलकिंस के साथ 1962 का नोबेल पुरस्कार (चिकित्सा एवं कार्यिकी) प्रदान किया गया था।

प्रारंभ में दो प्रकार की दक्षिण-वृत डीएनए कुंडलियां A एवं B की पहचान की गई थी इनमें से B अधिक जलयोजित (hydrated) होती है और सामान्यत: सर्वाधिक जीवंत कोशिकाओं में पाई जाती है। तत्पश्चात् एक अन्य प्रकार के डीएनए की खोज की गई। यह एक वाम-वृत रूप था और अपनी टेढ़े-मेढ़े आधार के कारण जैड (Z) डीएनए कहलाया। दक्षिण वृत डीएनए अल्प दूरी तक और अस्थायी वामवृत संरचना धारण कर सकता है और इस प्रकिया द्वारा जीन की अभिव्यक्ति को प्रभावित कर सकता है।



चित्र 14.3 (क) शर्करा (S), फॉस्फेट (P), एवं क्षारों (b) की स्थिति दर्शाते हुए डीएनए की दुहरी कुंडली की सामान्य संरचना, साथ ही दोनों लड़ियों की प्रति-समानांतर प्रकृति भी दृष्टव्य है इनमें से एक लड़ी तो 5, शीर्ष से प्रारंभ होकर 3, शीर्ष पर समाप्त होती है और दूसरी 3, पर शुरू होकर 5, शीर्ष पर

14.3 आरएनए एवं इसकी संरचना

आरएनए अथवा राइबोन्यूक्लिक अम्ल एक अन्य प्रकार का न्यूक्लिक अम्ल होता है। डीएनए की तरह यह भी एक बहुन्यूक्लियोटाइड है लेकिन इसकी संरचना में कई भिन्नताएं होती हैं। आरएनए की पेंटोस शर्करा डिऑक्सीराइबोज के बदले राइबोज होती है। इसमें थायमिन के स्थान पर यूरेसिल पाया जाता है तथा ज्यादातर आरएनए एक लड़ी के बने होते हैं। यद्यपि इसमें कहीं-कहीं पर दो लड़ियों के भाग भी होते हैं जो एक ही शृंखला के आपस में लिपटने 'के कारण बनते हैं। कई विषाणुओं में आरएनए आनुवंशिक पदार्थ का काम करता है।

कम से कम तीन प्रमुख प्रकार के कोशिकीय आरएनए ज्ञात हैं जो सभी जीन अभिव्यक्तिकरण के समय कार्य करते हैं। ये राइबोसोमीय आरएनए (आरआरएनए), दूत आरएनए (एमआरएनए) एवं स्थानांतर आरएनए (टीआरएनए) हैं। ये तीनों प्रकार के अणु डीएनए के दो में से एक लड़ी के पूरक प्रति के रूप में उत्पन्न होते हैं। इस प्रक्रिया को अनुलेखन (transcription) कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आरएनए में डीएनए के दूसरे लड़ी के समान क्षार शृंखला पाई जाती है, मात्र यूरेसिल के, जो थायमिन के बदले विद्यमान होती है। आरएनए के इन प्रकारों को उनके आकार, अवसादन लक्षण

एवं आनुवंशिक कार्यों के आधार पर अलग-अलग किया जा सकता है।

कोशिकीय आरएनए की प्रजातियों में राइबोसोमीय आरएनए न सिर्फ सबसे बड़ा होता है बल्कि यह सबसे ज्यादा व्यापक भी होता है। यह राइबोसोम की संरचना का महत्त्वपूर्ण घटक है तथा प्रोटीन संश्लेषण के समय यह स्थानांतरण के लिए स्थान उपलब्ध कराता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, दूत आरएनए आनुवंशिक सूचनाओं को डीएनए से राइबोसोम तक पंहुचाता है। इनकी लंबाई तथा क्षार-क्रम जीन के अनुसार बदलते रहते हैं जिनसे वे अनुलिखित होकर दूत आरएनए बनते हैं। तीनों प्रकारों में स्थानांतरी आरएनए सबसे छोटा होता है तथा प्रोटीन के स्थानांतर के समय अमीनो अम्लों को राइबोसोम तक पहुंचाता है। आरएनए की इस जाति पर कई रूपांतरित क्षार लगे होते हैं।

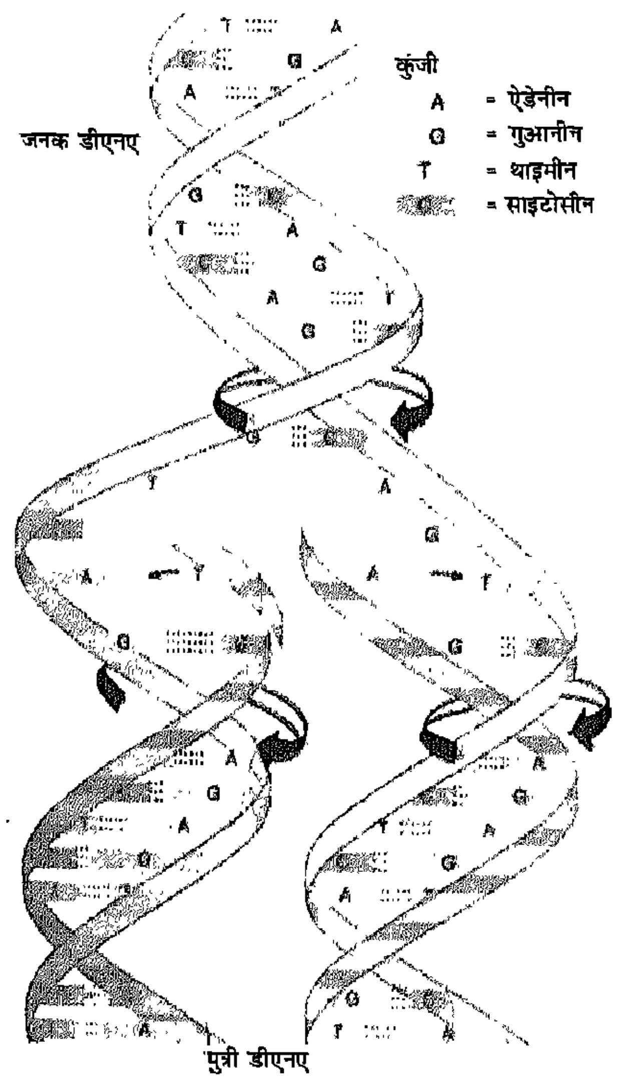
14.4 डीएनए एवं जीन

अब जब हमें डीएनए की संरचना का ज्ञान है, हम इसका जीन के संभावित कार्यों के साथ सहसंबंध स्थापित करेंगे। वाटसन एवं क्रिक का विश्वास था कि डीएनए कुंडली के अंदर क्षारों की विशिष्ट जोड़ी का आनुवंशिक लक्षणों के संचारण में महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह विभाजन के बाद एक कोशिका से संतति कोशिका तक संचारण और जीनों के अभिव्यक्त होने, दोनों प्रकार की क्रियाओं में महत्त्वपूर्ण है।

डीएनए प्रतिकृति

जीन का एक प्रमुख कार्य अपनी प्रति बनाना है जिसे संतति कोशिका तक संचारित किया जा सके। यह एक समान आनुवंशिक बनावट को बनाए रखने में मदद करता है। वाटसन एवं क्रिक ने प्रस्तावित किया कि डीएनए की द्विकुंडली की प्रत्येक लड़ी संतति लड़ी के बनने में एक सांचे के समान कार्य करती है। इस प्रक्रिया में विशिष्ट हाइड्रोजन बंध जोड़ी (A का T के साथ एवं G का C के साथ) प्रत्येक सांचा लड़ी पर बनते हैं। इसके परिणामस्वरूप बना डीएनए अपने सांचा डीएनए का पूरक एवं दूसरे सांचा डीएनए के समान होता है। चित्र 14.4क से यह स्पष्ट है कि दो संतति कुंडलियां मूल द्विकुंडली के बिल्कुल समान हैं। डीएनए की प्रति बनाने की इस क्रिया को डीएनए प्रतिकृति कहते हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया में संतति डीएनए एक पुरानी (मूल) और दूसरी नयी लड़ी की बनी होती है इसलिए प्रतिकृति की इस प्रक्रिया को अर्धसंरक्षणीय प्रतिकृति कहते हैं।

एम. मेसलसन एवं एफ.डब्लू स्टाहल ने 1958 ई. में अपने सुचारुपूर्ण प्रयोग द्वारा अद्र्धसंरक्षणीय डीएनए प्रतिकृति की क्रिया को प्रमाणित किया था। उन्होंने *ई. कोलाई* जीवाणु



चित्र 14.4 (क) डीएनए पुनरावृत्ति की अद्र्ध-संरक्षण प्रकृति। इस प्रकार बनने वाली दो कुंडलियां जनक द्विलड़ी की एकदम प्रतिकृति होती हैं

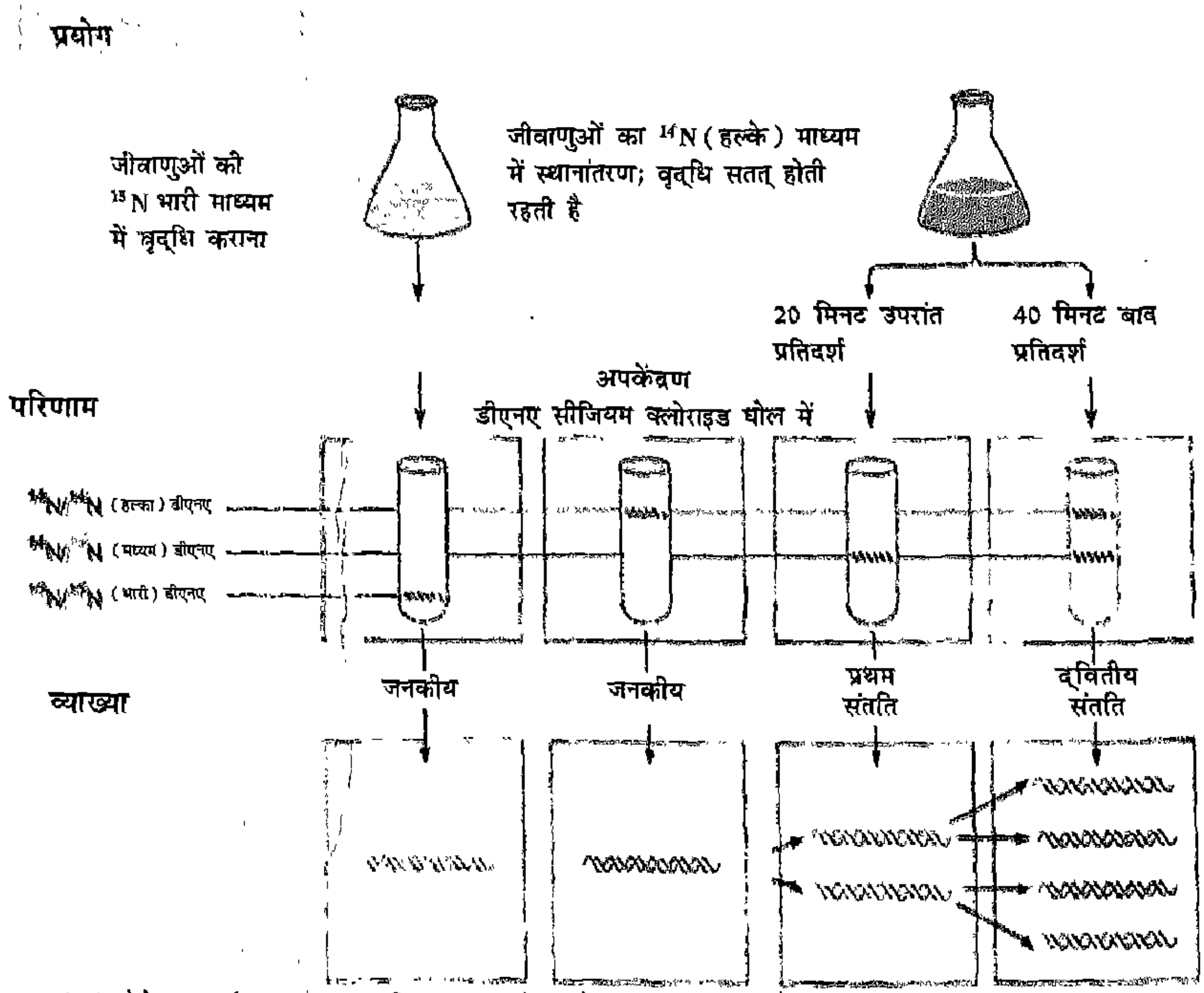
की कोशिका को भारी समस्थानिक ^{15}N ($^{15}NH_4Cl$ के रूप में) की उपस्थिति में संवर्धित किया। इससे क्षारों के साथ-साथ सभी नाइट्रोजन-युक्त यौगिकों में भारी समस्थानिक प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार की कोशिकाओं को तत्पश्चात् सामान्य ^{14}एन नाइट्रोजन पर एक या दो संतति तक संवर्धित किया गया। प्रत्येक संतति की कोशिका से डीएनए को पृथक किया गया। तत्पश्चात् उक्त डीएनए, को जिनमें ^{15}N और ^{14}N दोनों थे CsCl संतुलन घनत्व अनुपात/ढाल अपकेंद्रीकरण द्वारा अलग-अलग किया गया। जब सीजियम क्लोराइड (CsCl) के घोल को उच्च रफ्तार (50,000 परिक्रमा प्रति मिनट) कुछ घंटों के लिए अपकेंद्रीकरण नलिका में घुमाया जाता है तो उक्त लवण घनत्व की प्रवणता में नलिका में

व्यवस्थित हो जाते हैं । इस अनुपात में आयन की सांद्रता नलिका के तत्त्व में होती है । जब डीएनए को CsCl में मिला दिया जाता है तो यह अंततः नलिका के उस स्थान पर स्थिर होता है जहां अपकेंद्रक बल डीएनए के उत्प्लावन को संतुलित करता है। डीएनए की यह उत्प्लावकता उसके घनत्व पर निर्भर करती है जो G-C से A-T क्षार जोड़ियों के अनुपात का परिचायक है।

जिस डीएनए में भारी समस्थानिक ^{15}N होता है । वे ज्यादा घनत्व की होती हैं तथा भारी डीएनए कही जाती हैं। ऐसी डीएनए भारी घनत्व के क्षेत्र में स्थिर होती हैं । जब डीएनए को जीवाणुओं के एक संतति चक्र के बाद अपकेंद्रित किया गया तो इसकी एक मध्यवर्ती पट्टिका बनी। दो संतति चक्र के पश्चात् दो पट्टिकाएं बनती हैं एक मध्यवर्ती स्थान पर और दूसरी हल्के डीएनए के स्थान पर। चित्र 14.4ख को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन परिणामों की व्याख्या अर्द्धसंरक्षणीय विधि के आधार पर की जा सकती है । ^{14}N के माध्यम में एक संतति चक्र के बाद $^{15}N/^{15}N$ के बदले $^{15}N/^{14}N$ का सम्मिश्रण होता है जो मध्यवर्ती घनत्व का होता है । दो संतति चक्रों के पश्चात् $^{15}N/^{14}N$ डीएनए के दो संतति डीएनए $^{15}N/^{14}N$ एवं $^{14}N/^{14}N$ के बने होते हैं। इसी कारण दो संतति चक्र के बाद दो पट्टिका बनती हैं। यहां पर यह उल्लेख करना उचित है कि मैसलसन एवं स्टाहल के प्रयोग के एक साल पहले ही टेलर ने सेम के मूलाग्र की कोशिकाओं में गुणसूत्रीय स्तर पर अर्द्धसंरक्षणीय प्रतिकृति की क्रिया को दर्शाया था।

डीएनए पुनरावृत्ति विधि

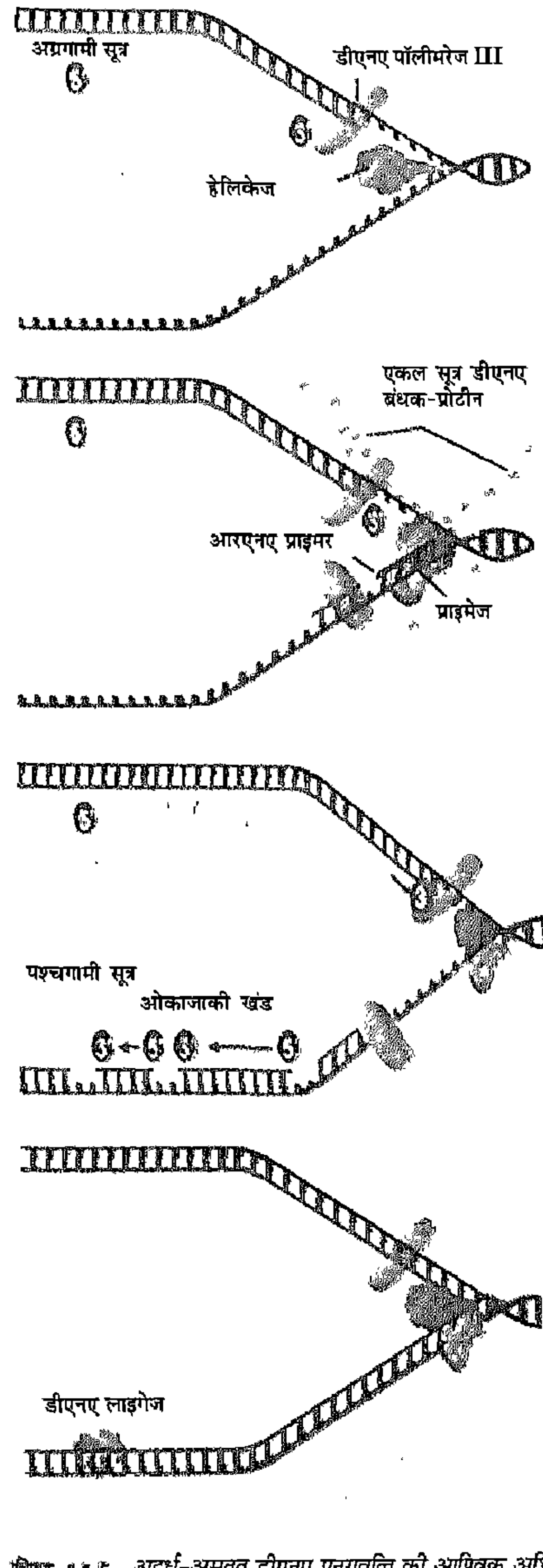
डीएनए के प्रतिकृति की प्रक्रिया दिखती तो काफी सरल है लेकिन यह वास्तव में काफी जटिल है । इसके लिए एंजाइमों की एक पूरी श्रेणी है। यह न सिर्फ विभिन्न स्तरों पर संरचनात्मक एवं यांत्रिक प्रतिबंधों को दूर करने के लिए अनिवार्य है बल्कि प्रक्रिया की परिशुद्धता के लिए भी आवश्यक है। अधिकतर जीवाणुओं में डीएनए प्रतिकृति की प्रक्रिया एक स्थान से शुरू होती है जिसे **प्रतिकृति का उद्गम** या *ओरि* कहते हैं। इस स्थान से प्रतिकृति की प्रक्रिया दोनों दिशाओं में होती है। ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं



चित्र 14.4 (ख) मेसेल्सन एवं स्टाहल द्वारा किया गया प्रयोग, जो यह सिद्ध करता है कि डीएनए अर्द्ध संरक्षण विधि द्वारा पुनरावृत्ति करता है

में यह उद्गम प्रत्येक गुणसूत्रों में कई स्थानों पर होता है । किसी भी प्रकार के संश्लेषण से पूर्व डीएनए की द्विकुंडली को खोलना अनिवार्य है जिससे कि दोनों लड़ियां मुक्त हो कर सांचे का कार्य कर सकें। इस कार्य को हेलिकेज एंजाइम संपादित करता है जो दोनों लड़ियों को *ओरि* स्थान पर खोलता है। लड़ियों के खुलने के साथ ही एक विशेष प्रोटीन जिसे एकल-लड़ी बंधन प्रोटीन कहते है, अकेली लड़ियों के साथ संबद्ध हो जाती है और इस स्थिति को स्थिर रखती हैं। डीएनए प्रतिकृति के शुरु होते ही द्विकुंडली के खुलने के कारण कुंडलीकरण तनाव बनता है । यह प्रतिकृति शाखा की गति से उत्पन्न होता है। यह तनाव **टोपोआइसोमेरेज** नामक एंजाइमों द्वारा कम किया जाता है। डीएनए प्रतिकृति के इन सभी चरणों को चित्र 14.5 में दर्शाया गया है।

डीएनए संश्लेषण में सबसे महत्त्वपूर्ण एंजाइम डीएनए पॉलीमेरेज III है। यह दो अन्य डीएनए पॉलीमेरेज (I और II) के साथ मिलकर उपस्थित डीएनए लड़ी को लंबा कर सकती है लेकिन संश्लेषण की शुरूआत नहीं कर सकता है। ये सभी डीएनए पॉलीमेरेज बहुलीकरण की क्रिया सिर्फ 5'→3' दिशा में करते हैं और इनमें 3'→5' की दिशा में एक्सोन्युक्लिएज क्रिया करने की क्षमता होती है। इसलिए डीएनए संश्लेषण की प्रक्रिया को शुरू करने के लिये आरएनए का एक छोटा हिस्सा एक विलक्षण एंजाइम आरएनए पॉलीमेरेज (इसे प्राइमेज भी कहते हैं) द्वारा बनाया जाता है। इस छोटे हिस्से को आरएनए प्रवेशक (प्राइमर) कहते हैं। यह सांचा डीएनए के उस हिस्से का पूरक होता है जिससे बनता है। इस प्राइमर को ही डीएनए पॉलीमेरेज III आगे बढ़ाता है (चित्र 14.5) । जैसा कि हम जानते हैं डीएनए की दो लड़ियां प्रति समानांतर होती हैं एवं डीएनए पॉलीमेरेज सिर्फ 5'→3' दिशा में कार्य कर सकता है । इस कारण डीएनए प्रतिकृति की प्रक्रिया में एक लड़ी पर डीएनए संश्लेषण निरंतर 5'→3' दिशा में होता रहता है । लेकिन दूसरी लड़ी पर छोटे-छोटे हिस्सों में एक अंतराल पर निर्मित होता है। यह पहले वाली लड़ी के विपरीत दिशा में होता है जिससे पॉलीमेरेज क्रिया की 5'→3' दिशा यथावत रहती है । इस तरह की प्रक्रिया को अर्द्ध-अंतरालीय प्रतिकृति भी कहते हैं । डीएनए के ऐसे छोटे-छोटे हिस्से जो आरएनए प्राइमेर के साथ लगे होते हैं *ओकाजाकी खंड* (Okazaki fragments) कहे जाते हैं। यह नाम एक जापानी वैज्ञानिक के नाम पर दिया गया है जिसने इसकी खोज की थी। इन आरएनए प्रवेशकों को हटा कर रिक्त स्थानों को डीएनए संश्लेषण द्वारा पूरा कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया के दोनों चरण डीएनए पॉलीमेरेज I द्वारा संपन्न होते हैं। इन टुकड़ों को अब लाइगेज नामक एंजाइम द्वारा जोड़ दिया जाता है। डीएनए की वह लड़ी जिस पर निरंतर संश्लेषण होता है अग्रगामी लड़ी (leading strand) तथा जिस पर संश्लेषण टुकड़ों में होता है, पश्चगामी लड़ी (lagging strand) कहलाती है।



चित्र 14.5 अर्द्ध-असतत् डीएनए पुनरावृत्ति की आण्विक अभिक्रिया

प्रतिकृति की ये प्रक्रिया मूल डीएनए के समान न्यूक्लियोटाइडों के क्रम की परिशुद्धता को भी सुनिश्चित करती है। एक तो डीएनए पॉलीमेरेज की क्रिया ही अत्यंत परिशुद्ध होती है फिर भी यदि कोई त्रुटिपूर्ण न्यूक्लियोटाइड प्रविष्ट हो भी जाता है तो पॉलीमेरेज I व II दोनों इसे खोज कर त्रुटिपूर्ण क्षार को निकाल देते हैं।

ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में जहां डीएनए संश्लेषण की दर धीमी होती है तथा अपेक्षाकृत बड़े डीएनए की प्रतिकृति होती है, इस प्रक्रिया के चरण ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं के समान ही होते हैं।

14.5 जीन अभिव्यक्ति

जीन का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण आनुवंशिक सूचनाओं का संग्रह एवं उसकी अभिव्यक्ति है जिससे लक्षणप्ररूप व्यक्त होते हैं तथा वे आने वाली पीढ़ी तक स्थानांतरित होते हैं। आगे हम इस बात की छान-बीन करेंगे कि डीएनए किस प्रकार इन लक्षणों के प्रति सक्षम है तथा यह जीन-अभिव्यक्ति को कैसे नियंत्रित करता है।

यह विचार कि, जीनें उपापचय की प्रक्रिया को नियंत्रित करती हैं, 1902 ई. में ही गैरोड ने दिया था। उन्होंने मनुष्यों की कई विकृतियों का अध्ययन किया जो वंशागत दिखती थी। इसको उन्होंने उपापचय की जन्मजात त्रुटियां का नाम दिया था। इस प्रकार की एक विकृति एल्केप्टोन्यूरिया (alkaptonuria) से पीड़ित व्यक्ति होमोजेंटिसिक अम्ल का उपापचय नहीं कर पाता है तथा यह एकत्रित होकर मूत्र के रूप में उत्सर्जित होता है। इसका ऑक्सीकरण उत्पाद काला होता है तथा आसानी से मूत्र को खुली वायु में रख कर पहचाना जा सकता है। यह उत्पाद उपास्थि के क्षेत्र में भी एकत्रित होता है जिसके परिणामस्वरूप नाक एवं कान काले हो जाते हैं। जोड़ों में इनके जमाव से मंद गठिया हो सकता है। गैरोड ने पाया कि यह विकृति अप्रभावी ढंग से वंशागत होती है। उन्होंने यह भी विश्वास प्रकट किया कि सामान्य व्यक्तियों में होमाजेंटिसिक अम्ल का उपापचय होता है और मात्र प्रभावित व्यक्तियों में उपापचय का क्रम अवरुद्ध होता है जिससे अल्केप्टोन्यूरिया रोग उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् कई मानवीय रोगों को पहचान कर उसकी व्याख्या की गई जो आनुवंशिक उपापचय दोष की श्रेणी में आते हैं। इससे ऐसी धारणा बनी कि कई विकृतियां वंशागत हो सकती हैं तथा उनके उपापचय को अलग-अलग जीन नियंत्रित करते हैं।

इस प्रकार के जीन-उपापचय संबंधों को निर्दिष्ट करने का प्रत्यक्ष प्रमाण 1940 के दशक में जॉर्ज बीडल एवं एडवर्ड टैटम के *न्यूरोस्पोरा क्रासा* नामक कवक पर किए गए प्रयोग से मिला। उन्होंने इसके बीजाणुओं को एक्स-रे से विकिरित किया एवं कई प्रकार के ऐसे पोषण उत्परिवर्तक अलग किए जिन्हें संवर्धन के लिए अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता होती है। ऐसे उत्परिवर्तकों को असर्वसंश्लेषी तथा वन्यप्ररूपों को सर्वसंश्लेषी कहा जाता है। सर्वसंश्लेषी साधारण पोषक माध्यम (अल्पतम माध्यम) पर भी संवर्धित हो सकते हैं जिसमें सिर्फ कुछ लवण एवं शर्करा ऐसे होती है। उदाहरणस्वरूप आर्जिनीन-वांछित उत्परिवर्तनों के कई प्रकार अलग किए गए जिन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(i) कुछ ऑर्निथीन, अथवा सिट्रुलीन अथवा आर्जिनीन-युक्त माध्यम में संवर्धित होते हैं।

(ii) कुछ सिट्रुलीन-अथवा आर्जिनीन-युक्त माध्यम पर संवर्धित होते हैं, तथा

(iii) कुछ सिर्फ आर्जिनीन-युक्त माध्यम पर संवर्धित होते हैं (सारणी 14.1)।

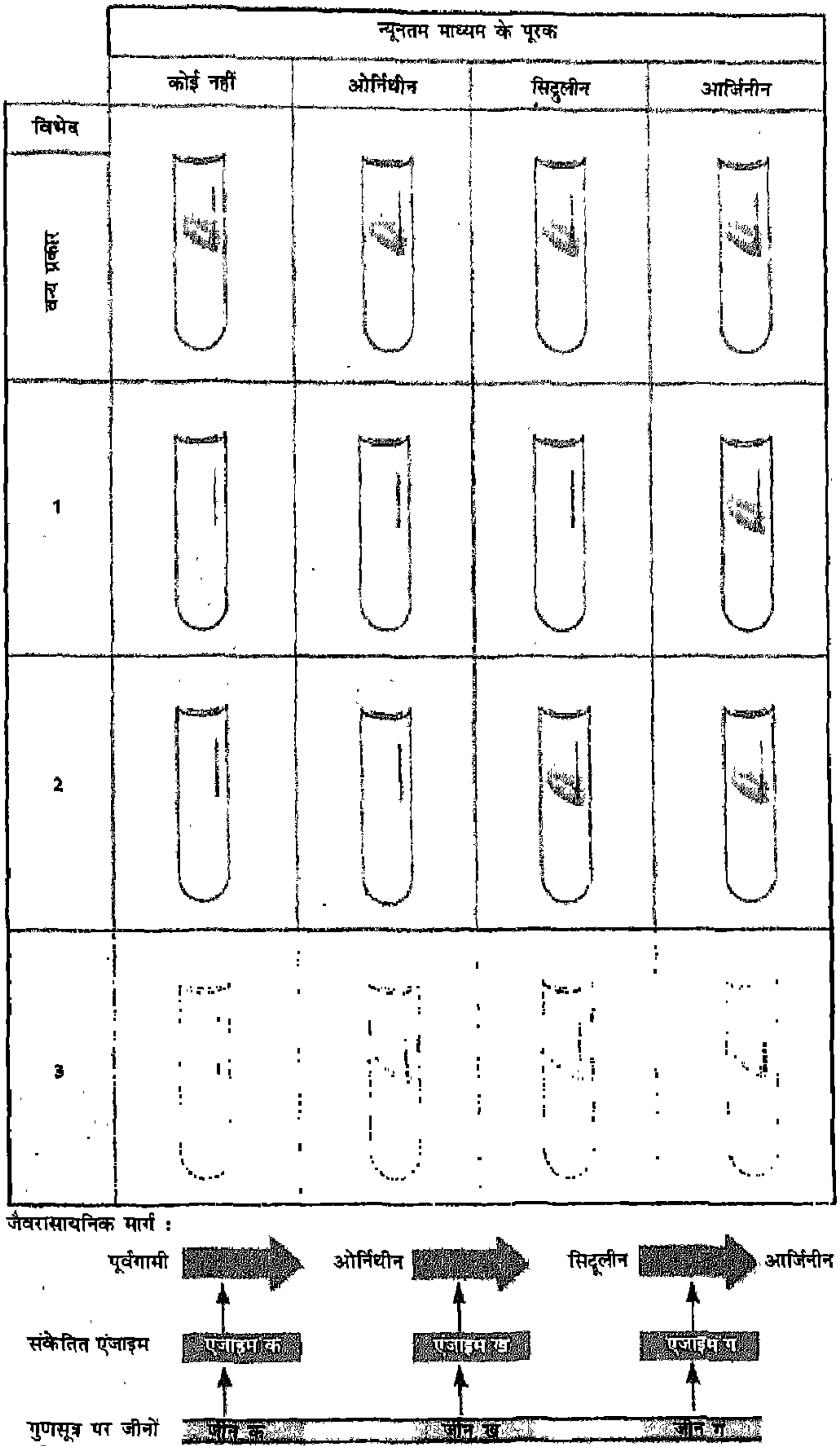
इसका तात्पर्य यह है कि सभी उत्परिवर्तक आर्जिनीन-युक्त माध्यम पर संवर्धित हो सकते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आर्जिनीन इस प्रक्रिया का अंतिम उत्पाद है। चूंकि कुछ ऑर्निथीन पर संवर्धित नहीं होते हैं अत: यह सिट्रुलीन अथवा/और आर्जिनीन के पूर्व संश्लेषित होता होगा। बीडल एवं टैटम ने *न्यूरोस्पोरा* के संवर्धन व्यवहार के सुरागों के आधार पर आर्जिनीन के संश्लेषण के प्रक्रिया की व्याख्या की (चित्र 14.6)।

पूर्ववर्ती यौगिक सर्वप्रथम ऑर्निथीन बनाते हैं जिससे सिट्रुलीन बनता है जो अंतत: आर्जिनीन में परिवर्तित हो जाता है। ये सभी चरण एंजाइमों की मदद से पूरे होते हैं। पहले प्रकार के उत्परिवर्तक जो ऑर्निथिन, सिट्रुलीन अथवा आर्जिनीन पर संवर्धित हो सकते हैं उनमें ऑर्निथीन संश्लेषित करने की क्षमता नहीं होती है। लेकिन वे आगे के चरणों को पूरा कर सकते हैं। दूसरे प्रकार के उत्परिवर्तक ऑर्निथीन को सिट्रुलीन

सारणी 14.1 *न्यूरोस्पोरा क्रासा* के उत्परिवर्तकों में उपयुक्त माध्यमों का संवर्धन पर प्रभाव

उत्परिवर्तित प्रकार	उपयुक्त माध्यम पर संवर्धन		
	आर्निथीन	सिट्रुलीन	आर्जिनीन
(i)	+	+	+
(ii)	-	+	+
(iii)	-	-	+

\+ वृद्धि – वृद्धि नहीं



चित्र 14.6 बीडल एवं टैटम द्‌वारा न्यूरोस्पोरा क्रासा पर किए गए प्रयोग द्‌वारा यह सिद्‌ध हुआ कि चयोपचय की क्रिया का नियंत्रण जीनों द्‌वारा होता है

में तो परिवर्तित नहीं कर सकते हैं पर सिट्रुलीन उपस्थित रहने पर आर्जिनीन संश्लेषित कर लेते हैं । अंतिम श्रेणी के उत्परिवर्तक सिट्रुलीन को आर्जिनीन में परिवर्तित नहीं कर सकते हैं तथा उन्हें संवर्धन के लिए आर्जिनीन की आवश्यकता होती है । उनका तर्क यह था कि ये विकृतियां भी प्रत्येक अवस्था के एंजाइमों में विद्यमान विकृतिपूर्ण एंजाइम के कारण होती है। चूंकि ये सभी परिवर्तन उत्परिवर्तनशील हैं अत: उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि एक जीन एक एंजाइम को नियंत्रित करता है। इससे ही आगे चलकर एक जीन एक एंजाइम परिकल्पना को स्थापित किया गया।

उपर्युक्त परिकल्पना को दो विचारों के आधार पर परिवर्तित किया गया। प्रथमत: लगभग सभी एंजाइम प्रोटीन होते हैं। लेकिन सभी प्रोटीन एंजाइम नहीं होते। इसके अतिरिक्त कई प्रोटीन बहुपेप्टाइडों के उपइकाइयों के बने होते हैं। इनमें से प्रत्येक बहुपेप्टाइड अलग-अलग जीन से नियंत्रित होते हैं । उदाहरणस्वरूप मनुष्यों के वयस्क हीमोग्लोबिन चार बहुपेप्टाइडों, दो α तथा दो β उपइकाइयों के बने होते हैं । प्रत्येक उपइकाई एक अलग जीन द्वारा नियंत्रित की जाती है । इस कारण बीडल एवं टैटम की परिकल्पना का पुनर्मूल्यांकन कर उसे "एक जीन एक बहुपेप्टाइड" में रूपांतरित किया गया । इसका पुन: रूपांतरण तब किया गया जब जीन की क्रियात्मक इकाई के रूप में सिस्ट्रॉन की पहचान की गई। अत: उपर्युक्त परिकल्पना को अब एक सिस्ट्रॉन-एक बहुपेप्टाइड कह सकते हैं। मूलरूप से ये तीनों मत बहुपेप्टाइडों के निर्माण का जीनों द्वारा नियंत्रित होने की तरफ इशारा करते हैं।

जीन एवं प्रोटीन

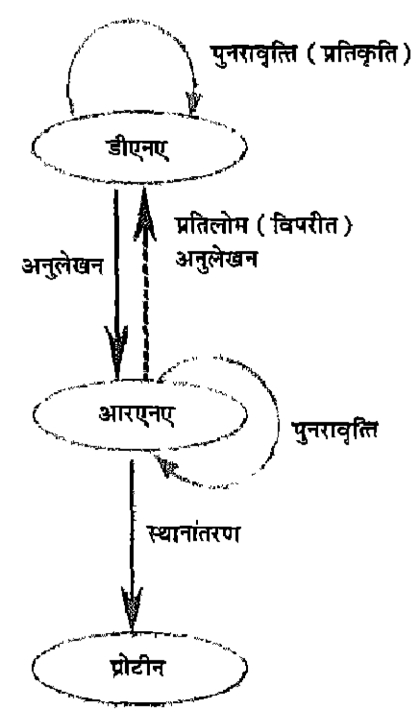
इससे पहले के खंड में यह स्थापित किया जा चुका है कि डीएनए ही आनुवंशिक पदार्थ है । हम यह भी देख चुके हैं कि जीन अपना कार्य प्रोटीन अथवा एंजाइम को नियंत्रित कर संपादित करते हैं। अब हम यह देखेंगे कि वह आनुवंशिक सूचना जो डीएनए में संकेत के रूप में संग्रहित रहती है, प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया तक किस प्रकार संचारित होती है ।

1950 के अंतिम एवं 1960 के प्रारंभिक वर्षों में किए गए शोधकार्यों के आधार पर यह स्थापित किया गया कि चार क्षारों की श्रृंखला में ही डीएनए में आनुवंशिक सूचनाओं का संचय होता है । इन क्षारों की अनूठी श्रृंखला, जिसे हम *आनुवंशिक कूट* कहते हैं, सभी प्रकार के प्रोटीनों की संरचना और क्रिया को निर्धारित एवं नियंत्रित करता है । इस प्रकार आनुवंशिक कूट की तारप्रेषण द्वारा संकेत संचारण के मोर्स कूट (Morse code) के साथ तुलना की जा सकती है। अब हम जीन अभिव्यक्ति एवं आनुवंशिक कूट के वाचन की प्रक्रिया की चर्चा विस्तार से करेंगे।

14.6 आण्विक जीव विज्ञान का केंद्रीय सिद्धांत

आनुवंशिक पदार्थों की अभिव्यक्ति प्राय: प्रोटीन के उत्पादन के द्वारा होती है । इसमें दो क्रमिक चरण हैं । जो अनुलेखन और स्थानांतरण (ट्रांसलेशन) कहे जाते हैं । अनुलेखन की प्रक्रिया में डीएनए में संग्रहित आनुवंशिक सूचनाओं को एक मध्यवर्ती आरएनए को स्थानांतरित कर दिया जाता है । तत्पश्चात् इस सूचना के आधार पर स्थानांतरण द्वारा प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं । सूचना के इस एकल दिशापरक बहाव को एफ.एच.सी. क्रिक ने 1958 में आण्विक जीव विज्ञान का केंद्रीय सिद्धांत कहा (Central Dogma of Molecular Biology); (चित्र 14.7)।

आप को यह विदित है कि डीएनए एक स्वप्रतिकृति अणु है । 1970 ई. में एच.एम टेमिन तथा डी. बाल्टीमोर के कार्यों के आलोक में सूचना प्रवाह के उपर्युक्त सिद्धांत को परिवर्तित किया गया। कई ट्यूमर-जनक विषाणुओं में आनुवंशिक पदार्थ के रूप में आरएनए होता है जो प्रतिकृति की क्रिया द्वारा पहले पूरक डीएनए बनाते हैं । इस प्रक्रिया को **विपरीत अनुलेखन** (reverse transcription) कहते हैं। यह विपरीत अनुलेखन ट्रांसक्रिप्टेज एंजाइम के द्वारा किया जाता है जो आरएनए आधारित डीएनए पॉलीमेरेज है । ऐसे विषाणुओं को रेट्रोवाइरस (प्रतिलोम विषाणु) कहते हैं । इसके अंतर्गत मानव इम्युनोडेफिसेंसी विषाणु (Human Immuno Deficiency Virus; एच.आई.वी.) भी आते हैं जो एड्स रोग का कारण है ।



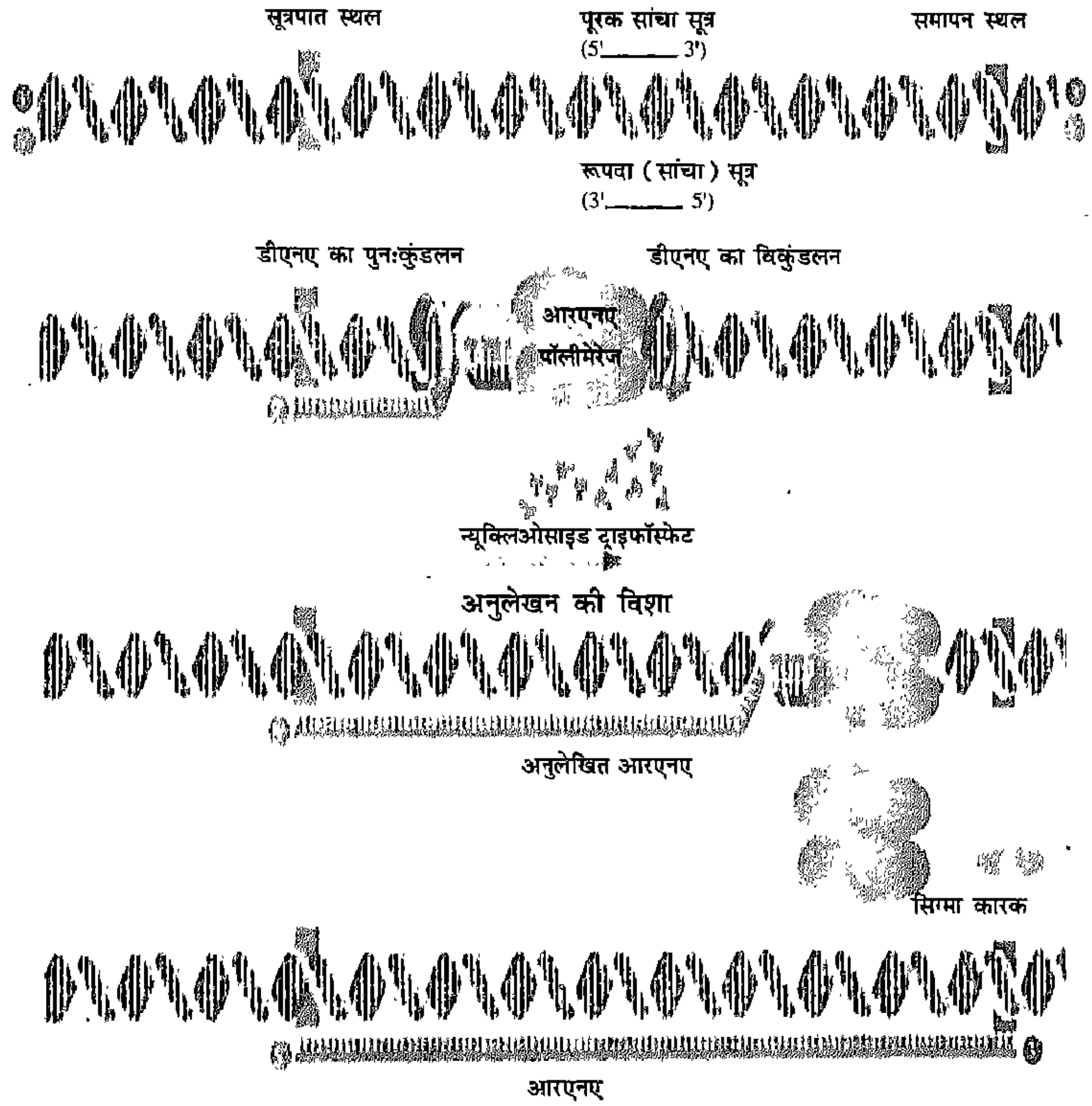
चित्र 14.7 आनुवंशिक सूचना का बहाव

डीएनए की संकेतित (coded) सूचना का प्रोटीनों में किस प्रकार विसंकेतित (decoded) किया जाता है? अब हम इस क्रिया के दो प्रमुख चरणों की चर्चा करेंगे।

अनुलेखन

जैसा कि पहले भी वर्णन किया गया है अनुलेखन के परिणामस्वरूप एक एकल-लड़ी वाले आरएनए का संश्लेषण होता है जो डीएनए की एक लड़ी के समान होता है। आरएनए के तीनों प्रकार अनुलेखन द्वारा ही बनते हैं। डीएनए की वह लड़ी जो संदेशवाहक आरएनए का संश्लेषण पूरक क्षार जोड़ी के आधार पर करती है संकेतनी सांचा अथवा बोध (सेंस) लड़ी कहलाती है तथा दूसरी लड़ी को क्षार संकेतन-शून्य अथवा बोध-विहीन (anti-sense) लड़ी कहते हैं। अनुलेखन की यह प्रक्रिया एक एंजाइम आरएनए पालीमेरेज द्वारा संपन्न होती है जो डीएनए से जुड़ा होता है। असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में केवल एक प्रकार का और ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में तीन प्रकार के आरएनए पॉलीमेरेज पाए जाते हैं। आरएनए पॉलीमेरेज I, II तथा III क्रमशः राइबोसोमीय आरएनए, दूत आरएनए तथा स्थानांतरण आरएनए का संश्लेषण करते हैं।

आरएनए पालीमेरेज डीएनए के प्रोत्साहक वाले भाग क्षार से आबद्ध हो जाता है। असीमकेंद्रकी कोशिका की इस प्रक्रिया में आरएनए पॉलीमेरेज की सिग्मा (σ) उपइकाई प्रोत्साहक की पहचान करती है। यही ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में कई अनुलेखन कारकों के द्वारा होता है। आरएनए पॉलीमेरेज न सिर्फ प्रक्रिया की शुरूआत करते हैं बल्कि आरएनए संश्लेषण को आगे भी बढ़ाते हैं। यह प्रक्रिया 5' से 3' की दिशा में होती है। अनुलेखन की प्रक्रिया समूचे डीएनए खंड के अनुलेखन एवं समापन क्रम के पहुंचने के बाद समाप्त हो जाती है (चित्र 14.8)। कई जीवाणुओं में समान क्रियाओं वाले कई



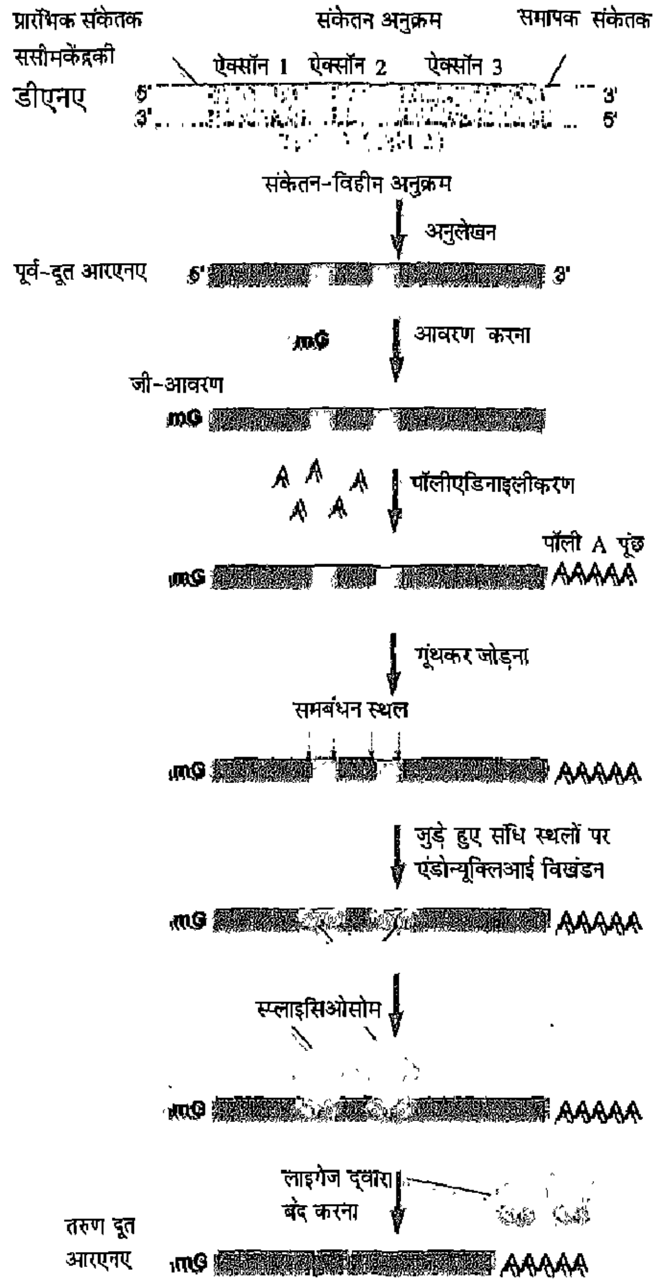
चित्र 14.8 असीमकेंद्रियों में अनुरेखण - आरएनए पॉलीमेरेज द्वारा आरएनए का एंजाइमी संश्लेषण

जीन एक समूह बनाते हैं जिसे ओपेरॉन कहते हैं। एक ओपेरॉन एकल-अनुलेखन इकाई की तरह कार्य करता है तथा बहु-सिस्ट्रोनीय दूत आरएनए का उत्पादन करता है। ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में प्राय: एकल-सिस्ट्रोनीय दूत आरएनए ही बनते हैं।

असीमकेंद्रकी कोशिकाओं के विपरीत ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में अनुलेखन केंद्रक के अंदर होता है। तत्पश्चात् दूत आरएनए केंद्रक से बाहर आकर कोशिका-द्रव्य में अनुवाद का कार्य करते हैं। अनुलेखन की प्रक्रिया का शुरू होना एवं नियंत्रण ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में असीमकेंद्रकी की अपेक्षा ज्यादा व्यापक होता है। इन दोनों प्रकार की कोशिकाओं में एक दूसरा प्रमुख अंतर इस तथ्य में है कि ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में दूत आरएनए का संसाधन एक प्राथमिक आरएनए अनुलेख की परिपक्वता की प्रक्रिया द्वारा होता है। सर्वप्रथम इसके 5' सिरे पर एक छत्रक अथवा टोपी (जो 7-मिथाइल गुआनोसिन या 7mG की बनी होती है), एवं अंत में एक बहु-एडिनीन पूंछ 3' सिरे पर जोड़ी जाती है (चित्र 14.9)। यह छत्रक रासायनिक रूप में रूपांतरित अणु गुआनोसीन ट्राई फॉस्फेट (GTP) का बना होता है। ससीमकेंद्रकी के प्राथमिक आरएनए अनुलेख काफी बड़े होते हैं तथा ये केंद्रक तक ही सीमित रहते हैं। इसे सम्मिश्रित केंद्रकीय आरएनए (hnRNA) अथवा पूर्वआरएनए कहते हैं। यह प्राथमिक दूत आरएनए दो प्रकार के भागों का बना होता है। इसमें एक को इन्ट्रॉन कहते हैं जिसमें कोड नहीं होता है तथा दूसरे को एक्सॉन कहते हैं जो आनुवंशिक कूट को वहन करता है। इनमें से इंट्रॉन को तो आरएनए स्प्लाइसिंग की प्रक्रिया द्वारा निकाल दिया जाता है। एक जोड़ा केंद्रकीय राइबोन्यूक्लियोप्रोटीन (SnRNP) इस आरएनए के 5' तथा 3' गुंथन-स्थल पर बंधकर गूंथने की प्रक्रिया को पूरा करता है। इसे स्प्लाइसिओसोम कहते हैं जिसे आरएनए को काटने के लिए एटीपी की ऊर्जा की आवश्यकता होती है (चित्र 14.9)। इन दो पश्च-अनुलेखन रूपांतरणों के अतिरिक्त स्थानांतरण (अनुवाद) से पूर्व आरएनए का संपादन भी हो सकता है।

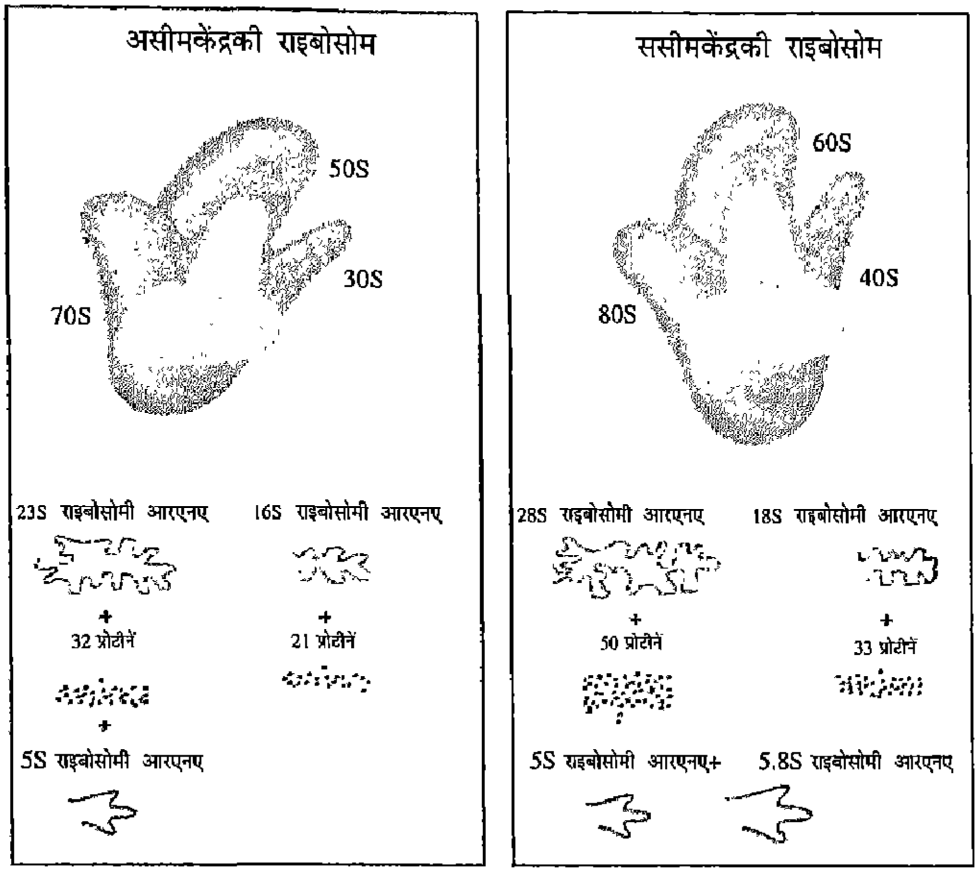
स्थानांतरण - प्रोटीन का जैवसंश्लेषण

स्थानांतरण अथवा ट्रांसलेशन की प्रक्रिया में डीएनए से संदेशवाहक आरएनए द्वारा लाए गए आनुवंशिक सूचनाओं का बहुपेप्टाइडइ श्रृंखला के संश्लेषण में उपयोग किया जाता है। इसमें अमीनो-अम्लों का एक विशिष्ट अनुक्रम होता है। दूत आरएनए के अतिरिक्त इस प्रक्रिया में राइबोसोम, स्थानांतर आरएनए तथा अमीनो.अम्ल महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं। राइबोसोम एक राइबोन्यूक्लियोप्रोटीन के कण होते हैं जो प्रोटीन संश्लेषण के लिए स्थान उपलब्ध कराते हैं। अवसादन गुणांक के आधार पर



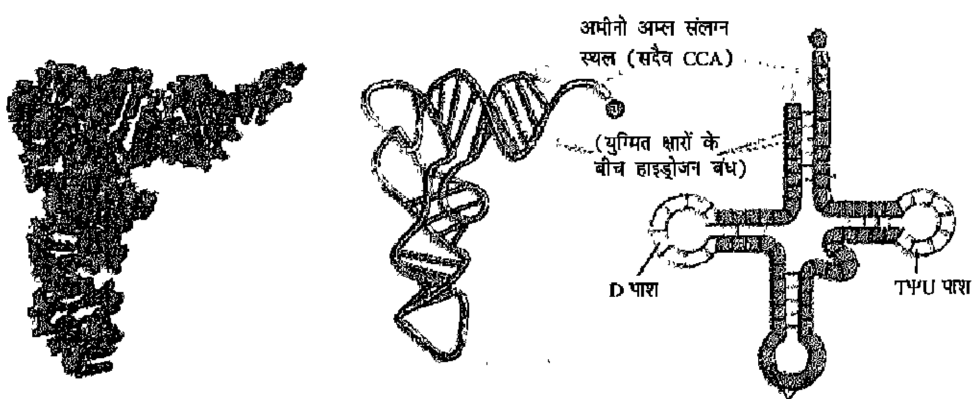
चित्र 14.9 ससीमकेंद्रियों में अनुलेखन

असीमकेंद्रकी एवं ससीमकेंद्रकी राइबोसोम क्रमश: 70S तथा 80S प्रकार के होते हैं। ये दोनों एक छोटी तथा एक बड़ी उपइकाइओं का बना होता है (चित्र 14.10)। असीमकेंद्रकी कोशिकाओं की बड़ी उपइकाई (50S) 23S तथा 5S राइबोसोमीय आरएनए एवं 32 भिन्न प्रकार के प्रोटीन की बनी होती है। इसकी छोटी उपइकाई में 16 S राइबोसोमीय आरएनए एवं 21 प्रकार के प्रोटीन होते हैं। ससीमकेंद्रकी बड़ी उपइकाई (60 S) 28 S, 5 S, एवं 5.8 S राइबोसोमीय आर एन ए और 50 प्रकार के प्रोटीन तथा छोटी उपइकाई (40S) 18 S राइबोसोमीय आरएनए एवं 33 प्रकार के प्रोटीनों की बनी होती है।



चित्र 14.10 असीमकेंद्रियों एवं ससीमकेंद्रियों में राइबोसोम की सामान्य संरचना

स्थानांतरण आरएनए सभी तीनों प्रकारों में सबसे छोटे होते हैं एवं असीमकेंद्रकी एवं ससीमकेंद्रकी दोनों में वे संरचनात्मक समानता दर्शाते हैं। 1965 में आर.डब्ल्यू. हॉले ने स्थानांतरण आरएनए के चतुष्पर्णी (क्लोवर-लीफ) मॉडल को प्रस्तावित किया जिसमें एक लड़ी के अंदर ही क्षारों की जोड़ी बनने के कारण युग्म-स्तंभ व अयुग्मी छल्ले बनाते हैं। स्थानांतरण आरएनए का 3' सिरा अमीनो अम्ल से जुड़ने के लिए एक ऐसा विशेष अनुक्रम धारण करता है। प्रतिकूट छल्ले पर प्रतिकूट होता है जो इसके ज्ञात अमीनो अम्ल कूट का पूरक होता है। त्रिविमीय स्वरूप में यह अंग्रेजी के अक्षर एल (L) के आकार की रचना दर्शाता है (चित्र 14.11)।



एक स्थानांतरी आरएनए की संगणक-जन्य, स्थल-भराव त्रिविमी संरचना

एक स्थानांतरी आरएनए का त्रिविमी L आकार की संरचना

एक स्थानांतरी आरएनए का द्विविमी-चतुष्पर्णी मॉडल

चित्र 14.11 स्थानांतरी आरएनए की संरचना

स्थानांतरण के चरण

प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले 20 अमीनो अम्ल प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। इसमें स्थानांतरण आरएनए पर विशिष्ट रूप से अमीनो अम्ल जोड़े जाते हैं, जिस प्रक्रिया को आवेशन (charging) कहते हैं। यह एक विशिष्ट एंजाइम अमीनो एसाइल स्थानांतरण आरएनए सिंथेटेज द्वारा संपन्न की जाती है। यह एक अतिविशिष्ट क्रिया है जिसमें प्रत्येक एंजाइम एक अमीनो अम्ल की पहचान कर क्रिया करता है। आवेशन की यह प्रक्रिया निम्नलिखित दो चरणों में पूरी होती है :

आवेशित फॉर्माइल-मेथियोनीन स्थानांतरण आरएनए का 30S उपइकाई के घटकों के साथ आबद्ध होने पर प्रवर्तन समूह बनता है। बाद में जब बृहद् 50S उपइकाई इस प्रवर्तन समूह से जुड़ जाती है तो प्रवर्तनकारक अलग हो जाते हैं एवं पूर्ण 70S राइबोसोम की रचना बन जाती है। राइबोसोम पर आवेशित स्थानांतरण आरएनए के दो बंधन-स्थल होते हैं। एक को पी (पेप्टिडाइल-स्थल) एवं दूसरे को ए (अमीनोएसाइल स्थल) कहते हैं। प्रवर्तक स्थानांतरण आरएनए पी-स्थल पर स्थित होते हैं

प्रथम-चरण

अमीनो अम्ल* + **एटीपी** —(अमीनो एकाइल स्थानांतर **आरएनए सिंथेटेज***)→ **अमीनोएसाइल एडिनाइलिक अम्ल** + **पी-पी**

द्वितीय-चरण

अमीनोएसाइल एडिनाइलिक अम्ल + **स्थानांतर आरएनए*** ——→ **आवेशित स्थानांतर आरएनए (स्थानांतर आरएनए-अमीनो अम्ल = पी-ए + अमीनोएसाइल स्थानांतर आरएनए सिंथेटेज**

*इन यौगिकों के बीच विशिष्ट प्रतिक्रिया को इंगित करता है

प्रथम चरण में अमीनो अम्ल विशिष्ट अमीनो एसाइल स्थानांतरण आरएनए सिंथेटेज की उपस्थिति में एटीपी से प्रतिक्रिया कर एक सक्रिय अमीनो एसाइल एडिनाइलिक अम्ल बनाता है। यह उक्त एंजाइम से अब भी जुड़े रह कर विशिष्ट स्थानांतरण आरएनए से प्रतिक्रिया कर अमीनो अम्ल को स्थानांतरण आरएनए के 3' सिरे पर स्थानांतरित कर देता है तथा उक्त संयोजन से एंजाइम अलग हो जाता है। दीर्घीकरण स्थानांतरण की प्रक्रिया में तीन चरण होते हैं जिन्हें प्रवर्तन अथवा प्रारंभ (initiation), दीर्घीकरण (elongation) एवं समापन (termination) कहते हैं (चित्र 14.12)।

प्रवर्तन

प्रवर्तन संदेशवाहक आरएनए के स्थानांतरण की प्रक्रिया एक प्रवर्तन समूह के बनने के साथ शुरू होती है। इसके लिए राइबोसोम की एक छोटी उपइकाई, एक दूत आरएनए, एक विशिष्ट रूप से आवेशित प्रवर्तक स्थानांतरण आरएनए, जीटीपी, Mg^{2+} एवं प्रोटीन-धारी प्रवर्तनकारकों का एकत्रित होना आवश्यक है। इन प्रवर्तककारकों को असीमकेंद्रकी कोशिकाओं के संदर्भ में IFs तथा ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं के लिए eIFs कहते हैं ये प्रवर्तककारक राइबोसोम की छोटी इकाई से बंध जाते हैं। फिर यह समूह दूत आरएनए के एक विशेष अनुक्रम, जो प्रवर्तक कोड AUG से पूर्व होता है, से जुड़ जाता है। प्रवर्तक AUG असीमकेंद्रकी कोशिकाओं में फॉर्माइल मेथियोनीन का संकेतन करता है लेकिन ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में मेथियोनीन को।

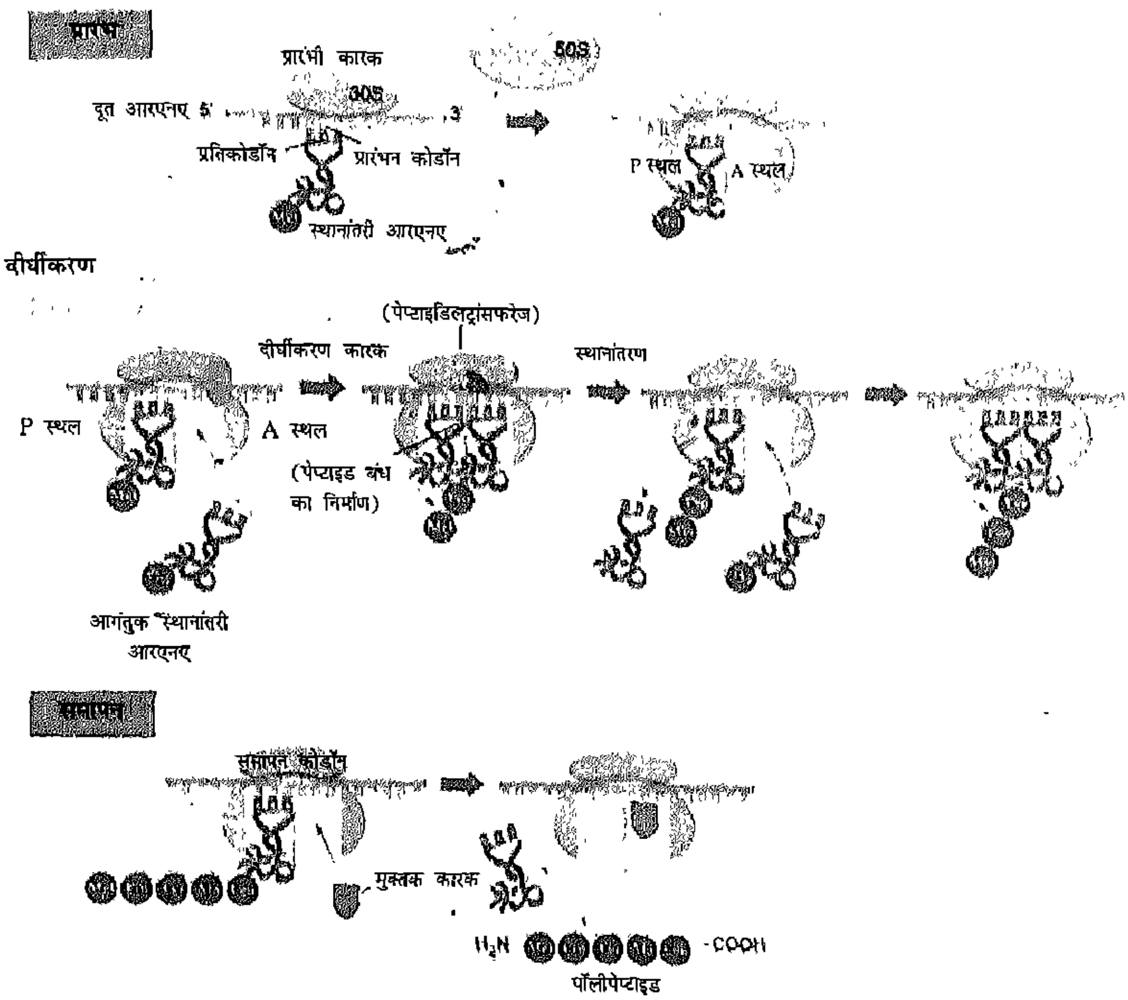
जिससे ए-स्थल दूसरे आवेशित स्थानांतर आरएनए हेतु रिक्त रहता है। तथा इससे संबद्ध त्रयी कोड भी मुक्त रहते हैं (चित्र 14.12)।

दीर्घीकरण

राइबोसोम संदेशवाहक आरएनए पर 5' से 3' की दिशा में आगे बढ़ता है। इसी समय एक आवेशित स्थानांतरण आरएनए, जिसका प्रतिकोड ए-स्थल से संबद्ध कोड के पूरक होता है, रिक्त ए-स्थल पर जुड़ जाता है। इसके होते ही पेप्टिडाइल ट्रांसफेरेज दोनों अमीनो अम्लों के बीच पेप्टाइड बंध बना देता है। बृहद् उपइकाई का 23 S आरएनए इस उत्प्रेरक कार्य को संपन्न करता है। अब प्रवर्तक स्थानांतरण आरएनए P-स्थल से असंबद्ध हो जाता है तथा द्विपेप्टाइड ए-स्थल से P-स्थल पर स्थानांतरित हो जाता है। ये सारे चरण कई प्रोटीनों की सहायता से पूर्ण होते हैं। इसे **दीर्घीकरण कारक** (elongation factors) कहते हैं। इस प्रक्रिया में ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो जीटीपी के जल-अपघटन से प्राप्त होती है (चित्र 14.12)। असीमकेंद्रकी कोशिकाओं के इन दीर्घीकरण कारकों को EF-Tu, EF-Ts और EF-G कहते हैं। ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में अपेक्षाकृत अधिक जटिल सहायक कारकों की आवश्यकता होती है।

समापन

दीर्घीकरण का क्रम संपूर्ण दूत आरएनए के अनुवाद होने तक चलता रहता है। जब एक संकेत समापन कोड (UAG, UAA अथवा UGA) के रूप में दूत आरएनए पर आता है तो



चित्र 14.12 स्थानांतरण की अवस्थाएं - प्रारंभ, दीर्घीकरण एवं समापन । इस समस्त क्रिया के परिणामत: ऐसे पेप्टाइड का संश्लेषण होता है जिसमें अमीनो अम्ल जीन से प्राप्त सूचना के अनुरूप बंधे रहते हैं

स्थानांतरण की प्रक्रिया स्वत: रुक जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि यह संकेत किसी भी अमीनो अम्ल के लिए विशिष्ट नहीं होते हैं । ये एक जीटीपी आश्रित मुक्तककारक (RF_1, RF_2 तथा RF_3) को भी संकेत देते हैं। ये बहुपेप्टाइड को अंतिम स्थानांतरण आरएनए से अलग कर देते हैं जिससे यह स्थानांतरण समूह से अलग हो जाता है (चित्र 14.12)। इस प्रकार से बना बहुपेप्टाइड एक विशिष्ट अमीनो अम्ल के क्रम का होता है जिसका निर्धारण दूत आरएनए के क्षार अनुक्रम एवं कूट द्वारा होता है। जब संदेशवाहक आरएनए का आरंभिक हिस्सा अनूदित हो जाता है तो यह दूसरे राइबोसोम पर दूसरे चक्र के अनुवाद में सम्मिलित हो सकता है। इस प्रक्रिया के कई बार दोहराए जाने के कारण जो संरचना बनती है उसे बहुराइबोसोम या पॉलीसोम कहते हैं।

कुछ प्रतिजैविक जीवाणुओं की प्रोटीन संश्लेषण क्रिया को निषिद्ध करते हैं । यह आक्रामक जीवाणुओं के संदमन का आधार है तथा अतिथेय (मनुष्य) को बिना हानि पहुंचाए संक्रमण को रोकता है (सारणी 14.2)।

सारणी 14.2 जीवाणु प्रोटीन संश्लेषण के कुछ संदमक

प्रतिजैविक	प्रभाव
टेट्रासाइक्लिन	अमीनो एसाइल स्थानांतरी आरएनए को राइबोसोम से बंधन का संदमन ।
स्ट्रेप्टोमाइसिन	स्थानांतरण प्रवर्तन का संदमन तथा कूट का त्रुटिपूर्ण पठन ।
क्लोरम्फेनिकॉल	पेप्टिडिल ट्रांसफरेज एवं पेप्टाइड बंध के बनने को संदमन ।
एरिथ्रोमाइसिन	राइबोसोम के साथ संदेशवाहक आरएनए के स्थानांतरण का संदमन ।
नियोमाइसिन	स्थानांतरी एवं दूत आरएनए की पारस्परिक क्रियाओं का संदमन ।

14.7 आनुवंशिक कूट (कोड)

दूत आरएनए में निहित सूचनाओं के बहुपेप्टाइड में संकेत-स्थानांतरण की प्रक्रिया जीव विज्ञान की एक जाग्रतकारी खोज है। इसे प्राय: आनुवंशिक कूट का वाचन (deciphering) कहते हैं। केवल चार जैव रासायनिक शब्दों (AGCU) के एकल शब्द कूट सभी 20 अमीनो अम्लों का असंदिग्ध रूप से कूट नहीं बना सकते हैं। द्विशब्द-कूट भी केवल 16 (4×4) अमीनो अम्लों के कोड बना सकते हैं जो अपर्याप्त हैं। अत: कम से कम 20 कूट विभिन्न अमीनो अम्लों के कूट की संरचना करने के लिए आवश्यक हैं।

आनुवंशिक कूट की खोज का श्रेय 1960 के दशक के पूर्वार्ध में फ्रांसिस एच.सी. क्रिक, सेवेरो ओचोआ, मार्शल डब्ल्यू नीरेनबर्ग, हरगोविन्द खुराना एवं जे.एच. मथाई के महत्त्वपूर्ण योगदान को जाता है। इस कार्य के लिए हरगोविंद खुराना को 1968 ई. में नीरेनबर्ग तथा हॉले के साथ नोबेल पुरस्कार दिया गया। उन्होंने बहुयूरेसिल, बहुसायटोसिन, बहुएडनीन, बहुगुआनीन जैसे संश्लेषित आरएनए के समबहुलक अथवा सहबहुलक जैसे बहु युरेसिल-गुआनीन, एडनीन-सायटोसिन इत्यादि का उपयोग किया। इस आरएनए को एक परखनली प्रोटीन संश्लेषण तन्त्र में संश्लेषण के लिए उपयोग में लिया गया। इसमें अमीनो अम्लों को रेडियो सक्रिय समस्थानिकों से चिह्नित कर प्रयोग में लिया गया। इस प्रक्रिया द्वारा UUU के रूप में प्रथम कूट के अर्थ को समझा गया जो फिनाइल ऐलानीन अमीनो अम्ल का है। सभी 64 कोड को एक आनुवंशिक कूट शब्दकोष के रूप में निरूपित किया जा सकता है (चित्र 14.13)। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कूट का पहला एवं दूसरा रासायनिक अक्षर किसी विशेष अमीनो अम्ल के लिए समान हो सकता है पर तीसरा क्षार भिन्न भी हो सकता है। इस तथ्य के आधार पर 1966 में क्रिक ने डगमगाहट परिकल्पना (Wobble hypothesis) को प्रस्तावित किया। बाद के प्रयोगों से यह स्थापित हुआ कि आनुवंशिक अपरस्परछादी कूट, असंदिग्ध, ह्रासित (degenerate) एक अमीनो अम्ल के लिए एक से अधिक कोडॉन का होना एवं बिना किसी विराम के होते हैं।

प्रथम अक्षर (5' शीर्ष)	द्वितीय अक्षर U		C				G		तृतीय अक्षर (3' शीर्ष)
U	UUU Phe	UUC Phe	UCU Ser	UCC Ser	UAU Tyr	UAC Tyr	UGU Cys	UGC Cys	U C
	UUA Leu	UUG Leu	UCA Ser	UCG Ser	UAA	UAG STOP	UGA	UGG Trp	G
C	CUU Leu	CUC Leu	CCU Pro	CCC Pro	CAU His	CAC His	CGU Arg	CGC Arg	U C
	CUA Leu	CUG Leu	CCA Pro	CCG Pro	CAA Gln	CAG Gln	CGA Arg	CGG Arg	G
	AUU Ile	AUC Ile	ACU Thr	ACC Thr	AAU Asn	AAC Asn	AGU Ser	AGC Ser	U C
	AUA Ile	AUG Met START	ACA Thr	ACG Thr	AAA Lys	AAG Lys	AGA Arg	AGG Arg	G
G	GUU Val	GUC Val	GCU Ala	GCC Ala	GAU Asp	GAC Asp	GGU Gly	GGC Gly	U C
	GUA Val	GUG Val	GCA Ala	GCG Ala	GAA Glu	GAG Glu	GGA Gly	GGG Gly	G

चित्र 14.13 सभी 64 संभव संकेतकों को दर्शाता हुआ एक संकेतन कोश प्रारंभक एवं तीन समापन संकेतकों पर विशेष ध्यान दीजिए

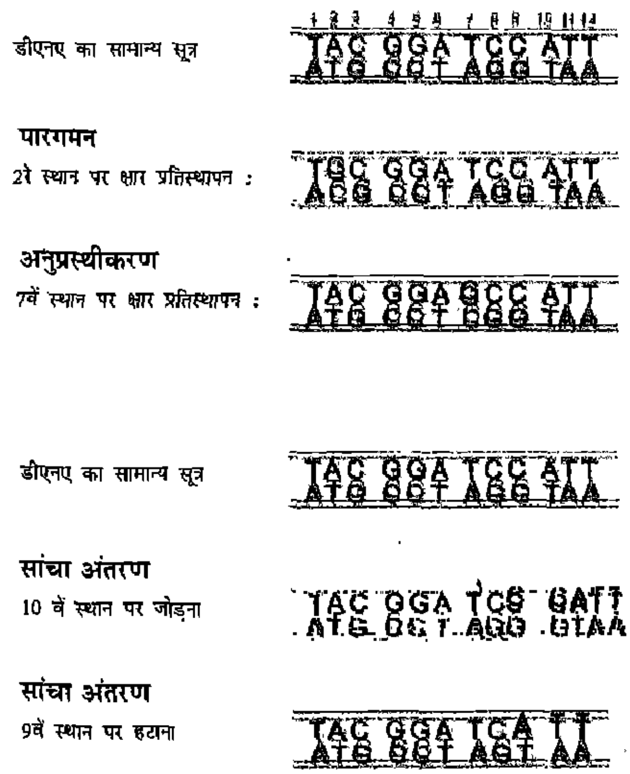
14.8 उत्परिवर्तन की आण्विक क्रियाविधि

डीएनए के रूप में जीनों के जैवरासायनिक स्वरूप की पहचान के पश्चात् आण्विक स्तर पर उत्परिवर्तन की प्रक्रिया का परीक्षण किया गया। हमें ज्ञात हो चुका है कि डीएनए में क्षारों के विशिष्ट अनुक्रम ही किसी भी जीन के लिए आनुवंशिक कूट का पठनीय ढांचा बनाते हैं। दो प्रमुख क्रियाओं द्वारा उत्परिवर्तन की प्रक्रिया पूरी की जाती है जो उक्त पठनीय ढांचे को परिवर्तित करते हैं:

(i) प्रतिस्थापन एवं

(ii) ढांचा-अंतरण उत्परिवर्तन ।

प्रतिस्थापन के मध्य एक क्षार दूसरे प्रकार के क्षार से बदल दिए जाते हैं । उदाहरणस्वरूप प्यूरीन क्षार का प्यूरीन से तथा पिरिमिडीन क्षार का पिरिमिडीन से होने वाले प्रतिस्थापन को पारगमन (transition) कहते हैं । इसी प्रकार प्यूरीन क्षार को पिरिमिडीन एवं इसके विपरीत होने वाले प्रतिस्थापन को अनुप्रस्थीकरण (transversion) कहते हैं । कुछ क्षारों के योग अथवा विलोपन से आनुवंशिक कूट का ढांचा अंतरित हो जाता है जिसे सांचा-अंतरण उत्परिवर्तन कहते हैं (चित्र 14.14)।



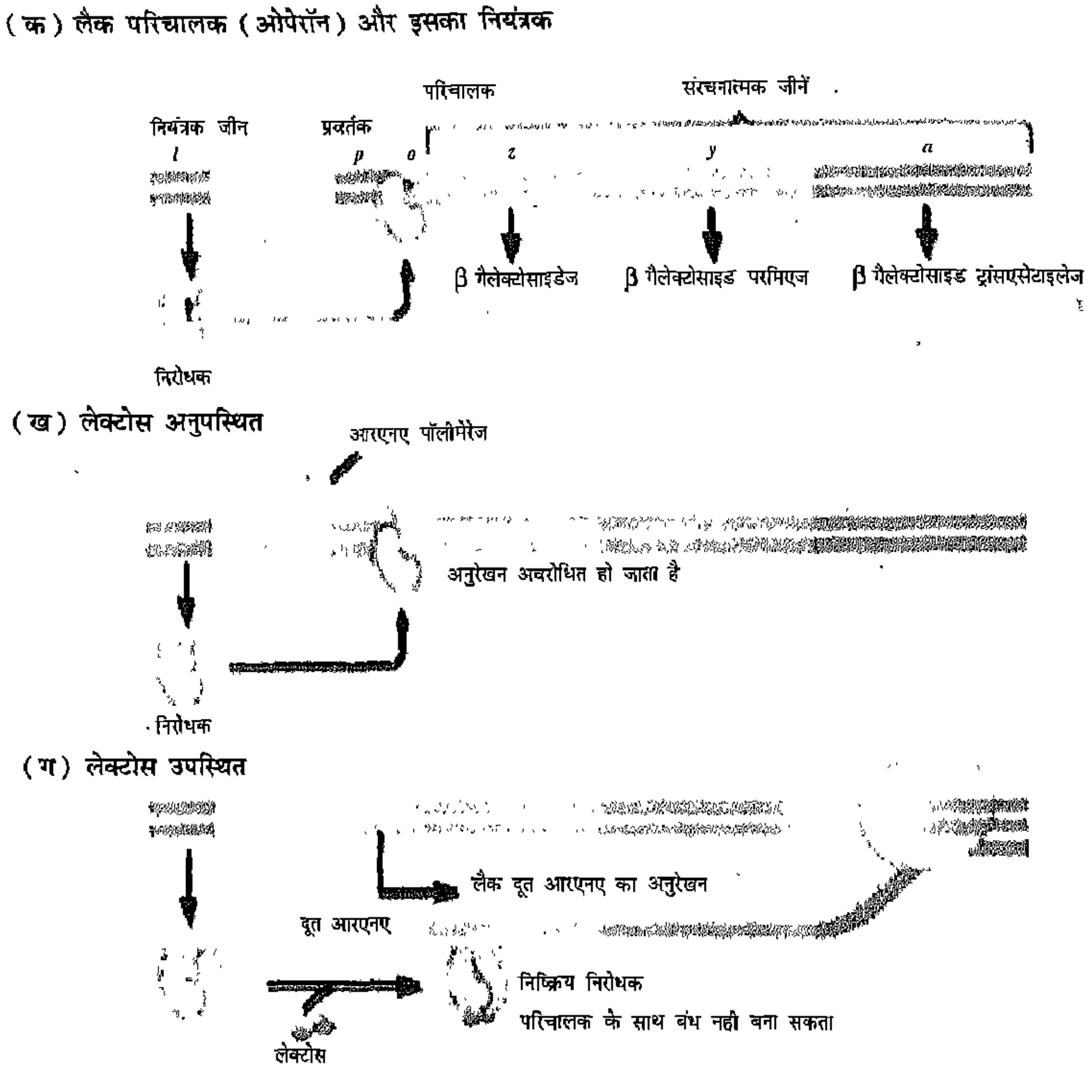
चित्र 14.14 जीन उत्परिवर्तन की आण्विक अभिक्रियाएं

उदाहरणस्वरूप वाक्य "THE FAT CAT ATE THE RAT" में सिर्फ T के योग से परिवर्तित वाक्य "THE TFA TCA TAT ETH ERA T" बनता है जिससे वाक्य का अर्थ पूर्णत: बदल जाता है । ठीक इसी प्रकार उपरोक्त वाक्य से F के विलोपन से वाक्य "THE ATC ATA TET HER AT" बनता है जो अर्थहीन है । किसी जीन में क्षारों का विशिष्ट अनुक्रम इसके विशिष्ट लक्षणप्ररूप के लिए निर्णायक है। क्षार अनुक्रमों में होने वाला कोई भी परिवर्तन कूट को बदल कर जीन की परिवर्तित अभिव्यक्ति कराता है, जिसे उत्परिवर्तन (mutation) कहते हैं। क्षारों के प्रतिस्थापन के कारण इनके बेमेल (mismatches) भी बनते हैं। सभी जीवित कोशिकाओं में इस प्रकार की अशुद्धियों के परिशोधन के लिए सुधार क्रियाविधि होती है । जब इस क्रियाविधि में दोष उत्पन्न होता है तभी उत्परिवर्तन संभव होते हैं।

14.9 जीन-अभिव्यक्ति का नियमन

पहले के खंड में आप देख चुके हैं कि डीएनए में संग्रहीत आनुवंशिक सूचनाएं किस प्रकार प्रोटीन संश्लेषण के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं । अगर हम एक इ. *कोलाई (E. coli)* जैसे सामान्य जीवाणु की कोशिका में भी विभिन्न प्रोटीनों की सांद्रता का विश्लेषण करें तो एक बहुत बड़ा अंतर मिलता है। कुछ प्रोटीन तो सिर्फ 5 से 10 अणुओं तक ही संश्लेषित होते हैं जबकि दूसरे 100,000 प्रति/कोशिका । इससे यह स्पष्ट होता है कि जीनों की अभिव्यक्ति का नियमन होता है। 1900 ई. से ही यह ज्ञात था कि यीस्ट में लैक्टोस उपापचय के एंजाइम तभी बनते हैं जब उन्हें उक्त शर्करा की उपस्थिति में संवर्धित किया जाता है । इसके तुरंत बाद यह दर्शाया गया कि जीवाणु अपने रासायनिक वातावरण के अनुकूल होने के लिए क्रियाधार के अनुसार एंजाइम संश्लेषित करने लगते हैं। इस प्रकार के एंजाइम को पहले अनुकूलनशील (adaptive) फिर **प्रेरक एंजाइम** (inducible enzymes) कहा गया। इसके विपरीत कुछ एंजाइम हमेशा संश्लेषित होते रहते हैं तथा वह रासायनिक वातावरण पर निर्भर नहीं करते। इन्हें **संघटक एंजाइम** *(constitutive enzymes)* कहा गया। संवर्धन के माध्यम में किसी जैवसंश्लेषण प्रक्रिया के अंतिम उत्पाद जैसे--अमीनो अम्ल को मिला कर एक अन्य प्रकार के नियमन का रहस्योद्घाटन किया गया। इस अवस्था में उक्त अमीनो अम्ल का आंतरिक जैवरासायनिक संश्लेषण रुक जाता है। इस प्रकार के नियमन को **निरोधक नियमन** (repressible regulation) कहा जाता है। नियमन को धनात्मक या ऋणात्मक संचालन भी कहा जा सकता है। ऋणात्मक संचालन में नियमन जीन का अंतिम उत्पाद उक्त जीन की अभिव्यक्ति को रोक देता है।

दूसरी ओर धनात्मक नियमन के अंतर्गत नियमन जीन का उत्पाद संबंधित जीन को अनुलेखन के लिए सक्रिय करता है। *कोशिका के जीवन में यह नियमन प्रक्रिया अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि* इसके माध्यम से अवांछित जीन की अभिव्यक्ति को रोका जा सकता है। इससे ऊर्जा के कुशल प्रबंधन को सुनिश्चित किया जाता है।

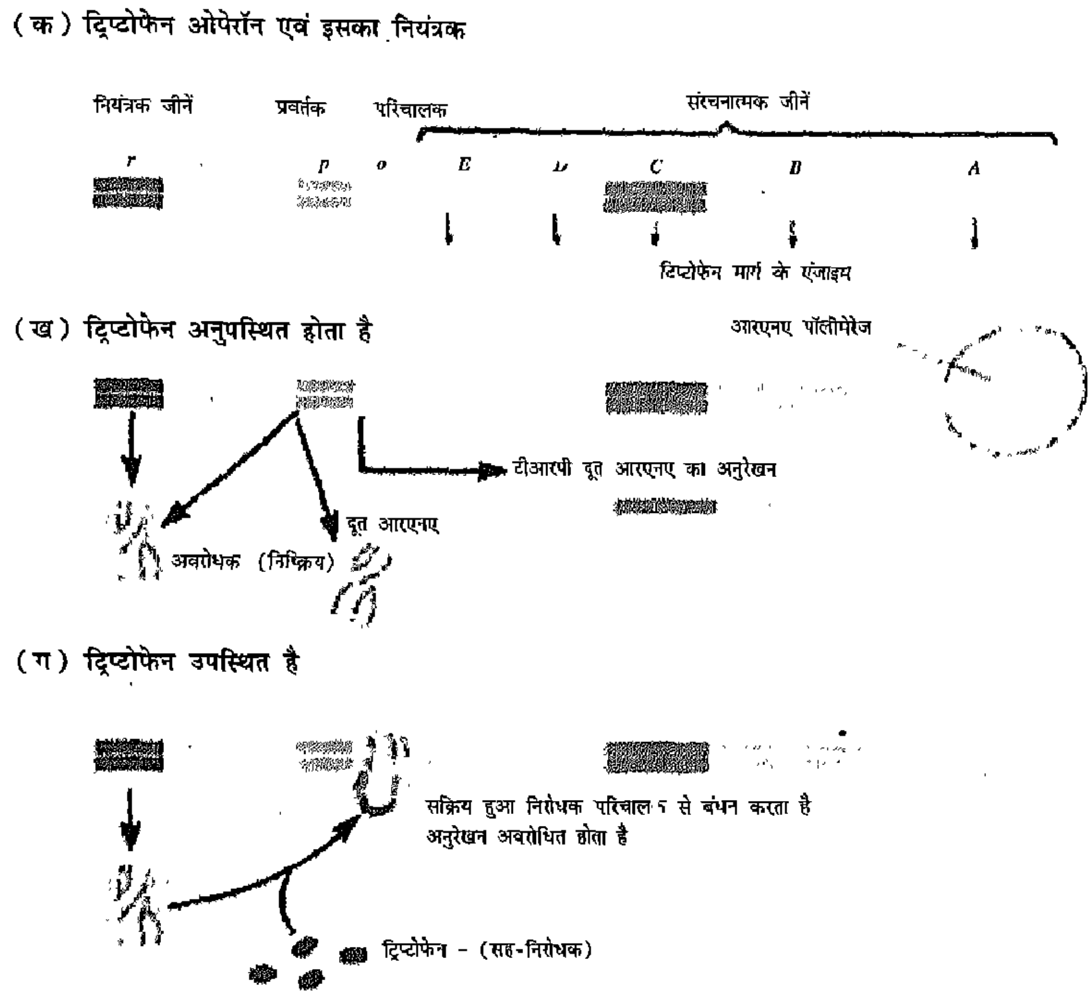


चित्र 14.15 ऐस्करीशिया कोलाई में लैक ओपेरॉन का परख नियंत्रण (क) लैक ओपेरॉन का आनुवंशिक संगठन और इसके नियंत्रक तत्व, (ख) लेक्टोस की अनुपस्थिति में होने वाली स्थिति (ग) लेक्टोस की उपस्थिति के समय होने वाली स्थिति ।
**ध्यातव्य है कि जीनों की अभिव्यक्ति तभी होती है जब इनकी आवश्यकता होती है, जैसे कि लेक्टोस की उपस्थिति में*

[illegible]

1961 ई. में फ्रांस्वा जैकब एवं जैक्वे मोनोड ने जीन अभिव्यक्ति के नवीन नियमन का प्रतिष्ठित उदाहरण प्रस्तावित किया। *इ. कोलाई* में लेक्टोस उपापचय के बारे में किए गए अपने अध्ययन में दोषपूर्ण उत्परिवर्तक के कई प्रकारों का विश्लेषण करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जीनों का एक समूह एक इकाई के रूप में नियंत्रित होता है । इसका नाम उन्होंने **ऑपेरॉन** दिया । उक्त उदाहरण में ओपेरॉन तीन संरचनात्मक जीनों का बना होता है । इसे जेड, वाई एवं ए नाम दिया गया एवं इसके निकटवर्ती अनुक्रम को परिचालक क्षेत्र (operator region) कहा जाता है (चित्र 14.15)। उनके मूल प्रस्ताव के बाद एक अन्य क्षेत्र की पहचान, कर्ता के आगे के भाग में की गई जिसे प्रवर्तक (promoter) कहा गया। प्रवर्तक के बारे में पूर्व के भाग में आप पढ़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त एक नियंत्रक जीन *लैक i* भी होता है जो ओपेरॉन के अनुलेखन को एक निरोधक अणु के उत्पादन द्वारा नियंत्रित करता है।

यह नियंत्रण प्रक्रिया लैक्टोस की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर कार्य करती है। जब कोशिकाओं का संवर्धन लेक्टोस के अभाव में होता है तो निरोधक अणु, जो लैक I के द्वारा उत्पादित होते हैं, परिचालक क्षेत्र से बंधकर ओपेरॉन को कार्य करने से रोकता है । यह तर्कसंगत है क्योंकि लेक्टोस के उपलब्ध न रहने के कारण तीनों संरचनात्मक जीनों द्वारा



चित्र 14.16 ऐस्करीशिया कोलाई में ट्रिप्टोफेन जैव-संश्लेषण जीनों का अवरोध-परक नियंत्रण (क) टीआरपी ओपेरॉन और इसके नियंत्रक जीन का आनुवंशिक संगठन (ख) बाह्य ट्रिप्टोफेन की अनुपस्थिति में टीआरपी जीनों की अभिव्यक्ति (ग) ट्रिप्टोफेन की उपस्थिति में टीआरपी जीनों की अभिव्यक्ति

**ध्यातव्य है कि लैक ओपेरॉन की भांति, टीआरपी जीनें भी तभी चालू की जाती है जब इनकी आवश्यकता होती है ।*

संकेतित एंजाइमों की भी आवश्यकता नहीं है । लेकिन जब **लेक्टोस** (वास्तव में एलोलेक्टोस जो लेक्टोस का एक समावयव है), उपस्थित होता है तो यह स्वयं प्रेरक के रूप में कार्य करता है । यह प्रेरक निरोधक से बद्ध होकर इसकी संरचना को इस तरह परिवर्तित कर देता है कि निरोधक कर्ताक्षेत्र से आबद्ध नहीं हो सकता है। अब ये तीनों संरचनात्मक जीन अनुलेखित एवं अनुवादित हो सकते हैं (चित्र 14.15)। इस ऑपेरॉन से उत्पादित आरएनए बहुसिस्ट्रॉनिक दूत आरएनए होते हैं । आनुवंशिक एवं जैवरासायनिक रूप में लैक-ऑपेरॉन के नियंत्रक प्रक्रिया को सबसे अच्छी तरह से समझा गया है।

निरोधक नियंत्रण

अगर हम अमीनो अम्लों एवं अन्य आवश्यक बृहद् अणुओं के जैवसंश्लेषण में सम्मिलित जीनों के नियंत्रण की तुलना करते हैं तो स्थिति बहुत अलग दिखती है । जैकब एवं मोनोड ने दर्शाया था कि जब संवर्धन माध्यम में ट्रिप्टोफेन उपस्थित रहता है तब इ. *कोलाई* की वन्य प्रकार की कोशिकाएं इनके लिए आवश्यक एंजाइम का संश्लेषण रोक देती है । यह एक बार पुनः कोशिकाओं द्वारा मितव्ययता का एक उदाहरण है।

उनके द्वारा किए गए आगे के अनुसंधानों से यह उद्घाटित किया गया कि इ. *कोलाई* के गुणसूत्र पर उपस्थित पांच निकटवर्ती जीन ट्रिप्टोफेन के जैवसंश्लेषण में सम्मिलित हैं। उन्होंने प्रस्तावित किया कि पांच संरचनात्मक जीन टीआरपी ई, डी, सी, बी, एवं ए होते हैं एवं लैक-ओपेरॉन की ही तरह जिसके आगे एक नियंत्रक क्षेत्र होता है। ये सब मिलकर टीआरपी ओपेरॉन बनाते हैं (चित्र 14.16)। इनका नियंत्रक क्षेत्र प्रवर्तक, कर्ता एवं एक अग्रणी अनुक्रम में विभक्त होता है।

इसका अग्रणी अनुक्रम अनुलेखित तो होता है पर टीआरपी संरचनात्मक जीन उत्पाद के एक भाग की तरह स्थानांतरित नहीं होता । यह ओपेरॉन एक दूरस्थ नियंत्रक जीन टीआरपी के द्वारा नियंत्रित होता है । बाह्य ट्रिप्टोफेन की अनुपस्थिति में टीआरपीआर द्वारा संश्लेषित निरोधक निष्क्रिय रहता है जो टीआरपीओ से आबद्ध नहीं हो सकता है । इससे बहुसिस्ट्रॉनिक दूत आरएनए का अनुलेखन संभव होता है । पर ट्रिप्टोफेन की उपस्थिति में यह निरोधक से स्वयं बंध कर इसे एक सक्रिय निरोधक बनाता है । यह कर्ता से बंध सकता है जिससे सभी अनुलेखन प्रक्रिया को रोक देता है । इस प्रकार के निरोध को ऋणात्मक नियंत्रण कहा जाता है। टीआरपी ओपेरॉन एवं अन्य अमीनो अम्लों के जैवसंश्लेषण ओपेरॉन का अन्य प्रकार का नियंत्रण भी होता है।

14.10 गृह व्यवस्थापक (हाऊस-कीपिंग) जीन

आगे की गई चर्चा से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जीन अभिव्यक्ति वातावरण पर आधारित, एक व्यापक रूप से नियंत्रित प्रक्रिया है। अति विभेदित बहुकोशिकीय जीवों में यह नियंत्रण ऊतकों के स्तर पर भी होता है । उदाहरणस्वरूप, कुछ जीन यकृत में, कुछ गुर्दों में तो कुछ अन्य जननऊतकों में अभिव्यक्त होते हैं । इन जीनों के विपरीत कुछ ऐसे जीनों का समुच्चय भी है जो सभी प्रकार की कोशिकाओं में क्रियाशील रहता है। इस प्रकार के जीनों को गृह व्यवस्थापक जीन (House keeping gene) कहते हैं। जिनकी क्रिया कोशिका की संरचनात्मक गतिविधि के लिए आवश्यक है।

14.11 विभेदन एवं परिवर्धन

जीवाणुओं के विषय में चर्चा एककोशिक जीवों से संबंध रखती है जो बहुत कम अथवा विभेदन-विहीन जीव हैं । इसके विपरीत सभी उच्च पादप एवं प्राणी अनगिनत कोशिका-प्रकारों के बने होते हैं। इस बात से तो आप अवगत होंगे ही कि ये सभी बहुकोशिक जीव निषेचन के परिणामस्वरूप बने एककोशिक युग्मनज से उत्पन्न होते हैं। अत: कोशिकाओं के विभिन्न प्रकार को निश्चित रूप से बहुत सुव्यवस्थित एवं समन्वित प्रक्रिया से उत्पन्न होना चाहिए। इस प्रक्रिया को ही विभेदन (differentiation) कहते हैं। निषेचित अंड के एक वयस्क के रूप में परिवर्धित होने के लिए आवश्यक निर्देश एक रैखिक क्रम में डीएनए अथवा जीन पर उल्लिखित होते हैं। ये आनुवंशिक सूचनाएं एक नियंत्रित ढंग से न सिर्फ स्थान एवं समय के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त होती हैं, बल्कि कोशिकाओं के बीच परस्पर क्रिया द्वारा विभिन्न शारीरिक भागों के गठन में भी अपना योगदान करती हैं।

केंद्रकीय प्रतिरोपण के प्रयोगों द्वारा विभेदन में केंद्रक की भूमिका को आसानी से समझा जा सकता है। इन प्रयोगों के द्वारा मेंढकों के क्लोन बनाए जा सकते हैं। इन प्रयोगों में विभेदित कोशिकाओं के द्विगुणित केंद्रकों को एक ऐसे अनिषेचित अंड में प्रतिरोपित किया जाता है जिसके अगुणित केंद्रक को पहले से ही निष्क्रिय कर दिया गया हो। जब ऐसे आनुवंशिक रूप से द्विगुणित अंड को कृत्रिम रूप से विभाजन एवं परिवर्धन के लिए प्रेरित किया जाता है तो एक ऐसा वयस्क मेंढक बनता है जिसकी गुणसूत्रीय संरचना दाता के बिल्कुल समान होती है। यद्यपि डिंब (लार्वा) की आंत की कोशिका से लिया गया केंद्रक क्लोन के जनन में मदद करता है पर वयस्क मेंढक के केंद्रक ऐसा नहीं करते । इससे यह पता चलता है कि बहुशक्तता (pluripotency) (पूर्ण विभेदित होने में सक्षम) प्रौढ़ हो जाने पर समाप्त हो जाती है। यदि तंत्रिका कोशिका को उनके सामान्य कोशिकीय वातावरण के बाहर परिवर्धित किया जाता है तो वे समान कोशिका ही उत्पन्न करते हैं। लेकिन उच्च पादपों में यह अवस्था विपरीत होती है। किसी भी विभेदित कोशिका से एक संपूर्ण पादप को पुनर्जीवित किया जा सकता है जिसे पूर्णशक्तता (totipotency) कहते हैं।

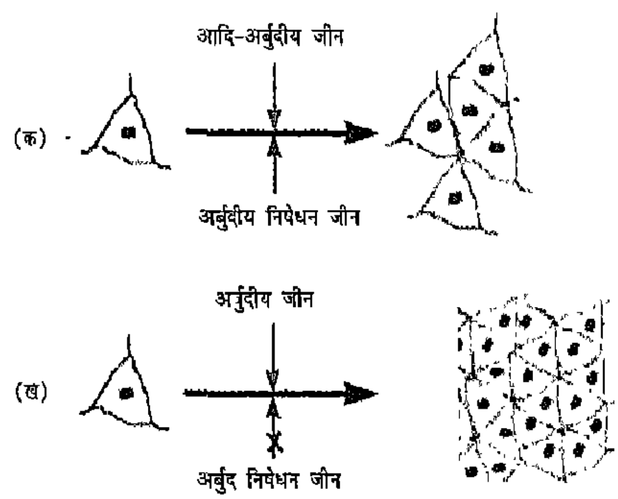
बहुकोशिक जीवों में भी, जीवाणुओं की भांति, सभी जीन सदैव क्रियाशील नहीं रहते हैं । अत: इन जीनों के सुव्यवस्थित एवं समन्वित क्रिया हेतु नियंत्रण की कोई विधि अवश्य ही होनी चाहिए कि कौन-सी जीन और कब कार्यरत होगी। नियंत्रण की ये क्रिया जीवाणुओं की तुलना में जटिल होती है।

फलमक्खी *ड्रोसोफिला* जो एक क्रियात्मक मॉडल है, पर किए गए प्रयोगों के आधार पर सूचनाओं का विशाल भंडार एकत्रित किया गया है । *ड्रोसोफिला* के कई परिवर्धन उत्परिवर्तक भी पृथक किए गए हैं । यह स्पष्ट है कि परिवर्धन के समय एक निषेचित अंड कई कोशिकाओं में विभाजित होता है जिनकी परिवर्धन नियति भिन्न होती है । यह विषमता अंड का ही एक भाग है क्योंकि कोशिका-द्रव्यों के विभिन्न घटकों के वितरण में ही असमानता होती है जैसे कि *ड्रोसोफिला* या किसी स्तनधारी के प्रारंभिक विभाजन चक्र से स्पष्ट हो जाती है । यह मान लेना तर्कसंगत है कि प्रत्येक कोशिका प्रकार में जीन अभिव्यक्ति की पद्धति अथवा जीन विशेष उत्पाद का चित्रण होता है। *ड्रोसोफिला* में कई प्रकार के जीनों का उत्परिवर्तन के द्वारा पहचान कर उसके कार्यों का विश्लेषण किया गया है। ये जीन न सिर्फ एक-दूसरे को नियंत्रित करते हैं वरन् ये संरचनात्मक प्रोटीन के संकेत के रूप में जीनों को लक्ष्य करते हैं। इस प्रकार के जीन पर संरक्षित अभिप्राय (motif) होते हैं जिनमें सबसे सामान्य को होमियोबॉक्स (Homeobox) कहते हैं। होमियोबॉक्स दूसरे

ससीमकेंद्रकों में भी वितरित रहते हैं। उदाहरणस्वरूप कृमि, मेंढक एवं स्तनधारी, इससे यह प्रतीत होता है कि ये सभी प्राणियों की विशेषता है।

14.12 कैंसर एवं ऑन्कोजीन (अर्बुद जीन)

पिछले अध्याय में आप अध्ययन कर चुके हैं कि कोशिका अत्यंत योजनाबद्ध रूप से कोशिका-चक्र पूरा करती है। इससे कोशिकाओं का विभाजन एवं परिवर्धन नियंत्रित होता है । यह न सिर्फ किसी कायिक कोशिका के निश्चित जीवनावधि में बल्कि जीवों में भी परिलक्षित होता है। कैंसर-कोशिका इसका एक उल्लेखनीय अपवाद है (चित्र 14.17)। कैंसर कोशिकाओं की एक बीमारी है जिसमें कोशिकाओं के प्रचुरता को सीमित करने का नियंत्रण निष्क्रिय हो जाता है । सामान्य कोशिकाओं एवं कैंसर कोशिकाओं के बीच तीन प्रमुख अंतर होते हैं।



चित्र 14.17 सामान्य कोशिका विभाजनों का नियंत्रण (क) आदि ओन्कोजीनों द्वारा कोशिका विभाजन का नियंत्रण और अर्बुद निषेधक जीनों द्वारा प्रस्तुत बाधाएं, (ख) यदि इस नियंत्रण में विघ्न उत्पन्न हो जाए तो कोई भी सामान्य कोशिका अर्बुद कोशिका में रूपांतरित हो जाती है

(i) सामान्य कोशिकाओं के विपरीत कैंसर कोशिका अनश्वर हो जाती है एवं अनिश्चित रूप से परिवर्धित होती रहती है।

(ii) चूंकि वे सामान्य कोशिका के रूपांतरण से उत्पन्न हुई होती है अत: इनमें वृद्धि के सामान्य नियंत्रण लागू नहीं होते हैं।

(iii) एक स्थिति में उनमें अपरूपांतरण (metastasize) की क्षमता आ जाती है जिसके कारण वे अन्य सामान्य ऊतकों पर भी हमला कर अपने मूल स्थान से दूरी पर भी रूपांतरण की एक नई श्रृंखला की शुरुआत कर देते हैं ।

जब किसी कशेरुकी की कोशिकाओं की संवर्धन में वृद्धि की जाती है तो इस हेतु एक ठोस अवलंब एवं आवश्यक संवर्धनकारक अथवा सीरम की आवश्यकता होती है । कोशिका के कोशिका से संपर्क के कारण उनका संवर्धन अवरुद्ध हो जाता है तथा वे विशिष्ट कोशिकाकंकाली (cytoskeletal) संरचना दर्शाते हैं। इसलिए ये एकस्तरीय रूप से संवर्धित होते हैं। कैंसर अथवा ट्यूमर की कोशिकाओं में इनमें से कुछ अथवा सभी गुण परिवर्तित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त भी सामान्य से कैंसर कोशिका में रूपांतरित होने की प्रक्रिया में कई आनुवंशिक बदलाव होते हैं । इन सभी प्रक्रियाओं को **अर्बुदभवन** (oncogenesis) कहते हैं ।

इस प्रकार के रूपांतरण स्वत: अथवा ऐसे कारकों द्वारा, जिन्हें कैंसरजन (carcinogen) कहते हैं, हो सकते हैं। कैंसरजन समूह के अंतर्गत विकिरण, कुछ रासायनिक यौगिक एवं कई विषाणु आते हैं । कैंसरजन कुछ पश्चजात परिवर्तन ला सकते हैं तथा वे प्राय: प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से क्रिया करके कोशिका के जीन-प्ररूप में आवश्यक बदलाव लाते हैं । अब तक ऐसे दो प्रकार के जीनों की पहचान की गई है जिनके उत्परिवर्तन के कारण कैंसर-युक्त रूपांतरण होता है:

(i) **ऑन्कोजीन (अर्बुदजीन) :** ये कोशिका विभाजन के प्रेरक का कार्य करती हैं । ध्यातव्य है कि इन जीनों के सामान्य कोशिकीय प्रतिरूप होते हैं जो सामान्य कोशिकीय क्रियाओं में भाग लेते हैं । इन्हें प्रोटो-ऑन्कोजीन (c-onc) कहते हैं । इनमें होने वाले उत्परिवर्तन से ऑन्कोजीन बनते हैं । कई ट्यूमर विषाणुओं में इसके समान जीन वी-ऑन्क (v-onc) होता है जो कैंसरजन है ।

(ii) **ट्यूमर निरोधक जीन :** जैसा कि नाम से स्पष्ट है वे सामान्यत: ट्यूमर को रोकते हैं तथा रोग तभी उत्पन्न होता है जब उचित क्रियाशील जीन के दोनों विकल्प अनुपस्थित होते हैं। कार्यात्मिक रूप से वे कोशिका-चक्रण में रुकावट उत्पन्न करते हैं। इनके नहीं होने के कारण यह अवरोध नहीं होता और फलत: ट्यूमर प्रेरित होता है।

सारांश

आनुवंशिक पदार्थ की जैवरासायनिक एवं आण्विक प्रकृति के बारे में किए गए प्रयोगों से यह निर्णायक रूप से प्रदर्शित कर दिया गया कि डीएनए (न कि प्रोटीन) ही वास्तव में आनुवंशिक पदार्थ है । कई वैज्ञानिकों द्वारा एकत्रित की गई सूचनाओं के आधार पर वाटसन एवं क्रिक ने जैविक आशय को समझते हुए डीएनए के द्विकुंडलीय मॉडल को प्रस्तावित किया । इसमें डीएनए की दो लड़ियां एक-दूसरे पर लिपटी होती है तथा परस्पर प्रति सामानांतर क्रम में व्यवस्थित होती हैं । इस अणु की रीढ़ एकांतर क्रम में डिऑक्सीराइबोजशर्करा एवं फॉस्फेट की बनी होती है तथा नाइट्रोजनी क्षार अंदर की तरफ चट्टे के रूप में लगे रहते हैं । दोनों लड़ियां एक-दूसरे से हाइड्रोजन बंधों द्वारा जुड़ी रहती हैं जो एडेनीन तथा थायमिन एवं गुआनीन तथा सायटोसिन के बीच होते हैं। इस मॉडल से डीएनए की पुनरावृत्ति की विधि भी प्रदर्शित की गई, जो आनुवंशिक पदार्थ की प्रमुख अवधारणा है । पुनरावृत्ति अद्र्धसंरक्षणीय रूप से होती है जिसमें दोनों लड़ियां सांचे की तरह कार्य करती हैं तथा नयी लड़ी के संश्लेषण में सहायता करती हैं । इस नई लड़ी के क्षार अनुक्रम सांचा लड़ी के पूरक होते हैं। पुनरावृत्ति की प्रक्रिया में कई एंजाइम सहायता करते हैं तथा यह एक विशेष बिंदु से प्रारभ होती है जिसे पुनरावृत्ति का मूल बिंदु या उद्गम कहते हैं । चूंकि प्रमुख डीएनए प्रतिकृति एंजाइम $5' \rightarrow 3'$ दिशा में कार्य कर सकता है इसलिए एक लड़ी की प्रतिकृति लगातार होती है । लेकिन दूसरी लड़ी पर यह छोटे-छोटे हिस्सों में होती है । इन हिस्सों को ओकाजाकी खंड कहते हैं । यह प्रक्रिया अद्र्ध-असतत् कही जाती है । डीएनए के बहुलीकरण के लिए एक लघु आरएनए प्रवेशक (प्राइमर) की आवश्यकता होती है जो एक विशेष एंजाइम प्राइमेज द्वारा संश्लेषित होते हैं । बाद में प्रवेशकों को हटाकर रिक्त स्थानों को डीएनए पॉलीमेरेज द्वारा पूरा कर दिया जाता है । फिर लाइगेज एंजाइम की मदद से ओकाजाकी खंडों को जोड़ दिया जाता है ।

पिछली शताब्दी के पूर्वार्ध से ही यह धारणा थी कि जीन उपापचय को नियंत्रित करती हैं एवं इसकी पुष्टि 1940 के दशक के मध्य में बीडल एवं टैटम के शोध द्वारा हुई । इनके द्वारा प्रस्तुत एवं कई अन्य सूचनाओं के आधार पर यह स्थापित किया गया कि नियंत्रण प्रोटीन संश्लेषण को निर्देशित कर किया जाता है । इस प्रोटीन के कई कार्य होते हैं । प्रोटीन संश्लेषण दो चरणों में होता है, अनुलेखन एवं स्थानांतरण, जो आनुवंशिक पदार्थों के अभिव्यक्ति की मूलभूत प्रक्रियाएं हैं । अनुलेखन द्वारा एकल लड़ी आरएनए की तीन जातियों का संश्लेषण होता है । यह प्रक्रिया आरएनए पॉलीमेरेज द्वारा संपन्न होती है जो डीएनए को सांचे के रूप में उपयोग में लाते हैं । प्रोटीन संश्लेषण में तीनों प्रकार के आरएनए के अलग-अलग कार्य हैं। संदेशवाहक आरएनए जीन या डीएनए से सूचना वहन करता है, राइबोसोमीय आरएनए कुछ अन्य प्रोटीन के साथ प्रोटीन संश्लेषण के लिए स्थान उपलब्ध करता है तथा स्थानांतरी आरएनए आवश्यक अमीनो अम्लों को राइबोसोम तक स्थानांतरण के समय पहुंचाता है। अनुलेखन एवं स्थानांतरण, दोनो प्रकियाओं को प्रवर्तन, दीर्घीकरण एवं समापन की प्रक्रिया में बांटा जा सकता है । ये प्रक्रिया भी प्रतिकृति के समान पूरक क्षार जोड़ी के ऊपर आधारित होती हैं । ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में ये दोनों क्रियाएं ज्यादा जटिल हैं जहां प्राथमिक संदेशवाहक आरएनए अनुलेख को कई तरीकों से रूपांतरित किया जाता है ।

डीएनए में संग्रहीत सूचनाएं एक त्रय के रूप में होती है जिसे संकेत अथवा कूट कहते हैं । ये कूट ह्रासित, असंदिग्ध, परस्परछादी एवं विरामरहित होते हैं । इनका पूरा शब्दकोश 64 संभव कूटों का बना होता है जिसमें 61 कूट 20 आवश्यक अमीनो अम्लों को संकेतित करते हैं । इसमें एक प्रवर्तक कूट एवं तीन समापन कूट होते हैं । किसी भी प्रकार का उत्परिवर्तन एक नए कूट को जन्म देता है जो एक नए अमीनो अम्ल को संकेतित करता है । जीवों की अभिव्यक्ति बाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार से प्रभावित होती है तथा यह एक नियंत्रित प्रक्रिया है । इससे व्यर्थ प्रोटीन के संश्लेषण को रोक कर कोशिका द्वारा ऊर्जा का संरक्षण किया जाता है । प्रेरक वर्ग में क्रियाधार के उपस्थित रहने पर जीन प्रेरित होते हैं जबकि निरोधक वर्ग में उत्पाद के आपूर्ति से जीन की अभिव्यक्ति रुक जाती है । नियंत्रण को ऋणात्मक या धनात्मक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है । निरोध के अतिरिक्त भी जैव संश्लेषित एंजाइमों के नियंत्रण की व्यवस्था होती है । कुछ ऐसे एंजाइम भी होते हैं जिनकी कोशिकाओं को सदैव आवश्यकता बनी रहती है तथा वे संघटक कहलाते हैं ।

ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं में जीन अभिव्यक्ति का नियंत्रण कहीं अधिक जटिल है जो बहुकोशिकता, जीनोम के बृहद् आकार एवं जीन अभिव्यक्ति के अन्य पहलुओं का परिचायक है । परिवर्धन एवं विभेदन की प्रक्रिया तथा ऑन्कोजीन जैसे विशिष्ट जीनों के समुच्चय के आधार पर उच्च जीवों में जीन नियंत्रण का मॉडल तैयार किया जा सकता है । परिवर्धन एवं विभेदन की पूरी प्रक्रिया विभेदित जीन अभिव्यक्ति पर आधारित है, क्योंकि बहुकोशिकीय जीवों की सभी कायिक कोशिकाओं में आनुवंशिक सूचनाएं

समान होती हैं। यद्यपि जीनों की अभिव्यक्ति ऊतकों की विशिष्टता पर भी आधारित होती है पर जीनों के कुछ सामान्य समुच्चय भी होते हैं। इस प्रकार के जीनों को गृह-व्यवस्थापक जीन कहा जाता है।

कोशिकाओं के परिवर्धन एवं इसके नियंत्रण के सामान्य कार्य में किसी भी प्रकार का विपथन कैंसर का कारण बनता है। इस प्रक्रिया में एक सामान्य कोशिका भी रूपांतरित हो कर परिवर्धन के सामान्य निरोधकों से मुक्त हो जाती है। कोशिकाओं में एक पूर्व ऑन्कोजीन होता है जिसके परिवर्तन के कारण सामान्य कोशिका भी कैंसरग्रस्त हो जाती है। कई विषाणुओं में भी सी.ऑन्क के समान वी.ऑन्क जीन होते हैं जो कैंसरजन कैंसर जनक के रूप में पर्याप्त सक्षम होते हैं। इसी प्रकार एक सामान्य कोशिका में ट्यूमर निषेधक जीन भी हो सकता है जिसके विलोपन के कारण ट्यूमर प्रेरित हो सकता है।

अभ्यास

1. यदि डीएनए दो लड़ियों की हो तो न्यूक्लियोटाइड को कौन-सा संघटन संभव होगा ?
   (क) सभी A; (ख) केवल A और T; (ग) केवल C और T; (घ) केवल A और G; (ङ) केवल A, G और T
2. नीचे डीएनए द्विकुंडली की एक अनुलेखित लड़ी दी गई है :
   3' - TAC CGA TCC GAG CTG - 5'
   (क) पूरक डीएनए की बहुन्यूक्लिओटाइड शृंखला का चित्र बनाइए।
   (ख) इससे अनुलेखित होने वाले आरएनए अणु की संरचना लिखिए।
3. किसी जीन के नीचे दिए गए डीएनए अनुक्रम के आधार पर :
   (क) आरएनए अनुलेख बनाइए।
   (ख) तैयार दूत आरएनए यह मान कर बनाइए कि जिन कूटों में C है वे इंट्रॉन डीएनए हैं।
   (ग) इससे कितने अमीनो अम्लों का संकेतन संभव होगा।

   TACCCCCAC GAG TTATATATACGG GGGCATCATATG
4. अगर एक ऐसे डीएनए की, जिसमें ज्यादातर नाइट्रोजन ^{15}N (भारी समस्थनिक) हों, ऐसे वातावरण में पुनरावृत्ति की जाए जिसमें नाइट्रोजन का स्रोत ^{14}N हो तो प्रतिकृत डीएनए में ^{15}N के साथ होने की क्या संभावना होगी :
   (क) प्रतिकृति के एक चक्र के पश्चात्
   (ख) प्रतिकृति के दो चक्रों के पश्चात्
   डीएनए की अर्द्धसंरक्षणीय विधि से प्रतिकृति का प्रायोगिक प्रमाण दीजिए।
5. नीचे एक दूत आरएनए का अनुक्रम दिया गया है :
   5' - AUG CUA UAC CUC CUU UAU CUG UGA - 3'
   (क) इस दूत आरएनए से बने बहुपेप्टाइड में कितने अमीनो अम्ल उपयुक्त होंगे ?
   (ख) इस दूत आरएनए को स्थानांतरण करने में कितने स्थानांतरी आरएनए की आवश्यकता होगी ?
6. हर्शे एवं चेज द्वारा ^{32}P तथा ^{35}S को उपयोग करने का क्या तर्काधार था ? इसके बदले अगर रेडियोचिह्नित कार्बन एवं नाइट्रोजन उपयोग में लाया होता तो क्या भिन्न परिणाम होता ?
7. डीएनए एवं आरएनए के बीच तीन अंतर लिखिए ?
8. कौन-से अणु पर कूट तथा किस पर प्रतिकूट होता है ?
9. आनुवंशिक पदार्थ की तीन आवश्यक अपेक्षाएं कौन-सी हैं ?
10. हर्शे एवं चेज ने किस प्रकार प्रमाणित किया कि डीएनए एक आनुवंशिक पदार्थ है ?
11. क्या डीएनए की दो पूरक लड़ियां समान जैविक सूचना रखती हैं ? विवेचना कीजिए।

12. प्रोटीन संश्लेषण में निम्नलिखित की भूमिका स्पष्ट कीजिए :
    (i) दूत आरएनए
    (ii) राइबोसोमीय आरएनए
    (iii) स्थानांतरी आरएनए
    (iv) राइबोसोम
    (v) अमीनो अम्ल
    (vi) एटीपी
13. प्रेरक ओपेरॉन की व्याख्या कीजिए एवं निषेधक ओपेरॉन से इसके अंतर को स्पष्ट कीजिए ।
14. किसी कोशिका के कैंसर कोशिका में रूपांतरित हो जाने पर इसमें कौन-से परिवर्तन आते हैं ?
15. डीएनए प्रतिकृति में अग्रगमन लड़ी तथा पश्चगमन लड़ी से आप क्या समझते हैं ?
16. आरएनए के अणु पर क्षार त्रय को बताने वाले दो शब्दों (नामों) को लिखें ।
17. अगर एक दो-लड़ी वाले डीएनए की एक लड़ी में निम्न अनुक्रम है :

    5' ..... AGC ATTCG.........3'

    इसके विपरीत लड़ी के 5' → 3' की दिशा में क्या अनुक्रम होगा?
18. **AUG GCA GUG CCA,**

    उपर्युक्त लिखित क्रम के अनुसार निम्न प्रश्नों के उत्तर दें। यह भी ध्यान रखें कि कूट पहले परस्परछादी फिर अपरस्परछादी हैं:
    (क) इस अल्पन्यूक्लियोटाइड से कितने कूट बनेंगे ?
    (ख) अगर दूसरा G, C में परिवर्तित हो जाए तो कितने कूट परिवर्तित होंगे?
19. डीएनए के आनुवंशिक पदार्थ होने के सामान्य नियम के अपवाद इंगित कीजिए । इसके समर्थन में प्रमाण भी दीजिए।
20. बहुकोशिकीय जीवों की सभी कोशिकाओं में समान आनुवंशिक सूचनाएं होती हैं पर वे विभिन्न रूप से क्रिया करते हैं। आप इसे किस प्रकार समझाएंगे ?
21. लैक ओपेरॉन में प्रेरक कौन-सा है ? यह जीन का सक्रिय होना किस प्रकार सुनिश्चित करता है ?
22. ट्रिप्टोफेन की अधिक मात्रा किस प्रकार ट्रिप्टोफेन ओपेरॉन को निष्क्रिय करती है ?

अध्याय 15

आनुवंशिक (जीन) अभियांत्रिकी, क्लोनीकरण एवं जीनोमिकी

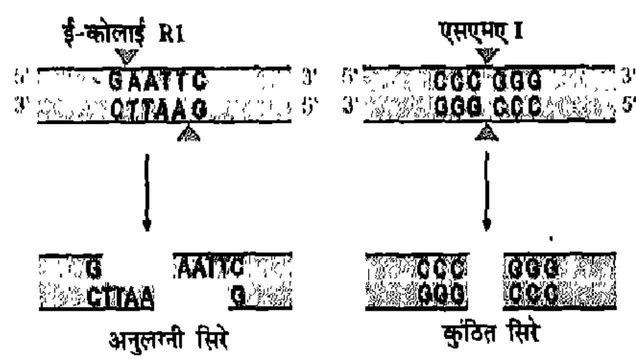
चौदहवें अध्याय में आप डीएनए की पुनरावृत्ति, अनुरेखन एवं अनुलिपिकरण तथा जीन अभिव्यक्ति नियंत्रण के बारे में जान चुके हैं। इस अध्याय में आप विभिन्न जीवों के अनुक्रम में पुनःसंयोजी डीएनए अणु उत्पन्न करने के लिए काम में आने वाले ऐसे उपकरणों तथा तकनीकों का अध्ययन करेंगे जो आण्विक जीव विज्ञान में डीएनए को विभाजित और पुनर्नियोजित करने में प्रयोग होते हैं। डीएनए के आनुवंशिकता परिवर्तित यह खंड पुनर्नियोजित डीएनए (Recombinant DNA) कहलाते हैं। आण्विक रूप से रूपांतरित यह डीएनए खंड के क्लोनीकरण द्वारा किसी भी सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। फलतः अब सूक्ष्मजीवी जीनों से लेकर महत्त्वपूर्ण कृषि फसलों तथा पशुओं में इस डीएनए तकनीक का तोड़-मरोड़ कर प्रयोग हो रहा है। इसके प्रयोग से हम आनुवंशिक रूपांतरित खाद्य पदार्थ, मानव जीन उत्पाद के साथ-साथ औषधीय और चिकित्सीय विज्ञान में उपयोगी उत्पाद प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त जीन-चिकित्सा (विशेषतः आनुवंशिक रोगों के लिए) द्वारा हम अभी तक असाध्य समझे जाने वाले रोगों के उपचार में भी सफल हो सकते हैं। एक अत्यंत विश्वसनीय तकनीक अंगुलिमुद्रण (Fingerprinting) का अपराध विज्ञान (Forensic Science) अन्वेषणों में विशेष महत्त्व है। अंततः हम अब मानव के पूरे जीनोम की गूढ़ संरचना तक स्पष्ट करने की ओर बढ़ रहे हैं जिससे हमारे जीवन की प्रतिकृति (blue print) के संबंध में सभी प्रकार का ज्ञान हमारी मुट्ठी में आ जाएगा।

15.1 आनुवंशिक अभियांत्रिकी

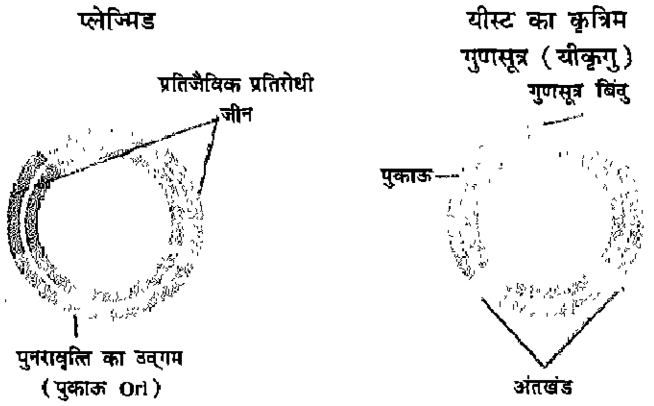
आनुवंशिक अभियांत्रिकी को अब जैवतकनीकी की एक विशेष शाखा की भांति ही जाना जाता है। यह कोशिकाओं की बनावट में जान-बूझकर और कृत्रिम प्रकार से किया हुआ मूलभूत परिवर्तन है। इसके अंतर्गत जीनों के स्थानांतरण तथा प्रतिस्थापन का कार्य डीएनए को पुनःसंयोजित (DNA recombination) करने के लिए होता है। यह इसलिए संभव है कि हम किसी भी डीएनए अणु को एक विशेष स्थान से उसका ऐसा खंड प्राप्त करने के लिए काट सकते हैं जिसमें वांछित तथा लाभदायक जीनें विद्यमान हैं। इसे किसी भी प्रकार की कोशिका से प्राप्त किया जा सकता है उसके बाद उसे किसी भी सरल वाहक, जैसे प्लेज्मिड (*plasmid*) में स्थापित कर देते हैं। अब यह पुनःसंयोजित डीएनए पूर्णरूपेण भिन्न प्रकार के जीवाणु, पादप अथवा जंतु कोशिका में स्थापित किया जा सकता है। यह उन्हें लाभदायक लक्षणधारी जैसे रोग-रोधी (disease resistant) बनाने में सहायक होता है, वे पहले की तुलना में अच्छे उत्पाद जैसे एंजाइम, हार्मोनों, टीकाकरण आदि में भी काम आ सकते हैं। इन तकनीकों में उच्च स्तर की बारीकी तथा निपुणता आवश्यक है।

आनुवंशिक-यांत्रिकी के उपकरण

वांछित जीन-युक्त कोशिका संवर्ध से डीएनए का एक छोटा टुकड़ा आण्विक कैंची अथवा रासायनिक छुरी (molecular scissor or chemical scalpels) की सहायता से काटा जा सकता है जिसे जैव तकनीकीविद् प्रतिबंधित एंजाइम (restriction enzyme) कहते हैं। सामान्यतः प्रतिबंधित एंजाइम सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा अपनी प्रतिरक्षा हेतु उपयोग में लाए जाने वाले विशिष्ट अंतःन्यूक्लिएज (specific endonuclease) होते हैं जो द्विलड़ीधारी (double-stranded) डीएनए का विदलन (cleave) करते हैं। लेकिन ऐसा सीमित स्थलों पर ही संभव है जो डीएनए में पहचान वाले अनुक्रमों की संख्या की विद्यमानता पर निर्भर करते हैं। नीचे ऐसे दो उदाहरणों द्वारा इस क्रिया को समझाया गया है जिनमें या तो अनुलग्नी (sticky) अथवा कुंठित (blunt) शीर्ष बनते हैं (चित्र 15.1)।



चित्र 15.1 प्रतिबंधन एंजाइम



चित्र 15.2 **प्लेज्मिड तथा यीस्ट के कृत्रिम गुणसूत्र**

कोशिका में डीएनए स्थानांतरण के लिए किसी एक वाहक (vector) का प्रयोग किया जाता है। किसी जीवाणु से उसके लघु डीएनए धारी प्लेज्मिड जीन स्थानांतरण करने के लिए एक अच्छा विकल्प है क्योंकि यह एक कोशिका से दूसरी में सरलता से जा सकता है और अपनी जैसी कई प्रतियां बना सकता है वैसे जीवाणुओं एवं खमीर (यीस्ट) से प्राप्त कृत्रिम गुणसूत्र जो क्रम से **बी ए सी** एवं **वाई ए सी** कहलाते हैं। ससीमकेंद्रकी जीन स्थानांतरण में अधिक सक्षम हैं (चित्र 15.2)।

इस हेतु हम ऐसे डीएनए संश्लेषी एंज़ाइम जैसे डीएनए पॉलीमेरेज की आवश्यकता भी वर्तमान डीएनए के पूरक डीएनए अथवा आरएनए का सांचा (आयामी) बनाने हेतु पड़ेगी जो पूरक डीएनए प्रतिकृति अथवा (cDNA) कहलाता है। डीएनए कूट की सार्विकता (universality) के कारण, डीएनए पॉलीमेरेजों के लिए एक जीव के एक जीन का दूसरे जीव में सही-सही अनुलेखन करना संभव है और अंतत: आण्विक टांकों (molecular sutures) जैसे डीएनए लाइगेज एंजाइमों में जिनके द्वारा डीएनए खंडों को जोड़ा अथवा तोड़ा जा सकता है। यह कार्य वे एक बार पुन: फॉस्फोडाइएस्टर बंधों के निर्माण द्वारा करते हैं। ज्ञातव्य है कि किसी भी डीएनए स्रोत द्वारा उसी नियंत्रक एंजाइम द्वारा निर्मित डीएनए के युग्मखंडों को चाहे वे फलमक्खी अथवा हाथी तक के हों, साथ-साथ मिलाया जा सकता है।

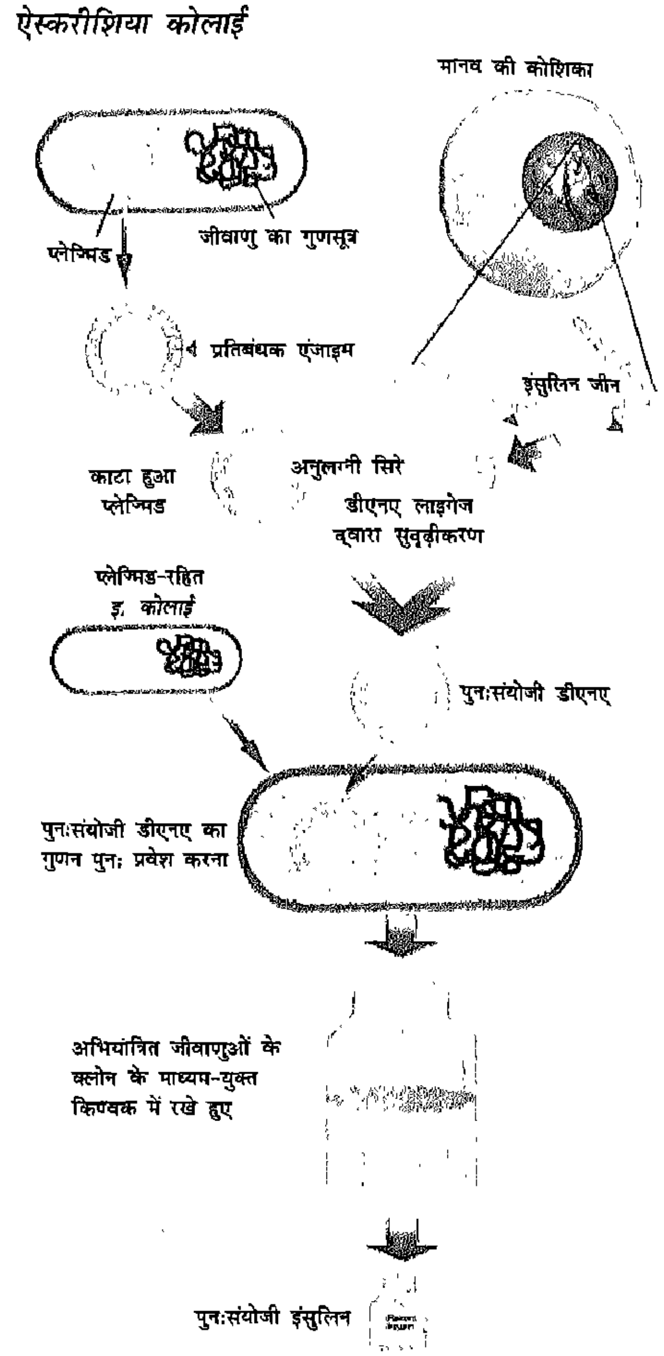
पुन:संयोजी डीएनए तकनीक

जीन स्थानांतरण में अनिवार्य रूप से निम्न अवस्थाएं सम्मिलित रहती हैं:

(i) दाता जीव से उपयोगी डीएनए खंड को अलग करना।

(ii) उपर्युक्त डीएनए को उपयुक्त रोगवाहक में इस प्रकार प्रवेश कराना कि किसी भी रोगवाहक को एक से अधिक पुन:-संयोजी डीएनए प्राप्त न हो।

(iii) जीन क्लोनिंग द्वारा बहुजीन प्रतिकृतियों का उत्पादन।

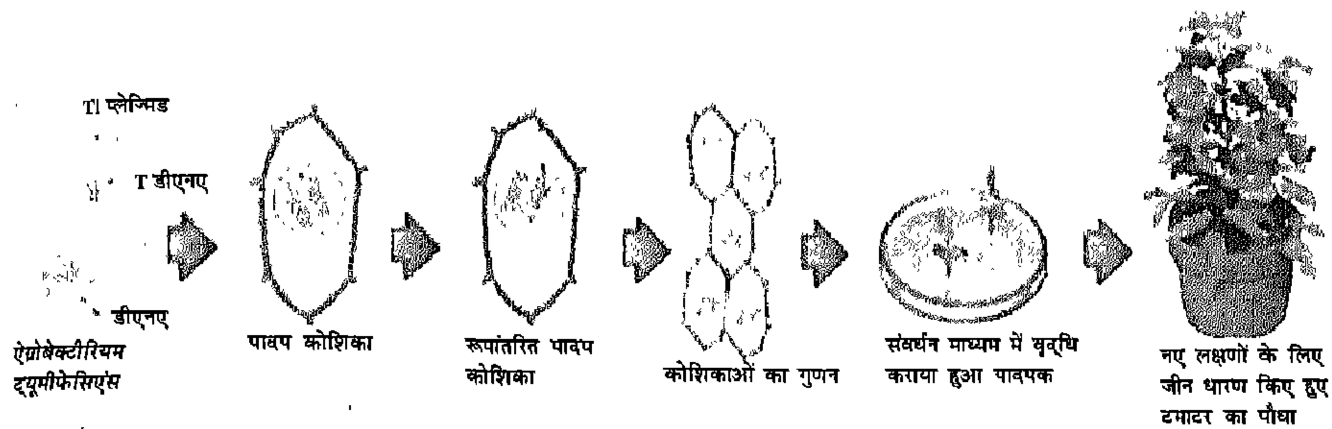


चित्र 15.3 *मानव इंसुलिन के उत्पादन हेतु जीन स्थानांतरण से संबद्ध विभिन्न चरण*

(iv) इस परिवर्तित डीएनए को प्रापक जीव में जोड़ना।

(v) रूपांतरित कोशिकाओं का पुनर्वीक्षण।

अब मात्र यह करना शेष रहता है कि इस प्रकार निर्मित रूपांतरित कोशिका को उपयुक्त पदार्थ निर्माण हेतु प्रेरित किया जाए और इसी तकनीक द्वारा उत्पाद को कम मूल्य एवं व्यापारिक स्तर पर उत्पादन करना संभव हो जाए। चित्र 15.3 में मानव इंसुलिन के उत्पादन हेतु विविध चरणों और उनके क्रमों को दर्शाया गया है।



चित्र 15.4 ऐग्रोबैक्टिरियम Ti प्लेज्मिड द्वारा पादपों में आनुवंशिक रूपांतरण

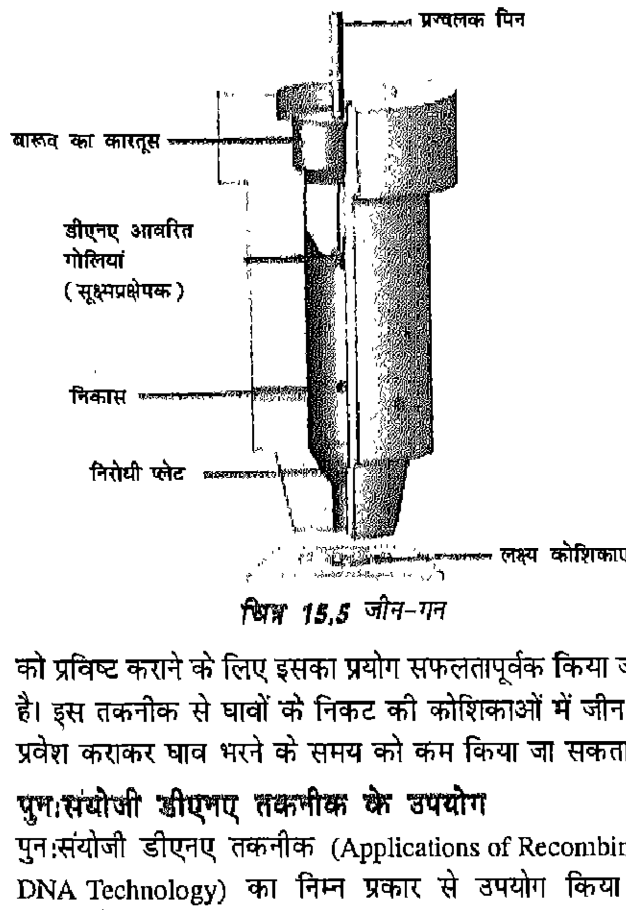
एक अन्य सफल उदाहरण ट्यूमर प्रेरक "Ti" (Tumor inducing) प्लेज्मिड पर आधारित है जो मृदा जीवाणु *ऐग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेसिएंस* (*Agrobacterium tumefaciens*) में पाया जाता है (चित्र 15.4)।

यह जीवाणु सभी चौड़ी-पत्ती धारी कृषि फसलों को तो प्रभावित करता है, लेकिन धान्य फसलों को नहीं। यह कैंसर वृद्धि को प्रेरित करता है, जो क्राउन गोल ट्यूमर कहलाता है। पादप कोशिकाओं में यह बदलाव उस टी आई (Ti) प्लेज्मिड द्वारा उत्पन्न किया जाता है, जो जीवाणुओं द्वारा लाया गया है। ऐसे पादपों में रूपांतरित जीनों का प्रवेश सरल नहीं है, क्योंकि इनकी कोशिकाएं दृढ़ भित्ति-धारी और डीएनए के लिए अभेद्य होती हैं।

अतः जैव-यांत्रिकी के उद्देश्यों के लिए ऐसे जीवाणु विकसित किए गए हैं जिनमें से ट्यूमर-प्रेरक जीनों को निकाल दिया गया है। ऐसे रूपांतरित जीवाणु अब भी पादप कोशिका को टी आई प्लेज्मिड से जुड़े, अपने अथवा बाह्य (विदेशी) डीएनए से संक्रमित कर सकते हैं। टी आई प्लेज्मिड का यह भाग टी-डीएनए (T-DNA) कहलाता है इसे अतिथेय पादप के गुणसूत्र में प्रविष्ट करा दिया जाता है जहां यह एक गुणसूत्र की अपनी स्थिति से यकायक दूसरे पर प्रतिकृतियां उत्पन्न कर स्थान परिवर्तन करता है। लेकिन यह आगे ट्यूमर निर्माण नहीं करता। तब इन पादप कोशिकाओं को संवर्धन, गुणन एवं विभेदन हेतु प्रेरित कर नवोद्भिद के रूप में परिवर्धित किया जाता है, मिट्टी में स्थानांतरित यह नवोद्भिद ऐसे युवा पादप बन जाते हैं जिनमें नए लक्षण नवीन पादपोद्भिद की समस्त कोशिकाओं द्वारा दर्शाए जाते हैं।

जीन-गन वाहक रहित प्रत्यक्ष जीन स्थानांतरण

इस प्रकार के जीन अथवा डीएनए स्थानांतरण हेतु जीन बंदूक (जीन-गन) जैसी नई तकनीक भी उपलब्ध है जिसमें वाहक (रोगवाही) की आवश्यकता नहीं होती (चित्र 15.5)। यद्यपि यह तकनीक पादपों के लिए विकसित की गई थी, फिर भी जीनों



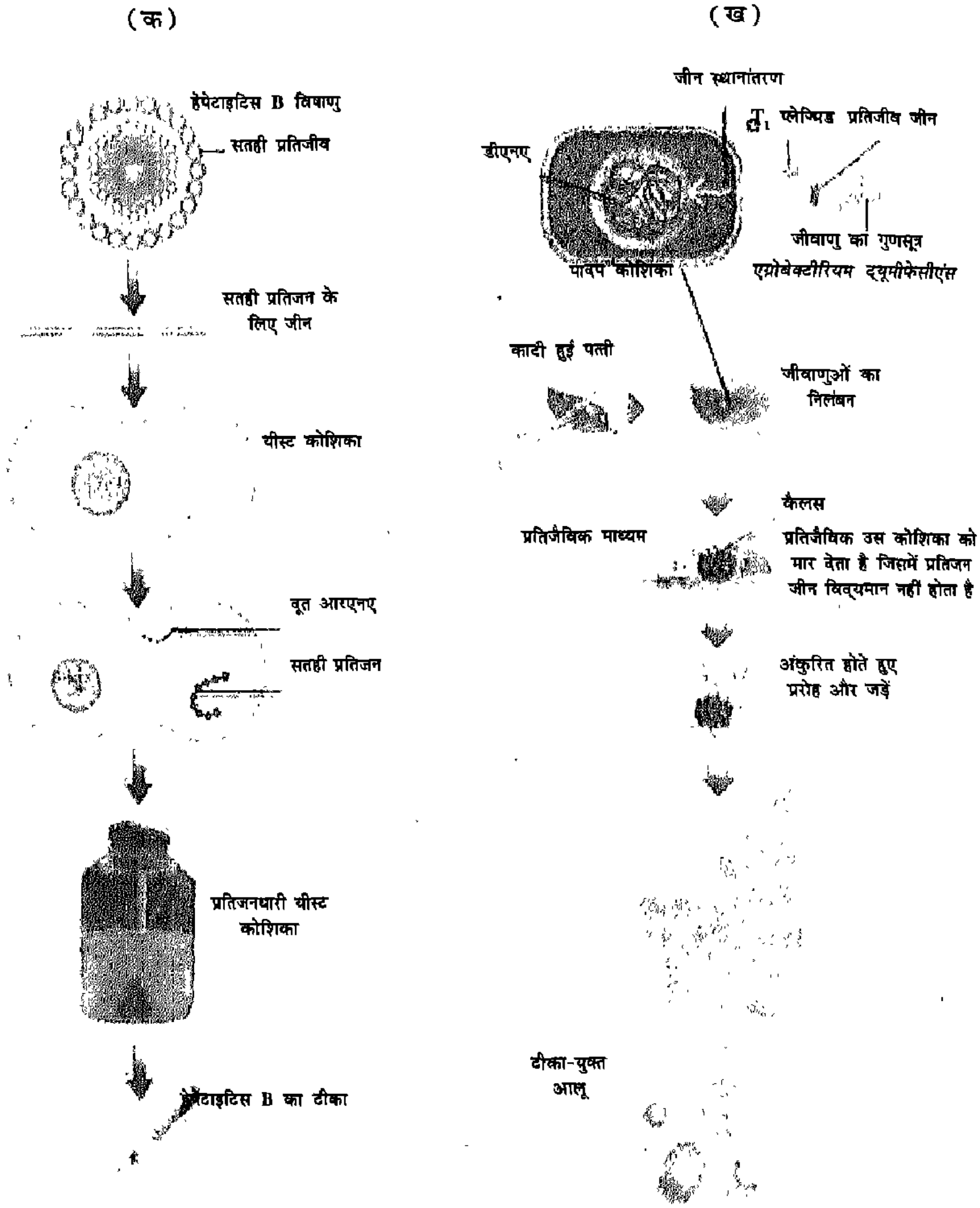
चित्र 15.5 जीन-गन

को प्रविष्ट कराने के लिए इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है। इस तकनीक से घावों के निकट की कोशिकाओं में जीन को प्रवेश कराकर घाव भरने के समय को कम किया जा सकता है।

पुनःसंयोजी डीएनए तकनीक के उपयोग

पुनःसंयोजी डीएनए तकनीक (Applications of Recombinant DNA Technology) का निम्न प्रकार से उपयोग किया जा सकता है:

(i) इसे जैविक प्रक्रियाओं में, आण्विक घटनाओं जैसे कि कोशिका विभेदन और जरायुजता के स्पष्टीकरण हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है। साथ ही इसका प्रयोग यथार्थ जीन मानचित्रों के निर्माण हेतु भी किया जा सकता है। इसी अध्याय में बाद में आप यह भी सीखेंगे कि किस प्रकार पुनःसंयोजी डीएनए के यंत्रों का उपयोग मानव के साथ-साथ अन्य विविध जीवों के जीनोमों के न्यूक्लिओटाइडों का क्रम निर्धारण करने में किया गया है।



चित्र 15.6 पुन:संयोजी डीएनए द्वारा टीकों का उत्पादन (क) सुई द्वारा पहुंचाया जाने वाला हेपेटाइटिस बी का टीका (ख) खाद्य टीका

(ii) इस तकनीक से जीव-रसायन और औषधि-विज्ञान संबंधी उद्योगों में जीव-यांत्रिकी द्वारा उपयोगी रासायनिक यौगिक सस्ते मूल्य पर दक्षता से उत्पादित किए जा सकते हैं (सारिणी 15.1)। चित्र 15.6 में पुन:संयोजी डीएनए तकनीक द्वारा टीका उत्पादन के दो उदाहरण दर्शाए गए हैं। लेकिन ऐसे उपचार व्यापक रूप में उपलब्ध होने से पूर्व कई वर्षों के सतत् परीक्षण की आवश्यकता होगी।

सारिणी 15.1 पुनःसंयोजी डीएनए उत्पादों के उपयोग

चिकित्सा की दृष्टि से उपयोगी पुनःसंयोजी उत्पाद	अनुप्रयोग
मानव इंसुलिन	इंसुलिन आधारित मधुमेह (प्रकार-1) का उपचार
मानव वृद्धि हॉर्मोन	बौने मानवों में अनुपलब्ध हॉर्मोनों का प्रतिस्थापन
केल्सीटोनिन	सूखा रोग (rickets) का उपचार
जरायु गोनेडोट्रीपिन	बांझपन का उपचार
रक्त स्कंदन कारक VIII/IX	हीमोफोलिया A/B द्वारा रक्त स्कंदन कारक की प्रतिस्थापना
ऊतकी प्लेज्मिनोजन क्रियाशील-कारक	हृदयाघात के पश्चात् रक्त स्कंदन का विलीनीकरण
रक्ताणु उत्पत्तिकारक (एरिथ्रोपिओटिन)	वृक्कअपोहन (डाइलेसिस) अथवा एड्स (AIDS) प्रभावित रोगियों के उपचार के कारण हुई रक्तक्षीणता के समय रक्ताणु का निर्माण उत्तेजित करना
पट्टिकाणु व्युत्पन्न वृद्धि-कारक	घाव भरने में उद्दीपन
इंटरफेरोन	रोगजनक विषाणु संक्रमण तथा कैंसर का उपचार
इंटरल्यूकिन	प्रतिरक्षा तंत्र क्रियाशीलता में वृद्धि
टीके	हेपेटाइटस B, हरपीस, इनफ्लुएंजा, काली खांसी, मस्तिष्क ज्वर आदि जैसे संक्रामक रोगों की रोकथाम ।

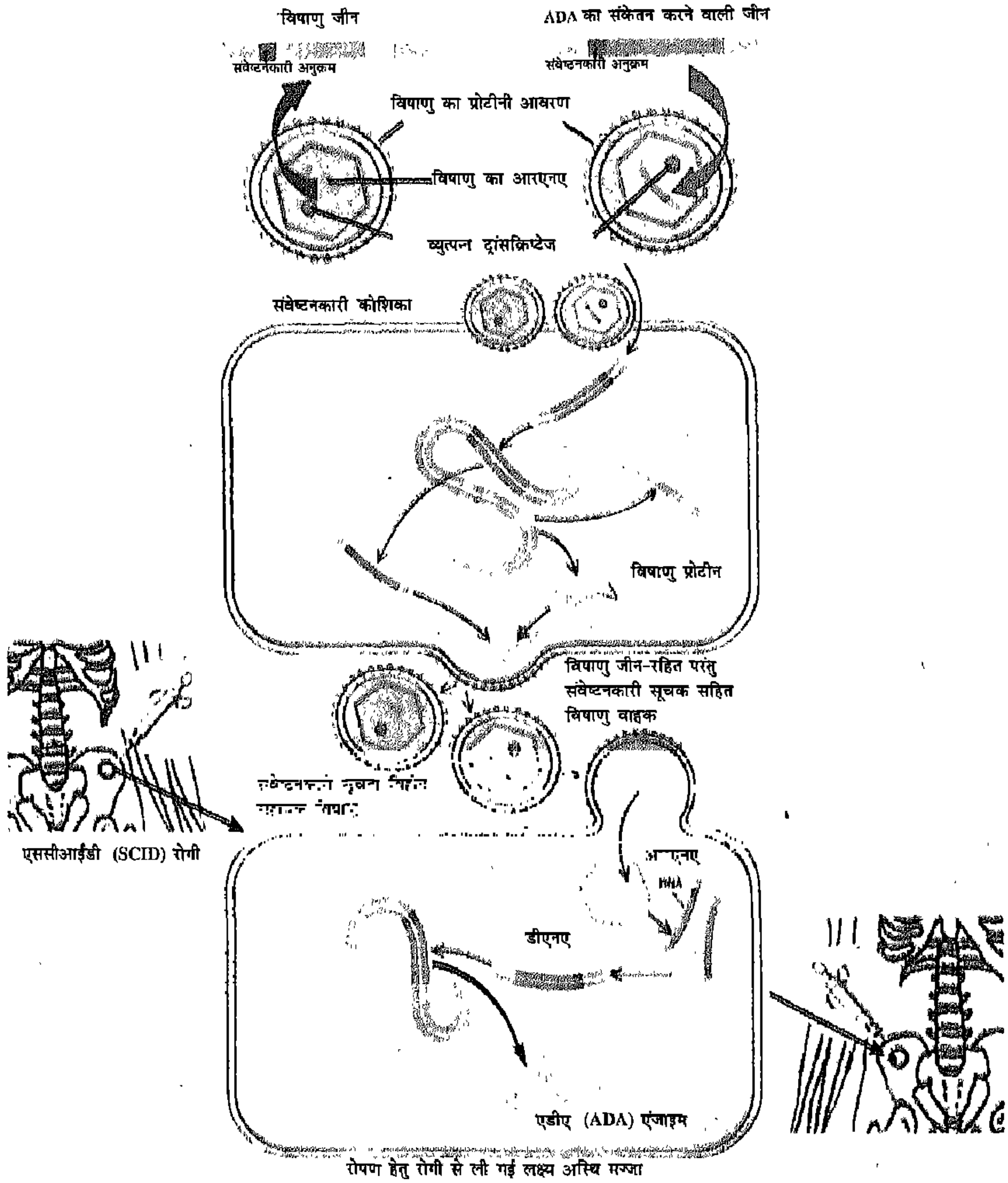
रोगों का चिकित्सीय निदान

रोगों के निदान के लिए तो पुनःसंयोजी डीएनए तकनीक ने चिकित्सकों की सहायता के लिए यंत्रों की एक व्यापक श्रेणी ही प्रदान कर दी है। इनमें से अधिकांश प्रोब (probe) निर्माण हेतु काम में आते हैं जो विकिरणधारी अथवा प्रतिदीप्ति चिन्हक (marker) से जुड़ा एक लड़ीधारी डीएनए का एक सूक्ष्मखंड होता है। इस प्रकार की प्रोब का उपयोग अब नियमित रूप से छूत के रोगों की पहचान के लिए किया जाता है जैसे खाद्य विष-जनक *साल्मोनेला* (*Salmonella*), पीव निर्माणकारी *स्टेफाइलोकोक्कस* (*Staphylococus*), हिपेटाइटिस विषाणु, एचआईवी, तथा अन्य इस प्रकार की आण्विक अव्यवस्थाधारी शिशुओं के जन्म लेने की संभावना का अनुमान। संभावित जनकों में डीएनए आधारित जांच द्वारा रोग ग्रसित संतान की भविष्यवाणी करना भी संभव है ।

जीन चिकित्सा

आनुवंशिक अभियांत्रिकी में निहित संभावनाएं अब जीन चिकित्सा (Gene therapy) का भविष्य बन चुकी हैं। मानव में जीन चिकित्सा से अभिप्राय किसी दोषपूर्ण जीन का एक सामान्य, स्वस्थ एवं कार्यरत जीन द्वारा प्रतिस्थापन है। फलतः इस संदर्भ में अब गहन छान-बीन के विषय विरल आनुवंशिक एकल उत्परिवर्तन जन्य रोग, जैसे हंसिया-सम कोशिका अरक्तता (sickle cell anaemia) से लेकर गंभीर संयुक्त प्रतिरक्षा अपूर्णता (Severe Combined Immuno Deficiency) जैसे घातक रोग सम्मिलित हैं। ज्ञातव्य है कि यह रोग 25 प्रतिशत स्थितियों में एडिनोसीन डिएमीनेज एंजाइम (Adenosine Deaminase Enzyme-ADA) के जीन में दोष के कारण उत्पन्न होता है । इन रोगियों में क्रियाशील टी-लिंफोसाइट (T-lymphocyte) विद्यमान नहीं होता जिसके कारण वे आक्रमणकारी रोगजनकों के विरुद्ध प्रतिरक्षी प्रत्युत्तर नहीं दर्शा पाते । अतः एक आदर्श विधि के रूप में किसी एससीआईडी (SCID) के रोगी को क्रियाशील डिअमीनेज एंजाइम उपलब्ध कराया जा सकता है जो आविष जैविक उत्पादों को विखंडित कर सकता है। लेकिन इस प्रकार की जीन-चिकित्सा का कार्यान्वयन कैसे किया जाए? इस हेतु प्रथमतः एससीआईडी ग्रसित रोगी की अस्थि मज्जा से लिंफोसाइट, जो एक प्रकार की श्वेत रक्त कणिकाएं हैं, निकाल ली जाती हैं। तत्पश्चात् उक्त एंजाइम का संकेतन करने वाली जीन की एक स्वस्थ प्रतिलिपि कोशिकाओं में प्रविष्ट करा दी जाती है (चित्र 15.7)। ऐसा संभव हो सकने के लिए विशेष विषाणुओं, रेट्रोवाइरसों (retroviruses) को वाहक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह आनुवंशिकता रूपांतरित विषाणु को एससीआईडी से पीड़ित रोगी की अस्थि मज्जा में से निकाली गई स्तंभ कोशिकाओं (stem cells) को संक्रमित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस क्रिया से कोशिकाओं में जीन की विद्यमान दोषपूर्ण प्रति के साथ-साथ एक अच्छी प्रति भी समाहित

हो जाती है। तब इस प्रकार उपचारित कोशिकाओं को एक बार पुन: रोगी की अस्थि मज्जा में प्रविष्ट करा दिया जाता है। इसके उपरांत इन स्तंभ कोशिकाओं से बनने वाले लिंफोसाइटों में पूर्णत: कार्यशील एडिनोसीन डिएमीनेज एंजाइम जीन विद्यमान होता है जो रोगी के प्रतिरक्षा तंत्र (immune system) में सामान्य भूमिका निर्वहन कर सकते हैं। इस आण्विक शल्य चिकित्सा विधि (molecular surgical approach) से किन्हीं विशिष्ट ऊतकों में प्रविष्ट करायी हुई लाभदायक जीन के आजीवन क्रियाशील बने रहने के लिए कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है परंतु फिर भी यह विशिष्ट चिकित्सा के लिए आशा तो प्रदान करती ही है (चित्र 15.7)।



चित्र 15.7 एससीआईडी के उपचार हेतु जीन चिकित्सा

15.2 क्लोनिंग (कृंतकी)

क्लोन से अभिप्राय केवल एक जनक (माता अथवा पिता) से प्राप्त प्रतिलिपि से है। 'क्लोन' शब्द का अभिप्राय मात्र जीवंत प्राणियों के संदर्भ में किया जाता है क्योंकि मृदु-पेय की कांच की बोतलें यद्यपि पूर्णतः समान होती हैं फिर भी क्लोन नहीं हैं। अपनी समान आनुवंशिक संरचना के कारण यह बिल्कुल भेद नहीं दर्शाते। प्रकृति में वे जीव जैसे सूक्ष्मजीव एवं पादप जिनमें अलैंगिक जनन होता है, क्लोन उत्पन्न करते हैं। फलतः विश्व में क्लोन बहुतायत से विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ एक युग्मज का समरूप जुड़वा संतानें क्लोन ही तो होती हैं। वे अपनी मां के गर्भाशय में एक कोशिका के रूप में विकसित होना शुरु करते हैं। निषेचित युग्मज दो कोशिका में विभाजित होता है और प्रत्येक कोशिका परिवर्धित होकर समान आनुवंशिक लक्षणों के साथ जुड़वां संतान बनाते हैं। विश्व की सर्वाधिक प्रसिद्ध भेड़ 'डॉली' एक क्लोन ही है (चित्र 15.8)।

क्लोनिंग अनेक समरूपी जीवों को उत्पन्न करने की विधि है। डॉली अपनी मां की मात्र एक कोशिका से उत्पन्न की गई थी। उसका कोई पिता नहीं हैं क्योंकि शुक्राणु की आवश्यकता ही नहीं हुई। उसके आनुवंशिक लक्षण ठीक वही हैं जो उसकी मां के हैं क्योंकि वह एक जनकीय संतान है।



चित्र 15.8 क्लोनिंग द्वारा परिवर्धित भेड़– डॉली

सूक्ष्मजीवी क्लोनिंग

आनुवंशिकीय परिवर्तित अथवा रूपांतरित प्रत्येक सूक्ष्मकोशिका जितनी बार विभक्त होगी, उतनी ही प्रतिलिपि बनाती जाएगी और थोड़े दिनों में ही वह अपने में समाहित होती हुई जीन की मूल प्रतिकृति लिए हुए लाखों क्लोन कोशिकाएं बन जाएंगी। यह स्थिति भी जीन क्लोनिंग कहलाती है। अब कई उन्नत आनुवंशिकी परिवर्तित सूक्ष्मजीवियों को कई प्रकार के उपयोगों के लिए क्लोनिंग कर अनगिनत संख्या में बनाया जा सकता है (सारिणी 15.2)।.

सारिणी 15.2 : आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा रूपांतरित सूक्ष्मजीवियों के उपयोग

सूक्ष्मजीव	उपयोग
ई. कोलाई (*Escherichia coli*) (आंत्र जीवाणु)	मानव इंसुलिन, मानव वृद्धिकारक इंटरफेरॉन और इंटरल्यूकिन आदि का उत्पादन।
बेसिलस थ्यूरिंजिएंसिस (*Bacillus thuringiensis*) मृदा जीवाणु	एंडोटॉक्सिन नामक शक्तिशाली विष (Bt-toxin) तथा पादप सुरक्षा हेतु निरापद जैव-अपघटनीय कीटनाशकों का उत्पादन।
जीवाणु राइज़ोबियम मेलीलोटाई (*Rhizobium melliloti*)	नाइट्रोजन स्थिरीकरण हेतु धान्य फसलों में "निफ" जीन का समावेश।
जीवाणु स्यूडोमोनास फ्लोरिसेंस (*Pseudomonas fluorescence*)	पादप में तुषार (पाला) द्वारा उत्पन्न क्षति की रोकथाम (उदाहरण स्ट्रॉबेरी)।
जीवाणु स्यूडोमोनास प्यूटिडा (*Pseudomonas putida*)	अपरिष्कृत तेल (crude oil) के हाइड्रोकार्बनों का पाचन करते हुए तेल की छलकन का अपमार्जन और स्वच्छता।
भारी धातुओं को संचित करने में सक्षम जीवाण्विक विभेद	जैव-चिकित्सा करण (Bioremediation–) पर्यावरण में प्रदूषकों की सफाई।
ट्राइकोडर्मा (Trichoderma) कवक	पादपों में कवक रोगों के जैव-नियंत्रण हेतु काइटिनेज एंजाइमों का उत्पादन।

कोशिका क्लोनिंग

कोशिका क्लोनिंग पादपों में पूर्णशक्तता (totipoteney)या पशुओं में बहुशक्तता (pluripoteney) के आधार पर संभव होती है। **पूर्णशक्तता** किसी भी जीवंत पादप कोशिका की उसके पूर्ण पादप में परिवर्तित होने की क्षमता है जबकि उसके विपरीत **बहुशक्तता** पशु शरीर में किसी भी प्रकार की कोशिका के रूप में विकसित होने की संभावित क्षमता का द्योतक है। उदाहरण के लिए तंत्रिका वृक्क तथा हृदय कोशिकाएं वास्तव में सभी पादप पूर्णशक्तताधारी होते हैं जब कि पशुओं में मात्र निषेचित अंड तथा भ्रूणीय, पोषकोरक की स्तंभ कोशिकाएं ही पूर्णशक्त होती हैं। यद्यपि प्राणियों की भांति पादपों की कायिक और प्रजनन कोशिकाओं के मध्य स्पष्ट विभेदन नहीं होता।

पादप क्लोनिंग

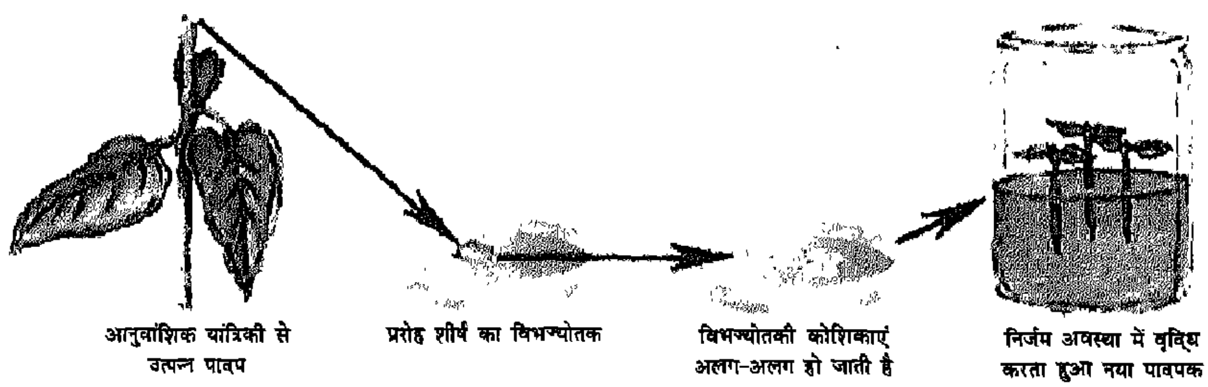
अति सुंदर पुष्प उत्पादन करने वाले बहुत से ऑर्किड क्लोन पादप होते हैं। वैज्ञानिकों ने सस्य विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण फसलों को आनुवंशिक-यांत्रिकी द्वारा पर्याप्त उन्नत बनाया है। त्वरित विभाजित होने वाली विभज्योतिकी कोशिकाओं द्वारा तेजी से उत्पादन संभव है। यह पादपों के परिवर्धन क्षेत्रों जैसे जड़ों एवं प्ररोहों के शीर्ष हैं जिन्हें वृद्धि क्षेत्र (Growing region) कहते हैं। आप चित्र 15.9 में दर्शाए गए प्रयोग से स्वयं क्लोनिंग कर सकते हैं।

कृषि में रोग, सूखा, कीट रोधक एवं शाकनासी सहनशील फसल जीन हेर-फेर विधि द्वारा सफलतापूर्वक उत्पादित किए जा चुके हैं। **आनुवंशिकतः रूपांतरित भोजन** (GMF) जैसे विटामिन ए-बहुल चावल और लाइसीन-बहुल दालों के बीज अब मानव भोजन के मुख्य संघटक बनते जा रहे हैं।

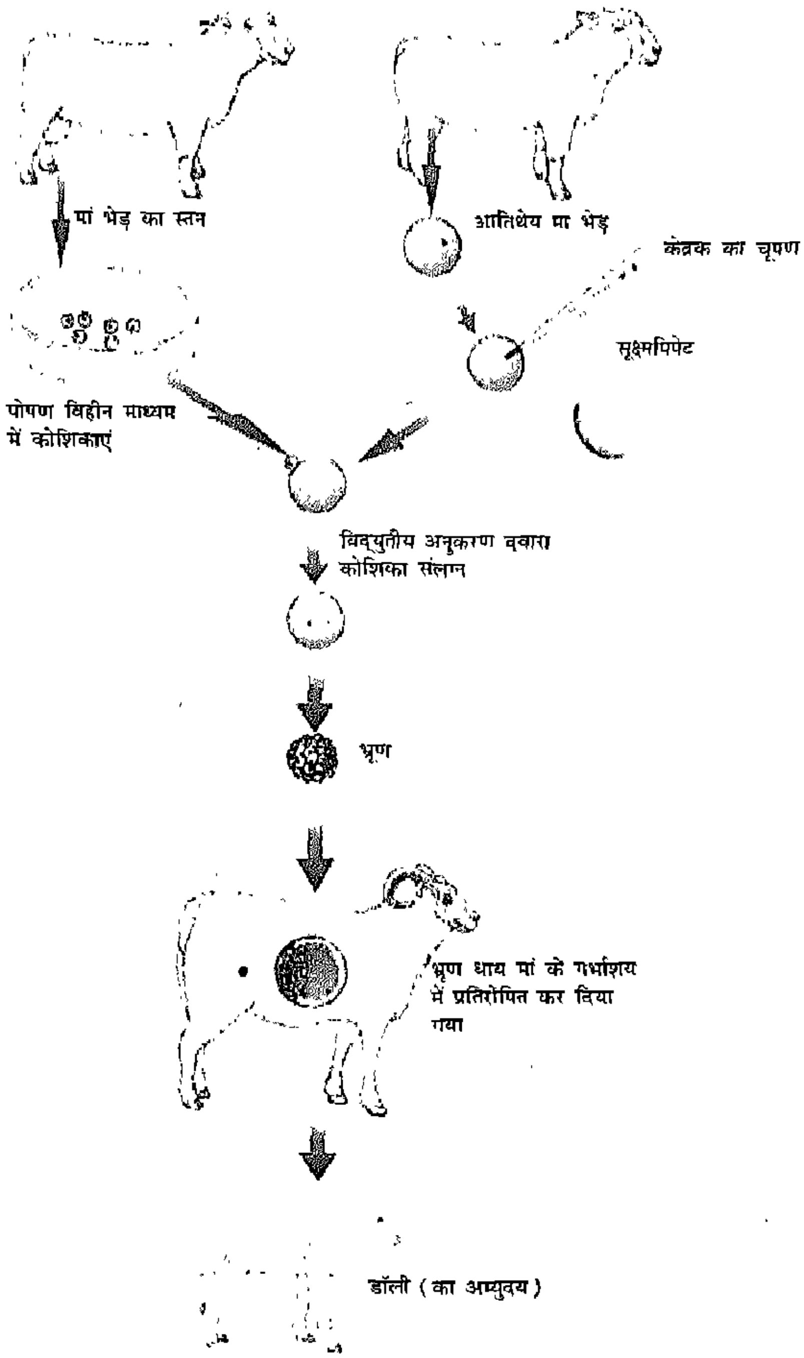
पशु क्लोनिंग

पादप कृंतकी की अपेक्षा पशु क्लोनिंग कहीं अधिक कठिन है क्योंकि पशु कोशिकाएं परिवर्धन की कंदुक (gastrula) अवस्था में पहुंचने के पश्चात् पूर्णशक्तता विहीन हो जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि ख्याति प्राप्त भेड़ 'डॉली' की क्लोनिंग किस प्रकार की गई। इयान विलमुट तथा उनके साथियों ने रोजलिन अनुसंधान संस्थान, स्कॉटलैंड में एक मादा भेड़ के स्तन की कोशिकाएं लीं (चित्र 15.10)। ज्ञातव्य है कि स्तन कोशिका-चर्म, तंत्रिका अथवा मांसपेशी कोशिकाओं से भिन्न होती हैं। उन्होंने इन कोशिकाओं को पोषण-विहीन संवर्ध माध्यम में रखने की व्यवस्था की ताकि इनमें कोशिकाओं का विभाजन रुक जाए एवं इनके क्रियाशील जीन काम करना बंद कर दें।

एक स्तन कोशिका को इसके केंद्रक के साथ चुना गया। साथ-साथ दूसरे आतिथेय मादा भेड़ से ली गई अंडकोशिका को केंद्रकविहीन किया गया। यह केंद्रकविहीन कोशिका भ्रूण के रूप में विकसित होने के लिए सक्षम है। इसके पश्चात् स्तन कोशिका के केंद्रक को केंद्रकविहीन अंडकोशिका के साथ विद्युतीय उद्दीपन द्वारा संयोजित कर दिया गया अब इस अंडकोशिका में माता का केंद्रक उपस्थित है। अंततः इसे आतिथेय मां के गर्भाशय में रोपित कर दिया गया जहां वह एक मेमने के रूप में विकसित हुई। और इस प्रकार भेड़ मां की आनुवंशिक प्रतिकृति 'डॉली' का जन्म हुआ और चूंकि इसका प्रथम केंद्रक मां भेड़ कोशिका से लिया गया था अतः आनुवंशिक रूप से यह माता भेड़ की प्रतिकृति है। जब एक सामान्य अथवा परिवर्तित अंड की दाता मां से भिन्न मां के गर्भाशय में रोपित किया जाता है तब इस प्रकार की मां स्थानापन्न अथवा धाय मां (surrogate mother) कहलाती है।

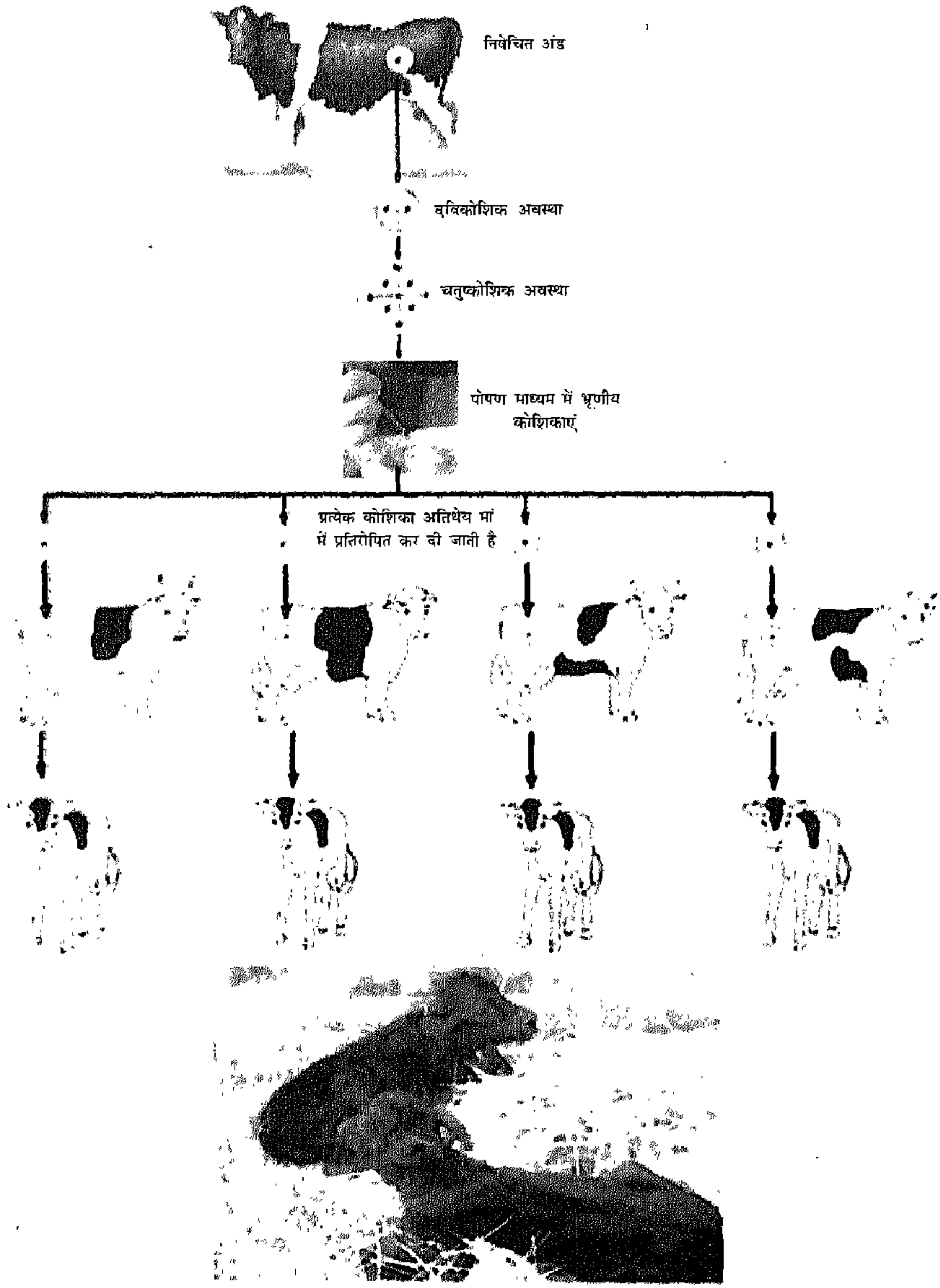


चित्र 15.9 आनुवंशिक अभियांत्रिकी से परिवर्धित पादप का क्लोनीकरण



चित्र 15.10 जंतु क्लोनीकरण के चरण

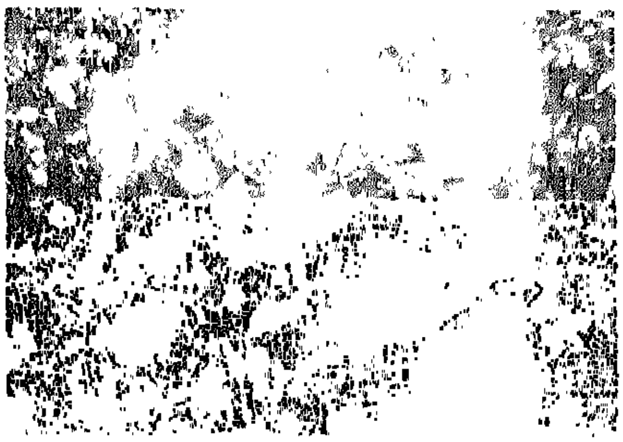
जापान के वैज्ञानिकों ने दुधारु पशुओं के क्लोन बनाने में सफलता भी प्राप्त की है। वे अब तक 8 समरूप बछड़े संवर्धित करने में सफल हो चुके हैं। यह कैसे संभव हुआ ? ऐसी कल्पना तो सरल सम्मुख प्रतीत होती है किंतु इसके मार्ग में कई कठिन चरण हैं। जब गाय (मातृ) का सांड के साथ संसर्ग होता है तो वह एक निषेचित अंडकोशिका अपने गर्भाशय में धारण करती है (चित्र 15.11)। यह कोशिका दो, चार एवं आठ कोशिकाओं में विभाजित होती है। तब तक यह भ्रूण बन चुकी होती है। भ्रूण को सावधानी से बाहर निकाल लिया जाता है किंतु यह अत्यंत कुशलतापूर्ण कार्य है। अब प्रत्येक पृथक की गई कोशिका को पोषक माध्यम में रखा जाता है। यह भी काफी कुशलता का कार्य है। और तब इसे अतिथेय मां गाय के गर्भाशय में रोपित किया जाता है। यह आवश्यक है कि अतिथेय मां इसे स्वीकार करे, इसका संवर्धन करे। इसके लिए भी अत्यंत कौशल की आवश्यकता है। यदि सभी चरण अपेक्षानुसार और भली-भांति चलते रहें तो प्रत्येक कोशिका एक पुष्ट सामान्य बछड़े को जन्म देती है।



चित्र 15.11 क्लोनीकृत बछड़े

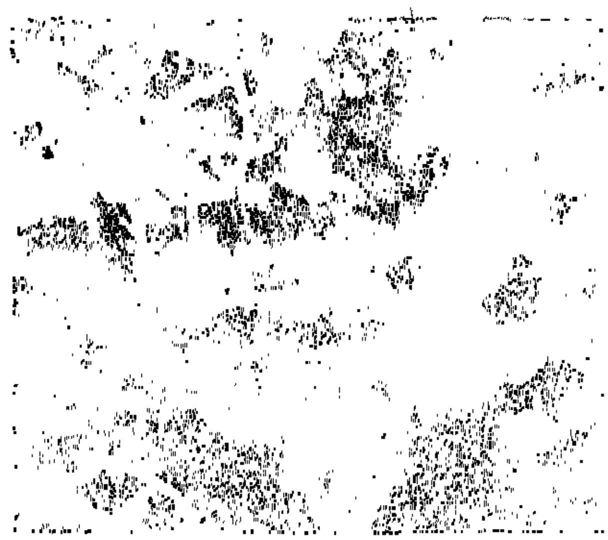
15.3 पराजीनी

पराजीनी (Transgenics) अथवा जीनस्थानांतरी, **आनुवंशिकता रूपांतरित जीव** (Genetically Modified Organisms, GMOs) हैं। इनका निर्माण इनकी आनुवंशिक संरचना में एक या कई विदेशी जीनों, अंतर्जात जीन की अतिरिक्त प्रतिकृतियों अथवा किसी क्लोनीकृत एवं रूपांतरित जीन के समावेश द्वारा किया जाता है। पराजीनी सूक्ष्मजीवियों को क्लोनीकरण द्वारा व्यवहार में लाने योग्य बना लिया जाता है। जिसके विषय में आप खंड 15.2 में ही ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। हाल ही में उपयोगी लक्षणधारी पराजीनी फसलों का उत्पादन भी संभव हुआ है। उदाहरणार्थ *बैसिलस थिरुनजिएंसिस* (*Bacillius thuringiensis*) नामक जीवाणु से कपास के पादप में कीटनाशी प्रोटीन का संकेतन करने वाली जीन स्थानांतरित की गई है। पराजीनी कपास का यह पादप जो बीटी (Bt) कहलाता है, बॉलकृमि (ballworm) के प्रतिरोधी हैं (चित्र 15.12)।

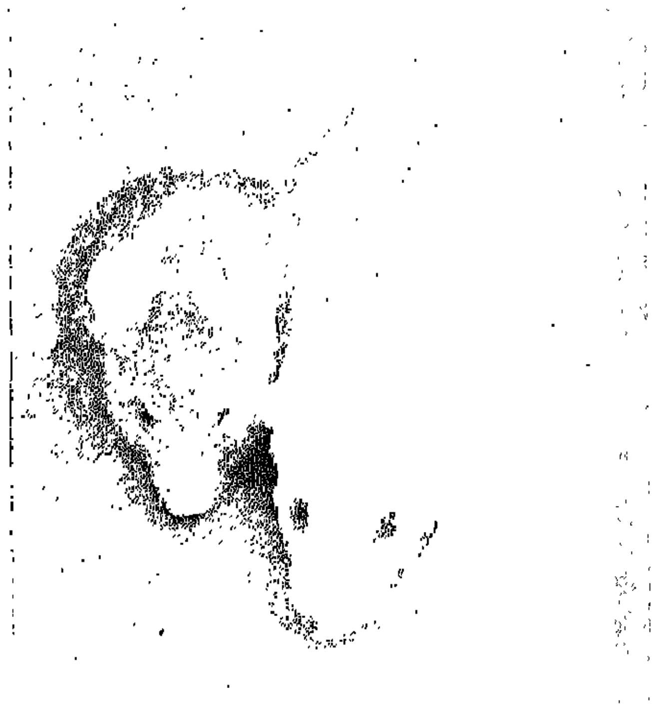


चित्र 15.12 आनुवंशिकी द्वारा रूपांतरित Bt कपास

पराजीनी टमाटर (GMO) जो फ्लेवर सावर (Flavr Savr) (चित्र 15.13) कहलाते हैं, सामान्य टमाटर की अपेक्षा दीर्घकाल तक और अधिक सुस्वाद बने रहते हैं, क्योंकि इन्हें पकने के लिए पादप पर ही नहीं लगा रहने दिया जाता है। यह कोशिका भित्ति उपघटक एंजाइम पॉलीगेलेक्टुरोनेज की मात्रा कम कर संभव किया जाता है, जो फल पकने के लिए उत्तरदायी है।



चित्र 15.13 फ्लेवर-सावर : आनुवंशिकी द्वारा रूपांतरित टमाटर



चित्र 15.14 जीन-स्थानांतरण चूहा

चित्र 15.14 में दर्शाए गए दो चूहों के बीच क्या अंतर है? एक सामान्य है और दूसरा दुगुने से भी अधिक बड़ा है क्योंकि इसमें मानव वृद्धिकारक जीन को प्रवेशित कर दिया गया है। इसके बड़े होने का कारण है इसमें प्रविष्ट मानव वृद्धि कारक जीन की अभिव्यक्ति।

ऐसे पराजीनी दुधारु पशु जिनमें वृद्धि के लिए अतिरिक्त जीन होती है, शीघ्र विक्रेय हैं। साथ ही इनका मानव जीन के साथ भी आनुवंशिक अभियंत्रीकरण किया जा रहा है, जिससे मनुष्य के उपयोग के लिए औषधीय उत्पाद बनाए जा सकें। ऐसे कुछ सामान्य उदाहरण निम्न हैं, पराजीनी दुधारू पशुओं (गाय, भेड़, बकरी) के अधिक दूध उत्पादन के साथ-साथ ही चिकित्सीय प्रोटीन प्राप्ति के उद्देश्य से बनाया गया है। पशुओं के दूध में यह लाभदायक प्रोटीन स्रावित होते हैं और अंततः इन्हें एकत्रित किया जा सकता है। पराजीनी शूकरों में भी मानव जीनें प्रविष्ट कराई गई हैं। जिससे उनके अंग मानवीय प्रतिजन धारण कर सकें। शूकर के हृदय, गुर्दा, अग्नाशय जैसे अंग मानव शरीर में प्रतिरोपित किए जा सकते हैं।

सारिणी 15.3 जीनस्थानांतरी और उनके संभाव्य उपयोग

पराजीनी	उपयोग
Bt कपास	कीटरोधी और शाकनाशी-सहनशील और उच्च उत्पाद्
टमाटर फ्लेवर सावर	ताजा बने रहने की अवधि (पकने में विलंब) और पोषक गुणों में वृद्धि
सुनहरी धान्य	विटामिन 'ए' बहुल दाने
मवेशी (गाय, भेड़, बकरी)	दूध में चिकित्सीय मानव प्रोटीनों का समावेशन
शूकर	अस्वीकृतता के भय के बिना अंग प्रत्यारोपण

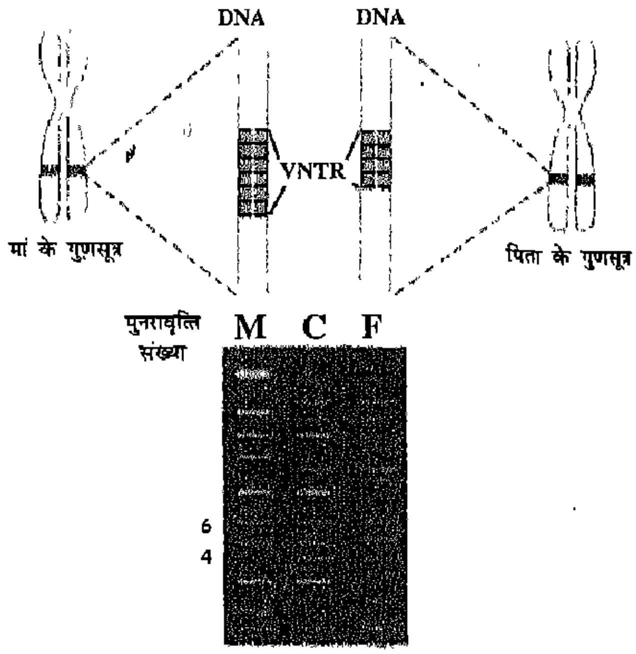
आश्चर्य है कि मानव शरीर इन्हें अस्वीकार नहीं करता (सारणी 15.3)।

15.4 डीएनए अंगुलिमुद्रण

प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अद्वितीय अथवा दूसरों से भिन्न होता है। फलतः अंगुलियों की छाप की भांति प्रत्येक व्यक्ति का डीएनए अंगुलिमुद्रण भी अद्वितीय होता है। परंपरागत अंगुलि छाप के विपरीत जो अंगुलियों के अग्रभाग मात्र पर ही स्थित होता है और जिसे शल्यक्रिया द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। मानव की प्रत्येक कोशिका, ऊतक व अंगों का डीएनए अंगुलिमुद्रण एक समान ही होता है। इसे अभी तक किसी ज्ञात चिकित्सा के द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता। पृथ्वी पर विद्यमान मानव विशेष की दूसरे मानव से भेद दर्शाने के लिए यद्यपि किसी स्त्री-पुरुष के पूर्ण जीनों की डीएनए के अनुक्रम की व्याख्या करना आदर्श विधि होगी। (खंड 15.5 देखें) लेकिन यह व्यावहारिक नहीं है। इसलिए हम ऐसी जीनों की परख करते हैं जो अति बहुरूपी होती हैं। अर्थात् जो मानव जनसंख्या में बहुविकल्पी स्थिति दर्शाती है और इसीलिए विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती हैं।

डीएनए अंगुलि मुद्रण का सिद्धांत

डीएनए के टंकण, चित्रण, अथवा अंगुलिमुद्रण के लिए ऐसे छोटे न्यूक्लिओटाइडों पुनरावर्तन का ज्ञान आवश्यक है जिनकी संरचना यद्यपि एक मानव से दूसरे में भिन्न होती है फिर भी वे वंशागत होते हैं। यह भिन्न अनुबद्ध संख्या पुनरावृत्ति (VNTRs) है, ज्ञातव्य है कि दो मनुष्यों के भिन्न अनुबद्ध संख्या पुनरावृत्ति की लंबाई तथा अनुक्रम किसी निश्चित स्थल पर तो एक समान हो सकते हैं किंतु दूसरे स्थल पर वे अलग-अलग होंगे। चित्र 15.15 में दिए गए उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि संतति से प्राप्त हुए गुणसूत्रों में एक जो 6 अनुबद्ध पुनरावृत्ति के साथ है, मां से तथा 4 अनुबद्ध पुनरावृत्ति वाला गुणसूत्र पिता से प्राप्त हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संतति की भिन्न संख्या अनुबद्ध पुनरावृत्ति में से आधी तो मां से मिलती है तथा शेष आधी पिता से।



चित्र 15.15 विभिन्न संख्या अनुबद्ध प्रतिकृति (VNTR)
M = मां, F = पिता, C = संतान

डीएनए मुद्रण की तकनीक

डीएनए मुद्रण के लिए मात्र थोड़े से ऊतक जैसे रक्त, वीर्य, चर्मकोशिका अथवा मूलरोम के पुटक (follicle) की आवश्यकता होती है। वस्तुतः डीएनए की लगभग 10000 कोशिकाएं अथवा एक माइक्रोग्राम इस कार्य के लिए पर्याप्त होता है। इस पद्धति में मुख्यतः निम्न चरण सम्मिलित हैं:

(क) कोशिकाओं में से डीएनए का निष्कर्षण, उच्च गति प्रशीतक अपकेंद्रण यंत्र (High speed refrigerated centrifuge) द्वारा ही किया जाना चाहिए।

(ख) यदि डीएनए की मात्रा सीमित है तो उसे पॉलीमेरेज शृंखला प्रतिक्रिया (Polymerase chain reaction) द्वारा बहुत-सी प्रतियां बनाकर प्रवर्धित किया जा सकता है।

(ग) डीएनए को प्रतिबंधित खंड की लंबाई के विश्लेषण हेतु **स्थल अभिज्ञानधारी प्रतिबंधक एंजाइमों** से खंडित किया जाता है।

(घ) इस प्रकार खंडित डीएनए का विश्लेषण करने के लिए इसे ऐसी वैद्युत कण संचलन विधि में प्रविष्ट और संचालित किया जाता है जिसमें ऐगारेज नामक जैल (gel) होता है। इस प्रकार विभेदित किए खंडों को ऐसे वर्णक से रंग कर देखा जा सकता है जो पराबैंगनी विकिरण द्वारा प्रतिदीप्त (fluorescence) दर्शाते हैं।

(ङ) तब दो लड़ी-धारी डीएनए का एक लड़ी-धारी डीएनए में विभक्त करने के लिए क्षारीय रसायनों का प्रयोग किया जाता है।

(च) यह अलग किए गए डीएनए अनुक्रम नाइट्रोसेलुलोस अथवा जैल पर स्थित नाइलोन चादर पर स्थानांतरित कर दिए जाते हैं। यह विधि इसके आविष्कारक ई.एम. सदर्न के नाम पर सदर्न ब्लौटिंग तकनीक कही जाती है।

(छ) तत्पश्चात् उक्त नाइलोन चादर को एक ऐसे कुंड में डुबाया जाता है जिसमें संश्लेषित रेडियोधर्मी डीएनए के खंड, प्रोब (probe) के रूप में पहले से उपस्थित रहते हैं। ये प्रोब एक विशेष न्यूक्लिओटाइड की पहचान करते हैं जो भिन्न संख्या अनुबद्ध पुनरावृत्ति (VNTR) का पूरक है।

अंत में एक्स-रे फिल्म (*X-ray film*) को विकिरणयुक्त खोजी शलाकाओं-धारी नाइलोन चादर की ओर अनावृत किया जाता है। फलतः खोजी स्थलों पर पंसारी की दुकान में वस्तुओं को छांटने और पहचानने में काम आने वाले छड़ी संकेतकों की भांति, गहरी पंक्तियां स्पष्ट होने लगती हैं।

उपयोग

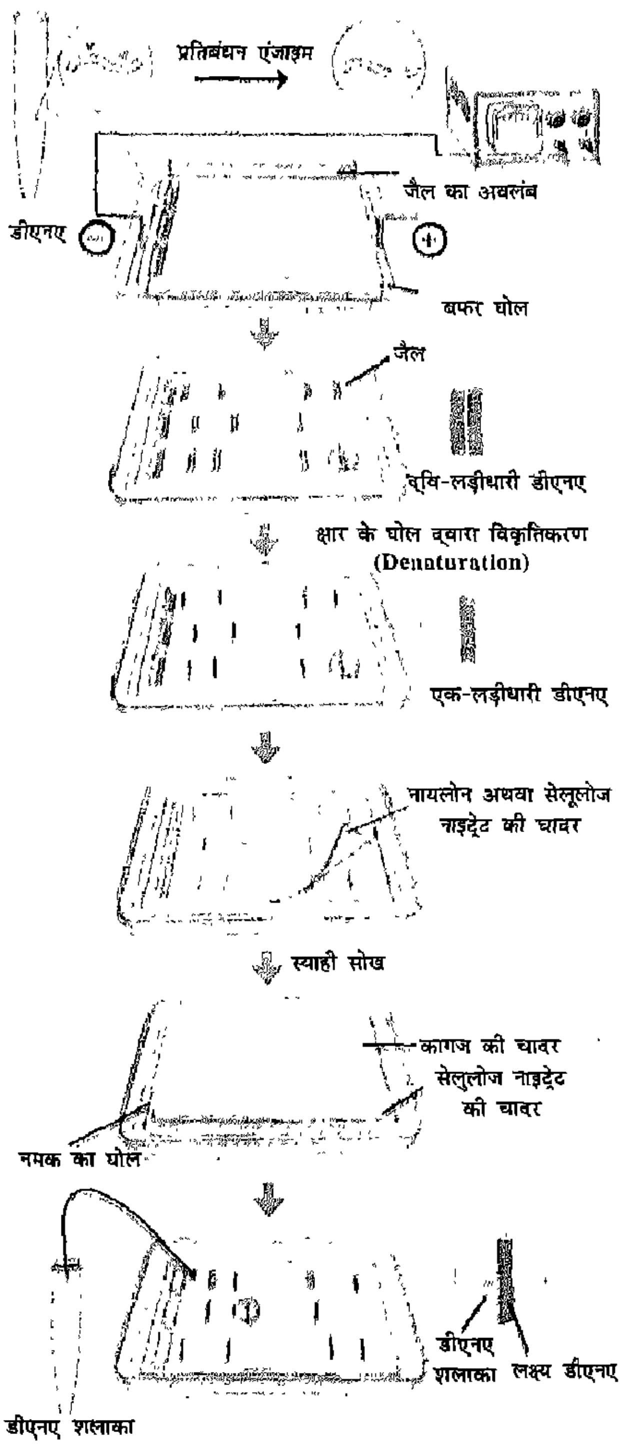
डीएनए मुद्रण तकनीक उपयोग अब निम्न कार्यों में होती है :

(i) अपराध प्रयोगशालाओं में अपराधियों की पहचान।

(ii) जीव विज्ञान के आधार पर सही जनक, अर्थात् माता अथवा पिता का निर्धारण।

(iii) यह सुनिश्चित करना कि पुरुष अथवा स्त्री जो स्वयं को अप्रवासी घोषित कर रहे हैं पूर्व स्थापित निवासी का वस्तुतः निकटसंबंधी है अथवा नहीं।

(iv) जीव वैज्ञानिक क्रमिक-विकास के पुनः लेखन हेतु प्रजातीय समूहों की पहचान।





चित्र 15.16 अंगुलिमुद्रण की तकनीक

15.5 जीनोम विज्ञान

किसी भी जीव की सभी कोशिकाओं का डीएनए जैसे चर्म कोशिकाएं, मांसपेशी तथा मस्तिष्क कोशिका और जीन जैसी सभी वस्तुएं मिलकर **जीनोम** बनाते हैं। हमारे शरीर में 260 से भी अधिक प्रकार की लगभग 10 करोड़ कोशिकाएं हैं। फिर भी एक पूर्ण नवीन मानव निर्माण हेतु इनमें से प्रत्येक में निर्देशित ढांचा एक जैसा ही है, साथ ही कुल मिलाकर 23 विभिन्न प्रकार के गुणसूत्रों में डीएनए को धारण किया गया है। मानव जीनोम पुस्तकालय के अगुणित वर्ग में अतिरिक्त डीएनए कोशिका के माइटोकॉन्ड्रिया में विद्यमान होता है। जो जीव विशेष की माता से वंशागत होता है।

मानव जीनोम परियोजना

एक महत्वाकांक्षी अंतर्राष्ट्रीय मानव जीनोम परियोजना (Human Genome Project), 1990 में प्रारंभ की गई है, इस परियोजना के निम्न लक्ष्य हैं :

(i) मानव जीनोम को अधिक से अधिक विशुद्धता और सूक्ष्मतम स्तर पर मापन की विधियों को विकसित करना।

(ii) उपरोक्त सूचनाओं को आंकड़ा आधारों (डाटा बेस) में एकत्रित करना और आंकड़ों के विश्लेषण हेतु यंत्रों का विकास।

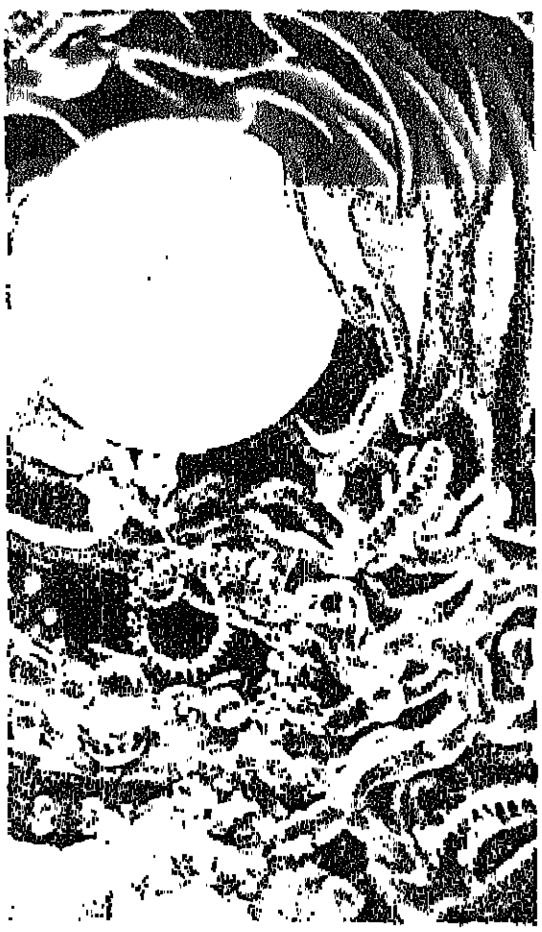
(iii) इस परियोजना से उत्पन्न नैतिक, न्याय संगत और सामाजिक समस्याओं का निराकरण।

मानव जीनोम

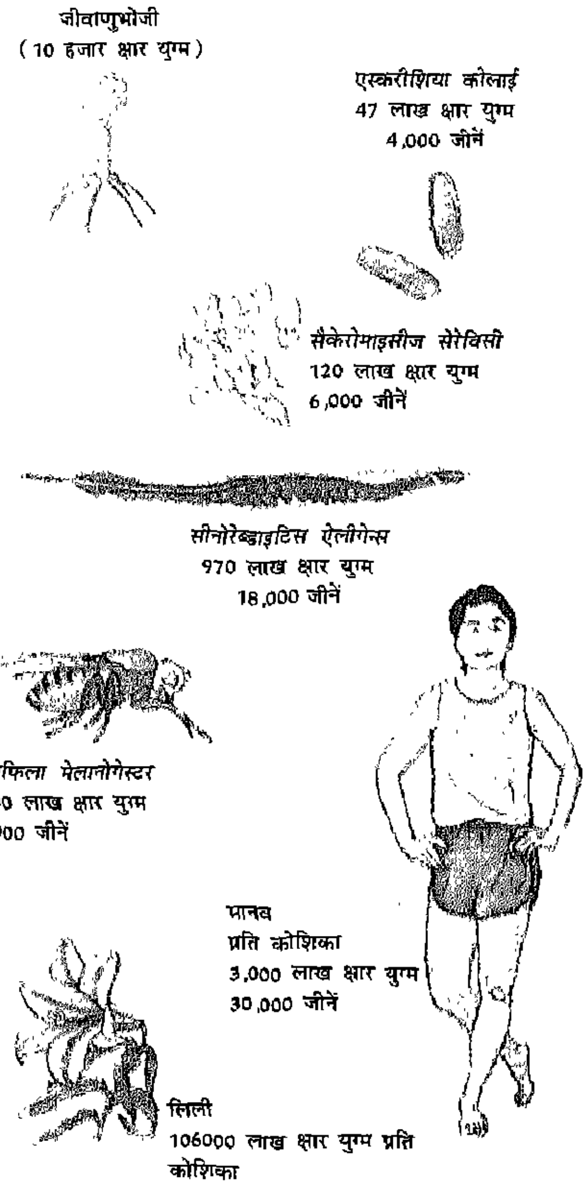
अंततः अब हम मानव जीनोम का आनुवंशिक लिपि के अनुरूप वाचन करने में सफल हो चुके हैं। अनुमानों के अनुसार मानव जीनोम में तीन अरब जैव-रासायनिक अक्षर अर्थात् न्यूक्लियोटाइड क्षार युग्म हैं।

जीनोम द्वारा किए गए रहस्योद्घाटन

जीनोम संबंधी खोजों ने कुछ आश्चर्यजनक तथ्य प्रकट किए हैं जैसे कि जटिलतम प्राणियों में से एक होने के कारण मानव जीनोम में 1,00,000 से अधिक जीन समाहित होने की आशा थी लेकिन इसमें इस संख्या से बहुत कम अर्थात् लगभग 30,000-40,000 जीन की संख्या का आकलन किया गया है (चित्र 15.18)। यह



चित्र 15.17 मानव का जीनोम



चित्र 15.18 जीनोमों की तुलना

संख्या एक चुहिया के जीनोम के जीनों की संख्या के आस-पास है और हमारी जीनों का 9/10 भाग चूहे की जीनों के सदृश्य है जो हमारे प्रयोगों हेतु सर्वाधिक अनुमोदित जंतु है। साथ ही हमारे अंदर एक फलमक्खी (*ड्रोसोफिला मेलानोगेस्टर*)से मात्र दो गुनी और एस्केरीशिया कोलाई नामक जीवाणु से छ: गुनी अधिक जीनें ही विद्यमान होती हैं।

यह जानकर आश्चर्य होता है कि हम डीएनए के स्तर पर अविश्वसनीय रूप से 99.9 प्रतिशत समान हैं वस्तुत: जीनोमी परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक जीवित मानव एक-जैसा ही होता है और आनुवंशिक संकेतों के क्रम में जीवाणु तक हमारे संबंधी हैं। यहां तक कि सारे भूमंडल पर वितरित हमारी अधिकांश आनुवंशिक भिन्नताएं विविध मानव जातियों एवं उपजातियों में प्राय: सहभागिता दर्शाती हैं। मानव जीन अपनी लंबाई के परिप्रेक्ष में पर्याप्त विविधता लिए होती है जो प्राय: हजारों क्षार-युग्मों तक फैली हो सकती है। जहां ग्लोबिन तथा इंसुलिन की जीनें 10,000 से कम क्षार-युग्मों की बनी होती हैं। ड्यूशीन मांसपेशी विरूपण (Duchenne muscular dystrophy) के लिए उत्तरदायी जीन 24 लाख क्षारीय युग्मों से निर्मित होती है एवं X गुणसूत्र पर उपस्थित, अभी तक ज्ञात जीनों में संभवत: सर्वाधिक लंबी है।

किंतु लिली, जो संपूर्ण वसंत ऋतु में सुंदर पुष्प उत्पादित करती है, मानव की तुलना में 18 गुणा अधिक डीएनए धारण किए रहती है। फलस्वरूप यह धारणा कि अधिक जटिल जीनों को अधिक डीएनए की मात्रा की आवश्यकता होती है कुछ पादपों के परिप्रेक्ष्य में सत्य सिद्ध नहीं हो सकी। वास्तव में लिली, मानव की तुलना में कहीं कम प्रोटीनों का निर्माण करती है। इस प्रकार इसके इतने बड़े जीनों के भाग असंकेतित इंट्रोनों (introns) द्वारा विभक्त हो जाते हैं और मात्र 20 प्रतिशत से कम जीनोम ही प्रोटीन संकेतकी अनुक्रम, एक्सॉन (exons) विद्यमान होते हैं। आप पूर्व में ही भिन्न संख्या अनुबद्ध पुनरावृत्ति की विभिन्न लंबाइयों वाले अनुबद्धों से परिचित हो चुके हैं फिर भी गुणसूत्रबिंदु (centromere) के चारों ओर गुच्छे के रूप में एकत्र 5-8 क्षारीय युग्मों की बनी 10 लाख प्रतिकृतियां पुनरावर्ती अनुक्रम में विद्यमान होती हैं जो 'रद्दी' अथवा 'कबाड़' डीएनए (junk DNA) कहलाती हैं।

मानव जीनों की संभावनाएं और परिणतियां

यह अनुभूति करना सरल है कि जीनोम परियोजना की तुलना प्रतिजैविकी पदार्थों की खोज से क्यों की जाती है? ऐसी आशा है कि शीघ्र ही हम 1200 से अधिक ऐसी जीनों का चित्रण कर सकेंगे जो हृदय वाहिका तंत्र, मधुमेह जैसे अंत:स्त्रावी रोगों, एल्जाइमर रोग (Alzheimer disease) जैसे तंत्रिका व्यतिक्रमों और घातक कैंसर जैसे प्रचलित रोगों के लिए उत्तरदायी हैं। साथ ही इस प्रकार के प्रयास भी अग्रसर हैं जिनसे ऐसे जीवों का निर्धारण हो सकेगा जो कैंसर-युक्त कोशिकाओं का सामान्य कोशिकाओं में प्रत्यावर्तन कर सकें। वस्तुत: मानव जीनोम अनुक्रमण मात्र स्वस्थ जीवन के लिए ही प्रतिबद्ध नहीं है वरन् यह ऐसे आंकड़ा-आधार (डाटा बेस) भी सुरक्षित करने की ओर अग्रसर है जिसमें अभिकल्पी (designer) औषधियों का विस्तृत ज्ञान, आनुवंशिकता, रूपांतरित भोजन और अंतत: हमारी आनुवंशिक पहचान की संभावनाएं सम्मिलित हैं।

15.6 जीन पुस्तकालय एवं जीन बैंक

आप पहले ही देख चुके हैं कि प्रत्येक गुणसूत्र किसी पुस्तकालय में विद्यमान किसी विषय के एक बृहद् ग्रंथ के एक खंड के समान है। यहां तक कि *इ.कोलाई* (*E.coli*) जैसे जीवाणु के जीनोम में 4,000 जीन समावेशित हैं। ज्ञातव्य है कि जीन पृथक रूप में बहुत कम ही विद्यमान होती है और वस्तुत: ऐसी जीन क्लोनिंग डीएनए कृंतकीकरण, वांछित जीनों को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करने के लिए उनकी बहुत-सी प्रतिकृतियां तैयार की जाती हैं। यह सुस्पष्ट तकनीकी विशेष डीएनए का अन्य डीएनए अनुक्रमों से भिन्न करने में सफल होता है। फलत: इससे विस्तृत छान-बीन अथवा परिचालन संभव होता है। जीन पुस्तकालयों आरएनए के उपयोग द्वारा भी स्थापित किया जा सकता है। आरएनए को पूरक डीएनए (cDNA) में परिवर्तित करने के लिए व्युत्पन्न ट्रांसक्रिप्टेज (Reserve transcriptase) नामक प्रकिण्व एंजाइम का प्रयोग किया जाता है जिसे पुन: जीन पुस्तकालय हेतु परिवर्तित किया जा सकता है। ऐसे पुस्तकालयों को विशेष तकनीकों द्वारा सुरक्षित रखा जाता है।

जीन बैंक (Gene bank) अभी तक ज्ञात डीएनए खंडों के क्लोनों, जीनों, जीन मानचित्रों, बीजों, हिमकृत शुक्राणु अथवा अंड कोशिका अथवा भ्रूण का भंडार होता है। इन्हें जातियों के विलुप्त हो जाने की स्थिति में आनुवंशिक अभियांत्रिकी अथवा संकरण के प्रयोगों में संभावित उपयोग हेतु भंडारित किया जाता है। जैसे-जैसे विलोपन की दर में वृद्धि के फलस्वरूप पृथ्वी की जैव-विविधता और आनुवंशिक भिन्नता का ह्रास होगा, इन जीन बैंकों की उपयोगिता बढ़ती ही जाएगी। अब लगभग एक दर्जन जातियों के जीनोम के बारे में सूचना उपलब्ध है। इन सब में मानव जीनोम परियोजना की संभावनाएं और योगदान विलक्षण हैं।

सारांश

आनुवंशिक यांत्रिकी से अभिप्राय विशिष्ट जीनों को अलग करना और उन्हें नए जीनोमों में स्थानांतरित करना है। इस तकनीक की मुख्य धुरी के रूप में प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएजेज नामक विशिष्ट श्रेणी के एंजाइम होते हैं जो डीएनए के विशिष्ट स्थलों की पहचान करते हैं और अणुओं को चिपकने वाले अथवा निरूप (कुंठित) खंडों में विदलित कर देते हैं। डीएनए के दोनों विदलित रज्जुकों को एक बार पुनः लाइगेज नामक जोड़ने वाले एंजाइम द्वारा पुनसंयोजित किया जा सकता है। प्लेज्मिड, जीवाणुओं तथा खमीर (यीस्ट) से प्राप्त कृत्रिम गुणसूत्र परोक्ष जीन स्थानांतरण के लिए महत्त्वपूर्ण साधन हैं। पुनसंयोजी डीएनए प्रयोगों में सामान्यतः जीवाणु, यीस्ट और संबंधित पादप एवं जंतु कोशिकाओं का प्रयोग आतिथेय के रूप में किया जाता है। आनुवंशिक यांत्रिकी अभिक्रिया का प्रमुख प्रयोग कृषि के लिए किया गया है । साथ ही इसके द्वारा मानवीय इंसुलिन एवं इंटरफेरोन-जैसी औषधियों का उत्पादन वहन-योग्य मूल्यों पर संभव हो सका है । अब हिपेटाइटिस एवं परिसर्प जैसे कई मानवीय रोगों की रोकथाम के लिए पुनसंयोजी टीके उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में जहां अन्य शल्यचिकित्सीय उपस्कर प्रभावी नहीं होते हैं जीन चिकित्सा में किसी दोषपूर्ण जीन को सामान्य स्वस्थ जीन द्वारा बदल दिया जाता है। 'डॉली' भेड़ के क्लोनीकरण के उपरांत अब लगभग किसी भी स्तनपोषी जाति का क्लोनीकरण संभव है। और कई स्थानांतरी सूक्ष्मजीवियों, सस्य पादपों एवं कृषि में प्रयोग आने वाले पशुओं का सफलतापूर्वक क्लोनीकरण किया जा चुका है। चूंकि किसी भी व्यक्ति, जाति विशेष का डीएनए विशिष्ट (अद्वितीय) होता है अतः इसकी थोड़ी-सी कोशिकाओं के नमूने के उपयोग द्वारा इसकी पहचान अथवा डीएनए अंगुलिमुद्रण तैयार करना संभव है। इस तकनीक का अपराध-विज्ञान में भरपूर उपयोग हो रहा है। क्लोनीकरण हेतु जीनों के स्रोत के रूप में जीनोमी पुस्तकालयों की स्थापना की जा रही है। मानवीय जीनोम परियोजना की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अन्य कई तुलनात्मक जीनोमों के अतिरिक्त मानव के संपूर्ण डीएनए अनुक्रम की प्रतिकृति उपलब्ध कराना है। विभिन्न लाभों के होते हुए भी कई प्रकार के नैतिक, सामाजिक एवं वैधानिक पक्षों के परिप्रेक्ष्य में अब संभावित जीन तकनीकों के उपयोग ने मानव को चिंतन के लिए विवश कर दिया है क्योंकि दुर्घटनावश नए रोगजनकों अथवा आनुवंशिक दैत्यों का उत्पादन संभव है।

अभ्यास

1. स्तनधारियों के क्लोनिंग का प्रथम सत्य उदाहरण कौन-सा है?
2. पुनर्योजन आनुवंशिक अभियांत्रिकी के कम से कम तीन महत्त्वपूर्ण रोगहर उत्पादों के नाम लिखिए।
3. कम से कम तीन ऐसे रोगों का नाम लिखिए जिनके लिए अब आनुवंशिक अभियांत्रिक टीके उपलब्ध हैं।
4. जीन स्थानांतरी पादप एवं प्राणी के एक-एक उदाहरण बताइए।
5. जीन-चिकित्सा क्या है? इसके उपयोग का कम से कम एक उदाहरण दीजिए।
6. आनुवंशिकतः रूपांतरित खाद्य क्या है?
7. विभिन्न संख्या अनुबद्ध पुनरावृत्ति (VNTR) क्या है?
8. प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज :
   (क) डीएनए को एक अति विशेष पहचान क्रम पर तोड़ते हैं ।
   (ख) जीवाणुओं में जीवाणुभोजियों द्वारा प्रविष्ट कराए जाते हैं।
   (ग) केवल ससीमकेंद्रकी कोशिकाओं द्वारा बनाए जाते हैं।
   (घ) विशिष्ट डीएनए क्रम पर मिथाइल समूह जोड़ते हैं।
   उपर्युक्त विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए।
9. प्लेज्मिड :
   (क) एक वृत्ताकार प्रोटीन अणु है
   (ख) जीवाणुओं में इनकी आवश्यकता है
   (ग) अत्यंत लघु जीवाणु हैं
   (घ) प्रतिजैविकों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं
   उपर्युक्त विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए।

10. डीएनए जांच द्वारा आनुवंशिक निदान :
    (क) *केवल उत्परिवर्तित एवं सामान्य कोशिका की पहचान करते हैं*
    (ख) केवल अंड-कोशिका अथवा शुक्राणुओं के द्वारा किया जा सकता है
    (ग) राइबोसोमल आरएनए के साथ संकरण में उपयुक्त होता है
    (घ) प्रतिबंधन एंजाइम का उपयोग करते हैं एवं बहुआकारिक होते हैं
    उपर्युक्त विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए।
11. किसी भी कोशिका में डीएनए को प्रविष्ट कराया जा सकता है :
    (क) अंतर्वेशन द्वारा
    (ख) कैल्शियम लवण के साथ संयोजित करके
    (ग) कोशिका के साथ जीन बैंक में रखकर
    (घ) जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस द्वारा
    उपर्युक्त विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए।
12. डीएनए *अंगुलिमुद्रण* में:
    (क) एक सकारात्मक पहचान की जा सकती है
    (ख) बहुप्रतिबंधन एंजाइम एक असाधारण खंड का पाचन/उत्पादन करते हैं
    (ग) पालिमरेज शृंखला अभिक्रिया (PCR) मात्र कुछ डीएनए का प्रवर्धन करते हैं
    (घ) दो प्रतिबंधन क्षेत्रों के बीच भिन्न पुनरावृत्ति क्रम का मूल्यांकन होता है
    उपर्युक्त विकल्पों में से सही उत्तर चुनिए।
13. कुछ प्रतिबंधन एंजाइमों के पहचान स्थान निम्नलिखित हैं :

बैम एच I

```
↓
GGATCC
CCTAGG
     ↑
```

इकोआर I

```
↓
GAATTC
CTTAAG
     ↑
```

एससीए I

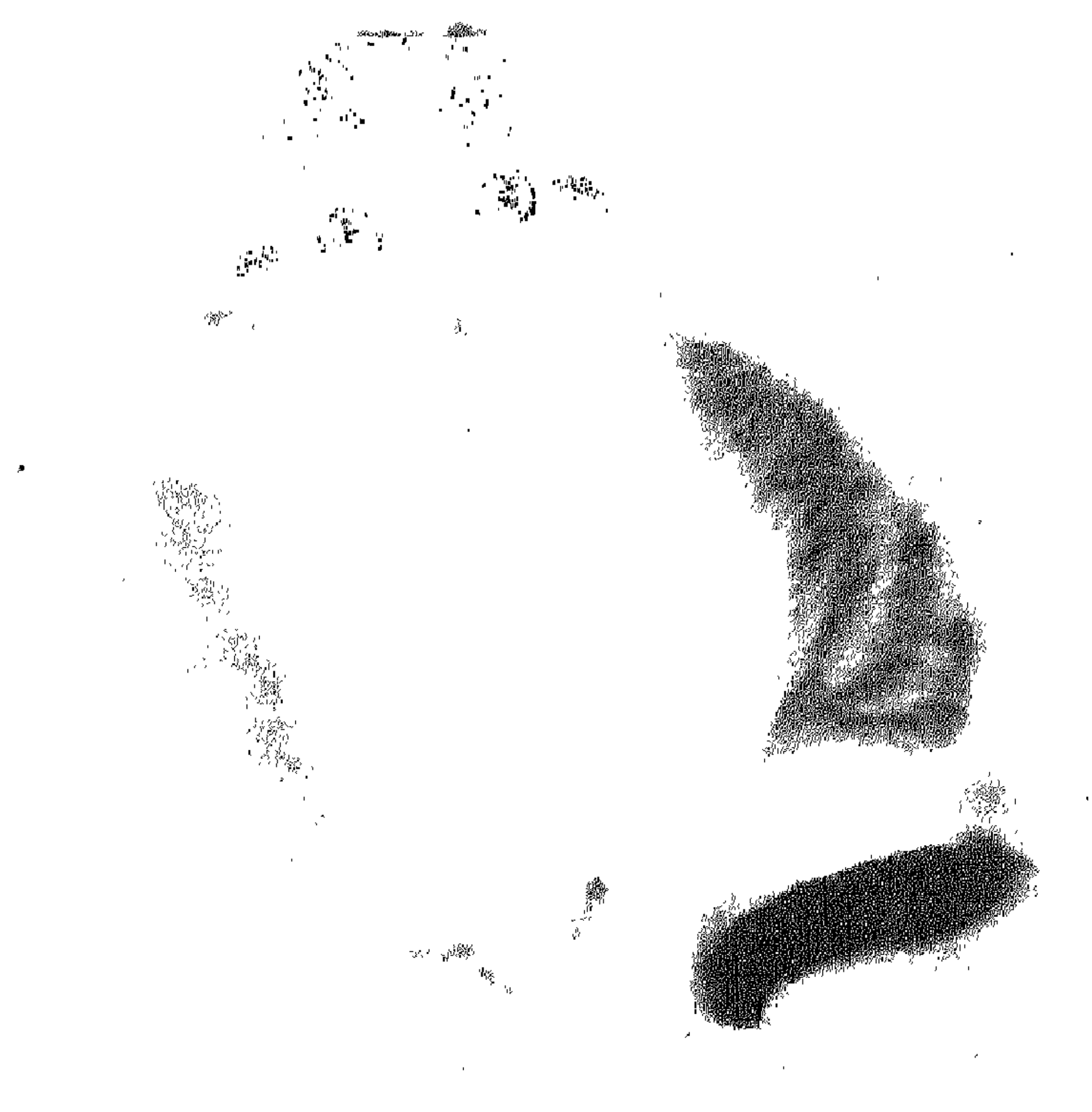
```
   ↓
AGTACT
TCATGA
   ↑
```

एसएमए I

```
   ↓
CCCGGG
GGGCCC
   ↑
```

उपर्युक्त में से कौन-से एंजाइम अनुरूप (पूरक) अनुलग्नी-सिरा (sticky end) उत्पन्न करेंगे? एवं कौन-से कुंठित सिरा उत्पन्न करेंगे ?

14. पादपों में 'एग्रोबैक्टीरियम द्वारा आनुवंशिक रूपांतरण' को प्राकृतिक आनुवंशिक अभियांत्रिकी क्यों कहा जाता है ?
15. विवादित पैतृत्व की पहचान में माता के डीएनए के नमूने का भी उपयोग क्यों किया जाता है?
16. अंतर स्पष्ट कीजिए :
    (i) कोशिका क्लोनिंग एवं जीव क्लोनिंग
    (ii) *प्रत्यक्ष जीन स्थानांतरण एवं परोक्ष जीन स्थानांतरण*
17. क्लोनीकृत जीव क्या हैं। इनका एक उदाहरण दीजिए।
18. सदर्न ब्लॉटिंग क्या है ? एक ऐसा उदाहरण दीजिए जिसमें इसका प्रयोग होता है ।
19. आनुवंशिक अभियांत्रिकी क्या है ? सभी आनुवंशिकी अभियांत्रिक तकनीकों में प्रयोग होने वाले समान चरणों को संक्षेप में लिखिए ।
20. डीएनए अंगुलिमुद्रण में प्रयोग आने वाले विभिन्न चरणों की रूपरेखा दीजिए।
21. मानव-जीनोम परियोजना क्या है? अब तक हमारे जीनोम के बारे में कौन-कौन से रहस्य उद्घाटित किए जा चुके हैं?

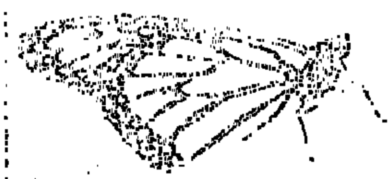


बिल्ली का बच्चा सी सी : प्रथमतः क्लोनीकृत बिल्ली

(सी सी से अभिप्राय कार्बन प्रति से है ।)

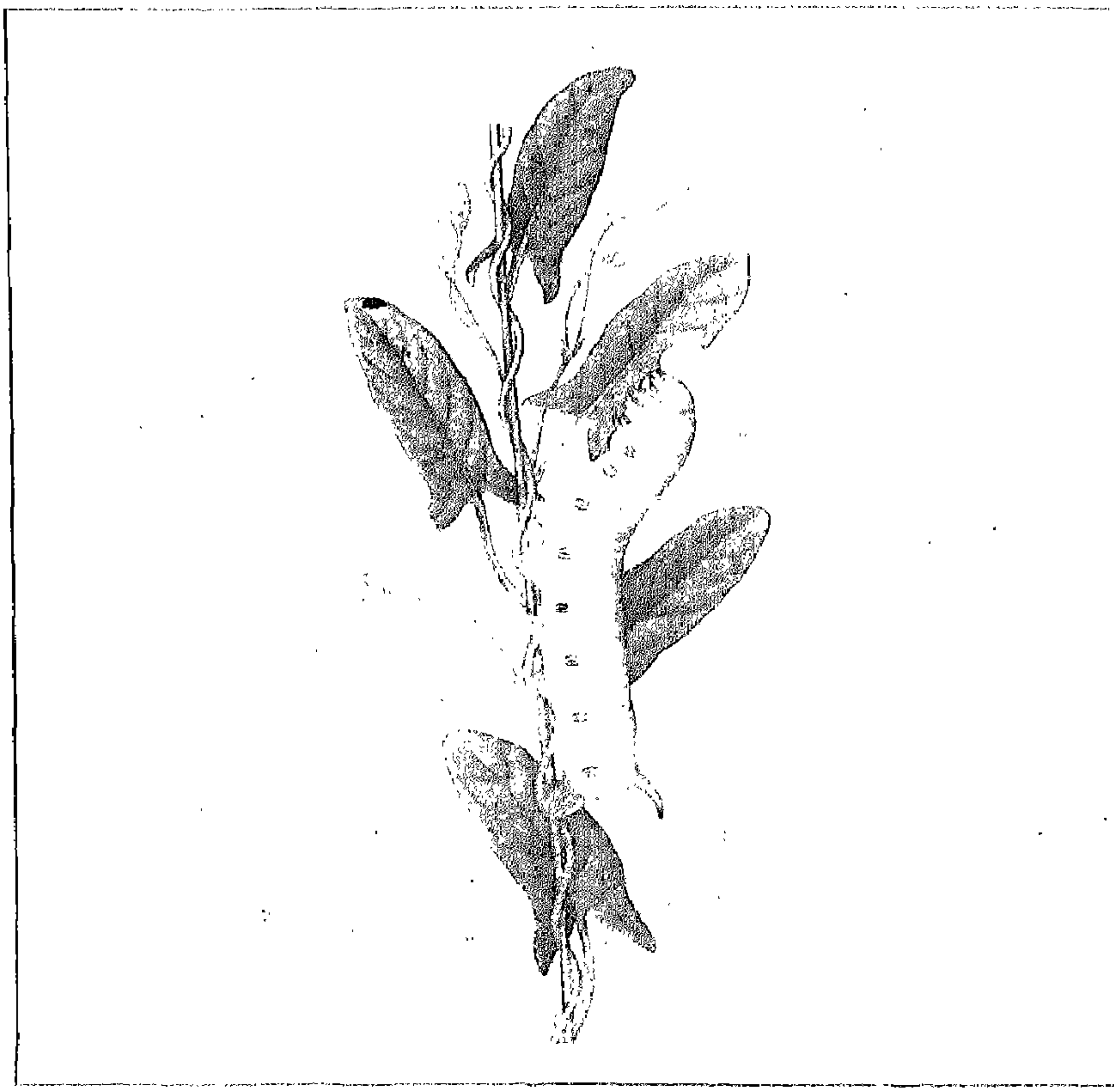
इ का ई

पांच



पादप एवं जंतुओं की आकारिकी

आप यह जानते हैं कि पुष्पी पादप और उच्च श्रेणी के जंतु बहुकोशिक जीव होते हैं। यह कोशिका विभाजन द्वारा वृद्धि करते हैं और इनके आकारिक लक्षण तथा विशेषताएं आनुवंशिकतः निर्धारित होती हैं। आप यह भी जानते हैं कि आकारिकी जीवों के वर्गीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है। इस इकाई में आप कुछ महत्त्वपूर्ण आकारिक लक्षणों तथा पुष्पी पादपों एवं चयनित जंतुओं के शरीर के विभिन्न अंगों के संगठन के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे। उनकी आंतरिक संरचना तथा ऊतक तंत्रों का भी परीक्षण करेंगे। हम चयनित कुलों के उदाहरणों का उपयोग करते हुए यह भी सीखेंगे कि किसी पुष्पी पादप का वर्णन कैसे किया जाता है। हम यह भी जानेंगे कि विशिष्ट कार्यों को संपन्न करने और शत्रुओं से रक्षा के लिए पादपों के विभिन्न अंग किस प्रकार रूपांतरित हो जाते हैं। साथ ही हम कतिपय पादप कुलों के आर्थिक महत्त्व तथा मानव जगत के साथ कुछ चयनित जंतुओं के पारंस्परिक संबंधों का भी आभास प्राप्त करेंगे।



"आकारिकी जीव विज्ञान की सर्वाधिक रुचिकर शाखाओं में से एक है

अध्याय 16

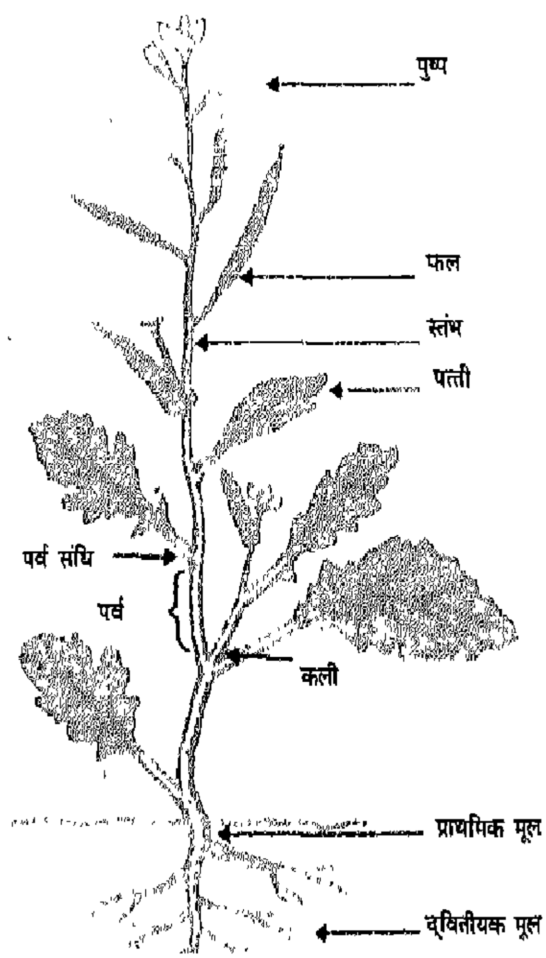
पुष्पी पादपों की आकारिकी

पुष्पीपादप जिन्हें कभी-कभी आवृत्तबीजी भी कहा जाता है, आज के सबसे प्रमुख पादप हैं। भूगर्भ-विज्ञान की दृष्टि से, यह युवा हैं। इनकी 3,00,000 जातियां पाई जाती हैं जो आकार और संरचना में अत्यंत भिन्नता दर्शाती हैं। आप सीख चुके हैं कि वैज्ञानिकों ने इन्हें उपयुक्त और प्रभावी अध्ययन के लिए *भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बांटा है जिसमें आकारिकी की महत्वपूर्ण* भूमिका रही है। पादप के विविध बाह्य लक्षणों का अध्ययन पादप आकारिकी (plant morphology) कहलाती है। इस अध्याय में हम आवृत्तबीजी पादपों (angiospermic plants) की आकारिकी का अध्ययन करेंगे।

ये पादप अत्यधिक विविध प्रकार के रूप एवं आकार दर्शाते हैं। इनके आकार में सूक्ष्म *वुल्फिया* एवं *लेम्ना* (0.1cm) से लेकर *यूकेलिप्टस* (100m) तक और विशाल बरगद (*Ficus benghalensis*) सदृश पादप पाए जाते हैं। प्रकृति के परिप्रेक्ष में यह शाक और झाड़ियों से लेकर वृक्ष तक हो सकते हैं।

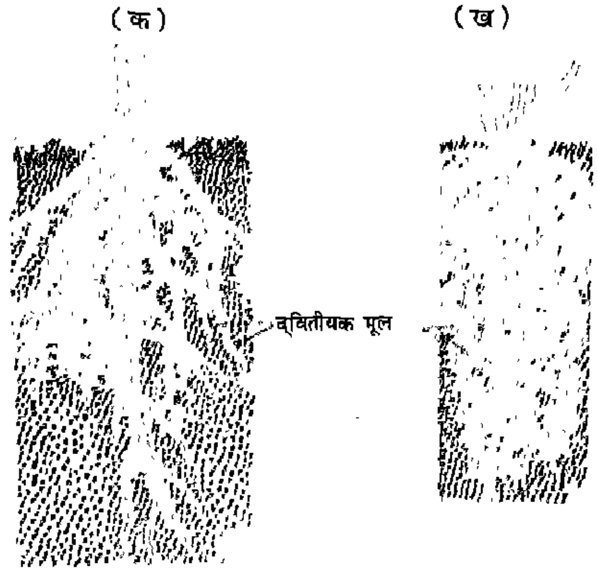
आवृत्तबीजियों की जीवन अवधि भी अत्यंत विविध होती है। मटर और चने जैसे पादप कुछ सप्ताह तक ही जीवित रहते हैं। जबकि गया का सुप्रसिद्ध 'बोधिवृक्ष' (*Ficus religiosa*) लगभग 2,500 वर्ष पुराना है। आवृत्तबीजियों के आवास में भी पर्याप्त भेद पाया जाता है। इनमें से कुछ तो मध्यम जलवायु की स्थितियों में समोद्भिद् (mesophytes), अन्य पानी में, जलोद्भिद् (hydrophytes), शुष्क परिस्थितियों में मरुद्भिद् (*xerophytes*), अन्य पादपों पर अधिपादप (epiphytes), चट्टानों पर अश्मोद्भिद (lithophytes), बालू पर बालुकोद्भिद् (psammophytes) अथवा लवणीय आवासों (halophytes) में निवास करते हैं। यद्यपि अधिकांश पुष्पी पादपों की पोषण विधि स्वपोषी होती है फिर भी इनमें से कुछ

अक्ष सामान्यत: एक अंत:भौमिक भाग (मूल अथवा जड़) एवं एक वायवी भाग (प्ररोह) में विभाजित रहती है। जड़ पूर्ववर्ती मूलांकुर से परिवर्धित होती है और प्राय: भूरे रंग की होती है। प्ररोह स्तंभ, पत्तियों, पुष्पों और फलों से बनता है। यह वायवी भाग प्रांकुर से परिवर्धित होते हैं। पुष्प एक रूपांतरित शाखा है जो फलों और बीजों का उत्पादन करती है। बीज नए पौधों को जन्म देते हैं। चित्र 16.1 में एक लाक्षणिक आवृत्तबीजी का आरेख दर्शाया गया है।



16.1 जड़

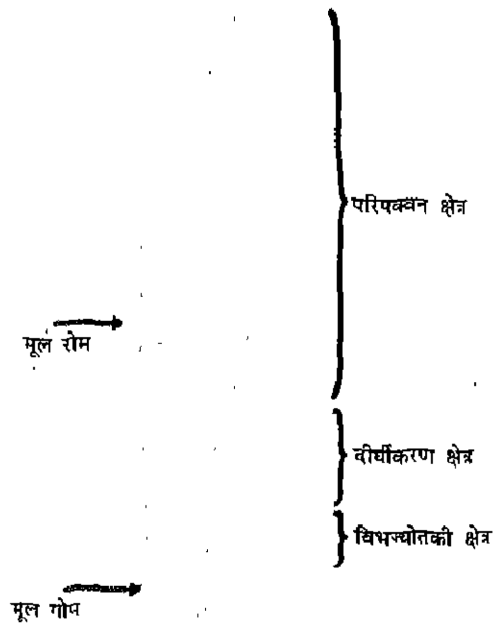
जड़ पादप का अंत:भौमिक भाग है जो मूलांकुर के लंबे होने से बनता है। प्रथमत: बनने वाली जड़, **प्राथमिक मूल** कहलाती है और इससे निकलने वाली दूसरी द्वितीयक अथवा तृतीयक जड़ें कहलाती हैं। जड़ों में वृद्धि की दो पद्धतियां पाई जाती हैं। पहले में तो प्राथमिक मूल मुख्य जड़ के रूप में बनी रहती है और इस पर कई द्वितीयक और तृतीयक जड़ें निर्मित होती हैं। इसे **मूसला जड़ तंत्र** (tap root system) कहते हैं जो सामान्यत: द्विबीजपत्रियों में पाया जाता है। दूसरे प्रकार में, प्राथमिक जड़ अल्पजीवी होती है और बहुत-सी पतली जड़ों द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है, जो माप में अधिकतर एक-सी होती है। यह तने के आधार से परिवर्धित होती है और **झकड़ा जड़ तंत्र** (fibrous root system) का निर्माण करती है (चित्र 16.2)। यह सामान्यत: एक बीजपत्रियों में पाया जाता है। जड़ों के मुख्य कार्य भूमि से जल एवं खनिज-लवणों का अवशोषण करना और उचित रूप से पौधे को भूमि में स्थापित करना है। इसके अतिरिक्त जड़ें रूपांतरित होकर विशिष्ट कार्यों जैसे भोजन का संग्रह एवं यांत्रिक अवलंबन भी प्रदान करती हैं।



चित्र 16.2 जड़ तंत्र (क) मूसला जड़ तंत्र (ख) झकड़ा जड़ तंत्र

मूल के क्षेत्र

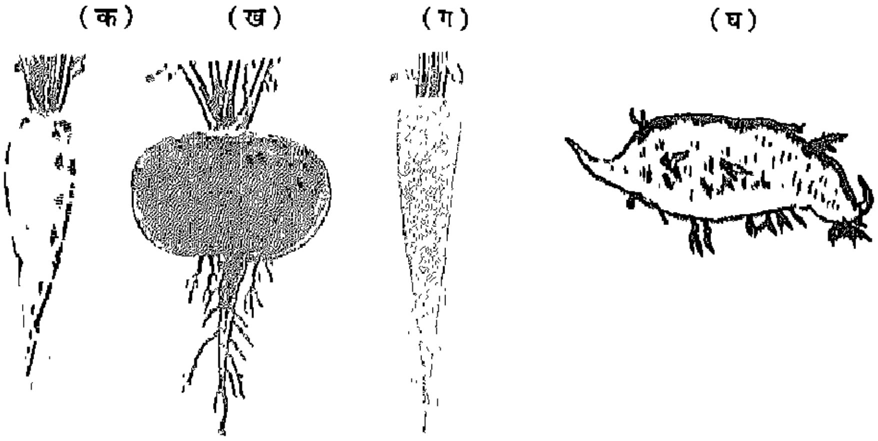
जड़ों में कलिकाएं (शकरकंद एवं कैथ को छोड़कर), पर्व एवं पर्व-संधियां नहीं पाई जातीं। जड़ों में मृदु शीर्ष एक अंगुलिभाग-जैसी (thimble-like) संरचना से सुरक्षित रहता है जिसे **मूल गोप** (root cap) कहते हैं, जो जलीय पादपों (*Pistia* एवं *Eichhornia*) में एक ढीली चादर-सी प्रतीत होती है और **मूल-जेब** (root pocket) कहलाती है। मूल गोप के ठीक ऊपर कोशिका विभाजन का क्षेत्र (region of cell division) स्थित होता है जो कुछ मिलीमीटर तक लंबा होता है। इस क्षेत्र की कोशिकाएं छोटी, पतली भित्तिधारी, सघन जीव-द्रव्ययुक्त होती हैं और पुन: पुन: विभाजित होती रहती है। इसे **विभज्योतकी क्षेत्र** (meristematic region) भी कहते हैं। इसके ऊपर **दीर्घीकरण क्षेत्र** (region of elongation) स्थित होता है जो अपेक्षाकृत कुछ लंबा होता है और इसकी कोशिकाएं जड़ की लंबाई में वृद्धि के लिए उत्तरदायी होती हैं। **परिपक्वन क्षेत्र** (region of maturation), दीर्घीकरण क्षेत्र से कुछ ऊपर की ओर बढ़ता जाता है (चित्र 16.3)। इसकी कोशिकाएं विभिन्न ऊतकों में परिपक्वन और विभेदीकरण (differentiation) दर्शाती हैं। दीर्घीकरण क्षेत्र के एकदम ऊपर पतले, मुलायम, धागे-सम संरचनाएं, मूल रोम (root hairs) उत्पन्न होते हैं।



चित्र 16.3 मूल के क्षेत्र

अपस्थानिक जड़ें

ऐसी जड़ें जो मूलांकुर को छोड़कर पादप के किसी अन्य भाग से अथवा उस पर परिवर्धित होती हैं, अपस्थानिक जड़ें (Adventitious root) कहलाती हैं। यह प्राथमिक जड़ के अतिरिक्त होती हैं और स्तंभ के पर्व/पर्व-संधि क्षेत्र अथवा पत्ती तक से परिवर्धित होती हैं। और अपना सामान्य कार्य करने के साथ-साथ विशिष्ट कार्य भी संपादित करती हैं। एकबीजपत्रियों जैसे प्याज में यह स्तंभ के आधार से अथवा घासों की शाखाओं की पर्वसंधि पर गुच्छे के रूप में उगती हैं। कुछ पादपों में तो जड़ें आसानी से (तत्काल) उत्पन्न हो जाती हैं जबकि अन्य में यह किसी प्रकार की चोट अथवा घाव बनने से, अथवा पत्ती की शिराओं अथवा पर्णवृंत से निकलती हैं। यह **पर्णिल जड़ें** (foliar roots) कहलाती हैं और हॉर्मोनों के प्रयोग द्वारा भी परिवर्धित कराई जा सकती हैं। भूमि



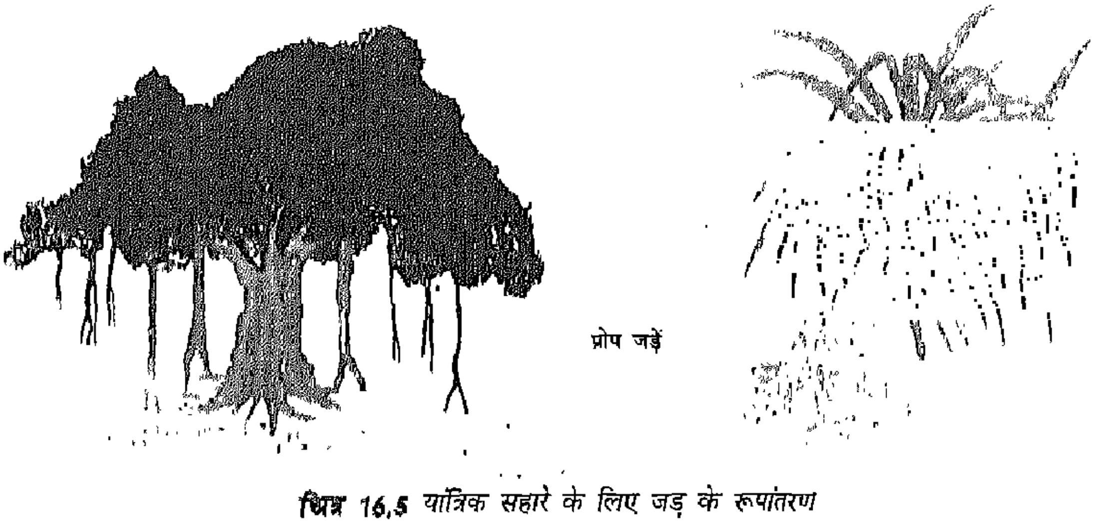
चित्र 16.4 जड़ों के भोजन संग्रह हेतु रूपांतरण (क) तर्कुरूप (ख) कुंभीरूप (ग) शंक्वाकार (घ) गांठदार

पर सर्पिल रूप में उगने वाले कई पादप पर्वसंधियों (Oxalis repens) अथवा तने की कतरनों पर जड़ें उत्पन्न करते हैं जैसे कि गुलाब, गन्ना और टेपिओका में अथवा इन्हें आंशिक रूप से जल में भिगोकर रखने से जैसे कि *कोलियस* (Coleus) में। कुछ पर्णिल कलिकाएं भी अपस्थानिक जड़ें उत्पन्न करती हैं जैसे कि पत्थरचट्टा (Bryophyllum) एवं *बेगोनिया* (Begonia) में।

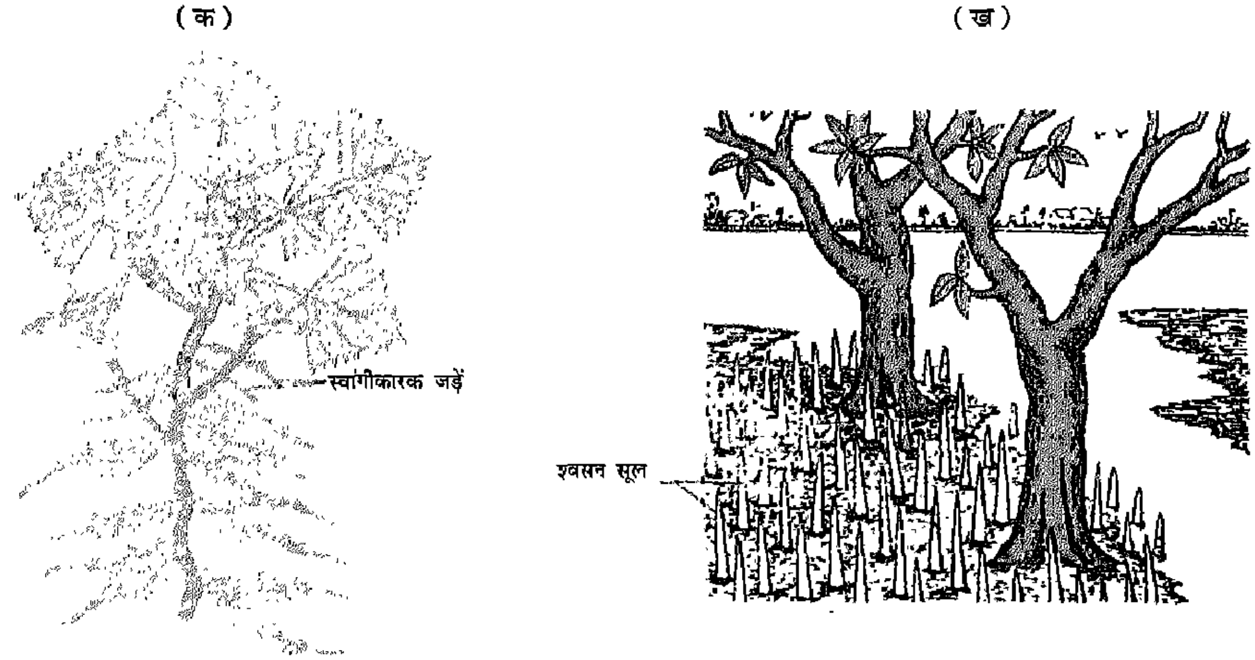
जड़ के रूपांतरण

कुछ पादपों में पत्तियों द्वारा बनाया हुआ खाद्य पदार्थ उनकी आवश्यकता से अधिक होने के कारण, इनके अन्य भागों में जमा हो जाता है जैसे कि मूली की प्राथमिक जड़ अतिरिक्त खाद्य का भंडारण कर बीच में तो फूल जाती है और ऊपर तथा नीचे की ओर पतली होती जाती है और इसे तर्कुरूप देती है। ऐसी जड़ों को तर्कुरूप जड़े कहते हैं (चित्र 16.4)। शलजम या चुकंदर में जड़ें ऊपरी भाग में फूल जाती हैं और लगभग गोलाकार बन जाती है और निचले भाग पर पतली हो जाती है। ऐसी जड़ों को **कुंभीरूप** जड़ें कहते हैं। यदि जड़ें आधार पर चौड़ी हों और ऊपर की ओर शनैःशनैः पतली होती जाती हो तो उन्हें **शंक्वाकार** जड़ें कहते हैं। इसका उदाहरण है गाजर। जड़ जब मोटी तथा गूदेदार हो और उसका कोई आकार न हो तो उसे **गांठदार** जड़ कहते हैं इसका उदाहरण है मिराबिलिस। कभी-कभी मूसला मूल और यहां तक कि अपस्थानिक की द्वितीयक तथा तृतीयक शाखाएं भोजन संग्रह के लिए रुपांतरित हो जाती है। उदाहरण के लिए शकरकंद में जड़ें फूलकर कंद के रूप में बिना विशिष्ट आकार ग्रहण किए दिखाई देती हैं। इन्हें गुलिकीय जड़ें कहते हैं। डहेलिया और शतावर में कई गुलिकीय जड़ें झुंड के रूप में स्तंभ के आधार पर बनती हैं। हल्दी में पतली जड़ें कभी-कभी शीर्ष पर फूल जाती हैं और **ग्रंथिकाओं** (nodules) का रूप धारण कर लेती हैं। पोर्चुलाका तथा करेला, में जड़ें कुछ-कुछ अंतराल पर फूलकर मोतियों का रूप धारण कर लेती हैं। यदि जड़ें मुद्रिका रूप शृंखला में फूलती हैं तो यह **वलयित** (annulated) कहलाती हैं इसका उदाहरण है आइपेकाक।

बरगद एवं केवड़ा में मुख्य स्तंभ अथवा शाखाओं में कई जड़ें उत्पन्न होती हैं जिनका कार्य प्ररोह तंत्र को यांत्रिक अवलंबन प्रदान करना है। यह जड़ें नीचे की ओर मिट्टी में धंस जाती हैं और सहायक स्तंभ का कार्य करती हैं। इस प्रकार की जड़ों को **प्रोप** जड़ें कहते हैं (चित्र 16.5)। पान अथवा काली मिर्च जैसे



चित्र 16.5 यांत्रिक सहारे के लिए जड़ के रूपांतरण



चित्र 16.6 महत्त्वपूर्ण कार्यों हेतु जड़ों के रूपांतरण (क) स्वांगीकारक जड़ें (ख) श्वसन सूल

दुबले तने के पादपों की जड़ें उनकी गांठों से निकलती हैं, जिससे कि वे पादप को पास में स्थित किसी वस्तु पर चढ़ने में मदद कर सकें। वृक्ष के मुख्य तने के आधार पर चारों ओर भी कुछ स्थूलकाय जड़ें बहुसर्जक अस्वाभाविक उत्पत्ति दिखाती हैं और तख्ते जैसी दिखने लगती हैं। ये जड़ें सेमल जैसे वृक्षों के बड़े तनों को सहारा देती हैं।

कुछ पादपों में जड़ें उनकी आवश्यक कार्यों जैसे श्वसन एवं जल अवशोषण और भोजन संश्लेषण तक के लिए रूपांतरित हो जाती हैं। *राइजोफोरा* एवं हेरिटेरिया जैसे दलदली क्षेत्रों में एवं लवणीय झीलों में उगने वाले पादपों की अंतभौमिक जड़ों से शंकु के आकार के श्वसन-सूल अद्‌र्ध रूप से ऊपर की ओर उगते हैं। इन सूलों में असंख्य रंध्र होते हैं तथा इन्हें श्वसन सूल (Pneumatophores) कहते हैं (चित्र 16.6)। अहरित परजीवी पादप जैसे अमरबेल, *ओरोबेन्की* तथा विस्कम जो दूसरे पौधों पर उगते हैं अपना भोजन चूषकांग पुटिका अथवा चूषक जड़ों की सहायता से प्राप्त करते हैं। वैण्डा जैसे कुछ आर्किड जो पौधों की शाखाओं पर उगते हैं और उनमे वायवीय जड़ें विशेष प्रकार का स्पंज-सम ऊतक (velamen) धारण किए होती हैं जो समीपवर्ती वातावरण से आर्द्रता अवशोषण में सहायक होता हैं। टिनोस्पोरा एवं कुछ आर्किडों में पतली, लंबी और लटकने वाली जड़ें हरित होकर पादप के प्रकाशसंश्लेषण में सहायता करती हैं। इसी प्रकार की स्वांगीकरण करने वाली जड़ें सिंघाड़े में भी होती हैं।

16.2 स्तंभ

स्तंभ प्रांकुर से बढ़ने वाला पादप अक्ष का वायवी भाग है जो सामान्यतः भूमि के ऊपर स्थित होता है और शाखाएं, पत्तियां एवं पुष्प धारण करता है। स्तंभ का मुख्य कार्य इन अंगों को चारों ओर इस प्रकार फैलाना है कि यह अपने विशिष्ट कार्यों विशेषतः भोजन निर्माण एवं फलों/बीजों का उत्पादन भली प्रकार कर सकें। यह जल, खनिज, लवण एवं तैयार खाद्य पदार्थ के संवहन में सहायक होने के साथ-साथ शाखाओं को अवलंब भी प्रदान करता है। पर्व एवं पर्वसंधियां और बहिर्जात रूप में परिवर्धित बहुकोशिकी रोम तथा धनात्मक प्रकाशानुवर्ती प्रकृति इसके मुख्य लक्षण हैं। स्तंभ का वृद्धि करता हुआ शीर्ष सामान्यतः गुम्बदाकार संरचना के रूप में होता है जो कई सूक्ष्मपत्तियों से आवृत्त और सुरक्षित रहता है। साथ ही स्तंभ के शीर्ष, अक्ष एवं सहायक स्थलों पर कलिकाएं भी विद्‌यमान होती हैं जो शल्कों में सुरक्षित रहती हैं। सामान्यतः स्तंभ प्रारंभ में हरा एवं शाकीय होता है तथा बाद में काष्ठिल और गहरे भूरे रंग का हो जाता है।

स्तंभ के रूप

स्तंभ विभिन्न परिस्थितियों में विविध प्रकार के कार्यों को संपादित करने के लिए अनुकूलित होता है। यह अनन्य, दृढ़ और कठोर होने के कारण सीधा खड़ा रह सकता है लेकिन कभी-कभी यह अपने को ऊर्ध्व स्थिति में स्थापित करने में सफल नही होता और तब गिर कर तलस्पी हो जाता है अथवा



चित्र 16.7 स्तंभ के रूप (क) सीधा, दृढ़ स्तंभ (ख) तलस्पर्शी स्तंभ

किसी समीपवर्ती आश्रय पर आरोहण करता है (चित्र 16.7)। अन्य परिस्थितियों में यह भूमिगत होता है तथा अनुकूल परिस्थितियों में वायवीय शाखाओं को उत्पन्न करता है।

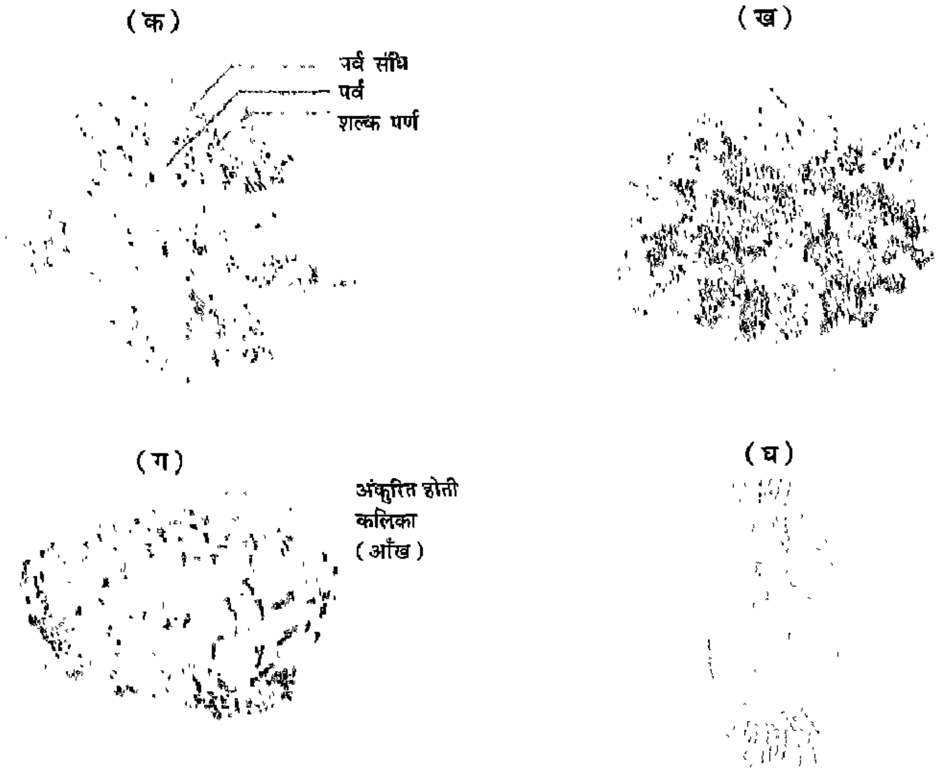
यदि स्तंभ शाखा-रहित, सीधा, बेलनाकार तथा दृढ़, क्षत चिह्नित स्तंभ और पत्ती-विहीन है जैसे कि ताड़ तो यह स्तंभ (caudex) कहलाता है। बांस में पर्वसंधि ठोस तथा पर्व पोली होती है और **कल्म** (culm) कहलाता है। कुछ अन्य एकबीजपत्रियों में वायवीय तने विद्यमान नहीं होते और इसके स्थान पर उनमें वायवीय प्ररोह होते हैं जो पुष्प धारण करते हैं, ये प्ररोह **पुष्पदंड** (scape) कहलाते हैं जैसे प्याज तथा अरबी। जब स्तंभ तलस्पर्शी तथा शयान रहता है तब इसे **शयान** (*prostrate*) कहते हैं जैसा कि ऑकजेलिस तथा इवॉल्वुलस। ट्राइडेक्स (*Tridax*) में स्तंभ कुछ दूरी पर तलस्पर्शी रहता है और फिर इसका शीर्ष ऊपर को उठता है, इसे **उच्चाग्र शयान** (decumbent) कहते हैं। जब स्तंभ की शाखाएं भूमि पर चारों ओर फैलती हैं तो इसे विसरित (diffuse) तना कहते हैं जैसा कि पुनर्नवा (*Boerhaavia*) में। आरोही स्तंभ वह होती है जो स्वयं के किसी विशेष वस्तु जैसे अंकुश अथवा पास की किसी वस्तु आदि का सहारा लेकर ऊपर की ओर चढ़ते हैं जैसे बोगेनविलिया अथवा प्रतान जैसे जंगली मटर आदि में।

स्तंभों के रूपांतरण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अधिकांश पादपों के स्तंभ अपने साधारण कार्य पूरा करते हैं, किंतु कुछ पादपों में यह विविध प्रकार की संरचनाओं में रूपांतरित होकर विभिन्न प्रकार के कार्य संपन्न करते हैं। ये परिस्थितियां प्रतिकूल मौसम में वर्ष प्रति वर्ष भोजन संग्रह कर जीवनयापन हेतु (चिरकालिकता), वर्धी जनन हेतु अथवा पादप को यांत्रिक अवलंब और सुरक्षा प्रदान करने के लिए हो सकते हैं। स्तंभों के विभिन्न रूपांतरण का अध्ययन हम अंत:भौमिक उपवायवी एवं वायवी प्रकारों में कर सकते हैं।

अंत:भौमिक रूपांतरण

कुछ पादपों में स्तंभ स्थायी रूप से अंत:भौमिक रहकर प्राय: सुप्तावस्था में बने रहते हैं और अनुकूल परिस्थितियां आने पर वर्ष प्रति वर्ष वायवी प्ररोह उत्पन्न करते हैं। इनमें पर्याप्त मात्रा में संचित खाद्य पदार्थ, जड़ें और कलिकाएं विद्यमान होती हैं। ऐसे स्तंभ अन्य पादप उत्पन्न करने के लिये "बीज" का कार्य कर सकते हैं (चित्र 16.8)। एक क्षैतिज स्थूल स्तंभ जिस पर स्पष्ट पर्व, पर्वसंधियां, कलिकाएं एवं शल्की पत्तियां विद्यमान होती हैं और जो क्षैतिज रूप में भूमि के अंदर शनै:शनै: बढ़ता है **प्रकंद** (rhizome) कहलाता है। अदरक, हल्दी, कैना, जल लिली, कुछ फर्न एवं ऐरेसी कुल के बहुत से सदस्य इस के उदाहरण हैं। **घनकंद** (corm) प्रकंद का संघटित रूप हैं जो उर्ध्व दशा में उगता है और स्पष्ट कलिकाएं एवं शल्क पत्र दर्शाते हैं। यह जमीकंद, अरबी एवं केसर में पाया जाता है। यदि नीचे पत्ती के अक्ष से निकलने वाली अंत:भौमिक शाखा बाहर की ओर क्षैतिज रूप में बढ़कर शीर्ष पर फूल जाती है तो **कंद** (tuber) कहलाती है, इसमें कई कलिकाएं (आंखें) विद्यमान होती हैं जो नए पौधों में परिवर्धित हो जाती हैं जैसे कि आलू में। शल्क कंद में (bulb) पूरे के पूरे प्ररोह का रूपांतरण होता है और इसमें सूक्ष्मीकृत थोड़ा सा शंकुरूप स्तंभ, शीर्षकलिक और कई शल्की पत्तियां विद्यमान होती हैं जो स्तंभ की ऊपरी सतह से उगती हैं। इसके आधार से झकड़ा जड़ों के समूह उगते हैं इनकी मांसल

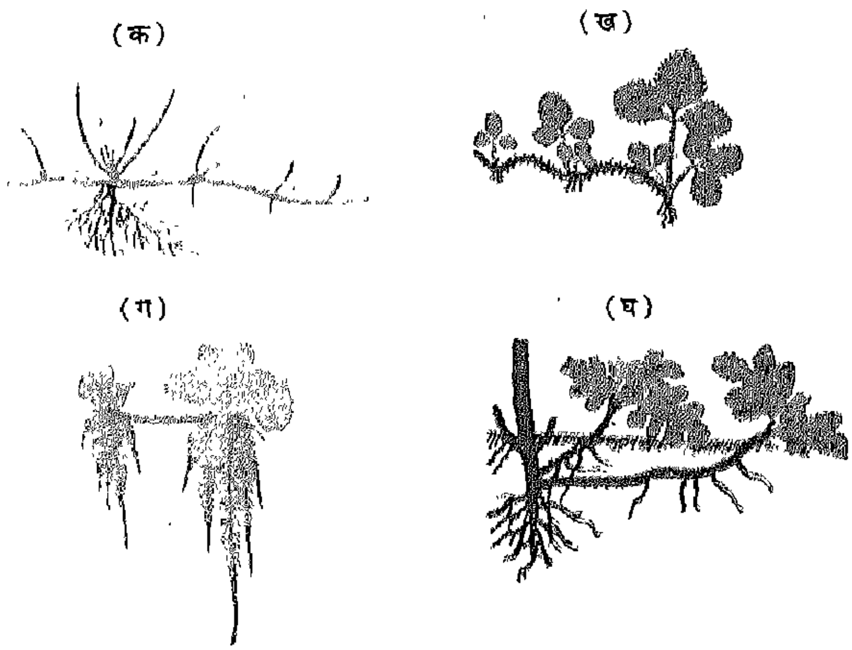


चित्र 16.8 अंतःभौमिक स्तंभ के रूपांतरण (क) प्रकंद (ख) घनकंद (ग) कंद (घ) शल्ककंद

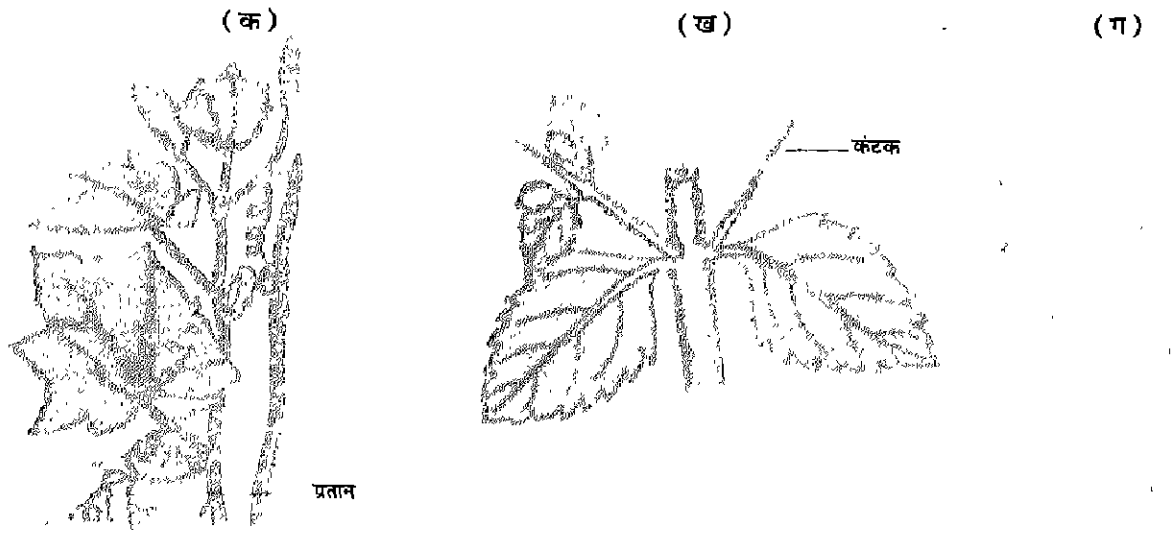
शल्की पत्तियों में पर्याप्त मात्रा में भोजन संग्रहीत होता है जैसे कि प्याज एवं लहसुन में।

उपवायवीय रूपांतरण

कुछ स्पीशीजों में स्तंभ आंशिक रूप से वायवी और आंशिक रूप से अंतःभौमिक होते हैं (चित्र 16.9)। इनमें **उपरिभूस्तारी** (runner) एक प्रकार की पतली शाखा होती है जो अक्षीय कली से बढ़कर भूमि पर जड़ों एवं पर्वसंधियों की सहायता से आगे बढ़ती रहती है। यह मातृ पादप से टूटकर स्वतंत्र रूप से भी वर्धन कर सकता है जैसे कि खट्टी-बूटी (oxalis)। वन्य स्ट्रोबेरी एवं पोदीना में स्तंभ के आधार से तिरछी शाखाओं का उद्गम होता है जो



चित्र 16.9 स्तंभ के उपवायवी रूपांतरण (क) उपरिभूस्तारी (ख) भूस्तारी (ग) भूस्तरिका (घ) अंतःभूस्तारी



चित्र 16.10 स्तंभ के वायवी रूपांतरण (क) प्रतान (ख) कंटक (ग) पर्णाभ वृंत

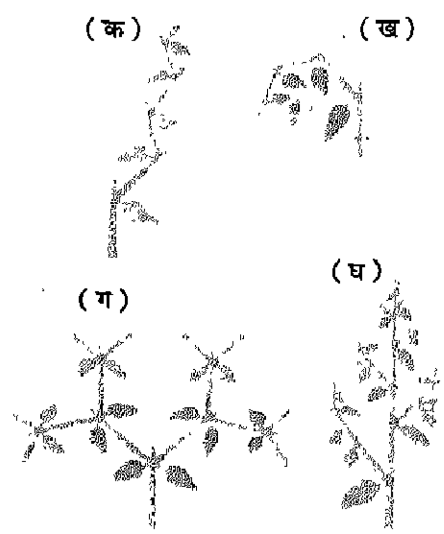
भूस्तारी (stolon) कहलाती हैं। **भूस्तरिका** (offset) वे स्तंभ हैं जो पत्ती के अक्ष में एक सूक्ष्म, स्थूलित क्षैतिज शाखा के रूप में उगती हैं और दीर्घीकृत होकर पत्तियों का एक गुच्छा ऊपर की ओर तथा सूक्ष्म जड़ों के झुंड नीचे की ओर उत्पन्न करते हैं जैसे कि आइकोर्निया एवं पिस्टिया में। केला, अनानास एवं गुलदाऊदी (chrysanthemum) में पार्श्वरूप से उगने वाली शाखाएं तिरछी दिशा में ऊपर की ओर बढ़ती हैं और पत्तीयुक्त प्ररोहों को जन्म देती है। ये **अंत:भूस्तारी** (suckers) कहलाते हैं जो पादप से अलग होकर नए पौधों को जन्म देते हैं।

वायवीय रूपांतरण

कुछ पादपों में स्तंभ और शाखाएं निश्चित कार्यों जैसे कि आरोहरा, और अवलंब के लिए **प्रतान** (tendril) में रूपांतरित होते हैं। उदाहरण के लिए पैसियन फ्लावर तथा वाइटिस। नींबू, अनार तथा करौंदा में अक्षी एवं शीर्ष कलिकाओं समेत स्तंभी **कंटकों** (thorns) में रूपांतरित होकर पादप को सुरक्षा प्रदान करता है। **तीक्ष्ण वर्ध** (prickle) भी स्तंभ के रूपांतरण है और आरोही का कार्य करते हैं। ये स्तंभ की सतह पर विकसित होते हैं और गुलाब एवं आलू बुखारे में अनियमित रूप से स्थित होते हैं। नागफनी और झाऊ जैसे सामान्य रूप से मरूद्भिदी पादपों में पाए जाने वाले **पर्णाभ वृंत** (phylloclades) असीमित वृद्धि-धारी चौड़ी और बेलनाकार हरी शाखाओं के रूप में होते हैं। इन पादपों में पत्तियां या तो शीघ्र ही गिर जाती हैं अथवा ये छोटे-छोटे कांटों में रूपांतरित हो जाती हैं (चित्र 16.10)। शतावर और रस्कस में निश्चित वृद्धि धारी शाखाएं हरी चपटी पत्ती के समान हो जाती है जिसे **पर्णाभ पर्व** (cladodes) कहते हैं। **पत्रप्रकलिका** (bulbil) एक रूपांतरित वर्धी कलिका है जिसमें जनन के लिए भोजन संचित होता है जैसे अगेव में (चित्र 16.10) में स्तंभ के वायवी रूपांतरण दिए गए हैं।

स्तंभ की शाखाएं

प्ररोह का मुख्य अक्ष (स्तंभ) शाखाओं को उत्पन्न करता है। शाखाएं या तो पार्श्व में निकलती है या द्विभाजी निकलती हैं (चित्र 16.11)। पार्श्व शाखाएं मुख्य अक्ष के पार्श्व से निकलती हैं और इनमें सीमित वृद्धि (ससीमाक्ष प्रकार) अथवा असीमित वृद्धि (असीमाक्ष प्रकार) हो सकती हैं। ससीमाक्षी शाखा अग्रस्थ कली से बनती है और कुछ समय बाद बढ़ना बंद कर देती है। पार्श्व शाखाएं अधिक सशक्त उगती हैं और फलस्वरूप पादप फैलता है और यह उसे लगभग गुम्बद की आकार प्रदान करती हैं। यदि एक ही समय में केवल एक पार्श्व शाखा पैदा होती है तो यह पद्धति **एकशाखी** (uniparous) है, जैसे कि अशोक (केवल एक ओर) अथवा अंगूर (एकांतर दिशाएं) है। *मिराबिलिस* में दो पार्श्वकक्ष एक साथ विकसित होते हैं और वे **द्विशाखी** (biparous)



चित्र 16.11 स्तंभ का शाखन (क, ख) एकशाखी ससीमाक्ष (ग) द्विशाखी (घ) असीमाक्ष

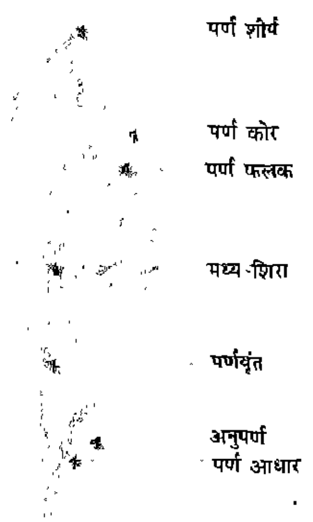
कहलाते हैं। यदि एक समय में दो से अधिक शाखाएं निकलती हैं तो यह बहुशाखी (multi-parous) कहलाती हैं जैसे कि क्रोटोन और यूफोबिया। असीमाक्ष में शाखाएं अग्रस्थ असीमिति रूप में बढ़ती रहती हैं और पार्श्व शाखाओं को अग्राभिसारी उत्तराधिकार अथवा अनुक्रम से वंचित कर देती हैं। फलस्वरूप पादप शंक्वाकार या गुम्बदाकार आकार ले लेता है उदाहरण – नकली अशोक (*Polyalthia*) और कैजुआरिना (*Casuarina*)। कुछ पादपों में अग्रस्थ कलिका दो शाखाओं का उत्पादन करती हैं। केवड़ा (स्क्रूपाइन *pandanus*) तथा *हाइफीनी* (*Hyphaene*, एक प्रकार का ताड़) इस वर्ग के अच्छे उदाहरण हैं।

16.3 पत्ती की संरचना

पत्ती स्तंभ या शाखा की पार्श्व बहि:वर्धन है जो कली पर विकसित होती है। यह अग्रभिसारी अनुक्रम में व्यवस्थित होती हैं और इनका उद्भव पत्ती के Primordia से होता है। विपुल पर्णहरित धारी और रंग में हरी होने के कारण यह पादप का सर्वाधिक सुस्पष्ट वर्धी भाग हैं। पत्तियों का पादपों पर रहने का समय बहुत सीमा तक भिन्न होता है। यदि ये निकलते दृष्टिगत ही झड़ जाती हैं या कली के खुलते ही गिर जाती हैं तो वे **आशुपाती** (caducous) कहलाती हैं। यदि वे स्तंभ के साथ एक ऋतु रहती है और प्राय: जाड़े में गिरती हैं तो **पर्णपाती** (deciduous) कहलाती हैं। वे पतियां जो एक ऋतु से अधिक रहती हैं या कई वर्षों तक रहती हैं, वे **सदाबहार** कहलाती हैं।

पत्ती के भाग

एक प्ररुपी पत्ती में तीन प्रमुख भाग-पर्ण आधार, पर्णवृंत एवं फलक होते हैं (चित्र 16.12)। पर्ण आधार स्तंभ से संलग्न होता है और इसके पार्श्व में एक पर्णिल प्रवर्ध, अनुपर्ण

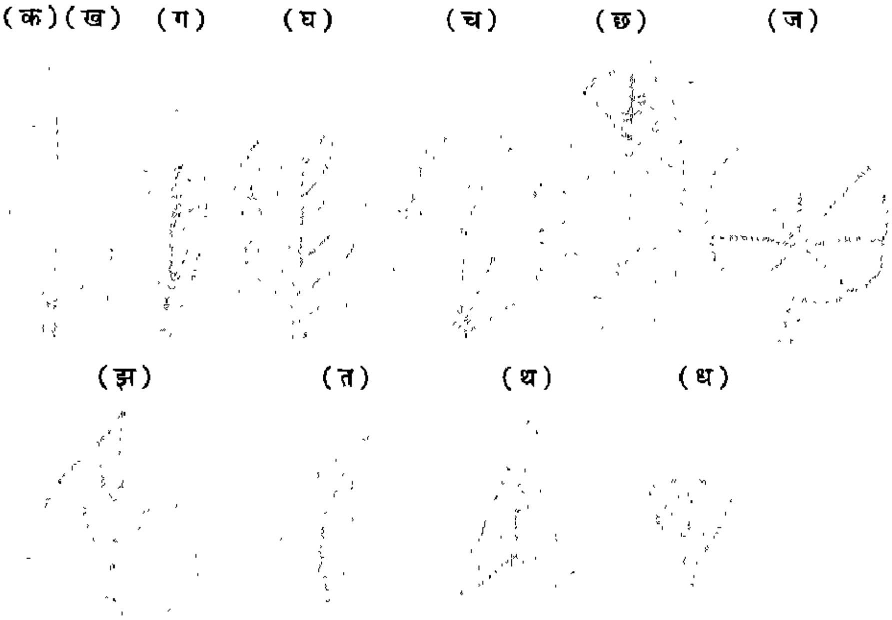


चित्र 16.12 पत्ती के भाग

(stipule) उपस्थित रहता है। एक बीजपत्री पौधों में यह विस्तृत होकर एक आच्छद का रूप ले लेती है और स्तंभ को आंशिक अथवा पूर्णत: आवृत कर लेता है। फाबेसी कुल (Fabaceae) के सदस्यों में पर्ण आधार फूल कर एक पर्णवृंत तल्प (pulvinus) को जन्म देता है। पर्णवृंत पत्ती का दूसरा भाग है जो इसके पर्ण फलक को उपयुक्त सूर्य का प्रकाश ग्रहण करने के लिए अग्रसर करता है। कुछ पादपों में यह अनुपस्थित होता है, और तब पत्ती अवृंत हो जाती है। सामान्यत: पर्णवृंत गोल, सपाट अथवा खांचेदार होता है, लेकिन जल-मंजनी (*Eichhornia*) में तो यह फूल जाता है और नींबू जातियों में यह पंखदार बन जाता है। आस्ट्रेलियन बबूल में यह हसियास्वरूप फलक में रूपांतरित हो जाता है।

पत्ती का पर्ण फलक हरा विस्तृत भाग होता है जिसमें शिराएं एवं उपशिराएं विद्यमान होती हैं। इसमें आकार, कोर शीर्ष, सतह और फलक की कटान जैसे लक्षणों में अत्यंत *विविधता पाई जाती है (चित्र 16.13)। यह सुई-आकार का* हो सकता है जैसे चीड़ में, रेखाकार जैसे घासों में, नोकदार जैसे बांस एवं कनेर में, अंडाकार जैसे अमरूद और जामुन में, ओवेट जैसे गुड़हल एवं बरगद में, आयताकार जैसे केला में, गोलाकार जैसे कि कमल में, हृदयाकार जैसे कि पान में, त्रियक जैसे कि बिगोनिआ एवं नीम में, स्पेचुला के आकार की जैसे कि सनड्यू और गैंदे में, बाणाकार, जैसे कि अरबी में, हंसियाकर जैसे कि यूकिलीप्टस में, वीणाकार जैसे मूली में। फलक की कोर अखंड हल्की लहरियादार, गहरी लहरदार, खांचेदार, दंतिल अथवा कंटकयुक्त आदि हो सकती है। पत्ती के शीर्ष में भी अत्यधिक विविधता पाई जाती है यह मोथरी (बरगद), नुकीली (गुड़हल), लम्बाग्र (पीपल), नोकदार (खजूर), रेट्स (पिस्टिया), कोरखांची (कचनार), प्रतानी (केले) में आदि-आदि प्रकार की हो सकती है। फलक की सतह चिकनी, खुरदरी, कांटेदार, रोमिल आदि हो सकती हैं।

पत्तियों के फलक में शिराविन्यास जल, खनिज लवण, निर्मित भोजन के संवहन के साथ-साथ इसे सहारा भी प्रदान करता है। सामान्यत: द्विबीजपत्रियों में यह जालिकावत् (reticulate) और एकबीजपत्रियों में समानांतर होती है। यह एकशिरीय जालिकावत् जैसे कि आम और पीपल की पत्तियों में, एकशिरीय समानांतर जैसे केला और केली में, बहुशिरीय जालिकावत् जैसे अरंडी, चाइना रोज और आलू बुखारा में, और बहुशिरीय समानांतर जैसे घासों में और ताड़ में हो सकती है (चित्र 16.14)। पर्णफलक में कटाव किनारे से आरंभ होकर मध्य शिरा की ओर

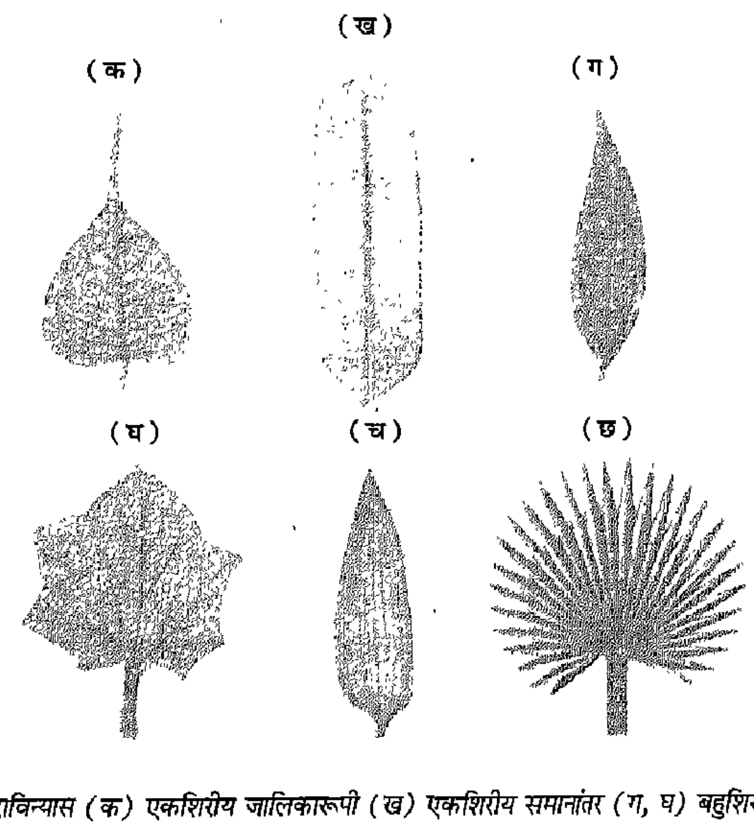


चित्र 16.13 पर्ण के फलक के प्रकार: (क) सूच्याकार (ख) रेखाकार (ग) भालाकार (घ) अंडाकार (च) ओवेट (छ) दीर्घायत (ज) वर्तुल, (झ) हृदयाकार (त) तिर्यक (थ) बाणाकार (ध) स्पैचुलाकार

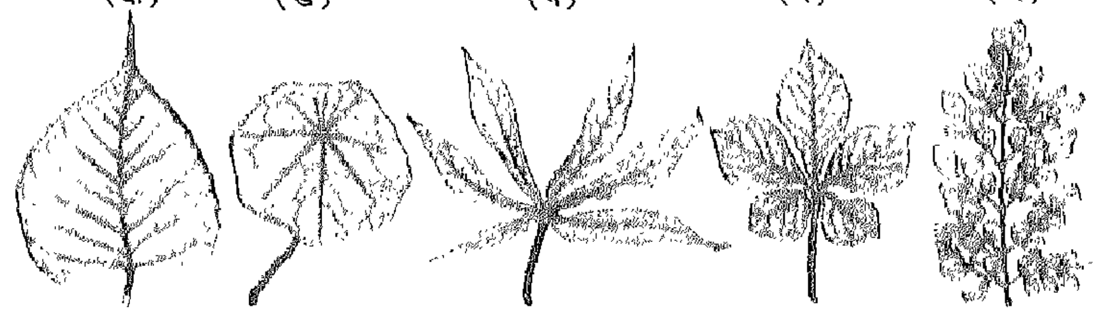
हो सकता है। पिच्छाकार (Pinnate) जैसा कि कोसमोस अमलतास में अथवा यह कटाव आधार की ओर भी हो सकता है हस्ताकार (Palmate) जैसे कि अरंडी, कसावा और कपास में।

पत्तियों के प्रकार

सरल पत्ती एक फलक की बनी होती है। फलक अछिन्न हो सकता है अथवा विभिन्न गहराईयों तक खंडित हो सकता है। यदि



चित्र 16.14 . पत्तियों में शिराविन्यास (क) एकशिरीय जालिकारूपी (ख) एकशिरीय समानांतर (ग, घ) बहुशिरीय जालिकारूपी (च, छ) बहुशिरीय समानान्तर



चित्र 16.15 पत्तियों के प्रकार, (क-ग) सरल (घ, च) संयुक्त

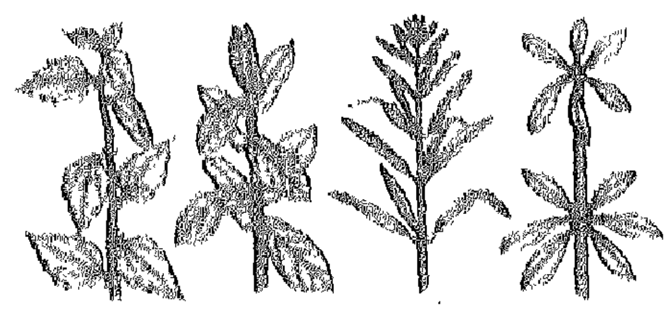
कटाव मध्य शिरा तक अथवा पर्णवृंत तक जा कर पर्णफलक को कई खंडों अथवा पत्रकों में विभाजित कर देता है तो इसे संयुक्त (compound) पत्ती कहते हैं (चित्र 16.15)। प्रत्येक सरल तथा संयुक्त पत्ती के पर्णवृंत के आधार पर एक कलिका विद्यमान होती है, लेकिन यह संयुक्त पत्ती के पत्रकों के आधार पर नहीं होती। यदि संयुक्त पत्ती की पाक्ष के दोनों ओर पार्श्व में कई पत्रक लगे होते हैं तो यह **पिच्छाकार** (pinnate) कहलाती है जबकि **हस्ताकार** (palmate) प्रकार की संयुक्त पत्ती में पर्णवृंत के सिरे पर सुस्पष्ट पत्रक अथवा अरीय खंड विद्यमान होते हैं उदाहरण : सेमल।

पिच्छाकार संयुक्त पत्ती में यदि पत्रक सीधे-सीधे लगे हों तो इसे एक पिच्छकी (unipinnate) कहते हैं। यदि पत्रक की संख्या सम है तो यह समपिच्छकी (paripinnate) होती है जैसे कि अमलतास तथा सेसवेनिया में। यदि पत्रक की संख्या असम है तो असम पिच्छकी (imparipinnate) कहते हैं जैसे नीम तथा गुलाब में। बबूल और छुईमुई में पत्ती द्विपिच्छकी होती है और मध्य शिरा द्वारा निर्मित पत्रक द्वितियक अक्षों पर लगते हैं। त्रिपिच्छिक की पत्तियों में जैसे सहजन में पत्रक तृतीयक अक्षों पर उत्पन्न होते हैं। यदि पत्ती तीन से अधिक बार पिच्छित हो जाए जैसे कि धनियां, और गाजर में तो यह विभीजक कहलाती है। हस्ताकार संयुक्त पत्तियां पत्रकों की संख्या के आधार पर एकपर्णी, द्विपर्णी और त्रिपर्णक आदि हो सकती है।

पत्तियों को पर्ण समूह कहा जाता है यदि वे हरी, सपाट, स्तंभ की पर्वसंधि के पार्श्व या शाखा पर लगी हों। बीज पत्री हैं यदि भ्रूण की अक्ष पर लगे हुए हैं; और शल्की यदि न्यूनीकृत, अवृंत, प्राय: भूरे रंग की जो कलिकाओं और कंदों पर विद्यमान होती है। सहपत्र भी पत्तियां हैं जो पुष्प अथवा पुष्प क्रम के आधार पर परिवर्धित होते हैं। अनुपर्ण जो पत्ती के आधार पर पार्श्व उपांग के रूप में बनते हैं; लिग्यूल-वे पत्तियां हैं जो पर्णक्षद के ऊपरी सिरे की ओर सूक्ष्म शल्की प्रवर्ध के रूप में उगती हैं जैसे घास में। पुष्पी पत्तियां - यह पुष्प के कायिक भागों जैसे कि बाह्य दल एवं दलपुट के रूप में होती हैं; बीजाणु पर्ण-यह बीजाणुधारी पत्तियां हैं और इनका संबंध पादपों के जनन से है।

पर्ण विन्यास

पत्तियों का स्तंभ अथवा शाखा पर संलग्न अथवा विन्यासित होने की स्थिति को पर्ण विन्यास कहते हैं (चित्र 16.16)। जब एक पर्व संधि पर मात्र एक पत्ती का उद्‌गम होता है जैसे कि सरसों, गुड़हल, सूर्यमुखी, यह एकांतरी (alternate type) कहलाती है। कई पौधों में प्रत्येक पर्व संधि से दो पत्तियां एक-दूसरे के सम्मुख (opposite) निकलती हैं। यदि पत्तियों का प्रत्येक क्रमिक जोड़ा अगले के समकोण पर उल्टी अवस्था में स्थित हो तो यह चतुष्क कहलाती हैं जैसे आक। कुछ अवस्थाओं में पत्तियों का जोड़ा सीधा नीचे के जोड़े के ऊपर स्थित होता है यह अध्यारोपित प्रकार कहलाता है जैसे अमरुद। यदि प्रत्येक पर्व संधि पर दो से अधिक पत्तियां हैं तो यह चक्रित रूप है, जैसे कि एल्सटोनिया और कनेर में।

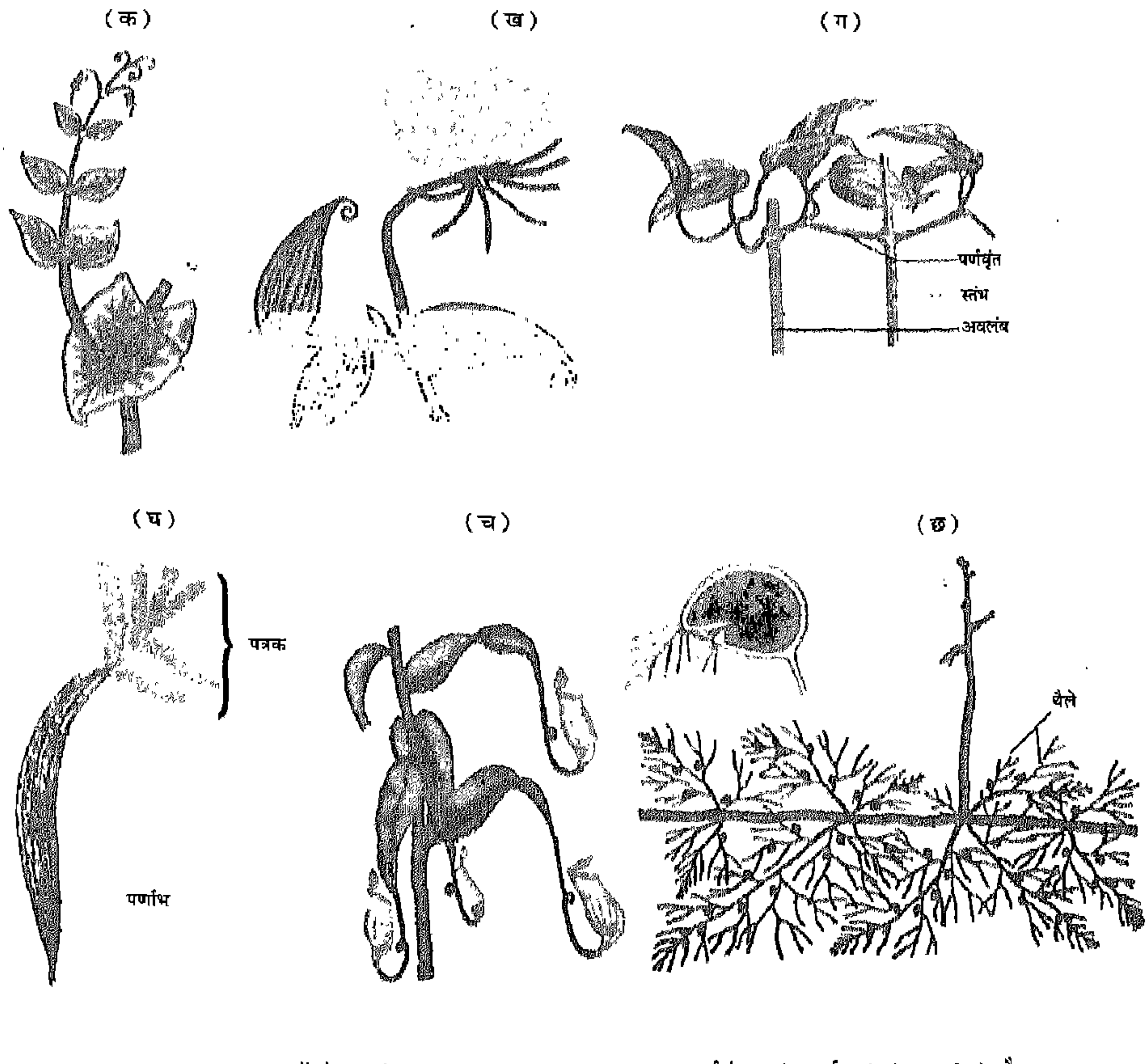


चित्र 16.16 पर्ण-विन्यास के प्रकार (क) एकांतर (ख) सम्मुख (ग, घ) चक्रित

पत्तियों के रूपांतरण

हम यह भली प्रकार जानते हैं कि पत्तियों का प्रमुख कार्य पादप के लिए भोजन संश्लेषण करना है। कुछ उदाहरणों में

यह पादप के अवलंब और संरक्षण प्रदान करने के साथ-साथ भोजन संग्रह एवं अन्य विशिष्ट कार्यों हेतु रूपांतरित हो जाती हैं (चित्र 16.17)। उदाहरण के लिए मीठी एवं जंगली मटरों, ग्लोरी लिली में पत्तियां तनु, तार जैसी पास-पास कुण्डलित प्रतानों (tendrils) में परिवर्तित हो जाती हैं। ये अत्यंत संवेदी होती हैं और पादप के लिए आरोही अंगों का कार्य करते हैं। इसी प्रकार बिगनोनियां अंगुश काटी (Bignonia unguis-cati) में शीर्ष पत्रक मुड़े हुए अंकुशों में रूपांतरित हो जाते हैं और पादप की आरोहण में सहायता करते हैं। कटेली *(Argemone)*, नागफनी *(Opuntia)* एवं ग्वारपाठा *(Aloe)* में पत्तियां तीक्ष्ण नोकदार संरचनाओं (कंटेला) में रूपांतरित होकर रक्षात्मक उद्देश्य पूरा करते हैं। कभी-कभी पत्तियां पतली शुष्क अवृंत झिल्ली सम संरचना में रूपांतरित होकर अक्षी कलिकाओं को संरक्षण प्रदान करती हैं जैसे कि बरगद *(Ficus)* तथा टैमेरिक्स में अथवा भोजन एवं जल संग्रह करती हैं जैसे कि प्याज में। आस्ट्रेलियन एकेशिया में पर्णवृंत हरा चपटी पत्ती की तरह हो जाता है जिसे **पर्णाभ** (phyllode) कहते हैं। कुछ पादपों में पत्तियां कीट पकड़ने के लिए ढक्कन युक्त घट घटपर्णी (Nepenthes) अथवा थैली जैसे यूट्रीक्यूलेरिया में रूपांतरित हो जाती हैं।



चित्र 16.17 पत्तियों के रूपांतरण (क, ख) प्रतान (ग) यमलन पर्णवृंत (घ) पर्णाभ (च) घट (छ) थैला

विषमपर्णता

कुछ पादपों में एक से अधिक प्रकार की पत्तियां पाई जाती हैं इस परिघटना को विषमपर्णता (heterophylly) कहते हैं (चित्र 16.18)।



चित्र 16.18 पादपों में विषमपर्णता

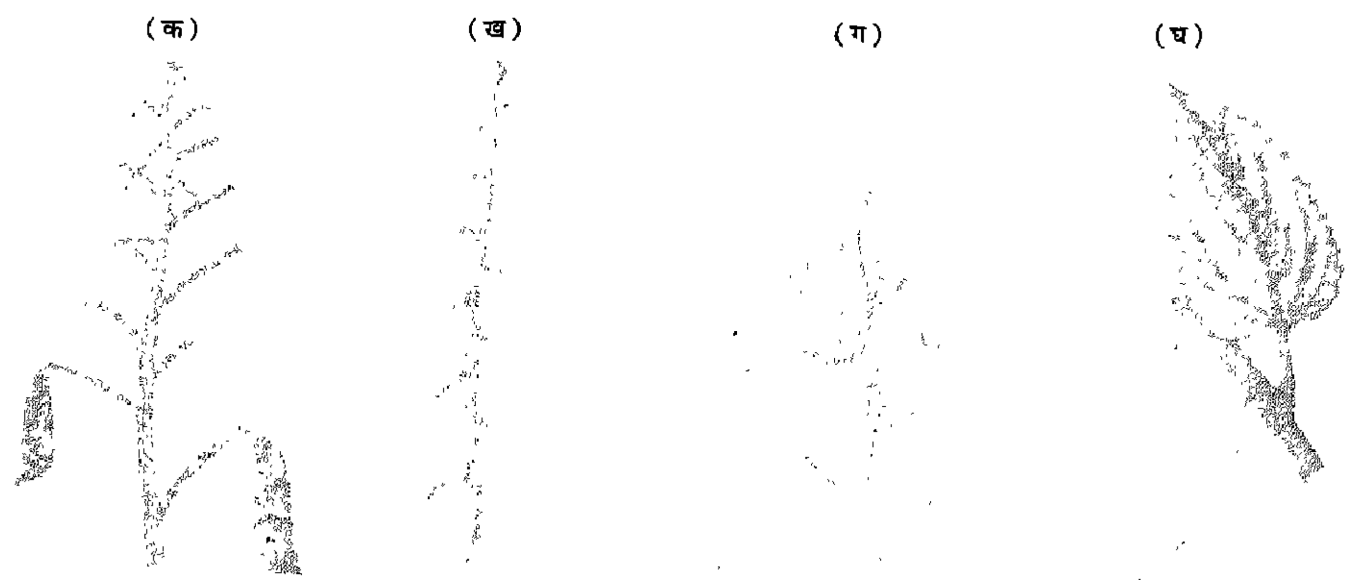
सामान्यतः यह ऐसे पादपों में मिलती है जो बहते हुए पानी में उगते हुए पाए जाते हैं। इनमें वायवी अथवा तैरती हुई पत्तियां तो चौड़ी, पूरी तरह विस्तृत होती हैं जब कि जलमग्न पत्तियां सकरी, फीता की तरह, रेखीय अथवा अत्यंत कटी-फटी होती हैं। जलधनिया *(Ranunculus aquatilis)* तथा सेजीटेरिआ की कुछ स्पीशीजों में इस लक्षण के कुछ अच्छे उदाहरण हैं। कुछ स्थलीय पादप जैसे कि कटहल *(Artocarpus heterophyllus)*, हेमोफ्रेग्मा हेटेरोफिल्लम, फाइकस हेटेरोफिल्ला भी यह स्थिति दर्शाते है,

16.4 पुष्पक्रम

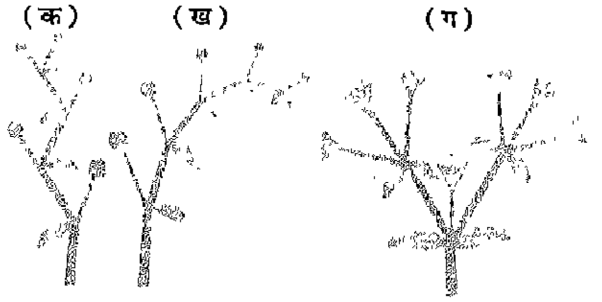
पुष्पक्रम पुष्पी अक्ष पर फूलों के सजने को कहते हैं। पुष्पक्रम को धारण करने वाले दंड को पुष्पदंड *(Peduncle)* कहते हैं। यह इसके शीर्ष अथवा कक्ष में बनता है और एक अथवा कई पुष्प धारण करता है। यह विविध प्रकार से शाखित होता है। पुष्पदंड पर शाखन विधि के अनुसार पुष्पक्रम मुख्यतः दो प्रकार का होता है - **असीमाक्ष** (racemose) जिसमें असीमित वृद्धि होती है तथा **ससीमाक्ष** (cymose) जिसमें मुख्य अक्ष की वृद्धि सीमित होती है।

असीमाक्ष पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष पुष्प के रूप में समाप्त नहीं होता और सतत् रूप से पार्श्व की ओर आरोही क्रम में निर्मित होते रहते हैं। इस प्रकार दीर्घीकृत, मुख्य अक्ष पर बहुत-से वृंत युक्त, पुष्प लगते हैं जैसे कि मूली, सरसों तथा गुलमोहर आदि में ये असीमाक्ष पुष्प क्रम के अच्छे उदाहरण हैं। अदेटोडा (Adhatoda) एवं एमेरेनथस (Amaranthus) के परिप्रेक्ष में बढ़े हुए मुख्य अक्ष पर व्यवस्थित अवृंतपुष्प हो तो यह शूकी (spike) कहलाता है। घास के फूलों में छोटी शूकी एक या अधिक पुष्प धारण किए होती है तो इसे अनुशूकी (spikelets) कहते हैं। शहतूत (mulberry) भोजपत्र *(Betula)* तथा ओक (oak) में पुष्पदंड लंबा एवं पतला ओर घड़ी के समान नीचे लटका रखा है। पुष्पदंड के चारों ओर अवृंत तथा एकलिंगी पुष्प लगे रहते हैं। ऐसा क्रम मंजरी अथवा **कैटकिन** (catkin) कहलाता है। शूकी मॉसल अक्ष के साथ चमकीले रंग सहपत्रों से आवृत्त जैसे कि केला, ऐरॉयड और ताड़ में, **स्थूलमंजरी** (spadix) कहलाती है। चित्र 16.19 में असीमाक्षी पुष्पक्रम के कुछ प्रकार दिए गए हैं।

समसिख (corymb) में मुख्यअक्ष अपेक्षाकृत छोटा होता है तथा नीचे वाले पुष्पों के पुष्पवृंत ऊपर वाले पुष्पों की तुलना में इतने अधिक लंबे होते हैं कि सभी पुष्प एक ही सतह पर लगे प्रतीत होते हैं जैसे कि कैंडीटफ्ट में। **छत्रक** (umbel) मुख्य अक्ष अथवा पुष्पवृंत के बहुत छोटे होकर पुष्पों का एक गुच्छा धारण करते हैं तथा पुष्पवृंत के आधार पर छोटे-छोटे सहपत्र



चित्र 16.19 असीमाक्षी पुष्पक्रम के प्रकार (क) असीमाक्ष (ख) स्पाइक (शूकी) (ग) स्पाइकिका (घ) कैटकिन (मंजरी)



चित्र 16.20 ससीमाक्ष पुष्पक्रम के प्रकार (क, ख) एकशाखी (ग) द्विशाखी

होते हैं जो मिलकर सहपत्र-चक्र (involucre) बनाते हैं जैसे कोरिएंडर। कुछ पुष्पक्रमों में मुख्यअक्ष चपटा हो जाता है और उस पर अवृंत, छोटे पुष्पों के समूह अथवा पुष्पक लगे रहते हैं। सामान्यतः सभी पुष्पक चपटे पात्र पर लगे होते हैं और उन्हें रश्मि पुष्पक (बाहर की ओर स्थित होते हैं) और बिम्बपुष्पक (मध्य में होते हैं) में वर्गीकृत कर सकते हैं। पूर्ण पुष्पक्रम एक अकेले फूल के समान दिखाई देता है। इसे *अग्राभिसारी मुंडक* अथवा **कैपिटुलम** कहते हैं। इस प्रकार का पुष्पक्रम सूर्यमुखी, जीनिया एवं गेंदा इत्यादि पादपों में मिलता है। यदि मुख्यअक्ष शाखित है और फूल शाखाओं पर लगे हों तो पुष्पक्रम यौगिक होता है। यौगिक असीमाक्षी के उदाहरण हैं गुलमोहर तथा नीम, यौगिक शूकी का गेंहू, यौगिक स्थूल मंजरी का ताड़, यौगिक समसिख का कैंडीटफट तथा यौगिक छत्रक का धनिया है।

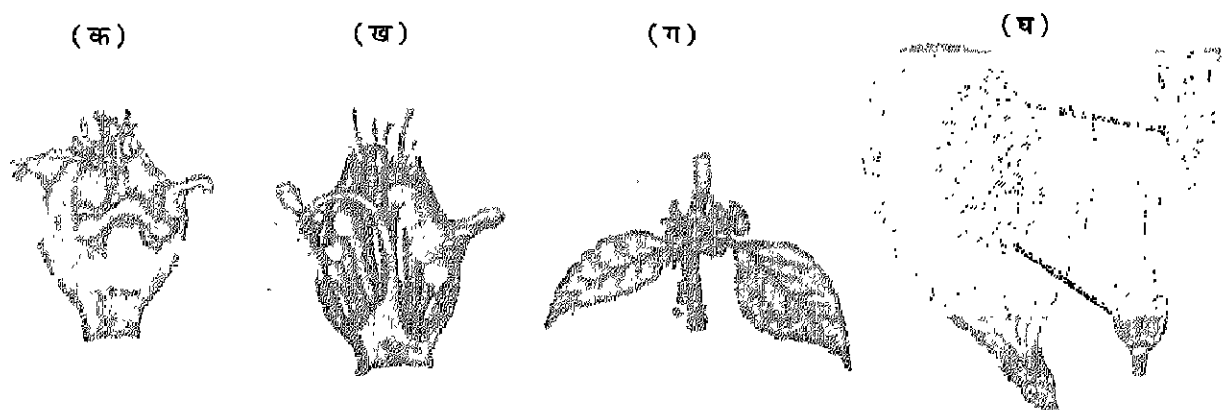
ससीमाक्ष पुष्पक्रम में (चित्र 16.20) मुख्य अक्ष के शीर्ष पर एक फूल होने के कारण उसकी वृद्धि रुक जाती है। एक शाखित ससीमाक्ष में मुख्य अक्ष के शीर्ष पर एक फूल होता है और केवल एक शाखा होती है जिसके शीर्ष पर भी एक फूल होता है, जैसाकि बिगोनिया, सनडयु में तथा सोलानम की कुछ स्पीशीज़। बॉगेनविलिया, जैसमीन तथा टीक में मुख्य अक्ष फूल पर खत्म हो जाता है और उनके पार्श्व से दो शाखाएं निकलती है जिसकी प्रत्येक शाखा के शीर्ष पर एक-एक फूल होता है। इसे द्विशाखित ससीमाक्ष कहते हैं। बहुशाखित ससीमाक्ष में मुख्य अक्ष फूल सहित समाप्त हो जाता है और उसके चारों ओर बहुत से फूल पार्श्व में होते हैं जैसे मदार (आक) तथा एस्कलीपिआंस में।

साऐथियम (Cyathium) एक विशिष्ट प्रकार का ससीमाक्ष पुष्प क्रम है। यूफोर्बिया इसका सामान्य उदाहरण है। इसमें सहपत्र-चक्र (involucre) प्याले के आकार का होता है। सहपत्र चक्र के भीतर अनेक नर पुष्प, एक मादा पुष्प के चारों ओर होते हैं। सहपत्र-चक्र के मुख के चारों ओर मकरंद स्रावित करने वाली ग्रंथियां होती हैं। **कूटचक्र** (Verticillaster) भी एक अलग प्रकार का ससीमाक्ष पुष्प क्रम है जो तुलसी (ocimum), साल्विया (salvia) एवं कोलियस (coleus) में स्पष्टत: देखा जा सकता है। इसमें पत्ती के कक्ष में अवृंत पुष्पों का एक गुच्छा होता है जो एक पर्व संधि पर एक आभासी गुच्छा बनाते हैं।

हाइपैंथोडियम (Hypanthodium) में एक नाशपाती सदृश्य पात्र अथवा पुष्पाक्ष में एक खोखली गुहिका निर्मित होती है, जिसके संकरों, शीर्ष द्वार, पर कई शल्क लगे होते हैं। भीतरी सतह पर पुष्प उत्पन्न होते हैं। जैसाकि फाइकस स्पीशीज़ में। चित्र 16.21 विशिष्ट प्रकार के पुष्पक्रम को दिखाता है।

16.5 पुष्प

पुष्प (The Flower) एक प्रकार का रूपांतरित प्ररोह है, जो लैंगिक जनन (reproduction) के लिए है। एक पूर्ण पुष्प में मुख्यत: चार भाग होते हैं– **बाह्यदल पुंज** तथा **दलपुंज**, (सहयोगी अंग), एवं **पुमंग** एवं **जायांग** (जनन अंग) होते है। चारों भाग एक चक्राकार, ढंग से पुष्पासन पर लगे रहते हैं। पुष्पासन फूल के वृंत का फूला भाग होता है। पुष्प जिसमें एक जनन अंग पुंकेसर या अंडप हो वह एकलिंगी पुष्प एवं जिनमें दोनों अंग हो द्विलिंगी पुष्प कहलाते हैं। एकलिंगी पुष्प अपूर्ण कहलाते हैं जबकि द्विलिंगी पुष्प पूर्ण कहलाते हैं। पादप जिस पर एकलिंगी फूल



चित्र 16.21 विशेष प्रकार के पुष्पक्रम (क, ख) साऐथियम की अनुदैर्ध्यकाट (ग) कूटचक्र, (घ) हाइपैंथोडियम की अनुदैर्ध्य काट

पाए जाते हैं वे **मोनोसियस** अथवा **डायोसियस** हो सकते हैं। मोनोसियस (monoecious) में नर एवं मादा दोनों ही तरह के पुष्प पाए जाते हैं जैसे कि तोरई एवं लौकी में। डायोसियस (dioecious) में नर एवं मादा पुष्प अलग-अलग पादपों पर पाए जाते हैं, जैसे कि पपीता एवं मलवरी में। जिस पादप में द्विलिंगी एवं एकलिंगी यहां तक बिना लिंगी पुष्प पाए जाएं उन्हें **पोलीगेमस** (polygamous) कहते हैं उदाहरण के लिए आम एवं पोलीगोनम।

यदि किसी पुष्प को किसी भी लंबवत् आधार पर केंद्र की संधि में काटने पर दो बराबर भाग बने तो उसे **नियमित** या **त्रिज्यासममित** (actinomorphic) कहते हैं। उदाहरण के लिए सरसों, धतूरा एवं मिर्ची। अगर पुष्प एक खास लंबवत् आधार पर काटने पर दो बराबर भागों में बंटे तो उसे **एकव्यास सममित** (zygomorphic) कहते हैं जैसे कि मटर, सेम, गुलमोहर एवं कचनार में।

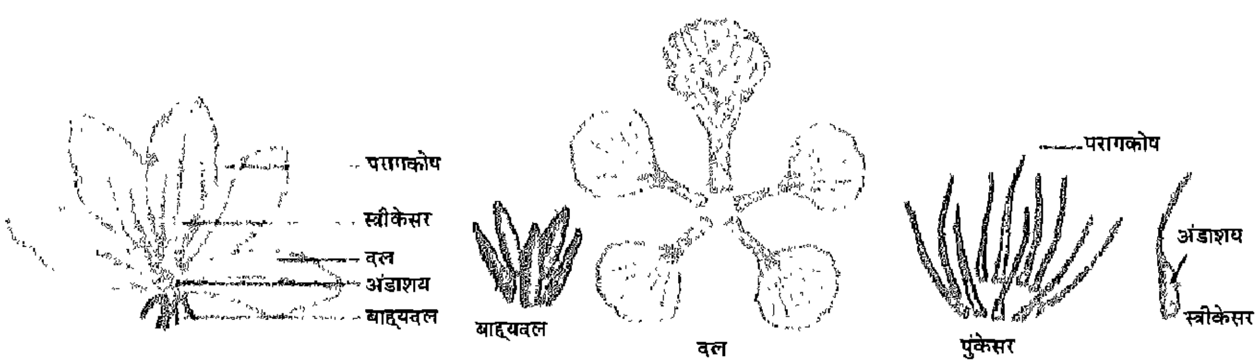
अगर पुष्प को किसी भी आधार से काटने पर दो बराबर भाग न बने तो उसे **अनियमित** (assymetrical) कहते हैं जैसे कि केला में। अगर पुष्प के सभी चक्रों में भागों की संख्या बराबर या समानुपाती हो तो पुष्प **समावयवी** (isomerous) कहलाता है। समावयवी पुष्प द्वि, त्रि, चार यहां तक कि पंचावयवी हो सकते हैं। इसके विपरीत **असमावयवी** (anisomerous) पुष्प होते हैं।

पुष्प के सभी अंग पुष्पासन पर निवेशित (inserted) होते हैं। सामान्यत: पुष्पासन अत्यंत सूक्ष्म एवं सपाट होता है लेकिन कुछ उदाहरणों में यह अत्यंत दीर्घीकृत हो जाता है और स्पष्ट पर्व एवं पर्वसंधि दर्शाता है। पुष्पांग प्राय: पुष्पाषन पर पूर्व वर्णित विशिष्ट क्रम में विन्यासित होते हैं, लेकिन कभी-कभी पुष्पासन की असामान्य वृद्धि के कारण बाह्यदल पुंज, दलपुंज एवं पुमंग की स्थिति अंडाशय के सापेक्ष अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। यह सापेक्ष स्थितियां तीन स्पष्ट प्रकार की होती हैं – **अधोजायांग** (hypogynous), **परिजायांग** (perigynous), एवं **ऊर्धा जायांग** (epigynous)। अधोजायांग में पुष्पासन, शंक्वाकार होता है। इसकी ऊपरी सतह में जायांग लगा रहता है जिसके नीचे सभी पुष्पपत्र क्रमश: लगे रहते हैं। चूंकि अंडाशय का निवेश अन्य पुष्पपत्रों के निवेश के ऊपर होता है। इसलिए अन्य सभी पुष्पपत्रों की अपेक्षा अंडाशय उत्तरीय (superior) अथवा उच्च हो जाती है। उदाहरणत: सरसों, गुडहल तथा बैंगन। परिजायांग पुष्पों में पुष्पासन एक डिस्क के आकार का होता है। इसके बीच में जायांग होता है और प्याले सदृश पुष्पाक्ष के किनारों पर अन्य सभी पुष्पपत्र लगे रहते हैं। इसमें अंडाशय आधा अधोवर्ती होता है जैसे प्लम तथा आड़ू में। ऊर्धा जायांग में पुष्पासन के किनारे और वृद्धि करते हैं और अंडाशय को पूरा घेर लेते हैं और इससे संलिग्त हो जाते हैं। इस प्रकार बाह्यदल, दलपुंज तथा पुंकेसर अंडाशय के ऊपर पहुंच जाते हैं। ऐसी दशा में अंडाशय अधोवर्ती होता है। ऊर्धा जायांग के उदाहरण सूर्यमुखी, अमरूद, खीरा, ककड़ी, लौकी, सेब इत्यादि के फूलों में मिलते हैं।

कुछ पुष्पों में एक विशेष प्रकार की पत्ती जिसे **सहपत्र** कहते है पुष्प के आधार पर उपस्थित होती है। अगर यह पत्ती पुष्प के डंठल पर हों तो उसे **सूक्ष्मसहपत्र** (bracteole) कहते हैं। सहपत्र वाले पुष्पों को **सहपत्री** (bracteate) एवं बिना सहपत्र के पुष्पों को **सहपत्ररहित** (ebracteate) कहते हैं। प्ररोह का वह भाग जिस पर पुष्प उत्पन्न होता है उसे **मातृअक्ष** कहते हैं। मातृअक्ष की तरफ के पुष्पांग पुष्प का परिवर्ती भाग एवं बाईं तरफ वाला हिस्सा पार्श्वीय भाग कहलाता हैं। यह दिगविन्यास पुष्प आरेख बनाते समय बहुत आवश्यक हो जाता है।

पुष्पों के भाग

जैसे कि पहले ही कहा जा चुका है कि एक प्रतिरूपी (typical) पुष्प चार भागों का बना होता है जिनके नाम बाह्यदल पुंज (Calyx), दलपुंज (corolla), पुमंग (androecium), जायांगीय (gynoecium) हैं (चित्र 16.22)। बाह्यदल पुंज फूल का सबसे बाहरी भाग है जिसमें बाह्यदल (sepal) होते हैं। सामान्यत: बाह्यदल हरे होते हैं किंतु बहुत से उदाहरणों में यह पंखुड़ी (petals) के रंग के भी हो सकते हैं वे एक-दूसरे से संयुक्त (gamosepalous) या मुक्त

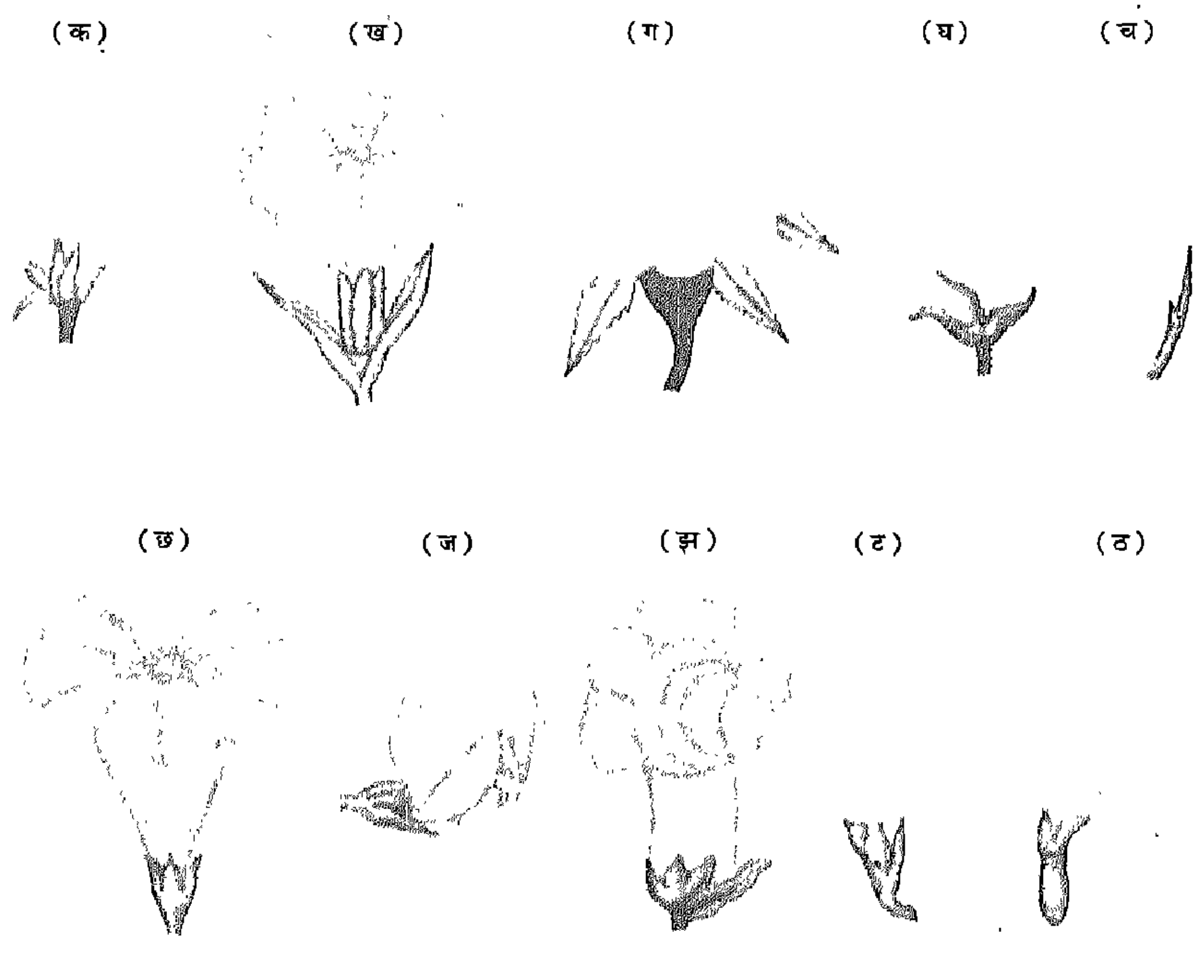


चित्र 16.22 पुष्प के भाग

(polysepalous) भी हो सकते हैं। कुछ दशाओं में बाह्यदल के ठीक नीचे सूक्ष्म तथा हरी अनुबंधों का आर्वत हो सकता है जिसे अनुबाह्यदलपुंज (epicalyx) कहते हैं। जैसे कि गुड़हल में। बाह्यदल पुंज का आशुपाती (caducous) या पर्णपाती (deciduous) अथवा सदाबहार (persistent) होना उसकी पंखुड़ियों का पुष्पासन के ऊपर अवधारण समयावधि के ऊपर निर्भर है।

दल, दलपुंज की पृथक इकाई है और यह बाह्यदल के अंदर की ओर स्थित होती है। वह मुक्त अथवा संयुक्त, सम्मित में नियमित तथा अनियमित हो सकता है। नियमित सम्मित की पंखुड़ी और पृथक दलीय अवस्था विभिन्न प्रकार का आकार ले सकती है जैसे कि क्रूसीफोर्म, कैरियोफिलेसिअस एवं रोजेसिअस। दूसरी ओर नियमित तथा संयुक्त दलीय दलपुंज नलिकाकार, घंटिका (bell) अथवा कीप (funnel) के आकार के हो सकते हैं। मुक्तदल अनियमित पुष्प, तितली अथवा पेपिलियोनेसियस (papilionaceous) आकार के हो सकते हैं, जैसे कि मटर। संयुक्त दलीय पुष्प द्विओष्ठी (bilabiate) मुहबंद (personate) एवं जिव्हाकार (ligulate) हो सकते हैं (चित्र 16.23)। कुछ पुष्पों में दलों के उपांग अथवा प्रवर्ध विद्यमान होते है जो **मुन्डिका** (spur) कहलाता है। पुष्प कलिका में दलों के एक ही आवर्त के सदस्यों के एक दूसरे के सापेक्ष विन्यासित होने की विधि **पुष्पदल विन्यास** (aestivation) कहलाती है। जब किनारे एक-दूसरे को ढकते नहीं हैं जैसे कि मदार एवं शरीफा में तो यह **कोरस्पर्शी** (valvate) प्रकार का कहलाता है। यदि अंग का एक किनारा दूसरे के एक किनारे को आवरित करता है और ऐसी स्थिति सतत् बनी रहती है जैसे कि गुड़हल एवं कपास में तो यह **व्यावर्तित** (twisted) कहलाती है। इसी प्रकार **कोरछादी** (impricate) एवं **वेक्सीलरी** (vexillary) प्रकार के पुष्पदल विन्यास भी होते हैं।

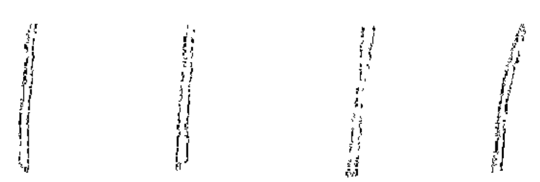
पुमंग पुष्प का नर जननांग है जिसमें कई पुंकेसर लगे होते हैं। प्रत्येक पुंकेसर के तीन भाग होते हैं। एक तंतु जो दंड (stalk) का कार्य करता है, संयोजक (connective) एवं **परागकोश** (anther)। परागकोश प्राय: द्विपालिक होता है और इसकी प्रत्येक पाली में दो पराग कक्ष (chambers) होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक परागकोश में



चित्र 16.23 दलचक्र के प्रकार (क) क्रूसीफोर्म (ख) कैरियोफिलेसीअस (ग) रोजेसिअस (घ) घंटिकाकार (च) नलिकाकार (छ) कीपाकार (ज) पेपिलियोनेसियस (झ) द्विओष्ठी (ट) मुहबंद (ठ) जिव्हाकार

चार कक्ष पाए जाते हैं। प्रत्येक कक्ष पराग-कणों से भरा होता है और दीर्घीकृत, अनुप्रस्थ, छिद्रित अथवा वाल्व द्वारा खुलता है। कुछ फूलों जैसे **सालविया एव वरवेसकम** में कुछ पुंकेसर पराग-कण विहीन होते हैं और सदैव बंध्य (sterile) होते हैं। इन्हें बंध्य पुंकेसर (staminode) कहते हैं। तंतु का परागकोश से जुड़ाव यदि आधार पर होता है तो यह **आधारलग्न** (basifixed) कहलाता है और यदि परागकोश की पीठ पर जुड़ा हो तो **अपाक्षलमी** (dorsifixed)कहलाती है।

माइकीलिया एवं **मैग्नोलिया** में तंतु परागकोश की पूरी लंबाई में जुड़े होते हैं जिससे यह **एडनेट** (adnate) कहलाता है। यदि यह तंतु परागकोश की पीठ पर एक बिंदु पर जुड़ा होता है, तो इसे **मुक्तदोली** (versatile) कहते हैं जैसे कि घासों में (चित्र 16.24)। पुष्प में पुंकेसर पूरी तरह स्वतंत्र हो सकते हैं और



चित्र 16.24 परागकोश का संलगन (क) आधारलग्न (ख) अपाक्षलग्नी (ग) संलग्न (घ) मुक्तदोली

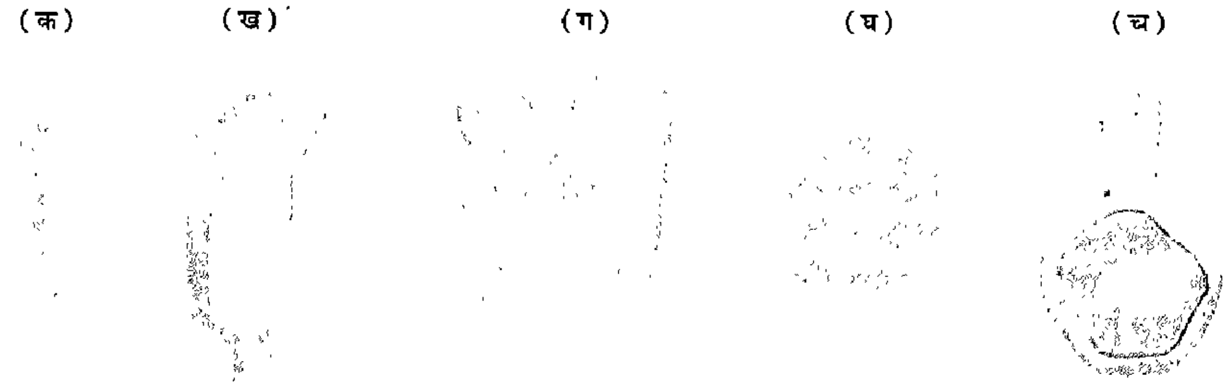
एक-दूसरे से विविध सीमाओं तक जुड़े रहते हैं। यदि यह दलपुटों से जुड़े हों तो **दललग्न** (epipetalous) कहलाते हैं यदि स्त्रीकेसरों से तो **पुंजायंगी** (gynandrous) और परिदलपुंज से संलग्न होने पर **अधिपर्णी** (epiphyllous) कहलाती है। पुंकेसरों की लंबाई में भी पर्याप्त विविधता दृष्टिगोचर होती है। लेमिएसी कुल के सदस्यों में चार पुंकेसरों में से दो लघु एवं दो दीर्घ होते हैं और यह स्थिति **द्विदीर्घी** (didynamous) कहलाती है। जब कि क्रूसीफेरी में **चतुर्दीर्घी** (tetradynamous) स्थिति पाई जाती है जिसमें अंदर के चार पुंकेसर लंबे और बाहर के दो लघु होते हैं।

जायांग पुष्प का स्त्री जननांग है जो एक अथवा कई स्त्रीकेसरों से मिलकर बनता है। प्रत्येक स्त्रीकेसर का आधार फैला हुआ होता है जिसमें एक या एक से अधिक बीजांड होते हैं और परागकण को ग्रहण करने के लिए उसकी सतह ग्राही होती है जिसे वर्तिकाग्र कहते हैं। अंडाशय तथा वर्तिकाग्र एक लंबी नली से जुड़े रहते हैं जिसे वर्तिका कहते हैं। बहुस्त्रीकेसरी अवस्था में स्त्रीकेसर मुक्त (वियुक्तांडपी-apocarpous) हो सकते हैं जैसे कमल तथा गुलाब में। ये संयुक्त भी हो सकते हैं (संयुक्तायी-syncarpous) जैसाकि टमाटर तथा सरसों में। प्रत्येक अंडाशय में एक या अधिक बीजांड (ovule) होते हैं जो चपटे एवं गद्देदार बीजांडन्यास पर लगे रहते हैं। वियुक्तांडपी स्त्रीकेसर में प्रायः एक कक्ष होता है जिसमें बीजांड लगे रहते हैं। कई संयुक्तायी अंडाशयों में दो या अधिक कक्ष होते है। संयुक्तायी स्त्रीकेसर जैसे कि घासों या झाड़ियों में केवल एक कक्ष हो जाता हैं एवं बांटने वाली दिवाल समाप्त हो जाती है। निषेचन के उपरांत अंडप बीजों में परिवर्धित हो जाते हैं और अंडाशय फल निर्मित करता है। फल की संरचना अंडाशय के संगठन में प्रयुक्त स्त्रीधारियों की संख्या का आभास प्रदान करता है। निषेचन के अयोग्य स्त्रीकेसर बंध्य **स्त्रीकेसर** (pistillode) कहलाती है। वर्तिका की स्थिति शीर्ष (terminal), पार्श्व (lateral) अथवा जायांगाधार (gynobasic) हो सकते हैं (ये चतुष्पालिक अंडाशय के धंसे हुए केंद्र से अथवा सीधे ही पुष्पासन से निकलते हैं)। शीर्ष वर्तिका अधिकांश पौधों में होती है, कुछ में जैसे आम में यह पार्श्व होती है, तथा जायांगाधार ऑसिमम तथा लैमिएसी के अन्य सदस्यों में होते हैं। वर्तिकाग्र के आकार एवं प्ररूप में पर्याप्त विविधता दृष्टिगत होती है। संयुक्तायी स्त्रीकेसर में वर्तिकाग्र एक सपाट तश्तरी-सम संरचना अथवा कई पालियों में विभक्त हो सकता है।

प्रायः पालियों की संख्या अंडाशय में अंडपों की संख्या पर निर्भर होती है। इस प्रकार अंडाशय, वर्तिका एवं वर्तिकाग्र के स्तर पर पूर्णतः संलग्नता (cohesion) दिखाई देती है अथवा यह एक और दो स्तरों पर स्वतंत्र भी हो सकती है।

बीजांडन्यास (Placentation)

अंडाशय में बीज़ांडों के सजने को बीजांडन्यास कहते हैं। बीजांडसन पर संलग्नता के आधार पर बीजांडन्यास **सीमांत**, **अक्षीय**, **भित्तीय**, **आधारीय**, **केंद्रीय** और **मुक्त केंद्रीय** प्रकार का हो सकता है (चित्र 16.25)। **सीमांत** (marginal) बीजांडन्यास, अंडप दो कोरों के जोड़ पर संलग्न होते हैं और इनमें वास्तविक बीजांड़ासन (true placenta) उपस्थित नहीं होता है। अंडाशय प्रायः एक कक्षीय होता है और यह स्थिति मटर एवं अन्य फलीय जातियों में पाई जाती है। यदि बीजांडासन पर बनने वाले अंडप, स्त्रीधानी के केंद्रीय कक्ष से परिवर्धित होते है जैसे कि नीबू, गुड़हल एवं टमाटर में, अंडाशय बहुकोष्ठीय होता है, तो यह **अक्षीय** (axile) बीजांडन्यास कहलाता हैं। बीजांड यदि अंडाशय की भीतरी दीवार अथवा सीमांत पर हो तो बीजांडन्यास भित्तीय होता है, जैसाकि आर्जीमोन तथा क्रूसीफेरी में। **मुक्त-केंद्रीय** (free-central) में अंडाशय सदैव एक कोष्ठीय होता है। बीजांड केंद्रीय कक्ष पर लगे रहते हैं, पट नहीं होते, उदाहरणार्थ कैरियोफिल्लेसी कुल के सदस्यों में जैसे **डाएंथस** आदि में। आधारीय बीजांडन्यास में बीजांडासन अंडाशय के आधार पर विकसित होता है। इसमें एक ही बीजांड होता है, जैसे सूर्यमुखी कुल में (चित्र 16.25)।



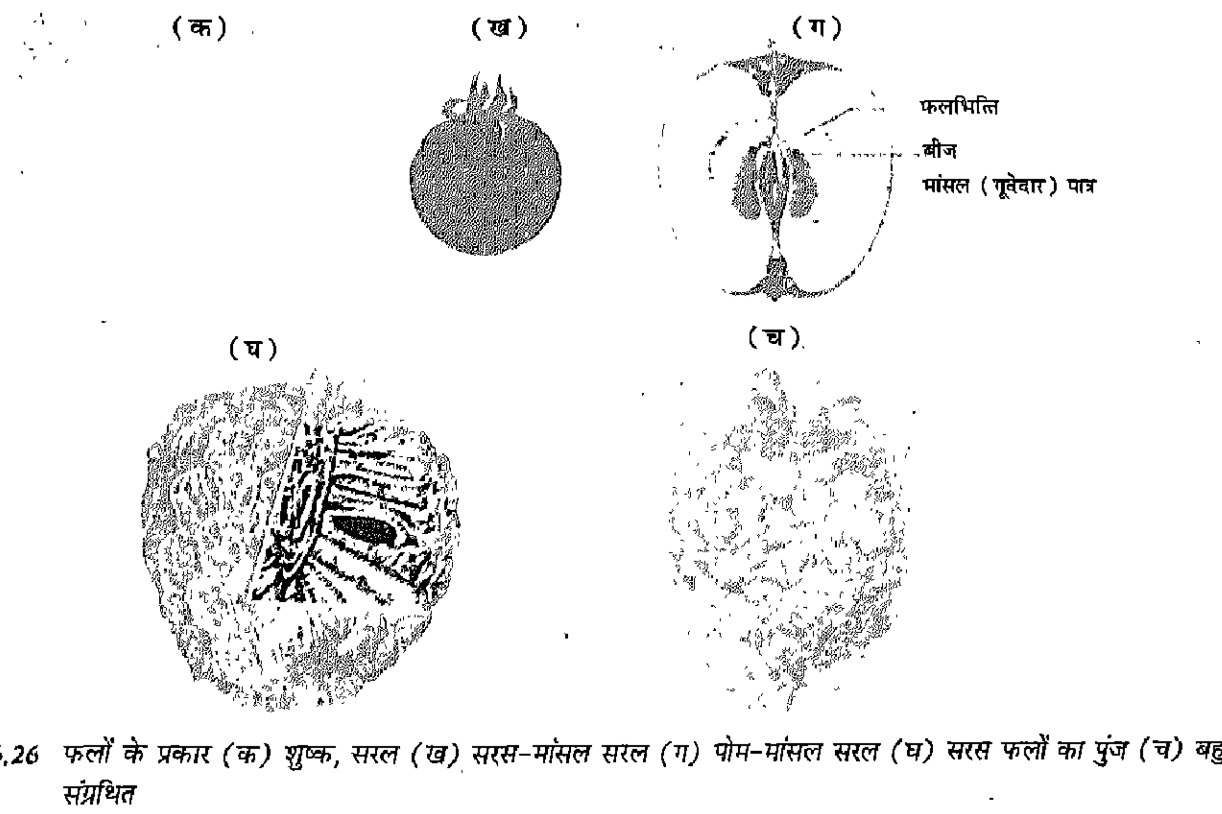
चित्र 16.25 बीजांडन्यास के प्रकार (क) सीमांत (ख) अक्षीय (ग) भित्तीय (घ) मुक्त-केंद्रीय (च) आधारीय

16.6 फल

फल (The fruit) एक परिपक्व अथवा पूर्ण निर्मित अंडाशय है। जिसका निर्माण निषेचन के उपरांत होता है। सामान्यत: इसमें एक भित्ति या फलभित्ति (pericarp) तथा बीज विद्यमान होते हैं। फलभित्ति शुष्क तथा गूदेदार हो सकती है। जब फलभित्ति गूदेदार होती है तो बाह्यफलभित्ति, मध्यफलभित्ति तथा अंत:फलभित्ति की बनी हो सकती है। कई बार फलभित्ति का विभेदन स्पष्ट नहीं होता है। कभी-कभी कुछ अन्य पुष्पीय भाग जैसे कि पुष्पासन और बाह्य दलपुंज भी पुष्प के भाग में परिवर्धित हो जाते हैं जैसे कि सेब (पुष्पासन), काजू (पुष्पावलि-वृंत) में। जो **कूट फल** (false or spurious fruits) कहलाते हैं जब कि अन्य सभी अंडाशय से निर्मित होने वाले को **वास्तविक फल** (true fruits) की संज्ञा दी जाती है।

फलों के प्रकार

फलों के आकार, रूप और संरचना में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। मोटे तौर पर उनकी उत्पत्ति एवं परिवर्धन के आधार पर इन्हें तीन समूहों में विभक्त किया जाता है। एक अंडाशय से परिवर्धित होने वाले फल सरल (simple) प्रकार के कहलाते हैं। यदि वियुक्तांडपी अंडाशय (apocarpous ovary) से बनने वाले फलों का एक झुंड बनाया जाए, तो यह पुंज फल (aggregate fruits) कहलाता है। जैसे कि मदार, लार्कस्पर (larkspur) एवं शरीफा (apple) में। जब फल पुष्पों के एक समूह अथवा पूर्ण पुष्पक्रम से विकसित होता है, तो यह **संग्रथित** (composite) कहा जाता है जैसे कि अनानास एवं शहतूत में (चित्र 16.26)।



चित्र 16.26 फलों के प्रकार (क) शुष्क, सरल (ख) सरस-मांसल सरल (ग) पोम-मांसल सरल (घ) सरस फलों का पुंज (च) बहुखंडी संग्रथित

मटर, मक्का, गेंहू, गेंदा, बबूल एवं धनिया में फल की भित्तियां शुष्क होती है और उनकी भित्तियां बाह्यभित्ति, मध्यभित्ति तथा अंत:भित्ति में विभेदित नहीं होती। अत: इन्हें शुष्क फल (dry fruit) कहते हैं। इसके विपरीत आम, टमाटर, सेब, नारंगी एवं अनार के फल की परतें भली-भांति विभेदित होती हैं। ऐसे फलों को **मांसल** फल (fleshy fruits) कहते हैं। ऐसे शुष्क फल जो पकने के उपरांत स्फुटित हो जाते हैं शिंब (मटर), फॉलीकल (आक), सिलिक्वा (सरसों) एवं सम्पुट (कपास) प्रकार के होते हैं। अस्फुट अथवा ऐकीनी फल कैरियोप्सिस (गेंहू), एकीन (पुनर्नवा), सिप्सैला (गेंदा), समारा (शाल) एवं दृढ़ फल (ओक) प्रकार के होते हैं। कुछ उदाहरणों में अस्फुटनशील फल पूर्ण पकने पर फटकर कई एकबीजी भागों का निर्माण करते हैं। ये मिदुर फल (schizocarpic fruits) कहलाते हैं, जैसे कि धनिया (coriander) और तुलसी में।

मांसल फल एक अथवा कई कोष्ठकीय, एक अथवा कई बीजधारी हो सकते हैं। और यह एकांडपी, द्विअंडपी अथवा बहुअंडपी, संयुक्ताडपी अंडाशय से बनते हैं। इनकी फल-भित्ति, बाह्यभित्ति (फल की त्वचा), मध्यभित्ति (मांसल एवं प्राय: खाद्य भाग) एवं अंत:भित्ति में विभेदित होती हैं। मांसल फलों के अष्ठिल (drupe) जिनमें अंत:भित्ति, कठोर एवं गुठलीदार, जैसे कि आम और आलूबुखारा में। सरस फल, अंत: भित्ति गूदेदार जैसे कि टमाटर और अमरुद में, अथवा विशेष प्रकार के सरस फल जैसे पीपो, (कद्दू, खीरा), पोम (सेब एवं नाशपाती), हैस्पिरीडियम, (नारंगी एवं नीबू), बलॉस्टा (अनार) एवं एंफीसारका (बेल)।

पुंज फल द्वि अथवा बहुअंडपी, व्युत्क्रांपी अंडाशय से परिवर्धित होते हैं। प्रत्येक अंडाशय एक लघु फल में परिवर्धित होता है यह लघुफल सामूहिक रूप से एक पुष्पासन पर बनते हैं और गुच्छों में नीचे गिर जाते हैं। ऐसे लघु फलों के झुंड को पुंज फल (etaerio) कहते हैं। फालीकल पुंज (मदार में) अकीनों का पुंज (गुलाब में), अष्ठिल फलों का पुंज (रसभरी) एवं सरस फलों का पुंज (शरीफा) में हो सकते हैं। संग्रथित अथवा बहुखंडी फल सोरोसिस प्रकार के हो सकते हैं जैसे कि अनानास, केवड़ा, कटहल एवं शहतूत में अथवा अंजीर फल या साइकोनस जैसे कि बरगद, अंजीर एवं पीपल में (सारणी 16.1)।

फलों का स्फुटन

स्फुटनशील फल (Dehiscence of fruits) फटकर अपने बीज अवमुक्त करने के लिए विभिन्न मार्ग अपनाते हैं। *पोर्चुलाका* (*Portulaca*) एवं *सेलोसिया* (*Celosia*) में बीज अनुप्रस्थ फटन से, अफीम (*poppy*) एवं तोरई (*Luffa*) में छिद्रों द्वारा, मटर और सेम में सीवन कपाटों से; कपास एवं भिंडी में कोष्ठकों से; अलसी और सरसों में पट अथवा विभाजक भित्ति द्वारा अवमुक्त होते हैं। जबकि धतूरा में कोष्ठिल स्फुटन होता है जिसमें कपाट फल से अलग होकर बीजों को केंद्रीय अक्ष से संलग्न स्थिति में छोड़ते हैं।

सारणी 16.1 : फल और उनके खाद्य भाग

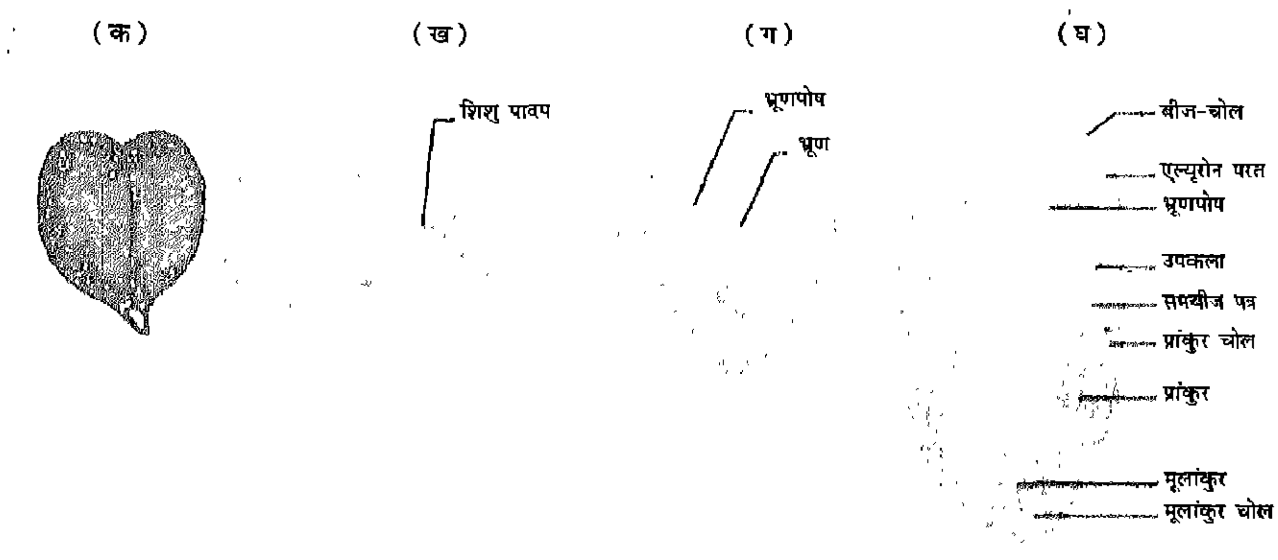
क्रमांक	फलों के नाम	प्रकार	खाद्य भाग
1.	सेब	**पोम**-मांसल, सरल	मांसल पुष्पासन
2.	केला	**सरस फल**-मांसल, सरल	मध्य-भित्ति एवं अंत:भित्ति
3.	काजू	**दृढ़फल**-अस्फुटनशील, सरल	पुष्पावलिवृंत एवं बीजपत्र
4.	नारियल	**अष्ठिल**-मांसल, सरल	भ्रूणपोष
5.	शरीफा	**सरस फल पुंज**-पुंज	फल-भित्ति
6.	खजूर	**सरस फल**-मांसल, सरल	फल-भित्ति
7.	कटहल	**सोरोसिस**-संग्रथित	सहपत्र, परिदलपुंज तथा बीज
8.	अंजीर	**साइकोनस**-संग्रथित	मांसल पत्र
9.	अमरूद	**सरस फल**-मांसल, सरल	पुष्पासन एवं फल भित्ति
10.	आम	**अष्ठिल**-मांसल, सरल	मध्य-भित्ति
11.	गेहूं	**कैरिओप्सिस**-अस्फुटनशील, सरल	मंडयुक्त भ्रूणपोष
12.	नारंगी	**हैस्पेरीडियम**-मांसल, सरल	रसदार बीजांडासन रोम
13.	टमाटर	**सरस फल**-मांसल, सरल	फलभित्ति एवं बीजांडासन
14.	नाशपाती	**पोम**-मांसल, सरल	मांसल पुष्पासन
15.	अनानास	**सोरोसिस**-संग्रथित	पुष्पासन का बाह्य-भाग
16.	लीची	मांसल, सरल	मांसल एवं रस-युक्त बीज

16.7 बीज

बीज (The seed), अंडाशय के भीतर, अंडपों से निषेचन के उपरांत परिवर्धित होते हैं। उनके आकार रूप एवं जीवंतता काल में बहुत विविधता पाई जाती है। बीज सामान्यत: बीज-पत्रों, प्रांकुर, बीज पत्राधर एवं मूलांकुर जैसे अंगों को आवरित किए बीज-चोलों से निर्मित होता है (चित्र 16.27)। बीजपत्रों में खाद्य पदार्थ संग्रहीत होता है जो अंकुरण एवं सुप्तावस्था में प्रयोग किया जाता है। प्रांकुर प्ररोह और मूलांकुर जड़ों में परिवर्धित होता है।

बीज पत्रों की संख्या के आधार पर बीजों को **एक बीजपत्री** (monocotyledon) एवं **द्विबीजपत्री** दो प्रकारों में पाया जाता है। द्विबीजपत्री को पुन: भ्रूणपोषधारी (endosperm) एवं भ्रूणपोष-विहीन (non-endospermic) में भ्रूणपोष (भोजन संग्रह ऊतक) की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति के आधार पर विभाजित किया जाता है। अरंड एवं शरीफा के भ्रूणपोषधारी बीजों में एक बाह्य एवं चितकबरा कवच (testa) अथवा बीज चोल (seed coat) विद्यमान होता है। सूक्ष्मद्वार (micropyle) जो एक अत्यंत सूक्ष्म छिद्र होता हैं के समीप एक प्रवर्ध विद्यमान होता है जिसे, क्रेन्कल (caruncle) कहते हैं जो आर्द्रता का अवशोषण करता है और अंकुरण में बीज की सहायता करता है। फुनिकिल (funicle) से निर्मित एक ऊंचे स्थल (ridge) जो (raphe) भी कहलाती है, स्पष्टत: देखी जा सकती है। बीजांडकाय (nucellus) का अवशेष, एक पतली, श्वेत, कागजी झिल्ली के रूप में भ्रूण कोष को चारों ओर से घेरता है और परिभ्रूण (perisperm) कहलाता है। भ्रूण, भ्रूणपोष के अंदर विद्यमान होता है। तथा दो पतले बीजपत्रों-युक्त होता है जो कि अक्ष पर टिजैलम से जुड़े होते हैं, से युक्त होता है। लघु स्तंभ (tigellum) से मूलांकुर तथा बीजपत्रों से ढका हुआ प्रांकुर निकलता है। चना, मटर, एवं सेम जैसे भ्रूणपोष विहीन बीजों पर बीज चोल का आवरण होता है। बीजचोल दो पर्तों का बना होता है, जो क्रमश: बाह्यचोल एवं आंतरिकचोल (tegmen) कहलाती है। नाभिका (hilum) वह स्थान है जहां बीज डंठल से संलग्न होता है। इसके ऊपर एक सूक्ष्म छिद्र (micropyle) एवं एक प्रवर्ध (raphe) भी स्पष्टत: विद्यमान होते हैं। भ्रूण एक अक्ष और दो मांसल बीज पत्र से निर्मित होता है जो संग्रहीत भोजन पदार्थ से भरे होते हैं। अक्ष का नीचे का नोकदार भाग **मूलांकुर** (radicle) निर्मित करता है और ऊपरी पत्तीयुक्त **प्ररोह** (plumule) (चित्र 16.27)।

एकबीजपत्री बीजों में मात्र एक बीजपत्र विद्यमान होता है और सामान्यत: भ्रूणपोषधारी होते हैं। इनमें प्राय: एक झिल्ली सदृश बीज चोल होता है जो फल की भित्ति से संलग्न होती है। दाने का अधिकतर भोजन संग्रह करने वाला ऊतक भ्रूणपोष होता है जो भ्रूण से एक स्पष्ट परत **एल्यूरोन** (aleurone) द्वारा अलग होता है। भ्रूण एक लघु संरचना है। जो एक खांचे में भ्रूणपोष के एक सिरे पर स्थित होती है। भ्रूण एक सूक्ष्म अक्ष, जो मूलांकुर और प्रांकुर की बनी होती है तथा सिरे पर एक ढाल **समबीजपत्र** (scutellum) कहलाता है। प्रांकुर, **प्रांकुर चोल** (coleoptile) नामक एक चादर से ढका रहता है। इसी प्रकार **मूलांकुर चोल** (coleorhiza) नामक आवरण से संरक्षित रहता है। कुछ एकबीजपत्रियों में बीज भ्रूणपोष-विहीन होते हैं। जैसे कि आर्किडों एवं *सैजिटेरिया* (*Sagittaria*) में।



चित्र 16.27 बीजों की संरचना (क, ख) द्विबीजपत्री बीज (ग, घ) एकबीजपत्री बीज

16.8 फलों एवं बीजों का प्रकीर्णन

हम यह भली-भांति जानते हैं कि पौधे एक स्थान से दूसरे स्थान तक गति नहीं करते। वे उसी स्थान पर रहकर वृद्धि करते हैं और पुष्प एवं फल उत्पन्न करते हैं। फल एवं बीज पादप के ठीक नीचे गिरते हैं, और अंकुरित होते हैं, और नियंत्रित आवश्यक भोजन आपूर्ति एवं स्थान में परिवर्धित होते हैं। इस प्राकृतिक समस्या को हल करने के लिए तथा दूर-दूर तक प्रकीर्णन करने के लिए फलों और बीजों ने कई विशिष्ट युक्तियां विकसित कर ली हैं। विविध प्राकृतिक कारक जैसे वायु, जल एवं मानव सहित अन्य प्राणी फलों व बीजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैतृक पौधे से दूर ले जाने में सहायक हैं (चित्र 16.28)।

वायु

वायु ऐसी जातियों में बीजों का प्रकीर्णन करती है जिनमें बीज भार में हल्के होते हैं। कुछ उपभाग भी विद्यमान होते हैं जो उन्हें वायु के बहाव के साथ छितराने में सहायक होते हैं। सहजन (morniga) एवं सिनकोना (*cinchona*) के बीज, साल, मैपिल, वृक्षों के फलों में एक अथवा कई उपांग पतले चौरस एवं झिल्ली सदृश पंखों के रूप में विद्यमान होते हैं जो उन्हें सरलता से वायु में उड़ाकर दूरस्थ स्थानों तक ले जाते हैं। ऐस्टरेसी कुल के सदस्यों में बाह्यदल पुंज (calyx) रोम-सदृश संरचनाओं जो रोम गुच्छ (Pappus) कहलाते हैं, में रूपांतरित हो जाते हैं। यह चिरस्थायी होते हैं और छाते के समान खुलकर इनके बीजों के वायु में छितराने में सहायक होते हैं। अफीम और पीली कटेली (*Argemone*) में फल स्फुटन के समय इनके बीज पादप से कुछ दूर तक फैलते जाते हैं। आक, छतियम (Alstonia) तथा कपास में भी बीज रोमयुक्त होते हैं और यह वायु के साथ लंबी-लंबी दूरियां तय करते हैं। आर्किड और कुछ घासों के बीज अत्यंत सूक्ष्म एवं हल्के होते हैं और वायु द्वारा दूरस्थ स्थानों तक ले जाए जा सकते हैं।

जल

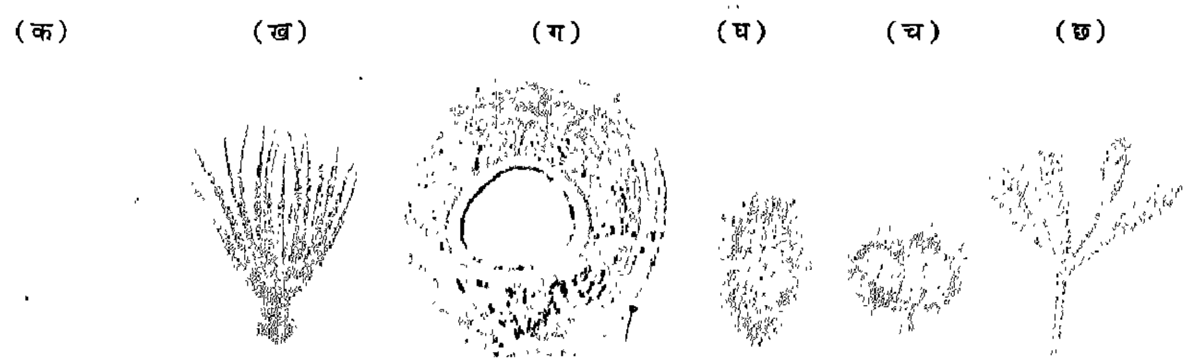
कुछ फलों एवं बीजों में विद्यमान विशिष्ट युक्तियों जैसे कि स्पंजधारी एवं रेशेदार बाह्यभित्ति, धारण करने वाले नारियल एवं द्विक नारियल स्पंजधारी पुष्पासन, कमल में और जल लिली के वायुयुक्त चोलमय बीज सरलता से जल में तैरते हैं और तत्पश्चात् जल की धारा के साथ सुदूर स्थानों तक ले जाये जाते हैं। **द्विक नारियल** (double coconut) सीसेल्स द्वीप समूह का निवासी है किंतु इसके फल भारतीय समुद्री किनारों तक पाए जाते हैं।

जंतु

अंकुश, शूल, शूक एवं दृढ़-रोमो आदि युक्त फल एवं बीज, ऊन-धारी जंतुओं के शरीर से चिपककर, अनजाने ही दूरस्थ स्थलों तक ले जाए जाते हैं। जैसे कि जैन्थियम एवं यूरेना में फलों पर मुड़े हुए अंकुश, भाला-घास (spear grass) के बीजों पर लगे तीक्ष्ण रोम, गोखरू (tribulus) में तेज, दृढ़ शूल, एवं पुनर्नवा (boerhaavia) के चिपकने वाले रोम जंतुओं द्वारा छिटकाए जाते हैं। अमरुद, अंगूर, अंजीर एवं आलू बुखारा, चिड़ियों और मानव द्वारा भी दूर तक बिखेरे जाते हैं। क्योंकि वे उनको खाकर बिना पचे बीजों को मल के साथ अथवा खाने के लिए दूसरे स्थलों पर ले जाने के फलस्वरूप छितराए जाते हैं।

16.9 पादपों में रक्षात्मक क्रियाविधि

प्रकृति ने पौधों में ऐसे अंग अथवा अन्य विशिष्ट विधाएं प्रदान की जिससे कि वह अपने शत्रुओं के आक्रमण से बच सकें। उदाहरण के लिए नींबू, अनार, दुरन्ता में विभिन्न प्रकार के **कंटक** होते हैं, जबकि अनानास, खजूर, रामबाण और युक्का में पत्तियों के किनारों पर तीक्ष्ण नौकादार शूल होते हैं। सेमल और गुलाब में **तीक्ष्ण वर्ध** (prickle) बनते हैं जब कि नागफनी एवं अन्य कैक्टस सुई सदृश्य रोम उत्पन्न कर जंतुओं से अपना संरक्षण करते हैं। अर्टिका डायोइका (urtica dioica) एवं लेपोर्टिया (laportea)



चित्र 16.28 फलों एवं बीजों का प्रकीर्णन (क-ख) वायु द्वारा (ग) जल द्वारा (घ-छ) जंतुओं द्वारा

जातियों में पूरे शरीर तीक्ष्ण सिलिकाधारी शीर्ष वाले चुभनशील रोम में परिवर्धित हो जाते हैं। इसी प्रकार ग्रंथिल रोम जिनमें चिपकना पदार्थ भरा होता है, जट्रोफा एवं तम्बाकू में पाए जाते हैं। कठोर रोमों का घना आवरण जानवरों को पौधों से सदैव दूर भगाता है जैसे कि *नैफेलियम* (*Gnaphalium*) एवं कुकरबिटेसी कुल के कई सदस्यों में।

इसी प्रकार के अन्य रक्षात्मक विधाएं जैसे कि पादपों में जहरीले एवं खुजली पैदा करने वाले पदार्थ का पाया जाना जैसे यह क्षीर (latex) के रूप में बरगद, कनेर तथा यूर्फोबिया में, ऐल्केलाइड पॉपी, धतूरा एवं तंबाकू में, खुजली पैदा करने वाले पदार्थ जैसे कि अरबी एवं ऐराइकेशी के अन्य सदस्यों में, तुलसी, पोदीना, नीम एवं करेला में बुरा स्वाद एवं अप्रियगंध होती है। इसी प्रकार टेनिन, रेजिन, सुगंध तेल कुछ पादपों में अपनी उपस्थिति से कुछ जंतुओं से अपनी सुरक्षा करने में सफल होते हैं। अदरक, हल्दी, अरबी और प्याज की भूमिगत प्रकृति इन्हें जंतुओं से सुरक्षा प्रदान करती है। अमरुद, आम एवं लीची के पादप चीटियों को शरण देते हैं। जो **पिपीलिका** (myrmecophily) कहलाती है और इन पादपों की सुरक्षा जंतुओं से करती है। **नकलीकरण/अनुकरण** (mimicry) जिसके द्वारा कुछ पौधे अन्य पौधों एवं जंतुओं जैसा सामान्य रंग, आकार एवं बनावट धारण कर लेते हैं जो उनके आक्रामकों द्वारा पसंद नहीं की जाती, उदाहरण के लिए केलेडियम एवं सेन्सवेरिया के पादप धब्बेदार सर्पो जैसा रूप धारण कर अपने आक्रामकों को दूर भगा देते हैं।

16.10 प्रतिरुपी पुष्पी पादप का वर्णन

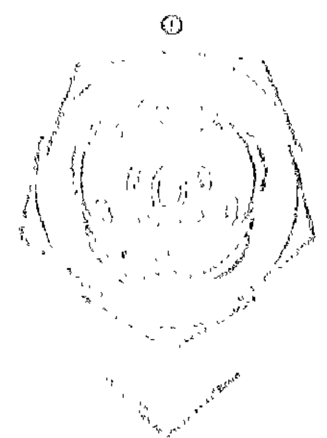
उपरोक्त सभी आकारिक लक्षण, पादप के वर्णन में प्रभावी सहायक होते हैं। वर्णन संक्षिप्त सबसे उपयुक्त एवं वैज्ञानिक भाषा में एक विशिष्ट क्रम के अनुरूप होना चाहिए, जो पादप विशेष की पहिचान कर इसे वर्गिकी के अनुरूप कुल, वंश और जाति में उपयुक्त स्थान पर रखने में सहायक होता है।

पादप को इसकी **प्रकृति** (Habit) के अनुसार शाक, क्षुप अथवा वृक्ष एवं जीवनवृत के अनुसार एकवर्षीय, द्विवर्षीय अथवा बहुवर्षीय में विभाजित किया जाता है। **आवास** इसके प्राकृतिक मूल स्थान को दर्शाता है और कोई भी जाति इसके अनुरूप समोद्भिद (mesophyte), जलोद्भिद (hydrophyte) अथवा मरूद्भिद (xerophyte) हो सकते हैं। **जड़ों** को उनके स्थान के अनुसार प्राथमिक, द्विवतीयक, वायवी, स्थलीय एवं आकारिकी के अनुसार मूसला (tap) या झकड़ा (fibrous) मूलों में वर्णित किया जाता है। **स्तंभ** को इसकी गठन (शाकीय अथवा काष्ठिल), रूपांतरण (प्रतान, शूक, पर्णाभ आदि), सतह (सपाट, अरोमिल, रोमयुक्त, कांटे अथवा शूकधारी आदि); आकार (गोल, कोणीय अथवा चपटा) के आधार पर वर्णित किया जाता है। **पत्तियों** का वर्णन उनकी कालिकता अवधि (पर्णपाती, सदाबहार); पर्णविन्यास (एकांतर, सम्मुख, चक्रित आदि); पत्ती के भाग (पर्णवृंतयुक्त या पर्णवृंतविहीन, अनुपत्र विहीन, अनुपत्रधारी, लिग्यूलधारी आदि) पत्ती के आकार (रेखीय, भालाकार, दीर्घीकृत, वृक्काकार, गोल आदि) कोर (अखंडित, रोमिल, शूकमय, दंतिल पालीदार आदि)के अनुसार इंगित किया जाता है। **शीर्ष** - (लंबाग्र, निशिताग्र, कोरखांचीं, कुठॉग्र, नोंकदार), शिराविन्यास जालिकावत, समानांतर एकशिरीय, बहुशिरीय), सतह (चिकनी, रोमिल, खुरदरी); फलक (सरल, संयुक्त, पिच्छाकार, हस्ताकार आदि)। पुष्पक्रम के वर्णन में इसके प्रकार (ससीमाक्ष/असीमाक्ष) एवं उपप्रकार सम्मिलित किए जाते हैं।

पुष्प अवृंत अथवा सवृंत, सहपत्री अथवा असहपत्री, एकलिंगी अथवा उभय लिंगी, यदि एकलिंगी तो पुमंगधारी अथवा जायांगधारी, त्रिज्यासममित अथवा एकव्यासममित, जायांगधर, परिजांयागी, जायागोपरिक, पूर्ण अथवा अपूर्ण, समाव्यवी अथवा असमाव्यवी, यदि समाव्यवी, दो, तीन, चार अथवा पंचभागी। **बाह्य दलपुंज** (Calyx), बहुबाह्यदलीय अथवा सयुंक्तबाह्यदलीय; वर्ण, आकार एवं संख्या, पुष्पदलविन्यास एवं उनकी पुष्पासन पर अवधि (पर्णपाती अथवा सदाबहार); **दल-पुंज** (Corolla) का वर्णन, संख्या, मुक्त या संयुक्त, व रंग एवं आकार, पुष्पदल विन्यास एवं अवधि और यदि कोई विशेष अनुबंध के आधार पर होता है। **पुमंग** का वर्णन पुंकेसर की संख्या, मुक्त अथवा संयुक्त, तंतुओं की लंबाई, परागकोश एवं इसके आकार एवं संलग्नता के आधार पर किया जाता है। इसमें स्त्रीजनन भाग या **जायांग** (carpels), की संख्या के संबंध में सूचना, मुक्त अथवा संयुक्त, अंडाशय की अवस्था (ऊर्धावर्ती या अधोवर्ती) जरायुन्यास और प्रत्येक कोष्ठक में बीजांड की संख्या, वर्तिकाग्र और वर्तिका आदि, फल और बीज, उनके प्रकार, उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन भी किया जाता है।

एक पादप के विभिन्न भागों का चित्रण प्रस्तुत करते हुए इसके विभिन्न पुष्पी भागों का एक पुष्प एवं पुष्प आरेख सूत्र भी प्रस्तुत किया जाता है। **पुष्प आरेख** - एक पुष्प के भागों, उसकी सामान्य संरचना, व्यवस्था उसके एक दूसरे से संबंध, आसंजन, संसंजन और मातृअक्ष के संबंध में पुष्प की अवस्था के बारे में सूचना देता है। यह एक पुष्प का भूचित्र है। वाह्य दल पुंज बाहर रहता है, दल पुंज बाह्यदल पुंज के अन्दर, पुमंग बीच में और जायांग केंद्र में। आसंजन एवं संसजन पुष्प के भागों जैसे बाह्यदल, दल-पुंज, पुंकेसर तथा जायांग एवं बीजांडासन आरेख में दिखाए जाते हैं। शीर्ष पर एक बिंदु मातृअक्ष को दर्शाता है।

अमलतास पादप (*Cassia fistula*) के पुष्पी लक्षण एक पुष्प आरेख के द्वारा दर्शाए जा सकते हैं (चित्र 16.29)।



चित्र 16.29 अमलतास का पुष्प आरेख

पुष्प-सूत्र – पुष्प के विभिन्न चक्रों की व्यवस्था उनकी संख्या, संसंजन और आसंजन और उनके आपसी संबंध यदि कोई है, को दिखाता है। सूत्र, में **K** अक्षर बाह्यदलपुंज (Calyx) के लिए, **C** दलपुंज (Corolla), **P** परिदल पुंज (Perianth), **A** पुमंग (Androecium) तथा **G** जायांगीय (Gynoecium) को दर्शाते हैं। इन प्रतीकों के साथ लिखी संख्या चक्र में सदस्यों की संख्या वर्णित करती है। संसंजन चित्र को कोष्ठक में बंद करते हुए और आसंजन नम्बरों के ऊपर रेखा खींच कर। यदि अंडाशय ऊर्धावर्ती है तो रेखा $\underline{G}$ के नीचे खींची जाती है और यदि अधोवत है तो $\overline{G}$ के ऊपर रेखा खींचते हैं। सूत्र में प्रतीकों की क्रम संख्या पुष्प के निश्चित विशेष लक्षण दर्शाती है जैसे कि पुलिंग के लिए ♂, स्त्रीलिंग के लिए ♀, द्विलिंग के लिए ⚥। त्रिज्यासममित (actinomorphic) के लिए ⊕ एकव्याससममित (zygomorphic) के लिए %। पुष्प सूत्र पुष्प की विशेष जाति दर्शाता है एवं उसके पूरे कुल की व्याख्या आसानी से की जा सकती है। उदाहरण के लिए

⊕ ⚥ $K_{2+2}C_4A_{2+4}\underline{G}_{(2)}$ सरसों के लिए (ब्रेसिकेसी कुल)

Br ⊕ ⚥ $P_{3+3}\ A_{3+3}\ \underline{G}_{(3)}$ प्याजी (लिलिएसी कुल)

16.11 महत्त्वपूर्ण कुलों का वर्णन

ब्रेसिकेसी

ब्रेसिकेसी (Brassicaceae) कुल को पहले क्रुसीफेरी के नाम से भी जाना जाता था। इस कुल में 375 वंश और 3200 जातियां पाई जाती हैं। यह समस्त विश्व विशेषत: भूमध्यसागरीय एवं शीतोष्ण क्षेत्र में वितरित है। भारत में इसकी 150 जातियां प्राप्त हैं।

कायिक लक्षण

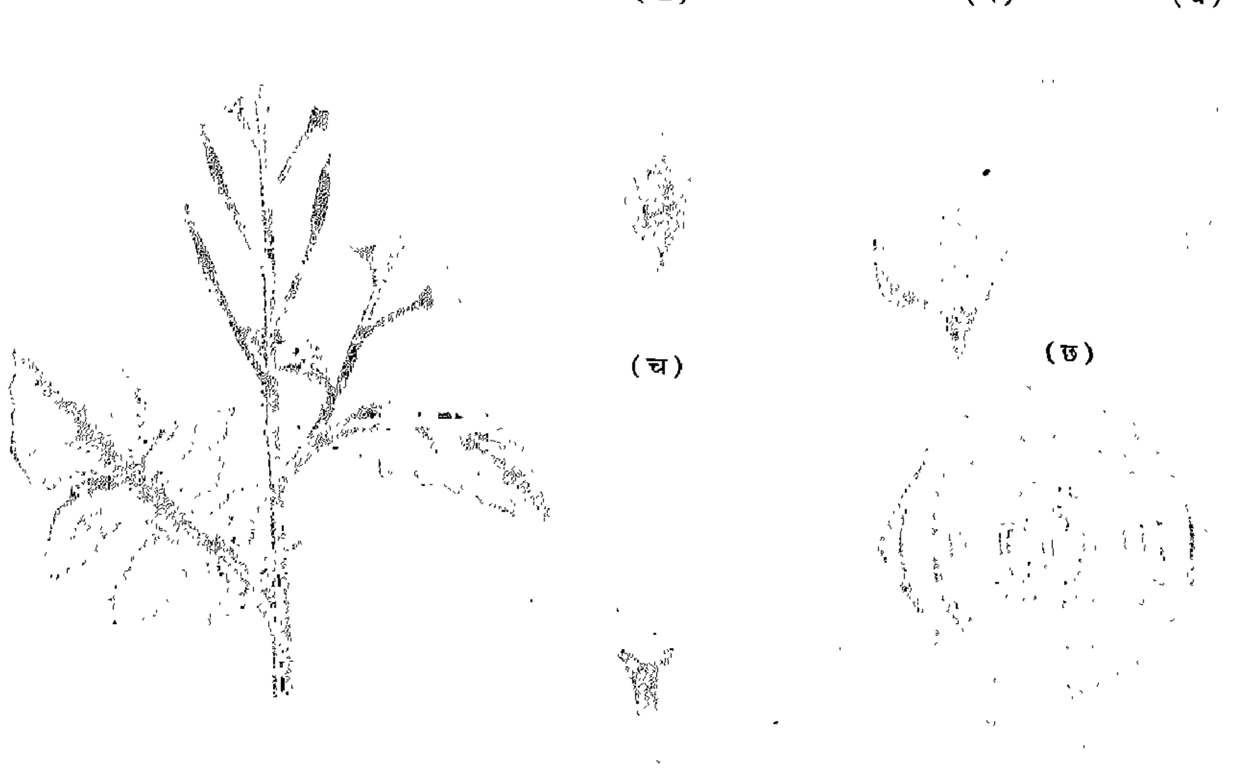
अधिकांश पादप वार्षिक अथवा द्विवार्षिक शाक होते हैं। जड़ मूसला, फूली हुई तथा भोजन संग्रह के कारण रूपांतरित होती है जैसे कि मूली एवं शलगम में। स्तंभ शाकीय, सीधा, बेलनाकार, कभी कभी द्वासित, अरोमिल अथवा रोमिल, ठोस एवं शाखीय; पत्तियां सरल, एकांतरित अथवा उपसम्मुख, अनुपत्र-विहीन, प्राय: अवृंत, रोमिल, एकशिरीय जालिका शिरा-विंयास दर्शाती है (चित्र 16.30)।

पुष्पी लक्षण

पुष्पक्रम असीमाक्षी, कोरंब असीमाक्षी अथवा कोरंब, पुष्प, सवृंत, सहपत्रविहीन, उभयलिंगी, त्रिज्यासममित, विरकत एकव्याससममित जैसे कि *आइबेरिस* (Iberis) में, अधोजायांगी (hypogynous), पूर्ण एवं चतुष्टकी; बाह्यदलपुंज: दो आवृतों में चार बाह्यदल, बहुबाह्यदलीय, कोरछादी; दलपुंज: चार दल युक्त, बहुदलीय, बाह्यदलों के एकांतर क्रम में (cruciform) विधि में विन्यासित, सामान्यत: नखशिख युक्त (clawed); पुमंग:- पुंकेसर सामान्यत: 6, दो आवृतों में विन्यासित, बाह्य दो लघु और अंदर वाले चार दीर्घ – चतुर्दीर्घी (tetradynamous) स्थिति, मुक्त पुंकेसरी अंतर्मुखी परागकोश, अध:बद्ध, द्विकोष्ठी, पुंकेसर के आधार पर मकरंद विद्यमान; जायांग: साधारणत: द्विअंडपी, युक्तांडपी आभासी पट के कारण एक कोष्ठकी से द्विकोष्ठकी हो जाता है। ऊर्ध अंडाशय, बहुत से अंडपों के साथ भित्तीय बीजांडन्यास, लघु वर्तिका एवं वर्तिकाग्र सरल अथवा द्विशाखी; फल: सिलीक्यूला या सिलीक्यूल; बीज:भ्रूणापोषविहीन (चित्र 16.30)।

आर्थिक महत्त्व

इस कुल के सदस्य अत्यंत आर्थिक महत्त्व के हैं और भोजन, शाक, तेल, तथा औषधियां प्रदान करते हैं। साथ ही कुछ अलंकरण पादप भी होते हैं। गोभी (*Brassica oleracea*) और मूली (*Raphanus sativus*) खाने में प्रयोग किये जाते हैं। सरसों के बीजों से तेल निकाला जाता है। कालीराई तथा राई पकाने में काम आती है। तेल निष्कर्षण से बचा हुआ पदार्थ अत्याधिक पौष्टिक होता है और पशुओं को खिलाने में प्रयोग होता है। गार्डन क्रैस (*Lepidium sativum*) के कोमल प्ररोह यकृत कष्टों श्वॉस रोगों, खांसी तथा खूनी बवासीर के उपचार में काम आते हैं। भित्ति पुष्प (*Cheiranthus cheiri*) के बीज श्वॉसनली शोथ तथा ज्वर में और फूल लकवा तथा नपुंसकता में लाभदायक होते हैं। लोबुलेरिया (*Lobularia*) सुजाक में लाभदायक ठहराई जाती है और चांदनी (*Iberis amara*) गठिया तथा थक्का जमने में लाभदायक होती है। कुछ पादप जैसे भित्ति पुष्प तथा चांदनी



$\oplus ⚥ K_{2+2} C_4 A_{2+4} G_{(2)}$

चित्र 16.30 सरसों का पादप (क) पुष्पधारी शाखा (ख) एक पुष्प (ग) पुष्प की अनुदैर्ध्य काट (घ) पुंकेसर (च) अंडप (छ) पुष्प आरेख एवं पुष्प सूत्र

अपने सुंदर पुष्पों के कारण उद्यानों में शोभनीय पादप के रूप में उगाए जाते हैं।

फाबेसी

यह कुल पहले पेपिलीओनोइडी (Papilionoideae) के नाम से जानी जाती थी। इस कुल के सदस्यों का बहुत आर्थिक महत्त्व है।

कायिक लक्षण

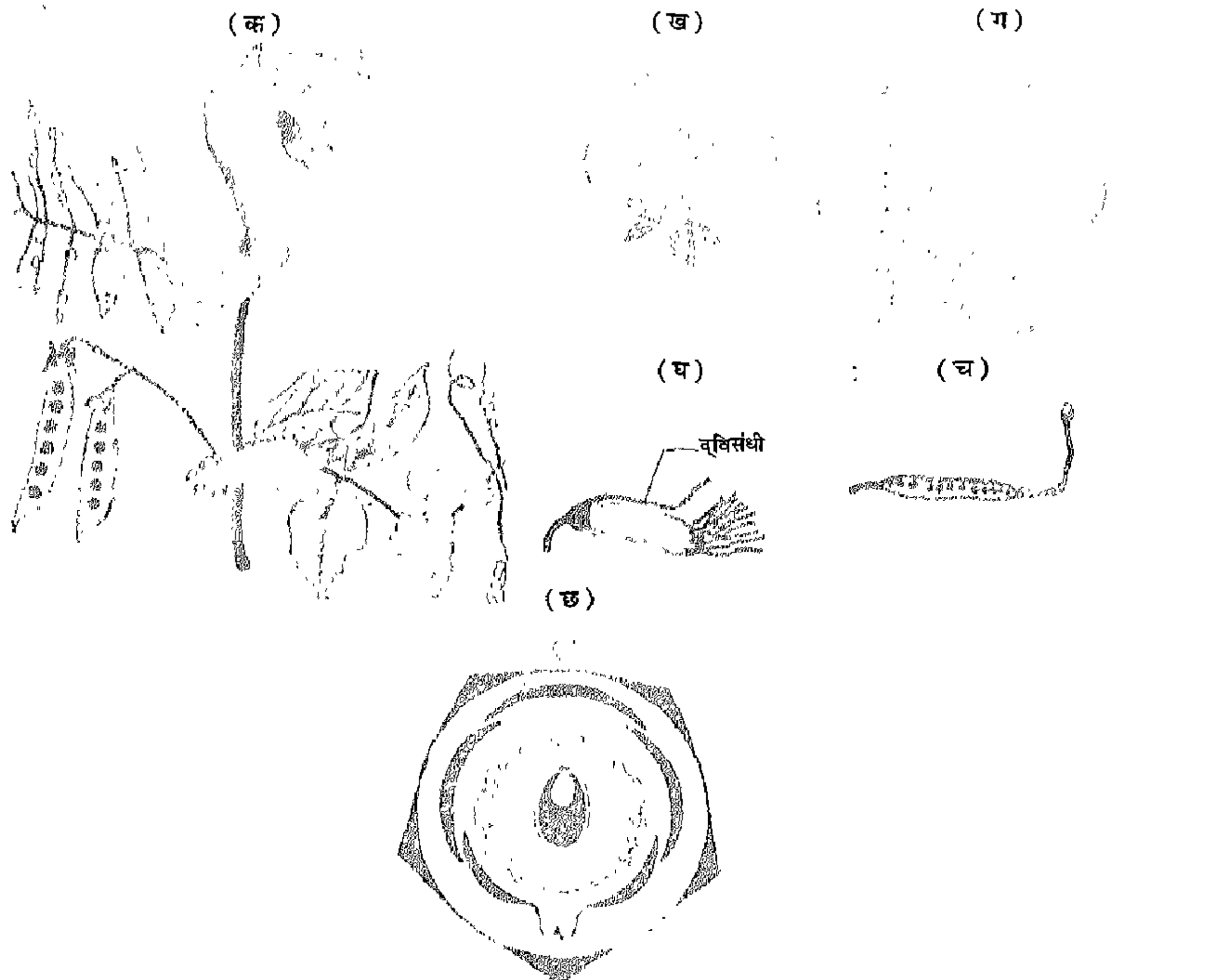
इस कुल के सदस्यों की प्रकृति तथा आवास में अत्याधिक विभिन्नता है। पादप शाकीय, झाड़ीनुमा, आरोही, बल्लरी और वृक्ष एवं, मरूद्भिद्, समोद्भिद्, जलोद्भिद, लवणद्भिद् आवास के हो सकते हैं। बहुशांखी मूसला, जीवाणुज ग्रंथिल जड़ों धारी होते हैं। स्तंभ सीधा तथा बल्लरी, शाखीय बनावट में कोणीय अथवा बेलनाकार पत्तियां; संयुक्त, सामान्यत: त्रिपर्णक युक्त, साथ ही प्रतान में अपूर्ण या पूर्ण रूपांतरित होती है। आधार फूला हुआ।

पुष्पी लक्षण

पुष्पक्रम: असीमाक्ष पुननियोजित, बिरले ही एकलकक्षीय, पुष्प सवृंत, एकव्यासससममिति, उभयलिंगी तथा पूर्ण; **बाह्यदल:** पांच, संयुक्त बाह्यदली, आरोही कोरछादी; **पंखुडी:** पांच, प्रथकदलीय, पश्च बड़ा और सबसे बाहर दो पार्श्व (पंखी), दो पूर्व अर्न्त: युक्त (कटक) विन्यास कोरछादी; **पुंकेसर:** दस द्विसंधि (9+1) अंतर्मुखी, अद्र्धबद्ध और द्विकोष्ठी; **अंडाशय:** ऐकांडपी, ऊर्ध्व, बहुत से अंडपों के साथ। सीमांत बीजांडन्यास, वर्त्तिका लंबी, शीर्ष पर हल्की झुकी, चपटी; **वर्तिकाग्र:**- सरल या समुंड; **फल:**- शिंब, अस्फुटनशील, **बीज:** लंबे भ्रूण के साथ भ्रूणपोषविहीन; **परागण:** कीड़े तथा मक्खी द्वारा जिसके लिए पुष्पों में विशेष रचना होती है (चित्र 16.31)।

आर्थिक महत्त्व

यह कुल अत्यधिक आर्थिक महत्त्व का है। यह बहुत प्रकार की दालें, औषधियां, रेशे, काष्ठ, रंग, उद्यानीय पादप प्रदान करता है। मटर, चना, अरहर, सेम (*Dolichos lablab*), मूंग (*Vigna radiatus*), सोयाबीन, (*Glycine max*), प्रोटीन की ज्यादा प्रतिशत रखते हैं और शाक और दालों के रूप में प्रयोग होते हैं। मूंगफली (*Arachis hypogea*) हमारे लिए तेल और पशुओं के लिए खली उत्पन्न करती है। मुलेठी (*Glycyrrhiza glabra*) औषधि के रूप



% ⚥ $K_{(5)} C_{1+2+(2)} A_{(9)+1} \underline{G}_1$

चित्र 16.31 *मटर का पौधा (क) पुष्प-धारी शाखा (ख) एक पुष्प (ग) दल (घ) जननांग (च) अंडप की अनुदैर्ध्य काट (छ) पुष्प आरेख एवं पुष्प सूत्र*

में गले के दर्द और खांसी में प्रयुक्त होती है। रत्ती (*Abrus precatorius*) का ताजा शुद्ध रस धवल रोग (*leucoderma*) में लाभदायक होता है। विश्वास किया जाता है कि ढेंचा (*Sesbania grandiflora*) के पुष्प आँख की दृष्टि बढ़ाने में लाभदायक हैं। सनई (*Crotalaria juncea*) के रेशे रस्सी, रज्जु, चटाई, किरमिच, जाल, बोरा बनाने के काम आते हैं। शीशम (*Dalbergia sissoo*) तथा भारतीय रोजवुड (*Dalbergia latifolia*) से रंग प्राप्त होता है। *लेथाइरस* (*Lathyrus*), *क्लाइटोरिया* (*Clitoria*), *सेसबानिया* (*Sesbania*) *तथा ऐरीइथ्रिना* अलंकरण के लिए उगाए जाते हैं। ढाक (*Butea monosperma*) एवं *एस्ट्रागेलस गम्मीफेर* (*Astragalus gummifer*) औषधीय उपयोग की गोंद पैदा करते है।

एस्टरेसी

यह द्विबीज पत्तियों का सबसे विशाल कुल है जिसमें 950 वंश एवं 20,000 जातियां समाहित हैं जिनमें 1000 भारत में पाई जाने वाली जातियां भी सम्मिलित हैं। सामान्यत: यह सूर्यमुखी कुल से जानी जाती है और पूरे विश्व में वितरित हैं।

कायिक लक्षण

पादप अधिकांशत: शाक तथा क्षुप होते हैं। इसके विरले सदस्य ही वृक्ष की प्रकृति दर्शाते हैं। कुछ मरुद्भिद्, जलोद्भिद् के अतिरिक्त, अधिकतर समोद्भिद् होते हैं। जड़ तंत्र मूसला होता है जो कभी-कभी रूपांतरित होकर कंदीय हो जाते हैं जैसे *डहलिया* (*Dahlia*) में। स्तंभ सीधा या भूशायी अधिकांशत: शाकीय, विरलता से काष्ठिल रोमी, बेलनाकार, आरोमिल, ठोस या खोखला होता है। पत्तियां सरल, सवृंत या आवृंत, एकांतर विन्यासित, कभी-कभी सम्मुख या आवर्ती अनुपत्र विहीन, एकशिरीय, एक पिच्छाकार या बहुपिच्छीय जालिका वत शिरा विन्यास।

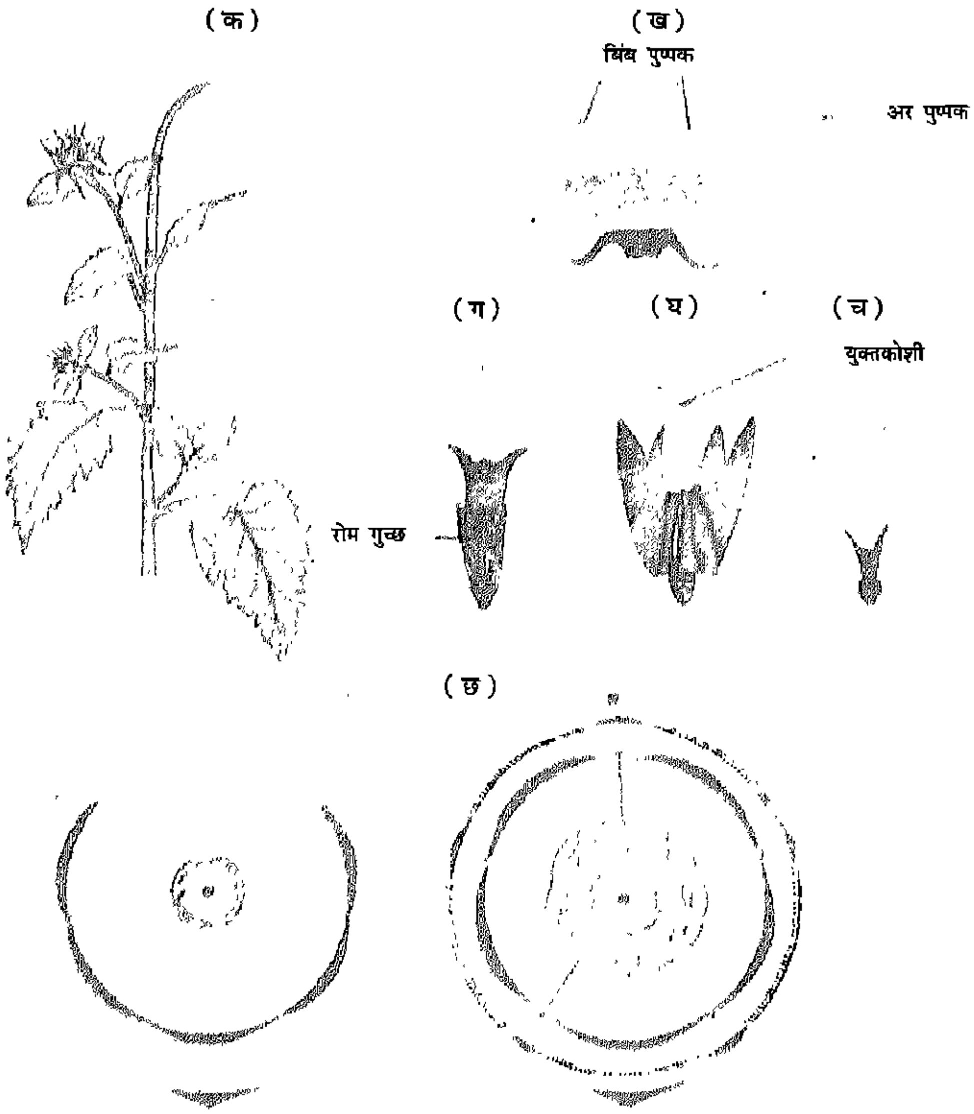
पुष्पी लक्षण

पुष्पक्रम:मुंडक (Capitulum) अथवा शीर्ष जिस पर अर पुष्पक तथा बिंब पुष्पक लगे रहते हैं। ये सहपत्रों के चक्र द्वारा घिरे

रहते हैं। पुष्प अवृंत, सहपत्रधारी पूर्ण अथवा अपूर्ण, उभयलिंगी या एकलिंगी, पंचतयी नलिकाकार अथवा जिव्हाकार ऊपर जायांगी, त्रिज्यासममित, एकव्यास सममित होते हैं। **अर-पुष्पक** (Ray Florets) एकव्यास सममित, जिव्हाकार, अलिंगी अथवा स्त्रीकेसरी, ऊपरजायांग; बाह्यदल: अनुपस्थित अथवा रोम गुच्छों में रूपांतरित; दल: पांच, संलग्न, रंगीन, जिव्हाकार, कपाटधारी; पुंकेसर: सामान्यत: अनुपस्थित; अंडाशय जायांग: द्विअंडपी, सयुक्तांडपी, अधोजायांग, आधारी बीजांडन्यास, वर्तिका एक एवं वर्तिकाग्र द्विशाखी; फल: सिप्सैला (cypsela) बीज: बीजभ्रूण पोष-रहित, **बिंब पुष्पक** (Disc Florets): पुष्प आवृंत, सहपत्रधारी, पूर्ण, उभयलिंगी, त्रिज्या सममित, पंचतयी, ऊपरजायांगी एवं नलिकाधारी, वाह्यदल: रोम गुच्छों में रूपांतरित एवं चिरस्थाई; दलपुंज: पांच, संलग्न, रंगीन; पुंकेसर: पांच, दलसंलग्न, अंतर्मुखी, संघीय, द्विकोष्ठी; अंडाशय: द्विअंडपी, सयुक्तांडपी अधोजायांग, आधारी बीजांडन्यास, सरल वर्तिका, वर्तिकाग्र लंबा एवं द्विशाखी; फल: सिपसैला एवं बीज: भ्रूणपोष रहित चित्र (16.32)।

आर्थिक महत्त्व

इस कुल के पादप अलंकरण मूल्यों के लिए भली प्रकार जाने जाते हैं। जीनिया (*Zinela*) डहलिया (*Dahlia*) क्राइसेन्थेमम



$$\cdot|\cdot\ ♀ K_{Pappus} C_{(5)} A_0 \overline{G}_{(2)} \qquad \oplus ⚥ K_{Pappus} \widehat{C_{(5)} A_{(5)}} \overline{G}_{(2)}$$

चित्र 16.32 हेलिएन्थस एन्नस (सूर्यमुखी) का पादप (क) पुष्पधारी शाखा (ख) पुष्पक्रम की अनुदैर्ध्य काट (ग, घ) बिंब पुष्पक (च) अर पुष्पक (छ) पुष्प आरेख एवं पुष्प सूत्र

(*Chrysanthemum*) एस्टर (*Aster*) हीलिएंथस (*Helianthus*) एवं टेजेटस (*Tegets*) ऐसे पादप हैं जो उद्यानों में उगाए जाते हैं। सूर्यमुखी एवं आरटीमिसिया (Artemisia) के बीजों से तेल निकाला जाता है जो पकाने और साबुन बनाने के काम आता है। चिकोरी (*Cichorium intybus*) एवं (*Helianthus*) की जड़ें तथा सेटीविटा (Lactuca) की पत्तियां खाद्य हैं। आरटीमिसिया से सैंटोनिन निकलता है जो कृषिहर के रूप में प्रयुक्त होता है। सौलीडेगो (Solidago) ड्रापसी (dropsy) में प्रयुक्त होता है। टेरेक्सेकम (Taraxacum) की जड़ें पेट की बीमारियों में लाभदायक होती हैं। एमीलिया सोंकिफोलिया (*Emilia sonchifolia*) का रस शीतीय होता है और अक्षु शोथ और रतोंधी (night blindness) में प्रयुक्त होता है। एकलिप्टा अल्बा (*Eclipta alba*) शक्तिवर्धक के रूप में तिल्ली (Spleen) बढ़ने पर दिया जाता है। सेन्टीपिडीया औरबीकुलेरिस (*Centipedia orbicularis*) सर्दी तथा दांत दर्द में प्रयुक्त होता है, क्राइसेंथेमम रोजियम (*Chrysanthemum roseum*) तथा क्रा. सिनेरेरिफोलियम (C. cinerariaefolium) के मुंडको को सुखाकर चूर्ण बनाकर कीड़े मार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सोलेनेसी

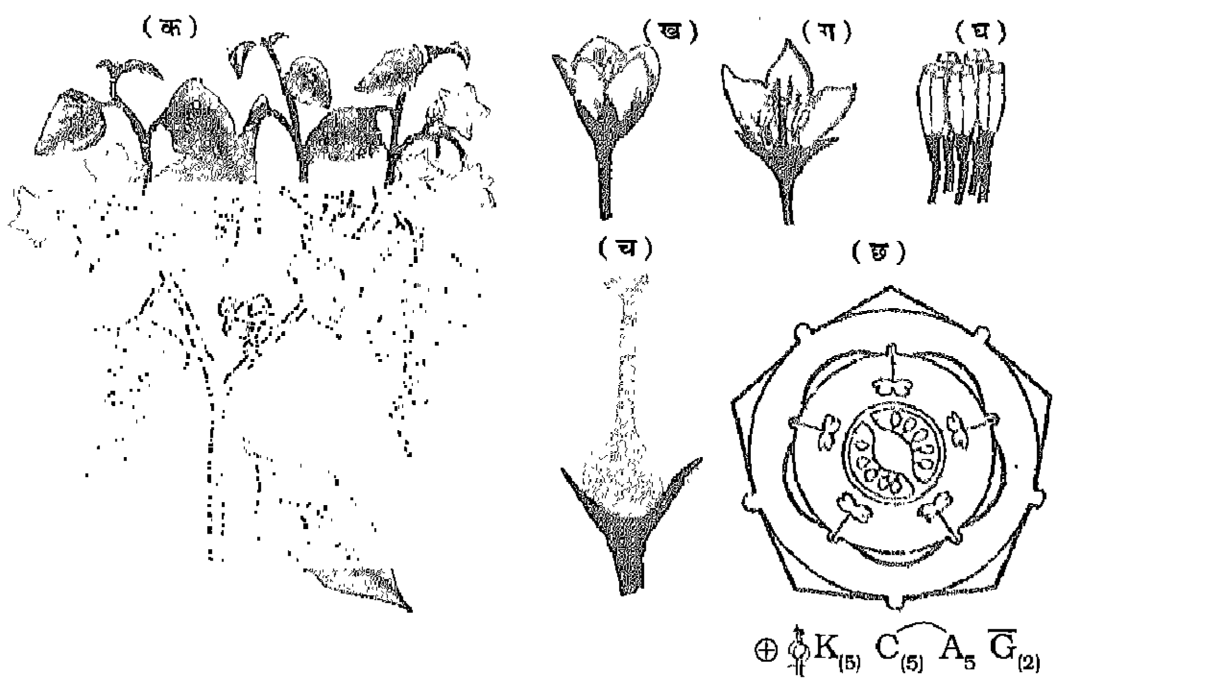
यह एक विशाल कुल है। यह आलू कुल के नाम से जाना जाता है इसमें 90 वंश तथा 2000 जातियां है, जिसमें से 60 भारत में पाई जाती हैं। यह उष्ण कटिबंधीय एवं, उप उष्णकटिबन्धीय प्रदेशों में पाई जाती हैं।

कायिक लक्षण

पादप अधिकांशतः शाकीय, विरलता से क्षुप तथा वृक्ष; स्तंभ: शाकीय, विरले ही काष्ठिल, पादप, सीधा, बेलनाकार, शाखीय, ठोस या पोला, रोमिल या अरोमिल भूमिय जैसे कि आलू में; पत्तियां: स्तंभिक या शाखीय, सरल, अनुपर्णी, पर्ण वृंतीय या अवृंत, एकांतरी विन्यासित, विरले ही सम्मुख, अचक्रिक जैसे टमाटर में, एक शिरीय जालिका वत शिरा विन्यास।

पुष्प लक्षण

पुष्पक्रम: एकल, असीमाक्ष, ससीमाक्ष पुष्पछत्री या ससीमाक्ष कुंडलिनी रूप जैसा मकोय में। पुष्प: सहपत्री या असहपत्री, सवृंत, पूर्ण, उभय लिंगी, पंचतयी, त्रिज्यासममित तथा अधोभूमिक; वाह्यदल: पांच, संयुक्त, नलिकाकार या घंटाकार, सदाबहार, हरे या रंगीन, रोमिल; पंखुड़ी: पाँच, संयुक्त, नलिकाकार या कीपाकार, शिरा विन्यास कोर स्पर्शी या कोरछादी, रंगीन; पुमंग: पुंकेसर पांच, दललग्न, परागकोश अंतर्मुखी, द्विकोष्ठकी अद्र्धबद्ध या पृष्ठ लग्न, दलपुंज नलिका में गहराई तक निवेशित; जायांग: अंडाशय द्विअंडपी, सयुक्तांडपी, उच्च, तिर्यक स्थित, अक्षीय बीजांडन्यास, प्रत्येक कोष्ठ में बहुत-से बीजांडों के साथ, वर्तिका सरल, वर्तिकाग्र द्विशाखी या समुंड; फल: संपुट या बैरी; बीज: भ्रूणपोषी तथा कीटो द्वारा परागण (चित्र 16.33)।



चित्र 16.33 मकोय (क) पुष्पधारी शाखा (ख) पुष्प (ग) पुष्प की अनुदैर्ध्य काट (घ) पुंकेसर (च) जायांग (छ) पुष्प आरेख एवं पुष्प सूत्र

आर्थिक महत्त्व

यह कुल भी अत्याधिक आर्थिक मूल्य का है और यह हमे भोजन प्रदान करता है। यह नारकोटिक्स सहित दवाए उद्यानी पादप भी देता है। आलू, बैंगन, टमाटर, मिर्च सब्जी की भांति प्रयुक्त होते हैं। रेस्पबेरी खाद्ध फल देती है। बेलाडोना (*Atropa belladonna*) मे ऐट्रोपीन अेल्कालोइड होता है जो आँख परीक्षा तथा प्लास्टर के काम आता है। तम्बाकू से प्राप्त निकोटीन कीटनाशकों में प्रयुक्त होती है। धतूरे के बीज, हेनबेन, (*Hyoscyamus niger*) तिक्त मीठी, कटेली (*Solanum xanthocarpum*) तथा असगंध (*Withania somnifera*) की जड़ें दवाओं में प्रयुक्त होते हैं। तम्बाकू का प्रयोग बीड़ी, सिगरेट बनाने में एवं, चबाने में होता है। कुछ पादप जैसे रात की रानी *सेस्ट्रम नोकटर्नम* (*Cestrum nocturnum*), पिटूनिया (*Petunia*), शइजेन्थस (*Schizanthus*) उद्यानों में उनके सुंदर फूलों के लिए उगाए जाते हैं।

लिलिएसी

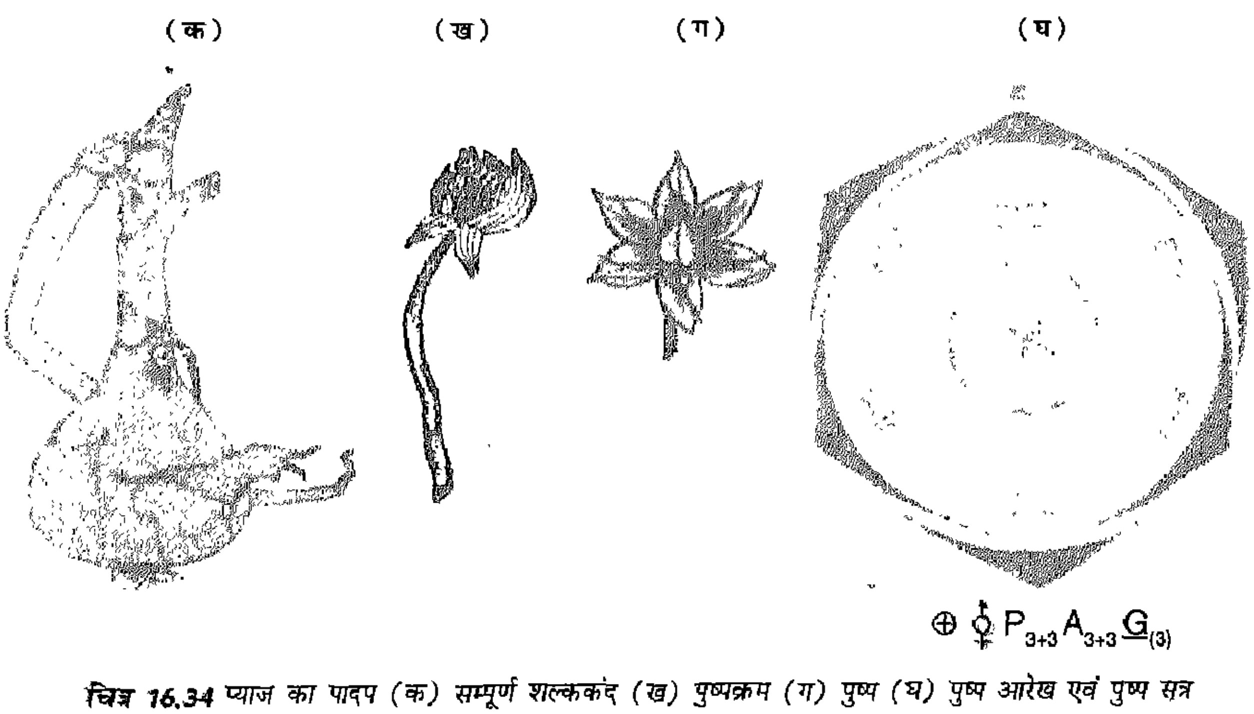
साधारणत: **लिलीकुल** को लिलिएसी कहते हैं। यह एक बीजपत्री पादपों का कुल है, इसके अंतर्गत 250 वंश और 4000 जातियां विश्व में वितरित हैं, जिसमें से 200 जातियां भारत में उपलब्ध हैं।

कायिक लक्षण

पादप अधिकतर शाकीय, चिरकालिक प्रकंद या शल्क कंद सहित, कुछ आरोही (Asparagus and Smilax) युक्का व ऐलो (Yucca and Aloe) मरूद्भिदी है; जड़ें रेशेदार, गांठदार जैसे ऐस्पेरेगस में; स्तंभ ठोस या पोला, भूमिगत प्रकंद, शल्क कंद या घनकंद, वायव आरोही या सीधा पर्णाभ वृंतधारी हो सकता है; पत्तियां मूलज या स्तंभिक, अनुपर्णी एकांतरी, सम्मुख या आवर्ती अवृंत या वृंत, चादरी आधार के साथ, समानांतर शिरा विन्यास, जालिकावत् जैसे कि स्माइलेक्स (Smilax) में। एस्पेरेगस (Asparagus) में पत्तियां क्षुद्र शल्क (क्लेडोड) में परिवर्तित हो जाती हैं (चित्र 16.34)।

पुष्पी लक्षण

पुष्पक्रम: एकल अक्षीय सवृंत, असीमाक्ष पुष्पगुछ अथवा ससीमाक्ष छत्री; *पुष्प:* पुष्पावृंत, त्रिज्यासममित या एकव्याससममित, उभयलिंगी या एकलिंगी जैसे कि स्माइलेक्स (Smilax) एवं रस्कस (Ruscus) में, अधोभूमिक, पूर्ण, विरले ही अपूर्ण, त्रितयी विरले ही द्वि अथवा चतुष्तायी; *परिदल पुंज:* छह दो आवर्ती में, झिल्ली या झिल्लीमय, पृथक परिदली या संयुक्त परिदली, दलीय या बाह्य दलीय, कोर स्पर्शी पुष्प दल विन्यास; *पुमंग:* पुंकेसर छह दो चक्र में व्यवस्थित बहु पुंकेसरी, अधिपर्णी तथा अपर्णी, तंतु दीर्घ, परागकोश द्विकोष्ठी, अंतर्मुखी या बाह्यमुखी, मुक्तदोली या अद्र्धबद्ध; *जायांग:* त्रिअंडपी, समुकांडपी, उर्ध्व अंडाशय, अक्षीय बीजांडन्यास, वर्तिका सरल, वर्तिकाग्र त्रियामी; *फल:* बैरी या संपुट; *बीज:* भ्रूणपोषीय (चित्र 16.34)।



चित्र 16.34 *प्याज का पादप (क) सम्पूर्ण शल्ककंद (ख) पुष्पक्रम (ग) पुष्प (घ) पुष्प आरेख एवं पुष्प सूत्र*

आर्थिक महत्व

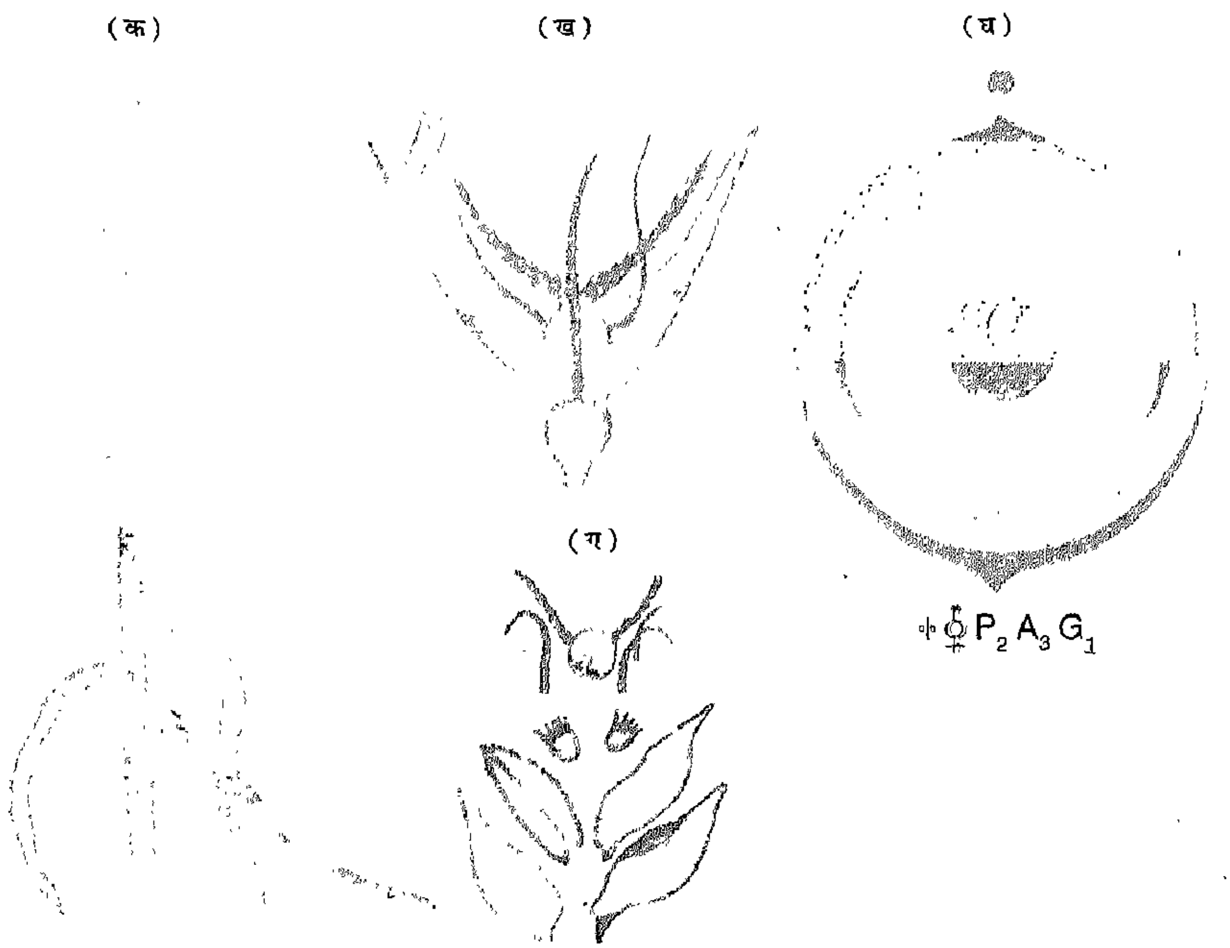
प्याज, लहसुन और शतावार खाद्य के रूप में। स्माइलेक्स, ऐलो ग्वारपाठा, कोल्चिकम एवं शिला (Scilla) से लाभदायक औषधि का उत्पादन होता है। एलोइन एक रेचक है जिसे ग्वारपाठा (Aloe vera) से प्राप्त करते हैं। चूहा-जहर अर्जीनिया (Urginea) एवं शिला से, शक्तिवर्धक शतावर से प्राप्त होते हैं। युक्का तथा फोर्मियम टेनेक्स (Phormium tenax) रेशे उत्पन्न करते हैं। ड्रेसीना (Dracaena) व जेंथोराहिया (Xanthorrhoea) से राल निकलती है, जो मुहर लगाने के मोम का काम करती है। लीलियम, ग्लोरिओसा, रस्कस एवं सतावर (Asparagus) आदि पादप उद्यानों में लगाए जाते हैं।

पोएसी

इस कुल का नाम पहले ग्रेमिनी (Graminae) था, यह कुल एकबीज पत्रियों में आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह एक सबसे बड़ा कुल है जिसके अंतर्गत 620 वंश एवं 6000 जातियां हैं। उनमें से 900 जातियां भारत में उपलब्ध हैं।

कायिक लक्षण

पादप साधारणतया एकवर्षीय शाकीय होते हैं। कुछ चिरकाली और क्षुप हो सकते हैं, विरले ही वृक्ष (जैसे बांस) होते हैं। इनकी जड़ें रेशेदार और शाखित, गुच्छित या प्रवाली जैसी कि मक्का में; **स्तंभ:** स्पष्ट पर्वसंधियुक्त कल्म, बेलनाकार तथा पोला मध्यगाठीय, चिरकालिक घासों में भूमिगत, प्रकंदी होते हैं। **पत्तियां:** सरल,



चित्र 16.35 गेहूं का पादप (क) पुष्पधारी शाखा (ख) एक पुष्प (ग) पुष्प के भाग (घ) पुष्प आरेख एवं पुष्प सूत्र। ध्यान दें कि प्रारंभिक अवस्था में तीन अंडप संयुक्त हो गए हैं जिससे एकल बीजांड सहित एक ही कोष्ठक बनता है

एकांतरी विन्यासित, अनुपर्णी, आवृंत, जिह्वाकार, नलिकाकार खुली छद (sheath) के साथ, पत्तीआधार से विकसित, समानांतर शिराविन्यास दर्शाती है।

पुष्पी लक्षण

पुष्पक्रम: मुख्यअक्ष पर लघु कणिशों से निर्मित संयुक्त कणिश होता है। मुख्य अक्ष के आधार पर दो बंध्य शल्क जो कणिशकवच कहलाते हैं, निकलते हैं। पुष्पों का एक क्रम कणिशकवच के ऊपर उर्ध्व अथवा अधोशल्किकाओं के साथ प्रदर्शित होता है। प्राय: प्रत्येक प्रमेयिका के ऊपर एक दीर्घ कठोर रोम जो शूक कहलाता है, दिखाई देता है। **पुष्प:** सहपत्री एवं सहपत्रित, आवृंत, अपूर्ण, उभयलिंगी या एकलिंगी, अभिव्यामित और अधोजायांग होते हैं। **परिदल पुंज:** शल्की झिल्ली-युक्त होती है जो लॉडीक्यूल कहलाता है। **पुमंग:** तीन (विरले ही छ:) पुंकेसरों से बना होता है, जो प्रथक पुंकेसरी, बहु पुंकेसरी, दीर्घ तंतु, परागकोश मुक्तदोली, द्विकोष्ठी, रेखी तथा बर्हिमुखी होता है। **जायांग:** तीन अंडप, संयुक्तांडपी, एक बीजांड, अंडाशय ऊर्ध्व, आधारी बीजांडन्यास, लघु वर्तिकाधारी, वर्तिकाग्र पंखसम अथवा पिप्पलमय और शाखित। **फल:** कैरिओप्सिस, विरले ही दृढ़फल (Dendrocalamus) या सरसफल (Bambusa) होते हैं। **बीज:** भ्रूणपोषीय, एकबीजपत्री (चित्र 16.35)।

आर्थिक महत्त्व

इस कुल से प्रमुख खाद्य (गेहूं, ज्वार, जौ, चावल, बाजरा और जई) एवं कई प्रकार की घासों से भूसा प्राप्त होता है। गुड़ और शक्कर गन्ना से, आवास तथा फर्नीचर बांस से, तथा कुछ घासों से सुगंधित तेल जैसे खसखस व लेमन घास से प्राप्त होता है। बांस तथा कुछ घासों से कागज तैयार किया जाता है जब कि कुछ पादप अलंकरण के काम आते हैं।

सारांश

पुष्पी पादप वनस्पति समूह का प्रभावकारी अंश निर्मित करते हैं। इस समूह के पादपों में आकार, जीवनकाल, प्रकृति एवं आवास तथा पोषण विधि में स्पष्ट विविधताएं हैं। इनमें मूल एवं प्ररोह तंत्र भलीभांति विकसित होते हैं और रूप, आकार एवं संरचना और कार्यों में भी पर्याप्त भेद दर्शाते हैं। द्विबीजपत्री पादपों में सामान्यत: मूसला जड़ तंत्र और एकबीजपत्रियों में झकड़ा जड़ तंत्र विद्यमान होता है। विशिष्ट पारिस्थितिक दशाओं में कभी-कभी यह भाग रूपांतरित होकर सामान्य से भिन्न प्रकार के कार्य भी संपन्न करते हैं।

कुछ पादपों में जड़ें भंडारण अंगों एवं यात्रिक अवलम्ब हेतु रूपांतरित हो जाती है। संधियों पर्व एवं पर्व-तथा बहिर्जात परिवर्धित, बहुकोशिक रोमों की उपस्थिति और इनकी धनात्मक प्रकाशानुवर्त्ती प्रकृति स्तंभ के ऐसे महत्त्वपूर्ण आकारिकी लक्षण हैं जो स्तंभों की जड़ों से विभेदित करने वाले है। इनमें से कुछ तो दृढ़ होते हैं, और ऊर्ध्व दिशा में खड़े रहते हैं जैसे कि वृक्षों और शाकों में। जब कि अन्य निर्बल होते और उन्हें आरोहण एवं सीधे खड़े होकर मूलभूत कार्यों को संपन्न करने के लिए अवलंब की आवश्यकता होती है, स्तंभ विभिन्न परिस्थितियों में विविध कार्य संपन्न करने के लिए घनकंद, प्रकंद कन्द शल्क-कंद ऊपर भूस्तारी, चूषक प्रतान कंटक शूल, पर्णाभ वृंत पत्रप्रकलिक आदि। साथ ही पुष्पी पादपों में एक शाखी, द्विशाखी बहुशाखी अथवा सीमाक्ष प्रकार की शाखन पद्धति भी दिखाई देती है।

पत्ती पर्वसंधि पर बहिर्जति परिवर्धन करने वाली स्तंभ अथवा शाखा की पार्श्व प्रवर्ध है। पर्ण-आधार, वृंत एवं फलक पत्ती के भाग हैं जो अपने आकार और रूप में पर्याप्त विविधता दर्शाते हैं। यहां तक कि इनकी कोर, शीर्ष, सतह और पर्णफलक के गठन की सीमा में भी अंतर पाया जाता है। शिरा-विन्यास के जालिकावत् अथवा समानांतर होने के आधार पर यह पता लगाना संभव होता है कि पत्ती द्विबीजपत्री (जालिकावत्) अथवा एकबीजपत्री (समानांतर) किस वर्ग के पादप की है। पत्ती में मात्र एक पर्णफलक सरल और एक मध्यशिरा विद्यमान होने से यह सरल प्रकार अथवा खंडित कई पत्रकों के साथ और बिना मुख्यशिरा के संयुक्त प्रकार की हो सकती है। पत्तियां पर्वसंधियों पर किसी विशिष्ट संगठित पद्धति, जिसे पर्ण-विन्यास कहते हैं, के अनुसार विभिन्न संख्याओं में लगी रहती हैं। अन्य अंगों की भांति पत्तियां भी विभिन्न संरचनाओं में रूपांतरित हो जाती हैं। कुछ पादपों में एक से अधिक प्रकार की पत्तियां विषमपर्णता पाई जाती है।

पुष्प लैंगिक जनन हेतु एक रूपांतरित प्ररोह है। यह एक निश्चित अथवा अनिश्चित वृद्धिधारी शाखाओं पर उत्पन्न होते हैं। विविध प्रकार के पुष्पक्रम जैसे मंजरी, स्थूल मंजरी, स्पेथ, संयुक्त स्थूलमंजरी समशिख, छत्रक, संयुक्त छत्रक, मुंडक पट

असीमाक्ष पुष्प रूप इसके अतिरिक्त ससीमाक्ष पुष्पक्रम और छोटा है एक शाखी, द्विशाखी आदि। सामान्यत: एक पुष्प में चार भाग बाह्यदलपुंज, दलपुंज, पुमंग एवं जायांग पाए जाते हैं। पुष्प और इसके अंगों की संरचना, सममिति अन्य भागों की तुलना में अंडाशय की स्थिति आदि की दृष्टि से विविधता पाई जाती है। अंडपों की अंडाशय के बीजांडासन पर सीमांत, अक्षीय, भित्तिलग्न, मुक्त अक्षीय, असमकेंद्रस्थ, आधारलग्न स्थिति होती हैं।

फल परिपक्व अंडाशय से निर्मित होते हैं और इनमें तीन पर्तों से निर्मित फल भित्ति धारण करते हैं जो शुष्क अथवा मांसल हो सकती हैं। यह मात्र एक अंडाशय, वियुक्ताण्डपी अंडाशयों के एक झुंड अथवा एक संपूर्ण पुष्पक्रम से भी निर्मित हो सकते हैं। शुष्क फल शिंब, फॉलिकल अथवा सिलिकुआ अथवा संपुट आदि प्रकार के हो सकते हैं। जो परिपक्व होने पर स्फुटित हो जाते हैं अथवा कैरिओप्सिस, ऐकीन, सिप्सेला, समारा अथवा नट जो परिपक्व होने पर भी स्फुटित नहीं होते हैं। अष्ठिलफल, सरसफल पीपो, पोम, हेस्परीडियम, बलूस्ता प्रकार के होते हैं जब पुंज अथवा संयुक्त फल प्रकार के, स्फुटनशील फल हटकर अनुप्रस्थ छिद्र, सीवन अथवा सोरोसिस कपाट, कोष्ठक अथवा विभाजन भित्ति द्वारा बीज अवमुक्त करते हैं।

बीजों का निर्माण बीजाणु से निषेचन के उपरांत होता है और यह आकार, रूप तथा जीवंतता कालों में पर्याप्त विविधता दर्शाते हैं। यह बीजपत्र, प्रांकुर, बीज एवं मूलांकुर से बनते हैं जो चोलों से आवरित रहते हैं। अधिकांश द्विबीजपत्री बीजों में पकने के बाद भ्रूणपोष विद्यमान नहीं होता जबकि एकबीजपत्री बीजों में यह विद्यमान रहता है। भ्रूणपोष धारी बीजों में प्रांकुर एवं मूलांकुर क्रमश: प्रांकुर चोल एवं मूलांकुर चोल से सुरक्षित रहते हैं। कुछ फलों और बीजों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रकीर्णन हेतु विशेष प्रकार की युक्तियां पाई जाती हैं और इस परिघटना में वायु, जल एवं मानव सहित कई प्रकार के जंतु सहायता पहुंचाते हैं।

किसी पुष्पी पादप को निश्चित क्रम में वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए वर्णित किया जाता है जिसके अंतर्गत इसकी प्रकृति, आवास, जड़, स्तंभ, पुष्पक्रम, फल एवं बीज एवं उनके रूपांतर आते हैं। पुष्पी लक्षणों को भी सारांश रूप में पुष्प-आरेख एवं पुष्प-सूत्र के रूप में दिया जाता है कुछ ऐसे चयनित कुलों का वैज्ञानिक वर्णन भी इस अध्ययन हेतु प्रदर्श के रूप में दिया गया है, जिनके पादप आर्थिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

अभ्यास

1. चित्र की सहायता से किसी पुष्पी पादप के विभिन्न अंगों का वर्णन कीजिए।
2. जड़ों के निम्न रूपांतरों पर टिप्पणियां लिखिए : तर्कु, वायु-श्वसनकारी, कंदिल, प्रवाल-पद (prop), अंत: भूस्तारी.
3. निम्न वक्तव्य को केवल बाह्य लक्षणों के आधार पर न्यायसंगत ठहराइये : 'आलू एक स्तंभ है और शकरकंद एक जड़'
4. स्तंभ में शाखन-पद्धतियों और उनके महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए।
5. कंटक एवं शूल में क्या अंतर है ? उदाहरणों की सहायता से वर्णन कीजिए।
6. पर्णाभ-वृंत एवं पर्णाभ पर्व दोनों ही स्तंभ के वायवीय रूपांतरण हैं। उदाहरणों की सहायता से व्याख्या कीजिए।
7. पर्ण-विन्यास एवं विषम-पर्णता पर सूक्ष्म टिप्पणियां लिखिए।
8. "पत्तियां, प्रतान, कंटक, शल्क, पर्णाभ, घट एवं थैले-सम संरचना में विशिष्ट कार्यों को करने के लिए रूपांतरित हो जाती है।" इस कथन को उपयुक्त उदाहरणों एवं चित्रों की सहायता से दर्शाइए।
9. विशिष्ट प्रकार के पुष्पक्रमों से आप क्या समझते हैं ? चित्रों एवं उदाहरणों की सहायता से इनका वर्णन कीजिए।
10. "पुष्प एक रूपांतरित प्ररोह है" कथन का औचित्य इंगित कीजिए।
11. बंध्य पुंकेसर एवं बंध्य स्त्रीकेसर से आप क्या समझते हैं ?
12. पुष्पी पादपों में प्राप्त विविध प्रकार के बीजांड-न्यासों का वर्णन कीजिए।
13. पुष्प दल-विन्यास से आप क्या समझते हैं ? दलों में प्राप्त विविध प्रकार के पुष्पदल-विन्यासों का वर्णन कीजिए।
14. निम्न के बीच विभेदन कीजिए :
    (i) अनुपत्र एवं सहपत्र
    (ii) अंतस्फुटी एवं बहिस्फुटी पराग-कोष
    (iii) वियुक्तांडपी एवं संयुक्तांडपी अंडाशय

(iv) त्रिज्यासममिति एवं एकसममिति पुष्प

(v) बाह्यदलीय और दलीय दलपुंज

15. विविध प्रकार के फलों पर एक लेख लिखिए।
16. निम्न फलों के खाद्य भागों का वर्णन कीजिए : आम, अंगूर, टमाटर, केला, अनानास एवं सेब।
17. फलों एवं बीजों के प्रकीर्णन से आप क्या समझते हैं? इस परिघटना में विभिन्न कारकों की भूमिका भी स्पष्ट कीजिए ।
18. ब्रेसिकेसी कुल का वैज्ञानिक वर्णन दीजिए। इसका आर्थिक महत्त्व भी इंगित कीजिए।

अध्याय 17

पुष्पी पादपों की आंतरिक संरचना

पिछले अध्याय में आप पौधे के विभिन्न भागों के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। पादप शरीर कोशिकाओं का बना होता है जिनसे विविध प्रकार के ऊतकों का संगठन होता है। विविध प्रकार के ऊतक मिलकर **ऊतक-तंत्र** बनाते हैं। यह एक निश्चित संरचनात्मक तथा कार्यकारी संगठन दर्शाते हैं। पादपों के विभिन्न भागों की आंतरिक संरचना के अध्ययन के द्वारा हम ऊतक-तंत्र के संगठन को समझ सकते हैं। इस अध्याय में हम पुष्पी पादपों के ऊतक, ऊतक-तंत्र, द्विबीजपत्री एवं एकबीजपत्री स्तंभ, जड़ एवं पत्ती की आंतरिक संरचना और साथ ही उनमें होने वाली द्वितीयक वृद्धि का अध्ययन करेंगे।

17.1 ऊतक

पादप ऊतकों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

(i) विभज्योतक (meristematic tissues) और

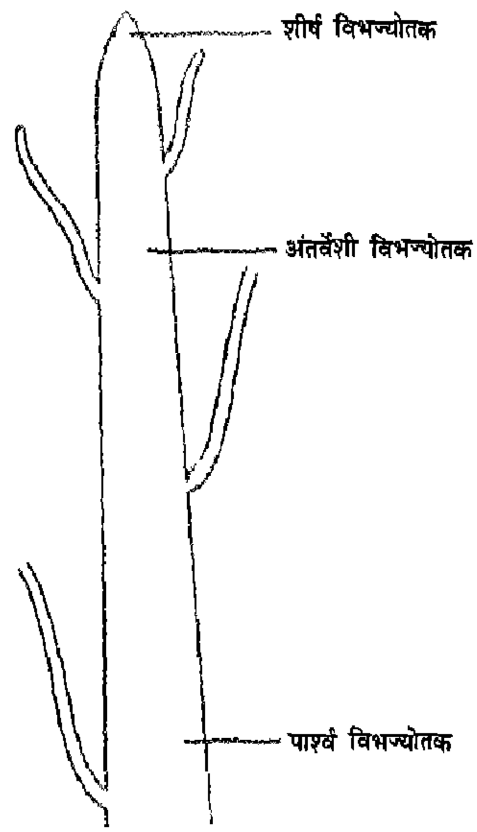
(ii) स्थायी ऊतक (permanent tissues)।

विभज्योतक

पादप के भ्रूण की सभी कोशिकाओं में विभाजन की क्षमता होती है लेकिन पादप की वृद्धि के साथ-साथ यह क्षमता कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित हो जाती है। विभज्योतक एक स्थानीय क्षेत्र होता है जिसमें वास्तव में कोशिका विभाजन होता है। उद्गम एवं विकास के आधार पर विभज्योतकों को **आदिविभज्योतक** (promeristem), **प्राथमिक विभज्योतक** एवं **द्वितीयक विभज्योतक** में वर्गीकृत करते हैं। विभज्योतकों को पादप शरीर में उनकी स्थिति के आधार पर **शीर्ष** (apical), **अंतर्वेशी** (intercalary) एवं **पार्श्व** (lateral) में भी विभाजित किया जाता है (चित्र 17.1)।

शीर्ष विभज्योतक स्तंभ एवं जड़ दोनों के सिरे पर होता है। यह प्रायः गुंबद के आकार का होता है जिसकी बाह्य परतों, **ट्यूनिका** एवं **आंतरिक पिंड** में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है (चित्र 17.2)।

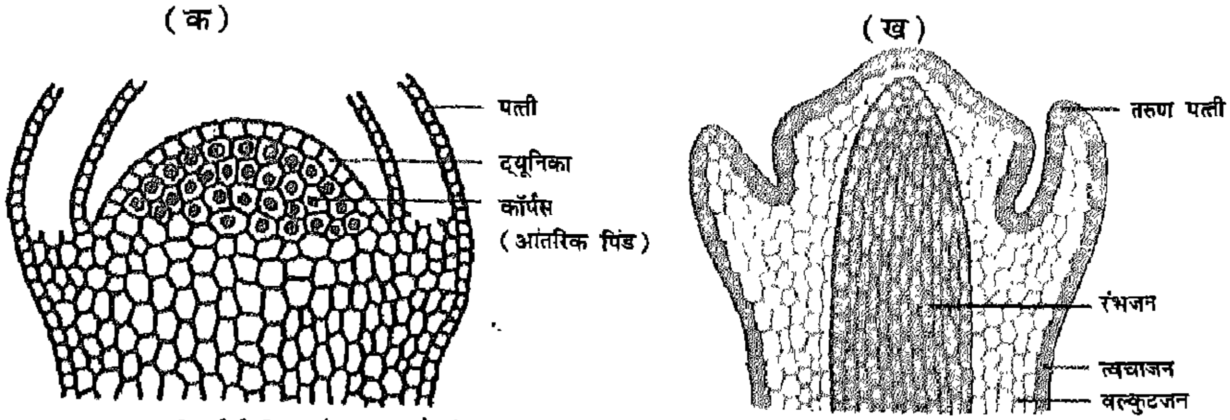
शीर्ष विभज्योतक समान कोशिकाओं के एक छोटे से पिंड का बना होता है जो मिलकर आदिविभज्योतक बनाती हैं।



चित्र 17.1 स्थिति के आधार पर विभज्योतकों की पहचान

आदिविभज्योतक की कोशिकाएं तीन क्षेत्रों, जैसे **त्वचाजन** (dermatogen), **वल्कुटजन** (periblem) एवं **रंभजन** (plerome) में विभेदित होती हैं जो वृद्धि करके प्राथमिक स्थायी ऊतकों को बनाती है।

(क) त्वचाजन - यह कोशिकाओं की एकल, बाह्यतम परत है। यह विभाजन कर के स्तंभ की त्वचीय परत (epidermis) को बनाती हैं। जड़ों में, त्वचाजन की कोशिकाएं ऊतकों का एक छोटा सा पिंड (calyptrogen) बनाती हैं। यह भी विभाजनशील होता है और मूल टोप (root cap) का निर्माण करता है। द्विबीजपत्रियों में, त्वचाजन मूल की बाह्यतम परत (epiblema) बनाते हैं।



चित्र 17.2 एक प्ररूपी शीर्ष विभज्योतक अनुदैर्ध्य काट में (क) ट्यूनिका परत एवं आंतरिक पिंड दर्शाती है (ख) तीन क्षेत्र-त्वचाजन, वल्कुटजन एवं रंभजन दृष्टव्य हैं

(ख) वल्कुटजन – यह त्वचाजन के अंदर की ओर स्थित होता है और स्तंभ एवं जड़ की वल्कुट का निर्माण करता है।

(ग) रंभजन – यह वल्कुटजन के अंदर की ओर स्थित केंद्रीय क्षेत्र है। जहां कोशिकाएं अनुदैर्ध्य संगठन की प्रवृति दर्शाती हैं। ये अनुदैर्ध्य कोशिकाएं **आदि एधा** (procambium) का निर्माण करती हैं जो संवहनी ऊतकों (vascular tissues; दारु एवं फ्लोएम) को जन्म देती हैं और स्तंभों के केंद्रीय बेलन (central cylinder) अथवा रंभ (stele) का संगठन करती हैं।

स्थायी ऊतक

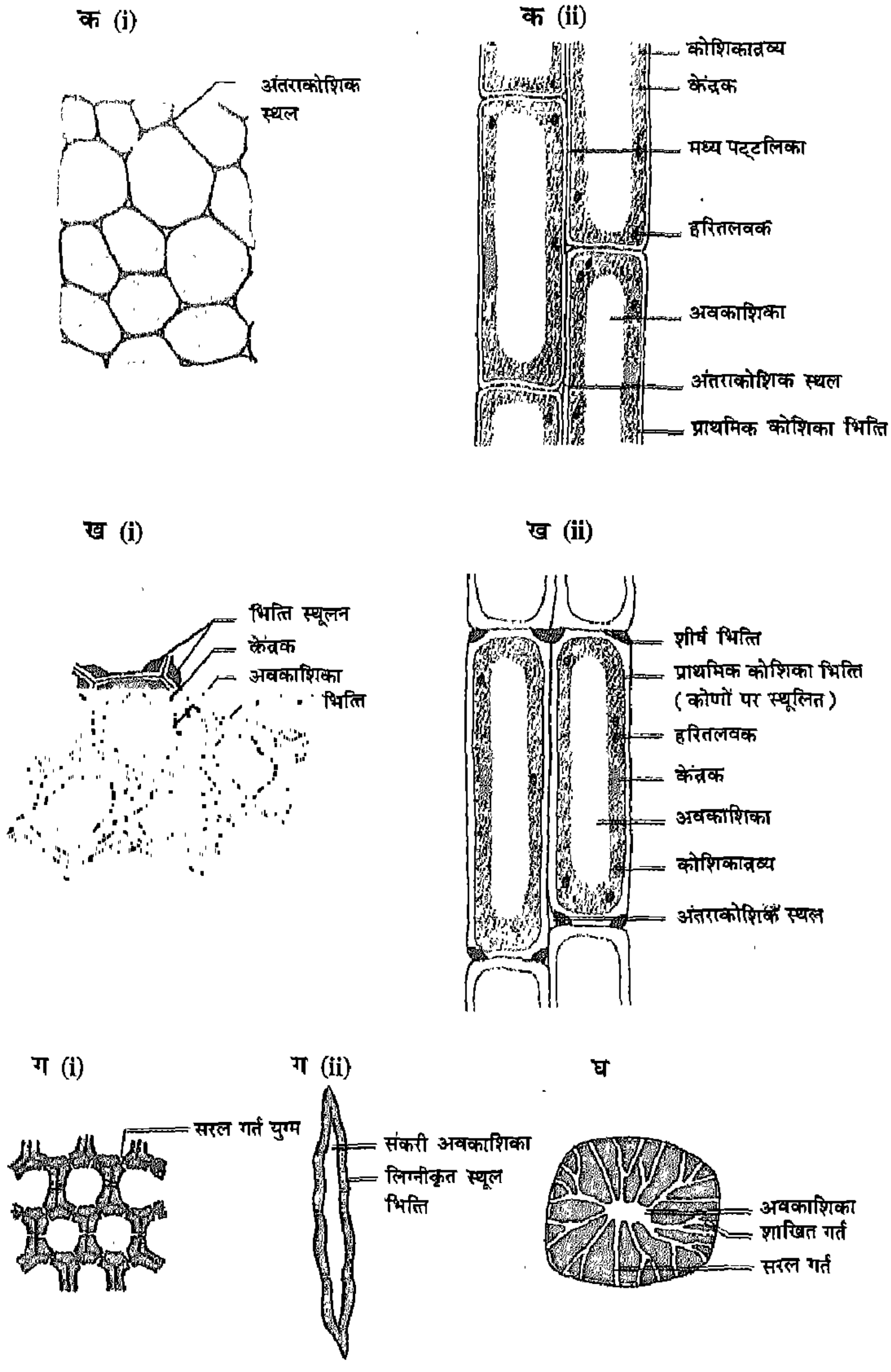
स्थायी ऊतक ऐसी कोशिकाओं से मिलकर बने होते हैं जिनकी विभाजन की क्षमता समाप्त हो चुकी है। इन्हें दो समूहों (i) सरल ऊतक तथा (ii) जटिल ऊतक में विभाजित किया जाता है।

सरल ऊतक

इनकी प्रकृति समरूप होती है और यह एकसमान संरचना तथा कार्य करने वाली कोशिकाओं से मिलकर बनते हैं। सरल स्थायी ऊतक के सामान्य प्रकार हैं–**मृदूतक** (parenchyma), **स्थूलकोणोतक** (collenchyma) एवं **दृढ़ोतक** (sclerenchyma)। मृदूतक सर्वाधिक सामान्य ऊतक है जो आकारिकी तथा कार्यिकी की दृष्टि से विशिष्टता-विहीन होता है और सभी पादपांगों जैसे वल्कुट, मज्जा, पत्ती के मध्योतक एवं पुष्पांगों का ढांचा बनाता है। सामान्यत: मृदूतकी कोशिकाएं समव्यासीय होती हैं, लेकिन वे दीर्घीकृत अथवा पालीदार भी हो सकती हैं जैसे कि पत्तियों के मध्योतक में। यह सघन संवेष्टित होती है अथवा छोटे-छोटे अंतराकोशिक स्थल दर्शा सकती हैं (चित्र 17.3क)। इनमें सामान्यत: **जीवद्रव्य-तंतु** (plasmodesmata), कोशिका-द्रव्यी सूत्र जो एक कोशिका से दूसरी तक जाते हैं) विद्यमान होते हैं। जब मृदूतकी कोशिकाएं प्रकाश प्रभावित हो जाती हैं तो इनमें हरितलवक (chloroplast) परिवर्धित हो जाते हैं और ऐसा ऊतक हरितऊतक (chlorenchyma) कहलाता है। मृदूतक की कोशिकाएं विविध कार्यिक क्रियाकलापों जैसे प्रकाशसंश्लेषण, स्वांगीकरण, भंडारण, स्रवण, नि:स्रवण, आदि में संबद्ध रहती है।

स्थूलकोणोतक दूसरा सरल ऊतक है। यह प्राय: दीर्घीकृत कोशिकाओं का बना होता है जिनकी कोशिका भित्तियां प्राथमिक, लिग्निन-विहीन होती है। इनकी कोशिका भित्ति का विशिष्ट गुण यह है कि इसमें असमान स्थूलन (मोटाई) होता है (चित्र 17.3ख)। कोशिका-स्थूलन प्राथमिक प्रकृति का होता है और यह सेलूलोस, हेमीसेलूलोस, पैक्टिक पदार्थों तथा उच्च प्रतिशत जल से संगठित होता है। स्थूलन मूलरूप से कोशिकाओं के कोणों पर होता है। इनमें रसधानी युक्त जीव-द्रव्य होते हैं और यह विशिष्ट रूप से शाकीय द्विबीजपत्रियों की अधस्त्वचा (hypodermis), बाह्यत्वचा के नीचे वाली परत में एक समान परत अथवा खण्डों (patches) के रूप में पाई जाती हैं। ये कोशिकाएं एक प्रभावी यांत्रिक ऊतक का संगठन करती हैं तथा वृद्धि करते हुए अंगों को लचीलापन तथा अवलंब प्रदान करती हैं।

दृढ़ोतक तीसरा सरल ऊतक है जिसका प्रमुख कार्य यांत्रिक सहायता प्रदान करना है। इसकी कोशिकाएं प्रचुरता से स्थूल-भित्ति युक्त तथा लिग्निन-धारी होती हैं जिनमें सरल अथवा परिवेशित (bordered) गर्त होते हैं। इनमें जीवंत जीव-द्रव्य नहीं होता है। अपने उद्गम, रूप, संरचना और परिवर्धन के आधार पर यह **रेशों** (चित्र 17.3ग) अथवा **दृढ़कोशिकाओं** (sclereids) (चित्र 17.3घ) का निर्माण करते हैं। उसमें रेशे तो नुकीले एवं सूच्याकार (needle-like) होते हैं। यह पादप शरीर के विभिन्न भागों में, समूहों में, चादरों की भांति अथवा बेलनाकार संगठन में पाए जाते हैं। दृढ़कोशिकाओ की भित्ति अत्यधिक स्थूलन-युक्त, कठोर एवं भरपूर लिग्निन-धारी होती हैं। वे अधिकांशत: समव्यासीय, बहुतलीय, लघु और बेलनाकार होती हैं। यह ऐसी मृत कोशिकाएं हैं जिनमें संकरी कोशिका अवकाशिका होती हैं क्योंकि इनमें कोशिका भित्ति पर अत्यधिक स्थूलन होता है।



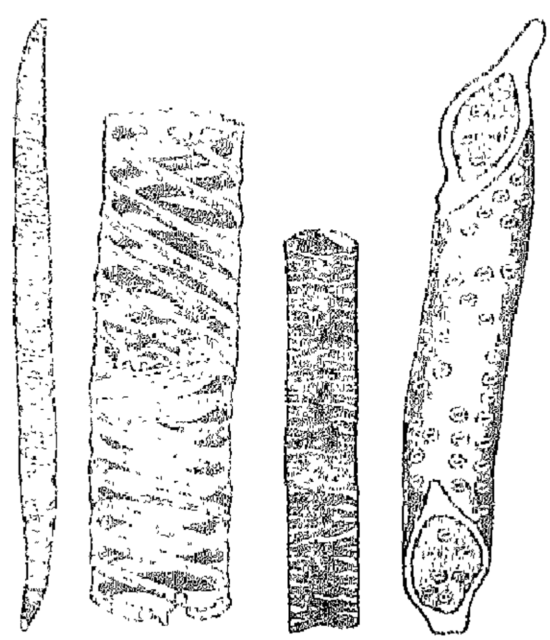
चित्र 17.3 विविध प्रकार के सरल ऊतक (क) मृदूतक (i) अनुप्रस्थ काट (ii) अनुदैर्ध्य काट (ख) स्थूलकोणोतक (i) अनुप्रस्थ काट (ii) अनुदैर्ध्य काट (ग) रेशा (i) अनुप्रस्थ काट (ii) अनुदैर्ध्य काट (घ) दृढ़कोशिका

जटिल ऊतक

दारु एवं फ्लोएम जटिल ऊतक हैं :

(क) दारु (xylem) – यह एक संवहनी ऊतक है और चार भिन्न प्रकार के तत्त्वों से बनता है वे हैं : (*i*) वाहिनिकाएं (tracheids), (*ii*) वाहिकाएं (vessels), (*iii*) दारु रेशे (xylem fibres), एवं (*iv*) दारु मृदूतक (xylem parenchyma)। दारु का कार्य जल, खनिज लवणों एवं हार्मोनों का जड़ से पत्ती तक संवहन करना तथा पादप शरीर को यांत्रिक शक्ति प्रदान करना है।

(*i*) ***वाहिनिकाएं*** : एक एकल वाहिनिका अत्यंत दीर्घीकृत, नलिका-सम, कठोर, स्थूल एवं लिग्निनधारी भित्तियों और बृहद् गुहिकाकार कोशिका है। वाहिनिकाओं के सिरे पतले होते हुए, मोथरे अथवा छैनी-जैसे होते हैं (चित्र 17.4)। यह आदि पादपों के दारु के संघटक हैं। इनकी कोशिका भित्ति कठोर, पर्याप्त स्थूलन-युक्त एवं लिग्नीकृत होती है। द्वितीयक भित्ति परतों पर विविध प्रकार के स्थूलन पाए जाते हैं जो वलयाकार (मुद्रिका के रूप में), सर्पिल, जालिकावत, सीढ़ीनुमा अथवा सरल अथवा परिवेशित गर्तों युक्त होती है। अनुप्रस्थ काट में यह गोल, बहुभुजीय अथवा बहुतलीय दिखाई देती हैं। इतने सारे संरचनात्मक अनुकूलनों के फलस्वरूप, पादप शरीर को यांत्रिक अवलंब प्रदान करने के साथ-साथ यह जल, हार्मोनों एवं विलेयों का संवहन मूल से स्तंभ, पत्तियों एवं पुष्पांगों तक करते हैं। अनावृतबीजियों (gymnosperms) में यह मुख्य जल-संवहन अवयव होते हैं।



चित्र 17.4 विभिन्न प्रकार के स्थूलनधारी वाहिनिकाएं (क) वलयाकार, (ख) सर्पिलाकार (ग) सीढ़ीनुमा (घ) गर्तमय

(*ii*) ***वाहिकाएं*** : वाहिका एक लंबी बेलनाकार, नलिका सम-संरचना है जिसकी भित्तियां लिग्निनधारी होती हैं, और इसमें एक चौड़ी केंद्रीय गुहिका होती है। कोशिका मृत और जीव-द्रव्य विहीन होती हैं। यह लंबवत् श्रेणियों में व्यवस्थित होती हैं जिनकी अनुप्रस्थ भित्तियां शीर्ष पट्टिकाएं (end plates) छिद्रमय होती हैं जिसके कारण समस्त आकृति एक पानी की नली जैसी प्रतीत होती है। छिद्र सरल (मात्र एक छिद्रधारी) अथवा गुणित (बहुत से छिद्र) होते हैं। बाद वाली स्थिति में यह जालिकारूप, सीढ़ीनुमा अथवा रंध्रयुक्त (foraminate) स्थितियों में समायोजित हो सकते हैं। अधिकांशत: पुष्पी पादपों में वाहिकाएं पाई जाती हैं साथ ही यह कुछ टेरिडोफाइटों तथा अनावृतबीजियों में भी मिलती हैं। छिद्रधारी पट्टिकाओं की विद्यमानता के कारण, वे वाहिनिकाओं की अपेक्षा जल एवं खनिजों के परिवहन करने में कहीं अधिक दक्ष माध्यम हैं। वे पादप शरीर को यांत्रिक अवलंब भी प्रदान करती हैं।

(*iii*) ***दारु रेशे*** : यह प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों ही प्रकार की दारूओं में पाए जाते हैं। इनमें सरल अथवा परिवेशित गर्त होते हैं। इसकी भित्ति मोटी होती है और इसमें केंद्रीय गुहिका नाममात्र की होती है। यह पट्टिकाओं युक्त अथवा पट्टिका विहीन हो सकती हैं।

(*iv*) ***दारु मृदूतक*** : प्राथमिक दारु मृदूतक की कोशिका भित्तियां पतली और सेलुलोस की बनी होती हैं। इनमें खाद्य पदार्थ मंड, वसा अथवा कभी-कभी टेनिन एवं अन्य पदार्थों के रूप में होता है। रश्मि मृदूतकी कोशिकाएं भी जल के अरीय संचलन (radial conduction) में भाग लेती हैं।

पहले बने दारु तत्त्वों को **आदिदारु** (protoxylem) कहते हैं और यह वलयाकार सर्पिल एवं सीढ़ीनुमा स्थूल-धारी वाहिकाओं के बने होते हैं तथा स्तंभ के केंद्र की ओर स्थित होते हैं। बाद में बना दारु, **अनुदारु** (metaxylem) कहलाता है और यह कुछ वाहिनिकाओं तथा साथ में जालिकामय एवं गर्तमय स्थूलन-धारी वाहिकाओं का बना होता है। स्तंभ में यह केंद्र से दूर की ओर स्थित होता है और इसकी वाहिकाओं में अपेक्षाकृत बड़ी गुहिकाएं (cavities) विद्यमान होती है।

(ख) **फ्लोएम (Phloem)** – फ्लोएम अथवा बास्ट (bast) एक दूसरा परिवहन ऊतक है। यह चार तत्त्वों से मिलकर बनता है : (i) चालनी कोशिकाएं अथवा चालनी नलिका अवयव (sieve tube elements), (ii) सहचर अथवा सखी कोशिकाएं

(companion cells), (*iii*) फ्लोएम मृदूतक (phloem parenchyma) एवं (*iv*) फ्लोएम रेशे (phloem fibres)। फ्लोएम का मुख्य कार्य बने-बनाए खाद्य पदार्थ को पत्ती से भंडारण अंगों और पादपों के वृद्धिकारी क्षेत्रों तक पहुंचाना है ।

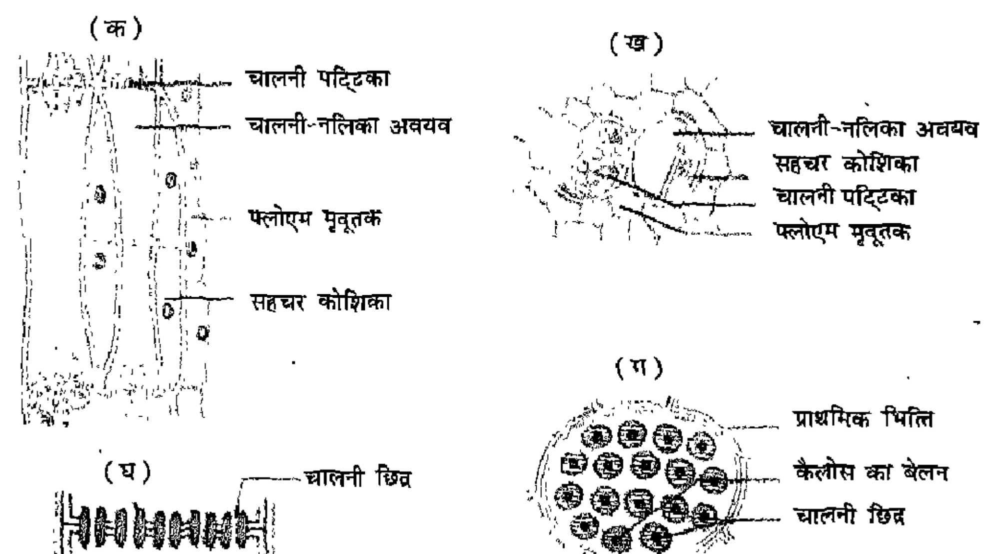
(*i*) **चालनी नलिका अवयव (Sieve-tube elements) :** यह लंबी, तनु, नलिका-सम आकृतियां हैं जो लंबवत् श्रेणियों में व्यवस्थित होती हैं, और सहचर कोशिकाओं से संबद्ध होती हैं। (चित्र 17.5 क) इनकी शीर्ष भित्तियां छिद्रधारी होती हैं और इन छिद्रों को चालनी छिद्र कहा जाता है। इस प्रकार निर्मित भित्तियों को चालनी पट्टिकाएं कहा जाता है। यह सरल अथवा संयुक्त होती हैं, तरुणावस्था में कैलोस से संसेचित (impregnate) रहती हैं और इनमें केंद्रक विद्यमान नहीं होता है। लेकिन इनमें परिधीय कोशिकाद्रव्य और एक विशाल अवकाशिका विद्यमान होती है। चालनी नलिका अवयव की विशेषता यह है कि यद्यपि यह केंद्रकविहीन होती हैं, फिर भी जीवंत होती हैं और सखी कोशिका का केंद्रक इसके कार्य-कलापों का नियंत्रण करता है, साथ ही इसमें स्पष्ट प्रोटीनी अंतर्वेश, P-प्रोटीन (P-phloem) संपूर्ण कोशिका की गुहिका में वितरित होते हैं । घाव बनने की स्थिति में कैलोस के साथ-साथ, P-प्रोटीन भी इसे बंद करने में सहायक होते हैं। लेकिन निम्न संवहन पादपों एवं अनावृत बीजियों में चालनी नलिका अवयव के स्थान पर चालनी कोशिकाएं होती है। यह संकरी, दीर्घाकृत कोशिकाएं हैं जिनमें पार्श्व भित्तियों पर कम स्पष्ट चालनी क्षेत्र विद्यमान होते हैं। यह सिरों की ओर पतली होती जाती हैं तथा इनकी अनुप्रस्थ भित्तियां अत्यंत तिरछी होती हैं।

(*ii*) ***सहचर (सखी) कोशिकाएं*** : यह विशेषीकृत मृदूतकी कोशिकाएं हैं जो चालनी नलिका अवयवों से उनके उद्गम, स्थिति और कार्यों में घनिष्ट रूप से संबद्ध होती हैं। यह उन्हीं विभज्योतकी कोशिकाओं से बनती हैं जो चालनी नलिका अवयवों को उत्पन्न करती हैं। (चित्र 17.5 ख)।

चालनी-नलिका अवयव एवं सहचर कोशिकाएं आपस में गर्त क्षेत्रों द्वारा संबद्ध रहती हैं जो उन दोनों की सामान्य लंबवत् भित्ति पर अवस्थित होते हैं और एक के मरते ही दूसरी भी मृत हो जाती हैं। सखी कोशिकाएं चालनी नलिकाओं में दाब प्रवणता (pressure gradient) बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती हैं।

(*iii*) ***फ्लोएम मृदूतक*** : यह लंबी, संकरी और प्राय: बेलनाकार ऐसी जीवंत कोशिकाओं से बना होता है जिनमें सघन कोशिका-द्रव्य और केंद्रक विद्यमान होता है। इनकी कोशिका भित्ति सेलुलोस की बनी होती है और जिस पर आपस में संबंध स्थापित करने वाली, अक्षीय मृदूतकी कोशिकाओं और रश्मि कोशिकाओं हेतु गर्त भी पाए जाते हैं। फ्लोएम मृदूतकी कोशिकाएं कार्बनिक खाद्य पदार्थ और रेजिन, श्लेष्मा (mucilage), लेटैक्स, आदि का भंडारण करती हैं।

(*iv*) ***फ्लोएम रेशे/बास्ट रेशे*** : यह अत्यंत लंबी, अशाखित (कभी-कभी शाखित भी) कोशिकाएं हैं जो अत्यंत नुकीली, सूच्याकार शीर्ष धारण करती हैं। इनकी कोशिका भित्ति पर्याप्त स्थूलित तथा सरल अथवा सूक्ष्मत: गर्त-युक्त होती है। परिपक्व अवस्था में यह रेशे जीव द्रव्य-विहीन और मृत हो जाते हैं। यह समूहों में, चादर अथवा बेलनाकार स्थिति में पाए जाते हैं जैसे अलसी (Flax-



चित्र 17.5 फ्लोएम की संरचना (क) अनुदैर्ध्य काट विभिन्न अवयवों को दर्शाते हुए (ख) अनुप्रस्थ काट चालनी नलिका अवयवों, सहचर कोशिका एवं फ्लोएम मृदूतक को दर्शाते हुए (ग) चालनी पट्टिका का सतही दृश्य (घ) चालनी पट्टिका की अनुदैर्ध्य काट

Linum usitatissimum) एवं जूट (Jute - Corchorus capsularis) में फ्लोएम का बाह्य भाग, जो संकरे नलिकाकार अवयवों से मिलकर बनता है, आदिफ्लोएम (protophloem) का निर्माण करता है तथा अंदर का चौड़ी चालनी नलिका अवयवों से बना भाग अनुफ्लोएम (metaphloem) का।

17.2 ऊतक तंत्र

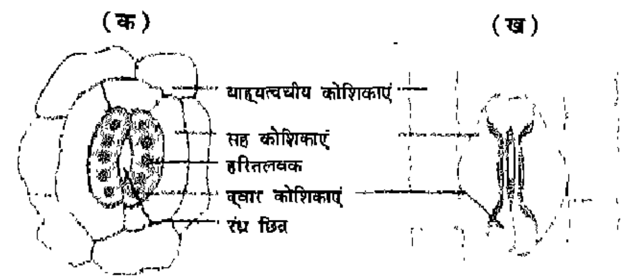
जर्मन वैज्ञानिक साक्स (Sachs) ने प्रथमत: 1875 में ऊतकों को उनकी स्थिति तथा आकारिकी के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया था उनके अनुसार निम्न तीन प्रकार के ऊतकों को स्पष्टत: पहचाना जा सकता है :

(i) बाह्यत्वचीय ऊतक तंत्र
(ii) संभरण अथवा आधारभूत ऊतक तंत्र
(iii) संवहनी/रंभ/वाहिनी ऊतक तंत्र

बाह्यत्वचीय ऊतक तंत्र निम्न से मिलकर बनता है:

(क) बाह्यत्वचा : बाह्यत्वचा पादपों के शरीर की बाह्यतम कोशिका परत होती है यह दीर्घीकृत, सुव्यवस्थित कोशिकाओं से निर्मित होती है जिससे बिना अंतराकोशिकीय स्थलों वाली एक सतत् परत बन जाती है। इनमें एक बृहद् केंद्रीय अवकोशिका के चारों ओर जीवद्रव्य की एक पतली परत विद्यमान होती है। बाह्यत्वची कई परतों वाली भी हो सकती है जैसे कई आर्किडों की वायवी मूलों और कनेर की पत्तियों में। बाह्यत्वचा उपत्वचा से ढकी रहती है यह क्यूटिन (cutin) नाम के उस मोमी पदार्थ के जमाव से बनती है जो बाह्यत्वचीय कोशिकाओं में स्रावित होता है और उपत्वचा मरुस्थलीय पादपों में सर्वाधिक स्थूलित होता है। जड़ों की बाह्यतम परत **मूलीय त्वचा** (epiblema) तथा **रोमधारक परत** (piliferous layer) कहलाती है जिस पर बहुतायत से एककोशिक प्रवर्ध, **मूलरोम** (root hairs) लगे होते हैं। मूलीय त्वचा पर रंध्र एवं उपत्वचा विद्यमान नहीं होते हैं जबकि पत्तियों में इनकी बड़ी संख्या निचली बाह्यत्वचा पर पाई जाती हैं ·

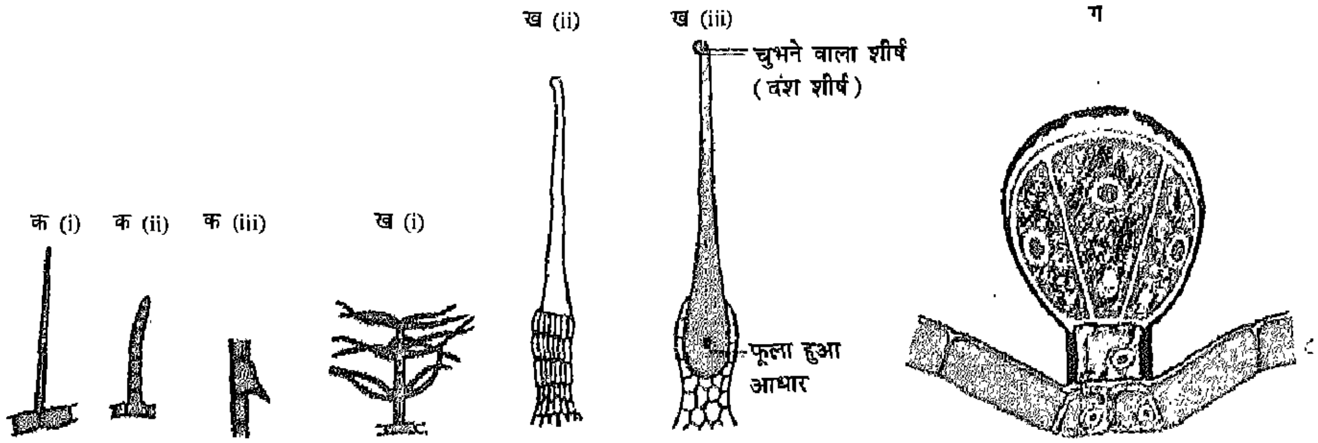
(ख) रंध्र : सामान्यत: यह सूक्ष्म छिद्र अथवा रंध्र पादपों के सभी हरे, वायवी भागों की बाह्यत्वचा पर विशेषकर पत्तियों में उपस्थित होते हैं। यह जड़ों की बाह्यत्वचा में नहीं पाए जाते। मरुद्भिदों में यह गर्त में धंसे होते हैं। मुक्त प्लवी (free floating) जलोद्भिदों की पत्तियों की ऊपरी बाह्यत्वचा पर ही रंध्रों की बड़ी संख्या विद्यमान होती है। प्रत्येक रंध्र अपने दोनों ओर दो द्वार कोशिकाओं (guard cells) से घिरा रहता है। द्वार कोशिकाएं द्विबीजपत्रियों में अर्द्ध-चंद्राकार अथवा गुर्दे के आकार की होती है तथा घासों में मुद्गर-जैसी (dumb-bell-shaped)। यह जीवंत कोशिकाएं हैं जिनमें हरितलवक भी विद्यमान होते हैं। इनकी बाह्यत्वचीय कोशिकाओं की ओर वाली भित्ति तो पतली होती है जबकि छिद्र के चारों ओर वाली स्थूलित। स्थूलन की इस भिन्नता के फलस्वरूप, द्वार-कोशिकाएं स्फीत और सिकुड़ सकती हैं। जिससे रंध्रों का खुलना और बंद होना संभव होता है। कभी-कभी द्वार-कोशिकाओं की समीपवर्ती कुछ बाह्यत्वचीय कोशिकाएं अपनी संरचना, आकार और आकृति में विशेषीकृत होकर रंध्रों की खुलने और बंद होने की प्रक्रिया में सहायता पहुंचाती है इन्हें **गौण कोशिकाएं** (subsidiary cells) कहा जाता है। ऐसी स्थिति में, रंध्र छिद्र, द्वार कोशिकाओं एवं समीपवर्ती सहायक कोशिकाओं से मिलकर **रंध्र यंत्र** (stomatal apparatus) का निर्माण होता है (चित्र 17.6)।



चित्र 17.6 रंध्र यंत्र (क) द्विबीजपत्री पत्ती में, (ख) घास (एकबीजपत्री) की पत्ती में ·

(ग) बाह्यत्वचीय प्रवर्ध : बाह्यत्वचा की कोशिकाओं से विविध आकार, संरचना और कार्य करने वाले प्रवर्ध परिवर्धित होते हैं जो त्वचा रोम कहलाते हैं। यह एककोशिक अथवा बहुकोशिक हो सकते हैं। एककोशिक त्वचारोम प्राय: सरल, अशाखित (कभी-कभी शाखित भी) एवं दीर्घीकृत संरचनाएं होती हैं (चित्र 17.7 क)। जबकि बहुकोशिक त्वचारोम एवं ग्रंथियां कई परतों की बनी होती हैं (चित्र 17.7 ख, ग)।

(घ) मूलरोम - जड़ की बाह्यत्वचा अपने विशिष्टीकृत क्षेत्र-मूलरोम क्षेत्र में रोम धारण करती है जो प्रवर्ध अथवा उपांग न होकर बाह्यत्वचीय कोशिकाओं के दीर्घीकरण से बनते हैं। इनमें अवकाशिका-युक्त जीव-द्रव्य होता है। और केंद्रक कोशिका के ऊपरी भाग की ओर चला जाता है। पतली भित्ति सेलुलोस और पैक्टिक पदार्थों से मिलकर बनती हैं। मूलरोम अल्पकालिक रचनाएं है जो



चित्र 17.7 विभिन्न प्रकार के त्वचारोम (क) सरल, (i) एककोशिक (ii) बहुकोशिक (iii) बहुकोशिक प्रवर्ध सहित, (ख) बहुकोशिक (i) शाखित (ii) एवं (iii) दंशक (ग) ग्रंथिल

पादप शरीर को मृदा में स्थापित करने के साथ-साथ, इससे जल एवं खनिज घोल का अवशोषण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं।

बाह्यत्वचीय तंत्र के निम्न कार्य हैं: (क) उपत्वचा की उपस्थिति के कारण यह ऊतक-तंत्र पादप शरीर से अत्यधिक जल वाष्पोत्सर्जन को रोकता हैं। (ख) पादपों के हरे अंगों, विशेषतः पत्तियों में विद्यमान रंध्र, श्वसन एवं जलोत्सर्जन जैसी विविध कार्यिक प्रक्रियाओं में सहायक होते हैं। (ग) त्वचीय रोम जलहानि कम करने, फलों एवं बीजों के विकिरण एवं संरक्षण प्रदान करने में सहयोग प्रदान करते हैं।

संभरण ऊतक-तंत्र : पादप शरीर का मुख्य भाग संभरण ऊतक (ground tissue) का बना होता है इसमें बाह्यत्वचा और संवहनी पूलों को छोड़कर शेष सभी ऊतक सम्मिलित हैं। इसका कुछ भाग तो वल्कुटजन (periblem) से बनता है और कुछ रंभजन (plerome) से। इस ऊतक तंत्र का प्राथमिक कार्य खाद्य पदार्थ का निर्धारण एवं भंडारण है। साथ ही इसका कार्य यांत्रिक भी है। इस तंत्र में विभिन्न प्रकार के ऊतक पाए जाते हैं जैसे मृदूतक, स्थूलकोणोतक एवं दृढ़ोतक; इनमें मृदूतक सर्वाधिक प्रचुर मात्रा में होता है और विविध प्रकार के कार्य संपन्न करता है। प्रायः यह तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभेदित होता है: (क) वल्कुट, (ख) परिरंभ (ग) मज्जा एवं मज्जा रश्मियां।

(क) वल्कुट (cortex) - वल्कुट मुख्य क्षेत्र है जो बाह्य त्वचा तथा परिरंभ के बीच स्थित होता है। यह प्राथमिक ऊतकों से बना होता है। इसकी मोटाई में अत्यंत विविधता पाई जाती हैं क्योंकि यह कुछ सीमित अथवा कई परतों की बनी होती है जो एक समान अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। एकबीजपत्री स्तंभों में वल्कुट कोशिकाएं मृदूतकी होती हैं। इसी प्रकार जड़ों की वल्कुट भी मृदूतक से बनी की होती है। पत्तियों में संभरण ऊतक से मध्योतक (mesophyll) का निर्माण होता है यह ऊपर की सतह की ओर खंभोतक (palisade parenchyma) और निचली बाह्यत्वचा की ओर अनियमित अथवा समव्यासीय, स्पंजी मृदूतक में विभेदित होता है। द्विबीजपत्री स्तंभों में वल्कुट सामान्य रूप से तीन उप-क्षेत्रों में विभाजित होता है।

(i) अधस्त्वचा (hypodermis)

(ii) सामान्य वल्कुट (general cortex) एवं

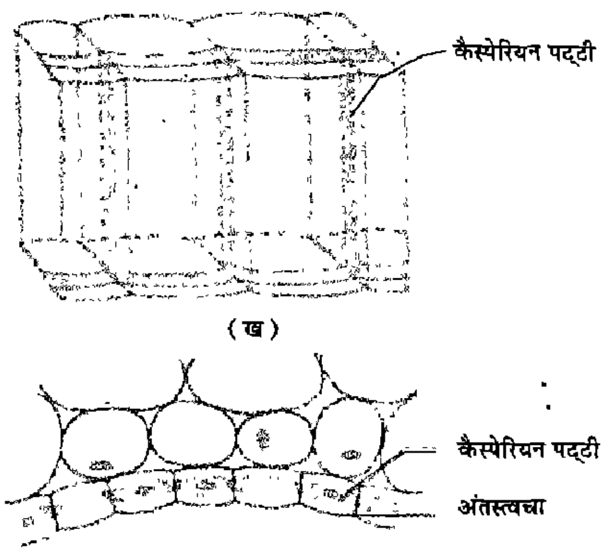
(iii) अंतस्त्वचा (endodermis)।

(i) अधस्त्वचा - यह बाह्यत्वचा के नीचे विद्यमान होती है और स्थूलकोणोतकी अथवा दृढ़ोतकी कोशिकाओं से बनी होती है।

(ii) सामान्य वल्कुट - यह क्षेत्र अधस्त्वचा के नीचे स्थित होता है और एक समान, गोलाकार अथवा बहुभुजी (plygonal), विपुल अंतराकोशिक अवकाशधारी मृदूतकी कोशिकाओं से बनी होती है। यद्यपि अधिकांश पादपों का वल्कुट ऐसी कोशिकाओं से ही बनता है फिर भी कुछ उदाहरणों में इनके स्थान पर हरितलवोतक अथवा वायूतक (aerenchyma) भी विभेदित हो सकते है। जो पादप के विशिष्ट आवास के प्रति अनुकूलन में सहयोग प्रदान करते हैं।

(iii) अंतस्त्वचा - यह वल्कुट की सबसे अंदर वाली परत है, ओर एकपंक्तिक और ऐसी परिवर्तित मृदूतकी कोशिकाओं से निर्मित होती है जो आपस में पूरी तरह सटी होने के कारण अंतराकोशिक अवकाश-विहीन होती है। अंतस्त्वचीय कोशिकाएं दीर्घाकृत होती हैं ओर इनकी अरीय भित्ति पर सुबेरिन नामक मोमी पदार्थ लाक्षणिक रूप में धारियों

अथवा पट्टियों के रूप में विद्यमान होती है। यह "कैस्पेरियन पट्टियां" अथवा कैस्पेरियन स्ट्रिप (Casparian strips) कहलाती है (चित्र 17.8 क तथा ख)।



चित्र 17.8: (क तथा ख) भित्तिस्थूलन अथवा कैस्पेरियन पट्टिकायों सहित दो विभिन्न दृश्यों में अंतस्त्वचा की कोशिकाएं

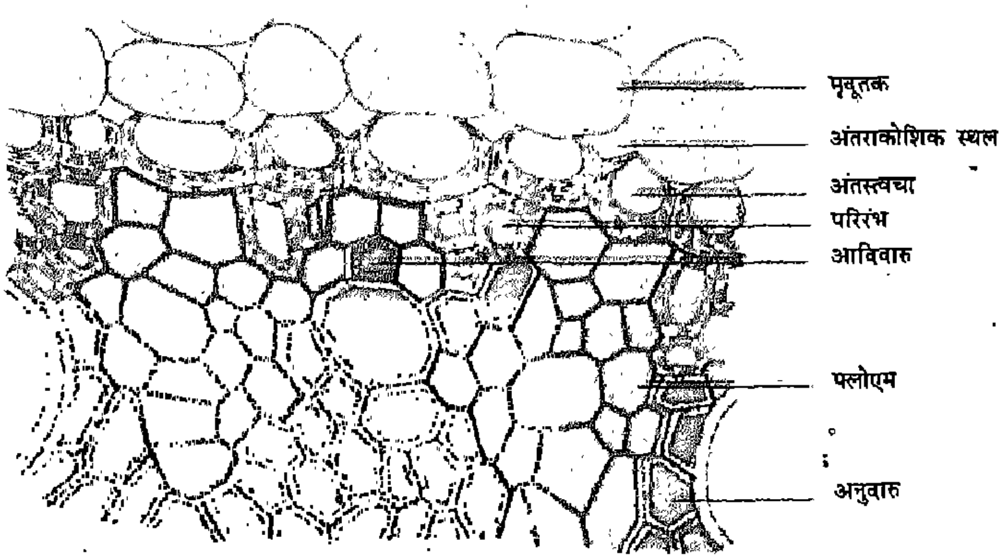
वल्कुट के प्राथमिक एवं द्वितीयक कार्य भिन्न-भिन्न है। स्तंभों में यह मूलतः एक आरक्षी क्षेत्र के रूप में कार्य करती है। इसका गौण कार्य भंडारण एवं भोजन निर्माण है। इसके विपरीत जड़ों में इसका प्राथमिक कार्य भोजन पदार्थों का भंडारण है साथ ही यह अवशोषण और जल स्थानांतरण में भी सहायता करती है।

(ख) परिरंभ - यह क्षेत्र बहु परती होता है ओर अतंस्त्वचा तथा संवहन पूलों के बीच स्थित होता है। द्विबीजपत्री स्तंभों में यह बेलनाकार होता है जो संवहन पूलो तथा मज्जा को घेरे रहता है। यह प्रायः मृदूतक तथा दृढ़ोतक से बना होता है (चित्र 17.9)। परिरंभ कुछ जलीय पौधों की जड़ों तथा स्तंभों में नहीं होता है।

(ग) मज्जा : भरण ऊतक का केंद्रीय भाग मज्जा अथवा मध्यांश कहा जाता है यह सामान्यतः पतली-भित्तिधारी मृदूतकी कोशिकाओं से बनी होती है जो अंतराकोशिक अवकाश-युक्त या विहीन होती हैं। द्विबीजपत्री स्तंभों में मज्जा बाहर और स्पष्ट होती है और संवहनी पूलों के बीच फैल जाती है। यह विस्तार मज्जा किरण (medullary ray) कहलाते हैं।

मज्जा स्तंभों एवं जड़ों का केंद्रीय क्रोड बनाती है। इसमें मुख्यतः कई निःस्रावी पदार्थों जैसे टेनिन, फीनोल, कैल्शियम ऑक्जालेट आदि का भंडारण होता है।

संवहनी ऊतक तंत्र : यह फ्लोएम एवं दारु दोनों ही से मिलकर बनता है। दारु (वाहिकाएं, वाहिनिकाएं, दारु रेशे एवं दारू मृदूतक) एवं फ्लोएम (चालनी कोशिकाएं अथवा चालनी नलिका अवयव, सहचर कोशिकाएं, फ्लोएम रेशे / बास्ट रेशे एवं फ्लोएम मृदूतक) के अवयव सदैव समूहों में संगठित रहते हैं जिनमें से प्रत्येक **संवहनी पूल** कहलाता है। द्विबीजपत्रियों के खुले संवहनी पूलों में दारु एवं फ्लोएम के बीच एक विभज्योतकी क्षेत्र, **एधा** (cambium) के रूप में विद्यमान होता है। जो अंतःपूलीय **एधा** (Intrafascicular cambuim) कहलाता है। इसके विपरीत



चित्र 17.9: अंतस्त्वचा एवम् परिरंभ की स्थिति दर्शाते हुए मक्के की मूल के अनुप्रस्थ काट का एक भाग

एकबीजपत्रियों के संवहनी पूलों में एधा विद्यमान नहीं होती है और यह बंद (closed) होते है।

पादपों एवं उनके अंगों की रचनात्मक स्थिति और कार्यों के अनुरूप संवहनी पूलों में विद्यमान दारु एवं फ्लोएम, विविध रूपों में व्यवस्थित होते हैं जो मुख्यत: निम्न प्रकार के होते हैं:

(i) **अरीय संवहनी पूल** (Radial vascular bundles) : जब दारू एवं फ्लोएम भिन्न व्यासों पर एकांतर क्रम में अवस्थित होते हैं। ऐसे पूल मुख्यत: जड़ों में पाए जाते है।

(ii) **संयुक्त संवहनी पूल (Conjoint vascular bundles):** ऐसी स्थिति जिसमें दारु एवं फ्लोएम एक ही व्यास पर स्थित होते हैं और आपस में मिलकर एक संवहनी पूल निर्मित करते हैं। यह प्राय: स्तंभों और पत्तियों में पाए जाते हैं। दारु एवं फ्लोएम के आपसी संबंधों के अनुसार इन्हें निम्न तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है (चित्र 17.10)।

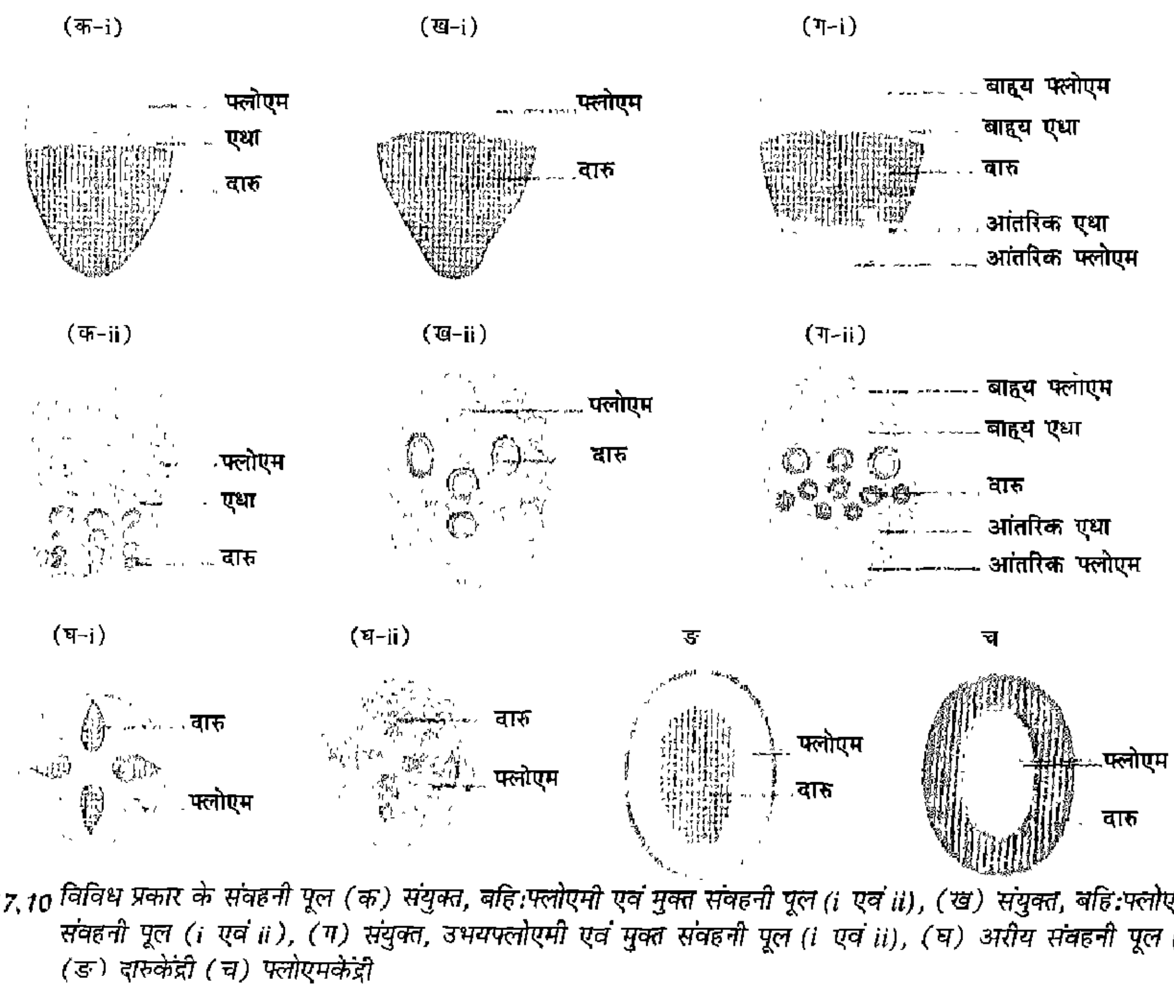
(क) बहि:फ्लोएमी (Collateral) – जब फ्लोएम दारु के मात्र बाहर की ओर स्थित होती है। यह मुक्त (open) अथवा बंद (closed) हो सकते हैं।

(ख) उभयफ्लोएमी (Bicollateral) – इस समूह के संवहनी पूलों में फ्लोएम दो स्तवकों (patches) में व्यवस्थित होती है एक दारु अवयवों के बाहर की ओर और दूसरा अंदर की ओर। यह कुकरबिटेसी (Cucurbitaceae) कुल के सदस्यों में लाक्षणिक रूप से पाए जाते हैं। एधा की उपस्थिति के कारण यह सदैव खुले रहते हैं जैसे कि कद्दू (Cucurbita pepo) एवं तोरई (Luffa cylindrica) में।

(ग) संकेंद्री (Concentric) - ऐसे संवहनी पूल जिनमें दारु फ्लोएम को चारों ओर से घेरे होती है अथवा फ्लोएम दारु को। ऐसे पूल दो प्रकार के होते हैं :

(i) दारुकेंद्री संवहनी पूल (Amphicribral) – ऐसे संवहनी पूल में दारु केंद्र में होती है और चारों ओर से फ्लोएम की एक वलय से घिरी रहती है जैसे कि कुछ पर्णांगों (ferns) में।

(ii) फ्लोएमकेंद्री संवहनी पूल (Amphivasal) – इनमें फ्लोएम तो केंद्र में स्थित होती है और दारु इसे चारों ओर से घेरे रहती है जैसे कि **ड्रेसीना** (चित्र 17.10 ङ, च)।

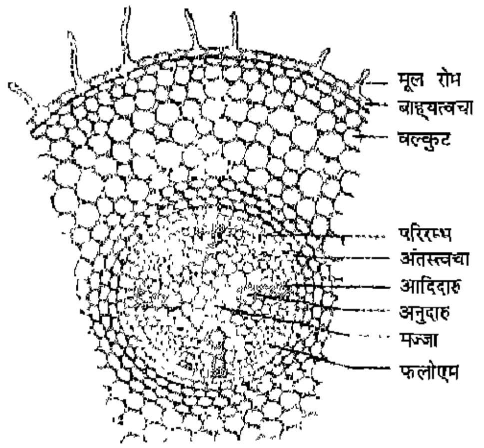


चित्र 17.10 विविध प्रकार के संवहनी पूल (क) संयुक्त, बहि:फ्लोएमी एवं मुक्त संवहनी पूल (i एवं ii), (ख) संयुक्त, बहि:फ्लोएमी एवं बंद संवहनी पूल (i एवं ii), (ग) संयुक्त, उभयफ्लोएमी एवं मुक्त संवहनी पूल (i एवं ii), (घ) अरीय संवहनी पूल (i एवं ii), (ङ) दारुकेंद्री (च) फ्लोएमकेंद्री

17.3 द्विबीजपत्री एवं एकबीजपत्री पादपों की आंतरिक संरचना

द्विबीजपत्री जड़

किसी द्विबीजपत्री मूल की प्राथमिक संरचना का अध्ययन सूर्यमुखी, मटर, अथवा चने की तरुण जड़ की अनुप्रस्थ काट द्वारा किया जा सकता है (चित्र 17.11)। यह ऊतकों के विन्यास की निम्नलिखित योजना दर्शाता है :



चित्र 17.11 सूरजमुखी की मूल की अनुप्रस्थ काट

मूलीयत्वचा

मूलीय त्वचा को रोमिल परत भी कहते हैं। यह लाक्षणिक रूप से नलिकाकार, सजीव, कोशिकाओं की एक परत है जिसमें रंध्र और उपत्वचा उपस्थित नहीं होते। इसकी कुछ कोशिकाओं की बाहरी भित्ति बाहर की ओर बढ़कर एककोशिक रोमों का निर्माण करती है।

वल्कुट

वल्कुट एक अपेक्षाकृत अधिक सरल एवं स्थूल क्षेत्र है जो विपुल अंतराकोशिक अवकाशों से परिपूर्ण, पतली भित्तियों वाली, मृदूतकी कोशिकाओं से बना होता है। वल्कुट की अंतिम परत अंतस्त्वचा कहलाती है जो रंभ को पूरी तरह घेरे रहती है। यह सभी जड़ों में व्यापक रूप में पाई जाती है और बेलनाकार, अंतराकोशिक अवकाश-विहीन कोशिकाओं की एक परत के रूप में विद्यमान होती है। इसकी अरीय भित्तियों पर कैस्पेरियन पट्टियों का स्थूलन होता है

रंभ

वे सभी ऊतक जो अंतस्त्वचा के अंदर की ओर स्थित होते हैं मूल की रंभ (Stele) का निर्माण करते हैं जिसमें परिरंभ, संवहनी पूल और मज्जा सम्मिलित है।

(i) परिरंभ का निर्माण स्थूल भित्तिधारी, मृदूतकी कोशिकाओं से होता है। यह पार्श्व मूलों अथवा मूल की शाखाओं का उद्‌गम स्थल है।

(ii) संवहनी पूल अरीय होते हैं जिससे अभिप्राय है कि फ्लोएम एवं दारु के स्तवक अलग-अलग समूहों में, एकांतर व्यासों पर अवस्थित होते हैं। दारु दोनों, आदि- (protoxylem) एवं अनुदारु (metaxylem) से मिलकर बनती है। चूंकि आदिदारु के अवयव बाह्यत्वचा की ओर व्यवस्थित होते हैं अत: यह बाह्य आदिदारूक स्थिति कहलाती है। द्विबीजपत्री जड़ों में दारु एवं फ्लोएम के पूलों की संख्या प्राय: 2 से 6 तक होती है अत: यह द्वि अथवा षट् आदिदारुक कहलाती है। (अपवाद स्वरूप कभी-कभी ये त्रिआदिदारुक (triarch) स्थिति में भी पाई जाती है जैसे मटर (pea) में)। कुछ जातियों में अनुदारु केंद्र में मिलकर एक दारु पट्टिका (xylem plate) बनाती है और अंतत: मज्जा विलोपित हो जाती है। फ्लोएम के स्तवक अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और परिरंभ के बीच अंडाकार समूहों में दिखाई देते हैं। यह दारू पूलों से मृदूतकी कोशिकाओं द्वारा अलग हो जाते हैं जो **योजन ऊतक** (conjunctive tissue) कहलाता है।

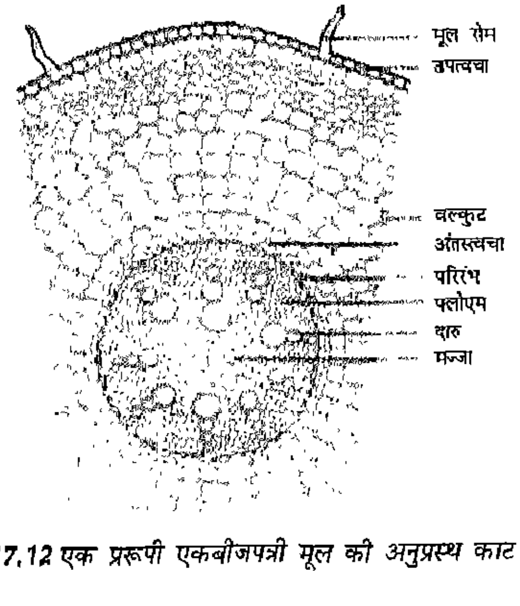
(iii) द्विबीजपत्री जड़ों में मज्जा प्राय: अनुपस्थित होती है, और यदि उपस्थित होती भी है तो इसकी मात्रा बहुत सूक्ष्म होती है।

एकबीजपत्री जड़ें

एक सामान्य एकबीजपत्री जड़ (Monocot roots) की संरचना चित्र 17.12 में दर्शाई गई है। इसमें ऊतकों के विन्यास की निम्न योजना स्पष्ट होती है:

मूलीयत्वचा अथवा रोमिल परत

यह मूल की बाह्यतम परत है जो अंतराकोशिक अवकाश-विहीन, पतली भित्तिधारी कोशिकाओं की मात्र एक पंक्ति से बनी होती है। इस परत की संरचना और अंत लगभग द्विबीजपत्रियों के समान ही होता है। मूलरोमों के झड़ने के उपरांत यह छिन्न-भिन्न हो जाती है।



चित्र 17.12 एक प्ररूपी एकबीजपत्री मूल की अनुप्रस्थ काट

वल्कुट

वल्कुट, विशाल मृदूतकी क्षेत्र है जो अंतराकोशिक, अवकाशधारी, अंडाकार अथवा वृत्ताकार कोशिकाओं का बना होता है। ये कोशिकाएं रंगविहीन होती हैं और जल भंडारण करती हैं। जैसे-जैसे मूलीय त्वचा मृत होती जाती हैं, वल्कुट की कुछ बाह्य परतें उपत्वचा से आवरित होती जाती हैं और बाह्य मूलत्वचा (exodermis) का निर्माण करती हैं। अंतस्त्वचा वल्कुट की सबसे अंदर वाली परत है। यह रंभ के चारों ओर एक घेरा बनाती है। इसकी कोशिकाएं बैरल आकृति की होती हैं। इसकी अरीय भित्तियां कैस्पेरीय पट्टियों तथा सुबेरिन के जमाव से स्थूलित हो जाती हैं। कुछ ऐसी अंतस्त्वचीय कोशिकाएं जो दारु के सम्मुख स्थित होती हैं पतली भित्तियुक्त बनी रहती हैं तथा **पथकोशिकाएं** (Passage cells) कहलाती हैं। इनका कार्य जल तथा घुले हुए लवणों को वल्कुट से सीधे ही दारु में स्थानांतरित करना है।

रंभ

अंतस्त्वचा से घिरे सभी ऊतक रंभ का निर्माण करते हैं उनमें परिरंभ, संवहनीपूल तथा मज्जा सम्मिलित हैं।

(i) परिरंभ : यह रंभ का बाह्यतम स्तर है जो अंतस्त्वचा के नीचे एक अथवा कई मृदूतकी परतों से बनती हैं यह पार्श्व मूलों का उद्गम स्थल है।

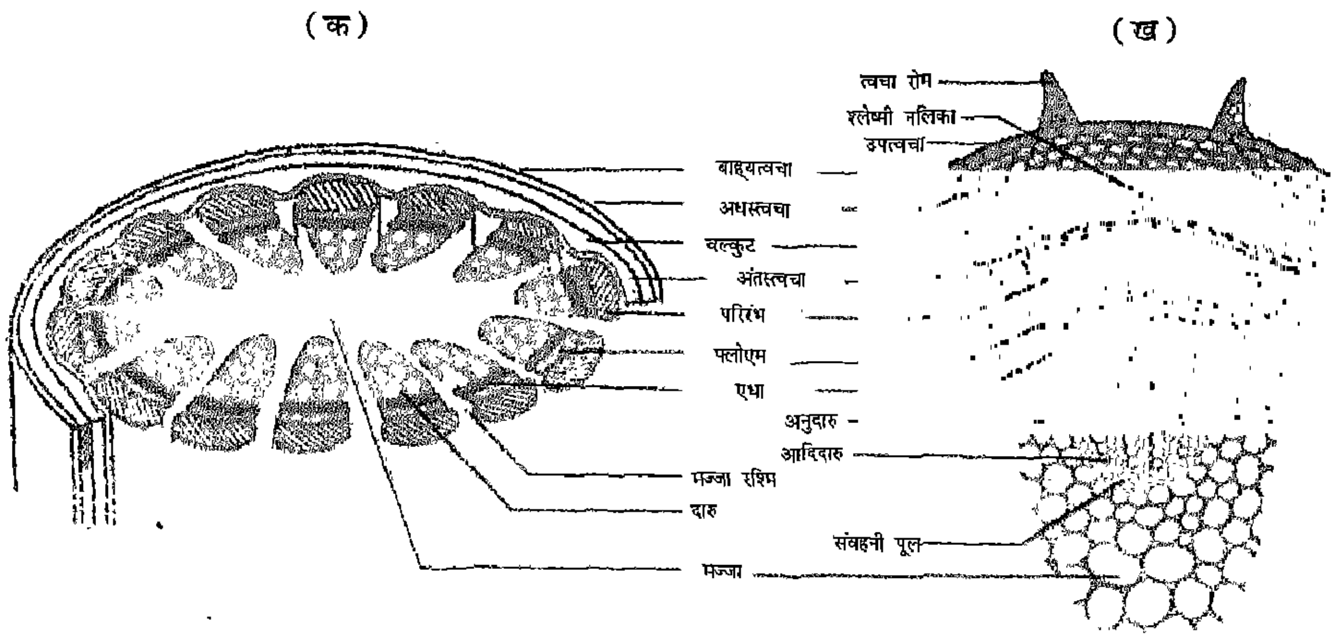
(ii) संवहनी पूल : एकबीजपत्रियों की जड़ें सामान्यत: बहुआदिदारुक होती हैं। दारु तथा फ्लोएम की संख्या समान होती है। दारु बाह्यआदिदारुक (exarch) होते हैं तथा दारु तथा फ्लोएम एक वलय में स्थित होते हैं। दारु तथा फ्लोएम अरीय रूप से अवस्थित रहते हैं। दारु तथा फ्लोएम के मध्य मृदूतक उपस्थित होता है।

(iii) मज्जा बहुत अधिक विकसित तथा मृदूतकी होती है इन कोशिकाओं को योजन ऊतक कहते है।

तालिका 17.1 में द्विबीजपत्री मूल तथा एकबीजपत्री मूल में पाए जानेवाले प्रमुख अंतर दिए गए हैं।

तालिका 17.1 द्विबीजपत्री एवं एकबीजपत्री मूलों में अंतर

लक्षण	द्विबीजपत्री मूल	एकबीजपत्री मूल
दारु पूल	2 से 6 तक	सामान्यत: 6 से अधिक होते हैं।
मज्जा	सूक्ष्म अथवा बिल्कुल ही नहीं होती	मज्जा बृहदाकार एवं भली-भांति परिवर्धित होती है।
द्वितीयक वृद्धि	होती है	नहीं होती



चित्र 17.13 सूरजमुखी (हेलिएंथस एनस) के स्तंभ का अनुप्रस्थ काट (क) रेखाचित्र (ख) कोशिक आवर्धित भाग

द्विबीजपत्री स्तंभ

सूर्यमुखी (Helianthus annuus) के तरुण स्तंभ की अनुप्रस्थ काट में निम्न संरचना स्पष्ट दिखाई देती है (चित्र 17.13)।

बाह्यत्वचा

यह स्तंभ की बाह्यतम परत है जो कोशिकाओं के मात्र एक स्तर से बनती है। यह एकस्तरी, बहुकोशिक त्वचारोम धारण करती है। बाह्यत्वचा एवं रोमों की कोशिकाओं की बाह्यभित्ति पर उपत्वचा विद्यमान रहती है।

वल्कुट

वल्कुट कई कोशिका परतों से निर्मित होती है। यह तीन उप-क्षेत्रों में विभाजित होती हैं - अधस्त्वचा, सामान्य वल्कुट और अंतस्त्वचा :

(i) अधस्त्वचा - यह बाह्यत्वचा के बिल्कुल नीचे स्थित होती है और 3-4 स्थूलकोणोतकी कोशिकाओं की परतों से मिलकर बनती है और स्तंभ को यांत्रिक शक्ति प्रदान करती है. यह कोशिकाएं कोणों पर स्थूलित होती और इन में हरितलवक भी विद्यमान होते हैं।

(ii) सामान्य वल्कुट - इस बहुस्तरीय क्षेत्र की कोशिकाएं मुख्यत: मृदूतकी होती है। साथ ही साथ इस उपक्षेत्र में ग्रंथिल मृदूतकी परत से घिरी हुई तैलीय वाहिनियां भी प्रचुरता से पायी जाती हैं

(iii) अंतस्त्वचा - यह वल्कुट की सबसे अंदर वाली बेलनाकार कोशिकाओं की एक स्तरीय परत है। चूंकि इसमें मंड बहुतायत में पाया जाता है अत: यह मंडाच्छद भी कहलाती है।

परिरंभ

यह दृढ़ोतक के अद्र्धचंद्रकार स्तवकों के रूप में विद्यमान होती हैं। प्रत्येक स्तवक जो संवहनी पूल की फ्लोएम के साथ संलग्न होता हैं, **कठोर बास्ट** कहलाता है।

मज्जा रश्मियां

मज्जा रश्मियां दो संवहनी पूलों के बीच मृदूतक कोशिकाओं की कुछ परतों के रूप में विद्यमान होती हैं। वल्कुट की अन्य कोशिकाओं की अपेक्षा यह आकार में कुछ बड़ी होती हैं सामान्यत: यह बहुभुजी आकृति और अंतराकोशिक, अवकाशिका-विहीन स्थिति दर्शाती हैं।

संवहनी पूल

यह एक वलय के रूप में अंतस्त्वचा के अंदर की ओर व्यवस्थित होते हैं। प्रत्येक संवहनी पूल संयुक्त, बहि:फ्लोएमी, अंत:आदिदारुक एवं मुक्त होता है और दारु, फ्लोएम एवं एधा से मिलकर बनता है:

(i) फ्लोएम : यह संवहनी पूल के बाहर की ओर स्थित होती है। इसकी कोशिकाएं पतली भित्ति वाली तथा बहुभुजी होती हैं। फ्लोएम एक जटिल ऊतक है और चालिनी नलिका अवयवों, सहचर कोशिकाओं, फ्लोएम मृदूतक एवं फ्लोएम रेशों से मिलकर बनता है;

(ii) दारु : यह ऊतक फ्लोएम के नीचे स्थित होता है और वाहिकाओं, वाहिनिकाओं, दारु मृदूतक एवं दारु रेशों से मिलकर बनता है।

(iii) एधा : यह दारु एवं फ्लोएम के बीच उपस्थित होता है और पतली भित्तियों वाली आयताकार कोशिकाओं की 2-3 परतों से निर्मित होता है।

मज्जा

यह स्तंभ का केंद्रीय भाग है जो ऐसी गोलाकार, मृदूतकी कोशिकाओं से बना होता है जिनमें अंतराकोशिक अवकाशिकाएं बहुतायत में विद्यमान होती हैं।

एकबीजपत्री स्तंभ

युवा मक्का, जो एकबीजपत्री होता है के स्तंभ की अनुप्रस्थ काट में निम्न आंतरिक संरचना दिखाई देती है (चित्र 17.14)।

बाह्य त्वचा

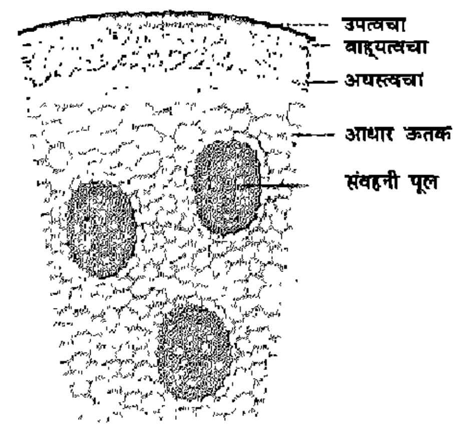
ये कोशिकाओं की बाह्यतम परत है जो प्राय: मात्र एक परत के रूप में विद्यमान होती है। जिस पर कहीं-कहीं रंध्र पाए जाते हैं। यह एक स्थूलित उपत्वचा से आवरित रहती है।

अधस्त्वचा

अधस्त्वचा की कोशिकाएं दृढ़ोतकी होती हैं। यह परत बाह्यत्वचा के बिल्कुल नीचे स्थित होती हैं।

आधार ऊतक

संवहनी पूलों को छोड़कर बाह्यत्वचा के अन्दर का समस्त ऊतक आधार ऊतक कहलाता है। यह गोल, मृदूतकी, स्पष्ट अंतराकोशिक अवकाशधारी कोशिकाओं से मिलकर बनता है। एकबीजपत्रियों में आधार ऊतक वल्कुट, अंतस्त्वचा, परिरंभ एवं मज्जा में विभेदित नहीं होता है।



चित्र 17.14 मक्के (जिया मेज) के स्तंभ की अनुप्रस्थ काट

तालिका 17.2 द्विबीजपत्री एवं एकबीजपत्री स्तंभों में शरीर संबंधी मुख्य अंतर

लक्षण	द्विबीजपत्री स्तंभ	एकबीजपत्री स्तंभ
त्वचा रोम	बाह्यत्वचा पर उपस्थित होते हैं	प्राय: अनुपस्थित होते हैं।
अधस्त्वचा	स्थूलकोणोतकीय	दृढ़ोतकीय
सामान्य वल्कुट	मृदूतक की कुछ परतें विद्यमान होती हैं	मृदूतक का एक सतत् पिंड उपस्थित होता है।
संवहनी पूल	वलय में व्यवस्थित	आधार ऊतक में छितरे हुए
	पूलाच्छद अनुपस्थित	दृढ़ोत्कीय पूलाच्छद से घिरे रहते हैं
	बहिफ्लोएमी एवं मुक्त	बहिफ्लोएमी एवं बंद
	फ्लोएम मृदूतक उपस्थित	फ्लोएम मृदूतक अनुपस्थित
	फानाकार	प्राय: अंडाकृति
	जलधारी गुहिकाएं अनुपस्थित	जलधारी गुहिकाएं उपस्थित

संवहनी पूल

इसमें पूलों की विपुल संख्या होती है जो विविध आकारों के होते हैं। यह बहि:फ्लोएमी और बंद होते हैं तथा आधार ऊतक में छितरे रहते हैं अंडाकार संवहनी पूलों में से प्राय: प्रत्येक दृढ़ोतकी कोशिकाओं की छद से घिरा रहता है, जिसे पूलाच्छद कहते हैं। संवहनी पूल के दो भाग दारु एवं फ्लोएम होते हैं;

(i) दारु 3-4 स्पष्ट वाहिकाओं से बना होता है जो Y आकृति में व्यवस्थित रहती हैं। एक अथवा दो छोटी-छोटी वाहिकाएं जो Y की भुजा के आधार पर स्थित होती हैं, आदिदारु बनाती हैं जबकि दो अपेक्षाकृत बड़ी वाहिकाएं जो पार्श्व स्थिति में होती हैं, अनुदारु बनाती हैं। सबसे नीचे की ओर स्थित आदिदारु वाहिकाएं एक गुहिका जिसे जलधारी गुहिका कहते हैं, में खुलती हैं

(ii) फ्लोएम दारु के बाहर की ओर स्थित होती है और चालनी नलिका अवयवों एवं सहचर कोशिकाओं से मिलकर बनती है जबकि फ्लोएम मृदूतक विद्यमान नहीं होता।

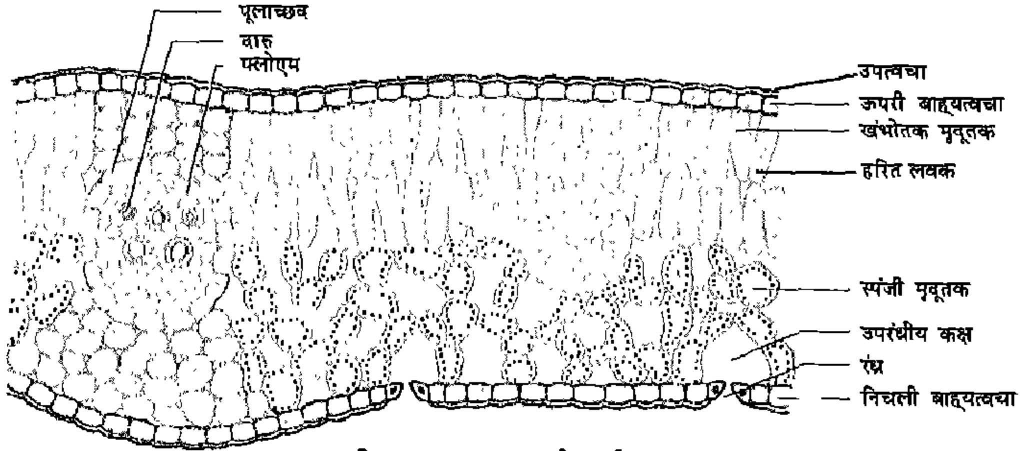
तालिका 17.2 में द्विबीजपत्रियों एवं एकबीजपत्रियों के स्तंभों की आंतरिक संरचना में प्रमुख विभिन्नताओं का सारांश प्रस्तुत किया गया है।

द्विबीजपत्री (पृष्ठाधारी) पर्ण

किसी पृष्ठाधारी पत्ती (Dorsiventral leaf) के ऊर्ध्व (उद्‌ग्र) काट में हम निम्न लक्षण देख सकते हैं (चित्र 17.15)।

बाह्यत्वचा

पत्ती की ऊपरी एवं निचली सतहों को बाह्यत्वचा घेरे रहती है, जो क्रमश: ऊपरी एवं निचली बाह्यत्वचा कहलाती है। ऊपरी बाह्यत्वचा में सामान्यत:कोशिकाओं की मात्र एक परत होती है



चित्र 17.15 पृष्ठाधारी पत्ती का उदग्र काट

जिनकी बाह्यभित्तियों पर स्थूल उपत्वचा विद्यमान होती है। इस पर रंध्र प्रायः विद्यमान नहीं होते और यदि होते भी हैं तो इनकी संख्या निचली बाह्यत्वचा की अपेक्षा कहीं कम होती है। निचली बाह्यत्वचा भी कोशिकाओं की मात्र एक परत से बनी होती है यह उपत्वचा की पतली परत से आवरित रहती है और अनगिनत रंध्र धारण करती है। प्रत्येक रंध्र दो द्वार कोशिकाओं से घिरा रहता है जिनमें हरितलवक विद्यमान होते हैं और जो अपने नीचे एक बृहद् स्थान, उपरंध्रीय कक्ष में खुलती हैं। हरितलवक विद्यमान होने के कारण वे कुछ सीमा तक प्रकाश संश्लेषण भी कर सकती है (चित्र 17.15)।

मध्योतक

ऊपरी तथा निचली बाह्यत्वचा के बीच का समस्त ऊतक मध्योतक कहलाता है। यह दो क्षेत्रों में बंटा होता है; खंभोतकी मृदूतक (palisade parenchyma) और स्पंजी मृदूतक (spongy parenchyma)। खंभोतकी मृदूतक दीर्घीकृत कोशिकाओं का बना होता है जो एक अथवा कई परतों में व्यवस्थित रहती हैं। यह आपस में सघन रूप में संगठित होती हैं और इनके बीच में बहुत छोटी अंतराकोशिक अवकाशिकाएं विद्यमान होती हैं। उनमें हरितलवक प्रचुरता से पाए जाते हैं तथा एक विशाल रिक्तिका भी पाई जाती है। हरितलवकों की उपस्थिति के कारण, खंभोतकी कोशिकाएं सूर्य के प्रकाश में प्रकाशसंश्लेषण करती हैं। मध्योतक का शेष भाग जो खंभोतक की परत से निम्न बाह्यत्वचा तक फैला रहता है, स्पंजी मृदूतक है। इसकी कोशिकाएं अंडाकार अथवा गोलाकार होती हैं और विपुल एवं विशाल वायु अवकाश अथवा वायु गुहिकाएं धारण करती हैं। यह अवकाशिकाएं रंध्र के माध्यम से बाहर की ओर खुलती हैं तथा गैसों के वितरण में सहायक होती हैं। स्पंजी मृदूतक की कोशिकाओं में हरितलवक पर्याप्त संख्या में विद्यमान होते हैं जिससे यह उसी प्रकार प्रकाश संश्लेषण संपन्न करती हैं जैसे कि खंभोतकी मृदूतक की।

संवहनी पूल

यह संयुक्त, बहिं फ्लोएमी एवं अंतःदारुक होते हैं। प्रत्येक संवहनी पूल स्थूलभित्तिधारी, आपस में सटी कोशिकाओं की एक परत से घिरा रहता है, जो **पूलाच्छद** कहलाती हैं। आदिदारु ऊपरी बाह्यत्वचा की ओर अभ्यक्ष सतह (adaxial surface) की ओर स्थित होती है और फ्लोएम निचली बाह्यत्वचा की ओर, अपाक्ष सतह (abaxial surface) में।

एकबीजपत्री (समद्विपार्श्विक)

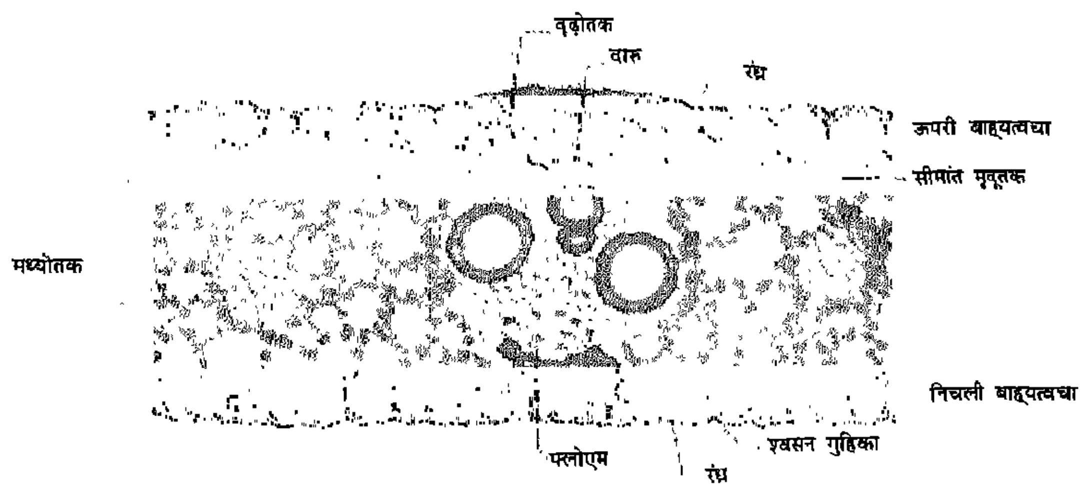
एकबीजपत्री पत्ती की काट में निम्नलिखित अंतःसंरचनाएं पाई जाती हैं (चित्र 17.16):

बाह्यत्वचा

यह पटल (lamina) का बाह्यतम आवरण है जो पतली भित्तिधारी, बेलनाकार, हरीतिमा-विहीन और उपत्वचा-युक्त कोशिकाओं से बना होता है तथा इसके नीचे तथा ऊपर दोनों ही सतहों पर विद्यमान होता है। यह उपत्वचा से आवरित होता है, एवं इसमें रंध्र दोनों ओर लगभग समान संख्या में वितरित होते हैं। इनके रंध्रों की द्वार कोशिकाएं हरितलवकों से परिपूर्ण होती हैं। घास कुल के सदस्यों में ऊपरी सतह पर कुछ अंतराल पर विशाल, खाली और रंगहीन कोशिकाएं होती हैं जो **आवर्धत्वक्कोशिकाएं** (bulliform cells) कहलाती हैं।

मध्योतक

यह खंभोतक और स्पंजी मृदूतक में विभेदित नही होता। इसके समस्त ऊतक पतली भित्तियों-युक्त मृदूतकी होते हैं। इनकी कोशिकाएं गोल, एकसमान होती हैं। इनमें अत्यधिक हरितलवक विद्यमान होन हैं। ये पास-पास सटी रहती हैं और दो कोशिकाओं के बीच स्थान बहुत कम होता है।



चित्र 17.16 समद्विपार्श्विक पत्ती की उदग्र काट

तालिका 17.3 पृष्ठाधारी एवं समद्विपार्श्विक पत्तियों में प्रमुख शारीर-संबंधी भेद

लक्षण	पृष्ठाधारी पत्ती	समद्विपार्श्विक पत्ती
उपत्वचा	ऊपरी बाह्यत्वचा पर मोटी तथा निचली बाह्यत्वचा पर पतली	दोनों बाह्यत्वचाओं पर समान मोटाई की
रंध्र	निचली बाह्यत्वचा पर अधिक संख्या में	ऊपरी तथा निचली दोनों ही बाह्यत्वचाओं पर समान संख्या में
मध्योतक	खंभोतक तथा स्पंजी मृदूतक में स्पष्टतः विभेदित	खंभोतक तथा स्पंजी मृदूतक में विभेदन अस्पष्ट

संवहनी पूल

ऐसी पत्ती में कई संवहनी पूल समानांतर क्रम में व्यवस्थित दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक संवहनी पूल संयुक्त बर्हिफ्लोएमी अंत:आदिदारुक एवं बंद होता है। कुछ घासों (panicoid) में संवहनी पूल एक स्पष्ट मृदूतकी पूलाच्छद से घिरा रहता है और विशाल संवहनी पूल प्रत्येक के नीचे और दृढ़ोतकों के स्तवक विद्यमान होते हैं जो क्रमशः ऊपरी और निचली बाह्यत्वचा तक विस्तृत होते हैं। दारु ऊपरी बाह्यत्वचा और फ्लोएम निचली बाह्यत्वचा की ओर स्थित होती है।

तालिका 17.3 में पृष्ठाधारी एवं समद्विपार्श्विक पत्तियों में पाए जाने वाले प्रमुख शारीर संबंधी भेद दिए गए हैं।

17.4 द्वितीयक वृद्धि

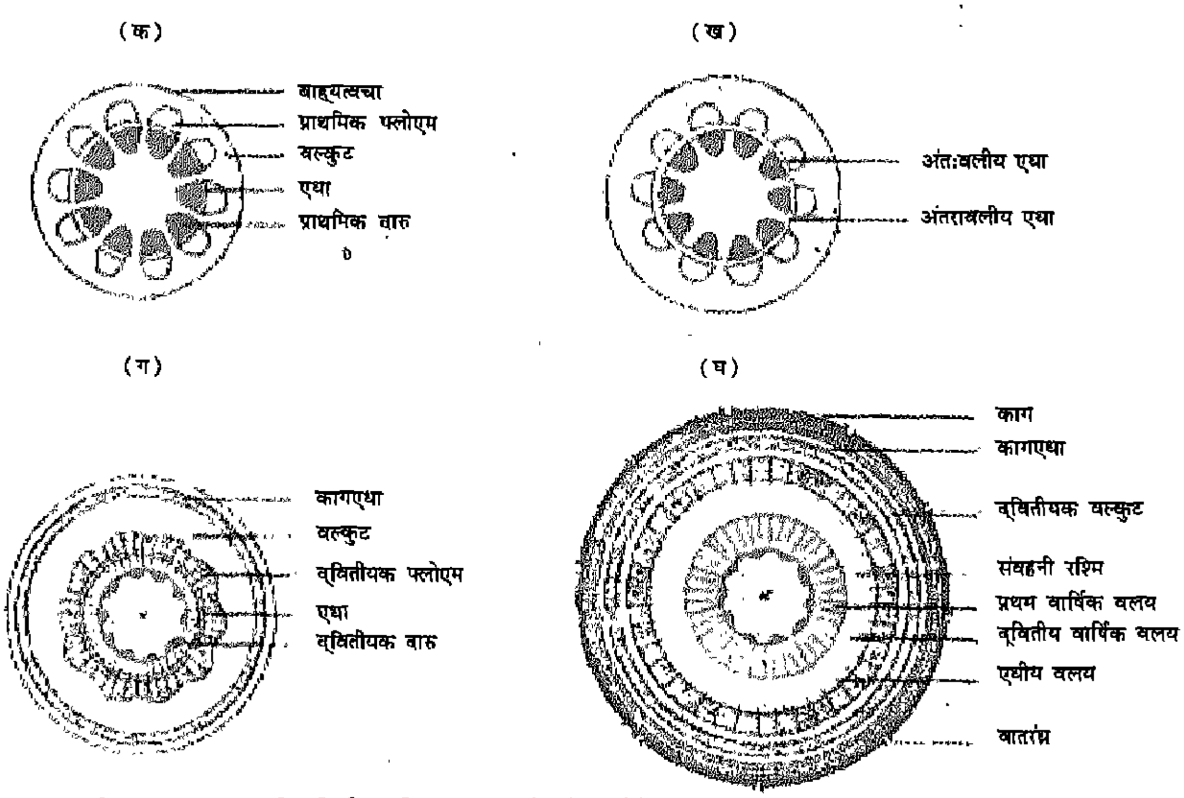
अधिकांशतः द्विबीजपत्रियों के तनों और जड़ों में स्पष्ट द्वितीयक वृद्धि दिखाई पड़ती है, जो इनका व्यास बढ़ाती है (चित्र 17.17)। इस प्रक्रम के मुख्य लक्षण नीचे दिए जा रहे हैं:

द्विबीजपत्री स्तंभ

द्विबीजपत्रियों के स्तंभों में द्वितीयक वृद्धि से संबद्ध प्रक्रिया एवं संरचनाएं नीचे दी जा रही हैं:

एधीय वलय का निर्माण

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि द्विबीजपत्रियों में संवहनी पूल खुले होते हैं अर्थात् उनमें दारु एवं फ्लोएम के बीच एधा विद्यमान होता है। यह अंतःपूलीय एधा (intrafascicular cambium) कहलाता है। और इसकी प्रकृति प्राथमिक है। साथ ही दो समीपवर्ती संवहनी पूलों के अंतःपूलीय एधा के बीच स्थित मज्जा रश्मि की मृदूतकी कोशिकाएं विभाजन करने लगती है और विभज्योतकी बनकर एधा की एक अन्य पट्टिका, अंतरापूलीय एधा (interfascicular cambium) का निर्माण करती है और इस प्रकार की एक वृत्ताकर एधीय वलय बन जाती है।



चित्र 17.17 *प्ररूपी द्विबीजपत्री स्तंभ की मोटाई में होने वाली द्वितीयक वृद्धि का योजनाबद्ध प्रस्तुतिकरण*

एधीय वलय की क्रियाशीलता

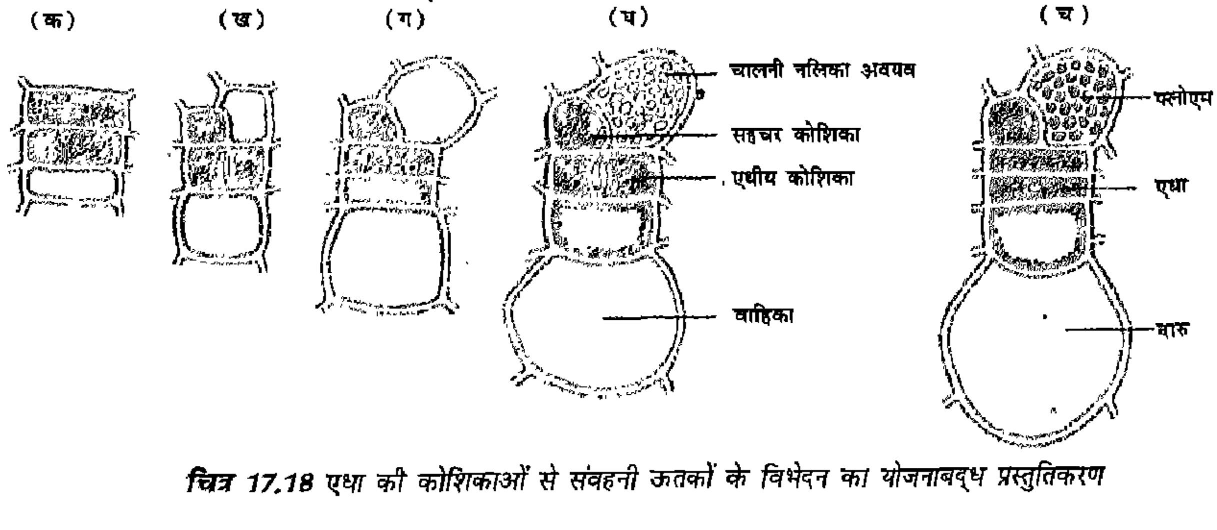
एधीय वलय सक्रिय होकर दीर्घीकृत, तर्कुरूप आदिकोशिकाओं (fusiform initials) के लंबवत् अथवा तिर्यक विभाजनों द्वारा बाहर और अंदर की ओर नई कोशिकाएं बनाना प्रारंभ कर देती है। बाहर की ओर बनने वाले अवयव तो द्वितीयक फ्लोएम में विभेदित हो जाते हैं। जबकि अंदर की ओर उत्पन्न होने वाले द्वितीयक दारु में (चित्र 17.18)। सामान्यत: एधा बाहर की तुलना में अंदर की ओर अधिक क्रियाशील होता है। इसके फलस्वरूप फ्लोएम की अपेक्षा दारु कहीं अधिक तेजी से वृद्धि करती है और शीघ्र ही एक सघन पिंड का निर्माण करती है। यह पादप शरीर का प्रमुख भाग बनाती है। द्वितीयक दारु के सतत् निर्माण के कारण, पूर्ववर्षों का प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही प्रकार का फ्लोएम ऊतक शनै:शनै: कुचला जाकर छिन्न-भिन्न हो जाता है। कुछ स्थानों पर एधा मृदूतकों के कुछ संकरे पट बनाती है जो द्वितीयक फ्लोएम तथा दारु के बीच से गुजरते हैं। ये द्वितीयक मज्जा किरणें हैं।

वार्षिक वलय

एधा की क्रियाशीलता क्रियात्मक और पर्यावरणीय कारकों के एक अनुक्रम के नियत्रंण में होती है। उदाहरण के लिए वसंत एवं ग्रीष्म ऋतुओं में तापक्रम अधिक होता है, वातावरण में उच्च सापेक्ष आर्द्रता होती है, खिली धूप का लंबा दिवस और नई पत्तियों से आपूर्ति किए गए हार्मोन, एधीय सक्रियता को बढ़ावा देते हैं। अत: एधा की कोशिकाएं तीव्रता से विभाजन करती हैं और अविभेदित कोशिकाओं की कई परतें दृष्टव्य हो जाती हैं। फलत: ऐसे दारु ऊतक की बड़ी मात्रा का उत्पादन होता है जिसमें अपेक्षाकृत बड़े, पतले भित्तियुक्त एवं हल्के रंजक ग्रहण करने वाले संघटक होते हैं। दूसरी ओर शीत/शरद् ऋतु में तापक्रम निम्न होता है जिसके फलस्वरूप एधा की क्रियाशीलता में भी कमी आ जाती है। इस कारण दारु के अवयवों की मात्रा और उनका आयतन अत्यंत कम होता है क्योंकि यह छोटे होते हैं इनकी कोशिका भित्ति अधिक स्थूलित होती है और यह गहरा रंजक धारण करते हैं। वसंत एवं ग्रीष्म ऋतु में बनने वाली काष्ठ प्रारंभिक अथवा वसंत काष्ठ और शीत ऋतु में निर्मित होने वाली विलंबित अथवा शरद काष्ठ कहलाता है। वसंत दारु तो हल्के रंग और निम्न घनत्वधारी होता है जबकि शरद काष्ठ कहीं अधिक गहरे रंग का तथा उच्च घनत्व वाला होता है। काष्ठ के किसी लट्ठे में आप सरलतापूर्वक वसंत दारु और शरददारु के क्रम की पहचान कर सकते हैं। एक गहरे और तत्पश्चात् एक हल्के रंग का क्षेत्र मिलकर एक वर्ष की वृद्धि के परिचायक हैं जो वार्षिक वलय अथवा वृद्धि वलय कहलाती है। चूंकि प्रत्येक वलय एक वर्ष की दारु की वृद्धि का आकलन कराती है अत: हम किसी वृक्ष की आयु का अनुमान कुछ सीमा तक सही रूप में, वलयों को गिनकर कर सकते हैं।

काग एधा अथवा कागजन की क्रियाशीलता

द्वितीयक वृद्धि के परिणामस्वरूप फ्लोएम एवं दारु के अवयवों में हुई बढ़ोतरी के कारण वल्कुट की बाह्यतम परत बहुत फैल जाती है और टूटकर खुल भी सकती है। इस प्रक्रिया के मध्य, वल्कुट में कुछ विभज्योतकी स्तर विभेदित हो जाते हैं जो **कागजन** (cork cambium or phellogen) कहलाते हैं। यह एधा द्वितीयक प्रकार का ऊतक है और यद्यपि यह प्राय: वल्कुट की बाहरी परतों में विभेदित होता है, लेकिन कभी-कभी यह स्तंभ की बाह्यत्वचा, वल्कुट की आंतरिक परतों और परिरंभ में भी उत्पन्न हो सकता है। काग एधा की कोशिकाएं आयताकार होती हैं और यह दोनों ओर नई कोशिकारूपी व्युत्पन्नों को बनाती हैं। बाहर की ओर बनने वाली कोशिकाएं सुबेरिन के जमाव के फलस्वरूप **काग** (cork or phellem) का निर्माण करती



चित्र 17.18 एधा की कोशिकाओं से संवहनी ऊतकों के विभेदन का योजनाबद्ध प्रस्तुतिकरण

हैं जो जल एवं वायु के प्रवेश के प्रति अवरोधी होती हैं। इसके अंदर की परतों की कोशिकाएं मृदूतकी होती हैं जो कभी-कभी हरितलवकधारी भी हो सकती हैं। इनसे **द्वितीयक वल्कुट** अथवा **काग अस्तर** (secondary cortex or phelloderm) बनती है। काग, काग एधा और काग अस्तर मिलकर **परित्वक** (periderm) कहलाते हैं। सामान्यतः परित्वक के समीप ही एक अन्य ऊतक छाल अथवा बल्कल भी सुस्पष्ट होने लगता है जिसमें संवहनी एधा के बाहर के सभी ऊतक जैसे कि द्वितीयक फ्लोएम, द्वितीयक वल्कुट और प्राथमिक फ्लोएम एवं प्राथमिक वल्कुट के छिन्न-भिन्न अवयव सम्मिलित होते हैं। इसकी कोशिकाएं जीवित होती हैं और इनमें से कुछ चयोपचयी पदार्थों (metabolites) के संवहन में भी भाग लेती हैं। व्यापारिक काग, क्वेर्कस सुबर (*Quercus suber*) नामक वृक्ष से प्राप्त होती है जो सामान्यतः पुर्तगाल और स्पेन में पाया जाता है।

वातरंध

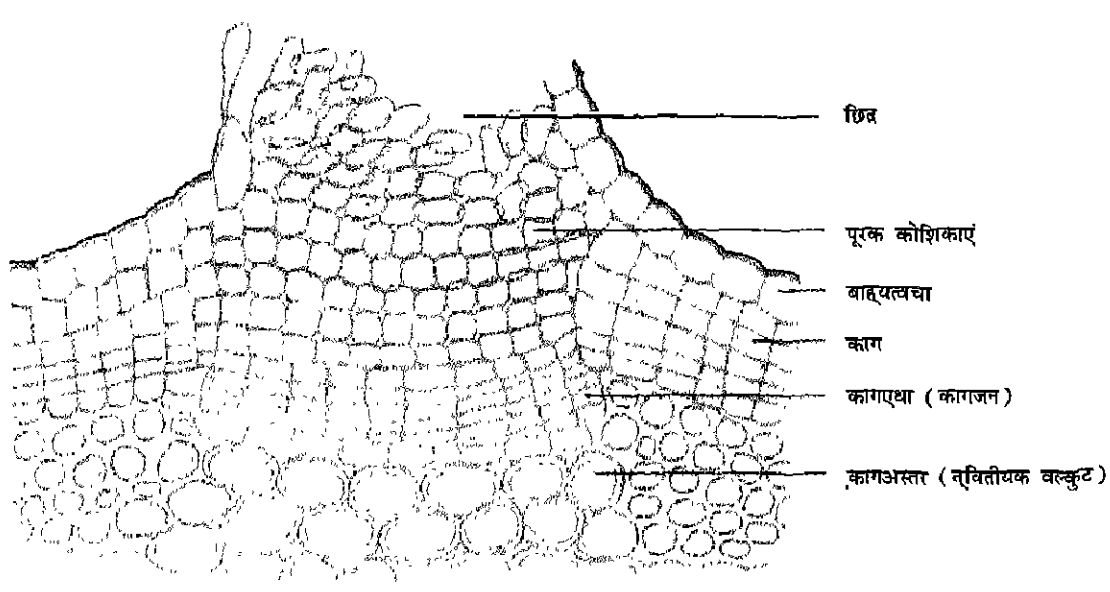
वातरंध (lenticels) काग ऊतक में विद्यमान अंतराल अथवा विवर (openings) होते हैं जिनके माध्यम से वातावरण और स्तंभों तथा जड़ों के आंतरिक ऊतकों के बीच गैसों का आदान-प्रदान होता है। वातरंध्र काष्ठिल आरोही पादपों को छोड़कर सभी काष्ठिल वृक्षों में पाए जाते हैं। किसी स्तंभ की ऐसी अनुप्रस्थ काट में जो वातरंध्र से गुजरती हो, हम इसकी आंतरिक संरचना का अध्ययन कर सकते हैं (चित्र 17.19)। सामान्यतः यह बाह्यत्वचीय परत में टूटन के फलस्वरूप बने एक छिद्र के रूप में निर्मित होती है, जिसके नीचे पतली भित्तियुक्त कोशिकाओं का एक ढीला पुंज होता है जो **पूरक ऊतक** (complementary tissue) कहलाता है। कुछ उदाहरणों जैसे आड़ू (prunus persica) में इसकी कुछ कोशिकाएं सुबेरिन-युक्त हो जाती हैं। स्तंभों में वातरंध्रों की संख्या विविध होती है, वे छितरे हो सकते हैं अथवा क्षैतिज या खड़ी पंक्तियों में व्यवस्थित। मज्जा रश्मियों के विपरीत उपस्थित वातरंध, गैसों के मुक्त आदान-प्रदान में सहायक होते हैं।

अंतःकाष्ठ और रसदारु

कई वर्षों की वृद्धि के उपरांत कुछ वृक्षों के दारु ऊतक विशेषतः इनके केंद्रीय भाग अथवा सबसे आंतरिक परतों में गहरा भूरा अथवा कत्थई रंग धारण कर लेती है। यह क्षेत्र अत्यंत लिग्निन-युक्त मृत अवयवों का बना होता है और **अंतःकाष्ठ** अथवा **कठोर काष्ठ** (heartwood or duramen) कहलाता है। इसके विपरीत हल्के रंग की जीवित कोशिकाओं से बनी परिधीय दारु, **रसदारु** (sapwood or alburnum) कहलाती है। अंतःकाष्ठ में कई प्रकार के कार्बनिक यौगिक जैसे कि गोंद, रेजिन, टेनिन, फीनोल एवं अन्य विशेष सुगंधित तेल तथा रंगीन पदार्थ पाए जाते हैं। इन सभी सामूहिक लक्षणों के कारण यह रसदारु की अपेक्षा अधिक टिकाऊ और कीटों एवं सूक्ष्मजीवियों के प्रतिरोधी होती है।

द्विबीजपत्रियों की जड़ों में द्वितीयक वृद्धि

यद्यपि द्विबीजपत्रियों की जड़ों में द्वितीयक वृद्धि द्विबीजपत्री स्तंभों के समान ही होती है लेकिन एधा के निर्माण और ऊतक विभेदन में पर्याप्त भेद दिखाई देता है।



चित्र 17.19 वातरंध्र की संरचना

संवहनी एधा का बनना

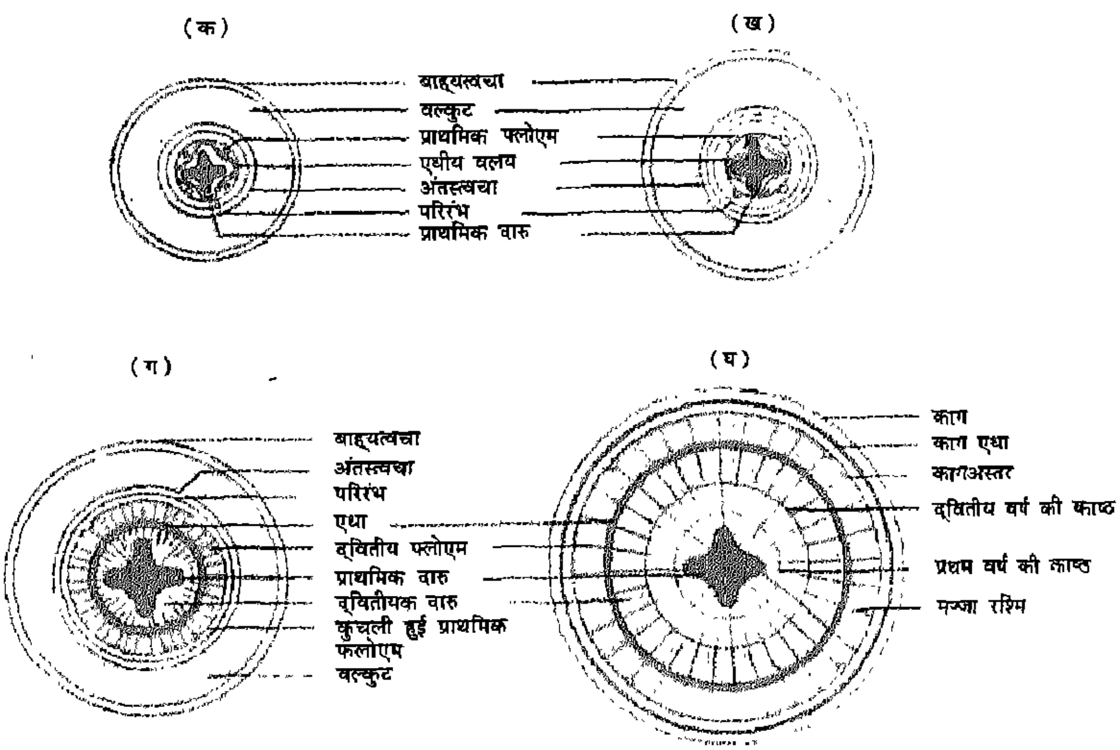
संवहनी पूलों की एधा का उद्‌गम पूर्णतः द्‌वितीयक रूप में होता है। प्रारंभ में योजक ऊतक (conjunctive tissue) का एक भाग जो फ्लोएम पूलों के अंदर की ओर स्थित होता है, विभाजनशील हो जाता है और एधा की ईंट-सदृश कोशिकाओं को जन्म देता है। एधा की यह पट्टिका पार्श्वरूप में दारु एवं फ्लोएम के पूलों के बीच फैल जाती है (चित्र 17.20)। इसी अंतराल में परिरंभ का एक भाग जो आदिदारु के ऊपर स्थित होता है, भी विभज्योतकी हो जाता है, और एधा की दूसरी पट्टिका बनाता है। यह दोनों एधीय पट्टिकाएं मिलकर एक पूर्ण और लहरदार वलय का निर्माण करती हैं जो फ्लोएम पूलों के नीचे और दारु पूलों के ऊपर से गुजरती हैं।

संवहनी एधा की क्रियाशीलता

एधा की वलय अधिक व्युत्पन्न (derivatives) अंदर की ओर बनाती है। इस स्थल पर द्‌वितीयक ऊतक अत्यधिक उत्पादन के कारण एधा और प्राथमिक ऊतक बाहर की ओर धकेल दिए जाते हैं, इसके फलस्वरूप एधा की तरंगित वलय गोलाकार हो जाती है। अब यह पूरी तरह गोलाकार वलय क्रियाशील हो कर दोनों ओर द्‌वितीयक ऊतकों का निर्माण करती हैं। एधा वलय की अंदर की ओर बढ़ने वाली कोशिकाएं द्‌वितीयक दारु के अवयवों में विभेदित हो जाती है। इनमें मुख्यतः वाहिकाएं दारु मृदूतक और कुछ दारु रेशे होते हैं। प्रत्येक आदिदारु के सम्मुख बनने वाला द्‌वितीयक ऊतक मृदूतक में परिवर्तित होकर प्राथमिक मज्जा रश्मियों का निर्माण करता है। यह स्तंभ की अपेक्षा जड़ों में अधिक प्रमुखता लिए होती है। एधा वलय बाहर की ओर नई कोशिकाओं का उत्पादन करती है जो द्‌वितीयक फ्लोएम में विभेदित हो जाती है और चालनी नलिका अवयवों, सहचर काणिकाओं, फ्लोएम मृदूतक एवं फ्लोएम रेशों से मिलकर बनती है। फ्लोएम के स्तवक शनैःशनैः कुचले जाते हैं और पुरानी जड़ों में दृष्टव्य नहीं होते।

काग एधा का बनना

परिरंभ की कोशिकाएं विभज्योतकी होकर पतली भित्तिधारी आयताकार कोशिकाओं की कुछ परतों को जन्म देती हैं इनसे काग एधा अथवा कागजन बनता है। यह बाहर की ओर द्‌वितीयक ऊतक बनाता है जो काग अथवा काग स्तर कहलाता है। काग एधा के अंदर की ओर बनने वाली कोशिकाएं द्‌वितीयक वल्कुट अथवा कागअस्तर बनाती हैं। इस अभिक्रिया में अंतस्त्वचा, सामान्य वल्कुट और मूलीय त्वचा का स्तर छिन्न-भिन्न हो कर शनैःशनैः गायब हो जाते हैं। जड़ों में कहीं-कहीं छितरे हुए वातरंध्र भी विद्‌यमान होते हैं।



चित्र 17.20 प्ररुपी द्‌विबीजपत्री मूल में द्‌वितीयक वृद्‌धि की विभिन्न प्रावस्थाओं का रेखाचित्रीय प्रस्तुतिकरण

सारांश

पादप ऊतक दो प्रकार के होते हैं। पहला विभज्योतक, जिसमें कोशिकाएं विभाजित होने तथा नयी कोशिकाएं बनाने की क्षमता रखती हैं, और दूसरा स्थायी जहां कोशिकाओं में उपरोक्त क्षमता नहीं होती।

उनकी स्थिति के आधार पर पादप शरीर में विद्यमान प्रथम श्रेणी के ऊतकों का वर्गीकरण शीर्ष, पार्श्व, अंतर एवं पट्टिका एवं शिरा विभज्योतकों में किया जाता है। शीर्ष विभज्योतकों में कोशिकाओं का एक समूह शनैः शनैः स्पष्ट हो जाता है जो आदिविभज्योतक कहलाता है और तीन क्षेत्रों त्वचाजन, वल्कुटजन एवं रंभजन में विभेदित हो जाता है। स्थायी ऊतक दो प्रकार के होते हैं: (क) सरल एवं (ख) जटिल। प्रथम श्रेणी में मृदूतक, स्थूलकोणोतक एवं दृढ़ोतक सम्मिलित हैं। मृदूतक विभिन्न प्रकार और रूपों की कोशिकाओं से मिलकर बनता है जो पतली भित्तिधारी और स्पष्ट अवकोशिका-युक्त होती हैं और इनका प्रमुख कार्य खाद्य पदार्थों का संग्रह करना है। स्थूलकोणोतक की कोशिकाएं लाक्षणिक रूप से कोणों पर स्थूलन लिए होती हैं। यह वृद्धि करते हुए अंगों को यांत्रिक अवलंब पहुंचाती हैं जब कि दृढ़ोतक समान रूप से स्थूल भित्तिधारी, मृत, तथा ऐसी कोशिकाओं का बना होता है जिनमें अत्यंत संकरी गुहिका होती है। यह पादपों का मुख्य यांत्रिक अवलंब-प्रदायी ऊतक है और इसके अवयव दो प्रकार के होते हैं – रेशे जो संकरे, लंबे एवं किनारों पर पतले होते जाते हैं और जो गुच्छों में पाए जाते हैं तथा दृढ़ कोशिकाएं जो छोटी, गोल अथवा बहुभुजीय होती हैं। दारु एवं फ्लोएम संवहनी पादपों के जटिल ऊतक हैं जिनमें से पूर्ववर्ती के चार विभिन्न अवयव वाहिका, वाहनिकाएं, दारु मृदूतक एवं दारु रेशे हैं जबकि फ्लोएम चालनी कोशिका अथवा चालनी नलिका अवयव, सहचर कोशिका, फ्लोएम मृदूतक एवं फ्लोएम रेशों से मिलकर बनता है।

साक्स ने पौधों में विद्यमान ऊतकों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया था : (क) बाह्यत्वचीय (ख) भरण ऊतक एवं (ग) संवहनी ऊतक। बाह्यत्वचीय ऊतक का प्रमुख कार्य आंतरिक ऊतकों को संरक्षण प्रदान करना है और यह बिना अंतराकोशिक अवकाशिकाओं वाली पतली भित्तिधारी कोशिकाओं से बना होता है। बाह्यत्वचा में कई सूक्ष्म छिद्र होते हैं जो रंध्र कहलाते हैं और वाष्पोत्सर्जन में सहायक हैं। बाह्यत्वचीय कोशिकाओं से कुछ प्रवर्ध भी त्वचारोमों के रूप में पत्तियों और तनों पर निकलते हैं। जड़ों में बाह्यत्वचीय कोशिकाएं दीर्घीकृत होकर मूलरोमों में परिवर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार यह जड़ों का क्षेत्र बढ़ाती रहती हैं जिससे जल एवं खनिज लवणों का भरपूर अवशोषण हो सके और पादप भूमि में भली प्रकार स्थापित हो जाए।

संभरण ऊतक तंत्र तीन क्षेत्रों (क) वल्कुट (ख) परिरंभ एवं (ग) मज्जा एवं रश्मि में विभेदित होता है। वल्कुट, अधस्त्वचा स्थूलभित्तियुक्त कोशिकाओं से बनी और सामान्य वल्कुट, पतली भित्तियोंधारी अंतराकोशिकीय अवकाशिकाओं-युक्त, में विभेदित होती है। अंतस्त्वचा वल्कुट की सबसे भीतरी परत बनाती है। इसकी कोशिकाएं अनुदैर्ध्य दीर्घीकृत तथा कैस्पेरियनी पट्टिकाओं धारी होती हैं। परिरंभ, अंतस्त्वचा एवं संवहनी पूलों के बीच विद्यमान, तथा मृदूतक एवं दृढ़ोतक की बनी होती है। यह यांत्रिक अवलंब प्रदान करती है और पार्श्व मूलों का उद्गम स्थल है। अंतस्त्वचा मज्जा मृदूतकी होती है और केंद्रीय भरण ऊतक में स्थित होती है। इसका कार्य भोजन संग्रह करना है। संवहनी ऊतक दारु एवं फ्लोएम से मिलकर बनता है। एधा की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर संवहनी पूलों को खुले अथवा बंद कहा जाता है। यदि दारु एवं फ्लोएम अलग-अलग त्रिज्याओं पर उपस्थित होते हैं तो पूल अरीय कहलाते हैं और यदि एक ही त्रिज्या पर विद्यमान होते हैं, तो यह संयुक्त पूल कहलाते हैं।

द्विबीजपत्री मूल की आंतरिक संरचना में बाह्यत्वचा मूलरोमधारी, अंतराकोशिक स्थलविहीन एकल परत, वल्कुट पतली भित्तियों से आवरित, प्रचुर अंतराकोशिक स्थलों-युक्त एक स्थूल ऊतक दिखाई देता है। इनमें 2-6 एवं बाह्यआदिदारुक एवं अरीय संवहनी पूल होते हैं और मज्जा बहुत सूक्ष्म अथवा अनुपस्थित होती है। इसके विपरीत एकबीजपत्रियों में संवहनी पूल 6 से अधिक होते हैं और इनमें मज्जा विशाल होती है।

एकद्विबीजपत्री स्तंभ में बाह्यत्वचा एकपरतीय बहुकोशिक रोमधारी और उपत्वचा से ढकी होती है। इसमें वल्कुट स्थूलकोणोतकी अधस्त्ववचा और एक मृदूतकी सामान्य वल्कुट में विभक्त होती है जो ग्रंथियुक्त भी हो सकती है। अंतस्त्वचा जिसे कभी-कभी मंडाच्छद भी कहा जाता है, एकपंक्तिक होती है। संवहनी पूल बहिःफ्लोएमी, अंतःआदिदारुक एवं खुले होते हैं। संवहनी पूलों में फ्लोएम बाहर की ओर स्थित होती है और दारू अंदर की ओर। एधा इन दोनों के बीच में स्थित होता है। संवहनी पूल एक-दूसरे से अरीय मज्जा रश्मियों द्वारा अलग-अलग किए जाते हैं। मज्जा मृदूतकी एवं अंतराकोशिक अवकाशिकाओं-युक्त होती है। किसी एकबीजपत्री तने में बाह्यत्वचा एक परत की और स्थूल उपत्वचा से ढकी होती है। भरण-ऊतक, वल्कुट अंतस्त्वचा, परिरंभ और मज्जा में विभेदित नहीं होती। संवहनी पूल, पूलाच्छद से आवरित होते हैं और भरण ऊतक में छितरे रहते हैं। फ्लोएम, दारु के बाहर की ओर अवस्थित रहती है, मज्जा मृदूतकी कोशिकाओं की बनी होती है जो अपघटित होकर केंद्र में एक गुहिका बनाती है। एक द्विबीजपत्री पत्ती में ऊपरी एवं निचली सतहें बाह्यत्वचाओं से आवरित रहती हैं। निम्न बाह्यत्वचा में अनगिनत

रंध्र पाए जाते हैं। दोनों बाह्यत्वचाओं के बीच मध्योतक विद्यमान होता है जो खंभोतक और स्पंजी मृदूतक से बना होता है जिनकी कोशिकाएं हरितलवक-बहुल होती है और प्रकाशसंश्लेषण के लिए मुख्यत: उत्तरदायी हैं।

एक द्विपार्श्विय पत्ती में दोनों सतहों पर रंध्र बराबर संख्या में उपस्थित होते हैं। मध्योतकी कोशिकाएं दो प्रकार के मृदूतकों में विभेदित नहीं होती हैं।

अधिकांश द्विबीजपत्री जड़ों एवं स्तंभों में बहुत स्पष्ट द्वितीयक वृद्धि होती है। यह जड़ों एवं स्तंभों में व्यास बढ़ाने में सहायक होती है।

अभ्यास

1. विभज्योतकों की परिभाषा कीजिए।
2. एधा को पार्श्व विभज्योतक क्यों माना जाता है ?
3. इस प्रकार के पादप ऊतकों के नाम बताइए जिसकी कोशिकाएं लाक्षणिक रूप से पतली भित्तियां धारण करती हैं और परिपक्व होने पर भी विभाजन की क्षमता रखती हैं।
4. स्कलेरीड क्या होते हैं ?
5. उस ऊतक का नाम बताइए जो पौधों के अंगों को यांत्रिक शक्ति प्रदान करता है?
6. वार्षिक वलय क्या है ?
7. किसी पादप पदार्थ की अनुप्रस्थ काट सूक्ष्मदर्शी में निम्न शारीरिक लक्षण दर्शाता है :
   (क) संवहनी पूल अरीय रूप में व्यवस्थित हैं (ख) इसमें चार दारु पूल विद्यमान हैं जो बाह्यआदिदारुक स्थिति दर्शाते हैं। इसे किस अंग की ओर इंगित किया जाए।
8. उस ऊतक का नाम बताइए जो जूट के उन रेशों का प्रतिनिधित्व करता है, जो रस्सियों के निर्माण में प्रयोग किए जाते हैं।
9. किसी द्विबीजपत्री स्तंभ में एधा की स्थिति दर्शाइए।
10. स्थलीय पादपों में पत्ती की निचली सतह पर रंध्रों की इतनी बड़ी संख्या क्यों उपस्थित होती है ?
11. अंतर स्पष्ट कीजिए :
    (क) बंद एवं खुले संवहनी पूल
    (ख) आदिदारु पूलों की बहि:आदिदारुक एवं अंत:आदिदारुक स्थिति
    (ग) अंत:काष्ठ एवं रसदारु
    (घ) आदिदारु एवं अनुदारु
    (ङ) आदिफ्लोएम एवं अनुफ्लोएम
12. सूर्यमुखी एवं मक्का के स्तंभ के संवहनी पूलों में दो अंतर बताइए।
13. स्थूलकोणोतक क्या है ? एक शाकीय पुष्पी पादप के संदर्भ में इसकी संरचना तथा कार्य की व्याख्या कीजिए।
14. उपयुक्त चित्रों की सहायता से दारु एवं फ्लोएम के अवयवों का वर्णन कीजिए।
15. स्तंभ रोमों और मूल रोमों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
16. पादपों में ऊतक तंत्र का वर्णन कीजिए।
17. किसी भी लाक्षणिक द्विबीजपत्री स्तंभ/जड़ में द्वितीयक वृद्धि प्रक्रिया का वर्णन चित्रों की सहायता से कीजिए।
18. उपयुक्त चित्रों की सहायता से द्विबीजपत्री एवं एकबीजपत्री में जड़ की आंतरिक संरचना स्पष्ट कीजिए।
19. एक द्विबीजपत्री पत्ती की आंतरिक संरचना का वर्णन चित्र की सहायता से कीजिए। यह एकबीजपत्री की पत्ती से किस प्रकार भिन्न होती है ?

अध्याय 18

जंतुओं की आकारिकी

जंतु बहुकोशिक जीव होते हैं जो पहले से बने कार्बनिक अणुओं को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। इन अणुओं को ये अकार्बनिक स्रोतों से संश्लेषित नहीं कर सकते। अत: जंतु परपोषी होते हैं तथा भोजन के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पौधों, प्रकाशसंश्लेषी शैवाल अथवा सूक्ष्मजीवों पर निर्भर करते हैं। इनमें विविधता अधिकांशत: विभिन्न प्रकार के भोजन को पकड़ने अथवा शिकार करने की क्षमता के अनुरूप विकसित हुई। छठे अध्याय में आप यह जान चुके हैं कि जंतुओं को अकशेरुकी एवं कशेरुकी, समूहों में रखा गया है। इस अध्याय में आप केंचुए और तिलचट्टे (अकशेरुकी) तथा मेढक एवं चूहे (कशेरुकी) के विशिष्ट लक्षणों का अध्ययन करेंगे। ये सभी त्रिकोरकी हैं और द्विपार्श्व सममिति दर्शाते हैं तथा इनमें अंग-तंत्र स्तर का शारीरिक संगठन पाया जाता है।

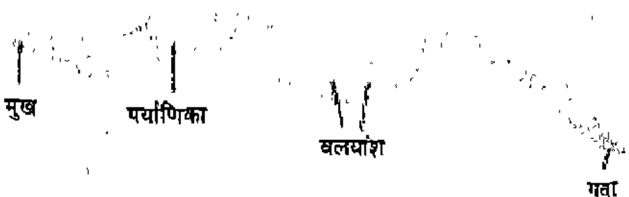
18.1 केंचुआ

केंचुए (Earthworm) स्थलीय प्राणी होते हैं तथा यह नम मिट्टी में निवास करते हैं। यह एक रात्रिचर जीव है तथा सामान्यत: पृथ्वी की ऊपरी परतों में लगभग 30 से 45 cm तक की गहराई में पाया जाता है। दिन के समय ये जमीन के अंदर स्थित बिलों में रहते हैं। ये अपने बिल मृदा को छेदकर और निगलकर बनाते हैं। बगीचों में ये अपने द्वारा स्रावित एवं एकत्रित उत्सर्जी पदार्थ और मल के द्वारा ढूंढे जा सकते हैं। इस उत्सर्जी पदार्थ एवं मल को कृमि कास्टिंग (worm casting) कहते हैं जो गोल मिट्टी के रूप में जमा हुआ रहता है। वर्षा ऋतु में अति वृष्टि के बाद केंचुए बड़ी संख्या में जमीन पर रेंगते हुए दिखाई देते हैं। सर्दियों में ये अपने बिल में सड़ी-गली पत्तियां एवं सब्जियां खींच लेते हैं और बिल के निकास द्वार को ढक्कन की तरह बंद कर देते हैं जिससे बिल के अंदर का तापमान गर्म रह सके। केंचुआ संघ ऐनेलिडा का सदस्य है तथा इसका वंश *फेरेटिमा* (Pheretima) और जाति *पोस्थुमा* (posthuma) है। केंचुए की लगभग 500 जातियां पाई जाती हैं। जिनमें से 13 भारत में मिलती हैं।

बाह्य आकारिकी

इसका शरीर गोलाकार, लंबा और अग्र सिरे पर नुकीला होता है। पिछला सिरा कुछ गोल होता है। पूर्ण रूप से विकसित कृमि लगभग 150 mm लंबा तथा 3.5 mm मोटा होता है। यह लाल भूरे रंग का होता है तथा पृष्ठ सतह अधर सतह से गहरा रंग लिए होती है। अधर तल पर बहुत-से छिद्र पाए जाते हैं, जिसकी वजह से यह पृष्ठ तल से विभेदित किया जा सकता है। पृष्ठ तल पर एक गहरी मध्यरेखा (पृष्ठ रक्त वाहिका) दिखाई पड़ती है जो कृमि की लगभग पूरी लंबाई में स्थित होती है। केंचुए में स्पष्ट सिर का अभाव होता है।

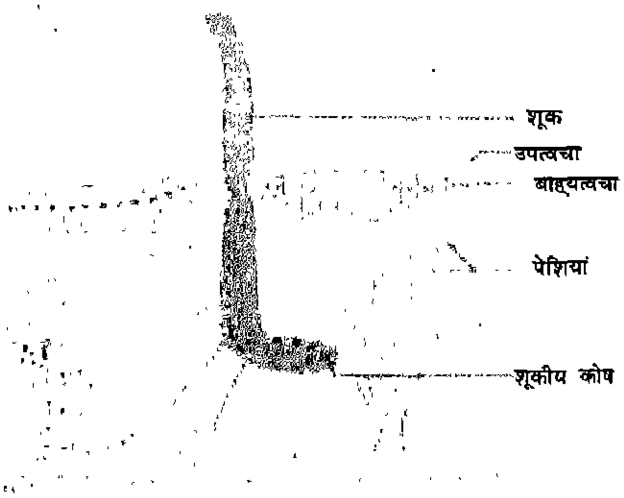
जंतु का पूरा शरीर एक श्रेणी में वलयों अथवा छल्लेरूपी खंडों में विभाजित होता है जो एक-दूसरे से अंतरखंडीय खांचों द्वारा अलग बने रहते हैं (चित्र 18.1)।



चित्र 18.1 केंचुए की बाह्य आकारिकी

इन खंडों की संख्या 100 से 120 तक पाई जाती है। देह खंड आंतरिक रूप से पटों (septa) द्वारा विभक्त होते हैं। *फेरेटिमा पोस्थुमा* (*Pheretima posthuma*) में अग्र चार खंड बाहर से खंडित होते हैं जबकि उनके संबंधित आंतरिक पट अनुपस्थित होते हैं। शरीर के अग्र भाग का प्रथम खंड मुखखंड अथवा **पेरिस्टोमियम** (peristomium) कहलाता है। इनके अग्र सिरे पर एक बहुत छोटा मुख छिद्र पाया जाता है। मुख के ऊपर एक छोटा उभार निकला रहता है जिसे **पुरोमुख** (prostomium) कहते हैं। गुदा अंतिम खंड के सिरे पर स्थित होती है। एक परिपक्व जंतु में एक चौड़ी ग्रंथिल गोलाकार पट्टी चौदहवें से सोलहवें खंड को घेरे रहती है इन ग्रंथिल जुड़े हुए खंडों को **पर्याणिका** (clitellum) कहते हैं। इस प्रकार शरीर तीन भागों अग्र-पर्याणिक (preclitellar), पर्याणिक (cliteller) और पश्च-पर्याणिक (postcliteller) में विभक्त होता है। 5 और 6, 6 और 7, 7 और 8 तथा 8 और 9, खंडों

के अंतर्खंडीय खांचों के अधर-पार्श्वीय भाग में चार जोड़ी स्पर्मेथिकल छिद्र स्थित होते हैं। एकल मादा जनन छिद्र चौदहवें खंड की मध्य अधर रेखा पर स्थित होता है। एक जोड़ा नर जनन छिद्र अठारहवें खंड की अधर-पार्श्व में स्थित होता है। बहुत-से छोटे छिद्र जिन्हें वृक्करंध्र (nephridiopores) अथवा वृक्क छिद्र कहते हैं, अधर तल पर लगभग संपूर्ण शरीर पर पाए जाते हैं। इन छिद्रों के द्वारा उत्सर्गिकाएं शरीर के बाहर की ओर खुलती हैं।



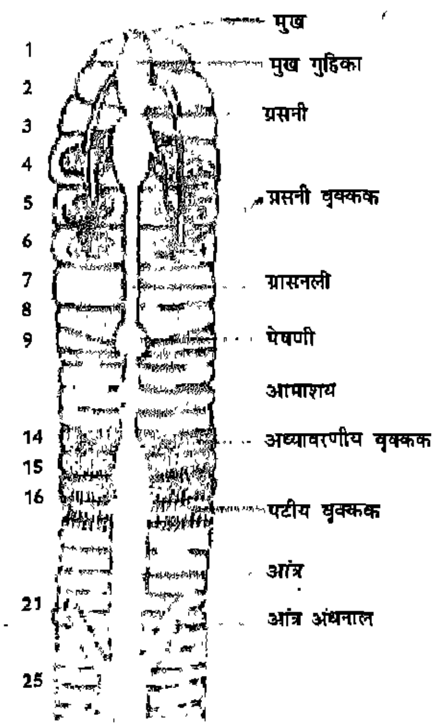
चित्र 18.2 शूक दर्शाते हुए शारीरिक भित्ति की उदग्र काट

शरीर के प्रथम, अंतिम और पर्याणिका खंडों को छोड़कर समस्त अन्य देहखंडों में S आकार की शूक या सीटी (setae) पाई जाती है जो प्रत्येक खंड के मध्य में स्थित उपकला खांच में धंसी रहती है (चित्र 18.2)। ये काइटिन की बनी होती हैं और मृदा को पकड़े रहकर कृमि की गति में मदद करते हैं। इनके सूक्ष्म आकार के कारण यह आंखों से दिखाई नहीं देती है। कृमि की गति पेशियों की संकुचनशीलता अर्थात् फैलाव एवं सिकुड़न तथा शूकों के मृदा को पकड़े रहने के कारण होती है। अंतर्खंडीय पट भी गति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आंतरिक आकारिकी

केंचुए का शरीर एक पतली अकोशिकीय परत से ढका रहता है जिसे उपत्वचा कहते हैं। इस के नीचे अधिचर्म, दो मांसल परतें तथा सबसे अंदर की ओर देहगुहीय उपकला पाई जाती है। अधिचर्म स्तंभीय उपकला कोशिकाओं की एक स्तर की बनी हुई होती हैं जिसमें अन्य प्रकार की कोशिकाएं जैसे स्रवण करने वाली ग्रंथि कोशिकाएं भी सन्निहित होती हैं। पेशियों के परत वृत्ताकार और अनुदैर्ध्य पेशीतंतुओं के बने होते हैं।

उत्सर्गी अंग, खंडों में व्यवस्थित और वलयित नलिकाओं के बने होते हैं जिन्हें वृक्कक (Nephridia) कहते हैं। ये वृक्कक तीन प्रकार के होते हैं (चित्र 18.3): (i) जो खंडों के बीच पट्टों पर पाए जाते हैं उन्हें पट्टीय वृक्कक (septal nephridia) कहते हैं तथा ये आंत्र में खुलते हैं। (ii) जो शरीर की देहभित्ति के आंतरिक स्तर पर चिपके रहते हैं तथा शरीर की सतह पर खुलते हैं, इन्हें अध्यावरणी वृक्कक (integumentary nephridia) कहते हैं, (iii) चौथे, पांचवें एवं छठे खंड में तीन युग्मित गुच्छों के रूप में पाए जाते हैं, इन्हें ग्रसनीय वृक्कक (pharyngeal nephridia) कहते हैं। सभी वृक्कक संरचना में मूलतः समान होते हैं।



चित्र 18.3 वृक्कक एवं आहार नाल का विन्यास

आहार नाल

आहार नाल (Alimentary canal) शरीर के प्रथम से अंतिम खंड तक एक लंबी, सीधी नली के रूप में उपस्थित होती है (चित्र 18.3)। प्रथम खंड पर उपस्थित मुख प्रथम से तृतीय खंड में फैली मुखगुहा में खुलता है। जो ग्रसनी (pharynx) की ओर अग्रसर होती है और चौथे खंड में खुलती है। ग्रसनी एक छोटी संकरी नलिका में खुलती है, जिसे ग्रसिका (oesophagus) कहते हैं, यह पांचवें से सातवें खंड तक पाई जाती है तथा एक पेषीय पेषणी (gizzard) आठवें और नवें खंड तक चलती है। यह सड़ी पत्तियों और मिट्टी के कणों को पीसने में मदद करती है। आमाशय नौ से चौदह खंड तक स्थित

होता है। केंचुए का भोजन सड़ी-गली पत्तियां और मिट्टी में मिश्रित कार्बनिक पदार्थ ह्यूमस (humus) होता है। कैल्शियमधर ग्रंथियां आमाशय में पाई जाती हैं। इनका स्राव ह्यूमिक अम्लों को उदासीन बना देता है जो आमाशय द्वारा ह्यूमस के पाचन के लिए स्रावित किया जाता है। अतिरिक्त कैल्शियम पदार्थ कैल्साइट के रूप में बाहर उत्सर्जित कर दिया जाता है। आंत्र पंद्रहवें खंड से प्रारंभ होकर अंतिम खंड तक एक लंबवत् नलिका के रूप में मिलती है। छब्बीसवें खंड में आंत्र से एक जोड़ी आंत्रिक अंधनाल (intestinal caeca) निकलते हैं। आंत्र का विशिष्ट गुण आंत्र की पृष्ठ सतह में आंतरिक मध्य वलन, **भित्तिभज** (typhlosole) का पाया जाना है। यह वलन पाचन के पश्चात् अवशोषण की सतह में वृद्धि कर देता है। आहार नाल, शरीर के अंतिम खंड पर एक छोटे छिद्र के रूप में खुलती है, जिसे गुदाद्वार (anus) कहते हैं। केंचुआ कार्बनिक पदार्थों से भरपूर मृदा को भोजन के रूप में निगलता है, यह कार्बनिक पदार्थ बीजों, पत्तियों एवं जंतुओं के अंडों और डिंब आदि के सड़ने से बनता है। अपचित तथा अघुलनशील भोजन मिट्टी के साथ गुदाद्वार से मल के रूप में उत्सर्जित कर दिया जाता है, जिसे कृमि क्षिप्ति (worm casting) कहते हैं।

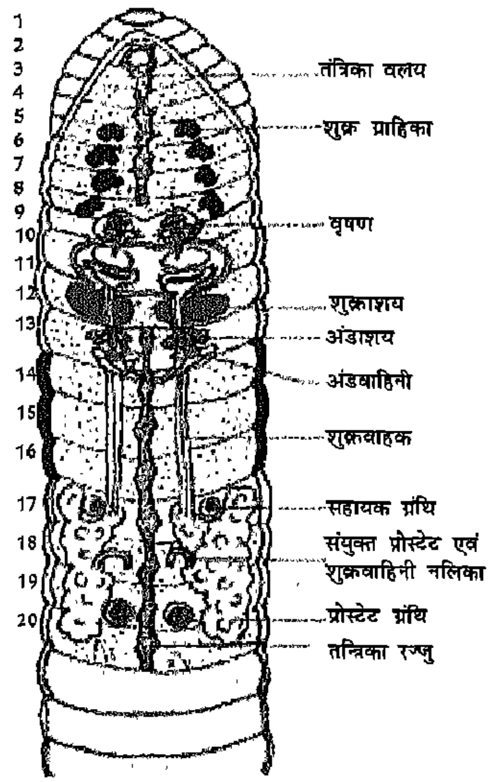
केंचुए का परिवहन तंत्र बंद प्रकार का होता है, जिसमें रुधिर वाहिकाएं, कोशिकाएं, हृदय, वाल्व और रुधिर ग्रंथियां होती हैं (चित्र 18.4)। रुधिर ग्रंथियां एवं फोलिकिलों का समूह चौथे, पांचवें और छठे देह खंड पर पाया जाता हैं। ये ग्रंथियां हीमोग्लोबिन तथा रुधिर कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। हीमोग्लोबिन रुधिर प्लाज्मा में घुला होता है। रुधिर कोशिकाओं में हीमोग्लोबिन नहीं होता। ये रंगहीन होती हैं। इनकी प्रकृति भक्षकाण्विक (phagocytic) होती है (चित्र 18.4)।

तंत्रिका-तंत्र खंडीय गुच्छिकाओं के रूप में अधर तंत्रिका रज्जु पर व्यवस्थित होती है। बहुत-सी तंत्रिका कोशिकाएं इकट्ठी होकर गुच्छिका का निर्माण करती हैं। अग्र सिरे पर (तीसरे और चौथे खंड में) तंत्रिका रज्जु दो सिरों में विभक्त होकर पार्श्व में ग्रसिका को घेर कर पृष्ठ सतह पर तंत्रिका वलय के रूप में जुड़ता है। तंत्रिका वलय अथवा नर्व रिंग, प्रमस्तिष्क गुच्छिका के साथ मिलकर मस्तिष्क का निर्माण करती है। संवेदांग (sense organs) अल्प विकसित होते हैं और ये त्वचीय (epidermal) संवेदांग, मुखीय (buccal) संवेदांग और प्रकाश संवेदांगों (photoreceptors) द्वारा प्रदर्शित किए जाते हैं। केंचुआ एक द्विलिंगी प्राणी है अर्थात् वृषण एवं अंडाशय दोनों एक ही जंतु में विद्यमान होते हैं (चित्र 18.5)।

केंचुए में दो जोड़े वृषण दसवें और ग्यारहवें खंड में पाए जाते हैं। इनकी नलिकाएं दो शुक्रवाहियां अठारहवें खंड तक जाती हैं जहां ये प्रोस्टेट (prostate) नलिका से जुड़ जाती हैं। अतिरिक्त ग्रंथियां, सत्रहवें तथा उन्नीसवें खंड के अधरतल पर पाई जाती हैं। संयुक्त प्रोस्टेट शुक्राणु नाल अठारहवें खंड के अधरपार्श्व में एक जोड़ा नर जनन-छिद्र द्वारा खुलती हैं। साथ ही छठें से नौवें खंड तक प्रत्येक खंड में एक छोटे थैलेनुमा संरचनाएं चार जोड़े शुक्राणु-धानियां (spermathecae) पाई जाती हैं। यह मैथुन के दौरान शुक्राणुओं को प्राप्त कर संग्रहीत करती है। एक जोड़ी अंडाशय बारहवें और तेरहवें समखंड के अंतर्पट्टीय खंडों की पिछली दीवार पर उपस्थित होती है। अंडाशय के नीचे अंडवाहिनी मुखिका पाई जाती है। अंडवाहनियां चौदहवें खंड के अधरतलपर मात्र एक मादा जनन-छिद्र के रूप में बाहर खुलती है (चित्र 18.5)। इसमें परिवर्धन बिना लार्वा अवस्था के सीधा ही होता है।



चित्र 18.4 त्वचा के पल्ले को हटाने के उपरांत केंचुए के अग्रभाग में वितरित प्रमुख रक्त वाहिकाएं एवं हृदय



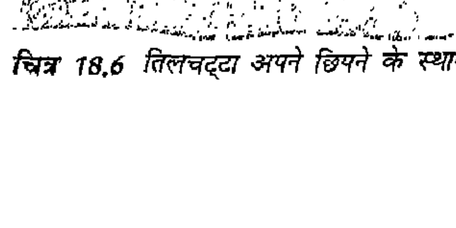
चित्र 18.5 केंचुए का जनन-तंत्र

मनुष्य से संबंध

केंचुआ 'किसानों का मित्र' कहलाता है। यह मिट्टी में छोटे-छोटे बिल बनाता है, जिससे मिट्टी छिद्रित हो जाती है और बढ़ते पौधों की जड़ों के लिए वायु की उपलब्धता और नीचे की ओर बढ़ना सुगम हो जाता है। केंचुए जिन सड़ी-गली पत्तियों को अपने बिलों में ले जाते हैं वे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाती हैं। सड़ी-गली पत्तियों सहित जो मिट्टी निगल ली जाती है वह उत्सर्जी पदार्थ के साथ बाहर आ जाती है। मिट्टी के कण पेषीय पेषण (gizzard) द्वारा महीन पीस दिए जाते हैं। केंचुए सड़ी-गली पत्तियों को खाने और बिछाने के लिए, बिल में ले जाते हैं जहां यह अपूर्णतया पचाई जाती हैं। इनके अवशेष महीन मिट्टी के साथ क्षिप्ति के रूप में बिल में बिछाए जाते हैं । इस प्रकार ये खेत तथा बगीचों की मिट्टी में ह्यूमस मिलाते हैं। कृमि के उत्सर्जी उत्पाद तथा स्राव मिट्टी में नाइट्रोजन-धारी पदार्थ मिलाकर उसको उपजाऊ बनाते हैं। इस प्रकार केंचुओं द्वारा मिट्टी को उपजाऊ बनाने की विधि या मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने की विधि को **कृमि वानस्पतिक खाद निर्माण** (vermicomposting) कहते हैं। केंचुए कुछ देशों, जैसे चीन, जापान, बर्मा, आस्ट्रेलिया आदि में भोजन के रूप में भी उपयोग किए जाते हैं। भारत की कई आदिवासी जनजातियों में पथरी, पीलिया, बवासीर और दस्त जैसे रोगों में केंचुए को दवा के रूप में उपयोग में लिया जाता है। केंचुए समस्त संसार में मछली पकड़ने के लिए प्रलोभक (bait) के रूप में प्रयोग में लिए जाते हैं। केंचुए लाभ के साथ-साथ मनुष्य को कुछ हानि भी पहुंचाते हैं क्योंकि ये फसलों के नवजात एवं कोमल पौधों को क्षति पहुंचा सकते हैं और जमीन को बिल बनाकर नष्ट करते हैं। इससे सिंचित भूमि में जहां जलस्तर ऊंचा होता है जल के निस्पंदन के कारण ढालू भूमि पर मृदा-अपरदन होता है। कीटनाशकों और कृत्रिम खाद के अत्यधिक उपयोग से केंचुओं की जनसंख्या में भारी गिरावट आई है। कई अन्य ऐसे जंतुओं जैसे मेंढक, चिड़ियां और छिपकलियां जो इन्हें खाते हैं, पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यह स्थिति मिलकर परोक्ष रूप में पारिस्थितिक असंतुलन उत्पन्न करती है।

18.2 कॉकरोच (तिलचट्टा)

तिलचट्टे अधिकतर अंधेरे नम एवं गर्म स्थानों जैसे मेनहोल, नालियां, रसोई, बेकरी, जलपान-गृह, गोदाम, शौचालयों, किराने की दुकानों आदि जगहों पर पाए जाते हैं (चित्र 18.6)। ये रात्रिचर



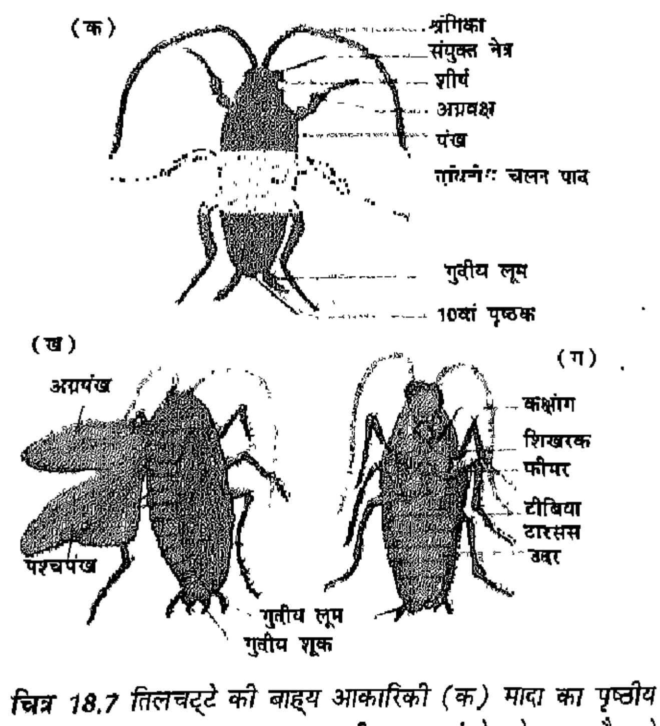
चित्र 18.6 तिलचट्टा अपने छिपने के स्थान में

और धावी (cursorial) प्राणी हैं, जिससे अभिप्राय है तेजी से दौड़ने वाला एवं सीमित उड़ान भरने वाला जंतु। इनमें तीन जोड़ी संधि-युक्त उपांग पाए जाते हैं जो कीट वर्ग और संघ आर्थोपोडा (arthropoda) का प्रमुख लक्षण है। इनका वंश *पेरिप्लेनेटा* (Periplaneta) है जो इनकी विश्वव्यापी उपस्थिति दर्शाता है। इसकी भारत में पाई जाने वाली प्रमुख जाति *पेरीप्लेनेटा अमेरिकाना* (*Periplaneta americana*) है। कॉकरोच शब्द की उत्पत्ति स्पेनी भाषा के शब्द 'कुकरेचा' (cucaracha) से हुई है। इसका मूल स्थान (मेक्सिको) दक्षिणी अमेरिका माना जाता है जहां से यह मनुष्य के साथ-साथ पूरी पृथ्वी पर फैल गया । विश्व में कॉकरोच की लगभग 2,600 जातियां पाई जाती हैं।

बाह्य आकारिकी

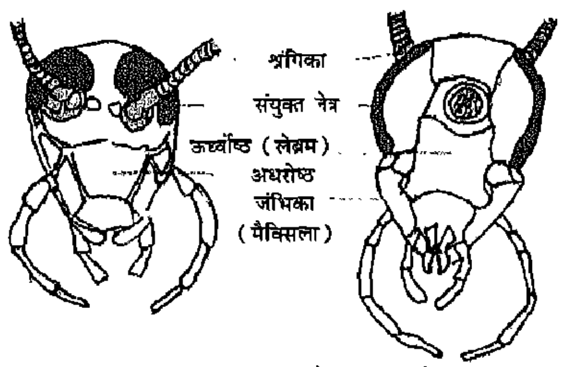
इसका शरीर लंबा, द्विपार्श्व सममित एवं पृष्ठ अधर सतह से चपटा होता है। यह लाल-भूरे रंग का होता है। नर लगभग 35-40 mm लंबा और 10-12 mm चौड़ा होता है, लेकिन मादा कुछ छोटी होती है। पूरा शरीर बाहर से एक कठोर भूरे रंग के काईटिनी बहिः कंकाल द्वारा ढका रहता है। बहिः कंकाल के प्रत्येक खंड पर अनेक कठोर प्लेटें अथवा कंटक (sclerites) पाई जाती हैं जो कोमल एवं लचीली संधि कलाओं द्वारा जुड़ी रहती हैं।

इसका शरीर तीन भागों में विभक्त होता है-सिर, वक्ष एवं उदर (चित्र 18.7)। सिर तिकोना होता है व शरीर के लंब अक्ष के साथ लगभग समकोण बनाता है। यह छः खंडों के जुड़ने से



चित्र 18.7 तिलचट्टे की बाह्य आकारिकी (क) मादा का पृष्ठीय दृश्य (ख) नर का पृष्ठीय दृश्य पंखों को बाहर फैलाते हुए (ग) मादा का अधर दृश्य

बनता है। इसका सिर पर्याप्त गतिशील होता है और लचीली ग्रीवा के कारण सभी दिशाओं में घुमाया जा सकता है। सिर के बाह्य कंकाल को सम्पुटिका (capsule) कहते हैं। सिर पर पार्श्व में एक जोड़े वृंत-विहीन (sessile) संयुक्त नेत्र होते हैं। एक जोड़ी धागे-नुमा शृंगिका, एक झिल्लीयुक्त गड्ढे (socket) से उदित होते हैं जो आंखों के नीचे स्थित होते हैं। यह किसी भी दिशा में घुमाए जा सकते हैं और अत्यधिक स्पर्शग्राही होते हैं। सिर के अग्र सिरे पर मुख स्थित होता है जिसमें कई उपांग होते हैं। जो सामूहिक रूप में मुख के भाग (mouth parts) कहलाते हैं। मुख उपांग काटने, चबाने और निगलने के काम आते हैं। इनमें मुख उपांग में मैंडिबल और मैक्सिली की एक जोड़ी पाई जाती है। **अधरोष्ठ** (Labium) निचले होंठ और **ऊर्ध्वोष्ठ** (Labrum) ऊपरी होंठ का निर्माण करता है। गुहा के अंदर मध्य में मुख उपांगों से घिरा हुआ लचीला उभार हाइपोफेंरिक्स (hypopharynx) पाया जाता है जो कि जिह्वा (जीभ) की भांति कार्य करता है (चित्र 18.8)।



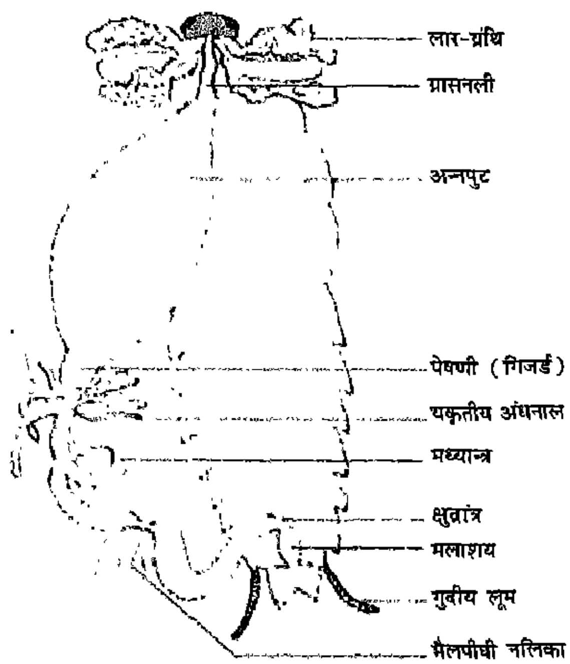
चित्र 18.8 तिलचट्टे का शीर्ष क्षेत्र मुख के भाग दर्शाते हुए (क) अग्र दृश्य (ख) पश्च दृश्य

वक्ष (thorax) तीन खंडों का बना होता है- अग्रवक्ष, मध्यवक्ष, पश्चवक्ष। सिर, वक्ष से एक छोटी संधि जो कि अग्रवक्ष का भाग होती है, से जुड़ा होता है जिसे ग्रीवा कहते हैं। एक बड़ी कंटक (स्क्लेराइट) प्लेट अग्रवक्ष को ढकती है और मध्यवक्ष की रक्षा करती है। प्रत्येक खंड में एक जोड़ी टांगें पाई जाती हैं। प्रत्येक टांग में पांच खंड होते हैं: (क) एक छोटा चौड़ा **कक्षांग**, (Coxa), (ख) एक त्रिभुजाकार छड़ के समान **शिखरक**, (trochanter), (ग) एक लंबा, दृढ़ कांटेदार **उर-अस्थि** (femur), (घ) सबसे लंबा खंड बनाने वाला कमानीनुमा **अंतर्जंघिका** (tibia), और (ङ) एक लंबा **गुल्फ** (tarsus)। पंखों के दो जोड़े पाए जाते हैं-प्रथम, मध्यवक्ष पर तथा दूसरा जोड़ा पश्चवक्ष पर पाया जाता है अग्रपंख मध्यवक्षीय होता है एवं आच्छद, (tegmina) कहलाता है जो अपारदर्शी, गहरा एवं बनावट में चमड़े जैसा होता है। जब तिलचट्टा विश्राम अवस्था में होता है तब अग्रपंख पश्चपंख (पश्च वक्षीय) को ढके रहता है। पश्च पंख पारदर्शी झिल्लीनुमा होते हैं, जिसमें बहुत-सी नलिकाएं पाई जाती हैं तथा यह उड़ने में मदद करते हैं।

नर एवं मादा दोनों में उदर दस खंडों का बना होता है। मादा में आठवें और नवें खंड के कठक अथवा स्क्लेराइट सातवें खंड के कठक द्वारा ढके होते हैं। सातवीं अधरक (sternum) नौकाकार होता है तथा आठवीं और नवीं अधरक के साथ मिलकर एक जनन-कोष्ठ या जननिक कोष्ठ बनाता है। नर में केवल आठवां पृष्ठक (tergum) ही सातवें के द्वारा ढका रहता है। दसवें खंड पर एक जोड़ी संधियुक्त तंतुमय गुदीय लूम सिरकस (circus) होते हैं। इन लूमों के नीचे की ओर नरक नवें खंड में एक जोड़ी छोटे और धागे के समान गुदा शूक होते हैं। मादा में शूक अनुपस्थित होते हैं।

आंतरिक आकारिकी

शरीर उपत्वचा की परत से ढका रहता है जो जल अभेद्य होती है। निचली अधिचर्म से बहुत-सी महीन नलिकाएं निकलती हैं जो उपत्वचा तक जाती हैं। देहगुहा में आहार नाल पाई जाती है। यह तीन भागों-अग्रांत्र, मध्यांत्र एवं पश्चात्र में बंटी होती है। अग्रांत्र-मुख एक छोटी नलिकाकार ग्रसनी में खुलता है जिससे एक सीधी और संकरी नली ग्रसिका (oesophagus) निकलती है। ग्रसिका एक पतले भित्ति वाले कोष में फूल जाती है जिसे अन्नपुट (crop) कहते हैं। इस के पीछे एक छोटी, मोटी भित्तिवाली पेशीय और शंकुरूप ग्रंथिल जठर अथवा पेषणी (gizzard) होती है (चित्र 8.9), जिसकी दीवार मोटी एवं कठोर होती है क्योंकि इसमें बाहर एक मोटा वर्तुलस्तर होता है। दीवार का भीतरी उपत्वचा स्तर मोटा होता है और पेषणी की भीतरी दीवार की उपत्वचा छः स्थानों पर मोटी होकर

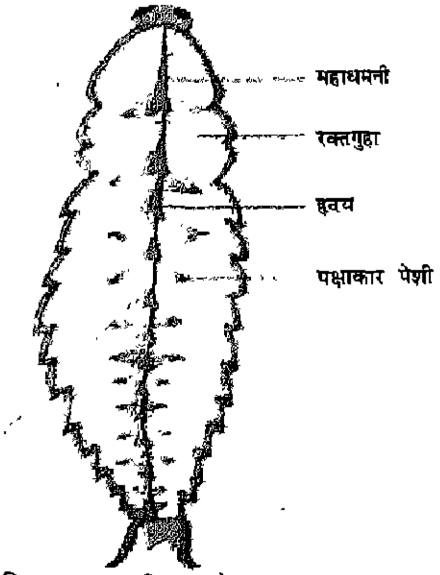


चित्र 18.9 तिलचट्टे की आहारनाल

उपत्वचीय दांत बनाती है। ये दांत भोजन के मोटे कणों को पीसने में सहायता देते हैं । पूरा अग्रांत्र अंदर से क्यूटिकल से आस्तरित रहता है। मध्यांत्र (mesenteron) एक संकरी एवं समान व्यास की नलिका होती है जिसमें उपत्वचा का अस्तर नहीं होता है। अग्रांत्र और मध्यांत्र के जोड़ पर अंगुली के समान आठ अंधनलिकाएं लगी रहती हैं जिनके सिरे बंद रहते हैं। इनको यकृतीय अंधनाल (hepatic caeca) कहते हैं। ये पाचक रस बनाती हैं। (चित्र 18.9)। मध्यांत्र और पश्चांत्र के संधिस्थल (जोड़) पर लगभग 150 पतली पीले रंग की नलिकाएं होती हैं । जिन्हें मैलपीगी नलिकाएं कहते हैं। ये उत्सर्जन में सहायक होती हैं। पश्चांत्र, मध्यांत्र से थोड़ा चौड़ा होता है और यह उपत्वचा से स्तरित रहता है। पश्चांत्र गुदा द्वार से बाहर खुलता है जो दसवें पृष्ठक (टरगम) के नीचे स्थित होता है। मध्यांत्र और यकृतीय अंधनाल की दीवारों से पाचक रस स्रावित होता है । इसके अलावा एक जोड़ी बड़ी लार ग्रंथियां पाई जाती हैं जो कि अन्नपुट के पास उपस्थित होती हैं। ये भी पाचक रस उत्पन्न करती हैं।

तिलचट्टे में खुले प्रकार का परिसंचरण तंत्र होता है। अर्थात् इसकी रुधिर वाहिनियां अल्पविकसित होती हैं और कोशिकाओं (capillaries) में न खुलकर अवकाशिकाओं में खुलती हैं और रुधिर देहगुहा में भरा रहता है तथा उसी में सभी आंतरिक अंग डूबे रहते हैं जिसे रुधिरलसीका (haemolymph)) कहते हैं। रुधिर गुहिका इससे भरी रहती है जो रंगहीन प्लाज्मा और कई कणिकाओं (haemocytes) का बना होता है। रुधिर में श्वसन वर्णक नहीं पाए जाते हैं।

रक्तगुहा (haemocoel) में रक्त प्रवाह के नियंत्रण हेतु वक्षीय तथा उदरीय खंडों में पृष्ठ रुधिर वाहक या हृदय फैला रहता है जो एक लंबी और संकरी नली होती है। यह कीप के आकार का होता है तथा 13 कोष्ठों या खंडों का बना होता है ये खंडीय रूप में व्यवस्थित होते हैं (चित्र 18.10)। प्रत्येक



चित्र 18.10 तिलचट्टे का हृदय (पृष्ठ दृश्य में)

खंड एक हृदय का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि इनमें से प्रत्येक कोष्ठ अपने से अगले कोष्ठ के साथ एक कपाटीय छिद्र द्वारा जुड़ा रहता है। प्रत्येक कोष्ठ के पिछले सिरे में एक जोड़ी छोटे-छोटे पार्श्व छिद्र ऑस्टिया होते हैं। ऑस्टियम में एक कपाट होता है जो रुधिर को केवल एक दिशा में, रक्तगुहा से हृदय के आंतरिक खंड में, जाने देता है।

श्वसन-तंत्र शाखित श्वास नलियों के जाल का बना होता है। श्वास नलियां, श्वास छिद्रों (spiracles) द्वारा खुलती हैं। हवा श्वास छिद्रों द्वारा अंदर प्रवेश करती है जो कि दस जोड़े होते हैं और पार्श्व सतह पर खंडीय रूप में व्यवस्थित होते हैं। इनमें से दो जोड़े तो वक्ष में और आठ उदर में लगे होते हैं । श्वास छिद्रों के मुख अवरोधिनी द्वारा नियंत्रित होते हैं। श्वास नलियां पुनः विभाजित होकर श्वास नलिकाएं बनाती हैं । यह हवा श्वास नलिकाओं तक पहुंचती है। ये श्वास नलिकाएं अंध रूप से ऊतकों में समाप्त होती हैं। श्वास नलिकाओं में भरा हुआ द्रव घुली हुई ऑक्सीजन प्राप्त करता है और कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ता है। अतः गैसों का आदान-प्रदान विसरण (diffusion) विधि द्वारा होता है।

तिलचट्टे में उत्सर्जन मैलपीगी नलिकाओं द्वारा होता है । यह ग्रंथिल, रोमयुक्त उपकला द्वारा स्तरित रहती है और एक विशेष, ब्रुश-सम, सीमा-युक्त होती है। ये नाइट्रोजन-धारी उत्सर्जी पदार्थ का अवशोषण करके उसे जैव रासायनिक क्रिया द्वारा यूरिक अम्ल में परिवर्तित कर देती है। यूरिक अम्ल पश्चांत्र द्वारा उत्सर्जित कर दिया जाता है। अतः यह कीट **यूरिको-उत्सर्गी** (urecotelic) कहलाता है। इनके साथ-साथ वसाकाय उत्सर्गिकाएं, उपत्वचा और यूरिकोस ग्रंथियां भी उत्सर्जन में सहायक होती हैं।

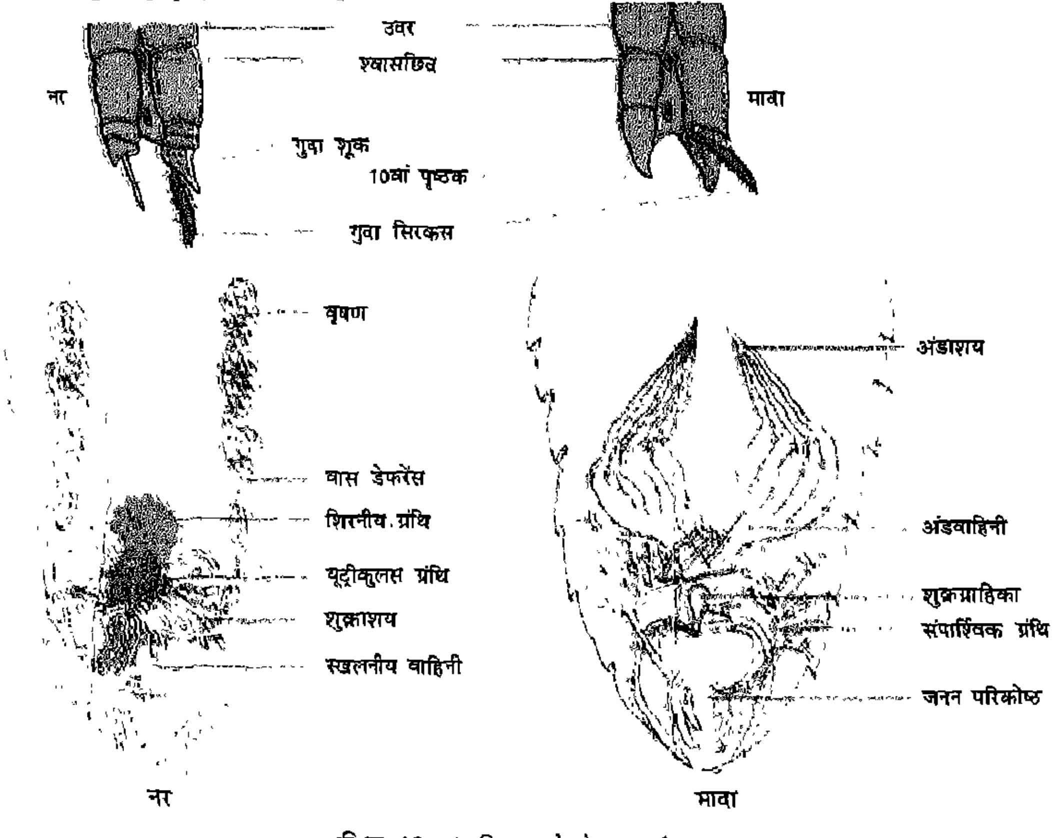
मुख्य तंत्रिका-तंत्र एक श्रेणी में खंडीय व्यवस्थित संगलित गुच्छिकाओं का बना होता है जो जुड़वां अधर उर्ध्व संयोजक से जुड़ी रहती हैं। तीन गुच्छिकाएं वक्ष में और छः उदर में स्थित होती हैं। सिर में मस्तिष्क, अधिग्रसिका गुच्छिका द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जिससे शृंगिकाओं और संयुक्त नेत्रों को तंत्रिका जाती है। यह अधोग्रसिका से दो परिग्रसिका संधानियों द्वारा जुड़ता है। यह सब मिलकर एक ग्रसिका के चारों ओर तंत्रिका वलय का निर्माण करती है। तिलचट्टे में **संवेदन अंग** शृंगिका, आंख, मैक्सिलरी स्पर्शक, लेबियल स्पर्शक तथा गुदा रोमक इत्यादि होते हैं। शृंगिका, स्पर्शक और रोमक स्पर्श संवेदी होते हैं जो भोजन एवं अन्य वस्तुओं की पहचान में मदद करते हैं। सिर के पृष्ठ सतह पर काले वृक्काकार धब्बे के रूप में एक जोड़ा संयुक्त नेत्र पाया जाता है। प्रत्येक नेत्र में लगभग 2000 षट्कोणीय नेत्रांशक (ommatidia) होते हैं जो एक पारदर्शी उपचर्म से ढकी रहती हैं जिसे कॉर्निया

कहते हैं। एक नेत्रांशक कॉर्नियल लेंस, एक जोड़ी कॉर्नियाजन कोशिकाएं, अपवर्तक रवेदार शंक्वाकार रंजक कोशिका जो रंजक शंकु के चारों तरफ होती हैं एवं रेब्डोम (Rhabdome), आधारीय रंजक कोशिका, आधारीय झिल्ली व चाक्षुष (optic) तंत्रिका से बना दृकपटलक द्वारा निर्मित होता है। कई नेत्रांशकों की मदद से तिलचट्टा एक ही वस्तु की कई प्रतिछायाएं देख सकता है। इस प्रकार की दृष्टि को मोजेक दृष्टि (mosaic vision) कहते हैं एवं इस प्रकार से तिलचट्टे की आंख किसी भी प्रकार की गति की पहचान हेतु कशेरुकी प्राणियों की तुलना में कहीं अधिक दक्ष होती है।

नर जननांग एक जोड़ी त्रिखंडीय वृषण के रूप में विद्यमान होते हैं जो चौथे एवं पांचवें उदरीय खंड में पार्श्वीय रूप से व्यवस्थित होते हैं। प्रत्येक वृषण से एक पतली नलिका जिसे **शुक्रवाहक** (vas deferens) निकलती है जो शुक्राशय होते हुए स्खलनीय वाहिका में खुलती है। स्खलनीय वाहिका नर जननद्वार में खुलती है जो गुदा के अधर में होता है। एक विशिष्ट छत्रकनुमा ग्रंथि उदर के छठे एवं सातवें खंड में होती है जो सहायक जनन-ग्रंथि का कार्य करती है। बाह्य जनन अंग काइटिन के बने असममित (asymmetrical) रचनाएं होती हैं जो उदर के अंत में नर जनन द्वार के चारों तरफ होती हैं। इन्हें नर युग्मन प्रवर्ध (gonapophysis अथवा phallomere) अथवा शिश्नखंड कहते हैं (चित्र 18.11)। शुक्राणु, शुक्राशय में जमा होते हैं। जहां वे आपस में चिपक कर **शुक्राणुधर** (spermatophore) बना देते हैं जो मैथुन के समय मुक्त किए जाते हैं। मादा जननांग मुख्यरूप से दो बृहद् आकार के अंडाशय के रूप में होता है जो पार्श्व रूप से चौथे, पांचवें एवं छठे खंड में स्थित होता है। प्रत्येक अंडाशय आठ अंडाशयी नलिका अथवा अंडाशयकों (ovariole) का बना होता है जिसमें विकसित हो रहे अंडों की एक शृंखला होती है। प्रत्येक अंडाशय एक अंडवाहिनी में खुलती है जो आपस में मिल कर एक मध्य अंडवाहिनी बनाती है जिसे योनि भी कहते हैं तथा यह जनन-कक्ष में खुलती है। मादा सहायक ग्रंथि के रूप में एक जोड़ी शाखान्वित समपार्श्विक (collateral) ग्रंथि होती है जो जनन कक्ष के पृष्ठ पर खुलती है। छठे खंड में एक जोड़ी शुक्राणुधानी होती है जो जनन कक्ष में एक छोटे तंतु पर खुलती है (चित्र 18.11)।

मनुष्य से संबंध

तिलचट्टा घरेलू वस्तुओं जैसे कपड़े, जूते, बटुओं आदि को भारी क्षति पहुंचाता है। यह खाद्य-सामग्री को भी नष्ट करता है। इसके द्वारा दूषित भोजन के अंदर एक विशेष प्रकार की दुर्गंध आती है जिससे कि भोजन खाने योग्य नहीं रहता। जब यह गटर की नालियों

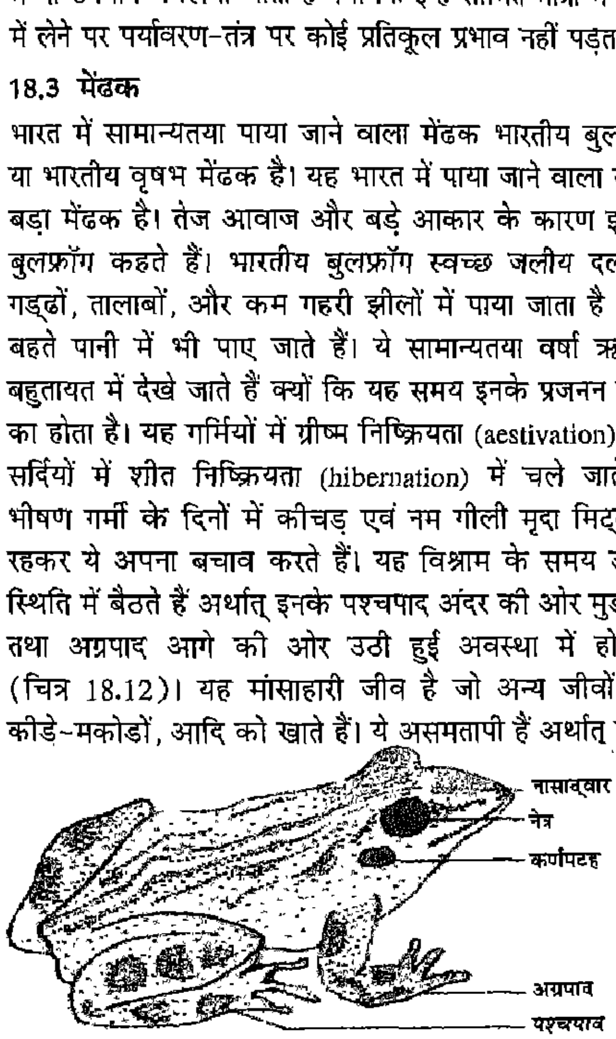


चित्र 18.11 तिलचट्टे के जननांग

तथा सीवर के नालों में पाए जाते हैं तो यह अपने साथ में हैजा, टाइफाइड, क्षयरोग और पेचिश आदि के जीवाणु लिए रहता है। कुछ दक्षिण अमरीकी देशों तथा म्यांमार (बर्मा) आदि देशों में तिलचट्टा खाया भी जाता है। कुछ उभयचर, पक्षी, छिपकलियां और कृन्तक (rodents) आदि इसका भक्षण करते हैं। अत: तिलचट्टा भोजन शृंखला का एक प्रमुख हिस्सा है। इन्हें प्रयोगशाला अभ्यास एवं जीव विज्ञान के शोधकार्य में एक सुरक्षित जंतु के रूप में भी उपयोग में लिया जाता है क्यों कि इन्हें सीमित मात्रा में प्रयोग में लेने पर पर्यावरण-तंत्र पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

18.3 मेंढक

भारत में सामान्यतया पाया जाने वाला मेंढक भारतीय बुलफ्रॉग या भारतीय वृषभ मेंढक है। यह भारत में पाया जाने वाला सबसे बड़ा मेंढक है। तेज आवाज और बड़े आकार के कारण इसको बुलफ्रॉग कहते हैं। भारतीय बुलफ्रॉग स्वच्छ जलीय दलदल, गड्ढों, तालाबों, और कम गहरी झीलों में पाया जाता है। यह बहते पानी में भी पाए जाते हैं। ये सामान्यतया वर्षा ऋतु में बहुतायत में देखे जाते हैं क्यों कि यह समय इनके प्रजनन काल का होता है। यह गर्मियों में ग्रीष्म निष्क्रियता (aestivation) तथा सर्दियों में शीत निष्क्रियता (hibernation) में चले जाते हैं। भीषण गर्मी के दिनों में कीचड़ एवं नम गीली मृदा मिट्टी में रहकर ये अपना बचाव करते हैं। यह विश्राम के समय उकड़ू स्थिति में बैठते हैं अर्थात् इनके पश्चपाद अंदर की ओर मुड़े हुए तथा अग्रपाद आगे की ओर उठी हुई अवस्था में होते हैं (चित्र 18.12)। यह मांसाहारी जीव है जो अन्य जीवों जैसे कीड़े-मकोड़ों, आदि को खाते हैं। ये असमतापी हैं अर्थात् इनके



चित्र 18.12 मेंढक की बाह्य आकारिकी

शरीर का ताप वातावरण के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। यह स्वयं को शत्रुओं से बचाने के लिये अपने चारों तरफ के वातावरण के अनुसार अपने शरीर का रंग बदल लेते हैं। छद्मकरण (camouflage) अर्थात् वातावरण के रंग में घुलमिल जाते हैं और उसमें छिप कर अपना बचाव कर लेते हैं।

मेंढक कशेरुकी संघ, उपसंघ वर्टीब्रेटा या क्रेनिएटा, उच्च वर्ग ग्नेथोस्टोमेटा वर्ग उभयचारी एवं वंश राना (Rana) का जंतु है। इसकी सबसे अधिक मिलने वाली जाति *राना टाइग्रीना (Rana tigrina)* है। सामान्य भारतीय टोड का वैज्ञानिक नाम *बुफो मिलेनोस्टिक्टस (Bufo melanostictus)* है। नर एवं मादा मेंढक में बाह्य भेद पाया जाता है। नर मादा में मुख्यतया भेद वर्षाकाल में दिखाई देता है जिस समय नर के अंगूठे में कामद गद्दे (nuptial pad) का निर्माण होता है। नर में स्वर उत्पन्न करने वाला थैला या स्वरकोष पाया जाता है जिससे ये ऊंची आवाज पैदा करते हैं। मादा में स्वर कोष (vocal sac) विद्यमान नहीं होता है।

बाह्य आकारिकी

मेंढक का शरीर पानी में तैरने के लिए, दलदल, कीचड़ में बिल बनाकर रहने के लिए और जमीन पर कूदने के लिए अनुकूलित है। इसका शरीर रेखित, मुलायम, नम और लसलसी त्वचा का बना हुआ है। त्वचा अधिचर्म और अध:चर्म की बनी होती है। अध:चर्म में श्लेष्मा ग्रंथियां होती हैं जिनकी नलिकाएं सतह पर खुलती हैं। रक्त कोशिकाएं एवं वर्णक कोशिकाएं भी अध:चर्म में उपस्थित होती हैं, परिपक्व जंतु 18-20 cm लंबा और 5-8 cm चौड़ा होता है। पृष्ठ सतह की त्वचा का रंग सामान्यतया हल्का हरा होता है, सिर पर अव्यवस्थित धारियां और धब्बे होते हैं। अधर सतह पर यह पूरी तरह हल्की पीली होती हैं। शरीर सिर एवं धड़, दो भागों में विभक्त होता है एवं ग्रीवा अनुपस्थित होती है। धड़ पर एक जोड़ी अग्र एवं पश्च पाद उपस्थित होते हैं। आंखों के बचाव के लिए सिर पर पृष्ठ पार्श्व सतह पर निमेषक झिल्ली (nictitating membrane) पाई जाती है। आंख के कुछ नीचे सिर के दोनों ओर कर्ण छिद्र या टिंपेनम उपस्थित होता है। जो कि ध्वनि की संवेदनाएं ग्रहण करता है।

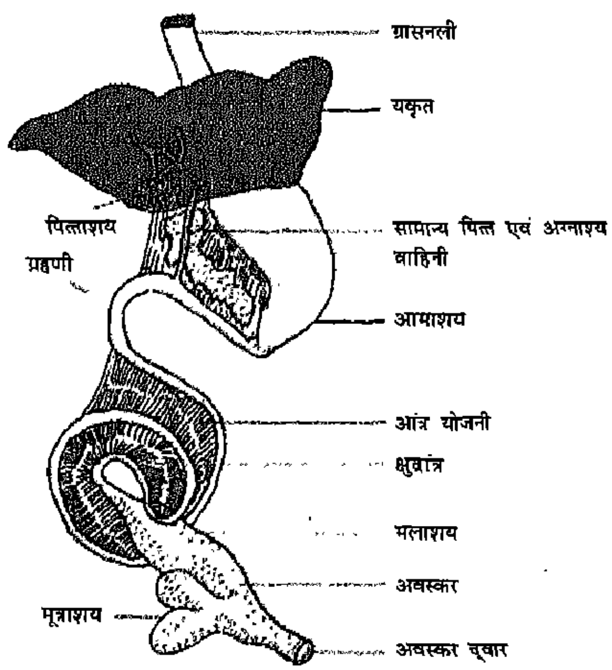
आंतरिक आकारिकी

मेंढक मांसाहारी जंतु है अत: इनकी आहारनाल लंबाई में छोटी होती है, मुख चौड़ा अंतस्थ छिद्र के रूप में होता है। यह मुख ग्रसनी में खुलता है। इस गुहा में ऊपरी जबड़े के किनारे पर कई मेक्सीलरी दांत पाए जाते हैं तथा मुख-ग्रसनी गुहिका (bucco-pharyngeal cavity) की छत पर वोमेराइन दंत पाए जाते हैं। निचला जबड़ा दंत विहीन होता है। नर में नलिका का छिद्र, स्वर कोष (vocal sac) और घांटी (glottis) मुख-ग्रसनी में आसानी से देखे जा सकते हैं। मांसल जीभ सिरे पर द्विपालित तथा पीछे से स्वतंत्र होती है। यह शिकार को पकड़ने के काम आती है (चित्र 18.13)।



चित्र 18.13 मेंढक द्वारा अपने शिकार को पकड़ना (क) जिव्हा का अग्रगामी प्रयास (ख) पश्चगामी प्रहार और शिकार को अंतर्ग्रहण करने के लिए अंदर की ओर मुड़ना

गलेट (Gullet), एक छोटी और संकरी नलिका द्वारा ग्रसिका में खुलता है जो आगे चल कर बड़े और चौड़े थैलेनुमा आमाशय में खुलती है। इसमें मोटी परत होती है जो कि भोजन को काइम में परिवर्तित करने में मदद करती है। यह पाचक रस स्रावित करता है जिसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और प्रोटियोलिटिक एंजाइम होते हैं। आमाशय के पीछे कुंडलित छोटी आंत्र होती है। आंत्र की भित्ति पर कई अंगुली समान वलय होते हैं जिन्हें अंकुर और सूक्ष्मांकुर कहते हैं। यह इसकी गुहा में लटके रहते हैं। ये वलय पचे हुए भोजन के लिए अवशोषण हेतु सतह में वृद्धि करते हैं। छोटी आंत्र का प्रथम भाग जो आमाशय के समानांतर होता है **ग्रहणी** कहलाता है। आंत्र चौड़े मलाशय में खुलती है जो कि अवस्कर में खुलता है। मूत्राशय मूत्रनलिका द्वारा मलाशय में खुलता है (चित्र 18.14)।



चित्र 18.14 मेंढक की आहारनाल एवं पाचक ग्रंथियां

आमाशय और आंत्र की भित्ति पर पाई जाने वाली जठर ग्रंथियों के अलावा दो मुख्य पाचक ग्रथियां, यकृत और अग्नाशय भी पाए जाते हैं। यकृत पित्त का स्रवण करता है जो कि अस्थाई रूप से पित्ताशय में ग्रहणी में छोड़े जाने से पूर्व एकत्रित होता है। पित्त भोजन के पाचन में इसका माध्यम, अम्लीय से क्षारीय में बदलने में मदद करता है और वसा का पायसीकरण कर देता है। यकृत कोई भी पाचक एंजाइम स्रावित नहीं करता है। अग्नाशय एक लंबी अनियमित आकार की नलिका होती है जो आमाशय और ग्रहणी के बीच की आंत्रयोजिनी द्वारा लगी होती है। यह अग्नाशय रस स्रावित करता है जिसमें ट्रिप्सिन, एमाइलोप्सिन इत्यादि जैसे पाचक एंजाइम होते हैं।

मेंढक जल और थल दोनों स्थानों पर श्वसन कर सकते हैं। इसकी त्वचा एक श्वसनांग का कार्य करती है। विसरण द्वारा गैसों का विनिमय होता है। मुख ग्रसनी गुहा की भित्ति पर भी त्वचा की तरह बहुत-सी रक्त वाहिकाएं पाई जाती हैं। नासाछिद्रों द्वारा अंदर खींची गई हवा विसरण द्वारा गैसों के विनिमय में काम आती है। मुख गुहा और फेफड़े वायवीय श्वसन अंगों का कार्य करते हैं। फेफड़ों के द्वारा श्वसन फुप्फसीय श्वसन कहलाता है। फेफड़े एक जोड़ी लंबे अंडाकार गुलाबी रंग की थैलेनुमा संरचनाएं होती हैं जो देहगुहा के (ऊपरी) वक्षीय भाग में पाई जाती हैं। ग्रीष्म निष्क्रियता एवं शीत निष्क्रियता के दौरान ये त्वचा से श्वसन करते हैं।

मेंढक का संचरण तंत्र, रुधिर परिसंचरण तंत्र और लसीकातंत्र का बना होता है। यह बंद प्रकार का होता है इसमें अकेला परिसंचरण पाया जाता है। अर्थात् ऑक्सीजनित अथवा विऑक्सीजनित रक्त हृदय में मिश्रित हो जाते हैं। रुधिर परिसंचरण तंत्र हृदय, रक्त वाहिकाओं और रुधिर से मिलकर बनता है। लसीका तंत्र, लसीका, लसीका नलिकाएं और लसीका ग्रंथियों का बना होता है। ये दोनों तंत्र एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। क्योंकि लसीका नलिकाएं बड़ी शिराओं में खुलती हैं। **हृदय** एक त्रिकोष्ठीय मांसल संरचना है जो कि देहगुहा के अग्रभाग में स्थित होता है। यह एक पतली पारदर्शी झिल्ली हृदय आवरण द्वारा ढका रहता है। इसमें दो ऊपरी कोष्ठ (आलिंद) होते हैं जो अलग-अलग निचले एक कोष्ठ निलय में खुलते हैं। हृदय की अधर सतह पर दाएं आलिंद के ऊपर एक थैलेनुमा रचना धमनी शंकु उपस्थित होता है। पृष्ठ सतह पर एक तिकोनी संरचना शिरा कोटर उपस्थित होता है जिसमें तीनों मुख्य वेनाकेवा या महाशिरा (दाहिनी अग्र, बाई अग्र और पश्च) खुलती हैं। धमनियों और शिराओं का एक व्यवस्थित जाल, धमनी तंत्र और शिरातंत्र का निर्माण करता है। मेंढक में दो अतिविकसित निवाहिका **तंत्र** (portal system) भी होते हैं: यकृती निवाहिका और वृक्कीय निवाहिका तंत्र। इन तंत्रों में संबंधित शिराएं आंत्र से प्रारंभ होकर अपने संबंधित अंगों तक जाकर छोटी-छोटी केशिकाओं में बंट जाती हैं – जैसे वृक्क में वृक्कीय निवाहिका तंत्र एवं यकृत में यकृतीय निवाहिका तंत्र। रुधिर में तीन प्रकार की **रुधिर कणिकाएं** पाई जाती हैं। लाल रक्त कणिकाएं (erythrocyte), श्वेत रक्त कणिकाएं (leucocyte) और थ्रोंबोसाइट (thrombcyte)। लाल रक्त कणिकाओं में लाल रंग का श्वसन रंजक **हीमोग्लोबिन** (haemoglobin) पाया जाता है। इन कणिकाओं में केंद्रक पाया जाता है। रुधिर कोशिकाओं से छनकर आया हुआ द्रव **लसीका** होता है। यह रुधिर से भिन्न होता है क्योंकि इसमें कुछ प्रोटीन और लाल रक्त कणिकाएं अनुपस्थित होती हैं।

तंत्रिका तंत्र, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्क और मेरुरज्जु), परिधीय तंत्रिका तंत्र (कपाल तंत्रिकाएं और मेरुतंत्रिकाएं) और स्वायत्त तंत्रिका तंत्र अनुकंपी और परानुकंपी गुच्छिका शृंखला का बना होता है। इसमें 10 जोड़ी कपाल तंत्रिकाएं पाई जाती हैं। मस्तिष्क एक हड्डियों से निर्मित मस्तिष्क बाक्स अथवा कपाल (cranium) के अंदर बंद रहता है। जिस पर दो अनुकपाल *अस्थिकंद (occipital condyles)* प्रथम कशेरुक एटलस से जुड़ने के लिए होते हैं। यह अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क और पश्च मस्तिष्क में विभाजित होता है। अग्र मस्तिष्क में घ्राण पालियां, जुड़वां प्रमस्तिष्क गोलार्ध और केवल एक अग्र मस्तिष्क पश्च (diencephalon) होते हैं। मध्य मस्तिष्क एक जोड़ा दृक पालियों का बना होता है। पश्च मस्तिष्क अनुमस्तिष्क एवं मेडुला ऑब्लांगेटा का बना होता है। मेडुला ऑब्लांगेटा फोरामेन मेगनम से निकल कर मेरूदंड में स्थित मेरुरज्जु से जुड़ा रहता है।

मेंढक में पांच प्रकार के **संवेदी अंग** पाए जाते हैं। जैसे छूने वाले *अंग* (संवेदी पैपिली), स्वाद *अंग* (स्वाद कलिकाएं), गंध (नासिका बाह्यचर्म), दृष्टि (नेत्र) और श्रवण (कर्णपटह और आंतरिक कर्ण)। इन सब में आंखें और आंतरिक कर्ण सुविकसित होते हैं और बचे हुए दूसरे संवेदी अंग केवल तंत्रिका सिरों पर कोशिकाओं के गुच्छे होते हैं।

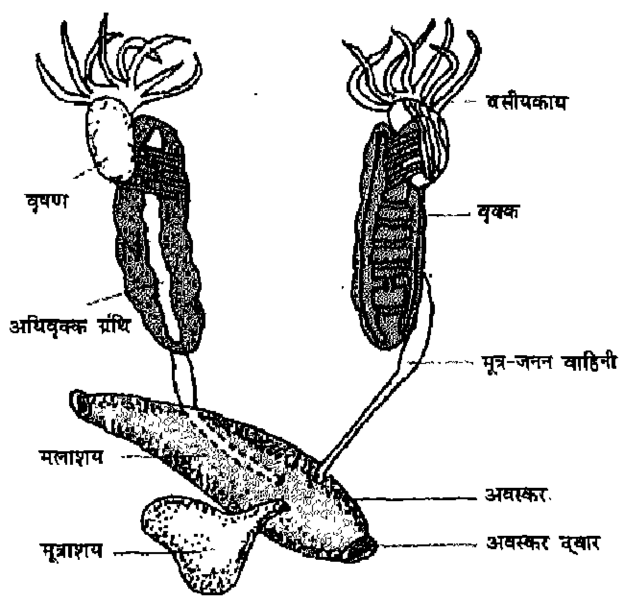
मेंढक में एक जोड़ी गोलाकर **नेत्र** गड्ढों में स्थित होती हैं। ये साधारण नेत्र होते हैं (एक इकाई के बने होते हैं) नेत्र की भित्ति तीन स्तरों स्क्लेराइड, कोरोइड और रेटिना की बनी होती है। स्वच्छमंडल (cornea) पारदर्शी होता है।

मेंढक में **बाह्यकर्ण** अनुपस्थित होता है केवल कर्णपटह (tympanum) बाहर से दिखाई देता है। **मध्यकर्ण** कर्णपटह गुहा कहलाती है एवं हवा से भरी रहती है। यह कंपनों को आंतरिक कर्ण या झिल्लीदार लेबरिंथ तक पहुंचाता है। यह द्रव से भरी हुई ओटिक या **श्रवण संपुटिका** में पाया जाता है। इसमें दो थैलेनुमा रचनाएं (utriculus) और सेकुलस (sacculus) और तीन अर्द्धचंद्रकार नलिकाएं होती हैं। कर्ण सुनने के साथ-साथ शरीर का संतुलन बनाने में भी मदद करता है।

मेंढक में एक जोड़ी वृक्क मुख्य उत्सर्जी अंग है। ये गहरे लाल रंग के सेम के आकार के होते हैं और देहगुहा में थोड़ा-सा पीछे की ओर कशेरुक दंड के दोनों ओर स्थित होते हैं। मेंढक यूरिया उत्सर्जित करता है अतः यूरिया-उत्सर्जी (ureotelic) जंतु है। यूरिया का निर्माण यकृत में आर्निथीन चक्र द्वारा किया जाता है। यह रक्त के साथ वृक्क में जाता है जहां इसे पृथक कर उत्सर्जित कर दिया जाता है। प्रत्येक वृक्क कई संरचनात्मक और क्रियात्मक इकाइयों, वृक्काणुओं (uriniferous tubules or nephrons) का बना होता है। नर में मूत्रनलिका वृक्क से मूत्र जनन नलिका के रूप में बाहर आती है। मूत्रवाहिनी अवस्कर में खुलती है। एक पतली दीवार वाला मूत्राशय भी मलाशय के अधर भाग पर स्थित होता है। जो कि अवस्कर में खुलता है।

विभिन्न अंगों में आपसी समन्वयन कुछ रसायनों द्वारा होता है जिन्हें हार्मोन कहते हैं। ये *अंतःस्रावी ग्रंथियों द्वारा स्रावित* होते हैं। मेंढक की मुख्य अंतःस्रावी ग्रंथियां हैं: पिट्यूटरी, थाइराइड, पैराथाइराइड, थाइमस, पीनियल काय, अग्नाशयी द्वीप (pancreatic islets), अधिवृक्क (adrenal) और जननांग।

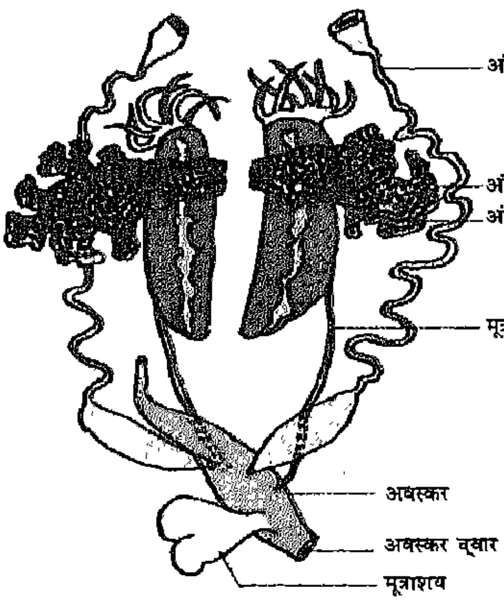
नर जननांग एक जोड़ी पीले अंडाकार वृषण वृक्क के ऊपरी भाग पर पेरिटोनियम (peritonium) के दोहरी वलन मीजोर्कियम नामक झिल्ली द्वारा चिपका रहता है। वृषण कई क्रियात्मक और संरचनात्मक इकाइयों, शुक्रजनन नलिकाओं का बना होता है, जिनमें शुक्राणु, शुक्रजनन द्वारा उत्पन्न होते हैं। शुक्रअपवाहिकाएं संख्या में 10-12 होती हैं। वृषण से निकलने के बाद वृषणधर से होते हुए अपनी ओर के वृक्क में धंस जाती हैं। वृक्क में ये **बिडर नाल** (Bidder's canal) में खुलती हैं। जो अंत में मूत्रवाहिनी में खुलती है। अब मूत्रवाहिनी मूत्र-जनन वाहिनी कहलाती है जो वृक्क से बाहर आकर *अवस्कर* (cloaca) में खुलती है। अवस्कर एक छोटा मध्यकक्ष होता है जो कि



चित्र 18.15 मेंढक के नर जननांग

उत्सर्जित पदार्थ, मूत्र तथा शुक्राणुओं को बाहर भेजने का कार्य करता है (चित्र 18.15)।

मादा में वृक्क के पास एक जोड़ी अंडाशय उपस्थित होते हैं। लेकिन इनका वृक्क से कोई क्रियात्मक संबंध नहीं होता है। एक जोड़ी अंडवाहिनियां अवस्कर में अलग-अलग खुलती हैं।



चित्र 18.16 मेंढक के मादा जननांग

यह अंडाणु जनन की क्रिया द्वारा अंडे उत्पन्न करती है। एक परिपक्व मादा एक बार में 2,500 से 3,000 अंडे दे सकती है (चित्र 18.16)। इनमें बाह्य निषेचन होता है। परिवर्धन अपरोक्ष होता है जो बैंगची (tadpole) लार्वा के माध्यम से होता है।

मनुष्य से संबंध

मेंढक मनुष्य के लिए एक लाभदायक जंतु है। यह कीट पतंगों को खाता है और इस तरह फसलों की रक्षा करता है। इससे कीटनाशकों का व्यय बचता है। यह अध्यापन और शोधकार्यों में प्रायोगिक जंतु के रूप में भी काम में लिया जाता है। आवासीय ह्रास तथा विच्छेदनों (dissections) में इस जंतु का अत्यधिक उपयोग करने से इस जाति का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। अत: मेंढकों का प्रयोग जहां तक हो सके प्रायोगिक अभ्यासों हेतु बंद कर देना चाहिए। भारत और कई दूसरे देशों में मेंढक की मांसल टांगें भोजन के रूप में काम में ली जाती हैं। अत: इन्हें बहुत बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है। लेकिन आजकल इस पर कानूनी रोक लगी हुई है। मंडूकक (मेंढकों के छोटे बच्चे) मछली पकड़ते समय चारे अथवा मत्स्य प्रलोभक (fish bait) के रूप में प्रयोग होते हैं। मेंढक वातावरण संतुलन बनाए रखते हैं क्योंकि यह पारिस्थितिक-तंत्र में एक महत्त्वपूर्ण भोजन कड़ी है। कीटनाशकों और दूसरे कृषि रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से यह जंतु बहुत तेजी से विलोपन के कगार पर पहुंच गया है और इस तरह जैवविविधता में कमी आई है। इन सबसे वातावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही है।

18.4 चूहा

चूहे खेतों में छेदों एवं बिलों में रहते हैं। ये अपना बिल स्वयं बनाते हैं। ये भंडारित अनाज खाते हैं। यह प्रकृति से रात्रिचर हैं लेकिन मनुष्य के साथ रहते हुए यह दिन के समय भी सक्रिय रहते हैं। चूहा संघ कशेरुकी व उपसंघ वर्टीब्रेटा (Craniata) का जंतु है तथा यह उच्चवर्ग ग्नेथोस्टोमेटा, वर्ग मेमेलिया में रखा जाता है। चूहे का वंश रैटस (Rattus) है। *रेटस* वंश की लगभग 137 जातियां पाई जाती हैं। जिनमें से अधिकतर पाई जाने वाली जातियां *रैटस रैटस* (R. rattus, काला चूहा) और *रैटस नोरवेजिकस* (R. norvegicus) सामान्य भूरा चूहा है।

बाह्य आकारिकी

वयस्क चूहा नासाछिद्र से पूंछ तक लगभग 20 cm लंबा होता है। इसका शरीर लंबा होता है जो, नाक, होठ, हथेली और तलवों को छोड़कर बालों से ढका रहता है, जो भूरे काले रंग के होते हैं। चूहे का शरीर तर्कुनुमा (fusiform) होता है जो एक तरफ से पतले होते हुए सिर, ग्रीवा एक छोटा धड़ और एक लंबी पूंछ का बना होता है। पूंछ अवशेषी शल्कों (vestigial scales) और थोड़े से अवशिष्ट बालों से ढकी रहती है। यह एक संतुलन अंग का कार्य करती है। सिर पिछले भाग से चौड़ा और अग्र भाग की ओर नुकीला होता हुआ थूथन (snout) पर समाप्त होता है। मुख के ऊपर एक जोड़ी नासा-छिद्र (nostrils) होते हैं जो कि नासिका मार्ग में खुलते हैं। ऊपरी होठ बीच में एक लंबवत दरार द्वारा कटा रहता है। एक जोड़ी बड़े नेत्र सिर के पार्श्व में स्थित होते हैं। एक गतिशील ऊपरी पलक और एक स्थिर निचली पलक आंखों की रक्षा करती है, जिनके किनारों पर बाल होते हैं। निमेषक झिल्ली (nictitating membrane) बहुत छोटी होती है। सिर पर एक जोड़ी बाह्य कर्ण होते हैं जो पश्च पार्श्व में स्थित होते हैं। मुख अग्र सिरे के समीप नासाछिद्रों के नीचे स्थित होता है। यह ऊपरी व नीचे के होठों से रक्षित होता है। इनमें खरगोश के होठों की तरह दो नुकीले कृंतक (incisor) बाहर से दिखाई देते हैं। मुख उपशिरस्त होता है। दांत विषमदंती एवं गर्तदंती (thecodont) होते हैं। इनकी जड़ें जबड़ा-अस्थियों की गर्तिकाओं या मसूड़ों में गड़ी रहती हैं। प्रत्येक जबड़े में दो कृंतक और छ: मोलर दंत होते हैं। कृंतक दांत पूरे जीवन वृद्धि करते रहते और काटने वाले दांतों का कार्य करते हैं। काटने वाले दांतों पर पर्पटी की अनुपस्थिति की वजह से इनकी सतह नुकीली और तीखी रहती है। **केनाइन** और **प्रीमोलर** दांत अनुपस्थित होते हैं। कुछ भागों में बालों जैसी रचनाएं पाई जाती हैं। जो कि विशिष्ट टेक्टाइल रोम, पिली टेक्टाइल्स या दृढ़रोम कहलाती हैं (चित्र 18.17)। यह नासाछिद्र के दोनों ओर देखे जा सकते हैं।

धड़ पर दो अग्रपाद और दो पश्च पाद होते हैं। अग्रपाद पश्चपाद से छोटे होते हैं। प्रत्येक पाद एक निकटस्थ खंड स्टाइलोपोडियम एवं बीच का ज्युगोपोडियम और एक दूरस्थ आटोपोडियम खंड का बना होता है। प्रत्येक पाद के आटोपोडियम

में पांच अंगुलियां होती हैं। प्रथम अंगुली अंगूठा या पोलेक्स होती है जो अग्रपाद में काफी छोटी होती है और उसमें दूसरी अंगुलियों के गोल नाखून की जगह एक चपटा नाखून होता है। नाखून किरेटीन की बनी संरचना होती है जो प्रत्येक अंगुली के दूरस्थ फेलेंक्स की सतह पर पाया जाता है। हथेली में विशिष्ट चलनपट्टियां पाई जाती हैं। अग्रपाद में पांच शीर्षगद्दियां तीन अंतरांगुलि गद्दियां और दो आधारी गद्दियां पाई जाती हैं।

गुदा पश्च सिरे पर पूंछ के आधार के नीचे स्थित होती है। मादा में मूत्र एवं जनन छिद्र गुदा के नीचे होते हैं तथा योनि में अलग-अलग खुलते हैं। नर में मूत्र व जनन छिद्र साथ-साथ मूत्र वाहिनी द्वारा मांसल शिश्न पर खुलते है। मादा में छः जोड़े चूचुक धड़ की अधर सतह पर पाए जाते हैं। नर में दो वृषण, वृषण कोष में पाए जाते हैं (चित्र 18.17)।



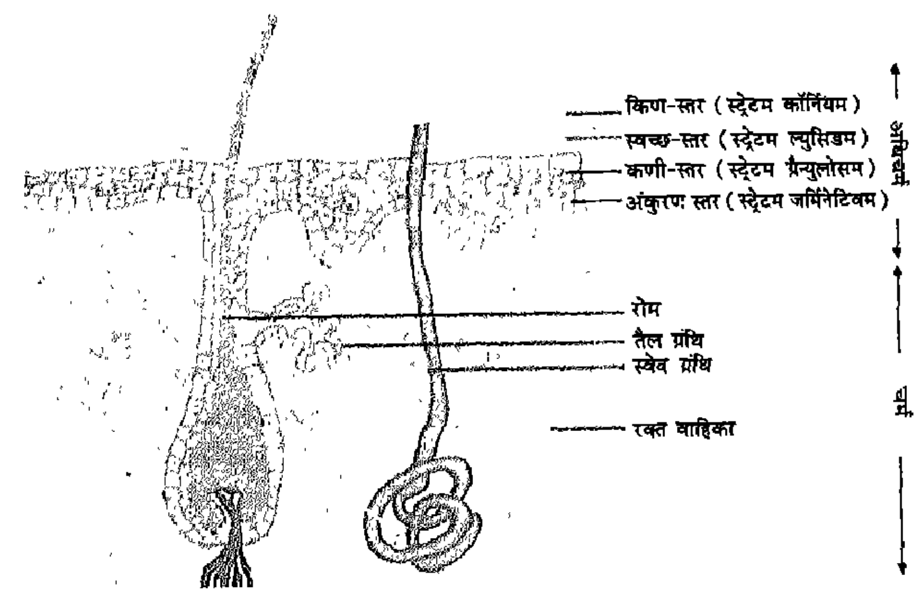
चित्र 18.17 चूहे की बाह्य आकारिकी

आंतरिक संरचना

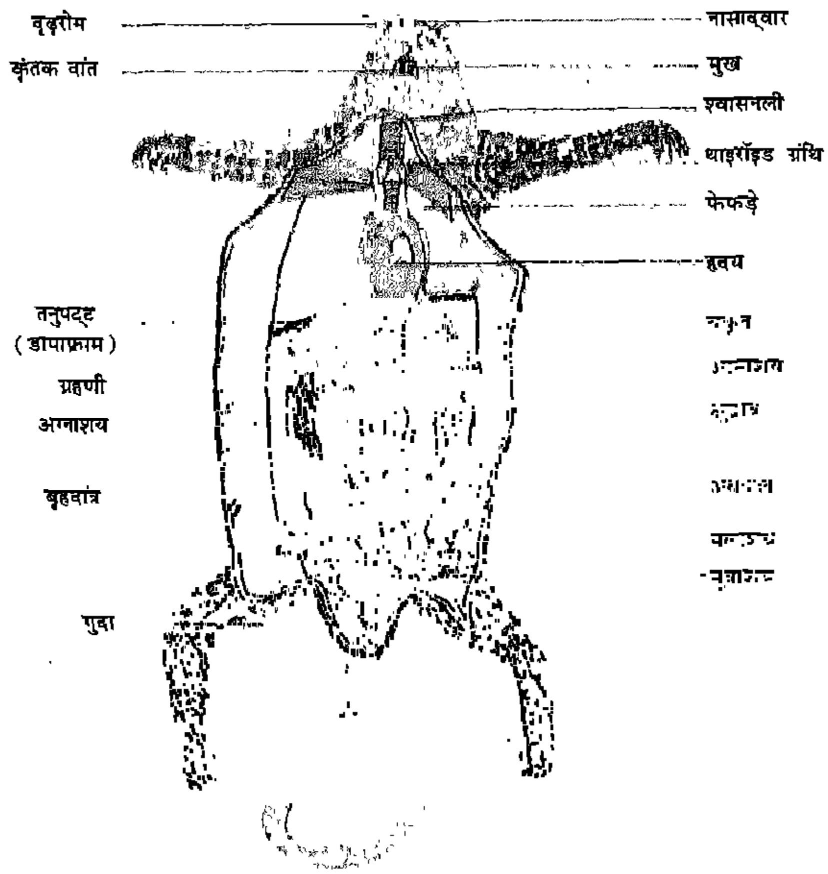
त्वचा अधिचर्म और अधःचर्म और उनसे उत्पन्न संरचनाओं की बनी होती है। जिसमें अधिचर्म और चर्म बहुस्तरीय होते हैं। अधिचर्म की सबसे निचली परत विभाजनशील होती है जिसे **अंकुरण स्तर** (stratum germinativum) कहते हैं तथा सबसे बाहर की परत को **स्ट्रेटम कार्नियम** कहते हैं। अधःचर्म में रक्त वाहिकाएं उपस्थित होती हैं। त्वचा में रोम और ग्रंथियां भी पाई जाती हैं। स्वेद ग्रंथियां, तैल ग्रंथियां, स्तन ग्रंथियां और मोम ग्रंथियां मुख्य त्वचीय ग्रंथियां हैं (चित्र 18.18)।

मुख, मुखगुहा में खुलता है जो वेस्टीब्यूल द्वारा घिरी होती है, यह होठो, गालों और दांतों के बीच का स्थान है। ग्रसनी भोजन और हवा जाने का सामान्य मार्ग है। ग्रसिका एक छोटी नलिका है जो वायुनलिका के पृष्ठ सतह पर होती है और अग्नाशय में खुलती है। आमाशय छोटी आंत में खुलता है तथा छोटी आंत तीन भागों ड्यूओडिनम, जेजुनम और इलियम में विभाजित होती है। क्षुद्रांत बृहदांत्र में खुलती है। बृहदांत्र मलाशय में जाता है। जो मल द्वार द्वारा बाहर की ओर खुलता है (चित्र 18.19)।

मुखगुहा में चार जोड़ी लार ग्रंथियां पाई जाती हैं– ये हैं पेरोटिड, मेंडीबुलर सबलिंगुवल व इंफ्राऑरबिटल ग्रंथि। ये लार स्रावित करती हैं। लार में टाइलिन नामक एंजाइम मिलता है जो भोजन के स्टार्च के पाचन में सहायक होता है। यकृत सबसे बड़ी पाचक ग्रंथि है और डायफ्राम के नीचे स्थित होती है। यकृत में चार पालियां होती हैं और उनकी कोशिकाएं पित्त स्रावित करती हैं और पाचन में मदद करती हैं। चूहें में पित्ताशय अनुपस्थित होता है। अग्नाशय कई छोटी-छोटी पालियों का बना होता है और ग्रहणी (duodenum) के बीच में स्थित होता है और अग्नाशय रस स्रावित करता है जिसमें कई एंजाइम जैसे ट्रिपसिनोजन, एमाइलॉप्सिन और लाइपेस होते हैं।



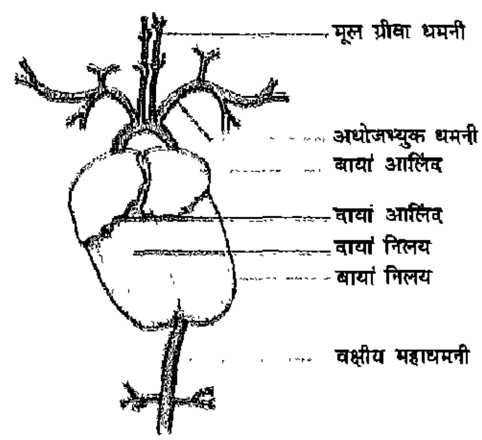
चित्र 18.18 चूहे की त्वचा की उदग्र काट



चित्र 18.19 चूहे के आंतरिक अंग

चूहे में दोहरा और बंद प्रकार का परिसंचरण पाया जाता है। दोहरे परिसंचरण का अर्थ है कि बाएं कोष्ठकों में ऑक्सीकृत रुधिर दाएं कोष्ठक में उपस्थित शिरीय रुधिर से अलग होता है। हृदय में एकत्रित रुधिर शरीर के विभिन्न अंगों को वितरित होने से पहले इससे दो बार गुजरता हैं। रुधिर का आयतन लगभग 5–7 ml प्रति 100 ग्राम शारीरिक भार के बराबर होता है। चूहे के रक्त में प्लाज्मा (Plasma) और तीन तरह की कणिकाएं, लाल रक्त कणिकाएं, (RBC) जिनकी मात्रा 6–7 लाख प्रति घन माइक्रोलिटर, श्वेत रक्त कणिकाएं (WBC) जिनकी मात्रा 6–10 हजार घन माइक्रोलिटर और पट्टिकाणु (platelets) होती हैं। लाल रक्त कणिकाएं परिपक्व होने पर केंद्रक विहीन होती हैं। लाल रक्त कणिकाओं में एक श्वसन रंजक हीमोग्लोबिन उपस्थित होता है। श्वेत रक्त कणिकाएं शरीर को रोगों से लड़ने की शक्ति या रोग प्रतिरोधी क्षमता प्रदान करती हैं। टॉसिल्स जो कि सामान्तया लसीका नोड होते हैं और कई स्तनधारियों में पाए जाते हैं, चूहे में अनुपस्थित होते हैं।

हृदय, वक्षीय गुहा की मध्यरेखा पर तिरछा स्थित होता है। यह हृदयावरण (pericardium) से ढका रहता है। हृदय चार कोष्ठीय होता है, दो आलिंद और दो निलय (चित्र 18.20)। रक्त के एक दिशा में बहाव के लिए कपाट या वाल्व पाए जाते



चित्र 18.20 चूहे के हृदय का बाह्य दृश्य

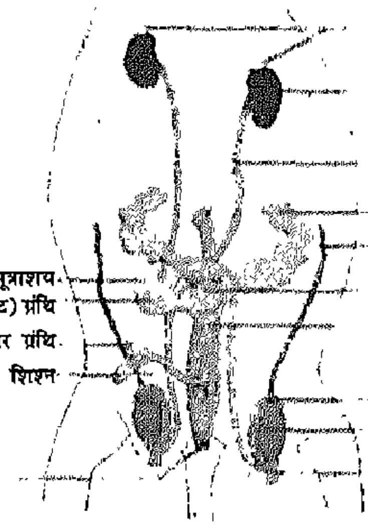
हैं। ये हैं **एओर्टीक** और **पल्मोनरी** वाल्व, जिनमें प्रत्येक में तीन पर्णक (leaflets) होते हैं। अन्य हैं मिट्रल और ट्राइकस्पिड कपाट जिनमें दो बड़े और छोटे सहायक पर्णक होते हैं। दाई हृद् धमनियां दाएं और बाएं आलिंद को जबकि बाई हृद् धमनियां केवल बाएं आलिंद के छोटे भाग को रक्त प्रदान करती हैं। चूहे में दूसरे स्तनधारियों की तरह विकसित धमनी तंत्र और शिरीय तंत्र पाया जाता है। चूहे में सिर्फ बायां एऑर्टिक एवं दो

अग्रमहाशिरा पाई जाती हैं। दायां अग्रमहाशिरा सीधा दाएं एट्रियम (atrium) में खाली हो जाता है। बायां अग्रमहाशिरा दाएं एट्रियम में जाने के लिए पश्च महाशिरा से जुड़ने के पहले यह *एजाइगस शिरा* से जुड़ जाता है। *यकृत* निवाहिका तंत्र उपस्थित होता है जिसमें आहारनाल में रक्त एकत्रित करने वाली शिराएं आती हैं और कई छोटी-छोटी कोशिकाओं में बंटने के पश्चात् यकृत को रक्त प्रदान करती हैं। वृक्क निवाहिका तंत्र अनुपस्थित होता है।

चूहे के श्वसन तंत्र का ऊपर का भाग दूसरे स्तनधारी के समान होता है। नासाछिद्र हवा की नलिका में खुलता है जिसे **श्वासनली** (trachea) कहते हैं। *श्वासनली ग्रसिका से आरंभ* होकर चलती हुई दो मुख शाखाओं में बंट जाती है जिन्हें प्राथमिक श्वासनियां भी कहते हैं। इनमें से प्रत्येक फेफड़ों की पालियों में जाती है। नवजात चूहे में फेफड़े अपरिपक्व होते हैं, उनमें कोई भी वायुकोष और कोष्ठिका वाहिनियां नहीं पाई जाती हैं। इनमें गैसों का विनिमय पतली एवं मुलायम दीवारों वाली प्रणालों अथवा कोषकों में होता है जोकि बाद में *कोष्ठिका वाहनियों और कूपिकाओं (alveolar sac)* में परिवर्तित हो जाती है। जन्म के समय श्वसनिकाएं उपस्थित नहीं होती हैं। ये दसवें दिन के बाद दिखाई देती हैं। फेफड़े वक्षीय गुहा में उपस्थित होते हैं और विसरल प्ल्यूरा द्वारा लटके रहते हैं। दाएं फेफड़े में तीन पालियां (पिंड) और बाएं में केवल एक पाली होती है।

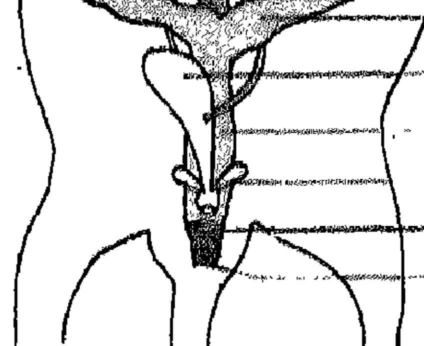
मूत्र तंत्र एक जोड़ी वृक्क, यूरेटर एवं मूत्राशय का बना होता है। *दायां वृक्क थोड़ा-सा ऊपर स्थित होता है।* वृक कई सूक्ष्म 'मूत्रधर' नलिकाओं (uriniferous tubules) का बना होता है। जिन्हें नेफ्रोन भी कहते हैं। प्रत्येक नेफ्रोन बोमेन संपुट, अग्र कुंडलित नलिका और हेनले लूप का बना होता है। बोमेन संपुट मूत्र के छानने में मदद करता है। वृक्क से मूत्र, मूत्रनलिकाओं से गुजरता हुआ मूत्राशय में संचयित हो जाता है और अंत में मूत्रमार्ग में चला जाता है। नर चूहों में मूत्रमार्ग सामान्यतः मूत्रजनन नलिका और मादा में मूत्र मार्ग और जनन मार्ग अलग-अलग होते हैं और अलग-अलग छिद्रों द्वारा बाहर खुलते हैं।

चूहे के नर जननांग एक जोड़ी वृषण, अधिवृषण या एपीडिडाइमस (epididymis) शुक्रवाहिनियां, मूत्रमार्ग, शिश्न और वृषण रज्जु होते हैं। नर जननांगों में पांच सहायक जनन ग्रंथियां भी जुड़ी होती हैं। ये ग्रंथियां हैं-एंपुलरी ग्रंथि, वेसीकुलर, प्रोस्टेट (prostate), प्रिप्यूटियल (preputial) और काउपर ग्रंथियां (Cowper's glands)। नर में जन्म के 30 से 40वें दिन के बीच वृषण, वृषण कोष में उतर जाते हैं। चूहे में वृषणनाल जीवन पर्यंत खुली रहती है। शिश्न में उसकी अधरीय भित्ति पर एक उपास्थि या अस्थि की बनी संरचना होती है जिसे शिश्नास्थि (os penis) कहते हैं (चित्र 18.21)। शुक्राणु, शुक्राणुजनन द्वारा शुक्रजनन नलिकाओं में उत्पन्न होते हैं। इनमें मुड़ा हुआ नुकीला सिर, लंबी पूंछ सहित पाया जाता है।



चित्र 18.21 चूहे के नर जननांग

मादा जननांगों में एक जोड़ी अंडाशय, फेलोपियन नलिकाएं, गर्भाशय एक योनि एवं एक भगशेफ (clitoris) के बने होते हैं। इसमें तीन सहायक जनन ग्रंथियां भी होती हैं। जिनके नाम गर्भाशयी और वेस्टीब्यूलर, बार्थोलिन और प्रिप्युटियल ग्रंथियां हैं। गर्भाशय के ऊपर वाले दोनों अंग योनि के पास जुड़ जाते हैं (चित्र 18.22)।



चित्र 18.22 चूहे के मादा जननांग

निषेचन आंतरिक होता है और अंडवाहिनी के सबसे ऊपरी फूले हुए भाग में पाया जाता है। आगे का भ्रूणीय परिवर्धन गर्भाशय में होता है। अपरा **(प्लेसेन्टा)** परिवर्धनशील भ्रूण और माता की गर्भाशयभित्ति के मध्य कार्यिक संबंध स्थापित करता है। यह एक बार में 6–8 बच्चे पैदा करते हैं। नवजात पूर्णतः रोम-विहीन होते हैं। आंखे बंद और कर्ण नलिकाएं उपस्थित होती हैं । मादा बच्चों की पूरी तरह देखभाल करती है । गर्भावधि 22–23 दिन की होती है।

तंत्रिका-तंत्र एक केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (central nervous system; CNS) जो एक मस्तिष्क और एक मेरुरज्जु का बना होता है, परिधीय तंत्रिका-तंत्र जो 12 जोड़े कपाल तंत्रिकाओं (मस्तिष्क से उत्पन्न) और 33 जोड़े मेरु-तंत्रिका (मेरुरज्जु से उत्पन्न) होती हैं। मस्तिष्क कपाल अथवा मस्तिष्क बाक्स में स्थित होता है जो एटलस कशेरुक से दो अनुकपाल अस्थिकंद (occipital condyle) से जुड़ा होता है । तीसरा मुख्य प्रकार का तंत्रिका तंत्र स्वायत्त तंत्रिका तंत्र होता है जो कि अनुकंपी और परानुकंपी गुच्छिकाओं का बना होता है । मस्तिष्क दो बड़े गोलार्धों का बना होता है जो बीच में गहरी दरार द्वारा विभक्त रहते हैं। अग्रलपटीय पिंड पश्च टेंपोरल पिंड से आसानी से अलग नहीं पहचाने जा सकते हैं। हिंपोकेंम्पल पिंड से दो गंध पिंड जुड़े रहते हैं । कुंडलित सेरीबेलम मस्तिष्क के पश्चभाग का अधिकांश भाग घेरता है। प्रमस्तिष्क गोलार्ध मस्तिष्क का अधिकांश भाग बनाते हैं। मस्तिष्क के पश्च भाग में (मेड्युला ऑबलान्गेटा) पाया जाता है । जो पीछे संकरा होकर मेरुरज्जु के भीतर बढ़ा रहता है। मेरुरज्जू लंबी नलिकाकार मोटी भित्ति की संरचना है जो कशेरुक दंड की तंत्रिकीय नाल में स्थित होती है।

इसके आंख का कार्निया एक पारदर्शी परत है जो **आइरिस सिलियरीकाय** से बनता है। दूसरे भाग **प्यूपिल** पारदर्शी द्विउत्तल गोलाकार लेंस हैं जो नेत्रगोलक की गुहा को जलीय और काचाभ (vitreous) काय के रूप में से अलग करता है। पीछे की रंगीन परत दृष्टिपटलक कहलाती है। जो प्रकाश को ग्रहण करके आप्टिक तंत्रिका को स्थानांतरित कर देती है । चूहे की दृष्टि काकरोच से भिन्न होती है क्योंकि चूहे के रेटिना पर एक छाया-चित्र बनता है जबकि तिलचट्टे की संयुक्त आंख में कई छाया-चित्र बनते हैं।

कर्ण या कान तीन भागों में बंटा होता है। सबसे बाहरी बाह्य कर्ण (pinna) बीच का मध्यकर्ण तीन छोटी हड्डियों सहित जो कर्ण-अस्थियां कहलाती हैं, का बना होता है । तीसरा और सबसे अंदर का भाग अंतःकर्ण जो सुनने की क्षमता और संतुलन बनाए रखता है। अंतःकर्ण में अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएं होती हैं जो संवेदी उपकला कोशिकाओं से आस्तरित रहती हैं ।

मनुष्य से संबंध

चूहा फसलों और भंडारित अनाज का सबसे बड़ा दुश्मन माना जाता है । यह प्रतिवर्ष फसलों और भंडारित अनाजों का 20% भाग नष्ट कर देते हैं। चूहे खेतों में बिल और छेद बनाकर उन्हें नुकसान पहुंचाते है। चूहे द्वारा बनाए गए बिलों में जहरीले सांपों को शरण मिलती हैं। चूहे घरों में भी बिल बनाते हैं और घरेलू वस्तुएं जैसे किताबें, कपड़े, भोजन, सब्जियों आदि को भी नुकसान पहुंचाते हैं। चूहे एक कीट पिस्सू द्वारा प्लेग नामक भयंकर बीमारी फैलाते हैं। चूहा भोजन शृंखला की एक मुख्य कड़ी है क्यों कि कई सरीसृप पक्षी और स्तनधारी इसको खाते हैं। कई देशों में चूहे को भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह एक सदी से अधिक समय से जैव-औषधीय शोध और अध्यापन में काम में लिया जाता है। आनुवंशिकी के कई शोधों में चूहे के विभिन्न रंग और त्वचाधारी कई प्रकारों की नई-नई लक्षणप्ररूपी उपजातियां उत्पन्न की जा चुकी हैं। सफेद चूहा जो कि शोध-संस्थाओं और अध्यापन में अधिकतर प्रयोग किया जाता है । इस को भी प्रयोगशाला में आनुवंशिकी प्रयोगों द्वारा उत्पन्न किया गया है। चूहा, मनुष्यों के लिए काम में आने वाली कई दवाओं को प्रयोगशालाओं में जांच करने के काम भी आता है क्योंकि इन दवाओं को मनुष्यों के द्वारा उपयोग किए जाने से पहले चूहों पर प्रयोग करके उनका प्रभाव देखा जाता है।

सारांश

केंचुआ, काकरोच, मेंढक और चूहा अपने शारीरिक संगठन, खंडीभवन और सममिति आदि में विशिष्ट गुण प्रदर्शित करते हैं। फेरेटिमा पोस्थुमा (केंचुआ) में शरीर विखंडित होता है। यह स्थलचर जंतु है तथा बिलों में रहता है इसकी पृष्ठ सतह पर गहरी मध्य रेखा पाई जाती है । यह लाल भूरे रंग का होता है। शरीर उपचर्म से ढका रहता है। चौदहवें, पंद्रहवें और सोलहवें खंड जो मोटे गहरे रंग के और ग्रंथि होते हैं पर्याणिका बनाते हैं। इन खंडों को छोड़कर शेष सभी खंड समान होते हैं। शरीर के प्रत्येक खंड में 'S' आकार का काइटिन युक्त शूक का एक वलय उपस्थित होता है। यह चलन में सहायता करता है। वृक्कक उत्सर्जन अंग वृक्कक होते हैं। यह तीन प्रकार के होते हैं– यह पटीय, त्वचीय और ग्रसनीय। आहार नाल नलिका के रूप में होती है जो मुख, मुखगुहा ग्रसनी, पेषणी आमाशय, आंत्र और मल-द्वार से मिलकर बनी होती है । रुधिर परिसंचरण-तंत्र बंद प्रकार का होता है जो हृदय एवं कपाटों से रचित होता है। तंत्रिका तंत्र, अधर तंत्रिका रज्जु द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। केंचुआ उभयलिंगी

होता है। इसमें दो जोड़ी वृषण क्रमश 10वें और 11वें खंड में पाए जाते हैं और एक जोड़ी अंडाशय 12वें व 13वें खंड के अंतरखंडीय पर विद्यमान होते हैं। यह एक पुंपूर्वी जंतु है जिसमें पर-निषेचन पाया जाता है। निषेचन और नवजात का परिवर्धन पर्याणिका की ग्रंथियों द्वारा स्रावित कोकून के अंदर होता है।

तिलचट्टा पूरे विश्व में पाया जाता है। इसका शरीर काइटिन निर्मित बाह्य कंकाल से ढका रहता है। यह सिर, वक्ष और उदर में विभाजित होता है। खंडों पर संधि-युक्त उपांग पाए जाते हैं। वक्ष में तीन खंड होते हैं और प्रत्येक में एक जोड़ा चलन पाद होते हैं। दूसरे और तीसरे खंड पर दो जोड़ी पंख होते हैं। उदर में दस खंड होते हैं। आहार नाल सुविकसित होती है, जिसमें मुखांग से घिरा हुआ मुख, ग्रसनी, ग्रसिका, अन्नपुट, पेषणी, अग्रांत्र, मध्यांत्र और पश्चांत्र तथा मलद्वार आते हैं। अग्रांत्र और मध्यांत्र के संधि स्थल पर यकृतीय अधनाल उपस्थित होते हैं। मध्यांत्र और पश्चांत्र के मध्य मैलपीगी नलिकाएं उपस्थित होती हैं और उत्सर्जन में सहायता करती है। अन्नपुट (क्रॉप) के निकट एक जोड़ी लार ग्रंथियां उपस्थित होती हैं। रुधिर परिसंचरण तंत्र खुले प्रकार का होता है। श्वसन, श्वास नलिकाओं के जाल के द्वारा होता है। श्वास नलिका स्पाइरेकल द्वारा बाहर की ओर खुलते हैं। तंत्रिका-तंत्र अधर तंत्रिका रज्जु और खंडीय गुच्छिकाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। एक जोड़ी वृषण चौथे, और पांचवें खंड में और अंडाशय चौथे, पांचवें और छठे खंड में उपस्थित होते हैं। निषेचन आंतरिक होता है। मादा 10-40 अंडकवच उत्पन्न करती है जिनमें परिवर्धित भ्रूण पाया जाता है। एक अंडकवच के फटने से 16 नवजात शिशु बाहर आते हैं जिन्हें अर्भक (निम्फ) कहते हैं।

भारतीय बुलफ्रॉग, *राना टिग्रीना* भारत में पाया जाने वाला सबसे बड़ा मेंढक है। इसका शरीर त्वचा से ढका रहता है। त्वचा पर कोई भी रचना नहीं पाई जाती है। त्वचा पर श्लेष्मी ग्रंथियां होती हैं और यह अत्यधिक लचीली और संवहनी होती है तथा श्वसन में सहायता करती है। शरीर, सिर और धड़ में विभक्त होता है। ऊपरी जबड़े के किनारे पर मैक्सिलरी दंत पाए जाते हैं। यह निचले जबड़े में अनुपस्थित होते हैं। एक पेशीय जिह्वा उपस्थित होती है। जो किनारे पर से कटी हुई और द्विपालित होती है। यह शिकार को पकड़ने में मदद करती है। आहार नाल, ग्रसिका, आमाशय, आंत्र और मलाशय की बनी होती है जो अवस्कर द्वारा बाहर की ओर खुलता है। मुख्य पाचन ग्रंथियां यकृत और अंडाशय हैं। यह पानी में त्वचा द्वारा और जमीन पर फेफड़ों द्वारा श्वसन करता है। परिसंचरण तंत्र खुला और एकल प्रकार का होता है। रुधिर परिसंचरण तंत्र लसीका-तंत्र से जुड़ा रहता है। लाल रक्त कणिकाएं केंद्रक-युक्त होती हैं। तंत्रिका-तंत्र केंद्रीय, परिधीय और स्वायत्त प्रकार का होता है। जनन-तंत्र के मूल अंग वृक्क और मूत्रजनन नलिकाएं है जो अवस्कर में खुलती है। मुख्य नर जननांग एक जोड़ी वृषण है। मादा जनन-अंग एक जोड़ी अंडाशय होते हैं। एक मादा एक बार में 2,500 से 3,000 अंडे देती है। निषेचन और परिवर्धन, बाह्य होता है। अंडों से टेडपोल निकलता है शनैः शनैः जो मेंढक में कायांतरित हो जाता है। टेडपोल के पाद और पूंछ में पुनरुद्भवन की प्रचुर क्षमता पाई जाती है।

सामान्य भारतीय काला चूहा (*रैटस रैटस*) एक रात्रिचर प्राणी है। यह छिद्रों और बिलों में रहता है। चूहा लगभग 20 cm लंबा होता है जिसका शरीर कुछ जगहों को छोड़कर बालों से ढका रहता है। शरीर तर्कुरूप होता है। पाचन-तंत्र मुख गुहा, ग्रसिका, आमाशय, छोटी आंत्र, बड़ी आंत्र और उनसे जुड़ी ग्रंथियों का बना होता है। चूहे में पित्ताशय अनुपस्थित और अग्नाशय छितराया हुआ कई छोटी पालियों का बना होता है। इनमें दोहरा और बंद प्रकार का परिसंचरण होता है। हृदय चतुर्वेश्मी होता है, मध्यरेखा में स्थित, हृदयावरण से घिरा रहता है। इसमें सुविकसित धमनी-तंत्र, शिरीय-तंत्र, श्वसन-तंत्र, उत्सर्जन-तंत्र, अंत स्रावी तंत्रिका-तंत्र पाए जाते हैं। नर जनन-तंत्र में एक जोड़ी वृषण, अधिवृषण, शुक्रवाहिनी, मूत्रमार्ग, शिश्न वृषणिका-रज्जु और पांच सहायक ग्रंथियां होती हैं। मादा जनन-तंत्र एक जोड़ी अंडकोशों, डिंबवाहिनी नलिकाएं, गर्भाशय, भगशेफ, योनि और तीन सहायक ग्रंथियों का बना होता है। प्रजनन के पश्चात् मादा एक बार में छः से आठ नवजातों को जन्म देती है।

अभ्यास

1. एक शब्द अथवा एक पंक्ति में उत्तर दीजिए :
   (i) केंचुए का वैज्ञानिक नाम लिखिए।
   (ii) *पेरीप्लेनेटा अमेरिकाना* का सामान्य नाम दीजिए।
   (iii) केंचुए में कितनी शुक्राणुधानियां पायी जाती हैं ?
   (iv) तिलचट्टे में श्वासनली छिद्र का क्या नाम है ?
   (v) तिलचट्टे में अंडाशय की स्थिति क्या है ?

(vi) तिलचट्टे के उदर में कितने खंड होते हैं ?

(vii) मेंढक में गलेट आहार नाल के जिस भाग में खुलता है, उसका नाम बताइए।

(viii) विब्रिसी (दृढ़ रोम) के क्या कार्य है ?

(ix) मैलपीगी नलिकाएं कहां विद्यमान होती हैं?

2. निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

(i) चूहे के वर्गीकरण की स्थिति लिखिए ।

(ii) वृक्कक का क्या कार्य है ?

(iii) मेंढक और भेक में तीन अंतर बताइए।

(iv) चूहे की आहार नाल के भागों के नाम लिखिए।

(v) खुले परिसंचरण– से आप क्या समझते हैं। एक उपयुक्त उदाहरण सहित समझाइए ?

(vi) अपनी स्थिति के अनुसार केंचुए में कितने प्रकार के वृक्कक पाए जाते हैं ?

(vii) चूहे के नर जनन अंगों के नाम लिखिए।

3. केंचुए के जननांगों का नामांकित चित्र बनाइये।

4. तिलचट्टे के सिर से संबद्ध उपांगों के नाम लिखिये।

5. तिलचट्टे की आहार नाल का नामांकित चित्र बनाइये।

6. मेंढक के उत्सर्जी अंगों पर एक टिप्पणी लिखिए।

7. चूहे के स्त्री जननांगों का वर्णन कीजिए और मेंढक के जननांगों से इनकी तुलना कीजिए।

8. केंचुए की आहार नाल का वर्णन कीजिए और इसके मनुष्य के साथ संबंधों की व्याख्या कीजिए।

अध्याय 19

जंतु ऊतक

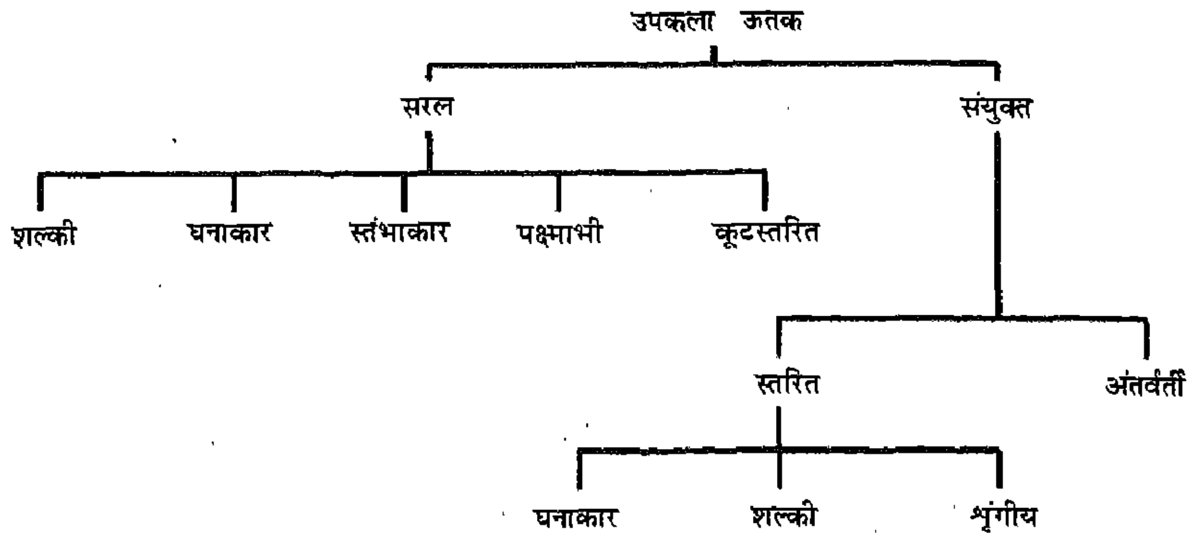
जैसा कि आप जानते हैं शरीर की सारी जैविक प्रक्रियाओं जैसे पोषण, श्वसन, उत्सर्जन आदि एककोशिक जंतुओं (प्रोटोजोआ जंतु) की एकलकोशिका द्वारा संपन्न की जाती हैं। बहुकोशिकता की उत्पत्ति एवं विकास जंतुओं के शारीरिक संगठन के साथ-साथ शरीर के आकार में वृद्धि के उपरांत हुआ। इन बहुकोशिक पादप एवं जंतुओं की विभिन्न जैविक क्रियाओं को संपन्न करने हेतु शरीर की कोशिकाओं में श्रम विभाजन और आपसी समन्वयन की आवश्यकता पैदा हुई। यद्यपि कोशिकाएं अपने मूलस्वरूप को मूलभूत जैविक प्रक्रियाओं हेतु बनाए रखती हैं, फिर भी समन्वित गतिविधियां उनकी क्षमताओं या कार्यशैली में सुधार लाती हैं। विभिन्न शारीरिक संगठनों के निर्माण हेतु कोशिकाओं का यह गुण एक महत्वपूर्ण सिद्धांत बन गया। कोशिकाओं के संरचना एवं कार्यों में समानता लिए हुए समूह ऊतक के रूप में व्यवस्थित और संगठित हो गए। इसी तरह विभिन्न प्रकार के ऊतक शरीर के किसी एक रचनात्मक एवं कार्यशील इकाई का निर्माण करने हेतु अंगों के रूप में संगठित हो गए एवं विभिन्न अंगों ने मिलजुल कर कार्य आरंभ किया जिससे कि शरीर की प्रमुख गतिविधियों का संचालन किया जा सके। अठारहवें अध्याय में आप केंचुए, तिलचट्टे, मेंढक और चूहे के विभिन्न अंगों और अंगतंत्रों के बारे में जान चुके हैं। इस अध्याय का उद्देश्य आपको बहुकोशिक जीवों में पाए जाने वाले विभिन्न ऊतकों के बारे में परिचय कराना है।

19.1 ऊतकों के प्रकार

ऊतकों की एक सर्वमान्य परिभाषा निम्नवत है "यह कोशिकाओं का ऐसा समूह जो भौतिक रूप से आपस में जुड़ी रहती हैं, जिनकी उत्पत्ति समान हो तथा जिनके अंतराकोशिक पदार्थों में समानता हो और यह कोई निश्चित कार्य या निश्चित कार्यों का संपादन करे"। हालांकि इस प्रकार के विशिष्टीकरण के लिए, जो जीव की क्षमताओं को बढ़ाते हैं, विभिन्न ऊतकों की समन्वित क्रियाओं की आवश्यकता होती है। यहां आप इस बात को पुनः स्मरण कर सकते हैं कि जीव विज्ञान की वह शाखा जिसके अंतर्गत ऊतकों का अध्ययन किया जाता है, **औतिकी** कहलाती हैं। जंतु ऊतकों को उनकी संरचना व कार्यों के आधार पर चार प्रमुख श्रेणियों में बांटा जा सकता है। ये हैं– उपकला ऊतक, संयोजी ऊतक, पेशी ऊतक एवं तंत्रिका ऊतक। प्राणी शरीर के सभी ऊतकों का विकास भ्रूणीय अवस्था में तीन प्रमुख प्राथमिक भ्रूण स्तरों से होता है। जिन्हें बाह्यजन स्तर (ectoderm) मध्यजन स्तर, (Mesoderm), अंतजन स्तर (endoderm) कहते हैं।

19.2 उपकला ऊतक

उपकलीय (epithelial tissues) ऊतक शरीर की बाह्य एवं आंतरिक सतह को ढके रहता है। एक उपकलीय ऊतक में कोशिकाएं एक-दूसरे से सटी हुई लगी रहती हैं तथा इनके मध्य कोशिका बाह्य पदार्थ बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। निकटवर्ती कोशिकाएं आपस में कोशिकीय बंधों से जुड़ी होती हैं। उपकलीय ऊतक में कोशिकाएं एक अकोशिक आधार-झिल्ली पर स्थित होती हैं। यह आधार-झिल्ली उपकलीय ऊतक को उसके नीचे स्थित संयोजी ऊतक से अलग बनाए रखती है। इसके अतिरिक्त उपकला ऊतक की कोशिकाओं को पोषण पहुंचाने हेतु रक्त वाहिकाओं का अभाव होता है। ये अपने नीचे स्थित संयोजी ऊतकों से पोषण प्राप्त करती हैं। त्वचा, खोखले अंग जैसे आहार नाल और रक्त वाहिनियों की सतह, पाचक ग्रंथियों जैसे यकृत, श्वसन-तंत्र आदि उपकला ऊतक से ढके रहते हैं तथा उसका अस्तर भी बनाते हैं। उपकला ऊतक का प्रमुख कार्य अंगों की सतहों का अस्तर बनाना एवं उन्हें ढकना (उदाहरणार्थ-त्वचा) अवशोषण करना (उदाहरणार्थ-आंत्र) स्रवण करना (उदाहरणार्थ-ग्रंथियों की उपकला कोशिकाएं), संवेदना (उदाहरणार्थ-तंत्रिका उपकला) और संकुचनशीलता (उदाहरणार्थ-पेशीय उपकला) कार्य आदि है। संरचना और कार्यों के आधार पर उपकला ऊतक को दो प्रमुख समूहों में बांटा जाता है। ये हैं **आवरण उपकला** और **ग्रंथीय उपकला**।



चित्र 19.1 उपकला ऊतकों का वर्गीकरण

आवरण उपकलाएं

इसमें वे उपकला ऊतक सम्मिलित होते हैं जिनमें कोशिकाएं परतों में व्यवस्थित होती हैं तथा ये शरीर की गुहाओं की बाह्य सतहों अर्थात् गुहाओं की सतहों (मुक्त सतह) को ढके रहती हैं। इस ढकने वाली अर्थात् आवरण उपकला को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है, **सरल एवं संयुक्त** (चित्र 19.1)।

सरल उपकला

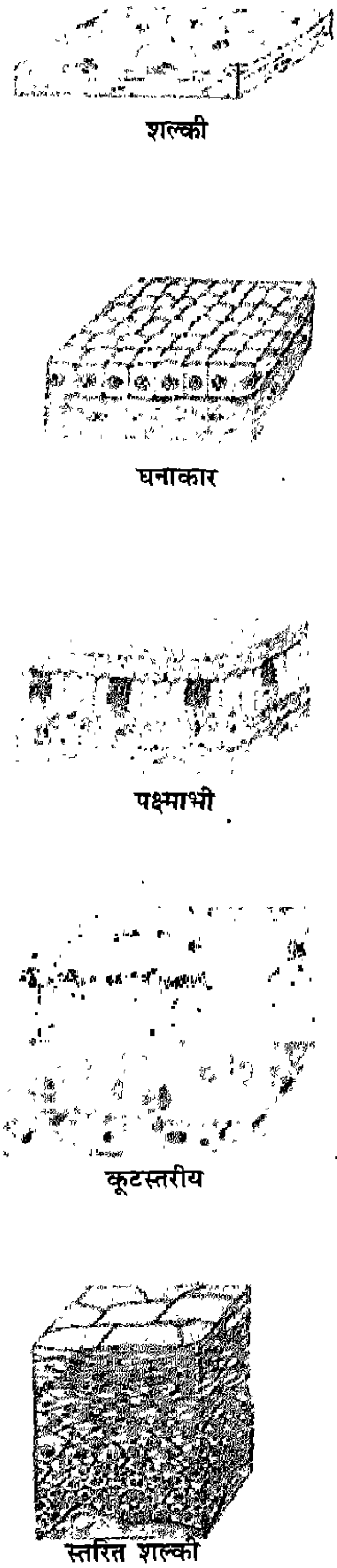
सरल उपकला मुख्यत: स्रवण और अवशोषण संबंधी सतहों पर पाई जाती है। यह प्राय: उन सतहों पर नहीं पाई जाती है जिन पर यांत्रिक और रासायनिक रगड़ होती रहती हैं क्योंकि यह निचले ऊतकों की रक्षा नहीं कर सकती। इसकी कोशिकाएं आधार झिल्ली पर एक पर्त के रूप में व्यवस्थित रहती हैं। सरल उपकला कई प्रकार की होती हैं और शरीर के विभिन्न भागों में पाई जाती हैं। ये हैं–शल्की उपकला, घनाकर उपकला, स्तंभाकार उपकला, पक्ष्माभी उपकला और कूटस्तरीय उपकला आदि।

शल्की उपकला – शल्की उपकला की कोशिकाएं पतली, चपटी, षट्कोणीय होती हैं जिनमें बड़ा केंद्रक होता है (चित्र 19.2 क)। इन कोशिकाओं के बाहरी किनारे अनियमित होते हैं तथा एक-दूसरे से सटे रहते हैं। इसलिए इस उपकला को पेवमेंट उपकला भी कहते हैं। इसका मुख्य कार्य रक्षा प्रदान करना है। यह फेफड़ों की कूपिकाओं तथा रक्त वाहिकाओं और देहगुहा की पेरीटोनियम का आंतरिक स्तर बनाती है। शल्की उपकला मेंढक के त्वचा की बाहरी पर्त बनाती है।

घनाकार उपकला – घनाकार उपकला बहुकोणीय कोशिकाओं की बनी होती है जो उर्ध्वाधर काट में घनाकार दिखाई देती है (चित्र 19.2 ख)। ये कोशिकाएं स्रवण, उत्सर्जन और अवशोषण से संबद्ध होती हैं। अवशोषी सतहों में घनाकार उपकला की कोशिकाओं के स्वतंत्र सिरों पर प्राय: सूक्ष्मांकुर (microvilli) पाए जाते हैं। इस प्रकार की उपकला वृक्क की समीपस्थ नलिका, छोटी लार ग्रंथियों के अस्तर, अग्नाशयी नलिका, थायराइड पुटक एवं अंडाशय में पाई जाती है।

स्तंभाकार उपकला – स्तंभाकार उपकला की विशेषता इसकी लंबी खंभेनुमा कोशिकाएं हैं जो बहुकोणीय खंभे जैसी दिखाई देती हैं (चित्र 19.2)। कोशिका का अंडाकार केंद्रक प्राय: कोशिका के निचले भाग में रहता है। इसका मुख्य कार्य स्रवण एवं अवशोषण है। ये आंत्र, आमाशय और पित्ताशय की आंतरिक सतह पर स्थित होती हैं। ये जठर और आंत्रिक ग्रंथियों में भी पाई जाती है। आंत्र का म्यूकोसा भी स्तंभी उपकला से आस्तरित रहता है जिसके मुक्त सिरे छोटे अंगुलीनुमा बहिर्वेशन बनाते हैं जिन्हें सूक्ष्मांकुर कहते हैं। ये अवशोषण का क्षेत्र बढ़ाते हैं तथा इन्हें **ब्रुश** सीमायुक्त उपकला भी कहते हैं।

पक्ष्माभी उपकला - पक्ष्माभी उपकला घनाकार या स्तंभाकार कोशिकाओं की बनी होती है। इन्हें कोशिकाओं के स्वतंत्र सिरों पर अनेक महीन तथा छोटे जीवद्रव्यी प्रवर्ध जिसे पक्ष्माभ कहते हैं, लगे रहते हैं (चित्र 19.2 ग)। इस प्रकार की उपकला को **पक्ष्माभी उपकला** कहते हैं। पक्ष्माभों का कार्य कणों युक्त



- *विभिन्न प्रकार के उपकलीय ऊतक*

कोशिकाओं व श्लेष्मा को उपकलीय सतह पर निश्चित दिशा में आगे ले जाने का होता है। पक्ष्माभी उपकला कुछ खोखले अंगों जैसे डिंबवाहिनी नलिका (fallopian tubes), श्वसनिका व श्वसनी का भीतरी स्तर बनाती है।

कूटस्तरीय *उपकला* – कूटस्तरीय उपकला पक्ष्माभी *अथवा* पक्ष्माभ रहित उपकला की बनी हुई होती है जिसकी स्तंभाकार कोशिकाएं वास्तव में एक स्तरीय होती हैं। लेकिन यह द्विस्तरीय दिखाई देती हैं क्योंकि कुछ कोशिकाएं दूसरी कोशिकाओं से छोटी होती हैं और उनके केंद्रक अलग स्तर पर दिखाई देते हैं जिससे कि उपकला का द्विस्तरीय आभास होता है। इस कारण से यह उपकला **कूटस्तरीय उपकला** कहलाती है (चित्र 19.2 घ)। लंबी कोशिकाओं में रोम उपस्थित होते हैं। इस प्रकार की उपकला श्वासनली तथा बड़ी श्वसनिकाओं आदि की भीतरी स्तर बनाती है तथा यह श्लेष्मा को हटाने का कार्य करती है।

संयुक्त उपकला

यह एक से अधिक कोशिका स्तरों की बनी होती है। तथा स्तरित उपकला जैसी दिखाई देती है अतः इन्हें स्तरित उपकला भी कहते हैं। विभिन्न स्तरों में कोशिकाएं विभिन्न आकार की होती हैं । सबसे निचली परत की कोशिकाएं आधारकला पर पाई जाती हैं। संयुक्त उपकला कई प्रकार की होती हैं। यह स्तरित घनाकार, स्तरित शल्की, स्तरित किरेटिनी और संक्रमित उपकला आदि प्रकार की हो सकती हैं। क्योंकि यह कई स्तरों की बनी होती हैं अतः इनमें स्राव और *अवशोषण की क्रिया कम पायी* जाती है। इस प्रकार की उपकला का मुख्य कार्य यांत्रिक, रासायनिक, ताप अथवा घर्षण से निचले स्तरों की रक्षा करना है।

स्तरित घनाकार उपकला – स्तरित घनाकार उपकला में सबसे बाहरी परत की कोशिकाएं घनाकार होती हैं। यह बड़ी लार नलिकाओं और अग्नाशयी नलिकाओं की भीतरी सतह बनाता है । स्तरित शल्की किरेटिन रहित उपकला में **घनाकार और स्तंभाकार कोशिकाएं** एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं (चित्र 19.2 ङ)। इसकी सबसे निचली स्तर की कोशिकाएं संयोजी ऊतक के समीप स्थित होती हैं। ये घनाकार या स्तंभाकार होती हैं परंतु बाह्य स्तर पर स्थित कोशिकाएं चपटी पतली झिल्ली युक्त एवं शल्की होती हैं जिनमें केंद्रक अभी भी विद्यमान होता है। यह मुख गुहा, ग्रसनी, ग्रसिका एवं नेत्र के कॉर्निया की नम सतह को ढकता है। जब बाह्य परतों में मृत कोशिकाएं व अघुलनशील प्रोटीन किरेटीन जमा होता है तो ऐसे ऊतक को **स्तरित शल्की किरेटिनी** (cornified) उपकला कहते हैं। यह उपकला त्वचा, बाल, शृंग एवं नाखून की अधिचर्म को सुरक्षा प्रदान करती है।

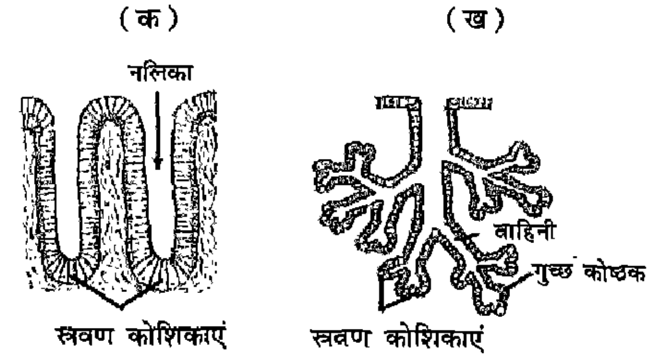
दूसरी विशिष्ट प्रकार की संयुक्त उपकला **अंतर्वर्ती** या **संक्रमित** (transitional) उपकला होती है जो मूत्राशय और मूत्रनलिका की भीतरी सतह बनाती है। अंतर्वर्ती उपकला स्तरित उपकला की अपेक्षा अधिक पतली और अधिक लचीली होती है। इसके आधार पर घनाकार कोशिकाओं की एक परत होती है, मध्यस्तर में बड़ी बहुकोणीय कोशिकाओं के दो या तीन स्तर होते हैं तथा बाहरी परत बड़ी चौड़ी आयताकार या अंडाकार कोशिकाओं की बनी होती है। इस उपकला की कोशिकाएं अंतर्वर्ती अवस्था में होती हैं अर्थात् ये सरल उपकला से संयुक्त उपकला में परिवर्तित होती हैं। इसलिए उपकला को अंतर्वर्ती उपकला के नाम से जाना जाता है। यह पानी को रक्त से मूत्र में जाने से रोकती है। इन अंगों में इसकी वजह से मूत्र को इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त फैलाव होता है।

औतिकी विशेषज्ञों ने दो और उपकलाओं की पहचान की है जो उपर्युक्त वर्णित उपकलाओं से भिन्न है। प्रथम है **तंत्रिका उपकला कोशिका** जिनकी उत्पत्ति उपकला से होती है। ये कोशिकाएं संवेदी कार्य करने की विशिष्टता रखती हैं (उदाहरणार्थ: स्वादकलिकाओं की कोशिकाएं)। दूसरे प्रकार की हैं **पेशीय उपकला कोशिका।** ये शाखित कोशिकाएं हैं तथा इनमें पेशीय प्रोटीन एक्टिन एवं मायोसिन पाया जाता है। ये कोशिकाएं स्वेद ग्रंथि, स्तन ग्रंथि व लार ग्रंथि आदि में संकुचनशीलता पैदा करती हैं।

ग्रंथीय उपकला

ये विशिष्ट प्रकार की उपकला कोशिकाएं हैं जो ग्रंथियां बनाती हैं। ग्रंथियां इस प्रकार के तरल का स्रवण करती हैं जो कि रक्त या किसी अन्य अंत:कोशिकीय तरल से भिन्न होता है। इन स्रावों का संश्लेषण अंत:कोशिकीय अणुओं जैसे प्रोटीन (अग्नाशय में), वसा (एड्रीनल ग्रंथि में), कार्बोहाइड्रेट के समूह एवं प्रोटीन (लार ग्रंथि में) अथवा ये सभी बृहद् अणु (स्तन ग्रंथि में) के रूप में होता है।

ग्रंथीय उपकला की कोशिकाएं प्राय: स्तंभी अथवा घनाकार प्रकार की होती हैं। ये दो प्रकार में वर्गीकृत की जा सकती हैं: **एककोशिक** जो अकेली ग्रंथिल कोशिका है जैसे आंत्र की गॉबलेट कोशिका, दूसरी **बहुकोशिक ग्रंथि** जो ग्रंथिल कोशिकाओं के समूह की बनी होती है। कोई भी अशाखित, नलिका-सहित ग्रंथि सरल ग्रंथि (चित्र 19.3 क) कहलाती है। ग्रंथि का स्रवण भाग नलिकाओं या छोटे थैलों (alveoli) या दोनों ही प्रकार की उपकला कोशिकाओं का बना होता है। नलिका भी उपकला कोशिकाओं की बनी होती है। मानव आंत्र में पाई जाने वाली नलिका ग्रंथियां सरल ग्रंथियों का उदाहरण हैं। शाखित, नलिकाओं सहित ग्रंथि संयुक्त ग्रंथि



चित्र 19.3 बहि:स्रावी ग्रन्थियों के प्रकार (क) सरल एवं (ख) संयुक्त

कहलाती है (चित्र 19.3 ख)। इनमें स्रवण नलिकाएं या एसीनस, कुंडलित या शाखित होकर ग्रंथि की एक नली में खुलती है। स्रवण भाग कई एसिनी या कई नलिकाओं या दोनों का बना होता है। संयुक्त ग्रंथियों, अग्नाशय और सबमेंडीबुलर लार ग्रंथियों में पाई जाती है। सभी ग्रंथियां स्रवण पदार्थ को नलिकाओं द्वारा क्रिया करने के स्थान पर स्रावित कर देती हैं।

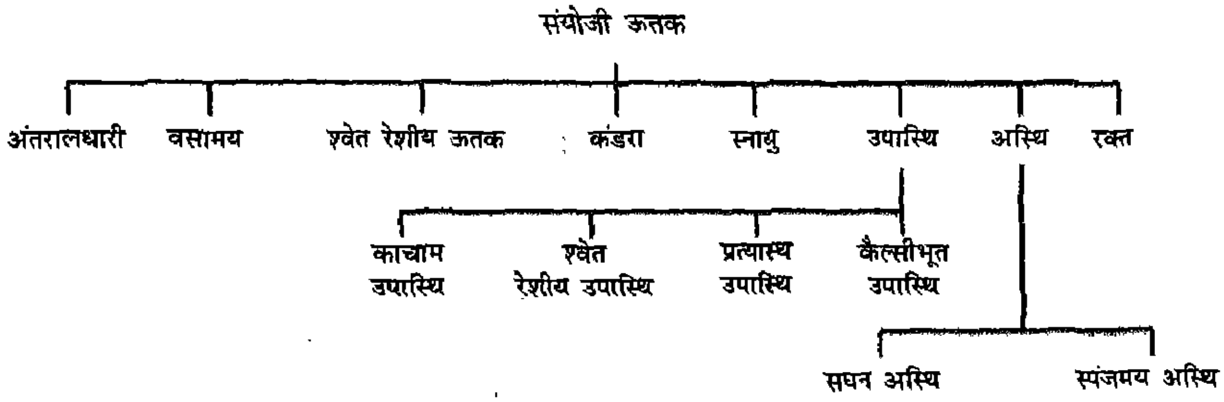
स्रावित पदार्थ उड़ेलने के आधार पर ग्रंथियां दो भागों में विभक्त होती हैं जिन्हें बहि:स्रावी (exocrine) और अंत:स्रावी (endocrine) कहते हैं।

1. **बहि:स्रावी ग्रंथि** में नलिकाएं होती हैं जो अपना पदार्थ नलिका की मदद से अपने क्रिया के स्थान पर स्रावित कर देती है। उदाहरण लार, अश्रु, गैस्ट्रिक और आंत्र ग्रंथियां।
2. **अंत:स्रावी ग्रंथियां** नलिका विहीन होती हैं जो अपने द्वारा स्रावित पदार्थ को सीधे रक्त प्रवाह में डालकर कार्यस्थल पर पहुंचाती हैं। ये ग्रंथियां हारमोन स्रावित करती हैं, जो नलिकाओं में बहने की बजाए रक्त में मिल जाता है। उदाहरणार्थ पीयूष (pituitary), अवटु (thyroid), पैरावटु (parathyroid), और अधिवृक्क (adrenal) ग्रंथि।

जब कोई ग्रंथि बहि:स्रावी एवं अंत:स्रावी, दोनों प्रकार की क्रियाएं करती है तो उसे **मिश्रित ग्रंथि** (उदाहरणार्थ अग्नाशय) कहते हैं। **पूर्णस्रावी ग्रंथियों** (उदाहरणार्थ तैल अथवा वसा ग्रंथि) में स्रावित उत्पाद पूरी कोशिका के साथ निकलते हैं जिससे उक्त कोशिका नष्ट हो जाती है। जब स्रवण कण कोशिका से बिना किसी कोशिकीय पदार्थ के हानि के एक्सोसाइटोसिस प्रक्रिया द्वारा बाहर निकलते हैं तो ऐसी ग्रंथि को **अंशस्रावी ग्रंथि** कहते हैं (उदाहरणार्थ अग्नाशय)। **अपस्रावी** ग्रंथियों में कोशिका द्रव्य का ऊपरी हिस्सा स्रवण पदार्थ के साथ बाहर निकलता है (जैसे स्तन ग्रंथि)।

19.3 संयोजी ऊतक

संयोजी ऊतक का नाम दो भिन्न ऊतक अंगों के जोड़ने के गुण के आधार पर रखा गया है। यह दो भिन्न ऊतकों से एक अंग बनाने में आकार को आधार और सहारा देता है। यह शरीर की



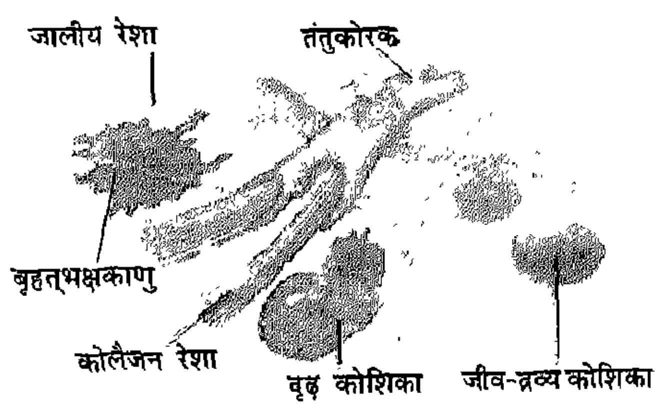
चित्र 19.4 संयोजी ऊतकों का वर्गीकरण

रक्षा, ऊतक मरम्मत और वसा भंडारण में मुख्य भूमिका निभाता है। यह दो मुख्य कोशिकाओं और उसको घेरे हुए आधात्री का बना होता है। कोशिकाएं छितरी हुई अवस्था में आधात्री में व्यवस्थित होती हैं। आधात्री कोशिकाओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में होता है। इसका आधात्री अघुलनशील प्रोटीन तंतुओं का बना होता है जो कण-युक्त और पारदर्शी आधारी पदार्थ में पाया जाता है। आधारी पदार्थ मुख्यतः दो वर्गों के पदार्थों का बना होता हैं वे हैं **ग्लाइकोएमीनोग्लाइकेन** एवं संरचनात्मक **ग्लाइकोप्रोटीन**।

जंतुओं में आठ प्रकार के संयोजी ऊतक होते हैं। जिन्हें अंतरालीय, वसा ऊतक, श्वेत रेशीय ऊतक, कंडरा, स्नायु, उपास्थि, अस्थि और रक्त कहते हैं। संयोजी ऊतक का एक समान्य वर्गीकरण चित्र 19.4 में दिया गया है।

अंतरालीय ऊतक

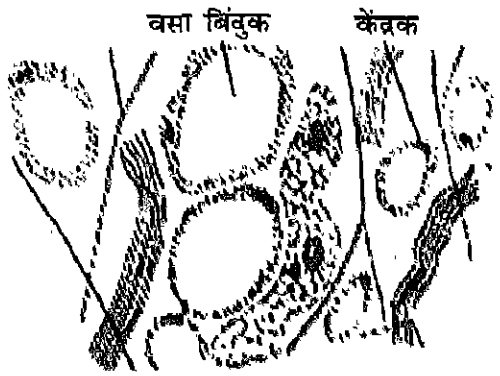
यह कई आंतरिक अंगों जैसे आमाशय, श्वासनली और त्वचा, उपकला के नीचे और रक्त वाहिनियों, धमनियों और शिराओं की भित्ति के ऊपर पाया जाता है। अंतरालीय एरियोलर ऊतक अथवा संयोजी ऊतक एक ऊतक या अंग को दूसरे से बांधता है। उनके ऊपर की झिल्ली इसी ऊतक की बनी होती है और अंगों को अपने स्थान पर सामान्य आकार में रहने में मदद करता है। यह त्वचा को पेशियों से जोड़ता है। अंतरालीय ऊतक में तीन प्रकार की कोशिकाएं-**फाइब्रोब्लास्ट**, **मेक्रोफेजेज** और **मास्ट कोशिकाएं** पाई जाती हैं। फाइब्रोब्लास्ट, इस ऊतक की मुख्य कोशिकाएं होती हैं। ये अनियमित आकार की चपटी कोशिकाएं लंबे जीव द्रव्य प्रबंधों से युक्त होती हैं (चित्र 19.5)। तंतुकारक (fibroblast) दो प्रकार के प्रोटीन का संश्लेषण करते हैं - **कोलेजन** और **इलेस्टीन**। एरियोलोर ऊतक के तंतु दो प्रकार के होते हैं - **सफेद कोलाजेन तंतु** और **पीले इलास्टीन तंतु**। कोलाजेन तंतु, कोलेजन प्रोटीन के बने होते हैं, और लहरदार पूलों के रूप में होते हैं जिनमें लचीलापन नहीं होता है। पीले इलेस्टीन तंतु, महीन लचीले, लंबे अल्पपारदर्शक शाखित तंतु इलास्टीन नामक प्रोटीन के बने होते हैं और पूलों में नही बंधे होते हैं। ये आधात्री में स्वतंत्र रूप से छितरे रहते हैं और इनकी शाखाएं एक-दूसरे से जुड़कर आधात्री में एक जाल-सा बना लेती हैं। कोलाजेन तंतुओं की तन्यता और इलास्टिक तंतुओं का लचीलापन उन अंगों और ऊतकों की चोट लगने से रक्षा करते हैं जिनमें अंतरालीय ऊतक उपस्थित होते हैं। घाव भरने की प्रक्रिया के दौरान चोटग्रस्त स्थान पर कोलाजेन तंतुओं का निर्माण होता है। मेक्रोफेजेज (बड़ी अमीबीय कोशिकाएं) दूसरे प्रकार के ऐरियोलर ऊतक है जो जीवाणुओं, बाहरी कणों और क्षतिग्रस्त ऊतक की कोशिकाओं का भक्षण करते हैं। तीसरे प्रकार के अंतरालीय तंतु मास्ट कोशिकाएं होती हैं जो बड़े अनियमित आकार की अंडाकार कोशिकाएं होती हैं। ये सूजन उत्पन्न करने वाले पदार्थों का संचय करती हैं। जो फेगोसाइट को आकर्षित करने के लिए चोटग्रस्त स्थान के पास छोड़े जाते हैं। इसी वजह से चोटग्रस्त स्थान पर सूजन हो जाती है।



चित्र 19.5 अंतरालीय ऊतक

वसीय ऊतक

वसीय ऊतक एक संयोजी ऊतक है जो त्वचा के नीचे वृक्क के चारों ओर आंत्रयोजनी (mesentery) और अस्थिमज्जा में पाया जाता है, इसका कोशिकीय भाग, वसा अणु (adipocytes) होता है जो बड़ी गोल या अंडाकार कोशिकाएं होता हैं जो वसा कोशिकाएं कहलाती हैं। वसा अणुओं में कोशिकाद्रव और कोशिकांग वसा द्वारा जीव-द्रव्य झिल्ली से नीचे, संकरी, छल्लेदार स्तर के रूप में दबा दी जाती है। वसा अणुओं के अलावा इसमें फाइब्रोब्लास्ट, मेक्रोफेजेज, कोलाजेन तंतु और लचीले तंतु भी पाए जाते हैं (चित्र 19.6)। वसीय ऊतक वसा का निर्माण, संचय और उसका उपापचय करता है। ध्रुवों पर रहने वाले स्तनधारियों की त्वचा का यह एक मुख्य भाग है। यह त्वचा के नीचे ऊष्मा प्रतिरोधी स्तर बनाकर देह ऊर्जा को निकलने से रोकता है। यह वृक्क और नेत्र गोलकों के चारों ओर धक्कों और दबाव को रोकने वाली गद्दी का कार्य करता है।



चित्र 19.6 वसा ऊतक

सफेद तंतुमय ऊतक

इस तरह के संयोजी ऊतक में केवल कुछ फाइब्रोब्लास्ट कोशिकाएं पाई जाती हैं, जो गहरे मोटे कोलेजन तंतु में पूलों के जाल (आधात्री) के बीच में फैली रहती हैं। इनमें अत्यधिक तनाव (तन्यता) सहने का गुण पाया जाता है। कपाल की अस्थियों के जोड़ों के बीच सफेद तंतुमय ऊतक के पाए जाने के कारण ही यह अचल होती है।

टेंडन या कंडराएं

यह घना, मजबूत डोरी जैसा मोटे श्वेत कोलेजन तंतुओं का एक गुच्छा होता है। तंतुओं के पूलों या गुच्छों में कुछ चपटी लंबी फाइब्रोब्लास्ट कोशिकाएं एक श्रेणी में पाई जाती हैं। तंतुओं के बीच में आधात्री की मात्रा बहुत कम होती है। शरीर की अस्थियां सफेद डोरी जैसी मजबूती लोचरहित रचनाएं कंडरा द्वारा कंकाल पेशियों से जुड़ी रहती हैं (चित्र 19.7)।



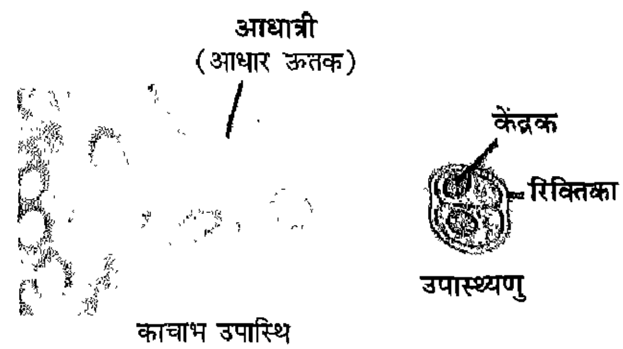
चित्र 19.7 घुटने की संधि-स्थल से होकर कंडरा को दर्शाती हुई अनुदैर्ध्य काट

स्नायु

यह घना डोरी जैसा संयोजी ऊतक है। इसका आधारभूत पदार्थ या मेट्रिक्स **पीले लचीले तंतुओं** से आच्छादित रहता है। तंतुओं के बीच आधात्री की मात्रा बहुत कम होती है। और ये सभी दिशाओं में शाखित होते हैं। कुछ लंबी चपटी फाइब्रोब्लास्ट कोशिकाएं तंतुओं के बीच फैली रहती हैं। स्नायु अस्थियों को एक-दूसरे से जोड़ते हैं और उन्हें अपने स्थान पर व्यवस्थित रखते हैं। इन्हीं लचीले स्नायुओं की सहायता से हम गर्दन, हाथ, उंगुलियां आदि आसानी से हिला-डुला अथवा मोड़ सकते हैं।

उपास्थि

यह मजबूत लेकिन अर्धठोस और लोचदार संयोजी ऊतक है इसके मेट्रिक्स में **कांड्रिन** बहुत अधिक मात्रा में होता है जो **प्रोटियोग्लाइकेन** का बना होता है अर्थात् इसकी प्रोटीन श्रृंखला डाइसैकेराइड हाईलूरोनिक अम्ल की लंबी श्रृंखला से जुड़ी रहती है। उपास्थ्यणु (chondriocytes) बड़ी अंडाकार उपास्थि कोशिकाएं आधात्री में जगह-जगह फैली रहती हैं। दो या तीन कोशिकाओं के झुंड में रिक्तिकाएं फैली रहती हैं। जिन्हें गर्तिकाएं कहते हैं (चित्र 19.8)।

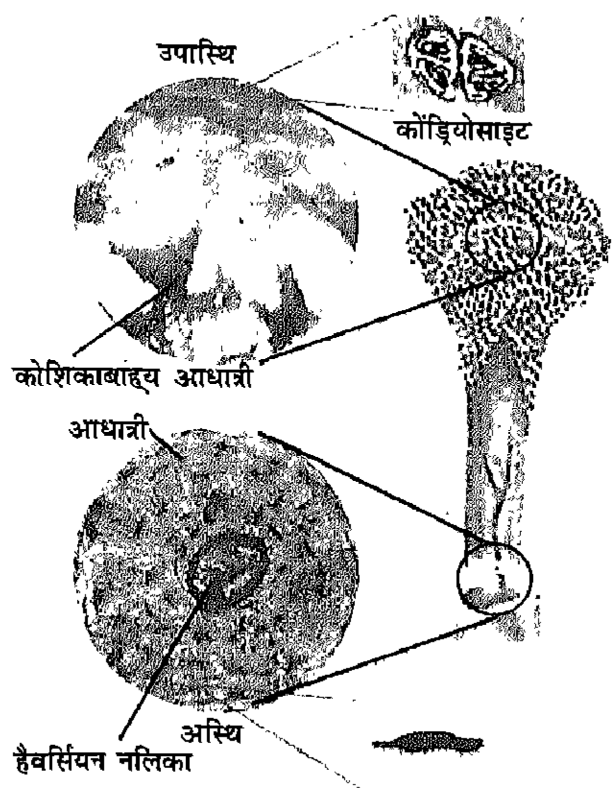


चित्र 19.8 काचाभ उपास्थि

जंतुओं में चार प्रकार की उपास्थियां पाई जाती हैं। ये काचाभ (हाएलाइन), तंतुमय लचीली तथा कैल्शियम-युक्त उपास्थियां हैं। (i) हाएलाइन उपास्थि - इसका आधात्री पारदर्शक, साफ तथा हल्के नीले रंग का होता है इसमें तंतु नहीं पाए जाते हैं। यह उरोस्थि, हाइऑइड तथा पसलियों आदि में पायी जाती है। (ii) तंतुमय उपास्थि - इसके आधात्री में उपास्थ्यणुओं के साथ कोलाजेन तंतुओं के गद्दे उपस्थित होते हैं। कशेरुकों के बीच में पाए जाने वाली अंतरकशेरुक गद्दियां तंतुमय उपास्थि की बनी होती हैं। (iii) लचीली (इलास्टिक) उपास्थि - यह तंतुमय उपास्थि के समान होती है। परंतु इसमें श्वेत कोलेजन तंतुओं की जगह पीले इलास्टिन तंतु पाए जाते हैं। यह उपास्थि लचीली होती है यह पिन्ना, नाक के सिरे तथा ऐपिग्लाटिस आदि का कंकाल बनाती हैं। (iv) कैल्शियमधारी उपास्थि-शुरू में यह काचाभ उपास्थि के समान ही होती है परंतु बाद में कैल्शियम लवणों के जमाव होने के कारण यह अस्थि की तरह कठोर हो जाती है तथा इसका लचीलापन भी समाप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ मेंढक की अंसमेखला की सुप्रास्केपुला तथा श्रोणिमेखला की प्यूबिस, अस्थियां कैल्शियम-युक्त उपास्थि की बनी होती हैं।

अस्थि (हड्डी)

यह ठोस सख्त और मजबूत संयोजी ऊतक है इसका आधात्री एक लचीली ओसिन नामक प्रोटीन का बना होता है। आधात्री में कैल्शियम, मैगनीशियम के फास्फेट, सल्फेट, कार्बोनेट और फ्लोराइड लवणों के जमा हो जाने से लचीली न होकर अति ठोस एवं कठोर हो जाती है। ठोस आधात्री में चपटे अनियमित शाखित खाली स्थान पर लेक्यूनी पाए जाते हैं। प्रत्येक लेक्यूनी में एक चपटी शाखित अस्थि कोशिका या **आस्टियोसाइट** पाई जाती है। आस्टियोसाइट अनियमित आकार की और लंबे प्रवर्धों युक्त होती है। सूक्ष्मनलिकाओं की शाखाएं अस्थियों की आधात्री के चारों ओर फैली रहती है। ये शाखाएं सूक्ष्मनलिकाएं या केनेलीक्यूली कहलाती हैं। ठोस हड्डी सभी अस्थियों की बाहरी घनी परत बनाती है। यह बहुत से समानांतर एवं एक दूसरे से चिपकी हुई लंबवत् नलिकाकार रचनाएं, हैविर्सियन तंत्र की बनी होती है (चित्र 19.9)। प्रत्येक हैविर्सियन तंत्र में आधात्री कई संकेंद्रीय पट्टियां, एक लंबी केंद्रीय हैवर्सियन नाल को मेट्रिक्स (आधात्री) में गोलाई में घेरे रहती है। इस नाल में रक्त वाहिकाएं और तंत्रिकाएं होती हैं। दो लेमिली के बीच में एक परत आस्टियोसाइट सहित लेक्यूनी की पाई जाती है। अस्थि मध्य से खोखली होती है तथा इस गुहा को **मज्जा गुहा** कहते हैं। मज्जा गुहा में वसीय ऊतक भरा होता है। जिसे **अस्थिमज्जा** कहते हैं। अस्थियां दो प्रकार की होती हैं : ठोस और स्पंजी। ठोस अस्थि लंबे हड्डियों के शैफ्ट में उपस्थित होती है जिसमें हैवर्सियन तंत्र में अंतराल रहित पटलिकाएं

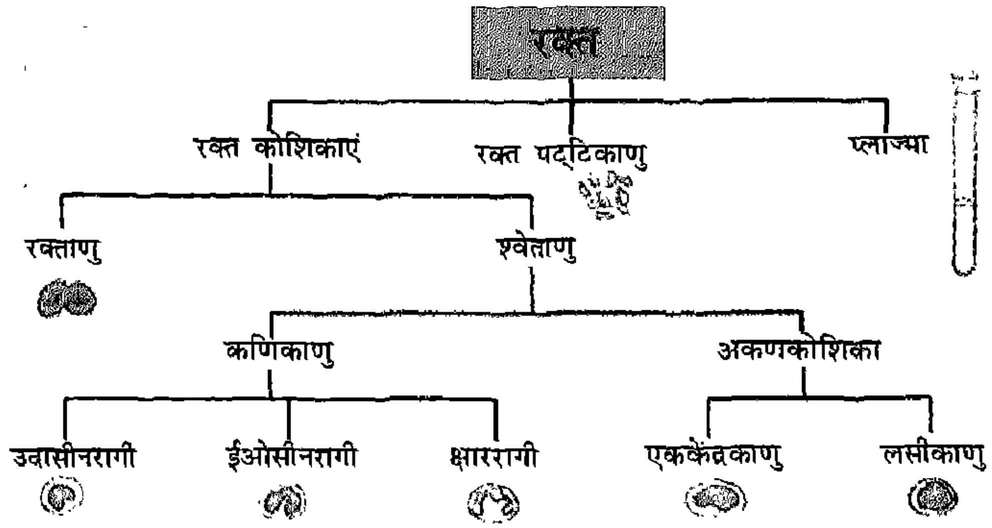


चित्र 19.9 अस्थि की आंतरिक संरचना

पाई जाती हैं। स्पंजी अस्थि कशेरुकों, पसलियों, कपाल और लंबी हड्डी के अधिप्रवर्ध (epiphysis) में पाई जाती हैं। स्पंजी अस्थि में आड़ी एवं टेढ़ी पटलिकाएं होती हैं जो ट्रेबेकुली कहलाती हैं, जो परस्पर जुड़कर छोटे-छोटे स्थानों सहित जालनुमा रचना बनाती हैं। इन स्थानों या कगारों के बीच लाल मज्जा भरी होती है। जो कि एरिथ्रोसाइट और कणयुक्त श्वेताणुओं का निर्माण करते हैं। कर्णयुक्त श्वेताणु अत्यधिक संवहनी होती है अत: लाल रंग की होती है। लाल मज्जा पसलियों, कशेरुकों और कपाल की अस्थियों में पाई जाती हैं। पीली मज्जा वसीय ऊतक की बनी होती है। यह वसा का संचय करती है और आपातकाल में रक्त कणिकाओं का निर्माण करती है। यह लंबी हड्डियों के केंद्रीय भाग में पायी जाती है।

रक्त

रक्त एक तरल संयोजी ऊतक है। इसकी कोशिकाएं दूसरे संयोजी ऊतक कोशिकाओं से आकार और कार्य दोनों में भिन्न होती हैं। संवहनी अथवा तरल ऊतक का आधारभूत पदार्थ या आधात्री तरल अवस्था में होता है। इसे **प्लाज्मा** कहते हैं। इसमें विशेष प्रकार की विशिष्ट कार्यों वाली कोशिकाएं या कणिकाएं स्वतंत्रतापूर्वक तैरती रहती हैं। प्लाज्मा दूसरे संयोजी ऊतक के आधात्री के समान होता है, लेकिन इसमें तंतु नहीं पाए जाते हैं। दूसरे संयोजी ऊतक का आधात्री स्थिर होता है जबकि रक्त का आधात्री अस्थिर स्वतंत्र



चित्र 19.10 रक्त का संगठन

बहने वाली अवस्था में होता है। इसी वजह से रक्त तरल ऊतक भी कहलाता है। इसे संवहनीय ऊतक भी कहते हैं क्योंकि यह प्राणियों के संवहनी तंत्र का भाग है ।

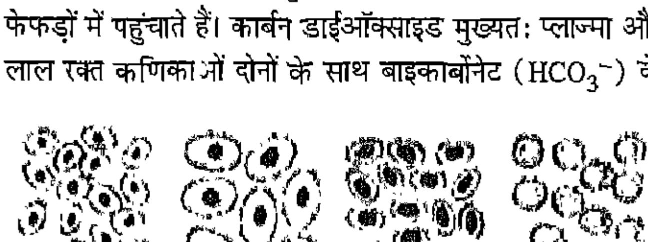
प्लाज़्मा हल्का पीला, कुछ-कुछ क्षारीय (pH 7.4), थोड़ा-सा चिपचिपा, जलीय घोल होता है जिसमें कई कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थ पाए जाते हैं । एक वयस्क मनुष्य में लगभग पांच लीटर रक्त पाया जाता है । प्लाज्मा में लगभग 92 प्रतिशत जल और 8 प्रतिशत ठोस पदार्थ होता है । इसमें विद्यमान विलेय ग्लूकोज, प्रोटीन, एमीनो अम्ल, कोलेस्टेरॉल, वसीय अम्ल, विटामिन, एंजाइम, हार्मोन, प्रतिपिंड, ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड और उत्सर्जी पदार्थ जैसे यूरिया, यूरिक अम्ल और क्रिएटिनीन आदि हैं। प्लाज्मा में प्लाज्मा प्रोटीनों के तीन मुख्य प्रकार एल्ब्यूमिन, ग्लोब्यूलिन एवं फाइब्रिनोजन पाए जाते हैं। प्लाज्मा ऊतक कोशिकाओं के लिए प्रोटीन के स्रोत का कार्य करते हैं और परिवहन और रक्षात्मक कार्य में भी सहायता करते हैं। मनुष्यों में भोजन के 12 घंटे उपरांत प्रति 100 मिली रक्त में शर्करा की मात्रा 90-120 mg होती है। प्लाज्मा का मुख्य वसीय घटक कोलेस्टेरोल होता है। सामान्यत: इसकी मात्रा प्रति 100 ml सीरम में जीव-द्रव्य में 140 से 260 mg तक होती है। जीव-द्रव्य में उपस्थित अकार्बनिक लवण सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लौह आदि के आयन होते हैं।

रक्त में मिलने वाली कोशिकाएं **रक्त कणिकाएं** कहलाती हैं। ये तीन प्रकार की होती हैं :

1. लाल रक्त कणिकाएं 2. श्वेत रक्त कणिकाएं 3. पट्टिकाणु

लाल रक्त कणिकाएं – लाल रक्त कणिकाएं **एरिथ्रोसाइट** भी कहलाती हैं। इनका नाम लाल रक्त कणिकाएं हीमोग्लोबिन की उपस्थिति के कारण पड़ा है। हीमोग्लोबिन, एक लाल रंग का वर्णक है जिसमें ऑक्सीजन के लिए बहुत अधिक लगाव होता है। लाल रक्त कणिकाओं का आकार-प्रकार विभिन्न जंतुओं में भिन्न-भिन्न होता है। कोशिकाएं केंद्रक-युक्त या केंद्रक-विहीन हो सकती हैं। स्तनधारियों के अलावा सभी कशेरुकियों में ये केंद्रक सहित अंडाकार और उभयोतल (biconvex) होती हैं। स्तनधारियों में लाल रक्त कणिकाएं केंद्रक विहीन, द्विअवतल और गोलाकार होती हैं (चित्र 19.11)। आरंभ में स्तनधारियों की लाल रक्त कणिकाओं में केंद्रक होता है लेकिन परिपक्वन के पश्चात् ये कोशिकाएं अपना केंद्रक, माइटोकॉन्ड्रिया और अंत:प्रद्रव्यी जालिका त्याग देती हैं । ऐसी कोशिकाएं ऑक्सीजन परिवहन के लिए अधिक हीमोग्लोबिन के लिए बढ़ा हुआ स्थान प्रदान करती हैं। वयस्क महिला में लगभग 4.8 ± 1.0 मिलियन प्रति घन मि.मी. लाल रक्त कणिकाओं और वयस्क नर में 5.5 ± 1.0 मिलियन प्रति घन मि.मी. लाल रक्त कणिकाएं पाई जाती हैं।

हीमोग्लोबिन एक संयुक्त प्रोटीन है जो एक ग्लोब्यूलिन प्रोटीन एवं Fe^{2+} युक्त पोरफाइरिन का यौगिक, जो **हीम** कहलाता है, का बना होता है। हीमोग्लोबिन का एक अणु ऑक्सीजन के चार अणुओं को बांधता है। रक्ताणु कार्बन डाइऑक्साइड को ऊतकों से फेफड़ों में पहुंचाते हैं। कार्बन डाईऑक्साइड मुख्यत: प्लाज्मा और लाल रक्त कणिकाओं दोनों के साथ बाइकार्बोनेट (HCO_3^-) के



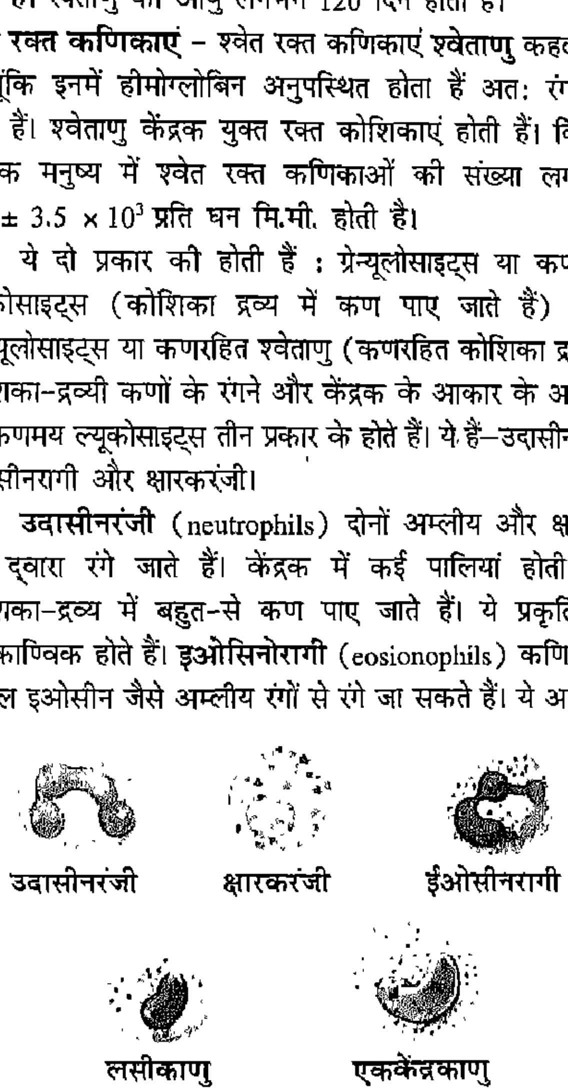
चित्र 19.11 विभिन्न कशेरुकियों के लाल रक्तकण

रूप में ले जायी जाती है। यह प्रक्रिया कार्बोनिक एन्हाइड्रेज एंजाइम द्वारा उत्प्रेरित की जाती है। कार्बन डाईऑक्साइड आंशिक रूप से हीमोग्लोबिन के ग्लोबिन घटक के साथ जुड़ कर भी ले जाया जाता है। रक्ताणु की आयु लगभग 120 दिन होती है।

श्वेत रक्त कणिकाएं – श्वेत रक्त कणिकाएं **श्वेताणु** कहलाती हैं चूंकि इनमें हीमोग्लोबिन अनुपस्थित होता हैं अत: रंगहीन होती हैं। श्वेताणु केंद्रक युक्त रक्त कोशिकाएं होती हैं। किसी वयस्क मनुष्य में श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या लगभग $7.5 \pm 3.5 \times 10^3$ प्रति घन मि.मी. होती है।

ये दो प्रकार की होती हैं : ग्रेन्यूलोसाइट्स या कणमय ल्यूकोसाइट्स (कोशिका द्रव्य में कण पाए जाते हैं) और एग्रेन्यूलोसाइट्स या कणरहित श्वेताणु (कणरहित कोशिका द्रव्य) कोशिका-द्रव्यी कणों के रंगने और केंद्रक के आकार के आधार पर कणमय ल्यूकोसाइट्स तीन प्रकार के होते हैं। ये हैं–उदासीनरंजी इओसीनरागी और क्षारकरंजी।

उदासीनरंजी (neutrophils) दोनों अम्लीय और क्षारीय रंगों द्वारा रंगे जाते हैं। केंद्रक में कई पालियां होती हैं। कोशिका-द्रव्य में बहुत-से कण पाए जाते हैं। ये प्रकृति में भक्षकाण्विक होते हैं। **इओसिनोरागी** (eosionophils) कणिकाएं केवल इओसीन जैसे अम्लीय रंगों से रंगे जा सकते हैं। ये आकार



चित्र 19.12 विभिन्न प्रकार के श्वेत रक्त कणिकाएं (WBCs)

में बड़े होते है और इनका केंद्रक द्विपालित होता है। इस प्रकार के खुरदरे कण बहुतायत में होते हैं। **क्षारकरंजी** (basophils) क्षारीय रंगों से रंगे जाते हैं। इनका केंद्रक S आकार का होता है और कोशिका-द्रव्य में खुरदरे कण बहुत कम होते हैं। क्षारकरंजी रक्त में हिपेरिन और हिस्टेमीन छोड़ते हैं। हिपेरिन प्राकृतिक रूप से रक्त का थक्का बनने की क्रिया को रोकता है।

कणविहीन श्वेताणुओं की श्वेत रक्त कणिकाओं में कणों का अभाव रहता हैं। केंद्रक पालिरहित होता है। यह दो प्रकार की होती हैं: **लिंफोसाइट्स** (lymphocytes) और **मोनोसाइट** (monocytes)। लिंफोसाइट् कोशिकाओं में केंद्रक बहुत बड़ा और गोलाकार होता है। इस कारण कोशिका-द्रव्य पतली-सी परिधि बनाता है। ये थाइमस, लिंफॉइड ऊतक जैसे लसीका पिंड, तिल्ली आदि में बनते हैं। लिंफोसाइट का प्राथमिक कार्य शरीर की प्रतिरोधी क्षमता बनाए रखने के लिए प्रतिरक्षी (antibodies) उत्पन्न करना है। **मोनोसाइट्स** सबसे बड़े ल्यूकोसाइट् (12-15 μm) होते हैं। इनका केंद्रक वृक्क के समान होता है। यह अत्यंत गतिशील और हानिकारक कणों और दूसरे जीवाणुओं को खा कर नष्ट कर देते हैं। ये भक्षी कोशिकाएं भी कहलाती हैं क्योंकि ये चोटग्रस्त स्थान से मृत कोशिकाओं को हटा देती हैं।

रक्त पट्टिकाणु – रक्त प्लेटलेट्स को थ्रोंबोसाइट्स भी कहते हैं। क्योंकि यह थ्रोंबोप्लास्टिन नामक पदार्थ स्रावित करती हैं। यह सबसे छोटी रक्त कणिकाएं (2-3 μm) होती हैं। रक्त प्लेटलेट्स अत्यंत सूक्ष्म चपटी, गोलाकार केंद्रक विहीन, प्लेट जैसी होती है। इनकी संख्या सामान्यतया 0.15 से 0.40 मिलियन प्रति घन मि. ली. रक्त की होती है। ये कणिकाएं अस्थि की लाल रक्त मज्जा से बनती हैं। जब कोई रक्तवाहिनी चोट ग्रस्त होती है तो घाव होने पर उस स्थान की कोशिकाएं तथा रक्त की प्लेटलेट्स टूट कर वहां चिपक जाती हैं और एक रासायनिक पदार्थ, पट्टलिका कारक उत्पन्न करती है। थ्रोंबोप्लास्टिन नामक एंजाइम चोटग्रस्त स्थान पर पट्टिकाणुओं द्वारा उत्पन्न किया जाता है। यह रक्त कंद का एक मुख्य घटक है। रक्त का थक्का बनने के बाद बाहर निकलने वाला पारदर्शी द्रव **सीरम** कहलाता है। अर्थात् रक्त में से कणिकाएं और फाइब्रिन प्रोटीन निकालने के बाद केवल सीरम बचता है।

लसीका : एक दूसरा संयोजी ऊतक है। यह पारभासी क्षारीय द्रव है जो कोशिकाओं और ऊतक के मध्य पाया जाता है। यह दो भागों प्लाज्मा और ल्यूकोसाइट का बना होता है। लसीका का जीवद्रव्य रक्त के जीवद्रव्य के समान होता है इसमें केवल कुछ प्रोटीन, कैल्शियम और फास्फोरस कम मात्रा में पाया जाता है। लिंफ या लसीका में उपस्थित कणिकाएं ल्यूकोसाइट होते हैं मुख्यत: तैरती हुई **अमीबीय लसीकाणु** होती है। लसीका का संयोजन इस प्रकार समझा जा सकता है कि यदि रक्त में से लाल रक्त कणिकाएं, पट्टिकाणु, प्रोटीन और कुछ लवण निकाल दिए जाएं, तो शेष द्रव्य लसीका होता है। लसीका पदार्थों को ऊतकों से रक्त की और रक्त के ऊतकों में से भी ले जाते हैं। लसीका में उपस्थित श्वेत रक्त कणिकाएं अंदर आने वाले हानिकारक सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देती हैं।

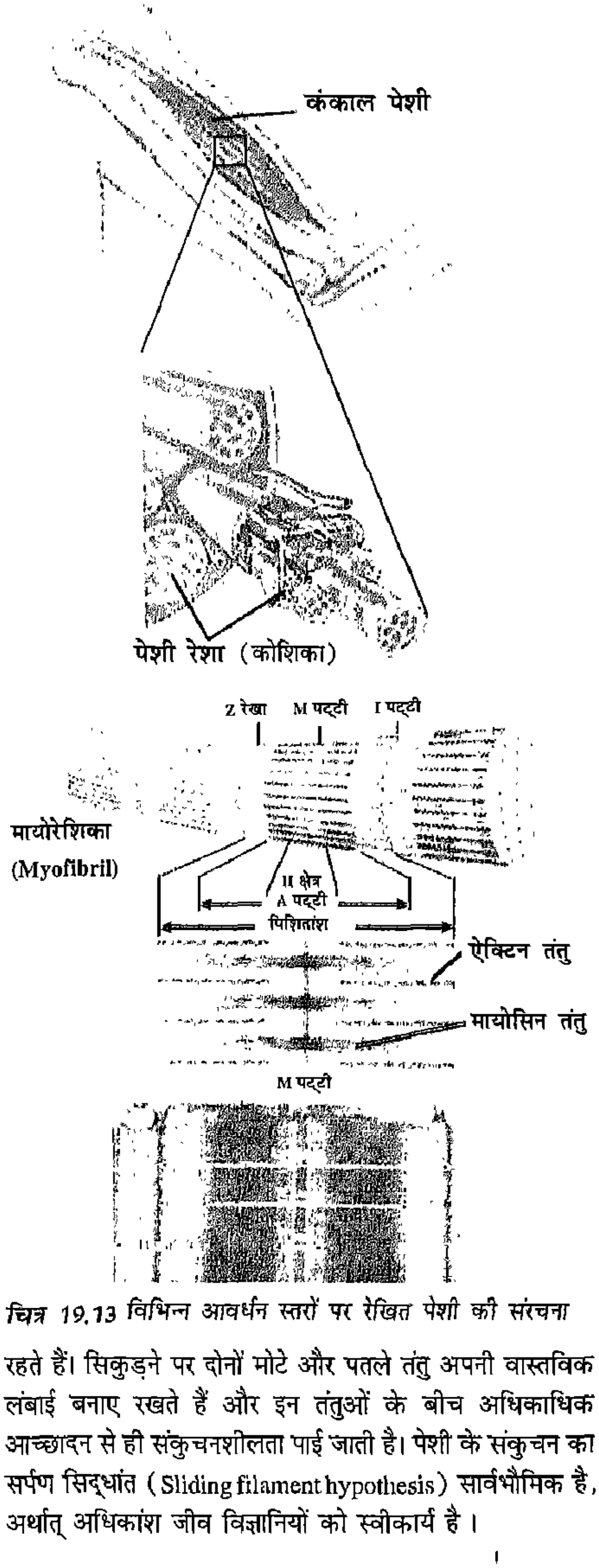
19.4 पेशीय ऊतक

पेशीय ऊतक मुख्यत: पेशी कोशिकाओं का बना होता है। जिन्हें पेशीतंतु कहते हैं। ये संकुचनशील, पतली और लंबी होती हैं, उच्चतर जंतुओं में यह कंकाल से देहगुहीयअंगों की भित्ति से, रक्त वाहनियों और हृदय आदि से जुड़े हुए पाए जाते हैं। संरचना कार्य और स्थान के आधार पर यह तीन प्रकार के होते हैं : कंकाल पेशी, हृद् पेशी और अरेखित पेशी अथवा चिकनी पेशी।

कंकाल पेशी

कंकाल पेशी लंबे (30 cm तक), बेलनाकार, अशाखित, संकरे, मोटे अथवा धारहीन सिरों के तंतुओं, जिनका व्यास 10–100 µm होता है, की बनी होती हैं। सूक्ष्मदर्शी द्वारा तंतुओं में अनुप्रस्थ धारियां दिखाई देती हैं क्योंकि प्रत्येक तंतु पर एकांतरित गहरी तथा हल्की अनुप्रस्थ पट्टियां पाई जाती हैं। इनकी गति स्वेच्छा पर निर्भर रहती है अत: रेखित पेशी को ऐच्छिक पेशी (voluntary muscle) भी कहते हैं (चित्र 19.13)। प्रत्येक तंतु की प्लाज्मा झिल्ली को सार्कोलीमा कहते हैं। इनके अंदर के कोशिका-द्रव्य को सार्कोप्लाज्मा कहते हैं। सार्कोप्लाज्म में कई लंबी, पतली, शाखारहित तिरछी धारियां होती हैं। जिन्हें मायोरेशिका (myofibril) कहते हैं। प्रत्येक पेशीय रेशे कोशिका की परिधि पर सार्कोलीमा के नीचे अंडाकार एवं चपटे केंद्रक पाए जाते हैं। ये रेशों के अनुदैर्ध्य अक्ष पर स्थित होते हैं।

प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से अवलोकन के उपरांत तंतुओं में अनुप्रस्थ धारियां दिखाई देती हैं क्योंकि प्रत्येक तंतु में एक एकांतरित गहरी तथा हल्की अनुप्रस्थ पट्टियां पाई जाती हैं। गहरी पट्टी को **A धारियां** कहते हैं जो ध्रुवीय प्रकाश को बदलती हैं तथा गहरी होती है। हल्की पट्टियों को **I धारियां** (I bands) कहते हैं जो ध्रुवीय प्रकाश को नहीं बदलती हैं तथा कम गहरी होती हैं। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी में प्रत्येक पट्टिका गहरी अनुप्रस्थ रेखा द्वारा मध्य में विभाजित दिखाई देती है। पेशीय जीव-द्रव्य लंबी बेलनाकार धागेनुमा पुंजों द्वारा भरा रहता है जिन्हें पेशीय तंतुक कहते हैं। ये पेशी तंतु के लंबे अक्ष के समानांतर लगे होते हैं। तंतु दो तरह के होते हैं: **मोटे तंतु और पतले तंतु**। पेशी तंतु में मोटे तंतु A-पट्टियों के पूरे मध्यभाग में आच्छादित होते हैं। मोटे और पतले तंतु A-पट्टी में कुछ दूरी तक एक-दूसरे के ऊपर स्थित होते हैं। मोटे और पतले तंतुओं की यह आंशिक अच्छादित स्थिति A-पट्टी को गहरा रंग प्रदान करती है। पतले तंतु, मोटे तंतुओं के बीच और समानांतर चलते हैं तथा उनका एक सिरा Z-रेखा से जुड़ जाता है। A-पट्टी मोटे तंतुओं को तथा पतले तंतुओं के उस भाग जो मोटे तंतुओं को आच्छादित करता है को प्रदर्शित करती है जबकि I पट्टी में ऐसा कोई आच्छादन नहीं होता है। मोटे तंतु मायोसीन प्रोटीन के बने होते हैं। मायोसीन तंतु A-पट्टियों पर लंबवत् रहते हैं। इन पर मायोसिन प्रोटीन सिरे के तिरछे बंध होते हैं। पतले तंतु संख्या में अधिक होते हैं। ये एक्टीन, ट्रोपोमाइसिन और ट्रोपोनिन प्रोटीन के बने होते हैं। पेशी तंतुकों का प्रत्येक टुकड़ा एक Z पट्टी से दूसरी Z पट्टी तक एक संकुचनशील इकाई का कार्य करते हैं जिसे पिशितांश (sarcomere) कहते हैं। विश्रामावस्था में एक पिशितांश लगभग 2.5 µm लंबा होता है। ऐसे कई पिशितांश एक सिरे से दूसरे सिरे तक शृंखला की तरह जुड़े



चित्र 19.13 विभिन्न आवर्धन स्तरों पर रेखित पेशी की संरचना

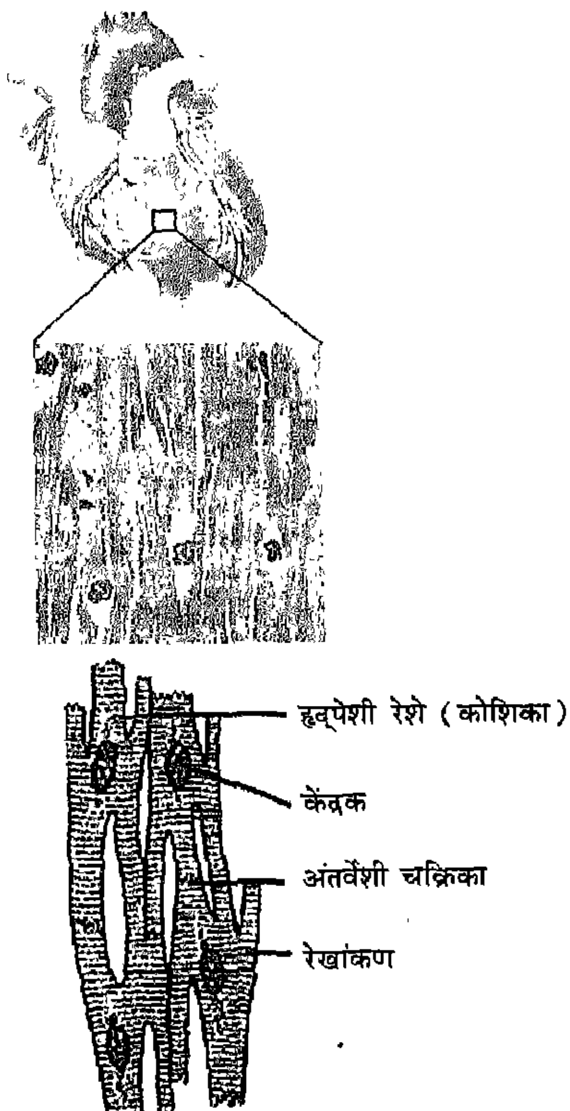
रहते हैं। सिकुड़ने पर दोनों मोटे और पतले तंतु अपनी वास्तविक लंबाई बनाए रखते हैं और इन तंतुओं के बीच अधिकाधिक आच्छादन से ही संकुचनशीलता पाई जाती है। पेशी के संकुचन का सर्पण सिद्धांत (Sliding filament hypothesis) सार्वभौमिक है, अर्थात् अधिकांश जीव विज्ञानियों को स्वीकार्य है।

हृद् पेशी

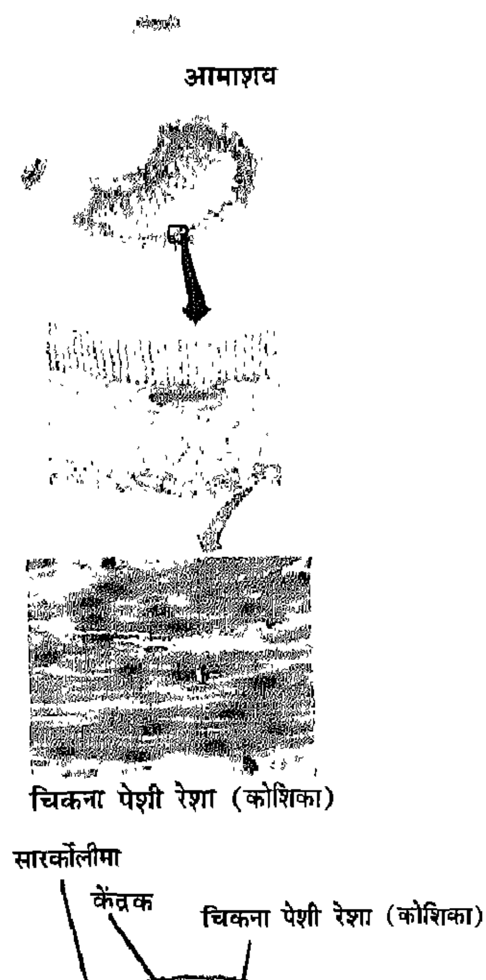
हृद्पेशी हृदय की भित्ति में ही पाई जाती है। इसमें तिरछी धारियां और लंबी शाखित एकल कोशिकाएं जो एक-दूसरे के समानांतर होते हैं, पाई जाती हैं। परिपक्व हृदयपेशी की कोशिकाएं लगभग 85–100 μm लंबी और 15 μm चौड़ी होती हैं। बहुकेंद्रीय कंकाल पेशी के विपरीत इन कोशिकाओं में एक या दो केंद्रीय स्थित केंद्रक पाए जाते हैं, जो तंतु के मध्य एवं गहराई में उपस्थित होते हैं। सारकोप्लाज्म में कई पेशी तंतु बाहुल्य में माइटोकॉन्ड्रिया और ग्लाइकोजन कण पाए जाते हैं। यह इसलिए क्योंकि इन्हें अधिक मात्रा में उर्जा की आवश्यकता होती है। हृद्पेशी में संकुचनशील तंतु होते हैं। जो कंकाल पेशी के समान होते हैं तथा इनमें मायोसिन और एक्टिन तंतु होते हैं (चित्र 19.14)। हृद्पेशी का एक अद्वितीय एवं विभेदन योग्य लक्षण इनके सिरे पर संयोजन समूह की उपस्थिति है जिनकी सहायता से ये तीव्रगति से एक तंतु से दूसरे तंतु तक उत्तेजन पहुंचाते हैं। हृद पेशी का संकुचन अनैच्छिक, शक्तिशाली एवं लयबद्ध होता है।

अरेखित पेशी

अरेखित पेशियां तर्कुकार तंतुओं का एक समूह है जिनमें धारियां नहीं पाई जाती हैं। ये मध्य में चौड़े तथा सिरों पर पतले होते जाते हैं। ये लंबाई में 20 μm (छोटी रक्त वाहनियों) से 500 μm (गर्भयुक्त गर्भाशय) तक होते हैं। ये साधारणता रेखित पेशियों से छोटे होते हैं। प्रत्येक तंतु में एक तर्कु के आकार का केंद्रक इसके केंद्रीय, मोटे भाग में विद्यमान होता है (चित्र 19.15)। सारकोप्लाज्म में मांइटोकॉन्ड्रिया कम संख्या में कोशिका



चित्र 19.14 हृदय की पेशी के रेशे



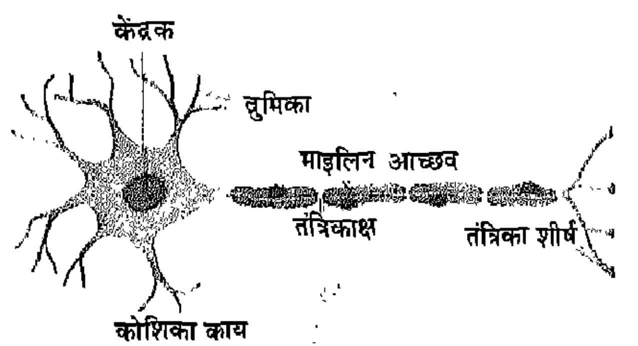
चित्र 19.15 चिकना पेशी रेशा

द्रव्य-जालिका कम विस्तारित और प्रोटीन तंतु धारियां दिखाने के लिए नियमित रूप से व्यवस्थित नहीं होती हैं। इनकी संकुचन प्रक्रिया धीमी एवं अनैच्छिक होती है, इसलिए इन्हें अनैच्छिक पेशी (involunlary muscle) भी कहते हैं।

19.5 तंत्रिका ऊतक

तंत्रिका ऊतक दो प्रकार की कोशिकाओं का बना होता है **तंत्रिका कोशिकाएं** (neurons) तथा **ग्लियल कोशिकाएं** (glial cells)। तंत्रिका कोशिकाओं के कई लंबे प्रवर्ध होते हैं तथा ये संवेदनाओं के संप्रेषण का कार्य करते हैं। ग्लियल कोशिकाओं के प्रवर्ध छोटे होते हैं तथा यह तंत्रिका कोशिकाओं को सहारा एवं सुरक्षा प्रदान करते हैं।

किसी एक तंत्रिका कोशिका में बड़ी कोशिकाकाय और इनमें से निकले हुए कई जीवद्रव्यी प्रवर्ध होते हैं (चित्र 19.16)। इनमे से एक प्रवर्ध तो लंबा होता है जो एक्सॉन (axon) कहलाता



चित्र 19.16 माइलिनकृत तंत्रिकाक्ष (Myelinated axon) सहित एक तंत्रिका कोशिका (Neuron)

हैं यह संवेदनाओं को कोशिकाकाय से दूर ले जाते हैं। और पेशीतंतुओं, ग्रंथिकोशिकाओं अथवा दूसरी तंत्रिका कोशिकाओं पर कुछ छोटी शाखाओं में समाप्त होता है। बचे हुए प्रवर्ध (एक या अधिक) संवेदनाओं को कोशिकाकाय की ओर ले जाते हैं तथा ये द्रुमिका अथवा डेंड्राइट (dendrite) कहलाते हैं। एक्सॉन छोर द्रुमिका छोर के साथ अंत: संचारीय संगम बनाते हैं, जिन्हें अंतर्ग्रंथन (synapse) कहते हैं। सिनेप्स एक्सॉन छोर और एक कोशिकाकाय के बीच बन सकते हैं तथा ये दूसरे कोशिकाओं के एक्सॉनों के साथ भी बन सकते हैं। एसीटाइलकोलीन नामक रसायन के द्वारा प्रभावित तंत्रिका संवेदनाएं तंत्रिका कोशिकाओं के मध्य सिनेप्स के माध्यम से गुजरती हैं। इन रसायनों को तंत्रिका संवाहक (neuro-transmitters) भी कहते हैं। तंत्रिका कोशिकाएं, तंत्रिका प्रवर्धों की संख्या के आधार पर तीन प्रकार की होती हैं : (i) एकध्रुवीय तंत्रिका कोशिकाएं इनमें मात्र एक एक्सॉन होता है एवं द्रुमिका का अभाव होता है। यह केवल भ्रूणावस्था में ही पाए जाते हैं। (ii) द्विध्रुवीय तंत्रिका कोशिका इनमें दो प्रवर्ध एक एक्सान और दूसरा द्रुमिका होता है। यह घ्राण उपकला और नेत्र के रेटिना में पाए जाते हैं। (iii) बहुध्रुवीय तंत्रिका कोशिका जिसमें कई प्रवर्ध निकलते हैं उनमें से एक बड़ा एक्सॉन की भांति तथा बचे हुए द्रुमिका की तरह कार्य करते हैं तथा ये मस्तिष्क और मेरुरज्जू में पाए जाते हैं।

कोशिकीय शरीर को **साइटॉन या पेरिकैरिऑन या सोमा** कहते हैं जो तंत्रिका तंतु का ही भाग होता है जिसमें केंद्रक व कोशिका-द्रव्य पाया जाता है। केंद्रक बड़ा गोलाकार होता है जिसमें प्रभावी केंद्रिका पाई जाती है। कोशिका द्रव्य में खुरदरी अंतः प्रद्रव्यी नलिका एवं मुक्त विचरणी लाइसोसोम पाए जाते हैं। जो भली-भांति तरह से रंजित तंत्रिका कोशिका में कणीय क्षेत्र के रूप में दिखाई देते हैं जिन्हें **निसलकाय** कहते हैं। किसी तंत्रिका कोशिका के बढ़े हुए एक्सॉन या द्रुमिका को तंत्रिका तंतु कहते हैं। तंत्रिका तंतु एक तंत्रिका में पूलों अथवा पुंजों में एकत्र होते हैं। प्रत्येक तंत्रिका तंतु एक लंबी झिल्ली से ढका रहता है जिसे **न्यूरोलेमा** कहते हैं। न्यूरोलेमा भित्ति चपटी लंबी श्वान्न कोशिकाओं (Schwann cells) के एक स्तर की बनी होती है। न्यूरोलेमा मस्तिष्क और मेरुरज्जु में अनुपस्थित रहती है। तंत्रिका तंतु दो प्रकार के होते हैं। कुछ तंत्रिका तंतु वसीय पदार्थ की बनी मायलिन आवरण से ढके रहते हैं। इस तरह के तंतुओं को **मायलिनिकृत** (myelinated) या **मेडयूलेटेड** तंत्रिका तंतु कहते है। प्रत्येक माइलिनोकृत तंत्रिका तंतु में (चित्र 19.16) निश्चित अंतराल पर खांच पाई जाती है। इन स्थानों को रैनवियर पर्व या रैनवियर ग्रंथि (ranvier nodes) कहते हैं। ये खांचे माइलीन परत में अवरोध होने के स्थान पर बनती हैं। इन नोडों के नीचे के भाग को पर्व कहते हैं। यह मस्तिष्क और मेरुरज्जु में पाए जाते हैं। (ii) जिन तंत्रिका तंतुओं पर माइलीन आवरण नहीं होता है उन्हें अमायलिनीकृत (non-myelinated) अथवा मज्जा-विहीन (non-medullated) तंतु कहते हैं। इनमें रैनवियर नोड (Ranvier nodes) नहीं पाए जाते हैं। अमायलिनिकृत तंतु सामान्यत: मायलिनीकृत तंतुओं से मोटे होते हैं। ये स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (autonomic nervous system) में पाए जाते हैं।

तंत्रिका तंतु की भित्ति पर फैलने वाले विभव परिवर्तन के संदेश को **तंत्रिका आवेग** (nerve impulse) कहते हैं। यह एक संदेश के रूप में दूसरी तंत्रिका-कोशिका या पेशी या ग्रंथि को जाता है। इसकी अनुक्रिया संवेदना, दर्द या अन्य क्रियाओं जैसे पेशी संकुचन अथवा ग्रंथिल स्राव द्वारा व्यक्त होती है।

सारांश

बहुकोशिक जंतुओं के शरीर में कई प्रकार की कोशिकाएं पाई जाती हैं। एक ऊतक एक या एक से अधिक ऐसी विशेष प्रकार की कोशिकाओं से मिलकर बना होता है जो कुछ विशिष्ट कार्य करती हैं। जंतु ऊतकों में बाह्यचर्म (उपकला) ऊतक जो कि खुली सतहों को ढकती है, संयोजी ऊतक, जो दूसरे ऊतकों को बांधे रखते है, पेशी ऊतक, गमन तथा गति के लिए, तथा तंत्रिका ऊतक सूचनाओं का संप्रेषण करता है जो विभव परिवर्तन के द्‌वारा बढ़ते हैं। अंग का निर्माण एक से अधिक प्रकार के ऊतकों द्‌वारा होता है जो किसी विशिष्ट कार्य को पूर्ण करते हैं और अंग-तंत्र का निर्माण बहुत प्रकार के अंगों के मिलने से होता है जो एक मुख्य जैविक-क्रिया विधि के समन्वय में सहायता करता है। मुख्य अंग-तंत्र पाचन, श्वसन परिसंचरण, उत्सर्जन, गति एवं गमन, प्रजनन, तंत्रिका तथा हॉर्मोनों के समन्वय से संबद्‌ध हैं। सामान्य बाह्यत्वचीय ऊतक बहुत प्रकार के होते हैं जैसे घनाकार, शल्की, स्तंभीय, कूटस्तरीय तथा रोमाभि। संयुक्त उपकला ऊतक स्तरीय अथवा परिवर्ती हो सकते हैं। ग्रंथियां स्रवण का कार्य करती हैं। बहि:स्रावी ग्रंथियों से स्रवण नलिकाओं के द्‌वारा होता है। अंत:स्रावी ग्रंथियों में नलिकाएं नहीं होती हैं फलतः उनके द्‌वारा स्रवण सीधे ही रक्त में उड़ेल दिया जाता है।

संयोजी ऊतक अपने साथ दूसरे ऊतक को भी बांधे रखते हैं इसमें ऊतक में कोशिकाबाह्य पदार्थ अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। कोशिकाबाह्य पदार्थ में बहुत अधिक तंतु और लवण भरे रहते हैं। अंतरालीय संयोजी ऊतक अंगों के चारों तरफ एक रक्षात्मक आवरण बनता है। कोलेजन तंतुओं की तन्यता और लचीलापन अंगों की चोट लगने से रक्षा करता है। वसीय ऊतक वसायुक्त कोशिकाओं का बना होता है। इन कोशिकाओं में वसा का संग्रहण होता है इन्हें वसा अणु (ऐडिपोसाइट) कहते हैं। श्वेत तंतुमय ऊतक उन संधियों पर पाया जाता है जो चल नहीं होते हैं यह अंगों के ऊपर एक आवरण बनाता है तथा कुछ तंतुकोरक कोशिकाओं को संजोए रखता है जो स्थूल कोलेजन तंतु के पूलों के जाल के बीच में फैली रहती है। कंडराएं पेशियों तथा अस्थियों के मध्य लोच-रहित जोड़ पैदा करती हैं। स्नायु, संधियों पर अस्थियों को जोड़े रखती है। उपास्थि एक कठोर लेकिन लचकदार संयोजी ऊतक है जिसमें उपास्थि कोशिकाएं आधात्री में उपस्थित खाली स्थान में पाई जाती हैं। अस्थि एक दृढ़ और शक्तिशाली संयोजी ऊतक है। इसकी आधात्री, कैल्शियम तथा फास्फोरस जमा हो जाने के कारण कठोर होती है। अस्थि कोशिकाएं आधात्री में फैली हुई रिक्तिका में स्थित होती हैं। अस्थियां शरीर के ढांचे को सहारा प्रदान करती हैं और शरीर के कोमल अंगों व आंतरिक अंगों को सुरक्षा प्रदान करती हैं। रक्त तरल संयोजी ऊतक है जो कि रक्त कोशिकाओं एवं जीव-द्रव्य से निर्मित होता है। लाल रक्त कणिकाएं, ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड का परिवहन करती हैं। श्वेत रक्त कोशिकाएं शरीर की सुरक्षा में सहायक होती हैं। पट्टिकाएं रक्त स्कंदन में सहायक होती है। जीव-द्रव्य पोषक तत्वों, अपशिष्ट पदार्थों, श्वसन गैसों एवं अन्य पदार्थों का परिवहन करता है।

पेशीय ऊतक, पेशीय तंतुओं से बने होते हैं जिनके संकुचन एवं फैलाव से गति एवं गमन संभव होता है। रेखित या कंकाल पेशियां ऐच्छिक कार्य करती हैं। ये अस्थिओं से संबंधित होती हैं। अरेखित पेशियां आंतरिक अंगों एवं रक्त वाहिनियों में पाई जाती हैं। अरेखित पेशीय तंतु अनैच्छिक होती हैं। हृदय के कक्षों की भित्तियां हृद् पेशियों की बनी होती हैं। तंत्रिकीय ऊतक सूचनाएं एवं संदेशों को आवेगों के रूप में भेजते एवं प्राप्त करते हैं। यह ऊतक तंत्रिकीय कोशिकाओं तथा ग्लिअल कोशिकाओं से बना होता है। प्रत्येक तंत्रिकीय कोशिका में एक बड़ी कोशिकीय काय होती है जिसमें दो या अधिक प्रवर्ध निकले होते हैं। इसमें से एक प्रवर्ध संवेदनाओं को कोशिक काय से दूर ले जाता है जिसे एक्सॉन कहते हैं। दूसरा प्रवर्ध जो तंत्रिकी संवेदनाओं को कोशिकाकाय की तरफ लाता है, उसे द्रुमिका कहते हैं। एक्सॉन, अंत:संचार संधि बनाता है जिसे आवरित अंतग्रंथन कहते हैं। बढ़े हुए एक्सॉन या द्रुमिका को तंत्रिकातंतु कहते हैं। कुछ तंत्रिका-तंतु मायलीन झिल्ली से आवरित होते हैं। जिन्हें मायलिनीकृत तंत्रिका-तंतु कहते हैं। जिन तंत्रिका-तंतुओं में मायलीन झिल्ली अनुपस्थित होती है। उन्हें अमायलिनीकृत तंत्रिका-तंतु कहते हैं।

अभ्यास

1. निम्नलिखित कार्य संपन्न करने वाले ऊतकों के नाम बताइए।
   (i) रक्त निर्माण   (ii) प्रतिजीवी का निर्माण
   (iii) स्कंदन   (iv) गमन
   (v) संदेशों का संवहन   (vi) यांत्रिकी झटकों से बचाव
   (vii) मृत कोशिकाओं का निस्तारण
2. सत्य अथवा असत्य वाक्य का चयन कीजिए।
   (क) अमायलीकृत तंत्रिका-तंतुओं पर रैनवियर नोड (ranvier node) पाई जाती है।
   (ख) काचाभ उपास्थि वसा का संचयन करती है।

(ग) अरेखित पेशी इका[illegible]द्ध संकुचन करती है।
(घ) परिवर्ती उपकला (बाह्यचर्म) रक्त की कमी को रोकती है।
(ङ) रक्त का थक्का जमाने में फाइब्रिन सहायक होता है।

3. क और ख स्तंभों को सुमेलित कीजिए :

क	ख
(क) स्तरीय उपकला	(i) तंत्रिकीय आवेग
(ख) बहिःस्रावी ग्रंथि	(ii) लाल रक्त कोशिकाएं
(ग) पोलीसाईथीमिया	(iii) संक्रमित बाह्यचर्म
(घ) रैनवियर ग्रंथियां	(iv) मेगाकैरिओसाइट
(ङ) द्रुमिका	(v) अश्रु
(च) रक्त स्कंदन	(vi) कोलेजन तंतु
(छ) रक्त कणिकाएं	(vii) भक्षकाणुक्रिया
(ज) वृहद् अमीबीय कोशिकाएं	(viii) त्वचा
(झ) मूत्राशय	(ix) एक्टिन
(ञ) श्वेत तंतु ऊतक	(x) श्वासनली
(त) I-बंध पट्टी	(xi) प्रोथ्रोंबिन
	(xii) मायलीकृत तंत्रिका-तंतु

4. निम्न में विभेदन कीजिए :
   (क) कंडराएं तथा स्नायु
   (ख) जीव-द्रव्य एवं लसिका
   (ग) सरल उपकला ऊतक तथा संयुक्त उपकला ऊतक
   (घ) अरेखित पेशी तथा रेखित पेशी
   (ङ) साइटोन तथा एक्सॉन
   (च) सरल ग्रंथि तथा संयुक्त ग्रंथि
   (छ) श्वेत कोलेजन तंतु तथा पीले लचीले तंतु।
5. निम्न श्रृंखलाओं में सुमेलित न होने वाले अंशों को इंगित कीजिए :
   (i) न्यूरोलेमा, एक्सॉन, अधिवृषण (एपिडिडाइमिस), द्रुमिका, I-पट्टी
   (ii) रक्त, जीव-द्रव्य, लसीका, प्रतिरक्षाग्लोब्युलिन, सायटोन
   (iii) जठर ग्रंथि, अश्रु ग्रंथि, पीयूष ग्रंथि, लार ग्रंथि
   (iv) A-बंध, I-बंध, Z-बंध, सारकोलीमा, श्वान्न कोशिकाएं
6. रक्त के कोशिक अवयव बताइए।
7. विभिन्न प्रकार के पेशी ऊतकों का वर्णन कीजिए।
8. निम्न क्या है तथा ये जंतुओं के शरीर में कहां पाए जाते हैं ?

(क) कांड्रोसाइट	(ख) थ्रोंबोसाइट
(ग) निसल कण	(घ) रैनवियर ग्रंथियां
(ङ) हैवर्सियन तंत्र	(च) एक्सॉन
(छ) A-पट्टी	(ज) हिपेरीन
(झ) थ्रोंबोप्लास्टिन	(ञ) पक्ष्माभ उपकला

9. रेखांकित चित्र की सहायता से विभिन्न उपकला ऊतकों का वर्णन कीजिए।
10. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   (i) ——— पेशीय तंतुओं की पट्टी मायोसीन नामक प्रोटीन की बनी होती है। जब कि ——— पट्टी एक्टिन निर्मित होती है।
   (ii) ——— कोशिकाएं रक्त का थक्का जमाने में सहायता करती है।
   (iii) ——— मायलिनीकृत तंत्रिका-तंतुओं पर परत पाई जाती है।
   (iv) ——— काचाम उपास्थि और ——— धारण करती हैं।
   (v) बृहद् सर्पिलाकार अथवा अंडाकार कोशिकाएं जो वसीय ऊतक में पाई जाती हैं, ——— कहलाती हैं।